# प्रेमचंद रचनावली

5

# प्रेमचंद रचनावली

# 5

उपन्यास : 1931-1932

गबन, कर्मभूमि

# प्रेमचंद रचनावली

## खण्ड : पाच

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ० रामविलास शर्मा

# प्रकाशकीय

**'प्रेमचंद रचनावली'** का प्रकाशन **जनवाणी** के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है—

> **खण्ड 1-6 :** मौलिक उपन्यास, **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं, **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक; **खण्ड 11-15:** सम्पूर्ण कहानियां (302), **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी); **खण्ड 18 :** जीवनी एवं बाल साहित्य, **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी-पत्री), **खण्ड 20 :** विविध।

**रचनावली** की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकश: धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

**रचनावली** के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।
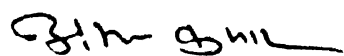
सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)

दक्षिण भारत की यात्रा के समय नाथूराम प्रेमी, प्रेमचद और श्रीमती शिवरानी देवी

मुंबई में फिल्म अनुबंध पर हस्ताक्षर करते हुए प्रेमचंद
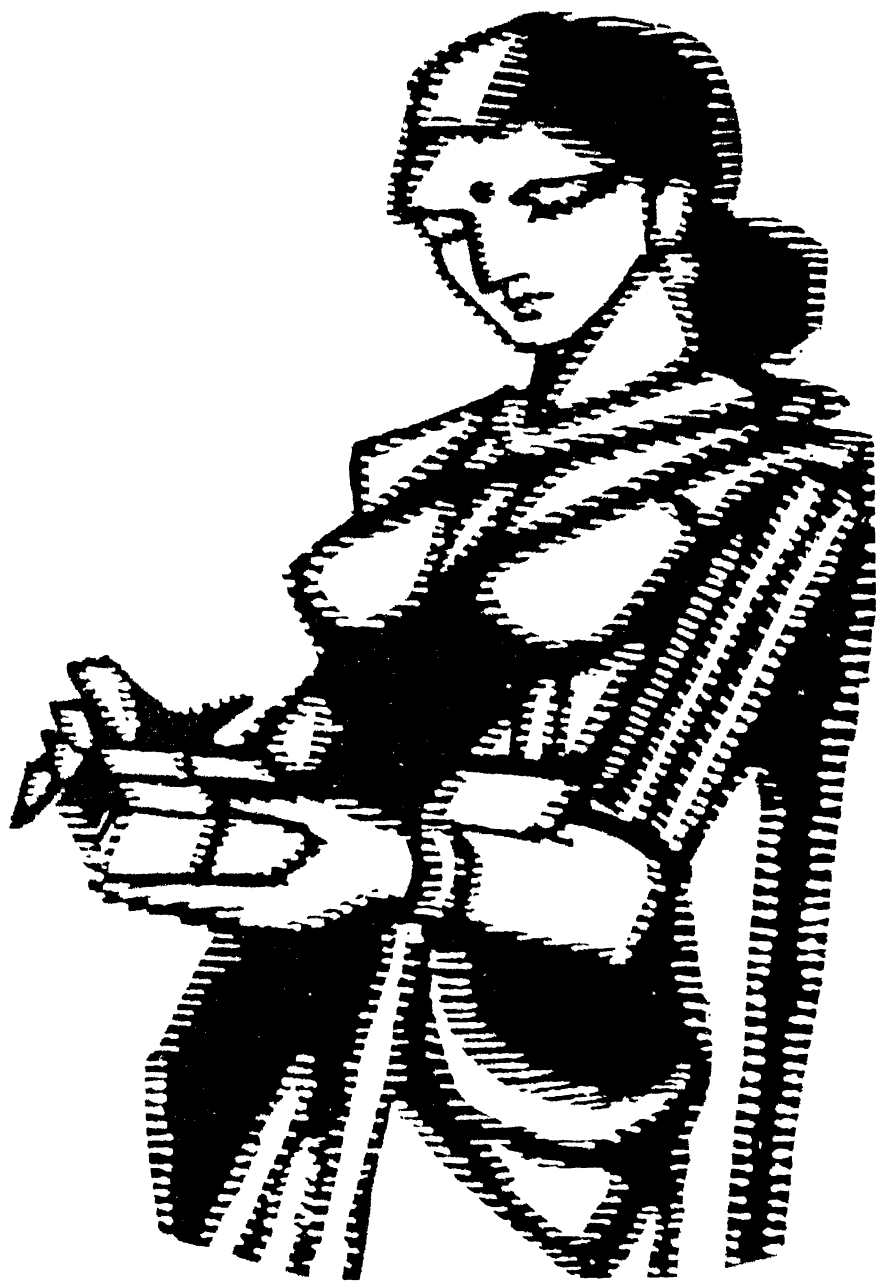
# गबन

रचनाकाल : मार्च–अप्रैल, 1929 – जुलाई, 1930

प्रकाशनकाल : फरवरी, 1931

लेखक

भारत-विख्यात उपन्यास-सम्राट्

श्रीप्रेमचन्दजी

---

प्रकाशक

सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

| प्रथम संस्करण | मार्च १९३१ | मूल्य तीन रुपये |
|---|---|---|

(प्रथम संस्करण का मुख पृष्ठ)

# एक

बरसात के दिन हैं, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएं छाई हुई हैं। रह-रहकर रिमझिम वर्षा होने लगती है। अभी तीसरा पहर है; पर ऐसा मालूम हो रहा है, शाम हो गई। आमों के बाग में झूला पड़ा हुआ है। लड़कियां भी झूल रही हैं और उनकी माताएं भी। दो-चार झूल रही हैं, दो-चार झुला रही हैं। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। इस ऋतु में महिलाओं की बाल-स्मृतियां भी जाग उठती हैं। ये फुहारें मानो चिंताओं को हृदय से धो डालती हैं। मानो मुरझाए हुए मन को भी हरा कर देती हैं। सबके दिल उमंगों से भरे हुए हैं। धानी साड़ियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।

इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया। उसे देखते ही झूला बंद हो गया। छोटी-बड़ी सबों ने आकर उसे घेर लिया। बिसाती ने अपना संदूक खोला और चमकती-दमकती चीजें निकालकर दिखाने लगा। कच्चे मोतियों के गहने थे, कच्चे लैस और गोटे, रंगीन मोजे, खूबसूरत गुड़ियां और गुड़ियों के गहने, बच्चों के लट्टू और झुनझुने। किसी ने कोई चीज ली, किसी ने कोई चीज। एक बड़ी-बड़ी आंखों वाली बालिका ने वह चीज पसंद की, जो उन चमकती हुई चीजों में सबसे सुंदर थी। वह फिरोजी रंग का एक चन्द्रहार था। मां से बोली—अम्मां, मैं यह हार लूंगी।

मां ने बिसाती से पूछा—बाबा, यह हार कितने का है ?

बिसाती ने हार को रूमाल से पोंछते हुए कहा—खरीद तो बीस आने की है, मालकिन जो चाहें दे दें।

माता ने कहा—यह तो बड़ा महंगा है। चार दिन में इसकी चमक-दमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा—बहूजी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जाएगा !

माता के हृदय पर इन सहृदयता से भरे हुए शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया।

बालिका के आनंद की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनंद न होता। उसे पहनकर वह सारे गांव में नाचती फिरी। उसके पास जो बाल-संपत्ति थी, उसमें सबसे मूल्यवान, सबसे प्रिय यही बिल्लौर का हार था।

लड़की का नाम जालपा था, माता का मानकी।

# दो

महाशय दीनदयाल प्रयाग के छोटे-से गांव में रहते थे। वह किसान न थे; पर खेती करते थे। वह जमींदार न थे; पर जमींदारी करते थे। थानेदार न थे; पर थानेदारी करते थे। वह थे जमींदार के मुख्तार। गांव पर उन्हीं की धाक थी। उनके पास चार चपरासी थे, एक घोड़ा, कई गाएं-भैंसें। वेतन कुल पांच रुपये पाते थे, जो उनके तंबाकू के खर्च को भी काफी न होता था। उनकी आय के और कौन से मार्ग थे, यह कौन जानता है। जालपा उन्हीं की लड़की थी। पहले उसके तीन भाई और थे; पर इस समय वह अकेली थी। उससे कोई पूछता—तेरे भाई क्या हुए, तो वह बड़ी सरलता से कहती—बड़ी दूर खेलने गए हैं। कहते हैं, मुख्तार साहब ने एक गरीब आदमी को इतना पिटवाया था कि वह मर गया था। उसके तीन वर्ष के अंदर तीनों लड़के जाते रहे। तब से बेचारे बहुत संभलकर चलते थे। फूंक-फूंककर पांव रखते, दूध के जले थे, छाछ भी फूंक-फूंककर पीते थे। माता और पिता के जीवन में और क्या अवलंब !

दीनदयाल जब कभी प्रयाग जाते, तो जालपा के लिए कोई-न-कोई आभूषण जरूर लाते। उनकी व्यावहारिक बुद्धि में यह विचार ही न आता था कि जालपा किसी और चीज से अधिक प्रसन्न हो सकती है। गुड़ियां और खिलौने वह व्यर्थ समझते थे; इसलिए जालपा आभूषणों से ही खेलती थी। यही उसके खिलौने थे। वह बिल्लौर का हार, जो उसने बिसाती से लिया था, अब उसका सबसे प्यारा खिलौना था। असली हार की अभिलाषा अभी उसके मन में उदय ही नहीं हुई थी। गांव में कोई उत्सव होता, या कोई त्योहार पड़ता, तो वह उसी हार को पहनती। कोई दूसरा गहना उसकी आंखों में जंचता ही न था।

एक दिन दीनदयाल लौटे, तो मानकी के लिए एक चन्द्रहार लाए। मानकी को यह साध बहुत दिनों से थी। यह हार पाकर वह मुग्ध हो गई।

जालपा को अब अपना हार अच्छा न लगता, पिता से बोली—बाबूजी, मुझे भी ऐसा ही हार ला दीजिए।

दीनदयाल ने मुस्कराकर कहा—ला दूंगा, बेटी !

'कब ला दीजिएगा?'

'बहुत जल्द।'

बाप के शब्दों से जालपा का मन न भरा। उसने माता से जाकर कहा—अम्मांजी, मुझे भी अपना-सा हार बनवा दो।

मां—वह तो बहुत रुपयों में बनेगा, बेटी !

जालपा—तुमने अपने लिए बनवाया है, मेरे लिए क्यों नहीं बनवातीं?

मां ने मुस्कराकर कहा—तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा।

यह हार छ: सौ में बना था। इतने रुपये जमा कर लेना, दीनदयाल के लिए आसान न था। ऐसे कौन बड़े ओहदेदार थे। बरसों में कहीं यह हार बनने की नौबत आई जीवन में फिर कभी इतने रुपये आयेंगे इसमें उन्हें संदेह था।

जालपा लजाकर भाग गई, पर यह शब्द उसके हृदय में अंकित हो गए। ससुराल उसके लिए अब उतनी भंयकर न थी। ससुराल से चन्द्रहार आएगा, वहां के लोग उसे माता-पिता से अधिक प्यार करेंगे। तभी तो जो चीज ये लोग नहीं बनवा सकते, वह वहां से आएगी।

लेकिन ससुराल से न आए तो ! —उसके सामने तीन लड़कियों के विवाह हो चुके थे, किसी की ससुराल से चन्द्रहार न आया था। कहीं उसकी ससुराल से भी न आया तो? उसने सोचा—तो क्या माताजी अपना हार मुझे दे देंगी? अवश्य दे देंगी।

इस तरह हंसते-खेलते सात वर्ष कट गए। और वह दिन भी आ गया जब, उसकी चिर-संचित अभिलाषा पूरी होगी।

## तीन

मुंशी दीनदयाल की जान-पहचान के आदमियों में एक महाशय दयानाथ थे, बड़े ही सज्जन और सहृदय। कचहरी में नौकर थे और पचास रुपये वेतन पाते थे। दीनदयाल अदालत के कीड़े थे। दयानाथ को उनसे सैकड़ों ही बार काम पड़ चुका था। चाहते. तो हजारों वसूल करते, पर कभी एक पैसे के भी रवादार नहीं हुए थे। कुछ दीनदयाल के साथ ही उनका यह सलूक न था—यह उनका स्वभाव था। यह बात भी न थी कि वह बहुत ऊंचे आदर्श के आदमी हों, पर रिश्वत न . . . मझते थे। शायद इसलिए कि वह अपनी आंखों से इसके कुफल देख चुके थे। किसी को जेल जाते देखा था, किसी को संतान से हाथ धोते, किसी को कुव्यसनों के पंजे मं फसते। एसी उन्हें कोई मिसाल न मिलती थी, जिसने रिश्वत लेकर चैन किया हो। उनकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि हराम की कमाई हराम ही में जाती है। यह बात वह कभी न भूलते।

इस जमाने में पचास रु० की भुगुत ही क्या। पाच आदमियों का पालन बड़ी मुश्किल से होता था। लड़के अच्छे कपड़ो को तरसते, स्त्री गहनों को तरसती, पर दयानाथ विचलित न होते थे। बड़ा लडका दो ही महीने तक कॉलेज में रहने के बाद पढ़ना छोड़ बैठा। पिता ने साफ कह दिया—मै तुम्हारी डिग्री के लिए सबको भूखा और नंगा नहीं रख सकता। पढ़ना चाहते हो, तो अपने पुरुषार्थ से पढ़ो। बहुतों ने किया है, तुम भी कर सकते हो, लेकिन रमानाथ में इतनी लगन न थी। इधर दो साल से वह बिल्कुल बेकार था। शतरंज खेलता, सैर-सपाटे करता और मां और छोटे भाइयो पर रोब जमाता। दोस्तों की बदौलत शौक पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर मांग लिया और शाम को हवा खाने निकल गए। किसी का पंप-शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बाध ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में। दस मित्रों ने एक-एक कपड़ा बनवा लिया, तो दस सूट बदलने का साधन हो गया। सहकारिता का यह बिल्कुल नया उपयोग था। इसी युवक को दीनदयाल ने जालपा के लिए पसंद किया। दयानाथ शादी नहीं करना चाहते थे। उनके पास न रुपये थे और न एक नए परिवार का भार उठाने की हिम्मत, पर जागेश्वरी ने त्रिया-हठ से काम लिया और इस शक्ति के सामने पुरुष को झुकना पड़ा। जागेश्वरी बरसों से पुत्र-वधू के लिए तड़प रही थी। जो उसके सामने बहुएं बनकर आईं, वे आज पोते खिला रही हैं, फिर उस दुखिया को कैसे धैर्य होता। वह कुछ-कुछ निराश हो चली थी। ईश्वर से मनाती थी कि कहीं से बात आए। दीनदयाल ने संदेश भेजा, तो उसको आंखें-सी मिल गईं। अगर कहीं यह शिकार हाथ से निकल गया, तो फिर न जाने कितने दिनों और राह देखनी पड़े। कोई यहां क्यों आने लगा। न धन ही है, न जायदाद। लड़के पर कौन रीझता है। लोग तो धन देखते हैं, इसलिए उसने इस अवसर पर सारी शक्ति लगा दी और उसकी विजय हुई।

दयानाथ ने कहा—भाई, तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मुझमें समाई नहीं है। जो आदमी अपने पेट की फिक्र नहीं कर सकता, उसका विवाह करना मुझे तो अधर्म-सा मालूम होता है। फिर रुपये की भी तो फिक्र है। एक हजार तो टीमटाम के लिए चाहिए, जोड़े और गहनों के लिए अलग। (कानों पर हाथ रखकर) ना बाबा ! यह बोझ मेरे मान का नहीं !

जागेश्वरी पर इन दलीलों का कोई असर न हुआ। बोली—वह भी तो कुछ देगा?

'मैं उससे मांगने तो जाऊंगा नहीं।'

'तुम्हारे मांगने की जरूरत ही न पड़ेगी। वह खुद ही देंगे। लड़की के ब्याह में पैसे का मुंह कोई नहीं देखता। हां, मकदूर चाहिए; सो दीनदयाल पोढ़े आदमी हैं। और फिर यही एक संतान है; बचाकर रखेंगे, तो किसके लिए?'

दयानाथ को अब कोई बात न सूझी, केवल यही कहा—वह चाहे लाख दे दें, चाहे एक न दें। मैं न कहूंगा कि दो, न कहूंगा कि मत दो। कर्ज मैं लेना नहीं चाहता और लूं, तो दूंगा किसके घर से।

जागेश्वरी ने इस बाधा को मानो हवा में उड़ाकर कहा—मुझे तो विश्वास है कि वह टीके में एक हजार से कम न देंगे। तुम्हारे टीमटाम के लिए इतना बहुत है। गहनों का प्रबंध किसी सर्राफ से कर लेना। टीके में एक हजार देंगे, तो क्या द्वार पर एक हजार भी न देंगे? वही रुपये सर्राफ को दे देना। दो-चार सौ बाकी रहे, वह धीरे-धीरे चुक जाएंगे। बच्चा के लिए कोई-न-कोई द्वार खुलेगा ही।

दयानाथ ने उपेक्षा-भाव से कहा—खुल चुका, जिसे शतरंज और सैर-सपाटे से फुसरत न मिले, उसे सभी द्वार बंद मिलेंगे।

जागेश्वरी को अपने विवाह की बात याद आई। दयानाथ भी तो गुलछर्रे उड़ाते थे, लेकिन उसके आते ही उन्हें चार पैसे कमाने की फिक्र कैसी सिर पर सवार हो गई थी। साल भर भी न बीतने पाया था कि नौकर हो गए। बोली—बहू आ जाएगी, तो उसकी आंखें भी खुलेंगी, देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेलें हैं। जुआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।

जब दयानाथ परास्त हो जाते थे, तो अखबार पढ़ने लगते थे। अपनी हार को छिपाने का उनके पास यही साधन था।

## चार

मुंशी दीनदयाल उन आदमियों में से थे, जो सीधों के साथ सीधे होते हैं, पर टेढ़ों के साथ टेढ़े ही नहीं, शैतान हो जाते हैं। दयानाथ बड़ा-सा मुंह खोलते, हजारों की बातचीत करते, तो दीनदयाल उन्हें ऐसा चकमा देते कि वह उम्र भर याद करते। दयानाथ की सज्जनता ने उन्हें वशीभूत कर लिया। उनका विचार एक हजार देने का था, पर एक हजार टीके ही में दे आए। मानकी ने कहा—जब टीके में एक हजार दिया, तो इतना ही घर पर भी देना पड़ेगा। आएगा कहां से?

दीनदयाल चिढ़कर बोले—भगवान् मालिक है। जब उन लोगों ने उदारता दिखाई और

लड़का मुझे सौंप दिया, तो मैं भी दिखा देना चाहता हूं कि हम भी शरीफ हैं और शील का मूल्य पहचानते हैं। अगर उन्होंने हेकड़ी जताई होती, तो अलबत्ता उनकी खबर लेता।

दीनदयाल एक हजार तो दे आए, पर दयानाथ का बोझ हल्का करने के बदले और भारी कर दिया। वह कर्ज से कोसों भागते थे। इस शादी में उन्होंने 'मियां की जूती मियां की चांद' वाली नीति निभाने की ठानी थी; पर दीनदयाल की सहृदयता ने उनका संयम तोड़ दिया। वे सारे टीमटाम, नाच-तमाशे, जिनकी कल्पना का उन्होंने गला घोंट दिया था, वृहद् रूप धारण करके उनके सामने आ गए। बंधा हुआ घोड़ा थान से खुल गया, उसे कौन रोक सकता है। धूमधाम से विवाह करने की ठन गई। पहले जोड़े-गहने को उन्होंने गौण समझ रखा था, अब वही सबसे मुख्य हो गया। ऐसा चढ़ाव हो कि मड़वे वाले देखकर फड़क उठें। सबकी आंखें खुल जाएं। कोई तीन हजार का सामान बनवा डाला। सर्राफ को एक हजार नगद मिल गए, एक हजार के लिए एक सप्ताह का वादा हुआ, तो उसने कोई आपत्ति न की। सोचा–दो हजार सीधे हुए जाते हैं, पांच-सात सौ रुपये रह जाएंगे, वह कहां जाते हैं। व्यापारी की लागत निकल आती है, तो नफे को तत्काल पाने के लिए आग्रह नहीं करता। फिर भी चन्द्रहार की कसर रह गई। जड़ाऊ चन्द्रहार एक हजार से नीचे अच्छा नहीं मिल सकता था। दयानाथ का जी तो लहराया कि लगे हाथ उसे भी ले लो, किसी को नाक सिकोड़ने की जगह तो न रहेगी; पर जागेश्वरी इस पर राजी न हुई।

बाजी पलट चुकी थी।

दयानाथ ने गर्म होकर कहा–तुम्हें क्या, तुम तो घर में बैठी रहोगी। मौत तो मेरी होगी, जब उधर के लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगेंगे।

जागेश्वरी– दोगे कहां से, कुछ सोचा है?

दयानाथ–कम-से-कम एक हजार तो वहां मिल ही जाएंगे।

जागेश्वरी–खून मुंह लग गया क्या?

दयानाथ ने शरमाकर कहा–नहीं-नहीं, मगर आखिर वहां से तो कुछ मिलेगा?

जागेश्वरी–वहां मिलेगा, तो वहां खर्च भी होगा। नाम जोड़े-गहने से नहीं होता, दान-दक्षिणा से होता है।

इस तरह चन्द्रहार का प्रस्ताव रद्द हो गया।

मगर दयानाथ दिखावे और नुमाइश को चाहे अनावश्यक समझें, रमानाथ उसे परमावश्यक समझता था। बरात ऐसे धूम से जानी चाहिए कि गांव-भर में शोर मच जाय। पहले दूल्हे के लिए पालकी का विचार था। रमानाथ ने मोटर पर जोर दिया। उसके मित्रों ने इसका अनुमोदन किया, प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। दयानाथ एकांतप्रिय जीव थे, न किसी से मित्रता थी, न किसी से मेल-जोल। रमानाथ मिलनसार युवक था, उसके मित्र ही इस समय हर एक काम में अग्रसर हो रहे थे। वे जो काम करते, दिल खोलकर। आतिशबाजियां बनवाईं, तो अव्वल दर्जे की। नाच ठीक किया, तो अव्वल दर्जे का, बाजे-गाजे भी अव्वल दर्जे के, दोयम या सोयम का वहां जिक्र ही न था। दयानाथ उसकी उच्छृंखलता देखकर चिंतित तो हो जाते थे; पर कुछ कह न सकते थे। क्या कहते!

# पांच

नाटक उस वक्त 'पास' होता है, जब रसिक-समाज उसे पंसद कर लेता है। बरात का नाटक उस वक्त पास होता है, जब राह चलते आदमी उसे पंसद कर लेते हैं। नाटक की परीक्षा चार-पांच घंटे तक होती रहती है, बरात की परीक्षा के लिए केवल इतने ही मिनटों का समय होता है। सारी सजावट, सारी दौड़-धूप और तैयारी का निबटारा पांच मिनटों में हो जाता है। अगर सबके मुंह से 'वाह-वाह' निकल गया, तो तमाशा पास; नहीं फेल ! रुपया, मेहनत, फिक्र, सब अकारथ। दयानाथ का तमाशा पास हो गया। शहर में वह तीसरे दर्जे में आता, गांव में अव्वल दर्जे में आया। कोई बाजों की धों-धों, पों-पों सुनकर मस्त हो रहा था, कोई मोटर को आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। कुछ लोग फुलवारियों के तख्त देखकर लोट-लोट जाते थे। आतिशबाजी ही मनोरंजन का केंद्र थी। हवाइयां जब सन्न से ऊपर जातीं और आकाश में लाल, हरे, नीले, पीले, कुमकुमे-से बिखर जाते; जब चर्खियां छूटतीं और उनमें नाचते हुए मोर निकल आते, तो लोग मंत्रमुग्ध-से हो जाते थे। वाह, क्या कारीगरी है !

जालपा के लिए इन चीजों में लेशमात्र भी आकर्षण न था। हां, वह वर को एक आंख देखना चाहती थी, वह भी सबसे छिपाकर; पर उस भीड़-भाड़ में ऐसा अवसर कहां। द्वारचार के समय उसकी सखियां उसे छत पर खींच ले गईं और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता, सारी मनोव्यथा मानो छू-मंतर हो गई थी। मुंह पर हर्ष की लालिमा छा गई। अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।

द्वारचार के बाद बरात जनवासे चली गई। भोजन की तैयारियां होने लगीं। किसी ने पूरियां खाईं, किसी ने उपलों पर खिचड़ी पकाई। देहात के तमाशा देखने वालों के मनोरंजन के लिए नाच-गाना होने लगा।

दस बजे सहसा फिर बाजे बजने लगे। मालूम हुआ कि चढ़ाव आ रहा है। बरात में हर एक रस्म डंके की चोट अदा होती है। दूल्हा कलेवा करने आ रहा है, बाजे बजने लगे। समधी मिलने आ रहा है, बाजे बजने लगे। चढ़ाव ज्योंही पहुंचा, घर में हलचल मच गई। स्त्री-पुरुष, बूढ़े-जवान, सब चढ़ाव देखने के लिए उत्सुक हो उठे। ज्योंही किश्तियां मंडप में पहुंचीं, लोग सब काम छोड़कर देखने दौड़े। आपस में धक्कम-धक्का होने लगा। मानकी प्यास से बेहाल हो रही थी, कंठ सूखा जाता था, चढ़ाव आते ही प्यास भाग गई। दीनदयाल मारे भूख-प्यास के निर्जीव-से पड़े थे; यह समाचार सुनते ही सचेत होकर दौड़े। मानकी एक-एक चीज को निकाल-निकालकर देखने और दिखाने लगी। वहां सभी इस कला के विशेषज्ञ थे। मर्दों ने गहने बनवाए थे, औरतों ने पहने थे, सभी आलोचना करने लगे। चूहेदन्ती कितनी सुंदर है, कोई दस तोले की होगी । वाह ! साढ़े ग्यारह तोले से रत्ती भर भी कम निकल जाए, तो कुछ हार जाऊं ! यह शेरदहां तो देखो, क्या हाथ की सफाई है ! जी चाहता है कारीगर के हाथ चूम लें। यह भी बारह तोले से कम न होगा। वाह ! कभी देखा भी है, सोलह तोले से कम निकल जाए, तो मुंह न दिखाऊं। हां, माल उतना चोखा नहीं है। यह कंगन तो देखो, बिल्कुल पक्की जड़ाई है, कितना बारीक काम है कि आंख नहीं ठहरती ! कैसा दमक रहा है। सच्चे नगीने हैं। झूठे नगीनों में यह आब कहां। चीज तो यह गुलूबंद है, कितने खूबसूरत फूल हैं ! और उनके बीच के हीरे कैसे चमक रहे हैं ! किसी बंगाली सुनार ने बनाया होगा। क्या बंगालियों ने कारीगरी का

ठेका ले लिया है, हमारे देश में एक-से-एक कारीगर पड़े हुए हैं। बंगाली सुनार बेचारे उनकी क्या बराबरी करेंगे।

इसी तरह एक-एक चीज की आलोचना होती रही। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या!

मानकी ने रोनी सूरत बनाकर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं आया।

एक महिला बोली—अरे, चन्द्रहार नहीं आया?

दीनदयाल ने गंभीर भाव से कहा—और सभी चीजें तो हैं, एक चन्द्रहार ही तो नहीं है।

उसी महिला ने मुंह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात ही और है!

मानकी ने चढ़ाव को सामने से हटाकर कहा—बेचारी के भाग में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।

इस गोलाकार जमघट के पीछे अंधेरे में आशा और आकांक्षा की मूर्ति-सी जालपा भी खड़ी थी। और सब गहनों के नाम कान में आते थे, चन्द्रहार का नाम न आता था। उसकी छाती धक-धक कर रही थी। चन्द्रहार नहीं है क्या? शायद सबके नीचे हो। इस तरह वह मन को समझाती रही। जब मालूम हो गया चन्द्रहार नहीं है तो उसके कलेजे पर चोट-सी लग गई। मालूम हुआ, देह में रक्त की बूंद भी नहीं है। मानो उसे मूर्च्छा आ जायगी। वह उन्माद की-सी दशा में अपने कमरे में आई और फूट-फूटकर रोने लगी। वह लालसा जो आज सात वर्ष हुए, उसके हृदय में अंकुरित हुई थी, जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खड़ी थी, उस पर वज्रपात हो गया। वह हरा-भरा लहलहाता हुआ पौधा जल गया—केवल उसकी राख रह गई। आज ही के दिन पर तो उसकी समस्त आशाएं अवलंबित थीं। दुर्दैव ने आज वह अवलंब भी छीन लिया। उस निराशा के आवेश में उसका ऐसा जी चाहने लगा कि अपना मुंह नोच डाले। उसका वश चलता, तो वह चढ़ाव को उठाकर आग में फेंक देती। कमरे में एक आले पर शिव की मूर्ति रक्खी हुई थी। उसने उसे उठाकर ऐसा पटका कि उसकी आशाओं की भांति वह भी चूर-चूर हो गई। उसने निश्चय किया, मैं कोई आभूषण न पहनूंगी। आभूषण पहनने से होता ही क्या है। जो रूप-विहीन हों, वे अपने को गहने से सजाएं, मुझे तो ईश्वर ने यों ही सुंदरी बनाया है, मैं गहने न पहनकर भी बुरी न लगूंगी। सस्ती चीजें उठा लाए, जिसमें रुपये खर्च होते थे, उसका नाम ही न लिया। अगर गिनती ही गिनानी थी, तो इतने ही दामों में इसके दूने गहने आ जाते!

वह इसी क्रोध में भरी बैठी थी कि उसकी तीन सखियां आकर खड़ी हो गईं। उन्होंने समझा था, जालपा को अभी चढ़ाव की कुछ खबर नहीं है। जालपा ने उन्हें देखते ही आंखें पोंछ डालीं और मुस्कराने लगी।

राधा मुस्कराकर बोली—जालपा, मालूम होता है, तूने बड़ी तपस्या की थी, ऐसा चढ़ाव मैंने आज तक नहीं देखा था। अब तो तेरी सब साध पूरी हो गई।

जालपा ने अपनी लंबी-लंबी पलकें उठाकर उसकी ओर ऐसे दीन नेत्रों से देखा, मानो जीवन में अब उसके लिए कोई आशा नहीं है—हां बहन, सब साध पूरी हो गई।

इन शब्दों में कितनी अपार मर्मांतक वेदना भरी हुई थी, इसका अनुमान तीनों युवतियों में कोई भी न कर सकी। तीनों कौतूहल से उसकी ओर ताकने लगीं, मानो उसका आशय उनकी समझ में न आया हो।

बासन्ती ने कहा—जी चाहता है, कारीगर के हाथ चूम लूं।

शहजादी बोली—चढ़ाव ऐसा ही होना चाहिए, कि देखने वाले फड़क उठें।

बासन्ती—तुम्हारी सास बड़ी चतुर जान पड़ती हैं, कोई चीज नहीं छोड़ी।

जालपा ने मुंह फेरकर कहा—ऐसा ही होगा।

राधा—और तो सब कुछ है, केवल चन्द्रहार नहीं है।

शहजादी—एक चन्द्रहार के न होने से क्या होता है बहन, उसकी जगह गुलूबंद तो है।

जालपा ने वक्रोक्ति के भाव से कहा—हां, देह में एक आंख के न होने से क्या होता है! और सब अंग होते ही हैं, आंखें हुई तो क्या, न हुई तो क्या!

बालकों के मुंह से गंभीर बातें सुनकर जैसे हमें हंसी आ जाती है, उसी तरह जालपा के मुंह से यह लालसा से भरी हुई बातें सुनकर राधा और बासन्ती अपनी हंसी न रोक सकीं। हां, शहजादी को हंसी न आई। यह आभूषण-लालसा उसके लिए हंसने की बात नहीं, रोने की बात थी। कृत्रिम सहानुभूति दिखाती हुई बोली—सब न-जाने कहां के जंगली हैं कि और सब चीजें तो लाए, चन्द्रहार न लाए, जो सब गहनों का राजा है। लाला अभी आते हैं तो पूछती हूं कि तुमने यह कहां की रीति निकाली है—ऐसा अनर्थ भी कोई करता है।

राधा और बासन्ती दिल में कांप रही थीं कि जालपा कहीं ताड़ न जाय। उनका वस चलता तो शहजादी का मुंह बंद कर देतीं, बार-बार उसे चुप रहने का इशारा कर रही थीं, मगर जालपा को शहजादी का यह व्यंग्य, संवेदना से परिपूर्ण जान पड़ा। सजल नेत्र होकर बोली—क्या करोगी पूछकर बहन, जो होना था सो हो गया!

शहजादी—तुम पूछने को कहती हो, मैं रुलाकर छोड़ूंगी। मेरे चढ़ाव पर कंगन नहीं आया था, उस वक्त मन ऐसा खट्टा हुआ कि सारे गहनों पर लात मार दूं। जब तक कंगन न बन गए, मैं नींद भर सोई नहीं।

राधा—तो क्या तुम जानती हो, जालपा का चन्द्रहार न बनेगा?

शहजादी—बनेगा तब बनेगा, इस अवसर पर तो नहीं बना। दस-पांच की चीज तो है नहीं, कि जब चाहा बनवा लिया, सैकड़ों का खर्च है, फिर कारीगर तो हमेशा अच्छे नहीं मिलते।

जालपा का भग्न हृदय शहजादी की इन बातों से मानो जी उठा, वह रुंधे कंठ से बोली—यही तो मैं भी सोचती हूं बहन, जब आज न मिला, तो फिर क्या मिलेगा!

राधा और बासन्ती मन-ही-मन शहजादी को कोस रही थीं, और थप्पड़ दिखा-दिखाकर धमका रही थीं, पर शहजादी को इस वक्त तमाशे का मजा आ रहा था। बोली—नहीं, यह बात नहीं है जल्ली, आग्रह करने से सब कुछ हो सकता है, सास-ससुर को बार-बार याद दिलाती रहना। बहनोईजी से दो-चार दिन रूठे रहने से भी बहुत कुछ काम निकल सकता है। बस यही समझ लो कि घरवाले चैन न लेने पाएं, यह बात हरदम उनके ध्यान में रहे। उन्हें मालूम हो जाय कि बिना चन्द्रहार बनवाए कुशल नहीं। तुम जरा भी ढीली पड़ीं और काम बिगड़ा।

राधा ने हंसी को रोकते हुए कहा—इनसे न बने तो तुम्हें बुला लें, क्यों? अब उठोगी कि सारी रात उपदेश ही करती रहोगी!

शहजादी—चलती हूं, ऐसी क्या भागड़ पड़ी है। हां, खूब याद आई, क्यों जल्ली, तेरी अम्मांजी के पास बड़ा अच्छा चन्द्रहार है। तुझे न देंगी?

जालपा ने एक लंबी सांस लेकर कहा—क्या कहूं बहन, मुझे तो आशा नहीं है।

शहजादी—एक बार कहकर देखो तो, अब उनके कौन पहनने-ओढ़ने के दिन बैठे हैं।

जालपा—मुझसे तो न कहा जायगा।

शहजादी—मैं कह दूंगी।

जालपा—नहीं-नहीं, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं। मैं जरा उनके मातृस्नेह की परीक्षा लेना चाहती हूं।

बासन्ती ने शहजादी का हाथ पकड़कर कहा—अब उठेगी भी कि यहां सारी रात उपदेश ही देती रहेगी।

शहजादी उठी, पर जालपा रास्ता रोककर खड़ी हो गई और बोली—नहीं, अभी बैठो बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं।

शहजादी—जब यह दोनों चुड़ैलें बैठने भी दें। मैं तो तुम्हें गुर सिखाती हूं, और यह दोनों मुझ पर झल्लाती हैं। सुन नहीं रही हो, मैं भी विष की गांठ हूं।

बासन्ती—विष की गांठ तो तू है ही।

शहजादी—तुम भी तो ससुराल से सालभर बाद आई हो, कौन-कौन-सी नई चीजें बनवा लाईं?

बासन्ती—और तुमने तीन साल में क्या बनवा लिया?

शहजादी—मेरी बात छोड़ो, मेरा खसम तो मेरी बात ही नहीं पूछता।

राधा—प्रेम के सामने गहनों का कोई मूल्य नहीं।

शहजादी—तो सूखा प्रेम तुम्हीं को फले।

इतने में मानकी ने आकर कहा—तुम तीनों यहां बैठी क्या कर रही हो, चलो वहां लोग खाना खाने आ रहे हैं।

तीनों युवतियां चली गईं। जालपा माता के गले में चन्द्रहार की शोभा देखकर मन-ही-मन सोचने लगी—गहनों से इनका जी अब तक नहीं भरा।

## छह

महाशय दयानाथ जितनी उमंगों से ब्याह करने गए थे, उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब दिया, लेकिन वहां से जो कुछ मिला, वह सब नाच-तमाशे, नेग-चार में खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे में इतने रुपये खर्च किए। इसकी जरूरत ही क्या थी, ज्यादा-से-ज्यादा लोग यही तो कहते—महाशय बड़े कृपण हैं। उतना सुन लेने में क्या हानि थी? मैंने गांव वालों को तमाशा दिखाने का ठीका तो नहीं लिया था। यह सब रमा का दुस्साहस है। उसी ने सारे खर्च बढ़ा-बढ़ाकर मेरा दिवाला निकाल दिया। और सब तकाजे तो दस-पांच दिन टल भी सकते थे, पर सर्राफ किसी तरह न मानता था। शादी के सातवें दिन उसे एक हजार रुपये देने का वादा था। सातवें दिन सर्राफ आया, मगर यहां रुपये कहां थे? दयानाथ में लल्लो-चप्पो की आदत न थी, मगर आज उन्होंने उसे चकमा देने की खूब कोशिश

की। किस्त बांधकर सब रुपये छः महीने में अदा कर देने का वादा किया। फिर तीन महीने पर आए; मगर सर्राफ भी एक ही घुटा हुआ आदमी था, उसी वक्त टला, जब दयानाथ ने तीसरे दिन बाकी रकम की चीजें लौटा देने का वादा किया और यह भी उसकी सज्जनता ही थी। वह तीसरा दिन भी आ गया, और अब दयानाथ को अपनी लाज रखने का कोई उपाय न सूझता था। कोई चलता हुआ आदमी शायद इतना व्यग्र न होता, हीले-हवाले करके महाजन को महीनों टालता रहता; लेकिन दयानाथ इस मामले में अनाड़ी थे।

जागेश्वरी ने आकर कहा—भोजन कब से बना ठंडा हो रहा है। खाकर तब बैठो।

दयानाथ ने इस तरह गर्दन उठाई, मानो सिर पर सैकड़ों मन का बोझ लदा हुआ है। बोले—तुम लोग जाकर खा लो, मुझे भूख नहीं है।

जागेश्वरी—भूख क्यों नहीं है, रात भी तो कुछ नहीं खाया था। इस तरह दाना-पानी छोड़ देने से महाजन के रुपये थोड़े ही अदा हो जाएंगे?

दयानाथ—मैं सोचता हूं, उसे आज क्या जवाब दूंगा? मैं तो यह विवाह करके बुरा फंस गया। बहू कुछ गहने लौटा तो देगी?

जागेश्वरी—बहू का हाल तो सुन चुके, फिर भी उससे ऐसी आशा रखते हो। उसकी टेक है कि जब तक चन्द्रहार न बन जायगा, कोई गहना ही न पहनूंगी। सारे गहने संदूक में बंद कर रखे हैं। बस, वही एक बिल्लौरी हार गले में डाले हुए है। बहुएं बहुत देखीं, पर ऐसी बहू न देखी थी। फिर कितना बुरा मालूम होता है कि कल की आई बहू, उससे गहने छीन लिए जाएं।

दयानाथ ने चिढ़कर कहा—तुम तो जले पर नमक छिड़कती हो। बुरा मालूम होता है तो लाओ एक हजार निकालकर दे दो, महाजन को दे आऊं, देती हो? बुरा मुझे खुद मालूम होता है, लेकिन उपाय क्या है? गला कैसे छूटेगा?

जागेश्वरी—बेटे का ब्याह किया है कि ठट्ठा है? शादी-ब्याह में सभी कर्ज लेते हैं, तुमने कोई नई बात नहीं की। खाने-पहनने के लिए कौन कर्ज लेता है। धर्मात्मा बनने का कुछ फल मिलना चाहिए या नहीं? तुम्हारे ही दर्जे पर सत्यदेव हैं, पक्का मकान खड़ा कर दिया, जमींदारी खरीद ली, बेटी के ब्याह में कुछ नहीं तो पांच हजार तो खर्च किए ही होंगे।

दयानाथ—जभी दोनों लड़के भी तो चल दिए।

जागेश्वरी—मरना-जीना तो संसार की गति है, लेते हैं, वह भी मरते हैं, नहीं लेते, वह भी मरते हैं। अगर तुम चाहो तो छः महीने में सब रुपये चुका सकते हो।

दयानाथ ने त्योरी चढ़ाकर कहा—जो बात जिंदगी-भर नहीं की, वह अब आखिरी वक्त नहीं कर सकता। बहू से साफ-साफ कह दो, उससे पर्दा रखने की जरूरत ही क्या है, और पर्दा [illegible] ही के दिन [illegible]ा है। आज नहीं तो कल सारा हाल मालूम ही हो जाएगा। बस तीन-चार चीजें लौटा दे, तो काम बन जाय। तुम उससे एक बार कहो तो।

जागेश्वरी ने झुंझलाकर बोली—उससे तुम्हीं कहो, मुझसे तो न कहा जायगा।

सहसा रमानाथ टेनिस-रैकेट लिए बाहर से आया। सफेद टेनिस शर्ट था, सफेद पतलून, कैनवस का जूता, गोरे रंग और सुंदर मुखाकृति पर इस पहनावे ने रईसों की शान पैदा कर दी थी। रूमाल में बेले के गजरे लिए हुए था। उससे सुगंध उड़ रही थी। माता-पिता की आंखें बचाकर वह जीने पर जाना चाहता था, कि जागेश्वरी ने टोका—इन्हीं के तो सब कांटे बोए हुए हैं, इनसे क्यों नहीं सलाह लेते? (रमा से) तुमने नाच-तमाशे में बारह-तेरह सौ रुपये उड़ा दिए,

बतलाओ सर्राफ को क्या जवाब दिया जाय? बड़ी मुश्किलों से कुछ गहने लौटाने पर राजी हुआ; मगर बहू से गहने मांगे कौन? यह सब तुम्हारी ही करतूत है।

रमानाथ ने इस आक्षेप को अपने ऊपर से हटाते हुए कहा—मैंने क्या खर्च किया? जो कुछ किया बाबूजी ने किया। हां, जो कुछ मुझसे कहा गया, वह मैंने किया।

रमानाथ के कथन में बहुत कुछ सत्य था। यदि दयानाथ की इच्छा न होती तो रमा क्या कर सकता था? जो कुछ हुआ उन्हीं की अनुमति से हुआ। रमानाथ पर इल्जाम रखने से तो कोई समस्या हल न हो सकती थी। बोले—मैं तुम्हें इल्जाम नहीं देता भाई। किया तो मैंने ही; मगर यह बला तो किसी तरह सिर से टालनी चाहिए। सर्राफ का तकाजा है। कल उसका आदमी आवेगा। उसे क्या जवाब दिया जाएगा ? मेरी समझ में तो यही एक उपाय है कि उतने रुपये के गहने उसे लौटा दिए जायं। गहने लौटा देने में भी वह झंझट करेगा; लेकिन दस-बीस रुपये के लोभ में लौटाने पर राजी हो जायगा। तुम्हारी क्या सलाह है?

रमानाथ ने शरमाते हुए कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूं; मगर मैं इतना कह सकता हूं कि इस प्रस्ताव को वह खुशी से मंजूर न करेगी। अम्मां तो जानती हैं कि चढ़ावे में चन्द्रहार न जाने से उसे कितना बुरा लगा था। प्रण कर लिया है, जब तक चन्द्रहार न बन जाएगा, कोई गहना न पहनूंगी।

जागेश्वरी ने अपने पक्ष का समर्थन होते देख, खुश होकर कहा—यही तो मैं इनसे कह रही हूं।

रमानाथ—रोना-धोना मच जायगा और इसके साथ घर का पर्दा भी खुल जायगा।

दयानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा—उससे पर्दा रखने की जरूरत ही क्या ! अपनी यथाथ स्थिति को वह जितनी ही जल्दी समझ ले, उतना ही अच्छा।

रमानाथ ने जवानों के स्वभाव के अनुसार जालपा से खूब जीट उड़ाई थी। खूब बढ़-बढ़कर बातें की थीं। जमींदारी है, उससे कई हजार का नफा है। बैंक में रुपये हैं, उनका सूद आता है। जालपा से अब अगर गहने की बात कही गई, तो रमानाथ को वह पूरा लबाड़िया समझेगी। बोला—पर्दा तो एक दिन खुल ही जायगा, पर इतनी जल्दी खोल देने का नतीजा यही होगा कि वह हमें नीच समझने लगेगी। शायद अपने घरवालों को भी लिख भेजे। चारों तरफ बदनामी होगी।

दयानाथ—हमने तो दीनदयाल से यह कभी न कहा था कि हम लखपती हैं।

रमानाथ—तो आपने यही कब कहा था कि हम उधार गहने लाए हैं और दो-चार दिन में लौटा देंगे ! आखिर यह सारा स्वांग अपनी धाक बैठाने के लिए ही किया था या कुछ और?

दयानाथ—तो फिर किसी दूसरे बहाने से मांगना पड़ेगा। बिना मांगे काम नहीं चल सकता। कल या तो रुपये देने पड़ेंगे, या गहने लौटाने पड़ेंगे। और कोई राह नहीं।

रमानाथ ने कोई जवाब न दिया। जागेश्वरी बोली—और कौन-सा बहाना किया जायगा? अगर कहा जाय, किसी को मंगनी देना है, तो शायद वह देगी नहीं। देगी भी तो दो-चार दिन में लौटाएंगे कैसे?

दयानाथ को एक उपाय सूझा। बोले—अगर उन गहनों के बदले मुलम्मे के गहने दे दिए जाएं? मगर तुरंत ही उन्हें ज्ञात हो गया कि यह लचर बात है, खुद ही उसका विरोध करते हुए कहा—हां, बाद मुलम्मा उड़ जायगा तो फिर लज्जित होना पड़ेगा। अक्ल कुछ काम नहीं करती।

मुझे तो यही सूझता है, यह सारी स्थिति उसे समझा दी जाय। जरा देर के लिए उसे दु:ख तो जरूर होगा; लेकिन आगे के वास्ते रास्ता साफ हो जाएगा।

संभव था, जैसा दयानाथ का विचार था, कि जालपा रो-धोकर शांत हो जायगी; पर रमा की इसमें किरकिरी होती थी। फिर वह मुंह न दिखा सकेगा। जब वह उससे कहेगी, तुम्हारी जमींदारी क्या हुई? बैंक के रुपये क्या हुए, तो उसे क्या जवाब देगा? विरक्त भाव से बोला—इसमें बेइज्जती के सिवा और कुछ न होगा। आप क्या सर्राफ को दो चार-छ: महीने नहीं टाल सकते? आप देना चाहें, तो इतने दिनों में हजार-बारह सौ रुपये बड़ी आसानी से दे सकते हैं।

दयानाथ ने पूछा—कैसे?

रमानाथ—उसी तरह जैसे आपके और भाई करते हैं।

दयानाथ—वह मुझसे नहीं हो सकता।

तीनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। दयानाथ ने अपना फैसला सुना दिया। जागेश्वरी और रमा को यह फैसला मंजूर न था। इसलिए अब इस गुत्थी के सुलझाने का भार उन्हीं दोनों पर था। जागेश्वरी ने भी एक तरह से निश्चय कर लिया था। दयानाथ को झख मारकर अपना नियम तोड़ना पड़ेगा। यह कहां की नीति है कि हमारे ऊपर संकट पड़ा हुआ हो और हम अपने नियमों का राग अलापे जायं? रमानाथ बुरी तरह फंसा था। वह खूब जानता था कि पिताजी ने जो काम कभी नहीं किया, वह आज न करेंगे। उन्हें जालपा से गहने मांगने में कोई संकोच न होगा और यही वह न चाहता था। वह पछता रहा था कि मैंने क्यों जालपा से डींगें मारीं। अब अपने मुंह की लाली रखने का सारा भार उसी पर था। जालपा की अनुपम छवि ने पहले ही दिन उस पर मोहिनी डाल दी थी। वह अपने सौभाग्य पर फूला न समाता था। क्या यह घर ऐसी अनन्य सुंदरी के योग्य था? जालपा के पिता पांच रुपये के नौकर थे; पर जालपा ने कभी अपने घर में झाडू न लगाई थी। कभी अपनी धोती न छांटी थी। अपना बिछावन न बिछाया था। यहां तक कि अपनी धोती की खोंच तक न सी थी। दयानाथ पचास रुपये पाते थे; पर यहां केवल चौका-बासन करने के लिए महरी थी। बाकी सारा काम अपने ही हाथों करना पड़ता था। जालपा शहर और देहात का फर्क क्या जाने! शहर में रहने का उसे कभी अवसर ही न पड़ा था। वह कई बार पति और सास से साश्चर्य पूछ चुकी थी, क्या यहां कोई नौकर नहीं है? जालपा के घर दूध-दही-घी की कमी नहीं थी। यहां बच्चों को भी दूध मयस्सर न था। इन सारे अभावों की पूर्ति के लिए रमानाथ के पास मीठी-मीठी बड़ी-बड़ी बातों के सिवा और क्या था। घर का किराया पांच रुपया था, रमानाथ ने पंद्रह बतलाए थे। लड़कों की शिक्षा का खर्च मुश्किल से दस रुपये था, रमानाथ ने चालीस बतलाए थे। उस समय उसे इसकी जरा भी शंका न थी, कि एक दिन सारा भंडा फूट जायगा। मिथ्या दूरदर्शी नहीं होता; लेकिन वह दिन इतनी जल्दी आयगा, यह कौन जानता था। अगर उसने ये डींगें न मारी होतीं; तो जागेश्वरी की तरह वह भी सारा भार दयानाथ पर छोड़कर निश्चिंत हो जाता; लेकिन इस वक्त वह अपने ही बनाए हुए जाल में फंस गया था। कैसे निकले!

उसने कितने ही उपाय सोचे; लेकिन कोई ऐसा न था, जो आगे चलकर उसे उलझनों में न डाल देता, दलदल में न फंसा देता। एकाएक उसे एक चाल सूझी। उसका दिल उछल पड़ा; पर इस बात को वह मुंह तक न ला सका। ओह! कितनी नीचता है! कितना कपट! कितनी निर्दयता! अपनी प्रेयसी के साथ ऐसी धूर्तता! उसके मन ने उसे धिक्कारा। अगर इस वक्त उसे

कोई एक हजार रुपया दे देता, तो वह उसका उम्रभर के लिए गुलाम हो जाता।

दयानाथ ने पूछा—कोई बात सूझी?

'मुझे तो कुछ नहीं सूझता।'

'कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा।'

'आप ही सोचिए, मुझे तो कुछ नहीं सूझता।'

'क्यों नहीं उससे दो-तीन गहने मांग लेते? तुम चाहो तो ले सकते हो, हमारे लिए मुश्किल है।'

'मुझे शर्म आती है।'

'तुम विचित्र आदमी हो, न खुद मांगोगे न मुझे मांगने दोगे, तो आखिर यह नाव कैसे चलेगी? मैं एक बार नहीं, हजार बार कह चुका कि मुझसे कोई आशा मत रक्खो। मैं अपने आखिरी दिन जेल में नहीं काट सकता। इसमें शर्म की क्या बात है, मेरी समझ में नहीं आता। किसके जीवन में ऐसे कुअवसर नहीं आते? तुम्हीं अपनी मां से पूछो।'

जागेश्वरी ने अनुमोदन किया—मुझसे तो नहीं देखा जाता था कि अपना आदमी चिंता में पड़ा रहे, मै गहने पहने बैठी रहूं। नहीं तो आज मेरे पास भी गहने न होते ? एक-एक करके सब निकल गए। विवाह में पांच हजार से कम का चढ़ाव नहीं गया था, मगर पांच ही साल में सब स्वाहा हो गया। तब से एक छल्ला बनवाना भी नसीब न हुआ।

दयानाथ जोर देकर बोले—शर्म करने का यह अवसर नहीं है। इन्हें मांगनापड़ेगा।

रमानाथ ने झेंपते हुए कहा—मैं मांग तो नहीं सकता, कहिए उठा लाऊं।

यह कहते-कहते लज्जा, क्षोभ और अपनी नीचता के ज्ञान से उसकी आंखें सजल हो गईं।

दयानाथ ने भौंचक्के होकर कहा—उठा लाओगे, उससे छिपाकर?

रमानाथ ने तीव्र कंठ से कहा—और आप क्या समझ रहे हैं?

दयानाथ ने माथे पर हाथ रख लिया, और एक क्षण के बाद आहत कंठ से बोले—नहीं, मैं ऐसा न करने दूंगा। मैंने जाल कभी नहीं किया, और न कभी करूंगा। वह भी अपनी बहू के साथ ! छि:-छि:, जो काम सीधे से चल सकता है, उसके लिए यह फरेब? कहीं उसकी निगाह पड़ गई, तो समझते हो, वह तुम्हें दिल में क्या समझेगी? मांग लेना इससे कहीं अच्छा है।

रमानाथ—आपको इससे क्या मतलब। मुझसे चीजें ले लीजिएगा, मगर जब आप जानते थे, यह नौबत आएगी, तो इतने जेवर ले जाने की जरूरत ही क्या थी ? व्यर्थ की विपत्ति मोल ली। इससे कई लाख गुना अच्छा था कि आसानी से जितना ले जा सकते, उतना ही ले जाते। उस भोजन से क्या लाभ कि पेट में पीड़ा होने लगे? मैं तो समझ रहा था कि आपने कोई मार्ग निकाल लिया होगा। मुझे क्या मालूम था कि आप मेरे सिर यह मुसीबतों की टोकरी पटक देंगे। वरना मैं उन चीजों को कभी न ले जाने देता।

दयानाथ कुछ लज्जित होकर बोले—इतने पर भी चन्द्रहार न होने से वहां हाय-तोबा मच गई।

रमानाथ—उस हाय-तोबा से हमारी क्या हानि हो सकती थी। जब इतना करने पर भी हाय-तोबा मच गई, तो मतलब भी तो न पूरा हुआ। उधर बदनामी हुई, इधर यह आफत सिर पर

आइ। मैं यह नहीं दिखाना चाहता कि हम इतने फटेहाल हैं। चोरी हो जाने पर तो सब्र करना ही पड़ेगा।

दयानाथ चुप हो गए। उस आवेश में रमा ने उन्हें खूब खरी-खरी सुनाई और वह चुपचाप सुनते रहे। आखिर जब न सुना गया, तो उठकर पुस्तकालय चले गए। यह उनका नित्य का नियम था। जब तक दो-चार पत्र-पत्रिकाएं न पढ़ लें, उन्हें खाना न हजम होता था। उसी सुरक्षित गढ़ी में पहुंचकर घर की चिंताओं और बाधाओं से उनकी जान बचती थी।

रमा भी वहां से उठा, पर जालपा के पास न जाकर अपने कमरे में गया। उसका कोई कमरा अलग तो था नहीं, एक ही मर्दाना कमरा था, इसी में दयानाथ अपने दोस्तों से गप-शप करते, दोनों लड़के पढ़ते और रमा मित्रों के साथ शतरंज खेलता। रमा कमरे में पहुंचा, तो दोनों लड़के ताश खेल रहे थे। गोपी का तेरहवां साल था, विश्वम्भर का नवां। दोनों रमा से थरथर कांपते थे। रमा खुद खूब ताश और शतरंज खेलता, पर भाइयों को खेलते देखकर हाथ में खुजली होने लगती थी। खुद चाहे दिनभर सैर-सपाटे किया करे; मगर क्या मजाल कि भाई कहीं घूमने निकल जायं। दयानाथ खुद लड़कों को कभी न मारते थे। अवसर मिलता, तो उनके साथ खेलते थे। उन्हें कनकौवे उड़ाते देखकर उनकी बाल-प्रकृति सजग हो जाती थी। दो-चार पेंच लड़ा देते। बच्चों के साथ कभी-कभी गुल्ली-डंडा भी खेलते थे। इसलिए लड़के जितना रमा से डरते, उतना ही पिता से प्रेम करते थे।

रमा को देखते ही लड़कों ने ताश को टाट के नीचे छिपा दिया और पढ़ने लगे। सिर झुकाए चपत की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर रमानाथ ने चपत नहीं लगाई, मोढ़े पर बैठकर गोपीनाथ से बोला—तुमने भंग की दुकान देखी है न, नुक्कड़ पर?

गोपीनाथ प्रसन्न होकर बोला—हां, देखी क्यों नहीं।

'जाकर चार पैसे का माजून ले लो। दौड़े हुए आना। हां, हलवाई की दुकान से आध सेर मिठाई भी लेते आना। यह रुपया लो।'

कोई पंद्रह मिनट में रमा ये दोनों चीजें ले, जालपा के कमरे की ओर चला।

## सात

रात के दस बज गए थे। जालपा खुली हुई छत पर लेटी हुई थी। जेठ की सुनहरी चांदनी में सामने फैले हुए नगर के कलश, गुंबद और वृक्ष स्वप्न-चित्रों से लगते थे। जालपा की आंखें चंद्रमा की ओर लगी हुई थीं। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मैं चंद्रमा की ओर उड़ी जा रही हूं। उसे अपनी नाक में खुश्की, आंखों में जलन और सिर में चक्कर मालूम हो रहा था। कोई बात ध्यान में आते ही भूल जाती, और बहुत याद करने पर भी याद न आती थी। एक बार घर की याद आ गई, रोने लगी। एक ही क्षण में सहेलियों की याद आ गई, हंसने लगी। सहसा रमानाथ हाथ में एक पोटली लिए, मुस्कराता हुआ आया और चारपाई पर बैठ गया।

जालपा ने उठकर पूछा—पोटली में क्या है?

रमानाथ—बूझ जाओ तो जानूं।

जालपा—हंसी का गोलगप्पा है। (यह कहकर हंसने लगी।)

रमानाथ—गलत।

जालपा—नींद की गठरी होगी।

रामनाथ—गलत।

जालपा—तो प्रेम की पिटारी होगी।

रमानाथ— ठीक। आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊंगा।

जालपा खिल उठी। रमा ने बड़े अनुराग से उसे फूलों के गहने पहनाने शुरू किए, फूलों के शीतल कोमल स्पर्श से जालपा के कोमल शरीर में गुदगुदी-सी होने लगी। उन्हीं फूलों की भांति उसका एक-एक रोम प्रफुल्लित हो गया।

रमा ने मुस्कराकर कहा—कुछ उपहार?

जालपा ने कुछ उत्तर न दिया। इस वेश में पति की ओर ताकते हुए भी उसे संकोच हुआ। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि जरा आईने में अपनी छवि देखे। सामने कमरे में लैंप जल रहा था, वह उठकर कमरे में गई और आईने के सामने खड़ी हो गई। नशे की तरंग में उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं सचमुच फूलों की देवी हूं। उसने पानदान उठा लिया और बाहर आकर पान बनाने लगी।

रमा को इस समय अपने कपट-व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। जालपा ने कमरे से लौटकर प्रेमोल्लसित नेत्रों से उसकी ओर देखा, तो उसने मुंह फेर लिया। उस सरल विश्वास से भरी हुई आंखों के सामने वह ताक न सका। उसने सोचा—मैं कितना बड़ा कायर हूं। क्या मैं बाबूजी को साफ-साफ जवाब न दे सकता था? मैंने हामी ही क्यों भरी? क्या जालपा से घर की दशा साफ-साफ कह देना मेरा कर्त्तव्य न था? उसकी आंखें भर आईं। जाकर मुंडेर के पास खड़ा हो गया। प्रणय के उस निर्मल प्रकाश में उसका मनोविकार किसी भंयकर जंतु की भांति घूरता हुआ जान पड़ता था। उसे अपने ऊपर इतनी घृणा हुई कि एक बार जी में आया, सारा कपट-व्यवहार खोल दूं, लेकिन संभल गया। कितना भयंकर परिणाम होगा। जालपा की नजरों से गिर जाने की कल्पना ही उसके लिए असह्य थी।

जालपा ने प्रेम-सरस नेत्रों से देखकर कहा—मेरे दादाजी तुम्हें देखकर गए और अम्मांजी से तुम्हारा बखान करने लगे, तो मैं सोचती थी कि तुम कैसे होगे। मेरे मन में तरह-तरह के चित्र आते थे।

रमानाथ ने एक लंबी सांस खींची। कुछ जवाब न दिया।

जालपा ने फिर कहा—मेरी सखियां तुम्हें देखकर मुग्ध हो गई। शहजादी तो खिड़की के सामने से हटती ही न थी। तुमसे बातें करने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जब तुम अंदर गए थे तो उसी ने तुम्हें पान के बीड़े दिए थे, याद है?

रमा ने कोई जवाब न दिया।

जालपा—अजी, वही जो रंग-रूप में सबसे अच्छी थी, जिसके गाल पर एक तिल था, तुमने उसकी ओर बड़े प्रेम से देखा था, बेचारी लाज के मारे गड़ गई थी। मुझसे कहने लगी, जीजा तो बड़े रसिक जान पड़ते हैं। सखियों ने उसे खूब चिढ़ाया, बेचारी रुआंसी हो गई। याद है?

रमा ने मानो नदी में डूबते हुए कहा—मुझे तो याद नहीं आता।

जालपा—अच्छा, अबकी चलोगे तो दिखा दूंगी। आज तुम बाजार की तरफ गए थे कि नहीं?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—आज तो फुरसत नहीं मिली।

जालपा—जाओ, मैं तुमसे न बोलूंगी ! रोज हीले-हवाले करते हो। अच्छा, कल ला दोगे न?

रमानाथ का कलेजा मसोस उठा। यह चन्द्रहार के लिए इतनी विकल हो रही है। इसे क्या मालूम कि दुर्भाग्य इसका सर्वस्व लूटने का सामान कर रहा है। जिस सरल बालिका पर उसे अपने प्राणों को न्योछावर करना चाहिए था, उसी का सर्वस्व अपहरण करने पर वह तुला हुआ है ! वह इतना व्यग्र हुआ, कि जी में आया, कोठे से कूदकर प्राणों का अंत कर दे।

आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा चोर की भांति एक वृक्ष की आड़ से झांक रहा था। जालपा पति के गले में हाथ डाले हुए निद्रा में मग्न थी। रमा मन में विकट संकल्प करके धीरे से उठा; पर निद्रा की गोद में सोए हुए पुष्प प्रदीप ने उसे अस्थिर कर दिया। वह एक क्षण खड़ा मुग्ध नेत्रों से जालपा के निद्रा-विहसित मुख की ओर देखता रहा। कमरे में जाने का साहस न हुआ। फिर लेट गया।

जालपा ने चौंककर पूछा—कहां जाते हो, क्या सबेरा हो गया?

रमानाथ—अभी तो बड़ी रात है।

जालपा—तो तुम बैठे क्यों हो?

रमानाथ—कुछ नहीं, जरा पानी पीने उठा था।

जालपा ने प्रेमातुर होकर रमा के गले में बांहें डाल दीं और उसे सुलाकर कहा—तुम इस तरह मुझ पर टोना करोगे, तो मैं भाग जाऊंगी। न जाने किस तरह ताकते हो, क्या करते हो, क्या मंत्र पढ़ते हो कि मेरा मन चंचल हो जाता है। बासन्ती सच कहती थी, पुरुषों की आंख में टोना होता है।

रमा ने फूटे हुए स्वर में कहा—टोना नहीं कर रहा हूं, आंखों की प्यास बुझा रहा हूं।

दोनों फिर सोए, एक उल्लास में डूबी हुई, दूसरा चिंता में मग्न।

तीन घंटे और गुजर गए। द्वादशी के चांद ने अपना विश्व-दीपक बुझा दिया। प्रभात की शीतल-समीर प्रकृति को मद के प्याले पिलाती फिरती थी। आधी रात तक जागने वाला बाजार भी सो गया। केवल रमा अभी तक जाग रहा था। मन में भांति-भांति के तर्क-वितर्क उठने के कारण वह बार-बार उठता था और फिर लेट जाता था। आखिर जब चार बजने की आवाज कान में आई, तो घबराकर उठ बैठा और कमरे में जा पहुंचा। गहनों का संदूकचा आल्मारी में रक्खा हुआ था; रमा ने उसे उठा लिया, और थरथर कांपता हुआ नीचे उतर गया। इस घबराहट में उसे इतना अवकाश न मिला कि वह कुछ गहने छांटकर निकाल लेता।

दयानाथ नीचे बरामदे में सो रहे थे। रमा ने उन्हें धीरे-से जगाया, उन्होंने हकबकाकर पूछा-कौन?

रमा ने होंठ पर उंगली रखकर कहा—मैं हूं। यह संदूकची लाया हूं। रख लीजिए।

दयानाथ सावधान होकर बैठ गए। अभी तक केवल उनकी आंखें जागी थीं, अब चेतना भी जाग्रत हो गई। रमा ने जिस वक्त उनसे गहने उठा लाने की बात कही थी, उन्होंने समझा था कि यह आवेश में ऐसा कह रहा है। उन्हें इसका विश्वास न आया था कि रमा जो कुछ कह रहा

है, उसे भी पूरा कर दिखाएगा। इन कमीनी चालों से वह अलग ही रहना चाहते थे। ऐसे कुत्सित कार्य में पुत्र से साठ-गांठ करना उनकी अंतरात्मा को किसी तरह स्वीकार न था। पूछा—इसे क्यों उठा लाए?

रमा ने धृष्टता से कहा—आप ही का तो हुक्म था!

दयानाथ—झूठ कहते हो।

रमानाथ—तो क्या फिर रख आऊं?

रमा के इस प्रश्न ने दयानाथ को घोर संकट में डाल दिया। झेंपते हुए बोले—अब क्या रख आओगे, कहीं देख ले, तो गजब ही हो जाए। वही काम करोगे, जिसमें जग-हंसाई हो। खड़े क्या हो, संदूकची मेरे बड़े संदूक में रख आओ और जाकर लेट रहो। कहीं जाग पड़े तो बस!

बरामदे के पीछे दयानाथ का कमरा था। उसमें एक देवदार का पुराना संदूक रखा था रमा ने सदूकची उसके अंदर रख दी और बड़ी फुर्ती से ऊपर चला गया। छत पर पहुंचकर उसने आहट ली, जालपा पिछले पहर की सुखद निद्रा में मग्न थी।

रमा ज्योंही चारपाई पर बैठा, जालपा चौंक पड़ी और उससे चिमट गई। रमा ने पूछा—क्या है, तुम चौक क्यों पड़ीं?

जालपा ने इधर-उधर प्रसन्न नेत्रों से ताककर कहा—कुछ नहीं, एक स्वप्न देख रही थी। तुम बैठे क्यों हो, कितनी रात है अभी?

रमा ने लेटते हुए कहा—सबेरा हो रहा है, क्या स्वप्न देखती थीं?

जालपा—जैसे कोई चोर मेरे गहनों की संदूकची उठाए लिए जाता हो।

रमा का हृदय इतने जोर से धक्-धक् करने लगा, मानो उस पर हथौड़े पड़ रहे हैं। खून सर्द हो गया। परंतु संदेह हुआ, कहीं इसने मुझे देख तो नहीं लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ा—चोर ! चोर !

नीचे बरामदे में दयानाथ भी चिल्ला उठे—चोर ! चोर !

जालपा घबड़ाकर उठी। दौड़ी हुई कमरे में गई, झटके से आलमारी खोली। संदूकची वहां न थी? मूर्छित होकर गिर पड़ी।

## आठ

सवेरा होते ही दयानाथ गहने लेकर सराफ के पास पहुंचे और हिसाब होने लगा। सराफ के पंद्रह सौ रु० आते थे; मगर वह केवल पंद्रह सौ रु० के गहने लेकर संतुष्ट न हुआ। बिके हुए गहनों को वह बट्टे पर ही ले सकता था। बिकी हुई चीज कौन वापस लेता है। जाकड़ पर दिए होते, तो दूसरी बात थी। इन चीजों का तो सौदा हो चुका था। उसने कुछ ऐसी व्यापारिक सिद्धांत की बातें कीं, दयानाथ को कुछ ऐसा शिकंजे में कसा कि बेचारे को हां-हां करने के सिवा और कुछ न सूझा। दफ्तर का बाबू चतुर दुकानदार से क्या पेश पात ? पंद्रह सौ रु० में पच्चीस सौ रु० के गहने भी चले गए, ऊपर से पचास रु० और बाकी रह गए। इस बात पर पिता-पुत्र में कई दिन खूब वाद-विवाद हुआ। दोनों एक दूसरे को दोषी ठहराते रहे। कई दिन आपस में बोलचाल बंद

रही, मगर इस चोरी का हाल गुप्त रखा गया। पुलिस को खबर हो जाती, तो भंडा फूट जाने का भय था। जालपा से यही कहा गया कि माल तो मिलेगा नहीं, व्यर्थ का झंझट भले ही होगा। जालपा ने भी सोचा, जब माल ही न मिलेगा, तो रपट व्यर्थ क्यों की जाय।

जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना कदाचित् संसार की और किसी वस्तु से न था, और उसमें आश्चर्य की कौन-सी बात थी। जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाए गए थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती, तो गहनों की ही चर्चा करती—तेरा दूल्हा तेरे लिए बड़े सुंदर गहने लाएगा। ठुमक-ठुमककर चलेगी।

जालपा पूछती—चांदी के होंगे कि सोने के, दादीजी?

दादी कहती—सोने के होंगे बेटी, चांदी के क्यों लाएगा? चांदी के लाए तो तुम उठाकर उसके मुंह पर पटक देना।

मानकी छेड़कर कहती—चांदी के तो लाएगा ही। सोने के उसे कहां मिले जाते हैं!

जालपा रोने लगती, इस बूढ़ी दादी, मानकी, घर की महरियां, पड़ोसिनें और दीनदयाल—सब हंसते। उन लोगों के लिए यह विनोद का अशेष भांडार था।

बालिका जब जरा और बड़ी हुई, तो गुड़ियों के ब्याह करने लगी। लड़के की ओर से चढ़ावे जाते, दुलहिन को गहने पहनाती, डोली में बैठाकर विदा करती, कभी-कभी दुलहिन गुड़िया अपने गुड्डे दूल्हे से गहनों के लिए मान करती, गुड्डा बेचारा कहीं-न-कहीं से गहने लाकर स्त्री को प्रसन्न करता था। उन्हीं दिनों बिसाती ने उसे वह चन्द्रहार दिया, जो अब तक उसके पास सुरक्षित था।

जरा और बड़ी हुई तो बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर गहनों की बातें सुनने लगी। महिलाओं के उस छोटे-से संसार में इसके सिवा और कोई चर्चा ही न थी। किसने कौन-कौन गहने बनवाए, कितने दाम लगे, ठोस हैं या पोले, जड़ाऊ हैं या सादे, किस लड़की के विवाह में कितने गहने आए—इन्हीं महत्त्वपूर्ण विषयों पर नित्य आलोचना-प्रत्यालोचना, टीका-टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक, इतना ग्राह्य हो ही नहीं सकता था।

इस आभूषण-मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण-प्रेम स्वाभाविक ही था। महीने भर से ऊपर हो गया। उसकी दशा ज्यों-की-त्यों है। न कुछ खाती-पीती है, न किसी से हंसती-बोलती है। खाट पर पड़ी हुई शून्य नेत्रों से शून्याकाश की ओर ताकती रहती है। सारा घर समझाकर हार गया, पड़ोसिनें समझाकर हार गईं, दीनदयाल आकर समझा गए, पर जालपा ने रोग-शय्या न छोड़ी। उसे अब घर में किसी पर विश्वास नहीं है, यहां तक कि रमा से भी उदासीन रहती है। वह समझती है, सारा घर मेरी उपेक्षा कर रहा है। सब-के-सब मेरे प्राण के ग्राहक हो रहे हैं। जब इनके पास इतना धन है, तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बनवाते? जिससे हम सबसे अधिक स्नेह रखते हैं, उसी पर सबसे अधिक रोष भी करते हैं। जालपा को सबसे अधिक क्रोध रमानाथ पर था। अगर यह अपने माता-पिता से जोर देकर कहते, तो कोई इनकी बात न टाल सकता, पर यह कुछ कहें भी? इनके मुंह में तो दही जमा हुआ है। मुझसे प्रेम होता, तो यों निश्चिंत न बैठे रहते। जब तक सारी चीजें न बनवा लेते, रात को नींद न आती। मुंह देखे की मुहब्बत है, मां-बाप से कैसे कहें, जाएंगे तो अपनी ही ओर, मैं कौन हूं!

वह रमा से केवल खिंची ही न रहती थी, वह कभी कुछ पूछता तो दो-चार जली-कटी सुना देती। बेचारा अपना-सा मुंह लेकर रह जाता! गरीब अपनी ही लगाई हुई आग में जला

जाता था। अगर वह जानता कि उन डींगों का यह फल होगा, तो वह जबान पर मुहर लगा लेता। चिंता और ग्लानि उसके हृदय को कुचले डालती थी। कहां सुबह से शाम तक हंसी कहकहे, सैर-सपाटे में कटते थे, कहां अब नौकरी की तलाश में ठोकरें खाता फिरता था। सारी मस्ती गायब हो गई। बार-बार अपने पिता पर क्रोध आता, यह चाहते तो दो-चार महीने में सब रुपये अदा हो जाते, मगर इन्हें क्या फिक्र ! मैं चाहे मर जाऊं पर यह अपनी टेक न छोड़ेंगे। उसके प्रेम से भरे हुए, निष्कपट हृदय में आग-सी सुलगती रहती थी। जालपा का मुरझाया हुआ मुख देखकर उसके मुंह से ठंडी सांस निकल जाती थी। वह सुखद प्रेम-स्वप्न इतनी जल्द भंग हो गया, क्या वे दिन फिर कभी आएंगे? तीन हजार के गहने कैसे बनेंगे? अगर नौकर भी हुआ, तो ऐसा कौन-सा बड़ा ओहदा मिल जाएगा? तीन हजार तो शायद तीन जन्म में भी न जमा हों ! वह कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहता था, जिसमें वह जल्द-से-जल्द अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाय। कहीं उसके नाम कोई लाटरी निकल आती ! फिर तो वह जालपा को आभूषणों से मढ़ देता। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाता। उसमें हीरे जड़े होते। अगर इस वक्त उसे जाली नोट बनाना आ जाता तो अवश्य बनाकर चला देता।

एक दिन वह शाम तक नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिरता रहा। शतरंज की बदौलत उसका कितने ही अच्छे-अच्छे आदमियों से परिचय था, लेकिन वह संकोच और डर के कारण किसी से अपनी स्थिति प्रकट न कर सकता था। यह भी जानता था कि यह मान-सम्मान उसी वक्त तक है जब तक किसी के समाने मदद के लिए हाथ नहीं फैलाता। यह आन टूटी, फिर कोई बात भी न पूछेगा। कोई ऐसा भलामानुस न दीखता था, जो कुछ बिना कहे ही जान जाए, और उसे कोई अच्छी-सी जगह दिला दे। आज उसका चित्त बहुत खिन्न था। मित्रों पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि एक-एक को फटकारे और आएं तो द्वार से दुत्कार दे। अब किसी ने शतरंज खेलने को बुलाया, तो ऐसी फटकार सुनाऊंगा कि बचा याद करें, मगर वह जरा गौर करता तो उसे मालूम हो जाता कि इस विषय में मित्रों का उतना दोष न था, जितना खुद उसका। कोई ऐसा मित्र न था, जिससे उसने बढ़-बढ़कर बातें न की हों। यह उसकी आदत थी। घर की असली दशा को वह सदैव बदनामी की तरह छिपाता रहा। और यह उसी का फल था कि इतने मित्रों के होते हुए भी वह बेकार था। वह किसी से अपनी मनोव्यथा न कह सकता था और मनोव्यथा सांस की भांति अंदर घुटकर असह्य हो जाती है। घर में आकर मुंह लटकाए हुए बैठ गया।

जागेश्वरी ने पानी लाकर रख दिया और पूछा—आज तुम दिनभर कहां रहे? लो हाथ-मुंह धो डालो।

रमा ने लोटा उठाया ही था कि जालपा ने आकर उग्र भाव से कहा—मुझे मेरे घर पहुंचा दो, इसी वक्त !

रमा ने लोटा रख दिया और उसकी ओर इस तरह ताकने लगा, मानो उसकी बात समझ में न आई हो।

जागेश्वरी बोली—भला इस तरह कहीं बहू-बेटियां विदा होती हैं ! कैसी बात कहती हो, बहू?

जालपा—मैं उन बहू-बेटियों में नहीं हूं। मेरा जिस वक्त जी चाहेगा, जाऊंगी, जिस वक्त जी चाहेगा, आऊंगी। मुझे किसी का डर नहीं है। जब यहां कोई मेरी बात नहीं पूछता, तो मैं भी किसी को अपना नहीं समझती। सारे दिन अनाथों की तरह पड़ी रहती हूं। कोई झांकता तक

नहीं। मैं चिड़िया नहीं हूं, जिसका पिंजड़ा दाना-पानी रखकर बंद कर दिया जाय। मैं भी आदमी हूं। अब इस घर में मैं क्षण-भर न रुकूंगी। अगर कोई मुझे भेजने न जायगा, तो अकेली चली जाऊंगी। राह में कोई भेड़िया नहीं बैठा है, जो मुझे उठा ले जाएगा और उठा भी ले जाए, तो क्या गम। यहां कौन-सा सुख भोग रही हूं।

रमा ने सावधान होकर कहा—आखिर कुछ मालूम भी तो हो, क्या बात हुई?

जालपा—बात कुछ नहीं हुई; अपना जी है। यहां नहीं रहना चाहती।

रमानाथ—भला इस तरह जाओगी तो तुम्हारे घरवाले क्या कहेंगे, कुछ यह भी तो सोचो !

जालपा—यह सब सोच चुकी हूं, और ज्यादा नहीं सोचना चाहती। मैं जाकर अपने कपड़े बांधती हूं और इसी गाड़ी से जाऊंगी।

यह कहकर जालपा ऊपर चली गई। रमा भी पीछे-पीछे यह सोचता हुआ चला, इसे कैसे शांत करूं।

जालपा अपने कमरे में जाकर बिस्तर लपेटने लगी कि रमा ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—तुम्हें मेरी कसम जो इस वक्त जाने का नाम लो !

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा—तुम्हारी कसम की हमें कुछ परवा नहीं है।

उसने अपना हाथ छुड़ा लिया और फिर बिछावन लपेटने लगी। रमा खिसियाना-सा होकर एक किनारे खड़ा हो गया। जालपा ने बिस्तरबंद से बिस्तरे को बांधा और फिर अपने संदूक को साफ करने लगी। मगर अब उसमें वह पहले-सी तत्परता न थी, बार-बार संदूक बंद करती और खोलती। वर्षा बंद हो चुकी थी, केवल छत पर रुका हुआ पानी टपक रहा था।

आखिर वह उसी बिस्तर के बंडल पर बैठ गई और बोली—तुमने मुझे कसम क्यों दिलाई।

रमा के हृदय में आशा की गुदगुदी हुई। बोला—इसके सिवा मेरे पास तुम्हें रोकने का और क्या साधन था?

जालपा—क्या तुम चाहते हो कि मैं यहीं घुट-घुटकर मर जाऊं?

रमानाथ—तुम ऐसे मनहूस शब्द क्यों मुंह से निकालती हो? मैं तो चलने को तैयार हूं, न मानोगी तो पहुंचाना ही पड़ेगा। जाओ, मेरा ईश्वर मालिक है, मगर कम-से-कम बाबूजी और अम्मां से पूछ लो।

बुझती हुई आग में तेल पड़ गया। जालपा तड़पकर बोली—वह मेरे कौन होते हैं, जो उनसे पूछूं ?

रमानाथ—कोई नहीं होते?

जालपा—कोई नहीं ! अगर कोई होते, तो मुझे यों न छोड़ देते। रुपये रखते हुए कोई अपने प्रियजनों का कष्ट नहीं देख सकता। ये लोग क्या मेरे आंसू न पोंछ सकते थे? मैं दिन-के दिन यहां पड़ी रहती हूं. कोई झूठों भी पूछता है? मुहल्ले की स्त्रियां मिलने आती हैं, कैसे मिलूं ? यह सूरत तो मुझसे नहीं दिखाई जाती। न कहीं आना न जाना, न किसी से बात न चीत, ऐसे कोई कै दिन रह सकता है? मुझे इन लोगों से अब कोई आशा नहीं रही। आखिर दो लड़के और भी तो हैं, उनके लिए भी कुछ जोड़ेंगे कि तुम्हीं को दे दें।

रमा को बड़ी-बड़ी बातें करने का फिर अवसर मिला। वह खुश था कि इतने दिनों के

बाद आज उसे प्रसन्न करने का मौका तो मिला। बोला–प्रिये, तम्हारा ख्याल बहुत ठीक है। जरूर यही बात है। नहीं तो ढाई-तीन हजार उनके लिए क्या बड़ी बात थी? पचासों हजार बैंक में जमा हैं, दफ्तर तो केवल दिल बहलाने जाते हैं।

जालपा–मगर हैं मक्खीचूस पल्ले सिरे के।

रमानाथ– मक्खीचूस न होते, तो इतनी संपत्ति कहां से आती।

जालपा– मुझे तो किसी की परवा नहीं है जी, हमारे घर किस बात की कमी है। दाल-रोटी वहां भी मिल जायगी। दो-चार सखी-सहेलियां हैं, खेत-खलिहान हैं, बाग-बगीचे हैं, जी बहलता रहेगा।

रमानाथ–और मेरी क्या दशा होगी, जानती हो? घुल-घुलकर मर जाऊंगा। जब से चोरी हुई, मेरे दिल पर जैसी गुजरती है, वह दिल ही जानता है। अम्मां और बाबूजी से एक बार नहीं, लाखों बार कहा, जोर देकर कहा कि दो-चार चीजें तो बनवा ही दीजिए, पर किसी के कान पर जूं तक न रेंगी। न जाने क्यों मुझसे आंखें फेर लीं।

जालपा–जब तुम्हारी नौकरी कहीं लग जाय, तो मुझे बुला लेना।

रमानाथ–तलाश कर रहा हूं। बहुत जल्द मिलने वाली है। हजारों बड़े-बड़े आदमियों से मुलकात है, नौकरी मिलते क्या देर लगती है, हां, जरा अच्छी जगह चाहता हूं।

जालपा–मैं इन लोगों का रुख समझती हूं। मैं भी यहां अब दावे के साथ रहूंगी। क्यों, किसी से नौकरी के लिए कहते नहीं हो?

रमानाथ–शर्म आती है किसी से कहते हुए।

जालपा–इसमें शर्म की कौन-सी बात है ? कहते शर्म आती हो, तो खत लिख दो।

रमा उछल पड़ा, कितना सरल उपाय था और अभी तक यह सीधी-सी बात उसे न सूझी थी। बोला–हां, यह तुमने बहुत अच्छी तरकीब बतलाई। कल जरूर लिखूंगा।

जालपा–मुझे पहुंचाकर आना तो लिखना। कल ही थोड़े लौट आओगे।

रमानाथ- तो क्या तुम सचमुच जाओगी? तब मुझे नौकरी मिल चुकी और मैं खत लिख चुका। इस वियोग के दुःख में बैठकर रोऊंगा कि नौकरी ढूंढूंगा। नहीं, इस वक्त जाने का विचार छोड़ो। नहीं, सच कहता हूं, मैं कहीं भाग जाऊंगा। मकान का हाल देख चुका। तुम्हारे सिवा और कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए यहां पड़ा सड़ा करूं। हटो तो जरा मैं बिस्तर खोल दूं।

जालपा ने बिस्तर पर से जरा खिसककर कहा–मैं बहुत जल्द चली आऊंगी। तुम गए और मैं आई।

रमा ने बिस्तर खोलते हुए कहा–जी नहीं, माफ कीजिए, इस धोखे में नहीं आता। तुम्हें क्या, तुम तो सहेलियों के साथ विहार करोगी, मेरी खबर तक न लोगी, और यहां मेरी जान पर बन आवेगी। इस घर में फिर कैसे क़दम रक्खा जायगा।

जलपा ने एहसान जताते हुए कहा–आपने मेरा बंधा-बंधाया बिस्तर खोल दिया, नहीं तो आज कितने आनंद से घर पहुंच जाती। शहजादी सच कहती थी, मर्द बड़े टोनहे होते हैं। मैंने आज पक्का इरादा कर लिया था कि चाहे ब्रह्मा भी उतर आएं, पर मैं न मानूंगी। पर तुमने दो ही मिनट में मेरे सारे मनसूबे चौपट कर दिए। कल खत लिखना जरूर। बिना कुछ पैदा किए अब निर्वाह नहीं है।

रमानाथ—कल नहीं, मैं इसी वक्त जाकर दो-तीन चिट्ठियां लिखता हूं।

जालपा—पान तो खाते जाओ।

रमानाथ ने पान खाया और मर्दाने कमरे में आकर खत लिखने बैठे।

मगर फिर कुछ सोचकर उठ खड़े हुए और एक तरफ को चल दिए। स्त्री का सप्रेम आग्रह पुरुष से क्या नहीं करा सकता।

## नौ

रमा के परिचितों में एक रमेश बाबू म्यूनिसिपल बोर्ड में हेड क्लर्क थे। उम्र तो चालीस के ऊपर थी; पर थे बड़े रसिक। शतरंज खेलने बैठ जाते, तो सवेरा कर देते। दफ्तर भी भूल जाते। न आगे नाथ न पीछे पगहा। जवानी में स्त्री मर गई थी, दूसरा विवाह नहीं किया। उस एकांत जीवन में सिवा विनोद के और क्या अवलंब था। चाहते तो हजारों के वारे-न्यारे करते, पर रिश्वत की कौड़ी भी हराम समझते थे। रमा से बड़ा स्नेह रखते थे। और कौन ऐसा निठल्ला था, जो रात-रात भर उनसे शतरंज खेलता। आज कई दिन से बेचारे बहुत व्याकुल हो रहे थे। शतरंज की एक बाजी भी न हुई। अखबार कहां तक पढ़ते। रमा इधर दो-एक बार आया अवश्य; पर बिसात पर न बैठा। रमेश बाबू ने मुहरे बिछा दिए। उसको पकड़कर बैठाया; पर वह बैठा नहीं। वह क्यों शतरंज खेलने लगा। बहू आई है, उसका मुंह देखेगा, उससे प्रेमालाप करेगा कि इस बूढ़े के साथ शतरंज खेलेगा ! कई बार जी में आया, उसे बुलवाएं; पर यह सोचकर कि वह क्यों आने लगा, रह गए। कहां जायं? सिनेमा ही देख आवें? किसी तरह समय तो कटे। सिनेमा से उन्हें बहुत प्रेम न था; पर इस वक्त उन्हें सिनेमा के सिवा और कुछ न सूझा। कपड़े पहने और जाना ही चाहते थे कि रमा ने कमरे में कदम रखा।

रमेश उसे देखते ही गेंद की तरह लुढ़ककर द्वार पर जा पहुंचे और उसका हाथ पकड़कर बोले—आइए, आइए बाबू रमानाथ साहब बहादुर ! तुम तो इस बुड्ढे को बिल्कुल भूल ही गए। हां भाई, अब क्यों आओगे? प्रेमिका की रसीली बातों का आनंद यहां कहां? चोरी का कुछ पता चला?

रमानाथ—कुछ भी नहीं।

रमेश—बहुत अच्छा हुआ, थाने में रपट नहीं लिखाई। नहीं सौ-दो सौ के मत्थे और जाते। बहू को तो बड़ा दु:ख हुआ होगा?

रमानाथ—कुछ पूछिए मत, तभी से दाना-पानी छोड़ रक्खा है? मैं तो तंग आ गया। जी में आता है, कहीं भाग जाऊं। बाबूजी सुनते नहीं।

रमेश—बाबूजी के पास क्या कारू का खजाना रक्खा हुआ है? अभी चार-पांच हजार खर्च किए हैं, फिर कहां से लाकर गहने बनवा दें? दस-बीस हजार रुपये होंगे, तो अभी तो बच्चे भी तो सामने हैं और नौकरी का भरोसा ही क्या। पचास रु० होता ही क्या है?

रमानाथ—मैं तो मुसीबत में फंस गया। अब मालूम होता है, कहीं नौकरी करनी पड़ेगी। चैन से खाते और मौज उड़ाते थे, नहीं तो बैठे-बैठाए इस मायाजाल में फंसे। अब बतलाइए, है

कहीं नौकरी-चाकरी का सहारा?

रमेश ने ताक पर से मुहरे और बिसात उतारते हुए कहा—आओ एक बाजी हो जाए, फिर इस मसले को सोचें। इसे जितना आसान समझ रहे हो, उतना आसान नहीं है। अच्छे-अच्छे धक्के खा रहे हैं।

रमानाथ—मेरा तो इस वक्त खेलने को जी नहीं चाहता। जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, मेरे होश ठिकाने नहीं होंगे।

रमेश बाबू ने शतरंज के मुहरे बिछाते हुए कहा—आओ बैठो। एक बार तो खेल लो, फिर सोचें, क्या हो सकता है।

रमानाथ—जरा भी जी नहीं चाहता, मैं जानता कि सिर मुड़ाते ही ओले पड़ेंगे, तो मैं विवाह के नजदीक ही न जाता।

रमेश—अजी, दो-चार चालें चलो तो आप-ही जी लग जायगा। जरा अक्ल की गांठ तो खुले।

बाजी शुरू हुई। कई मामूली चालों के बाद रमेश बाबू ने रमा का रुख पीट लिया।

रमानाथ—ओह, क्या गलती हुई।

रमेश बाबू की आंखों में नशे की-सी लाली छाने लगी। शतरंज उनके लिए शराब से कम मादक न था। बोले—बोहनी तो अच्छी हुई। तुम्हारे लिए मैं एक जगह सोच रहा हूं। मगर वेतन बहुत कम है, केवल तीस रुपये। वह रंगी दाढ़ी वाले खां साहब नही हैं, उनसे काम नहीं होता। कई बार बचा चुका हूं। सोचता था, जब तक किसी तरह काम चले, बने रहें। बाल-बच्चे वाले आदमी हैं। वह तो कई बार कह चुके हैं, मुझे छुट्टी दीजिए। तुम्हारे लायक तो वह जगह नहीं है, चाहो तो कर लो।

यह कहते-कहते रमा का फीला मार लिया।

रमा ने फीले को फिर उठाने की चेष्टा करके कहा—आप मुझे बातों में लगाकर मेरे मुहरे उड़ाते जाते हैं, इसकी सनद नहीं, लाओ मेरा फीला।

रमेश—देखो भाई, बेईमानी मत करो। मैंने तुम्हारा फीला जबरदस्ती तो नहीं उठाया। हां, तो तुम्हें वह जगह मंजूर है?

रमानाथ—वेतन तो तीस है।

रमेश—हां, वेतन तो कम है, मगर शायद आगे चलकर बढ़ जाय। मेरी तो राय है, कर लो।

रमानाथ—अच्छी बात है, आपकी सलाह है तो कर लूंगा।

रमेश—जगह आमदनी की है। मियां ने तो उसी जगह पर रहते हुए लड़कों को एम॰ ए॰, एल॰ एल॰ बी॰ करा लिया। दो कॉलेज में पढ़ते हैं। लड़कियों की शादियां अच्छे घरों में कीं। हां, जरा समझ-बूझकर काम करने की जरूरत है।

रमानाथ—आमदनी की मुझे परवा नहीं, रिश्वत कोई अच्छी चीज तो है नहीं।

रमेश—बहुत खराब, मगर बाल-बच्चों के आदमी क्या करें। तीस रुपयों में गुजर नहीं हो सकती। मैं अकेला आदमी हूं। मेरे लिए डेढ़ सौ काफी हैं। कुछ बचा भी लेता हूं, लेकिन जिस घर में बहुत से आदमी हों, लड़कों की पढ़ाई हो, लड़कियों की शादियां हों, वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे-छोटे आदमियों का वेतन इतना न हो जाएगा कि वह भलमनसी के साथ निर्वाह कर सकें, तब तक रिश्वत बंद न होगी। यही रोटी-दाल, घी-दूध तो वह भी

खाते हैं। फिर एक को तीस रुपये और दूसरे को तीन सौ रुपये क्यों देते हो?

रमा का फर्जी पिट गया, रमेश बाबू ने बड़े जोर से कहकहा मारा।

रमा ने रोष के साथ कहा—अगर आप चुपचाप खेलते हैं तो खेलिए, नहीं मैं जाता हूं। मुझे बातों में लगाकर सारे मुहरे उड़ा लिए!

रमेश—अच्छा साहब, अब बोलूं तो जबान पकड़ लीजिए। यह लीजिए शह! तो तुम कल अर्जी दे दो। उम्मीद तो है, तुम्हें यह जगह मिल जाएगी; मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेलना होगा।

रमानाथ—आप तो दो ही मातों में रोने लगते हैं।

रमेश—अजी वह दिन गए, जब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल चन्द्रमा बलवान हैं। इधर मैंने एक मंत्र सिद्ध किया है। क्या मजाल कि कोई मात दे सके। फिर शह!

रमानाथ—जी तो चाहता है, दूसरी बाजी मात देकर जाऊं, मगर देर होगी।

रमेश—देर क्या होगी। अभी तो नौ बजे हैं। खेल लो, दिल का अरमान निकल जाय। यह शह और मात!

रमानाथ—अच्छा कल की रही। कल ललकार कर पांच मातें न दी हों तो कहिएगा।

रमेश—अजी जाओ भी, तुम मुझे क्या मात दोगे! हिम्मत हो, तो अभी सही!

रमानाथ—अच्छा आइए, आप भी क्या कहेंगे, मगर मैं पांच बाजियों से कम न खेलूंगा!

रमेश—पांच नहीं, तुम दस खेलो जी। रात तो अपनी है। तो चलो फिर खाना खा लें। तब निश्चिंत होकर बैठें। तुम्हारे घर कहलाए देता हूं कि आज यहीं सोएंगे, इंतजार न करें।

दोनों ने भोजन किया और फिर शतरंज पर बैठे। पहली बाजी में ग्यारह बज गए। रमेश बाबू की जीत रही। दूसरी बाजी भी उन्हीं के हाथ रही। तीसरी बाजी खत्म हुई तो दो बज गए।

रमानाथ—अब तो मुझे नींद आ रही है।

रमेश—तो मुंह धो डालो, बरफ रक्खी हुई है। मैं पांच बाजियां खेले बगैर सोने न दूंगा।

रमेश बाबू को यह विश्वास हो रहा था कि आज मेरा सितारा बुलंद है। नही तो रमा को लगातार तीन मात देना आसान न था। वह समझ गए थे, इस वक्त चाहे जितनी बाजियां खेलूं, जीत मेरी ही होगी, मगर जब चौथी बाजी हार गए, तो यह विश्वास जाता रहा। उलटे यह भय हुआ कि कहीं लगातार हारता न जाऊं। बोले—अब तो सोना चाहिए।

रमानाथ—क्यों, पांच बाजियां पूरी न कर लीजिए?

रमेश—कल दफ्तर भी तो जाना है।

रमा ने अधिक आग्रह न किया। दोनों सोए।

रमा यों ही आठ बजे से पहले न उठता था, फिर आज तो तीन बजे सोया था। आज तो उसे दस बजे तक सोने का अधिकार था। रमेश नियमानुसार पांच बजे उठ बैठे, स्नान किया, संध्या की, घूमने गए और आठ बजे लौटे, मगर रमा तब तक सोता ही रहा। आखिर जब साढ़े नौ बज गए तो उन्होंने उसे जगाया।

रमा ने बिगड़कर कहा—नाहक जगा दिया, कैसी मजे की नींद आ रही थी।

रमेश—अजी वह अर्जी देना है कि नहीं तुमको?

रमानाथ—आप दे दीजिएगा।

रमेश—और जो कहीं साहब ने बुलाया, तो मैं ही चला जाऊंगा?

रमानाथ—ऊंह, जो चाहे कीजिएगा, मैं तो सोता हूं।

रमा फिर लेट गया और रमेश ने भोजन किया, कपड़े पहने और दफ्तर चलने को तैयार हुए। उसी वक्त रमानाथ हड़बड़ाकर उठा और आंखें मलता हुआ बोला—मैं भी चलूंगा।

रमेश—अरे मुंह-हाथ तो धो ले, भले आदमी !

रमानाथ—आप तो चले जा रहे हैं।

रमेश—नहीं, अभी पंद्रह-बीस मिनट तक रुक सकता हूं, तैयार हो जाओ।

रमानाथ—मैं तैयार हूं। वहां से लौटकर घर भोजन करूंगा।

रमेश—कहता तो हूं, अभी आध घंटे तक रुका हुआ हूं।

रमा ने एक मिनट में मुंह धोया, पांच मिनट में भोजन किया और चटपट रमेश के साथ दफ्तर चला।

रास्ते में रमेश ने मुस्कराकर कहा—घर क्या बहाना करोगे, कुछ सोच रक्खा है?

रमानाथ—कह दूंगा, रमेश बाबू ने आने नहीं दिया।

रमेश—मुझे गालियां दिलाओगे और क्या। फिर कभी न आने पाओगे।

रमानाथ—ऐसा स्त्री-भक्त नहीं हूं। हां, यह तो बताइए, मुझे अर्जी लेकर तो साहब के पास न जाना पड़ेगा?

रमेश- और क्या तुम समझते हो, घर बैठे जगह मिल जायगी? महीनों दौड़ना पड़ेगा, महीनों ! बीसियों सिफारिशें लानी पड़ेंगी। सुबह-शाम हाजिरी देनी पड़ेगी। क्या नौकरी मिलना आसान है?

रमानाथ—तो मैं ऐसी नौकरी से बाज आया। मुझे तो अर्जी लेकर जाते ही शर्म आती है। खुशामदें कौन करेगा? पहले मुझे क्लर्कों पर बड़ी हंसी आती थी; मगर वही बला मेरे सिर पड़ी। साहब डांट-वांट तो न बताएंगे?

रमेश—बुरी तरह डांटता है, लोग उसके सामने जाते हुए कांपते हैं।

रमानाथ—तो फिर मैं घर जाता हूं। यह सब मुझसे न बरदाश्त होगा।

रमेश—पहले सब ऐसे ही घबराते हैं, मगर सहते-सहते आदत पड़ जाती है। तुम्हारा दिल धड़क रहा होगा कि न जाने कैसी बीतेगी। जब मैं नौकर हुआ, तो तुम्हारी ही उम्र मेरी भी थी, और शादी हुए तीन ही महीने हुए थे। जिस दिन मेरी पेशी होने वाली थी, ऐसा घबराया हुआ था मानो फांसी पाने जा रहा हूं, मगर तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं है। मैं सब ठीक कर दूंगा।

रमानाथ—आपको तो बीस-बाईस साल नौकरी करते हो गए होंगे !

रमेश—पूरे पच्चीस हो गए, साहब ! बीस बरस तो स्त्री का देहांत हुए हो गए। दस रुपये पर नौकर हुआ था !

रमानाथ—आपने दूसरी शादी क्यों नहीं की? तब तो आपकी उम्र पच्चीस से ज्यादा न रही होगी।

रमेश ने हंसकर कहा—बरफी खाने के बाद गुड़ खाने को किसका जी चाहता है? महल का सुख भोगने के बाद झोंपड़ा किसे अच्छा लगता है? प्रेम आत्मा को तृप्त कर देता है। तुम तो मुझे जानते हो, अब तो बूढ़ा हो गया हूं; लेकिन मैं तुमसे सच कहता हूं, इस विधुर-जीवन में मैंने किसी स्त्री की ओर आंख तक नहीं उठाई। कितनी ही सुंदरियां देखीं, कई बार लोगों ने

विवाह के लिए घेरा भी; लेकिन कभी इच्छा ही न हुई। उस प्रेम की मधुर स्मृतियों में मेरे प्रेम का सजीव आनंद भरा हुआ है।

यों बातें करते हुए, दोनों आदमी दफ्तर पहुंच गए।

## दस

रमा दफ्तर से घर पहुंचा, तो चार बज रहे थे। वह दफ्तर ही में था कि आसमान पर बादल घिर आए। पानी आया ही चाहता था; पर रमा को घर पहुंचने की इतनी बेचैनी हो रही थी कि उससे रुका न गया। हाते के बाहर भी न निकलने पाया था कि जोर की वर्षा होने लगी। आषाढ़ का पहला पानी था, एक ही क्षण में वह लथपथ हो गया। फिर भी वह कहीं रुका नहीं। नौकरी मिल जाने का शुभ समाचार सुनाने का आनंद इस दौंगड़े की क्या परवाह कर सकता था? वेतन तो केवल तीस ही रुपये थे, पर जगह आमदनी की थी। उसने मन-ही-मन हिसाब लगा लिया था कि कितना मासिक बचत हो जाने से वह जालपा के लिए चन्द्रहार बनवा सकेगा। अगर पचास-साठ रुपये महीने भी बच जायं, तो पांच साल में जालपा गहनों से लद जाएगी। कौन-सा आभूषण कितने का होगा, इसका भी उसने अनुमान कर लिया था। घर पहुंचकर उसने कपड़े भी न उतारे, लथपथ जालपा के कमरे में पहुंच गया।

जालपा उसे देखते ही बोली—यह भीग कहां गए, रात कहां गायब थे?

रमानाथ—इसी नौकरी की फिक्र में पड़ा हुआ हूं। इस वक्त दफ्तर से चला आता हूं। म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर में मुझे एक जगह मिल गई।

जालपा ने उछलकर पूछा—सच ! कितने की जगह है?

रमा को ठीक-ठीक बतलाने में संकोच हुआ। तीस की नौकरी बताना अपमान की बात थी। स्त्री के नेत्रों में तुच्छ बनना कौन चाहता है। बोला—अभी तो चलीस मिलेंगे, पर जल्द तरक्की होगी। जगह आमदनी की है।

जालपा ने उसके लिए किसी बड़े पद की कल्पना कर रक्खी थी। बोली—चालीस में क्या होगा? भला साठ-सत्तर तो होते !

रमानाथ—मिल तो सकती थी सौ रुपये की भी, पर यहां रौब है, और आराम है। पचास-साठ रुपये उपर से मिल जाएंगे।

जालपा—तो तुम घूस लोगे, गरीबों का गला काटोगे?

रमा ने हंसकर कहा—नहीं प्रिये, वह जगह ऐसी नहीं कि गरीबों का गला काटना पड़े। बड़े-बड़े महाजनों से रकमें मिलेंगी और वह खुशी से गले लगावेंगे। मैं जिसे चाहूं दिनभर दफ्तर में खड़ा रक्खूं। महाजनों का एक-एक मिनट एक-एक अशरफी के बराबर है। जल्द-से-जल्द अपना काम कराने के लिए वे खुशामद भी करेंगे, पैसे भी देंगे।

जालपा संतुष्ट हो गई, बोली—हां, तब ठीक है। गरीबों का काम यों ही कर देना।

रमानाथ—वह तो करूंगा ही।

जालपा—अभी अम्मांजी से तो नहीं कहा? जाकर कह आओ। मुझे तो सबसे बड़ी खुशी

यही है कि अब मालूम होगा कि यहां मेरा भी कोई अधिकार है।

रमानाथ—हां, जाता हूं; मगर उनसे तो मैं बीस ही बतलाऊंगा।

जालपा ने उल्लसित होकर कहा—हां जी, बल्कि पंद्रह ही कहना, ऊपर की आमदनी की तो चर्चा ही करना व्यर्थ है। भीतर का हिसाब वे ले सकते हैं। मैं सबसे पहले चन्द्रहार बनवाऊंगी।

इतने में डाकिए ने पुकारा। रमा ने दरवाजे पर जाकर देखा, तो उसके नाम एक पार्सल आया था। महाशय दीनदयाल ने भेजा था। लेकर खुश-खुश घर में आए और जालपा के हाथों में रखकर बोले—तुम्हारे घर से आया है, देखो इसमें क्या है?

रमा ने चटपट कैंची निकाली और पार्सल खोला। उसमें देवदार की एक डिबिया निकली। उसमें एक चन्द्रहार रक्खा हुआ था। रमा ने उसे निकालकर देखा और हंसकर बोला—ईश्वर ने तुम्हारी सुन ली, चीज तो बहुत अच्छी मालूम होती है।

जालपा ने कुंठित स्वर में कहा—अम्मांजी को यह क्या सूझी, यह तो उन्हीं का हार है। मैं तो इसे न लूंगी। अभी डाक का वक्त हो तो लौटा दो।

रमा ने विस्मित होकर कहा—लौटाने की क्या जरूरत है, वह नाराज न होंगी?

जालपा ने नाक सिकोड़कर कहा—मेरी बला से, रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी। मैं उनकी दया के बिना भी जीती रह सकती हूं। आज इतने दिनों के बाद उन्हें मुझ पर दया आई है। उस वक्त दया न आई थी, जब मै उनके घर से बिदा हुई थी। उनके गहने उन्हें मुबारक हों। मैं किसी का एहसान नहीं लेना चाहती। अभी उनके ओढ़ने-पहनने के दिन हैं। मैं क्यों बाधक बनूं। तुम कुशल से रहोगे, तो मुझे बहुत गहने मिल जाएंगे। मैं अम्मांजी को यह दिखाना चाहती हूं कि जालपा तुम्हारे गहनों की भूखी नहीं है।

रमा ने संतोष देते हुए कहा—मेरी समझ में तो तुम्हें हार रख लेना चाहिए। सोचो, उन्हें कितना दु:ख होगा। बिदाई के समय यदि न दिया तो, तो अच्छा ही किया। नहीं तो और गहनों के साथ यह भी चला जाता।

जालपा—मैं इसे लूंगी नहीं, यह निश्चय है।

रमानाथ—आखिर क्यों?

जालपा—मेरी इच्छा!

रमानाथ—इस इच्छा का कोई कारण भी तो होगा?

जालपा रुंधे हुए स्वर में बोली—कारण यही है कि अम्मांजी इसे खुशी से नहीं दे रही हैं, बहुत संभव है कि इसे भेजते समय वह रोई भी हों और इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि इसे वापस पाकर उन्हें सच्चा आनंद होगा। देने वाले का हृदय देखना चाहिए। प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दें, तो मैं दोनों हाथों से ले लूं। जब दिल पर जब्र करके दुनिया की लाज से या किसी के धिक्कारने से दिया, तो क्या दिया। दान भिखारिनियों को दिया जाता है। मैं किसी का दान न लूंगी, चाहे वह माता ही क्यों न हों।

माता के प्रति जालपा का यह द्वेष देखकर रमा और कुछ न कह सका। द्वेष तर्क और प्रमाण नहीं सुनता। रमा ने हार ले लिया और चारपाई से उठता हुआ बोला—जरा अम्मां और बाबू जी को तो दिखा दूं। कम-से-कम उनसे पूछ तो लेना ही चाहिए।

जालपा ने हार उसके हाथ से छीन लिया और बोली—वे लोग मेरे कौन होते हैं, जो मैं

उनसे पूछूं ? केवल एक घर में रहने का नाता है। जब वह मुझे कुछ नहीं समझते, तो मैं भी उन्हें कुछ नहीं समझती।

यह कहते हुए उसने हार को उसी डिब्बे में रख दिया, और उस पर कपड़ा लपेटकर सीने लगी। रमा ने एक बार डरते-डरते फिर कहा--ऐसी जल्दी क्या है, दस-पांच दिन में लौटा देना। उन लोगों की भी खातिर हो जाएगी।

इस पर जालपा ने कठोर नेत्रों से देखकर कहा--जब तक मैं इसे लौटा न दूंगी, मेरे दिल को चैन न आएगा। मेरे हृदय में कांटा सा खटकता रहेगा। अभी पार्सल तैयार हुआ जाता है, हाल ही लौटा दो।

एक क्षण में पार्सल तैयार हो गया और रमा उसे लिए हुए चिंतित भाव से नीचे चला।

## ग्यारह

महाशय दयानाथ को जब रमा के नौकर हो जाने का हाल मालूम हुआ, तो बहुत खुश हुए। विवाह होते ही वह इतनी जल्द चेतेगा इसकी उन्हें आशा न थी। बोले--जगह तो अच्छी है। ईमानदारी से काम करोगे, तो किसी अच्छे पद पर पहुंच जाओगे। मेरा यही उपदेश है कि पराए पैसे को हराम समझना।

रमा के जी में आया कि साफ कह दूं--अपना उपदेश आप अपने ही लिए रखिए, यह मेरे अनुकूल नहीं है। मगर इतना बेहया न था।

दयानाथ ने फिर कहा--यह जगह तो तीस रुपये की थी, तुम्हें बीस ही क्यों मिले?

रमानाथ--नए आदमी को पूरा वेतन कैसे देते, शायद साल-छः महीने में बढ़ जाय। काम बहुत है।

दयानाथ--तुम जवान आदमी हो, काम से न घबड़ाना चाहिए।

रमा ने दूसरे दिन नया सूट बनवाया और फैशन की कितनी ही चीजें खरीदीं। ससुराल से मिले हुए रुपये कुछ बच रहे थे। कुछ मित्रों से उधार ले लिए। वह साहबी ठाठ बनाकर सारे दफ्तर पर रोब जमाना चाहता था। कोई उससे वेतन तो पूछेगा नहीं, महाजन लोग उसका ठाठ-बाट देखकर सहम जाएंगे। वह जानता था, अच्छी आमदनी तभी हो सकती है जब अच्छा ठाठ हो। सड़क के चौकीदार को एक पैसा काफी समझा जाता है, लेकिन उसकी जगह सार्जंट हो, तो किसी की हिम्मत ही न पड़ेगी कि उसे एक पैसा दिखाए। फटेहाल भिखारी के लिए चुटकी बहुत समझी जाती है, लेकिन गेरुए रेशम धारण करने वाले बाबाजी को लजाते-लजाते भी एक रुपया देना ही पड़ता है। भेख और भीख में सनातन से मित्रता है।

तीसरे दिन रमा कोट-पैंट पहनकर और हैट लगाकर निकला, तो उसकी शान ही कुछ और हो गई। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किए। रमेश बाबू से मिलकर जब वह अपने काम का चार्ज लेने आया, तो देखा एक बरामदे में फटी हुई मैली दरी पर एक मियां साहब संदूक पर रजिस्टर फैलाए बैठे हैं और व्यापारी लोग उन्हें चारों तरफ से घेरे खड़े हैं। सामने

गाड़ियों, ठेलों और इक्कों का बाजार लगा हुआ है। सभी अपने-अपने काम की जल्दी मचा रहे हैं। कहीं लोगों में गाली-गलौज हो रही है, कहीं चपरासियों में हंसी-दिल्लगी। सारा काम बड़े ही अव्यवस्थित रूप से हो रहा है। उस फटी हुई दरी पर बैठना रमा को अपमानजनक जान पड़ा। वह सीधे रमेश बाबू से जाकर बोला–क्या मुझे भी इसी मैली दरी पर बिठाना चाहते हैं? एक अच्छी-सी मेज और कई कुर्सियां भिजवाइए और चपरासियों को हुक्म दीजिए कि एक आदमी से ज्यादा मेरे सामने न आने पावे। रमेश बाबू ने मुस्कराकर मेज और कुर्सियां भिजवा दीं। रमा शान से कुर्सी पर बैठा। बूढ़े मुंशीजी उसकी उच्छृंखलता पर दिल में हंस रहे थे। समझ गए, अभी नया जोश है, नई सनक है। चार्ज दे दिया। चार्ज में था ही क्या, केवल आज की आमदनी का हिसाब समझा देना था। किस जिंस पर किस हिसाब से चुंगी ली जाती है, इसकी छपी हुई तालिका मौजूद थी, रमा आध घंटे में अपना काम समझ गया। बूढ़े मुंशीजी ने यद्यपि खुद ही यह जगह छोड़ी थी; पर इस वक्त जाते हुए उन्हें दुःख हो रहा था। इसी जगह वह तीस साल से बराबर बैठते चले आते थे। इसी जगह की बदलौत उन्होंने धन और यश दोनों ही कमाया था। उसे छोड़ते हुए क्यों न दुःख होता। चार्ज देकर जब वह बिदा होने लगे तो रमा उनके साथ जीने के नीचे तक गया। खां साहब उसकी इस नम्रता से प्रसन्न हो गए। मुस्कराकर बोले–हर एक बिल्टी पर एक आना बंधा हुआ है, खुली हुई बात है। लोग शौक से देते हैं। आप अमीर आदमी हैं; मगर रस्म न बिगाड़िएगा। एक बार कोई रस्म टूट जाती है, तो उसका बंधना मुश्किल हो जाता है। इस एक आने में आधा चपरासियों का हक है। जो बड़े बाबू पहले थे, वह पचीस रुपये महीना लेते थे, मगर यह कुछ नहीं लेते।

रमा ने अरुचि प्रकट करते हुए कहा–गंदा काम है, मैं सफाई से काम करना चाहता हूं।

बूढ़े मियां ने हंसकर कहा–अभी गंदा मालूम होता है, लेकिन फिर इसी में मजा आएगा।

खां साहब को विदा करके रमा अपनी कुर्सी पर आ बैठा और एक चपरासी से बोला–इन लोगों से कहो, बरामदे के नीचे चले जाएं। एक-एक करके नंबरवार आवें, एक कागज पर सबके नाम नंबरवार लिख लिया करो।

एक बनिया, जो दो घंटे से खड़ा था, खुश होकर बोला–हां सरकार, यह बहुत अच्छा होगा।

रमानाथ–जो पहले आवे, उसका काम पहले होना चाहिए। बाकी लोग अपना नंबर आने तक बाहर रहें। यह नहीं कि सबसे पीछे वाले शोर मचाकर पहले आ जाएं और पहले वाले खड़े मुंह ताकते रहें।

कई व्यापारियों ने कहा–हां बाबूजी, यह इंतजाम हो जाए, तो बहुत अच्छा हो। भभ्भड़ में बड़ी देर हो जाती है।

इतना नियंत्रण रमा का रोब जमाने के लिए काफी था। वणिक-समाज में आज ही उसके रंग-ढंग की आलोचना और प्रशंसा होने लगी। किसी बड़े कॉलेज के प्रोफेसर को इतनी ख्याति उम्रभर में न मिलती।

दो-चार दिन के अनुभव से ही रमा को सारे दांव-घात मालूम हो गए। ऐसी-ऐसी बातें सूझ गईं जो खां साहब को ख्वाब में भी न सूझी थीं। माल की तौल, गिनती और परख में इतनी धांधली थी जिसकी कोई हद नहीं। जब इस धांधली से व्यापारी लोग सैकड़ों की रकम डकार जाते हैं, तो रमा बिल्टी पर एक आना लेकर ही क्यों संतुष्ट हो जाय, जिसमें आध आना

चपरासियों का है। माल की तौल और परख में दृढ़ता से नियमों का पालन करके वह धन और कीर्ति, दोनों ही कमा सकता है। यह अवसर वह क्यों छोड़ने लगा ? विशेषकर जब बड़े बाबू उसके गहरे दोस्त थे। रमेश बाबू इस नए रंग रूट की कार्य-पटुता पर मुग्ध हो गए। उसकी पीठ ठोंककर बोले—कायदे के अंदर रहो और जो चाहो करो। तुम पर आंच तक न आने पावेगी।

रमा की आमदनी तेजी से बढ़ने लगी। आमदनी के साथ प्रभाव भी बढ़ा। सूखी कलम घिसने वाले दफ्तर के बाबुओं को जब सिगरेट, पान, चाय या जल-पान की इच्छा होती, तो रमा के पास चले आते, उस बहती गंगा में सभी हाथ धो सकते थे। सारे दफ्तर में रमा की सराहना होने लगी। पैसे को तो वह ठीकरा समझता है ! क्या दिल है कि वाह ! और जैसा दिल है, वैसी ही जबान भी। मालूम होता है, नस-नस में शराफत भरी हुई है। बाबुओं का जब यह हाल था, तो चपरासियों और मुहर्रिरों का पूछना ही क्या? सब-के-सब रमा के बिना दामों गुलाम थे। उन गरीबों की आमदनी ही नहीं, प्रतिष्ठा भी खूब बढ़ गई थी। जहां गाड़ीवान तक फटकार दिया करते थे, वहां अब अच्छे-अच्छे की गर्दन पकड़कर नीचे ढकेल देते थे। रमानाथ की तूती बोलने लगी।

मगर जालपा की अभिलाषाएं अभी एक भी पूरी न हुईं। नागपंचमी के दिन मुहल्ले की कई युवतियां जालपा के साथ कजली खेलने आईं , मगर जालपा अपने कमरे के बाहर नहीं निकली। भादों में जन्माष्टमी का उत्सव आया। पड़ोस ही में एक सेठजी रहते थे, उनके यहां बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया जाता था। वहां से सास और बहू को बुलावा आया। जागेश्वरी गई; जालपा ने जाने से इंकार किया। इन तीन महीनों में उसने रमा से बार एक भी आभूषण की चर्चा न की, पर उसका यह एकांत-प्रेम, उसके आचरण से उत्तेजक था। इससे ज्यादा उत्तेजक वह पुराना सूचो-पत्र था, जो एक दिन रमा कहीं से उठा लाया था। इसमें भांति भांति के सुंदर आभूषणों के नमूने बने हुए थे। उनके मूल्य भी लिखे हुए थे। जालपा एकांत में इस सूची-पत्र को बड़े ध्यान से देखा करती। रमा को देखते ही वह सूची-पत्र छिपा लेती थी। इस हार्दिक कामना को प्रकट करके वह अपनी हंसी न उड़वाना चाहती थी।

रमा आधी रात के बाद लौटा, तो देखा, जालपा चारपाई पर पड़ी है। हंसकर बोला-बड़ा अच्छा गाना हो रहा था। तुम नहीं गई, बड़ी गलती की।

जालपा ने मुंह फेर लिया, कोई उत्तर न दिया।

रमा ने फिर कहा—यहां अकेले पड़े-पड़े तुम्हारा जी घबराता रहा होगा।

जालपा ने तीव्र स्वर में कहा—तुम कहते हो, मैंने गलती की, मैं समझती हूं, मैंने अच्छा किया। वहां किसके मुंह में कालिख लगती?

जालपा ताना तो न देना चाहती थी, पर रमा की इन बातों ने उसे उत्तेजित कर दिया। रोष का एक कारण यह भी था कि उसे अकेली छोड़कर सारा घर उत्सव देखने चला गया। अगर उन लोगों के हृदय होता, तो क्या वहां जाने से इंकार न कर देते?

रमा ने लज्जित होकर कहा—कालिख लगने की तो कोई बात न थी, सभी जानते हैं कि चोरी हो गई है, और इस जमाने में दो-चार हजार के गहने बनवा लेना, मुंह का कौर नहीं है।

चोरी का शब्द जबान पर लाते हुए, रमा का हृदय धड़क उठा। जालपा पति की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर रह गई। और कुछ बोलने से बात बढ़ जाने का भय था; पर रमा को उसकी दृष्टि से ऐसा भासित हुआ, मानों उसे चोरी का रहस्य मालूम है और वह केवल संकोच के

कारण उसे खोलकर नहीं कह रही है। उसे उस स्वप्न की बात भी याद आई, जो जालपा ने चोरी की रात को देखा था। वह दृष्टि बाण के समान उसके हृदय को छेदने लगी; उसने सोचा, शायद मुझे भ्रम हुआ। इस दृष्टि में रोष के सिवा और कोई भाव नहीं है, मगर यह कुछ बोलती क्यों नहीं? चुप क्यों हो गई? उनका चुप हो जाना ही गजब था। अपने मन का संशय मिटाने और जालपा के मन की थाह लेने के लिए रमा ने मानो डुब्बी मारी--यह कौन जानता था कि डोली से उतरते ही यह विपत्ति तुम्हारा स्वागत करेगी।

जालपा आंखों में आंसू भरकर बोली—तो मैं तुमसे गहनों के लिए रोती तो नहीं हूं। भाग्य में जो लिखा था, वह हुआ। आगे भी वही होगा, जो लिखा है। जो औरतें गहने नहीं पहनतीं, क्या उनके दिन नहीं कटते?

इस वाक्य ने रमा का संशय तो मिटा दिया; पर इसमें जो तीव्र वेदना छिपी हुई थी, वह उससे छिपी न रही। इन तीन महीनों में बहुत प्रयत्न करने पर भी वह सौ रुपये से अधिक संग्रह न कर सका था। बाबू लोगों के आदर-सत्कार में उसे बहुत -कुछ गलना पड़ता था; मगर बिना खिलाए पिलाए काम भी तो न चल सकता था। सभी उसके दुश्मन हो जाते और उसे उखाड़ने की घातें सोचने लगते। मुफ्त का धन अकेले नहीं हजम होता, यह वह अच्छी तरह जानता था। वह स्वयं एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करता। चतुर व्यापारी की भांति वह जो कुछ खर्च करता था, वह केवल कमाने के लिए। आश्वासन देते हुए बोला—ईश्वर ने चाहा तो दो-एक महीने में कोई चीज बन जाएगी।

जालपा--मैं उन स्त्रियों में नहीं हूं, जो गहनों पर जान देती हैं। हां, इस तरह किसी के घर आते-जाते शर्म आती ही है।

रमा का चित्त ग्लानि से व्याकुल हो उठा। जालपा के एक-एक शब्द से निराशा टपक रही थी। इस अपार वेदना का कारण कौन था? क्या यह भी उसी का दोष न था कि इन तीन महीनों में उसने कभी गहनों की चर्चा नहीं की? जालपा यदि संकोच के कारण इसकी चर्चा न करती थी, तो रमा को उसके आंसू पोंछने के लिए, उसका मन रखने के लिए, क्या मौन के सिवा दूसरा उपाय न था? मुहल्ले में रोज ही एक-न-एक उत्सव होता रहता है, रोज ही पास-पड़ोस की औरतें मिलने आती हैं, बुलावे भी रोज आते ही रहते है, बेचारी जालपा कब तक इस प्रकार आत्मा का दमन करती रहेगी, अंदर-ही-अंदर कुढ़ती रहेगी। हंसने-बोलन को किसका जी नहीं चाहता, कौन कैदियों की तरह अकेला पड़ा रहना पसंद करता है? मेरे ही कारण तो इसे यह भीषण यातना सहनी पड़ रही है।

उसने सोचा, क्या किसी सर्राफ से गहने उधार नहीं लिए जा सकते? कई बड़े सर्राफों से उसका परिचय था, लेकिन उनसे वह यह बात कैसे कहता? कहीं वे इंकार कर दें तो? या संभव है, बहाना करके टाल दें। उसने निश्चय किया कि अभी उधार लेना ठीक न होगा। कहीं वादे पर रुपये न दे सका, तो व्यर्थ में थुक्का-फजीहत होगी। लज्जित होना पड़ेगा। अभी कुछ दिन और धैर्य से काम लेना चाहिए।

सहसा उसके मन में आया, इस विषय में जालपा की राय लूं। देखूं वह क्या कहती है। अगर उसकी इच्छा हो तो किसी सर्राफ से वादे पर चीजें ले ली जायं, मैं इस अपमान और संकोच को सह लूंगा। जालपा को संतुष्ट करने के लिए कि उसके गहनों की उसे कितनी फिक्र है ! बोला—तुमसे एक सलाह करना चाहता हूं। पूछूं या न पूंछू ?

जालपा को नींद आ रही थी, आंखें बंद किए हुए बोली—अब सोने दो भई, सवेरे उठना है।

रमानाथ—अगर तुम्हारी राय हो, तो किसी सर्राफ से वादे पर गहने बनवा लाऊं। इसमें कोई हर्ज तो है नहीं।

जालपा की आंखें खुल गईं। कितना कठोर प्रश्न था। किसी मेहमान से पूछना—कहिए तो आपके लिए भोजन लाऊं, कितनी बड़ी अशिष्टता है। इसका तो यही आशय है कि हम मेहमान को खिलाना नहीं चाहते। रमा को चाहिए था कि चीजें लाकर जालपा के सामने रख देता। उसके बार-बार पूछने पर भी यही कहना चाहिए था कि दाम देकर लाया हूं। तब वह अलबत्ता खुश होती। इस विषय में उसकी सलाह लेना, घाव पर नमक छिड़कना था। रमा की ओर अविश्वास की आंखों से देखकर बोली—मैं तो गहनों के लिए इतनी उत्सुक नहीं हूं।

रमानाथ- -नहीं, यह बात नहीं, इसमें क्या हर्ज है कि किसी सर्राफ से चीजें ले लूं? धीरे-धीरे उसके रुपये चुका दूंगा।

जालपा ने दृढ़ता से कहा—नहीं, मेरे लिए कर्ज लेने की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं हूं कि तुम्हें नोच-खसोटकर अपना रास्ता लूं। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बे-गहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूंगी। औरतें गहनों की इतनी भूखी नहीं होतीं। घर के प्राणियों को संकट में डालकर गहने पहनने वाली दूसरी होंगी। लेकिन तुमने तो पहले कहा था कि जगह बड़ी आमदनी की है, मुझे तो कोई विशेष बचत दिखाई नहीं देती।

रमानाथ—बचत तो जरूर होती और अच्छी होती, लेकिन जब अहलकारों के मारे बचने भी पाए। सब शैतान सिर पर सवार रहते हैं। मुझे पहले न मालूम था कि यहां इतने प्रेतों की पूजा करनी होगी।

जालपा—तो अभी कौन-सी जल्दी है, बनते रहेंगे धीरे-धीरे।

रमानाथ—खैर, तुम्हारी सलाह है, तो एक-आध महीने और चुप रहना हूं। मैं सबसे पहले कंगन बनवाऊंगा।

जालपा ने गद्गद होकर कहा—तुम्हारे पास अभी इतने रुपये कहां होंगे?

रमानाथ—इसका उपाय तो मेरे पास है। तुम्हें कैसा कंगन पसंद है?

जालपा अब अपने कृत्रिम संयम को न निभा सकी। आल्मारी में से आभूषणों का सूची पत्र निकालकर रमा को दिखाने लगी। इस समय वह इतनी तत्पर थी, मानो सोना आकर रक्खा हुआ है, सुनार बैठा हुआ है, केवल डिजाइन ही पसंद करना बाकी है। उसने सूची के दो डिजाइन पसंद किए। दोनों वास्तव में बहुत ही सुंदर थे। पर रमा उनका मूल्य देखकर सन्नाटे में आ गया। एक एक हजार का था, दूसरा आठ सौ का।

रमानाथ—ऐसी चीजें तो शायद यहां बन भी न सकें, मगर कल मैं जरा सर्राफे की सैर करूंगा।

जालपा ने पुस्तक बंद करते हुए करुण स्वर में कहा—इतने रुपये न जाने तुम्हारे पास कब तक होंगे? उंह, बनेंगे-बनेंगे, नहीं कौन कोई गहनों के बिना मरा जाता है।

रमा को आज इसी उधेड़बुन में बड़ी रात तक नींद न आई। ये जड़ाऊ कंगन इन गोरी-गोरी कलाइयों पर कितने खिलेंगे। यह मोह-स्वप्न देखते-देखते उसे न जाने कब नींद आ गई।

# बारह

दूसरे दिन सवेरे ही रमा ने रमेश बाबू के घर का रास्ता लिया। उनके यहां भी जन्माष्टमी में झांकी होती थी। उन्हें स्वयं तो इससे कोई अनुराग न था, पर उनकी स्त्री उत्सव मनाती थी; उसी की यादगार में अब तक यह उत्सव मनाते जाते थे। रमा को देखकर बोले–आओ जी, रात क्यों नहीं आए? मगर यहां गरीबों के घर क्यों आते। सेठजी की झांकी कैसे छोड़ देते। खूब बहार रही होगी !

रमानाथ–आपकी-सी सजावट तो न थी, हां और सालों से अच्छी थी। कई कत्थक और वेश्याएं भी आई थीं। मैं तो चला आया था; मगर सुना रातभर गाना होता रहा।

रमेश–सेठजी ने तो वचन दिया था कि वेश्याएं न आने पावेंगी, फिर यह क्या किया। इन मूर्खो के हाथों हिन्दू-धर्म का सर्वनाश हो जायगा। एक तो वेश्याओं का नाम यों भी बुरा, उस पर ठाकुरद्वारे में ! छिः-छिः, न जाने इन गधों को कब अक्ल आवेगी।

रमानाथ–वेश्याएं न हों, तो झांकी देखने जाय ही कौन? सभी तो आपकी तरह योगी और तपस्वी नहीं हैं।

रमेश–मेरा वश चले, तो मैं कानून से यह दुराचार बंद कर दूं। खैर, फुरसत हो तो आओ एक-आध बाजी हो जाय।

रमानाथ–और आया किसलिए हूं, मगर आज आपको मेरे साथ जरा सराफे तक चलना पड़ेगा। यों कई बड़ी-बड़ी कोठियों से मेरा परिचय है; मगर आपके रहने से कुछ और ही बात होगी।

रमेश–चलने को चला चलूंगा; मगर इस विषय में मैं बिल्कुल कोरा हूं। न कोई चीज बनवाई न खरीदी। तुम्हें क्या कुछ लेना है?

रमानाथ–लेना-देना क्या है, जरा भाव-ताव देखूंगा।

रमेश–मालूम होता है, घर में फटकार पड़ी है।

रमानाथ– जी, बिल्कुल नहीं। वह तो जेवरों का नाम तक नहीं लेती। मैं कभी पूछता भी हूं, तो मना करती हैं; लेकिन अपना कर्त्तव्य भी तो कुछ है। जब से गहने चोरी चले गए, एक चीज भी नहीं बनी।

रमेश–मालूम होता है, कमाने का ढंग आ गया। क्यों न हो, कायस्थ के बच्चे हो। कितने रुपये जोड़ लिए?

रमानाथ–रुपये किसके पास हैं, वादे पर लूंगा।

रमेश–इस खब्त में न पड़ो। जब तक रुपये हाथ में न हों, बाजार की तरफ जाओ ही मत। गहनों से तो बुड्ढे नई बीवियों का दिल खुश किया करते हैं, उन बेचारों के पास गहनों के सिवा होता ही क्या है। जवानों के लिए और बहुत से लटके हैं। यों मैं चाहूं, तो दो-हजार का माल दिलवा सकता हूं, मगर भई, कर्ज की लत बुरी है।

रमानाथ–मैं दो-तीन महीनों में सब रुपये चुका दूंगा। अगर मुझे इसका विश्वास न होता, तो मैं जिक्र ही न करता।

रमेश–तो दो-महीने और सब्र क्यों नहीं कर जाते? कर्ज से बड़ा पाप दूसरा नहीं। न इससे बड़ी विपत्ति दूसरी है। जहां एक बार धड़का खुला कि तुम आए दिन सर्राफ की दुकान

पर खड़े नजर आओगे। बुरा न मानना। मैं जानता हूं, तुम्हारी आमदनी अच्छी है, पर भविष्य के भरोसे पर और चाहे जो काम करो, लेकिन कर्ज कभी मत लो। गहनों का मरज न जाने इस दरिद्र देश में कैसे फैल गया। जिन लोगों के भोजन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण देते हैं। हर साल अरबों रुपये केवल सोना-चांदी खरीदने में व्यय हो जाते हैं। संसार के और किसी देश में इन धातुओं की इतनी खपत नहीं। तो बात क्या है? उन्नत देशों में धन व्यापार में लगता है; जिससे लोगों की परवरिश होती है, और धन बढ़ता है। यहां धन । शृंगार में खर्च होता है, उसमें उन्नति और उपकार की जो दो महान शक्तियां हैं, उन दोनों ही का अंत हो जाता है। बस यही समझ लो कि जिस देश के लोग जितने ही मूर्ख होंगे, वहां जेवरों का प्रचार भी उतना ही अधिक होगा। यहां तो खैर नाक-कान छिदाकर ही रह जाते हैं; मगर कई ऐसे देश भी हैं, जहां होंठ छेदकर लोग गहने पहनते हैं।

रमा ने कौतूहल से पूछा—वह कौन-सा देश है?

रमेश—इस समय ठीक याद नहीं आता, पर शायद अफ्रीका हो। हमें यह सुनकर अचंभा होता है; लेकिन अन्य देश वालों के लिए नाक-कान का छिदना कुछ कम अचंभे की बात न होगी। बुरा मरज है, बहुत ही बुरा। वह धन, जो भोजन में खर्च होना चाहिए, बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले न सही। घी की गंध तक उनकी नाक में न पहुंचे, न सही। मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों, कोई परवा नहीं; पर देवीजी गहने जरूर पहनेंगी और स्वामीजी गहने जरूर बनवाएंगे। दस-दस, बीस-बीस रुपये पाने वाले क्लर्कों को देखता हूं, जो सड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भांति जीवन काटते हैं, जिन्हें सवेरे का जलपान तक मयस्सर नहीं होता, उन पर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश होता जा रहा है। मैं तो कहता हूं, यह गुलामी पराधीनता से कहीं बढ़कर है। इसके कारण हमारा कितना आत्मिक, नैतिक, दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है, इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।

रमानाथ—मैं तो समझता हूं, ऐसा कोई भी देश नहीं, जहां स्त्रियां गहने न पहनती हों। क्या योरोप में गहनों का रिवाज नहीं है?

रमेश—तो तुम्हारा देश योरोप तो नहीं है। वहां के लोग धनी हैं। वह धन लुटाएं, उन्हें शोभा देता है। हम दरिद्र हैं, हमारी कमाई का एक पैसा भी फजूल न खर्च होना चाहिए।

रमेश बाबू इस वाद-विवाद में शतरंज भूल गए। छुट्टी का दिन था ही, दो-चार मिलने वाले और आ गए; रमानाथ चुपके से खिसक आया। इस बहस में एक बात ऐसी थी, जो उसके दिल में बैठ गई। उधार गहने लेने का विचार उसके मन से निकल गया। कहीं वह जल्दी रुपया न चुका सका, तो कितनी बड़ी बदनामी होगी। सराफे तक गया अवश्य; पर किसी दुकान में जाने का साहस न हुआ। उसने निश्चय किया, अभी तीन-चार महीने तक गहनों का नाम न लूंगा।

वह घर पहुंचा, तो नौ बज गए थे। दयानाथ ने उसे देखा तो पूछा—आज सवेरे-सवेरे कहां चले गए थे?

रमानाथ—जरा बड़े बाबू से मिलने गया था।

दयानाथ—घंटे-आध घंटे के लिए पुस्तकालय क्यों नहीं चले जाया करते। गप-शप में दिन गंवा देते हो। अभी तुम्हारी पढ़ने-लिखने की उम्र है। इम्तहान न सही, अपनी योग्यता तो

बढ़ा सकते हो। एक सीधा-सा खत लिखना पड़ जाता है, तो बगलें झांकने लगते हो। असली शिक्षा स्कूल छोड़ने के बाद शुरू होती है, और वही हमारे जीवन में काम भी आती है। मैंने तुम्हारे विषय में कुछ ऐसी बातें सुनी हैं, जिनसे मुझे बहुत खेद हुआ है और तुम्हें समझा देना मैं अपना धर्म समझता हूं। मैं यह हरगिज नहीं चाहता कि मेरे घर में हराम की एक कौड़ी भी आए। मुझे नौकरी करते तीस साल हो गए। चाहता, तो अब तक हजारों रुपये जमा कर लेता, लेकिन मैं कसम खाता हूं कि कभी एक पैसा भी हराम का नहीं लिया। तुममें यह आदत कहां से आ गई, यह मेरी समझ में नहीं आता।

रमा ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा—किसने आपसे कहा है? जरा उसका नाम तो बताइए? मूंछें उखाड़ लूं उसकी!

दयानाथ—किसी ने भी कहा हो, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं। तुम उसकी मूंछें उखाड़ लोगे, इसलिए बताऊंगा नहीं, लेकिन बात सच है या झूठ, मैं इतना ही पूछना चाहता हूं।

रमानाथ—बिल्कुल झूठ!

दयानाथ—बिल्कुल झूठ?

रमानाथ—जी हां, बिल्कुल झूठ!

दयानाथ—तुम दस्तूरी नहीं लेते?

रमानाथ—दस्तूरी रिश्वत नहीं है, सभी लेते हैं और खुल्लम-खुल्ला लेते हैं। लोग बिना मांगे आप-ही-आप देते हैं, मैं किसी से मांगने नहीं जाता।

दयानाथ—सभी खुल्लम-खुल्ला लेते हैं और लोग बिना मांगे देते हैं, इससे तो रिश्वत की बुराई कम नहीं हो जाती।

रमानाथ—दस्तूरी को बंद कर देना मेरे वश की बात नहीं। मैं खुद न लूं, लेकिन चपरासी और मुहर्रिर का हाथ तो नहीं पकड़ सकता। आठ-आठ, नौ-नौ पाने वाले नौकर अगर न लें, तो उनका काम ही नहीं चल सकता। मैं खुद न लूं, पर उन्हें नहीं रोक सकता।

दयानाथ ने उदासीन भाव से कहा—मैंने समझा दिया, मानने का अख्तियार तुम्हें है।

यह कहते हुए दयानाथ दफ्तर चले गए। रमा के मन में आया, साफ कह दे, आपने निस्पृह बनकर क्या कर लिया, जो मुझे दोष दे रहे हैं। हमेशा पैसे-पैसे को मुहताज रहे। लड़कों को पढ़ा तक न सके। जूते-कपड़े तक न पहना सके। यह डींग मारना तब शोभा देता, जब कि नीयत भी साफ रहती और जीवन भी सुख से कटता।

रमा घर में गया तो माता ने पूछा—आज कहां चले गए बेटा, तुम्हारे बाबूजी इसी पर बिगड़ रहे थे।

रमानाथ—इस पर तो नहीं बिगड़ रहे थे, हां, उपदेश दे रहे थे कि दस्तूरी मत लिया करो। इससे आत्मा दुर्बल होती है और बदनामी होती है।

जागेश्वरी—तुमने कहा नहीं, आपने बड़ी ईमानदारी की तो कौन-से झंडे गाड़ दिए! सारी जिंदगी पेट पालते रहे।

रमानाथ—कहना तो चाहता था, पर चिढ़ जाते। जैसे आप कौड़ी-कौड़ी को मुहताज रहे, वैसे मुझे भी बनाना चाहते हैं। आपको लेने का शऊर तो है नहीं। जब देखा कि यहां दाल नहीं गलती, तो भगत बन गए। यहां ऐसे घोंघा-बसंत नहीं हैं। बनियों से रुपये ऐंठने के लिए अक्ल चाहिए, दिल्लगी नहीं है! जहां किसी ने भगतपन किया और मैं समझ गया, बुद्धू है। लेने की

तमीज नहीं, क्या करे बेचारा। किसी तरह आंसू तो पोंछे।

जागेश्वरी—बस-बस यही बात है बेटा, जिसे लेना आवेगा, वह जरूर लेगा। इन्हें तो बस घर में कानून बघारना आता है और किसी के सामने बात तो मुंह से निकलती नहीं। रुपये निकाल लेना तो मुश्किल है।

रमा दफ्तर जाते समय ऊपर कपड़े पहनने गया, तो जालपा ने उसे तीन लिफाफे डाक में छोड़ने के लिए दिए। इस वक्त उसने तीनों लिफाफे जेब में डाल लिए; लेकिन रास्ते में उन्हें खोलकर चिट्ठियां पढ़ने लगा। चिट्ठियां क्या थीं, विपत्ति और वेदना का करुण विलाप था, जो उसने अपनी तीनों सहेलियों को सुनाया था। तीनों का विषय एक ही था। केवल भावों का अंतर था—'जिंदगी पहाड़ हो गई है, न रात को नींद आती है न दिन को आराम; पतिदेव को प्रसन्न करने के लिए, कभी-कभी हंस-बोल लेती हूं पर दिल हमेशा रोया करता है। न किसी के घर जाती हूं, न किसी को मुंह दिखाती हूं। ऐसा जान पड़ता है कि यह शोक मेरी जान ही लेकर छोड़ेगा। मुझसे वादे तो रोज किए जाते हैं, रुपये जमा हो रहे हैं, सुनार ठीक किया जा रहा है, डिजाइन तय किया जा रहा है, पर यह सब धोखा है और कुछ नहीं।'

रमा ने तीनों चिट्ठियां जेब में रख लीं। डाकखाना सामने से निकल गया, पर उसने उन्हें छोड़ा नहीं। यह अभी तक यही समझती है कि मैं इसे धोखा दे रहा हूं? क्या करूं, कैसे विश्वास दिलाऊं? अगर अपना वश होता तो इसी वक्त आभूषणों के टोकरे भर-भर जालपा के सामने रख देता, उसे किसी बड़े सराफ की दुकान पर ले जाकर कहता, तुम्हें जो-जो चीजें लेनी हों, ले लो। कितनी अपार वेदना है, जिसने विश्वास का भी अपहरण कर लिया है। उसको आज उस चोट का सच्चा अनुभव हुआ, जो उसने झूठी मर्यादा की रक्षा में उसे पहुंचाई थी। अगर वह जानता, उस अभिनय का यह फल होगा, तो कदाचित् अपनी डींगों का परदा खोल देता। क्या ऐसी दशा में भी, जब जालपा इस शोक-ताप से फुंकी जा रही थी, रमा को कर्ज लेने में संकोच करने की जगह थी? उसका हृदय कातर हो उठा। उसने पहली बार सच्चे हृदय से ईश्वर से याचना की—भगवन्, मुझे चाहे दंड देना; पर मेरी जालपा को मुझसे मत छीनना। इससे पहले मेरे प्राण हर लेना। उसके रोम-रोम से आत्मध्वनि-सी निकलने लगी—ईश्वर, ईश्वर ! मेरी दीन दशा पर दया करो।

लेकिन इसके साथ ही उसे जालपा पर क्रोध भी आ रहा था। जालपा ने क्यों मुझसे यह बात नहीं कही। मुझसे क्यों परदा रक्खा और मुझसे परदा रखकर अपनी सहेलियों से यह दुखड़ा रोया?

बरामदे में माल तौला जा रहा था। मेज पर रुपये-पैसे रखे जा रहे थे और रमा चिंता में डूबा बैठा हुआ था। किससे सलाह ले। उसने विवाह ही क्यों किया? सारा दोष उसका अपना था। जब वह घर की दशा जानता था, तो क्यों उसने विवाह करने से इंकार नहीं कर दिया? आज उसका मन काम में नहीं लगता था। समय से पहले ही उठकर चला आया।

जालपा ने उसे देखत ही पूछा--मेरी चिट्ठियां छोड़ तो नहीं दीं।

रमा ने बहाना किया—अरे इनकी तो याद ही नहीं रही। जेब में पड़ी रह गई।

जालपा—यह बहुत अच्छा हुआ। लाओ, मुझे दे दो, अब न भेजूंगी।

रमानाथ—क्यों, कल भेज दूंगा।

जालपा—नहीं, अब मुझे भेजना ही नहीं है, कुछ ऐसी बातें लिख गई थी, जो मुझे न

लिखना चाहिए थीं। अगर तुमने छोड़ दी होती, तो मुझे दु:ख होता। मैंने तुम्हारी निंदा की थी।

यह कहकर वह मुस्कराई।

रमानाथ—जो बुरा है, दगाबाज है, धूर्त है, उसकी निंदा होनी ही चाहिए।

जालपा ने व्यग्र होकर पूछा—तुमने चिट्ठियां पढ़ लीं क्या?

रमा ने नि:संकोच भाव से कहा—हां, यह कोई अक्षम्य अपराध है?

जालपा कातर स्वर में बोली—तब तो तुम मुझसे बहुत नाराज होगे?

आंसुओं के आवेग से जालपा की आवाज रुक गई। उसका सिर झुक गया और झुकी हुई आंखों से आंसुओं की बूंदें आंचल पर गिरने लगीं। एक क्षण में उसने स्वर को संभालकर कहा—मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ है। जो चाहे सजा दो, पर मुझसे अप्रसन्न मत हो। ईश्वर जानते हैं, तुम्हारे जाने के बाद मुझे कितना दु:ख हुआ। मेरी कलम से न जाने कैसे ऐसी बातें निकल गईं।

जालपा जानती थी कि रमा को आभूषणों की चिंता मुझसे कम नहीं है; लेकिन मित्रों से अपनी व्यथा कहते समय हम बहुधा अपना दु:ख बढ़ाकर कहते हैं। जो बातें परदे की समझी जाती हैं, उनकी चर्चा करने से एक तरह का अपनापन जाहिर होता है। हमारे मित्र समझते हैं, हमसे जरा भी दुराव नहीं रखता और उन्हें हमसे सहानुभूति हो जाती है। अपनापन दिखाने की यह आदत औरतों में कुछ अधिक होती है।

रमा जालपा के आंसू पोंछते हुए बोला—मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूं, प्रिये! अप्रसन्न होने की तो कोई बात ही नहीं है। आशा का बिलंब ही दुराशा है, क्या मैं इतना नहीं जानता। अगर तुमने मुझे मना न कर दिया होता, तो अब तक मैंने किसी-न-किसी तरह दो-एक चीजें अवश्य ही बनवा दी होतीं। मुझसे भूल यही हुई कि तुमसे सलाह ली। यह तो वैसा ही है जैसे मेहमान को पूछ-पूछकर भोजन दिया जाय। उस वक्त मुझे यह ध्यान न रहा कि संकोच में आदमी इच्छा होने पर भी 'नहीं-नहीं' करता है। ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें बहुत दिनों तक इंतजार न करना पड़ेगा।

जालपा ने सचिंत नेत्रों से देखकर कहा—तो क्या उधार लाओगे?

रमानाथ—हां, उधार लाने में कोई हर्ज नहीं है। जब सूद नहीं देना है तो जैसे नगद वैसे उधार। ऋण से दुनिया का काम चलता है। कौन ऋण नहीं लेता! हाथ में रुपया आ जाने से अलल्ले-तलल्ले खर्च हो जाते हैं। कर्ज सिर पर सवार रहेगा, तो उसकी चिंता हाथ रोके रहेगी।

जालपा—मैं तुम्हें चिंता में नहीं डालना चाहती। अब मैं भूलकर भी गहनों का नाम न लूंगी।

रमानाथ—नाम तो तुमने कभी नहीं लिया; लेकिन तुम्हारे नाम न लेने से मेरे कर्त्तव्य का अंत तो नहीं हो जाता। तुम कर्ज से व्यर्थ इतना डरती हो। रुपये जमा होने के इंतजार में बैठा रहूंगा, तो शायद कभी न जमा होंगे। इसी तरह लेते-देते साल में तीन-चार चीजें बन जाएंगी।

जालपा—मगर पहले कोई छोटी-सी चीज लाना।

रमानाथ—हां, ऐसा तो करूंगा ही।

रमा बाजार चला, तो खूब अंधेरा हो गया था। दिन रहते जाता तो संभव था, मित्रों में से किसी की निगाह उस पर पड़ जाती। मुंशी दयानाथ ही देख लेते। वह इस मामले को गुप्त ही रखना चाहता था।

# तेरह

सराफे में गंगू की दुकान मशहूर थी। गंगू था तो ब्राह्मण, पर बड़ा ही व्यापार-कुशल! उसकी दुकान पर नित्य गाहकों का मेला लगा रहता था। उसकी कर्म-निष्ठा गाहकों में विश्वास पैदा करती थी। और दुकानों पर ठगे जाने का भय था। यहां किसी तरह का धोखा न था। गंगू ने रमा को देखते ही मुस्कराकर कहा—आइए बाबूजी, ऊपर आइए। बड़ी दया की। मुनीमजी, आपके वास्ते पान मंगवाओ। क्या हुक्म है बाबूजी, आप तो जैसे मुझसे नाराज हैं। कभी आते ही नहीं, गरीबों पर भी कभी-कभी दया किया कीजिए।

गंगू की शिष्टता ने रमा की हिम्मत खोल दी। अगर उसने इतने आग्रह से न बुलाया होता तो शायद रमा को दुकान पर जाने का साहस न होता। अपनी साख का उसे अभी तक अनुभव न हुआ था। दुकान पर जाकर बोला—यहां हम जैसे मजदूरों का कहां गुजर है, महाराज! गांठ में कुछ हो भी तो।

गंगू—यह आप क्या कहते हैं सरकार, आपकी दुकान है, जो चीज चाहिए ले जाइए, दाम आगे-पीछे मिलते रहेंगे। हम लोग आदमी पहचानते हैं बाबू साहब, ऐसी बात नहीं है। धन्य भाग कि आप हमारी दुकान पर आए तो। दिखाऊं कोई जड़ाऊ चीज? कोई कंगन, कोई हार? अभी हाल ही में दिल्ली से माल आया है।

रमानाथ—कोई हल्के दामों का हार दिखाइए।

गंगू—यही कोई सात-आठ सौ तक?

रमानाथ—अजी नहीं, [illegible] चार सौ तक।

गंगू—मैं आपको दोनों दिखाए देता हूं। जो पसंद आवें, ले लीजिएगा। हमारे यहां किसी तरह का दगल-फसल नहीं बाबू साहब! इसकी आप जरा भी चिंता न करें। पांच बरस का लड़का हो या सौ बरस का बूढ़ा, सबके साथ एक बात रखते हैं। मालिक को भी एक दिन मुंह दिखाना है, बाबू!

संदूक सामने आया, गंगू ने हार निकाल-निकालकर दिखाने शुरू किए। रमा की आंखें खुल गई, जी लोट-पोट हो गया। क्या सफाई थी! नगीनों की कितनी सुंदर सजावट! कैसी आब-ताब! उनकी चमक दीपक को मात करती थी। रमा ने सोच रखा था सौ रुपये से ज्यादा उधार न लगाऊंगा, लेकिन चार सौ वाला हार आंखों में कुछ जंचता न था। और जेब में कुल तीन सौ रुपये थे। सोचा, अगर यह हार ले गया और जालपा ने पसंद न किया, तो फायदा ही क्या? ऐसी चीज ले जाऊं कि वह देखते ही फड़क उठे। यह जड़ाऊ हार उसकी गर्दन में कितनी शोभा देगा। वह हार एक सहस्र मणि-रंजित नेत्रों से उसके मन को खींचने लगा। वह अभिभूत होकर उसकी ओर ताक रहा था, पर मुंह से कुछ कहने का साहस न होता था। कहीं गंगू ने तीन सौ रुपये उधार लगाने से इंकार कर दिया, तो उसे कितना लज्जित होना पड़ेगा। गंगू ने उसके मन का संशय ताड़कर कहा—आपके लायक तो बाबूजी यही चीज है, अंधेरे घर में रख दीजिए, तो उजाला हो जाय।

रमानाथ—पसंद तो मुझे भी यही है; लेकिन मेरे पास कुल तीन सौ रुपये हैं, यह समझ लीजिए।

शर्म से रमा के मुंह पर लाली छा गई। वह धड़कते हुए हृदय से गंगू का मुंह देखने लगा।

गंगू ने निष्कपट भाव से कहा—बाबू साहब, रुपये का तो जिक्र ही न कीजिए। कहिए दस हजार का माल साथ भेज दूं। दुकान आपकी है, भला कोई बात है? हुक्म हो, तो एक-आध चीज और दिखाऊ? एक शीशफूल अभी बनकर आया है, बस यही मालूम होता है, गुलाब का फूल खिला हुआ है। देखकर जी खुश हो जाएगा। मुनीमजी, जरा वह शीशफूल दिखाना तो। और दाम का भी कुछ ऐसा भारी नहीं, आपको ढाई सौ में दे दूंगा।

रमा ने मुस्कराकर कहा—महाराज, बहुत बातें बनाकर कहीं उल्टे छुरे से न मूंड़ लेना, गहनों के मामले में बिल्कुल अनाड़ी हूं।

गंगू—ऐसा न कहो बाबूजी, आप चीज ले जाइए, बाजार में दिखा लीजिए, अगर कोई ढाई सौ से कौड़ी कम में दे दे, तो मैं मुफ्त दे दूंगा।

शीशफूल आया, सचमुच गुलाब का फूल था, जिस पर हीरे की कलियां ओस की बूंदों के समान चमक रही थीं। रमा की टकटकी बंध गई, मानो कोई अलौकिक वस्तु सामने आ गई हो।

गंगू—बाबूजी, ढाई सौ रुपये ता कारीगर की सफाई के इनाम हैं। यह एक चीज है।

रमानाथ—हां, है तो सुंदर, मगर भाई ऐसा न हो, कि कल ही से दाम का तकाजा करने लगो। मैं खुद ही जहां तक हो सकेगा, जल्दी दे दूंगा।

गंगू ने दोनों चीजें दो सुदर मखमली केसों में रखकर रमा को दे दीं। फिर मुनीमजी से नाम टंकवाया और पान खिलाकर विदा किया।

रमा के मनोल्लास की इस समय सीमा न थी, किंतु यह विशुद्ध उल्लास न था, इसमें एक शका का भी समावेश था। यह उस बालक का आनंद न था जिसने माता से पैसे मांगकर मिठाई ली हो, बल्कि उस बालक का जिसने पैसे चुराकर ली हो, उसे मिठाइयां मीठी तो लगती हैं, पर दिल कांपता रहता है कि कही घर चलने पर मार न पड़ने लगे। साढ़े छ: सौ रुपये चुका देने की तो उसे विशेष चिंता न थी, घात लग जाय तो वह छ: महीने में चुका देगा। भय यही था कि बाबूजी सुनेंगे तो जरूर नाराज होंगे, लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, जालपा को इन आभूषणों से सुशोभित देखने की उत्कंठा इस शंका पर विजय पाती थी। घर पहुंचने की जल्दी मे उसने सड़क छोड़ दी, और एक गली में घुस गया। सघन अंधेरा छाया हुआ था। बादल तो उसी वक्त छाए हुए थे, जब वह घर से चला था। गली में घुसा ही था, कि पानी की बूंद सिर पर छर्रे की तरह पड़ी। जब तक छतरी खोले, वह लथपथ हो चुका था। उसे शंका हुई, इस अंधकार में कोई आकर दोनों चीजें छीन न ले, पानी की झरझर में कोई आवाज भी न सुने। अंधेरी गलियो में खून तक हो जाते हैं। पछताने लगा, नाहक इधर से आया। दो-चार मिनट देर ही में पहुंचता, तो ऐसी कौन-सी आफत आ जाती। असामयिक वृष्टि ने उसकी आनंद-कल्पनाओं में बाधा डाल दी। किसी तरह गली का अंत हुआ और सड़क मिली। लालटेनें दिखाई दीं। प्रकाश कितनी विश्वास उत्पन्न करने वाली शक्ति है, आज इसका उसे यथार्थ अनुभव हुआ।

वह घर पहुंचा तो दयानाथ बैठे हुक्का पी रहे थे। वह उस कमरे में न गया। उनकी आंख बचाकर अंदर जाना चाहता था कि उन्होंने टोका—इस वक्त कहां गए थे?

रमा ने उन्हें कुछ जवाब न दिया। कहीं वह अखबार सुनाने लगे, तो घंटों की खबर लेंगे। सीधा अंदर जा पहुंचा। जालपा द्वार पर खड़ी उसकी राह देख रही थी, तुरंत उसके हाथ से

छतरी ले ली और बोली—तुम तो बिल्कुल भीग गए। कहीं ठहर क्यों न गए।

रमानाथ—पानी का क्या ठिकाना, रात-भर बरसता रहे।

यह कहता हुआ रमा ऊपर चला गया। उसने समझा था, जालपा भी पीछे-पीछे आती होगी, पर वह नीचे बैठी अपने देवरों से बातें कर रही थी, मानो उसे गहनों की याद ही नहीं है। जैसे वह बिल्कुल भूल गई है कि रमा सराफे से आया है।

रमा ने कपड़े बदले और मन में झुंझलाता हुआ नीचे चला आया। उसी समय दयानाथ भोजन करने आ गए। सब लोग भोजन करने बैठ गए। जालपा ने जब्त तो किया था, पर इस उत्कंठा की दशा में आज उससे कुछ खाया न गया। जब वह ऊपर पहुंची, तो रमा चारपाई पर लेटा हुआ था। उसे देखते ही कौतुक से बोला—आज सराफे का जाना तो व्यर्थ ही गया। हार कहीं तैयार ही न था। बनाने को कह आया हूं।

जालपा की उत्साह से चमकती हुई मुख-छवि मलिन पड़ गई, बोली—वह तो पहले ही जानती थी। बनते-बनते पांच -छः महीने तो लग ही जाएंगे।

रमानाथ—नहीं जी, बहुत जल्द बना देगा, कसम खा रहा था।

जालपा—ऊंह, जब चाहे दे।

उत्कंठा की चरम सीमा ही निराशा है। जालपा मुंह फेरकर लेटने जा रही थी, कि रमा ने जोर से कहकहा मारा। जालपा चौंक पड़ी। समझ गई, रमा ने शरारत की थी। मुस्कराती हुई बोली—तुम भी बड़े नटखट हो। क्या लाए?

रमानाथ— कैसा चकमा दिया?

जालपा—यह तो मरदों की आदत ही है, तुमने नई बात क्या की?

जालपा दोनों आभूषणों को देखकर निहाल हो गई। हृदय में आनंद की लहरें सी उठने लगीं। वह मनोभावों को छिपाना चाहती थी कि रमा उसे ओछी न समझे, लेकिन एक -एक अंग खिल जाता था। मुस्कराती हुई आंखें, दमकते हुए कपोल और खिले हुए अधर उसका भरम गंवाए देते थे। उसने हार गले में पहना, शीशफूल जूड़े में सजाया और हर्ष से उन्मत्त होकर बोली—तुम्हें आशीर्वाद देती हूं, ईश्वर तुम्हारी सारी मनोकामनाएं पूरी करे।

आज जालपा की अभिलाषा पूरी हुई, जो बचपन ही से उसकी कल्पनाओं का एक स्वप्न, उसकी आशाओं का क्रीड़ास्थल बनी हुई थी। आज उसकी वह साध पूरी हो गई। यदि मानकी यहां होती, तो वह सबसे पहले यह हार उसे दिखाती और कहती- तुम्हारा हार तुम्हें मुबारक हो।

रमा पर घड़ों नशा चढ़ा हुआ था। आज उसे अपना जीवन सफल जान पड़ा। अपने जीवन में आज पहली बार उसे विजय का आनंद प्राप्त हुआ।

जालपा ने पूछा—जाकर अम्मांजी को दिखा आऊं?

रमा ने नम्रता से कहा—अम्मां को क्या दिखाने जाओगी। ऐसी कौन-सी बड़ी चीजें हैं।

जालपा—अब मैं तुमसे साल-भर तक और किसी चीज के लिए न कहूंगी। इसके रुपये देकर ही मेरे दिल का बोझ हल्का होगा।

रमा गर्व से बोला—रुपये की क्या चिंता! हैं ही कितने!

जालपा—जरा अम्मांजी को दिखा आऊं, देखें क्या कहती हैं।

रमानाथ—मगर यह न कहना, उधार लाए हैं।

जालपा इस तरह दौड़ी हुई नीचे गई, मानो उसे वहां कोई निधि मिल जायगी।

आधी रात बीत चुकी थी। रमा आनंद की नींद सो रहा था। जालपा ने छत पर आकर एक बार आकाश की ओर देखा। निर्मल चांदनी छिटकी हुई थी—वह कार्तिक की चांदनी जिसमें संगीत की शांति हैं, शांति का माधुर्य और माधुर्य का उन्माद। जालपा ने कमरे में आकर अपनी संदूकची खोली और उसमें से वह कांच का चन्द्रहार निकाला जिसे एक दिन पहनकर उसने अपने को धन्य माना था। पर अब इस नए चन्द्रहार के सामने उसकी चमक उसी भांति मंद पड़ गई थी, जैसे इस निर्मल चन्द्रज्योति के सामने तारों का आलोक। उसने उस नकली हार को तोड़ डाला और उसके दानों को नीचे गली में फेंक दिया, उसी भांति जैसे पूजन समाप्त हो जाने के बाद कोई उपासक मिट्टी की मूर्तियों को जल में विसर्जित कर देता है।

## चौदह

उस दिन से जालपा के पति- स्नेह में सेवा-भाव का उदय हुआ। वह स्नान करने जाता, तो उसे अपनी धोती चुनी हुई मिलती। आले पर तेल और साबुन भी रक्खा हुआ पाता। जब दफ्तर जाने लगता, तो जालपा उसके कपड़े लाकर सामने रख देती। पहले पान मांगने पर मिलते थे, अब जबरदस्ती खिलाए जाते थे। जालपा उसका रुख देखा करती। उसे कुछ कहने की जरूरत न थी। यहां तक कि जब वह भोजन करने बैठता, तो वह पंखा झला करती। पहले वह बड़ी अनिच्छा से भोजन बनाने जाती थी और उस पर भी बेगार-सी टालती थी। अब बड़े प्रेम से रसोई में जाती। चीजें अब भी वही बनती थीं, पर उनका स्वाद बढ़ गया था। रमा को इस मधुर स्नेह के सामने वह दो गहने बहुत ही तुच्छ जंचते थे।

उधर जिस दिन रमा ने गंगू की दुकान से गहने खरीदे, उसी दिन दूसरे सराफों को भी उसके आभूषण-प्रेम की सूचना मिल गई। रमा जब उधर से निकलता, तो दोनों तरफ से दुकानदार उठ-उठकर उसे सलाम करते—आइए बाबूजी, पान तो खाते जाइए। दो-एक चीजें हमारी दुकान से तो देखिए।

रमा का आत्म-संयम उसकी साख को और भी बढ़ाता था। यहां तक कि एक दिन एक दलाल रमा के घर पर आ पहुंचा, और उसके नहीं- नहीं करने पर भी अपनी संदूकची खोल ही दी।

रमा ने उससे पीछा छुड़ाने के लिए कहा—भाई, इस वक्त मुझे कुछ नहीं लेना है। क्यों अपना और मेरा समय नष्ट करोगे। दलाल ने बड़े विनीत भाव से कहा—बाबूजी, देख तो लीजिए। पसंद आए, तो लीजिएगा, नहीं तो न लीजिएगा। देख लेने में तो कोई हर्ज नहीं है। आखिर रईसों के पास न जायं, तो किसके पास जायं। औरों ने आपसे गहरी रकमें मारीं, हमारे भाग्य में भी बदा होगा, तो आपसे चार पैसा पा जाएंगे। बहूजी और माईजी को दिखा लीजिए। मेरा मन तो कहता है कि आज आप ही के हाथों बोहनी होगी।

रमानाथ—औरतों के पसंद की न कहो, चीजें अच्छी होंगी ही। पसंद आते क्या देर लगती है, लेकिन भाई, इस वक्त हाथ खाली है।

दलाल हंसकर बोला—बाबूजी, बस ऐसा बात कह देते हैं कि वाह! आपका हुक्म हो जाय तो हजार पांच सौ आपके ऊपर निछावर कर दें। हम लोग आदमी का मिजाज देखते हैं, बाबूजी! भगवान् ने चाहा तो आज मैं सौदा करके ही उठूंगा।

दलाल ने संदूकची से दो चीजें निकालीं, एक तो नए फैशन का जड़ाऊ कंगन था और दूसरा कानों का रिंग। दोनों ही चीजें अपूर्व थीं। ऐसी चमक थी मानो दीपक जल रहा हो। दस बजे थे, दयानाथ दफ्तर जा चुके थे, वह भी भोजन करने जा रहा था। समय बिल्कुल न था, लेकिन इन दोनों चीजों को देखकर उसे किसी बात की सुध ही न रही। दोनों केस लिए हुए घर में आया। उसके हाथ में केस देखते ही दोनों स्त्रियां टूट पड़ीं और उन चीजों को निकाल-निकालकर देखने लगीं। उनकी चमक-दमक ने उन्हें ऐसा मोहित कर लिया कि गुण-दोष की विवेचना करने की उनमें शक्ति ही न रही

जागेश्वरी—आजकल की चीजों के सामने तो पुरानी चीजें कुछ जंचती ही नहीं।

जालपा—मुझे तो उन पुरानी चीजों को देखकर कै आने लगती है। न जाने उन दिनों औरतें कैसे पहनती थीं।

रमा ने मुस्कराकर कहा—तो दोनों चीजें पसंद हैं न?

जालपा—पसंद क्यों नहीं हैं, अम्मांजी, तुम ले लो।

जागेश्वरी ने अपनी मनोव्यथा छिपाने के लिए सिर झुका लिया। जिसका सारा जीवन गृहस्थी की चिंताओं में कट गया, वह आज क्या स्वप्न में भी इन गहनों के पहनने की आशा कर सकती थी! आह! उस दुखिया के जीवन की कोई साध ही न पूरी हुई। पति की आय ही कभी इतनी न हुई कि बाल-बच्चों के पालन-पोषण के उपरांत कुछ बचता। जब से घर की स्वामिनी हुई, तभी से मानो उसकी तपश्चर्या का आरंभ हुआ और सारी लालसाएं एक-एक करके धूल में मिल गईं। उसने उन आभूषणों की ओर से आंखें हटा लीं। उनमें इतना आकर्षण था कि उनकी ओर ताकते हुए वह डरती थी। कहीं उसकी विरक्ति का परदा न खुल जाय। बोली—मैं लेकर क्या करूंगी बेटी मेरे पहनने-ओढ़ने के दिन तो निकल गए। कौन लाया है बेटा? क्या दाम हैं इनके?

रमानाथ—एक सराफ दिखाने लाया है, अभी दाम-आम नहीं पूछे, मगर ऊंचे दाम होंगे। लेना तो था ही नहीं, दाम पूछकर क्या करता?

जालपा—लेना ही नहीं था, तो यहां लाए क्यों?

जालपा ने यह शब्द इतने आवेश में आकर कहे कि रमा खिसिया गया। उनमें इतनी उत्तेजना, इतना तिरस्कार भरा हुआ था कि इन गहनों को लौटा ले जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी। बोला—तो ले लूं?

जालपा—अम्मां लेने ही नही कहतीं तो लेकर क्या करोगे? क्या मुफ्त में दे रहा है?

रमानाथ—समझ लो मुफ्त ही मिलते हैं।

जालपा—सुनती हो अम्मांजी, इनकी बातें। आप जाकर लौटा आइए। जब हाथ में रुपये होंगे, तो बहुत गहने मिलेंगे।

जागेश्वरी ने मोहासक्त स्वर में कहा—रुपये अभी तो नहीं मांगता?

जालपा—उधार भी देगा, तो सूद तो लगा ही लेगा?

रमानाथ—तो लौटा दूं? एक बात चटपट तय कर डालो। लेना हो, ले लो, न लेना हो, तो

लौटा दो। मोह और दुविधा में न पड़ो।

जालपा को यह स्पष्ट बातचीत इस समय बहुत कठोर लगी। रमा के मुंह से उसे ऐसी आशा न थी। इंकार करना उसका काम था, रमा को लेने के लिए आग्रह करना चाहिए था। जागेश्वरी की ओर लालायित नेत्रों से देखकर बोली—लौटा दो। रात-दिन के तकाजे कौन सहेगा।

वह केसों को बंद करने ही वाली थी कि जागेश्वरी ने कंगन उठाकर पहन लिया, मानो एक क्षण-भर पहनने से ही उसकी साध पूरी हो जायगी। फिर मन में इस ओछेपन पर लज्जित होकर वह उसे उतारना ही चाहती थी कि रमा ने कहा—अब तुमने पहन लिया है अम्मां, तो पहने रहो। मैं तुम्हें भेंट करता हूं। जागेश्वरी की आंखें सजल हो गईं। जो लालसा आज तक न पूरी हो सकी, वह आज रमा की मातृ-भक्ति से पूरी हो रही थी; लेकिन क्या वह अपने प्रिय पुत्र पर ऋण का इतना भारी बोझ रख देगी ? अभी वह बेचारा बालक है, उसकी सामर्थ्य ही क्या है? न जाने रुपये जल्द हाथ आएं या देर में। दाम भी तो नहीं मालूम। अगर ऊंचे दामों का हुआ, तो बेचारा देगा कहां से? उसे कितने तकाजे सहने पड़ेंगे और कितना लज्जित होना पड़ेगा। कातर स्वर में बोली—नहीं बेटा, मैंने यों ही पहन लिया था। ले जाओ, लौटा दो।

माता का उदास मुख देखकर रमा का हृदय मातृ-प्रेम से हिल उठा। क्या ऋण के भय से वह अपनी त्यागमूर्ति माता की इतनी सेवा भी न कर सकेगा? माता के प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य भी तो है? बोला—रुपये बहुत मिल जाएंगे अम्मां, तुम इसकी चिंता मत करो।

जागेश्वरी ने बहू की ओर देखा। मानो कह रही थी कि रमा मुझ पर कितना अत्याचार कर रहा है।

जालपा उदासीन भाव से बैठी थी। कदाचित् उसे भय हो रहा था कि माताजी यह कंगन ले न लें। मेरा कंगन पहन लेना बहू को अच्छा नहीं लगा, इसमें जागेश्वरी को संदेह नहीं रहा। उसने तुरंत कंगन उतार डाला, और जालपा की ओर बढ़ाकर बोली—मैं अपनी ओर से तुम्हें भेंट करती हूं, मुझे जो कुछ पहनना-ओढ़ना था, ओढ़-पहन चुकी। अब जरा तुम पहनो, देखूं।

जालपा को इसमें जरा भी संदेह न था कि माताजी के पास रुपये की कमी नहीं। वह समझी, शायद आज वह पसीज गई हैं और कंगन के रुपए दे देंगी। एक क्षण पहले उसने समझा था कि रुपये रमा को देने पड़ेंगे, इसीलिए इच्छा रहने पर भी वह उसे लौटा देना चाहती थी। जब माताजी उसका दाम चुका रही थीं, तो वह क्यों इंकार करती; मगर ऊपरी मन से बोली—रुपये न हों, तो रहने दीजिए अम्मांजी, अभी कौन जल्दी है?

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा—तो तुम यह कंगन ले रही हो?

जालपा—अम्मांजी नहीं माननीं, तो मैं क्या करूं?

रमानाथ—और ये रिंग, इन्हें भी क्यों नहीं रख लेतीं?

जालपा—जाकर दाम तो पूछ आओ।

रमा ने अधीर होकर कहा—तुम इन चीजों को ले जाओ, तुम्हें दाम से क्या मतलब !

रमा ने बाहर आकर दलाल से दाम पूछा तो सन्नाटे में आ गया। कंगन सात सौ के थे, और रिंग डेढ़ सौ के। उसका अनुमान था कि कंगन अधिक-से-अधिक तीन सौ के होंगे और रिंग चालीस-पचास रुपये के। पछताए कि पहले ही दाम क्यों न पूछ लिए, नहीं तो इन चीजों को घर में ले जाने की नौबत ही क्यों आती? फेरते हुए शर्म आती थी; मगर कुछ भी हो, फेरना तो

पड़ेगा ही। इतना बड़ा बोझ वह सिर पर नहीं ले सकता। दलाल से बोला—बड़े दाम हैं भाई, मैंने तो तीन-चार सौ के भीतर ही आंका था। दलाल का नाम चरनदास था। बोला—दाम में एक कौड़ी फरक पड़ जाय सरकार, तो मुंह न दिखाऊं। धनीराम की कोठी का तो माल है, आप चलकर पूछ लें। दमड़ी रुपये की दलाली अलबत्ता मेरी है, आपकी मरजी हो दीजिए या न दीजिए।

रमानाथ—तो भाई इन दामों की चीजें तो इस वक्त हमें नहीं लेनी हैं।

चरनदास—ऐसी बात न कहिए, बाबूजी ! आपके लिए इतने रुपये कौन बड़ी बात है। दो महीने भी माल चल जाय तो उसके दूने हाथ आ जायंगे। आपसे बढ़कर कौन शौकीन होगा। यह सब रईसों के ही पसंद की चीजें हैं। गंवार लोग इनकी कद्र क्या जानें।

रमानाथ—साढ़े आठ सौ बहुत होते हैं भई !

चरनदास—रुपये का मुंह न देखिए बाबूजी, जब बहूजी पहनकर बैठेंगी, तो एक निगाह में सारे रुपये तर जायंगे।

रमा को विश्वास था कि जालपा गहनों का यह मूल्य सुनकर आप ही बिचक जायगी। दलाल से और ज्यादा बातचीत न की। अंदर जाकर बड़े जोर से हंसा और बोला—आपने इस कंगन का क्या दाम समझा था, मांजी ?

जागेश्वरी कोई जवाब देकर बेवकूफ न बनना चाहती थी—इन जड़ाऊ चीजों में नाप-तौल का तो कुछ हिसाब रहता नहीं जितने में तै हो जाय, वही ठीक है।

रमानाथ—अच्छा, तुम बताओ जालपा, इस कंगन का कितना दाम आंकती हो ?

जालपा—छः सौ से कम का नहीं।

रमा का सारा खेल बिगड़ गया। दाम का भय दिखाकर रमा ने जालपा को डरा देना चाहा था, मगर छः और सात में बहुत थोड़ा ही अंतर था। और संभव है चरनदास इतने ही पर राजी हो जाय। कुछ झेंपकर बोला—कच्चे नगीने नहीं हैं।

जालपा—कुछ भी हो, छः सौ से ज्यादा का नहीं।

रमानाथ—और रिंग का ?

जालपा—अधिक से अधिक सौ रुपये !

रमानाथ—यहां भी चूकीं, डेढ़ सौ मांगता है।

जालपा—जट्टू है कोई; हमें इन दामों लेना ही नहीं।

रमा की चाल उल्टी पड़ी, जालपा को इन चीजों के मूल्य के विषय में बहुत धोखा न हुआ था। आखिर रमा की आर्थिक दशा तो उससे छिपी न थी, फिर वह सात सौ रुपये की चीजों के लिए मुंह खोले बैठी थी। रमा को क्या मालूम था कि जालपा कुछ और ही समझकर कंगन पर लहराई थी। अब तो गला छूटने का एक ही उपाय था और वह यह कि दलाल छः सौ पर राजी न हो। बोला—वह साढ़े आठ से कौड़ी कम न लेगा।

जालपा—तो लौटा दो।

रमानाथ—मुझे तो लौटाते शर्म आती है। अम्मां, जरा आप ही दालान में चलकर कह दें, हमें सात सौ से ज्यादा नहीं देना है। देना होता तो दे दो, नहीं चले जाओ।

जागेश्वरी—हां रे, क्यों नहीं, उस दलाल से मैं बातें करने जाऊं !

जालपा—तुम्हीं क्यों नहीं कह देते, इसमें तो कोई शर्म की बात नहीं।

रमानाथ—मुझसे साफ जवाब न देते बनेगा। दुनिया भर की खुशामद करेगा। चुनी चुना—आप बड़े आदमी हैं, रईस हैं, राजा हैं। आपके लिए डेढ़ सौ क्या चीज है। मैं उसकी बातों में आ जाऊंगा।

जालपा—अच्छा, चलो मैं ही कहे देती हूं।

रमानाथ—वाह, फिर तो सब काम ही बन गया।

रमा पीछे दुबक गया। जालपा दालान में आकर बोली--जरा यहां आना जी, ओ सराफ! लूटने आए हो, या माल बेचने आए हो!

चरनदास बरामदे से उठकर द्वार पर आया और बोला—क्या हुक्म है, सरकार?

जालपा—माल बेचने आते हो, या जटने आते हो? सात सौ रुपये कंगन के मांगते हो?

चरनदास—सात सौ तो उसकी कारीगरी के दाम हैं, हूजूर!

जालपा—अच्छा तो जो उस पर सात सौ निछावर कर दे, उसके पास ले जाओ। रिंग के डेढ़ सौ कहते हो, लूट है क्या? मैं तो दोनों चीजों के सात सौ से अधिक न दूंगी।

चरनदास—बहूजी, आप तो अंधेर करती हैं। कहां साढ़े आठ सौ और कहां सात सौ?

जालपा—तुम्हारी खुशी, अपनी चीज ले जाओ।

चरनदास—इतने बड़े दरबार में आकर चीज लौटा ले जाऊं? आप यों ही पहनें। दस-पांच रुपये की बात होती, तो आपकी जबान से फेरता। आपसे झूठ नहीं कहता बहूजी, इन चीजों पर पैसा रुपया नफा है। उसी एक पैसे में दुकान का भाड़ा, बट्टा-खाता, दस्तूरी, दलाली सब समझिए। एक बात ऐसी समझकर कहिए कि हमें भी चार पैसे मिल जाएं। सवेरे-सवेरे लौटना न पड़े।

जालपा—कह दिए, वही सात सौ।

चरनदास ने ऐसा मुंह बनाया, मानो वह किसी धर्म-संकट में पड़ गया है। फिर बोला—सरकार, है तो घाटा ही, पर आपकी बात नहीं टालते बनती। रुपये कब मिलेंगे?

जालपा—जल्दी ही मिल जायंगे।

जालपा अंदर जाकर बोली—आखिर दिया कि नहीं सात सौ में? डेढ़ सौ साफ उड़ाए लिए जाता था। मुझे पछतावा हो रहा है कि कुछ और कम क्यों न कहा। व ला ' इस तरह गाहकों को लूटते हैं।

रमा इतना भारी बोझ लेते घबरा रहा था, लेकिन परिस्थिति ने कुछ ऐसा रंग पकड़ा कि बोझ उस पर लद ही गया।

जालपा तो खुशी की उमंग मे दोनो चीजें लिए ऊपर चली गई, पर रमा सिर झुकाए चिंता में डूबा खड़ा था। जालपा ने उसकी दशा जानकर भी इन चीजों को क्यों ठुकरा नहीं दिया, क्यों जोर देकर नहीं कहा—मैं न लूंगी, क्यों दुविधे में पड़ी रही। साढ़े पांच सौ भी चुकाना मुश्किल था, इतने और कहां से आएंगे। असल में गलती मेरी ही है। मुझे दलाल को दरवाजे से ही दुत्कार देना चाहिए था।

लेकिन उसने मन को समझाया। यह अपने हो गों का तो प्रायश्चित है। फिर आदमी इसीलिए तो कमाता है। रोटियों के लाले थोड़े ही थे?

भोजन करके जब रमा ऊपर कपड़े पहनने गया, तो जालपा आईने के सामने खड़ी कानों में रिंग पहन रही थी। उसे देखते ही बोली—आज किसी अच्छे का मुंह देखकर उठी थी। दो

चीजें मुफ्त हाथ आ गई।

रमा ने विस्मय से पूछा—मुफ्त क्यों? रुपये न देने पड़ेंगे?

जालपा—रुपये तो अम्मांजी देंगी?

रमानाथ—क्या कुछ कहती थीं?

जालपा—उन्होंने मुझे भेंट दिए हैं, तो रुपये कौन देगा?

रमा ने उसके भोलेपन पर मुस्कराकर कहा—यही समझकर तुमने यह चींजे ले लीं ? अम्मां को देना होता तो उसी वक्त दे देतीं जब गहने चोरी गए थे। क्या उनके पास रुपये न थे?

जालपा असमंजस में पड़कर बोली—तो मुझे क्या मालूम था। अब भी तो लौटा सकते हो। कह देना, जिसके लिए लिया था, उसे पसंद नहीं आया।

यह कहकर उसने तुरंत कानों से रिंग निकाल लिए। कंगन भी उतार डाले और दोनों चीजें केस में रखकर उसकी तरफ इस तरह बढ़ाई, जैसे कोई बिल्ली चूहे से खेल रही हो। वह चूहे को अपनी पकड़ से बाहर नहीं होने देती। उसे छोड़कर भी नहीं छोड़ती। हाथों को फैलाने का साहस नहीं होता था। क्या उसके हृदय की भी यही दशा न थी? उसके मुख पर हवाइयां उड़ रही थीं। क्यों वह रमा की ओर न देखकर भूमि की ओर देख रही थी ? क्यों सिर ऊपर न उठाती थी? किसी संकट से बच जाने में जो हार्दिक आनंद होता है, वह कहां था? उसकी दशा ठीक उस माता की-सी थी, जो अपने बालक को विदेश जाने की अनुमति दे रही हो। वही विवशता, वही कातरता, वही ममता इस समय जालपा के मुख पर उदय हो रही थी।

रमा उसके हाथ से केसों को ले सके, इतना कड़ा संयम उसमें न था। उसे तकाजे सहना, लज्जित होना, मुंह छिपाए फिरना, चिंता की आग में जलना, सब कुछ सहना मजूर था। ऐसा काम करना नामंजूर था जिससे जालपा का दिल टूट जाए, वह अपने को अभागिन समझने लगे। उसका सारा ज्ञान, सारी चेष्टा, सारा विवेक इस आघात का विरोध करने लगा। प्रेम और परिस्थितियों के संघर्ष में प्रेम ने विजय पाई।

उसने मुस्कराकर कहा—रहने दो, अब ले लिया है, तो क्या लौटाएं। अम्माजी भी हसेंगी।

जालपा ने बनावटी कांपते हुए कंठ से कहा—अपनी चादर देखकर ही पांव फैलाना चाहिए। एक नई विपत्ति मोल लेने की क्या जरूरत है !

रमा ने मानो जल में डूबते हुए कहा—ईश्वर मालिक है।

और तुरंत नीचे चला गया।

हम क्षणिक मोह और संकोच में पड़कर अपने जीवन के सुख और शांति का कैसे होम कर देते हैं ! अगर जालपा मोह के इस झोंके में अपने को स्थिर रख सकती, अगर रमा संकोच के आगे सिर न झुका देता, दोनों के हृदय में प्रेम का सच्चा प्रकाश होता, तो वे पथ-भ्रष्ट होकर सर्वनाश की ओर न जाते।

ग्यारह बज गए थे। दफ्तर के लिए देर हो रही थी, पर रमा इस तरह जा रहा था, जैसे कोई अपने प्रिय बंधु की दाह-क्रिया करके लौट रहा हो।

# पंद्रह

जालपा अब वह एकांतवासिनी रमणी न थी, जो दिन-भर मुंह लपेटे उदास पड़ी रहती थी। उसे अब घर में बैठना अच्छा नहीं लगता था। अब तक तो वह मजबूर थी, कहीं आ-जा न सकती थी। अब ईश्वर की दया से उसके पास भी गहने हो गए थे। फिर वह क्यों मन मारे घर में पड़ी रहती। वस्त्राभूषण कोई मिठाई तो नहीं जिसका स्वाद एकांत में लिया जा सके। आभूषणों को संदूकचो में बंद करके रखने से क्या फायदा। मुहल्ले या बिरादरी में कहीं से बुलावा आता, तो वह सास के साथ अवश्य जाती। कुछ दिनों के बाद सास की जरूरत भी न रही। वह अकेली आने-जाने लगी। फिर कार्य-प्रयोजन की कैद भी नहीं रही। उसके रूप-लावण्य, वस्त्र-आभूषण और शील-विनय ने मुहल्ले की स्त्रियों में उसे जल्दी ही सम्मान के पद पर पहुंचा दिया। उसके बिना मंडली सूनी रहती थी। उसका कंठ-स्वर इतना कोमल था, भाषण इतना मधुर, छवि इतनी अनुपम कि वह मंडली की रानी मालूम होती थी। उसके आने से मुहल्ले के नारी-जीवन में जान-सी पड़ गई। नित्य ही कहीं-न-कहीं जमाव हो जाता। घंटे-दो घंटे गा-बजाकर या गपशप करके रमणियां दिल बहला लिया करतीं। कभी किसी के घर, कभी किसी के घर, फागुन में पंद्रह दिन बराबर गाना होता रहा। जालपा ने जैसा रूप पाया था, वैसा ही उदार हृदय भी पाया था। पान-पत्ते का खर्च प्राय: उसी के मत्थे पड़ता। कभी-कभी गायनें बुलाई जातीं; उनकी सेवा-सत्कार का भार उसी पर था। कभी-कभी वह स्त्रियों के साथ गंगा-स्नान करने जाती, तांगे का किराया और गंगा-तट पर जलपान का खर्च भी उसके मत्थे जाता। इस तरह उसके दो तीन रुपये रोज उड़ जाते थे। रमा आदर्श पति था। जालपा अगर मांगती तो प्राण तक उसके चरणों पर रख देता। रुपये की हकीकत ही क्या थी? उसका मुंह जोहता रहता था। जालपा उससे इन जमघटों की रोज चर्चा करती। उसका स्त्री-समाज में कितना आदर-सम्मान है, यह देखकर वह फूला न समाता था।

एक दिन इस मंडली को सिनेमा देखने की धुन सवार हुई। वहां की बहार देखकर सब-की-सब मुग्ध हो गईं। फिर तो आए दिन सिनेमा की सैर होने लगी। रमा को अब तक सिनेमा का शौक न था। शौक होता भी तो क्या करता। अब हाथ में पैसे आने लगे थे, उस पर जालपा का आग्रह, फिर भला वह क्यों न जाता? सिनेमा-गृह में ऐसी कितनी ही रमणियां मिलतीं, जो मुंह खोले नि:संकोच हंसती-बोलती रहती थीं। उनकी आजादी गुप्तरूप से जालपा पर भी जादू डालती जाती थी। वह घर से बाहर निकलते ही मुंह खोल लेती; मगर संकोचवश परदेवाली स्त्रियों के ही स्थान पर बैठती। उसकी कितनी इच्छा होती कि रमा भी उसके साथ बैठता। आखिर वह उन फैशनेबुल औरतों से किस बात में कम है? रूप-रंग में वह हेठी नहीं। सजधज में किसी से कम नहीं। बातचीत करने में कुशल। फिर वह क्यों परदेवालियों के साथ बैठे। रमा बहुत शिक्षित न होने पर भी देश और काल के प्रभाव से उदार था। पहले तो वह परदे का ऐसा अनन्य भक्त था, कि माता को कभी गंगा-स्नान कराने लिवा जाता, तो पंडों तक से न बोलने देता। कभी माता की हंसी मर्दाने में सुनाई देती, तो आकर बिगड़ता—तुमको जरा भी शर्म नहीं है अम्मां! बाहर लोग बैठे हुए हैं, और तुम हंस रही हो। मां लज्जित हो जाती थीं। किंतु अवस्था के साथ रमा का यह लिहाज गायब होता जाता था। उस पर जालपा की रूप-छटा उसके साहस को और भी उत्तेजित करती थी। जालपा रूपहीन, काली-कलूटी, फूहड़ होती तो

वह जबरदस्ती उसको परदे में बैठाता। उसके साथ घूमने या बैठने में उसे शर्म आती। जालपा-जैसी अनन्य सुंदरी के साथ सैर करने में आनंद के साथ गौरव भी तो था। वहां के सभ्य समाज की कोई महिला रूप, गठन और शृंगार में जालपा की बराबरी न कर सकती थी। देहात की लड़की होने पर भी शहर के रंग में वह इस तरह रंग गई थी, मानो जन्म से शहर ही में रहती आई है। थोड़ी-सी कमी अंग्रेजी शिक्षा की थी, उसे भी रमा पूरी किए देता था।

मगर परदे का यह बंधन टूटे कैसे। भवन में रमा के कितने ही मित्र, कितनी ही जान पहचान के लोग बैठे नजर आते थे। वे उसे जालपा के साथ बैठे देखकर कितना हंसेंगे। आखिर एक दिन उसने समाज के सामने ताल ठोंककर खड़े हो जाने का निश्चय कर ही लिया। जालपा से बोला—आज हम-तुम सिनेमाघर में साथ बैठेंगे।

जालपा के हृदय में गुदगुदी-सी होने लगी। हार्दिक आनंद को आभा चेहरे पर झलक उठी। बोली—सच ! नहीं भाई, साथवालियां जीने न देंगी।

रमानाथ—इस तरह डरने से तो फिर कभी कुछ न होगा। यह क्या स्वांग है कि स्त्रियां मुंह छिपाए चिक की आड़ में बैठी रहें।

इस तरह यह मामला भी तय हो गया। पहले दिन दोनों झेंपते रहे, लेकिन दूसरे दिन से हिम्मत खुल गई। कई दिनों के बाद वह समय भी आया कि रमा और जालपा संध्या समय पार्क में साथ-साथ टहलते दिखाई दिए।

जालपा ने मुस्कराकर कहा—कहीं बाबूजी देख लें तो?

रमानाथ—तो क्या, कुछ नहीं।

जालपा—मैं तो मारे शर्म के गड़ जाऊं।

रमानाथ-अभी तो मुझे भी शर्म आएगी, मगर बाबूजी खुद ही इधर न आएंगे।

जालपा-और जो कहीं अम्मांजी देख लें !

रमानाथ—अम्मां से कौन डरता है, दो दलीलों में ठीक कर दूंगा।

दस ही पांच दिन में जालपा ने नए महिला-समाज में अपना रंग जमा लिया। उसने इस समाज में इस तरह प्रवेश किया, जैसे कोई कुशल वक्ता पहली बार परिषद् के मंच पर आता है। विद्वान् लोग उसकी उपेक्षा करने की इच्छा होने पर भी उसकी प्रतिभा के सामने सिर झुका देते हैं। जालपा भी 'आई, देखा और विजय कर लिया।' उसके सौंदर्य में वह गरिमा, वह कठोरता, वह शान, वह तेजस्विता थी जो कुलीन महिलाओं के लक्षण हैं। पहले ही दिन एक महिला ने जालपा को चाय का निमंत्रण दे दिया और जालपा इच्छा न रहने पर भी उसे अस्वीकार न कर सकी।

जब दोनों प्राणी वहां से लौटे, तो रमा ने चिंतित स्वर में कहा—तो कल इसकी चाय-पार्टी में जाना पड़ेगा?

जालपा—क्या करती? इंकार करते भी तो न बनता था !

रमानाथ—तो सबेरे तुम्हारे लिए एक अच्छी-सी साड़ी ला दूं?

जालपा—क्या मेरे पास साड़ी नहीं है, जरा देर के लिए पचास-साठ रुपये खर्च करने से फायदा !

रमानाथ—तुम्हारे पास अच्छी साड़ी कहां है। इसकी साड़ी तुमने देखी? ऐसी ही तुम्हारे लिए भी लाऊंगा।

जालपा ने विवशता के भाव से कहा—मुझे साफ कह देना चाहिए था कि फुरसत नहीं है।

रमानाथ—फिर इनकी दावत भी तो करनी पड़ेगी।

जालपा—यह तो बुरी विपत्ति गले पड़ी।

रमानाथ—विपत्ति कुछ नहीं है, सिर्फ यही खयाल है कि मेरा मकान इस काम के लायक हीं। मेज, कुर्सियां, चाय के सेट रमेश के यहां से मांग लाऊंगा, लेकिन घर के लिए क्या करूं!

जालपा—क्या यह जरूरी है कि हम लोग भी दावत करें?

रमा ने ऐसी भद्दी बात का कुछ उत्तर न दिया। उसे जालपा के लिए एक जूते की जोड़ी और सुंदर कलाई की घड़ी की फिक्र पैदा हो गई। उसके पास कौड़ी भी न थी। उसका खर्च रोज ढ़ता जाता था। अभी तक गहने वालों को एक पैसा भी देने की नौबत न आई थी। एक बार गंगू हाराज ने इशारे से तकाजा भी किया था; लेकिन यह भी तो नहीं हो सकता कि जालपा फटे ालों चाय-पार्टी में जाय। नहीं, जालपा पर वह इतना अन्याय नहीं कर सकता। इस अवसर पर ालपा की रूप-शोभा का सिक्का बैठ जायगा। सभी तो आज चमाचम साड़ियां पहने हुए थीं। ड़ाऊ कंगन और मोतियों के हारों की भी तो कमी न थी; पर जालपा अपने सादे आवरण में नसे कोसों आगे थी। उसके सामने एक भी नहीं जंचती थी। यह मेरे पूर्व कर्मों का फल है कि ुझे ऐसी सुंदरी मिली। आखिर यही तो खाने-पहनने और जीवन का आनद उठाने के दिन हैं। जब जवानी ही में ''ग्य न उठाया, तो बुढ़ापे में क्या कर लेंगे ! बुढ़ापे में मान लिया धन हुआ ही ो क्या। यौवन बीत जाने पर विवाह किस काम का? साड़ी और घड़ी लाने की उसे धुन सवार हो गई। रातभर तो उसने सब्र किया। दूसरे दिन दोनों चीजें लाकर ही दम लिया।

जालपा ने झुंझलाकर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था कि इन चीजों का काम नहीं है। डेढ़ सौ से कम की न होंगी?

रमानाथ—डेढ़ सौ ! इतना फजूल-खर्च मैं नहीं हूं।

जालपा—डेढ़ सौ से कम की ये चीजें नहीं हैं।

जालपा ने घड़ी कलाई में बांध ली और साड़ी को खोलकर मंत्रमुग्ध नेत्रों से देखा।

रमानाथ—तुम्हारी कलाई पर यह घड़ी कैसी खिल रही है ! मेरे रुपये वसूल हो गए।

जालपा—सच बताओ, कितने रुपये खर्च हुए?

रमानाथ—सच बता दूं? एक सौ पैंतीस रुपये। पचहत्तर रुपये की साड़ी, दस के जूते और पचास की घड़ी।

जालपा—यह डेढ़ सौ ही हुए। मैंने कुछ बढ़ाकर थोड़े कहा था; मगर यह सब रुपये अदा कैसे होंगे? उस चुड़ैल ने व्यर्थ ही मुझे निमंत्रण दे दिया। अब मैं बाहर जाना ही छोड़ दूंगी।

रमा भी इसी चिंता में मग्न था, पर उसने अपने भाव को प्रकट करके जालपा के हर्ष में बाधा न डाली। बोला—सब अदा हो जायगा।

जालपा ने तिरस्कार के भाव से कहा—कहां से अदा हो जाएगा, जरा सुनूं। कौड़ी तो बचती नहीं, अदा कहां से हो जायगा? वह तो कहो बाबूजी घर का खर्च संभाले हुए हैं, नहीं तो मालूम होता। क्या तुम समझते हो कि मैं गहने और सा.़ियों पर मरती हूं? इन चीजों को लौटा आओ।

रमा ने प्रेमपूर्ण नेत्रों से कहा—इन चीजों को रख लो। फिर तुमसे बिना पूछे कुछ न लाऊंगा।

संध्या समय जब जालपा ने नई साड़ी और नए जूते पहने, घड़ी कलाई पर बांधी और आईने में अपनी सूरत देखी, तो मारे गर्व और उल्लास के उसका मुखमंडल प्रज्वलित हो उठा। उसने उन चीजों के लौटाने के लिए सच्चे दिल से कहा हो, पर इस समय वह इतना त्याग करने को तैयार न थी। संध्या समय जालपा और रमा छावनी की ओर चले। महिला ने केवल बंगले का नंबर बतला दिया था। बंगला आसानी से मिल गया। फाटक पर साइनबोर्ड था–'इन्दुभूषण, ऐडवोकेट, हाईकोर्ट।' अब रमा को मालूम हुआ कि वह महिला पं० इन्दुभूषण की पत्नी थी। पंडितजी काशी के नामी वकील थे। रमा ने उन्हें कितनी ही बार देखा था, पर इतने बड़े आदमी से परिचय का सौभाग्य उसे कैसे होता। छः महीने पहले वह कल्पना भी न कर सकता था, कि किसी दिन उसे उनके घर निमंत्रित होने का गौरव प्राप्त होगा; पर जालपा की बदौलत आज वह अनहोनी बात हो गई। वह काशी के बड़े वकील का मेहमान था।

रमा ने सोचा था कि बहुत से स्त्री-पुरुष निमंत्रित होंगे, पर यहां वकील साहब और उनकी पत्नी रतन के सिवा और कोई न था। रतन इन दोनों को देखते ही बरामदे में निकल आई और उनसे हाथ मिलाकर अंदर ले गई और अपने पति से उनका परिचय कराया। पंडितजी ने आरामकुर्सी पर लेटे-ही-लेटे दोनों मेहमानों से हाथ मिलाया और मुस्कराकर कहा–क्षमा कीजिएगा बाबू साहब, मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। आप यहां किसी आफिस में हैं?

रमा ने झेंपते हुए कहा–जी हां, म्युनिसिपल आफिस में हूं। अभी हाल ही में आया हूं। कानून की तरफ जाने का इरादा था, पर नए वकीलों की यहां जो हालत हो रही है, उसे देखकर हिम्मत न पड़ी।

रमा ने अपना महत्त्व बढ़ाने के लिए जरा-सा झूठ बोलना अनुचित न समझा। इसका असर बहुत अच्छा हुआ। अगर वह साफ कह देता, मैं पच्चीस रुपये का क्लर्क हूं, तो शायद वकील साहब उससे बातें करने में अपना अपमान समझते। बोले–आपने बहुत अच्छा किया जो इधर नहीं आए। वहां दो-चार साल के बाद अच्छी जगह पर पहुंच जाएंगे, यहां संभव है दस साल तक आपको कोई मुकदमा ही न मिलता।

जालपा को अभी तक संदेह हो रहा था कि रतन वकील साहब की बेटी है या पत्नी। वकील साहब की उम्र साठ से नीचे न थी। चिकनी चांद आस-पास के सफेद बालों के बीच में वारनिश की हुई लकड़ी की भांति चमक रही थी। मूंछें साफ थीं, पर माथे की शिकन और गालों की झुर्रियां बतला रही थीं कि यात्री संसार-यात्रा से थक गया है। आरामकुर्सी पर लेटे हुए वह ऐसे मालूम होते थे, जैसे बरसों के मरीज हों। हां, रंग गोरा था, जो साठ साल की गर्मी-सर्दी खाने पर भी उड़ न सका था। ऊंची नाक थी, ऊंचा माथा और बड़ी-बड़ी आंखें, जिनमें अभिमान भरा हुआ था। उनके मुख से ऐसा भासित होता था कि उन्हें किसी से बोलना या किसी बात का जवाब देना भी अच्छा नहीं लगता। इसके प्रतिकूल रतन सांवली, सुगठित युवती थी, बड़ी मिलनसार, जिसे गर्व ने छुआ तक न था। सौंदर्य का उसके रूप में कोई लक्षण न था। नाक चिपटी थी, मुख गोल, आंखें छोटी, फिर भी वह रानी-सी लगती थी। जालपा उसके सामने ऐसी लगती थी, जैसे सूर्यमुखी के सामने जूही का फूल।

चाय आई। मेवे, फल, मिठाई, बर्फ की कुल्फी, सब मेजों पर सजा दिए गए। रतन और जालपा एक मेज पर बैठीं। दूसरी मेज रमा और वकील साहब की थी। रमा मेज के सामने जा

बैठा; मगर वकील साहब अभी आरामकुर्सी पर लेटे ही हुए थे।

रमा ने मुस्कराकर वकील साहब से कहा—आप भी तो आएं।

वकील साहब ने लेटे-लेटे मुस्कराकर कहा—आप शुरू कीजिए, मैं भी आया जाता हूं।

लोगों ने चाय पी, फल खाए; पर वकील साहब के सामने हंसते-बोलते रमा और जालपा दोनों ही झिझकते थे। जिंदादिल बूढ़ों के साथ तो सोहबत का आनंद उठाया जा सकता है, लेकिन ऐसे रूखे, निर्जीव मनुष्य जवान भी हों, तो दूसरों को मुर्दा बना देते हैं। वकील साहब ने बहुत आग्रह करने पर दो घूंट चाय पी। दूर से बैठे तमाशा देखते रहे। इसलिए जब रतन ने जालपा से कहा—चलो, हम लोग जरा बागीचे की सैर करें, इन दोनों महाशयों को समाज और नीति की विवेचना करने दें, तो मानो जालपा के गले का फंदा छूट गया। रमा ने पिंजड़े में बंद पक्षी की भांति उन दोनों को कमरे से निकलते देखा और एक लंबी सांस ली। वह जानता कि यहां यह विपत्ति उसके सिर पड़ जायगी, तो आने का नाम न लेता।

वकील साहब ने मुंह सिकोड़कर पहलू बदला और बोले—मालूम नहीं, पेट में क्या हो गया है, कि कोई चीज हजम ही नहीं होती। दूध भी नहीं हजम होता। चाय को लोग न जाने क्यों इतने शौक से पीते हैं, मुझे तो इसकी सूरत से भी डर लगता है। पीते ही बदन में ऐंठन-सी होने लगती है और आंखों से चिनगारियां-सी निकलने लगती हैं।

रमा ने कहा—आपने हाजमे की कोई दवा नहीं की?

वकील साहब ने अरुचि के भाव से कहा—दवाओं पर मुझे रत्ती भर भी विश्वास नहीं। इन वैद्यों और डाक्टरों से ज्यादा बेसमझ आदमी संसार में न मिलेंगे। किसी में निदान की शक्ति नहीं। दो वैद्यों, दो डाक्टरों के निदान कभी न मिलेंगे। लक्षण वही है, पर एक वैद्य रक्तदोष बतलाता है, दूसरा पित्तदोष, एक डाक्टर फेफड़े का सूजन बतलाता है, दूसरा आमाशय का विकार। बस, अनुमान से दवा की जाती है और निर्दयता से रोगियों की गर्दन पर छुरी फेरी जाती है। इन डाक्टरों ने मुझे तो अब तक जहन्नुम पहुंचा दिया होता, पर मैं उनके पंजे से निकल भागा। योगाभ्यास की बड़ी प्रशंसा सुनता हूं पर कोई ऐसे महात्मा नहीं मिलते, जिनसे कुछ सीख सकूं। किताबों के आधार पर कोई क्रिया करने से लाभ के बदले हानि होने का डर रहता है।

यहां तो आरोग्य-शास्त्र का खंडन हो रहा था, उधर दोनों महिलाओं में प्रगाढ़ स्नेह की बातें हो रही थीं।

रतन ने मुस्कराकर कहा—मेरे पतिदेव को देखकर तुम्हें बड़ा आश्चर्य हुआ होगा।

जालपा को आश्चर्य ही नहीं, भ्रम भी हुआ था। बोली—वकील साहब का दूसरा विवाह होगा।

रतन—हां, अभी पांच ही बरस तो हुए हैं। इनकी पहली स्त्री को मरे पैंतीस वर्ष हो गए। उस समय इनकी अवस्था कुल पच्चीस साल की थी। लोगों ने समझाया, दूसरा विवाह कर लो; पर इनके एक लड़का हो चुका था, विवाह करने से इंकार कर दिया और तीस साल तक अकेले रहे, मगर आज पांच वर्ष हुए, जवान बेटे का देहांत हो गया, तब विवाह करना आवश्यक हो गया। मेरे मां-बाप न थे। मामाजी ने मेरा पालन किया था। कह नहीं सकती, इनसे कुछ ले लिया या इनकी सज्जनता पर मुग्ध हो गए। मैं तो समझती हूं, ईश्वर की यही इच्छा थी, लेकिन मैं जब से आई हूं, मोटी होती चली जाती हूं। डाक्टरों का कहना है कि तुम्हें संतान नहीं हो सकती।

*बहन, मुझे तो संतान की लालसा नहीं है; लेकिन मेरे पति मेरी दशा देखकर बहुत दुखी रहते हैं। मैं ही इनके सब रोगों की जड़ हूं। आज ईश्वर मुझे एक संतान दे दे, तो इनके सारे रोग भाग जाएंगे। कितना चाहती हूं कि दुबली हो जाऊं, गरम पानी से टब-स्नान करती हूं, रोज पैदल घूमने जाती हूं, घी-दूध कम खाती हूं, भोजन आधा कर दिया है, जितना परिश्रम करते बनता है; करती हूं, फिर भी दिन-दिन मोटी ही होती जाती हूं। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं।*

जालपा--वकील साहब तुमसे चिढ़ते होंगे?

रतन--नहीं बहन, बिल्कुल नहीं, भूलकर भी कभी मुझसे इसकी चर्चा नहीं की। उनके मुंह से कभी एक शब्द भी ऐसा नहीं निकला, जिससे उनकी मनोव्यथा प्रकट होती, पर मैं जानती हूं, यह चिंता उन्हें मारे डालती है। अपना कोई बस नहीं है। क्या करूं। मैं जितना चाहूं, खर्च करूं, जैसे चाहूं रहूं, कभी नहीं बोलते। जो कुछ पाते हैं, लाकर मेरे हाथ पर रख देते हैं। समझाती हूं, अब तुम्हें वकालत करने की क्या जरूरत है, आराम क्यों नहीं करते; पर इनसे घर पर बैठे रहा नहीं जाता। केवल दो चपातियों से नाता है। बहुत जिद की तो दो-चार दाने अंगूर खा लिए। मुझे तो उन पर दया आती है, अपने से जहां तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूं। आखिर वह मेरे ही लिए तो अपनी जान खपा रहे हैं।

जालपा--ऐसे पुरुष को देवता समझना चाहिए। यहां तो एक स्त्री मरी नहीं कि दूसरा ब्याह रच गया। तीस साल अकेले रहना सबका काम नहीं है।

रतन--हां बहन, हैं तो देवता ही। अब भी कभी उस स्त्री की चर्चा आ जाती है, तो रोने लगते हैं। तुम्हें उनकी तस्वीर दिखाऊंगी। देखने में जितने कठोर मालूम होते हैं, भीतर से इनका हृदय उतना ही नरम है। कितने ही अनाथों, विधवाओं और गरीबों के महीने बांध रक्खे हैं। तुम्हारा वह कंगन तो बड़ा सुंदर है !

जालपा--हां, बड़े अच्छे कारीगर का बनाया हुआ है।

रतन--मैं तो यहां किसी को जानती ही नहीं। वकील साहब को गहनों के लिए कष्ट देने की इच्छा नहीं होती। मामूली सुनारों से बनवाते डर लगता है, न जाने क्या मिला दें। मेरी सपत्नीजी के सब गहने रक्खे हुए हैं; लेकिन वह मुझे अच्छे नहीं लगते। तुम बाबू रमानाथ से मेरे लिए ऐसा ही एक जोड़ा कंगन बनवा दो।

जालपा--देखिए, पूछती हूं।

रतन--आज तुम्हारे आने से जी बहुत खुश हुआ। दिनभर अकेली पड़ी रहती हूं। जी घबड़ाया करता है। किसके पास जाऊं? किसी से परिचय नहीं और न मेरा मन ही चाहता है कि उनसे मैत्री करूं। दो-एक महिलाओं को बुलाया, उनके घर गई, चाहा कि उनसे बहनापा जोड़ लूं; लेकिन उनके आचार-विचार देखकर उनसे दूर रहना ही अच्छा मालूम हुआ। दोनों ही मुझे उल्लू बनाकर जटना चाहती थीं। मुझसे रुपये उधार ले गईं और आज तक दे रही हैं। शृंगार की चीजों पर मैंने उनका इतना प्रेम देखा, कि कहते लज्जा आती है। तुम घड़ी-आध- घड़ी के लिए रोज चली आया करो बहन।

जालपा--वाह इससे अच्छा और क्या होगा !

रतन--मैं मोटर भेज दिया करूंगी।

जालपा--क्या जरूरत है। तांगे तो मिलते ही हैं।

रतन--न-जाने क्यों तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता। तुम्हें पाकर रमानाथजी अपना

भाग्य सराहते होंगे।

जालपा ने मुस्कराकर कहा—भाग्य-वाग्य तो कहीं नहीं सराहते, घुड़कियां जमाया करते हैं।

रतन—सच ! मुझे तो विश्वास नहीं आता। लो, वह भी तो आ गए। पूछना, ऐसा दूसरा कंगन बनवा देंगे।

जालपा—(रमा से) क्यों चरनदास से कहा जाए तो ऐसा कंगन कितने दिन में बना देगा ! रतन ऐसा ही कंगन बनवाना चाहती हैं।

रमा ने तत्परता से कहा—हां, बना क्यों नहीं सकता। इससे बहुत अच्छे बना सकता है।

रतन—इस जोड़े के क्या लिए थे?

जालपा—आठ सौ के थे।

रतन—कोई हरज नहीं; मगर बिल्कुल ऐसा ही हो, इसी नमूने का।

रमा—हां-हां, बनवा दूंगा।

रतन—मगर भाई, अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं।

रुपये के मामले में पुरुष महिलाओं के सामने कुछ नहीं कह सकता। क्या वह कह सकता है, इस वक्त मेरे पास रुपये नहीं हैं। वह मर जाएगा, पर यह उज्र न करेगा। वह कर्ज लेगा, दूसरों की खुशामद करेगा; पर स्त्री के सामने अपनी मजबूरी न दिखाएगा। रुपये की चर्चा को ही वह तुच्छ समझता है। जालपा पति की आर्थिक दशा अच्छी तरह जानती थी। पर यदि रमा ने इस समय कोई बहाना कर दिया होता, तो उसे बहुत बुरा मालूम होता। वह मन में डर रही थी कि कहीं यह महाशय यह न कह बैठें, सराफ से पूछकर कहूंगा। उसका दिल धड़क रहा था, जब रमा ने वीरता के साथ कहा—हां-हां, रुपये की कोई बात नहीं, जब चाहे दे दीजिएगा, तो वह खुश हो गई।

रतन—तो कब तक आशा करूं?

रमानाथ—मैं आज ही सराफ से कह दूंगा, तब भी पंद्रह दिन तो लग ही जाएंगे।

जालपा—अब की रविवार को मेरे ही घर चाय पीजिएगा।

रतन ने निमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया और दोनों आदमी विदा हुए। घर पहुंचे, तो शाम हो गई थी। रमेश बाबू बैठे हुए थे। जालपा तो तांगे से उतरकर अंदर चली गई, रमा रमेश बाबू के पास जाकर बोला—क्या आपको आए देर हुई?

रमेश—नहीं, अभी तो चला आ रहा हूं। क्या वकील साहब के यहां गए थे?

रमा—जी हां, तीन रुपये की चपत पड़ गई।

रमेश—कोई हरज नहीं, यह रुपये वसूल हो जाएंगे। बड़े आदमियों से राह-रस्म हो जाय तो बुरा नहीं है, बड़े-बड़े काम निकलते हैं। एक दिन उन लोगों को भी तो बुलाओ।

रमा—अबकी इतवार को चाय की दावत दे आया हूं।

रमेश—कहो तो मैं भी आ जाऊं। जानते हो न वकील साहब के एक भाई इंजीनियर हैं। मेरे एक साले बहुत दिनों से बेकार बैठे हैं। अगर वकील साहब उसकी सिफारिश कर दें, तो गरीब को जगह मिल जाय। तुम जरा मेरा इंट्रोडक्शन करा देना, बाकी और सब मैं कर लूंगा। पार्टी का इंतजाम ईश्वर ने चाहा, तो ऐसा होगा कि मेमसाहब खुश हो जाएंगी। चाय के सेट, शीशे के रंगीन गुलदान और फानूस मैं ला दूंगा। कुर्सियां, मेजें, फर्श सब मेरे ऊपर छोड़ दो। न

कुली की जरूरत, न मजूर की। उन्हीं मूसलचंद को रगेदूंगा।

रमानाथ—तब तो बड़ा मजा रहेगा। मैं तो बड़ी चिंता में पड़ा हुआ था।

रमेश—चिंता की कोई बात नहीं, उसी लौंडे को जोत दूंगा। कहूंगा, जगह चाहते हो तो कारगुजारी दिखाओ। फिर देखना, कैसी दौड़-धूप करता है।

रमानाथ—अभी दो-तीन महीने हुए आप अपने साले को कहीं नौकर रखा चुके हैं न?

रमेश—अजी, अभी छः और बाकी हैं। पूरे सात जीव हैं। जरा बैठ जाओ, जरूरी चीजों का सूची बना ली जाए। आज ही से दौड़-धूप होगी, तब सब चीजें जुटा सकूंगा। और कितने मेहमान होंगे?

रमानाथ—मेम साहब होंगी, और शायद वकील साहब भी आएं।

रमेश—यह बहुत अच्छा किया। बहुत-से आदमी हो जाते, तो भभ्भड़ हो जाता। हमें तो मेम साहब से काम है। ठलुओं की खुशामद करने से क्या फायदा?

दोनों आदमियों ने सूची तैयार की। रमेश बाबू ने दूसरे ही दिन से सामान जमा करना शुरू किया। उनकी पहुंच अच्छे-अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी-अच्छी चीजें बटोर लाए, सारा घर जगमगा उठा। दयानाथ भी इन तैयारियों में शरीक थे। चीजों को करीने से सजाना उनका काम था। कौन गमला कहां रक्खा जाय, कौन तस्वीर कहां लटकाई जाय, कौन-सा गलीचा कहां बिछाया जाय, इन प्रश्नों पर तीनों मनुष्यों में घंटों वाद-विवाद होता था। दफ्तर जाने के पहले और दफ्तर से आने के बाद तीनों इन्हीं कामों में जुट जाते थे। एक दिन इस बात पर बहस छिड़ गई कि कमरे में आईना कहां रखा जाय। दयानाथ कहते थे, इस कमरे में आईने की जरूरत नहीं। आईना पीछे वाले कमरे में रखना चाहिए। रमेश इसका विरोध कर रहे थे। रमा दुविधे में चुपचाप खड़ा था। न इनकी-सी कह सकता था, न उनकी-सी।

दयानाथ—मैंने सैकड़ों अंगरेजों के ड्राइंग-रूम देखे हैं, कहीं आईना नहीं देखा। आईना शृंगार के कमरे में रहना चाहिए। यहां आईना रखना बेतुकी-सी बात है।

रमेश—मुझे सैकड़ों अंगरेजों के कमरों को देखने का अवसर तो नहीं मिला है, लेकिन दो-चार जरूर देखे हैं और उनमें आईना लगा हुआ देखा। फिर क्या यह जरूरी बात है कि इन जरा-जरा-सी बातों में भी हम अंगरेजों की नकल करें? हम अंगरेज नहीं, हिन्दुस्तानी हैं। हिन्दुस्तानी रईसों के कमरे में बड़े-बड़े आदमकद आईने रक्खे जाते हैं। यह तो आपने हमारे बिगड़े हुए बाबुओं की-सी बात कही, जो पहनावे में, कमरे की सजावट में, बोली में, चाय और शराब में, चीनी की प्यालियों में—गरज दिखावे की सभी बातो में तो अंगरेजों का मुंह चिढ़ाते हैं; लेकिन जिन बातों ने अंगरेजों को अंगरेज बना दिया है, और जिनकी बदौलत वे दुनिया पर राज करते हैं, उनकी हवा तक नहीं छू जाती। क्या आपको भी बुढ़ापे में, अंगरेज बनने का शौक चर्राया है?

दयानाथ अंगरेजों की नकल को बहुत बुरा समझते थे। यह चाय-पार्टी भी उन्हें बुरी मालूम हो रही थी। अगर कुछ संतोष था, तो यही कि दो-चार बड़े आदमियों से परिचय हो जायगा। उन्होंने अपनी जिंदगी में कभी कोट नहीं पहना था। चाय पीते थे; मगर चीनी के सेट की कैद न थी। कटोरा-कटोरी, गिलास, लोटा-तसला किसी से भी उन्हें आपत्ति न थी; लेकिन इस वक्त उन्हें अपना पक्ष निभाने की पड़ी थी। बोले—हिन्दुस्तानी रईसों के कमरे में मेजें-कुर्सियां नहीं होतीं, फर्श होता है। आपने कुर्सी-मेज लगाकर इसे अंगरेजी ढंग पर तो बना दिया,

अब आईने के लिए हिन्दुस्तानियों की मिसाल दे रहे हैं। या तो हिन्दुस्तानी रखिए या अंगरेजी। यह क्या कि आधा तीतर आधा बटेर। कोट-पतलून पर चौगोशिया टोपी तो नहीं अच्छी मालूम होती !

रमेश बाबू ने समझा था कि दयानाथ की जबान बंद हो जायगी; लेकिन यह जवाब सुना तो चकराए। मैदान हाथ से जाता हुआ दिखाई दिया। बोले—तो आपने किसी अंगरेज के कमरे में आईना नहीं देखा? भला ऐसे दस-पांच अंगरेजों के नाम तो बताइए? एक आपका वही किरंटा हेड क्लर्क है, उसके सिवा और किसी अंगरेज के कमरे में तो शायद आपने कदम भी न रक्खा हो। उसी किरंटे को आपने अंगरेजी रुचि का आदर्श समझ लिया है खूब ! मानता हूं

दयानाथ—यह तो आपकी जबान है, उसे किरंटा, चमरेशियन, पिलपिली जो चाहे कहें, लेकिन रंग को छोड़कर वह किसी बात में अंगरेजों से कम नहीं। और उसके पहले तो योरपियन था।

रमेश इसका कोई जवाब सोच ही रहे थे कि एक मोटरकार द्वार पर आकर रुकी, और रतनबाई उतरकर बरामदे में आई। तीनों आदमी चटपट बाहर निकल आए। रमा को इस वक्त रतन का आना बुरा मालूम हुआ। डर रहा था कि कहीं कमरे में भी न चली आए, नहीं तो सारी कलई खुल जाए। आगे बढ़कर हाथ मिलाता हुआ बोला—आइए, यह मेरे पिता हैं, और यह मेरे दोस्त रमेश बाबू हैं, लेकिन उन दोनों सज्जनों ने न हाथ बढ़ाया और न जगह से हिले। सकपकाए-से खड़े रहे। रतन ने भी उनसे हाथ मिलाने की जरूरत न समझी। दूर ही से उनको नमस्कार करके रमा से बोली—नहीं, बैठूंगी नहीं। इस वक्त फुरसत नहीं है। आपसे कुछ कहना था।

यह कहते हुए वह रमा के साथ मोटर तक आई और आहिस्ता से बोली—आपने सराफ से कह तो दिया होगा?

रमा ने नि:संकोच होकर कहा—जी हां. बन रहा है।

रतन—उस दिन मैंने कहा था, अभी रुपये न दे सकूंगी, पर मैंने समझा शायद आपको कष्ट हो, इसलिए रुपये मंगवा लिए। आठ सौ चाहिए न?

जालपा ने कंगन के दाम आठ सौ बताए थे। रमा चाहता तो इतने रु''' ले सकता था। पर रतन की सरलता और विश्वास ने उसके हाथ पकड़ लिए। ऐसी उदार, निष्कपट रमणी के साथ वह विश्वासघात न कर सका। वह व्यापारियों से दो-दो, चार-चार आने लेते जरा भी न झिझकता था। वह जानता था कि वे सब भी गाहकों को उल्टे छुरे से मूंड़ते हैं। ऐसों के साथ ऐसा व्यवहार करते हुए उसकी आत्मा को लेशमात्र भी संकोच न होता था, लेकिन इस देवी के साथ यह कपट व्यवहार करने के लिए किसी पुराने पापी की जरूरत थी। कुछ सकुचाता हुआ बोला—क्या जालपा ने कंगन के दाम आठ सौ बतलाए थे? उसे शायद याद न रही होगी। उसके कंगन छ: सौ के हैं। आप चाहें तो आठ सौ का बनवा दूं !

रतन—नहीं, मुझे तो वही पसंद है। आप छ: सौ का ही बनवाइए।

उसने मोटर पर से अपनी थैली उठाकर सौ-सौ रुपये के छ: नोट निकाले। रमा ने कहा—ऐसी जल्दी क्या थी, चीज तैयार हो जाती, तब हिसाब हो जाता।

रतन—मेरे पास रुपये खर्च हो जाते। इसलिए मैंने सोचा, आपके सिर पर लाद आऊं। मेरी आदत है कि जो काम करती हूं, जल्द-से-जल्द कर डालती हूं। विलंब से मुझे उलझन होती है।

यह कहकर वह मोटर पर बैठ गई, मोटर हवा हो गई। रमा संदूक में रुपये रखने के लिए अंदर चला गया, तो दोनों वृद्धजनों में बातें होने लगीं।

रमेश—देखा?

दयानाथ—जी हां, आंखें खुली हुई थीं। अब मेरे घर में भी वही हवा आ रही है। ईश्वर ही बचावे।

रमेश—बात तो ऐसी ही है, पर आजकल ऐसी ही औरतों का काम है। जरूरत पड़े, तो कुछ मदद तो कर सकती हैं। बीमार पड़ जाओ तो डाक्टर को तो बुला ला सकती हैं। यहां तो चाहे हम मर जाएं, तब भी क्या मजाल कि स्त्री घर से बाहर पांव निकाले।

दयानाथ—हमसे तो भाई, यह अंगरेजियत नहीं देखी जाती। क्या करें। संतान की ममता है, नहीं तो यही जी चाहता है कि रमा से साफ कह दूं, भैया अपना घर अलग लेकर रहो। आंख फूटी, पीर गई। मुझे तो उन मर्दों पर क्रोध आता है, जो स्त्रियों को यों सिर चढ़ाते हैं। देख लेना, एक दिन यह औरत वकील साहब को दगा देगी।

रमेश—महाशय, इस बात में मैं तुमसे सहमत नहीं हूं। यह क्यों मान लेते हो कि जो औरत बाहर आती-जाती है, वह जरूर ही बिगड़ी हुई है? मगर रमा को मानती बहुत है। रुपये न जाने किसलिए दिए?

दयानाथ—मुझे तो इसमें कुछ गोलमाल मालूम होता है। रमा कहीं उससे कोई चाल न चल रहा हो?

इसी समय रमा भीतर से निकला आ रहा था। अंतिम वाक्य उसके कान में पड़ गया। भौंहें चढ़ाकर बोला—जी हां, जरूर चाल चल रहा हूं। उसे धोखा देकर रुपये ऐंठ रहा हूं। यही तो मेरा पेशा है।

दयानाथ ने झेंपते हुए कहा—तो इतना बिगड़ते क्यों हो, मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही?

रमानाथ—पक्का जालिया बना दिया और क्या कहते? आपके दिल में ऐसा शुबहा क्यों आया? आपने मुझमें ऐसी कौन-सी बात देखी, जिसमे आपको यह खयाल पैदा हुआ? मैं जरा साफ-सुथरे कपड़े पहनता हूं, जरा नई प्रथा के अनुसार चलता हूं, इसके सिवा आपने मुझमें कौन-सी बुराई देखी? मैं जो कुछ खर्च करता हूं, ईमान से कमाकर खर्च करता हूं। जिस दिन धोखे और फरेब की नौबत आएगी, जहर खाकर प्राण दे दूंगा। हां, यह बात है कि किसी को खर्च करने की तमीज होती है, किसी को नहीं होती। वह अपनी सुबुद्धि है; अगर इसे आप धोखेबाजी समझें, तो आपका अख्तियार है। जब आपकी तरफ से मेरे विषय में ऐसे संशय होने लगे, तो मेरे लिए यही अच्छा है कि मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊं। रमेश बाबू यहा मौजूद हैं। आप इनसे मर विषय में जो कुछ चाहें, पूछ सकते हैं। यह मेरे खातिर झूठ न बोलेंगे।

सत्य के रंग में रंगी हुई इन बातों ने दयानाथ को आश्वस्त कर दिया। बोले—जिस दिन मुझे मालूम हो जायगा कि तुमने यह ढंग अख्तियार किया है, उसके पहले मैं मुंह में कालिख लगाकर निकल जाऊंगा। तुम्हारा बढ़ता हुआ खर्च देखकर मेरे मन में संदेह हुआ था, मैं इसे छिपाता नहीं हूं, लेकिन जब तुम कह रहे हो तुम्हारी नीयत साफ है, तो मैं संतुष्ट हूं। मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि मेरा लड़का चाहे गरीब रहे, पर नीयत न बिगाड़े। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह तुम्हें सत्पथ पर रक्खे।

रमेश ने मुस्कराकर कहा—अच्छा, यह किस्सा तो हो चुका, अब यह बताओ, उसने तुम्हें रुपये किसलिए दिए ! मैं गिन रहा था, छः नोट थे, शायद सौ-सौ के थे।

रमानाथ—ठग लाया हूं।

रमेश—मुझसे शरारत करोगे तो मार बैठूंगा। अगर जट ही लाए हो, तो भी मैं तुम्हारी पीठ ठोकूंगा, जीते रहो। खूब जटो, लेकिन आबरू पर आंच न आने पाए । किसी को कानोंकान खबर न हो। ईश्वर से तो मैं डरता नहीं। वह जो कुछ पूछेगा, उसका जवाब मैं दे लूंगा, मगर आदमी से डरता हूं। सच बताओ, किसलिए रुपये दिए ? कुछ दलाली मिलने वाली हो तो मुझे भी शरीक कर लेना।

रमानाथ—जड़ाऊ कंगन बनवाने को कह गई हैं।

रमेश—तो चलो, मैं एक अच्छे सराफ से बनवा दूं। यह झंझट तुमने बुरा मोल ले लिया। औरत का स्वभाव जानते नहीं। किसी पर विश्वास तो इन्हें आता ही नहीं। तुम चाहे दो-चार रुपये अपने पास ही से खर्च कर दो, पर वह यही समझेंगी कि मुझे लूट लिया। नेकनामी तो शायद ही मिले, हां, बदनामी तैयार खड़ी है।

रमानाथ—आप मूर्ख स्त्रियां की बातें कर रहे हैं। शिक्षित स्त्रियां ऐसी नहीं होतीं।

जरा देर बाद रमा अंदर जाकर जालपा से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आई थीं।

[illegible] सच ! तब तो बड़ा गड़बड़ हुआ होगा। यहां कुछ तैयारी तो थी ही नहीं।

रमानाथ— कुशल यही हुई कि कमरे में नहीं आईं। कंगन के रुपये देने आई थीं। तुमने उनसे शायद आठ सौ रुपये बताए थे। मैंने छः सौ ले लिए।

जालपा ने झेंपते हुए कहा—मैंने तो दिल्लगी की थी।

जालपा ने इस तरह अपनी सफाई तो दे दी, लेकिन बहुत देर तक उसके मन में उथल-पुथल होती रही। रमा ने अगर आठ सौ रुपये ले लिए होते, तो शायद उथल-पुथल न होती। वह अपनी सफलता पर खुश होती, पर रमा के विवेक ने उसकी धर्म-बुद्धि को जगा दिया था। वह पछता रही थी कि मैं व्यर्थ झूठ बोली। यह मुझे अपने मन में कितनी नीच समझ रहे होंगे। रतन भी मुझे कितनी बेईमान समझ रही होगी।

## सोलह

चाय पार्टी में कोई विशेष बात नहीं हुई। रतन के साथ उसकी एक नाते की बहन और थी। वकील साहब न आए थे। दयानाथ ने उतनी देर के लिए घर से टल जाना ही उचित समझा। हां, रमेश बाबू बरामदे में बराबर खड़े रहे। रमा ने कई बार चाहा कि उन्हें भी पार्टी में शरीक कर लें, पर रमेश में इतना साहस न था।

जालपा ने दोनों मेहमानों को अपनी सास से [illegible]ाया। ये युवतियां उन्हें कुछ ओछी जान पड़ीं। उनका सारे घर में दौड़ना, धम-धम करके कोठे पर जाना, छत पर इधर-उधर उचकना, खिलखिलाकर हंसना, उन्हें हुड़दंगपन मालूम होता था। उनकी नीति में बहू-बेटियों को भारी और लज्जाशील होना चाहिए था। आश्चर्य यह था कि आज जालपा भी उन्हीं में मिल गई थी। रतन ने आज कंगन की चर्चा तक न की।

अभी तक रमा को पार्टी की तैयारियों से इतनी फुर्सत नहीं मिली थी कि गंगू की दुकान तक जाता। उसने समझा था, गंगू को छः सौ रुपये दे दूंगा तो पिछले हिसाब में जमा हो जाएंगे। केवल ढाई सौ रुपये और रह जाएंगे। इस नये हिसाब में छः सौ और मिलाकर फिर आठ सौ रह जाएंगे। इस तरह उसे अपनी साख जमाने का सुअवसर मिल जायगा।

दूसरे दिन रमा खुश होता हुआ गंगू की दुकान पर पहुंचा और रोब से बोला—क्या रंग- ढंग है महाराज, कोई नई चीज बनवाई है इधर?

रमा के टालमटोल से गंगू इतना विरक्त हो रहा था कि आज कुछ रुपये मिलने की आशा भी उसे प्रसन्न न कर सकी। शिकायत के ढंग से बोला—बाबू साहब, चीजें कितनी बनीं और कितनी बिकीं। आपने तो दुकान पर आना ही छोड़ दिया। इस तरह की दुकानदारी हम लोग नहीं करते। आठ महीने हुए, आपके यहां से एक पैसा भी नहीं मिला।

रमानाथ—भाई, खाली हाथ दुकान पर आते शर्म आती है। हम उन लोगों में नही हैं, जिनसे तकाजा करना पड़े। आज यह छः सौ रुपये जमा कर लो, और एक अच्छा- सा कंगन तैयार कर दो।

गंगू ने रुपये लेकर संदूक में रखे और बोला—बन जाएंगे। बाकी रुपये कब तक मिलेंगे?

रमानाथ—बहुत जल्द।

गंगू—हां बाबूजी, अब पिछला साफ कर दीजिए।

गंगू ने बहुत जल्द कंगन बनवाने का वचन दिया, लेकिन एक बार सौदा करके उसे मालूम हो गया था कि यहां से जल्द रुपये वसूल होने वाले नहीं। नतीजा यह हुआ कि रमा रोज तकाजा करता और गंगू रोज हीले करके टालता। कभी कारीगर बीमार पड़ जाता, कभी अपनी स्त्री की दवा कराने ससुराल चला जाता, कभी उसके लड़के बीमार हो जाते। एक महीना गुजर गया और कंगन न बने। रतन के तकाजों के डर से रमा ने पार्क जाना छोड़ दिया, मगर उसने घर तो देख ही रक्खा था। इस एक महीने में कई बार तकाजा करने आई। आखिर जब सावन का महीना आ गया तो उसने एक दिन रमा से कहा—वह सुअर नहीं बनाकर देता, तो तुम किसी और कारीगर को क्यों नहीं देते?

रमानाथ—उस पाजी ने ऐसा धोखा दिया कि कुछ न पूछो, बस रोज आज- कल किया करता है। मैंने बड़ी भूल की जो उसे पेशगी रुपये दे दिये। अब उससे रुपये निकलना मुश्किल है।

रतन—आप मुझे उसकी दुकान दिखा दीजिए, मैं उसके बाप से वसूल कर लूंगी। तावान अलग। ऐसे बेईमान आदमी को पुलिस मे देना चाहिए।

जालपा ने कहा—हां और क्या। सभी सुनार देर करते हैं, मगर ऐसा नहीं, रुपये डकार जायं और चीज के लिए महीनों दौड़ाएं।

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—आप दस दिन और सब्र करें, मैं आज ही उससे रुपये लेकर किसी दूसरे सराफ को दे दूंगा।

रतन—आप मुझे उस बदमाश की दुकान क्यों नहीं दिखा देते। मैं हंटर से बात करूं।

रमानाथ—कहता तो हूं। दस दिन के अंदर आपको कंगन मिल जाएंगे।

रतन—आप खुद ही ढील डाले हुए हैं। आप उसकी लल्लो-चप्पो की बातों में आ जाते होंगे। एक बार कड़े पड़ जाते, तो मजाल थी कि यों हील -हवाले करता।

आखिर रतन बड़ी मुश्किल से विदा हुई। उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जवाब दे दिया—बिना आधे रुपये लिए कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेबाक हो जाना चाहिए।

रमा को मानो गोली लग गई। बोला—महाराज, यह तो भलमनसी नहीं है। एक महिला की चीज है, उन्होंने पेशगी रुपये दिए थे। सोचो, मैं उन्हें क्या मुंह दिखाऊंगा। मुझसे अपने रुपयों के लिए पुरनोट लिखा लो, स्टांप लिखा लो और क्या करोगे?

गंगू—पुरनोट को शहद लगाकर चाटूंगा क्या? आठ-आठ महीने का उधार नहीं होता। महीना, दो महीना बहुत है। आप तो बड़े आदमी हैं, आपके लिए पांच-छः सौ रुपये कौन बड़ी बात है। कंगन तैयार हैं।

रमा ने दांत पीसकर कहा—अगर यही बात थी तो तुमने एक महीना पहले क्यों न कह दी? अब तक मैंने रुपये की कोई फिक्र की होती न।

गंगू—मैं क्या जानता था, आप इतना भी नहीं समझ रहे हैं।

रमा निराश होकर घर लौटा आया। अगर इस समय भी उसने जालपा से सारा वृत्तांत साफ-साफ कह दिया होता तो उसे चाहे कितना ही दुःख होता, पर वह कंगन उतारकर दे देती; लेकिन रमा में इतना साहस न था। वह अपनी आर्थिक कठिनाइयों की दशा कहकर उसके कोमल हृदय पर आघात न कर सकता था।

इसमें संदेह नहीं कि रमा को सौ रुपये के करीब ऊपर से मिल जाते थे, और वह किफायत करना जानता तो इन आठ महीनों में दोनों सराफों के कम-से-कम आधे रुपये अवश्य दे देता; लेकिन ऊपर की आमदनी थी तो ऊपर का खर्च भी था। जो कुछ मिलता था, सैर-सपाटे में खर्च हो जाता और सराफों का देना किसी एकमुश्त रकम की आशा में रुका हुआ था। कौड़ियों से रुपये बनाना वणिकों का ही काम है। बाबू लोग तो रुपये की कौड़ियां ही बनाते हैं।

कुछ रात जाने पर रमा ने एक बार फिर सराफे का चक्कर लगाया। बहुत चाहा, किसी सराफ को झांसा दूं, पर कहीं दाल न गली। बाजार में बेतार की खबरें चला करती हैं।

रमा को रातभर नींद न आई। यदि आज उसे एक हजार का रुक्का लिखकर कोई पांच सौ रुपये भी दे देता तो वह निहाल हो जाता, पर अपनी जान-पहचान वालों में उसे ऐसा कोई नजर न आता था। अपने मिलने वालों में उसने सभी से अपनी हवा बांध रक्खी थी। खिलाने-पिलाने में खुले हाथों रुपया खर्च करता था। अब किस मुंह से अपनी विपत्ति कहे ? वह पछता रहा था कि नाहक गंगू को रुपये दिए। गंगू नालिश करने तो जाता न था। इस समय यदि रमा को कोई भयंकर रोग हो जाता तो वह उसका स्वागत करता। कम-से-कम दस-पांच दिन की मुहलत तो मिल जाती; मगर बुलाने से तो मौत भी नहीं आती। वह तो उसी समय आती है, जब हम उसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं होते। ईश्वर कहीं से कोई तार ही भिजवा दे, कोई ऐसा मित्र भी नजर नहीं आता था, जो उसके नाम फर्जी तार भेज देता। वह इन्हीं चिंताओं में करवटें बदल रहा था कि जालपा की आंख खुल गई। रमा ने तुरंत चादर से मुंह छिपा लिया, मानो बेखबर सो रहा है। जालपा ने धीरे से चादर हटाकर उसका मुंह देखा और उसे सोता पाकर ध्यान से उसका मुंह देखने लगी। जागरण और निद्रा का अंतर उससे छिपा न रहा। उसे धीरे से हिलाकर बोली—क्या अभी तक जाग रहे हो?

रमानाथ—क्या जाने; क्यों नींद नहीं आ रही है। पड़े-पड़े सोचता था, कुछ दिनों के लिए

कहीं बाहर चला जाऊं। कुछ रुपये कमा लाऊं।

जालपा—मुझे भी लेते चलोगे न?

रमानाथ—तुम्हें परदेश में कहां लिए-लिए फिरूंगा?

जालपा—तो मैं यहां अकेली रह चुकी। एक मिनट तो रहूंगी नहीं। मगर जाओगे कहां?

रमानाथ—अभी कुछ निश्चय नहीं कर सका हूं।

जालपा—तो क्या सचमुच तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे ? मुझसे तो एक दिन भी न रहा जाय। मैं समझ गई, तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करते। केवल मुंह-देखे की प्रीति करते हो।

रमानाथ—तुम्हारे प्रेम-पाश ही ने मुझे यहां बांध रक्खा है। नहीं तो अब तक कभी चला गया होता।

जालपा—बातें बना रहे हो। अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम होता, तो तुम कोई परदा न रखते। तुम्हारे मन में जरूर कोई ऐसी बात है, जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनों से देख रही हूं, तुम चिंता में डूबे रहते हो, मुझसे क्यों नहीं कहते। जहां विश्वास नहीं है, वहां प्रेम कैसे रह सकता है?

रमानाथ—यह तुम्हारा भ्रम है, जालपा! मैंने तो तुमसे कभी परदा नहीं रखा।

जालपा—तो तुम मुझे सचमुच दिल से चाहते हो?

रमानाथ—यह क्या मुंह से कहूंगा जभी!

जालपा—अच्छा, अब मैं एक प्रश्न करती हूं। संभले रहना। तुम मुझसे क्यों प्रेम करते हो! तुम्हें मेरी कसम है, सच बताना।

रमानाथ—यह तो तुमने बेढब प्रश्न किया। अगर मैं तुमसे यही प्रश्न पूछूं तो तुम मुझे क्या जवाब दोगी?

जालपा—मैं तो जानती हूं।

रमानाथ—बताओ।

जालपा—तुम बतला दो, मैं भी बतला दूं।

रमानाथ—मैं तो जानता ही नहीं। केवल इतना ही जानता हूं कि तुम मेरे रोम-रोम में रम रही हो।

जालपा—सोचकर बतलाओ। मैं आदर्श-पत्नी नहीं हूं, इसे मैं खूब जानती हूं। पति-सेवा अब तक मैंने नाम को भी नहीं की। ईश्वर की दया से तुम्हारे लिए अब तक कष्ट सहने की जरूरत ही नहीं पड़ी। घर-गृहस्थी का कोई काम मुझे नहीं आता। जो कुछ सीखा, यहीं सीखा। फिर तुम्हें मुझसे क्यों प्रेम है? बातचीत में निपुण नहीं। रूप-रंग भी ऐसा आकर्षक नहीं। जानते हो, मैं तुमसे क्यों प्रश्न कर रही हूं?

रमानाथ—क्या जाने भाई, मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है।

जालपा—मैं इसलिए पूछ रही हूं कि तुम्हारे प्रेम को स्थायी बना सकूं।

रमानाथ—मैं कुछ नहीं जानता जालपा, ईमान से कहता हूं। तुममें कोई कमी है, कोई दोष है, यह बात आज तक मेरे ध्यान में नहीं आई, लेकिन तुमने मुझमें कौन-सी बात देखी? न मेरे पास धन है, न विद्या, न रूप है। बताओ?

जालपा—बता दूं? मैं तुम्हारी सज्जनता पर मोहित हूं। अब तुमसे क्या छिपाऊं, जब मैं यहां आई तो यद्यपि तुम्हें अपना पति समझती थी; लेकिन कोई बात कहते या करते समय मुझे

चिंता होती थी कि तुम उसे पसंद करोगे या नहीं। यदि तुम्हारे बदले मेरा विवाह किसी दूसरे पुरुष से हुआ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता। यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है, पर अब मैं तुम्हें गोपियों के कृष्ण से भी न बदलूंगी। लेकिन तुम्हारे दिल में अब भी चोर है। तुम अब भी मुझसे किसी-किसी बात में परदा रखते हो।

रमानाथ—यह तुम्हारी केवल शंका है, जालपा। मैं दोस्तों से भी कोई दुराव नहीं करता। फिर तुम तो मेरी हृदयेश्वरी हो।

जालपा—मेरी तरफ देखकर बोलो, आंखें नीची करना मर्दों का काम नहीं है।

रमा के जी में एक बार फिर आया कि अपनी कठिनाइयों की कथा कह सुनाऊं, लेकिन मिथ्या गौरव ने फिर उसकी जबान बंद कर दी।

जालपा जब उससे पूछती, सराफों को रुपये देते जाते हो या नहीं, तो वह बराबर कहता, हां कुछ-न-कुछ हर महीने देता जाता हूं, पर आज रमा की दुर्बलता ने जालपा के मन में एक संदेह पैदा कर दिया था। वह उसी संदेह को मिटाना चाहती थी। जरा देर बाद उसने पूछा—सराफों के तो अभी सब रुपये अदा न हुए होंगे?

रमानाथ—अब थोड़े ही बाकी हैं।

जालपा—कितने बाकी होंगे, कुछ हिसाब-किताब लिखते हो?

रमानाथ—हां, लिखता क्यों नहीं। सात सौ से कुछ कम ही होंगे।

जालपा—तब तो पूरी गठरी है, तुमने कहीं रतन के रुपये तो नहीं दे दिए?

रमा दिल में कांप रहा था, कहीं जालपा यह प्रश्न न कर बैठे। आखिर उसने यह प्रश्न पूछ ही लिया। उस वक्त भी यदि रमा ने साहस करके सच्ची बात स्वीकार कर ली होती तो शायद उसके संकटों का अंत हो जाता। जालपा एक मिनट तक अवश्य सन्नाटे में आ जाती। संभव है, क्रोध और निराशा के आवेश में दो-चार कटु शब्द मुंह से निकालती, लेकिन फिर शांत हो जाती। दोनों मिलकर कोई-न-कोई युक्ति सोच निकालते। जालपा यदि रतन से यह रहस्य कह सुनाती, तो रतन अवश्य मान जाती, पर हाय रे आत्मगौरव! रमा ने यह बात सुनकर ऐसा मुंह बना लिया मानो जालपा ने उस पर कोई निष्ठुर प्रहार किया हो। बोला—रतन के रुपये क्यों देता। आज चाहूं, तो दो-चार हजार का माल ला सकता हूं। कारीगरों की आदत देर करने की होती ही है। सुनार की खटाई मशहूर है। बस और कोई बात नहीं। दस दिन में या तो चीज ही लाऊंगा या रुपये वापस कर दूंगा, मगर यह शंका तुम्हें क्यों हुई? पराई रकम भला मैं अपने खर्च में कैसे लाता।

जालपा—कुछ नहीं, मैंने यों ही पूछा था।

जालपा को थोड़ी देर में नींद आ गई, पर रमा फिर उसी उधेड़बुन में पड़ा। कहां से रुपये लाए। अगर वह रमेश बाबू से साफ-साफ कह दे तो वह किसी महाजन से रुपये दिला देंगे, लेकिन नहीं, वह उनसे किसी तरह न कह सकेगा। उसमें इतना साहस न था।

उसने प्रात:काल नाश्ता करके दफ्तर की राह ली। शायद वहां कुछ प्रबंध हो जाए! कौन प्रबंध करेगा, इसका उसे ध्यान न था। जैसे रोगी वैद्य के पास जाकर संतुष्ट हो जाता है पर यह नहीं जानता, मैं अच्छा हूंगा या नहीं। यही दशा इस समय रमा की थी। दफ्तर में चपरासी के सिवा और कोई न था। रमा रजिस्टर खोलकर अंकों की जांच करने लगा। कई दिनों से मीजान नहीं दिया गया था; पर बड़े बाबू के हस्ताक्षर मौजूद थे। अब मीजान दिया, तो ढाई हजार

निकले। एकाएक उसे एक बात सूझी। क्यों न ढाई हजार की जगह मीजान दो हजार लिख दूं। रसीद बही की जांच कौन करता है। अगर चोरी पकड़ी भी गई तो कह दूंगा, मीजान लगाने में गलती हो गई। मगर इस विचार को उसने मन में टिकने न दिया। इस भय से, कहीं चित्त चंचल न हो जाए, उसने पेंसिल के अंकों पर रोशनाई फेर दी, और रजिस्टर को दराज में बंद करके इधर-उधर घूमने लगा।

इक्की दुक्की गाड़ियां आने लगीं। गाड़ीवानों ने देखा, बाबू साहब आज यहीं हैं, तो सोचा जल्दी से चुंगी देकर छुट्टी पर जायं। रमा ने इस कृपा के लिए दस्तूरी की दूनी रकम वसूल की, और गाड़ीवानों ने शौक से दी क्योंकि यही मंडी का समय था और बारह-एक बजे तक चुंगीघर से फुरसत पाने की दशा में चौबीस घंटे का हर्ज होता था, मंडी दस -ग्यारह बजे के बाद बंद हो जाती थी, दूसरे दिन का इंतजार करना पड़ता था। अगर भाव रुपये में आधा पाव भी गिर गया, तो सैकड़ों के मत्थे गई। दस-पांच रुपये का बल खा जाने में उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। रमा को आज यह नई बात मालूम हुई। सोचा, आखिर सुबह को मैं घर ही पर बैठा रहता हूं। अगर यहां आकर बैठ जाऊं तो रोज दस-पांच रुपये हाथ आ जायं। फिर तो छ: महीने में यह सारा झगड़ा साफ हो जाय। मान लो रोज यह चांदी न होगी, पंद्रह न सही, दस मिलेंगे, पांच मिलेंगे। अगर सुबह को रोज पांच रुपये मिल जायं और इतने ही दिनभर में और मिल जायं, तो पांच-छ: महीने में मैं ऋण से मुक्त हो जाऊं। उसने दराज खोलकर फिर रजिस्टर निकाला। यह हिसाब लगा लेने के बाद अब रजिस्टर में हेर-फेर कर देना उसे इतना भंयकर न जान पड़ा। नया रंगरूट जो पहले बंदूक की आवाज से चौंक पड़ता है, आगे चलकर गालियों की वर्षा में भी नहीं घबड़ाता।

रमा दफ्तर बंद करके भोजन करने घर जाने ही वाला था कि एक बिसाती का ठेला आ पहुंचा। रमा ने कहा, लौटकर चुंगी लूंगा। बिसाती ने मिन्नत करनी शुरू की। उसे कोई बड़ा जरूरी काम था। आखिर दस रुपये पर मामला ठीक हुआ। रमा ने चुंगी ली, रुपये जेब में रक्खे और घर चला। पच्चीस रुपये केवल दो-ढाई घंटों में आ गए। अगर एक महीने भी यह औसत रहे तो पल्ला पार है। उसे इतनी खुशी हुई कि वह भोजन करने घर न गया। बाजार से भी कुछ नहीं मंगवाया। रुपये भुनाते हुए उसे एक रुपया कम हो जाने का खयाल हुआ। वह शाम तक बैठा काम करता रहा। चार रुपये और वसूल हुए। चिराग जले वह घर चला, तो उसके मन पर से चिंता और निराशा का बहुत कुछ बोझ उतर चुका था। अगर दस दिन यही तेजी रही, तो रतन से मुंह चुराने की नौबत न आएगी।

## सत्रह

नौ दिन गुजर गए। रमा रोज प्रात: दफ्तर जाता और चिराग जले लौटता। वह रोज यही आशा लेकर जाता कि आज कोई बड़ा शिकार फंस जाएगा। पर वह आशा न पूरी होती। इतना ही नहीं। पहले दिन की तरह फिर कभी भाग्य का सूर्य न चमका। फिर भी उसके लिए कुछ कम श्रेय की बात नहीं थी कि नौ दिनों में ही उसने सौ रुपये जमा कर लिए थे। उसने एक पैसे का पान

भी न खाया था। जालपा ने कई बार कहा, चलो कहीं घूम आवें, तो उसे भी उसने बातों में ही टाला। बस, कल का दिन और था। कल आकर रतन कंगन मांगेगी तो उसे वह क्या जवाब देगा। दफ्तर से आकर वह इसी सोच में बैठा हुआ था। क्या वह एक महीना भर के लिए और न मान जायगी। इतने दिन वह और न बोलती तो शायद वह उससे उऋण हो जाता। उसे विश्वास था कि मैं उससे चिकनी-चुपड़ी बातें करके राजी कर लूंगा। अगर उसने जिद की तो मैं उससे कह दूंगा, सराफ रुपये नहीं लौटाता।

सावन के दिन थे, अंधेरा हो चला था, रमा सोच रहा था, रमेश बाबू के पास चलकर दो-चार बाजियां खेल आऊं, मगर बादलों को देख-देख रुक जाता था। इतने में रतन आ पहुंची। वह प्रसन्न न थी। उसकी मुद्रा कठोर हो रही थी। आज वह लड़ने के लिए घर से तैयार होकर आई है और मुरव्वत और मुलाहजे की कल्पना को भी कोसों दूर रखना चाहती है।

जालपा ने कहा—तुम खूब आई। आज मैं भी जरा तुम्हारे साथ घूम आऊंगी। इन्हें काम के बोझ से आजकल सिर उठाने की फुर्सत नहीं है।

रतन ने निष्ठुरता से कहा—मुझे आज तो बहुत जल्द घर लौट जाना है। बाबूजी को कल की याद दिलाने आई हूं।

रमा उसका लटका हुआ मुंह देखकर ही मन में सहम रहा था। किसी तरह उसे प्रसन्न करना चाहता था। बड़ी तत्परता से बोला—जी हां, खूब याद है, अभी सराफ की दुकान से चला आ रहा हूं। रोज सुबह-शाम घंटे भर हाजिरी देता हूं, मगर इन चीजों में समय बहुत लगता है। दाम तो कारीगरी के हैं। मालियत देखिए तो कुछ नहीं। दो आदमी लगे हुए हैं, पर शायद अभी एक महीने से कम में चीज तैयार न हो, पर होगी लाजवाब। जी खुश हो जायगा।

पर रतन जरा भी न पिघली। तिनककर बोली—अच्छा! अभी महीना भर और लगेगा। ऐसी कारीगरी है कि तीन महीने में पूरी न हुई! आप उससे कह दीजिएगा मेरे रुपये वापस कर दे। आशा के कंगन देवियां पहनती होंगी, मेरे लिए जरूरत नहीं!

रमानाथ—एक महीना न लगेगा, मैं जल्दी ही बनवा दूंगा। एक महीना तो मैंने अंदाजन कह दिया था। अब थोड़ी ही कसर रह गई है। कई दिन तो नगीने तलाश करने में लग गए।

रतन—मुझे कंगन पहनना ही नहीं है, भाई! आप मेरे रुपये लौटा दीजिए, बस। सुनार मैंने भी बहुत देखे हैं। आपकी दया से इस वक्त भी तीन जोड़े कंगन मेरे पास होंगे, पर ऐसी धांधली कहीं नहीं देखी।

धांधली के शब्द पर रमा तिलमिला उठा—धांधली नहीं, मेरी हिमाकत कहिए। मुझे क्या जरूरत थी कि अपनी जान संकट में डालता। मैंने तो पेशगी रुपये इसलिए दे दिए कि सुनार खुश होकर जल्दी से बना देगा। अब आप रुपये मांग रही हैं, सराफ रुपये नहीं लौटा सकता।

रतन ने तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—क्यों, रुपये क्यों न लौटाएगा?

रमानाथ—इसलिए कि जो चीज आपके लिए बनाई है, उसे वह कहां बेचता फिरेगा। संभव है, साल-छः महीने में बिक सके। सबकी पसंद एक-सी तो नहीं होती।

रतन ने त्योरियां चढ़ाकर कहा—मैं कुछ नहीं जानती, उसने देर की है, उसका दंड भोगे। मुझे कल या तो कंगन ला दीजिए या रुपये। आपसे यदि सराफ से दोस्ती है, आप मुलाहिजे और मुरव्वत के सबब से कुछ न कह सकते हों, तो मुझे उसकी दुकान दिखा दीजिए। नहीं आपको शर्म आती हो तो उसका नाम बता दीजिए, मैं पता लगा लूंगी। वाह, अच्छी

दिल्लगी ! दुकान नीलाम करा दूंगी। जेल भिजवा दूंगी। इन बदमाशों से लड़ाई के बगैर काम नहीं चलता।

रमा अप्रतिभ होकर जमीन की ओर ताकने लगा। वह कितनी मनहूस घड़ी थी, जब उसने रतन से रुपये लिए ! बैठे-बिठाए विपत्ति मोल ली।

जालपा ने कहा—सच तो है, इन्हें क्यों नहीं सराफ की दुकान पर ले जाते, चीज आंखों से देखकर इन्हें संतोष हो जायगा।

रतन—मैं अब चीज लेना ही नहीं चाहती।

रमा ने कांपते हुए कहा—अच्छी बात है, आपको रुपये कल मिल जायंगे।

रतन—कल किस वक्त?

रमानाथ—दफ्तर से लौटते वक्त लेता आऊंगा।

रतन—पूरे रुपये लूंगी। ऐसा न हो कि सौ-दो सौ रुपये देकर टाल दे।

रमानाथ—कल आप अपने सब रुपये ले जाइएगा।

यह कहता हुआ रमा मरदाने कमरे में आया, और रमेश बाबू के नाम एक रुक्का लिखकर गोपी से बोला—इसे रमेश बाबू के पास ले जाओ। जवाब लिखाते आना।

फिर उसने एक दूसरा रुक्का लिखकर विश्वम्भरदास को दिया कि माणिकदास को दिखाकर जवाब लाए।

विश्वम्भर ने कहा—पानी आ रहा है।

रमानाथ—तो क्या सारी दुनिया बह जाएगी ! दौड़ते हुए जाओ।

विश्वम्भर—और वह जो घर पर न मिलें?

रमानाथ—मिलेंगे। वह इस वक्त कहीं नहीं जाते।

आज जीवन में पहला अवसर था कि रमा ने दोस्तों से रुपये उधार मांगे। आग्रह और विनय के जितने शब्द उसे याद आये, उनका उपयोग किया। उसके लिए यह बिल्कुल नया अनुभव था। जैसे पत्र आज उसने लिखे, वैसे ही पत्र उसके पास कितनी ही बार आ चुके थे। उन पत्रों को पढ़कर उसका हृदय कितना द्रवित हो जाता था; पर विवश होकर उसे बहाने करने पड़ते थे। क्या रमेश बाबू भी बहाना कर जायंगे? उनकी आमदनी ज्यादा है, खर्च कम, वह चाहें तो रुपये का इंतजाम कर सकते हैं। क्या मेरे साथ इतना सुलूक भी न करेंगे? अब तक दोनों लड़के लौटकर नहीं आए। वह द्वार पर टहलने लगा। रतन की मोटर अभी तक खड़ी थी। इतने में रतन बाहर आई और उसे टहलते देखकर भी कुछ बोली नहीं। मोटर पर बैठी और चल दी।

दोनों कहां रह गए अब तक ! कहीं खेलने लगे होंगे। शैतान तो हैं ही। जो कहीं रमेश रुपये दे दें, तो चांदी है। मैंने दो सौ नाहक मांगे, शायद इतने रुपये उनके पास न हों। ससुराल वालों की नोच-खसोट से कुछ रहने भी तो नहीं पाता। माणिक चाहे तो हजार-पांच सौ दे सकता है, लेकिन देखा चाहिए, आज परीक्षा हो जायगी। आज अगर इन लोगों ने रुपये न दिए, तो फिर बात भी न पूछूंगा। किसी का नौकर नहीं हूं की जब वह शतरंज खेलने को बुलायें तो दौड़ा चला जाऊं। रमा किसी की आहट पाता, तो उसका दिल जोर से धड़कने लगता था। आखिर विश्वम्भर लौटा, माणिक ने लिखा था—आजकल बहुत तंग हूं। मैं तो तुम्हीं से मांगने वाला था।

रमा ने पुर्जा फाड़कर फेंक दिया। मतलबी कहीं का ! अगर सब-इंस्पेक्टर ने मांगा होता तो पुर्जा देखते ही रुपये लेकर दौड़े जाते। खैर, देखा जायगा। चुंगी के लिए माल तो आयगा ही।

इसकी कसर तब निकल जायगी।

इतने में गोपी भी लौटा। रमेश ने लिखा था—मैंने अपने जीवन में दो-चार नियम बना लिए हैं। और बड़ी कठोरता से उनका पालन करता हूं। उनमें से एक नियम यह भी है कि मित्रों से लेन-देन का व्यवहार न करूंगा। अभी तुम्हें अनुभव नहीं हुआ है, लेकिन कुछ दिनों में हो जाएगा कि जहां मित्रों से लेन-देन शुरू हुआ, वहां मनमुटाव होते देर नहीं लगती। तुम मेरे प्यारे दोस्त हो, मैं तुमसे दुश्मनी नहीं करना चाहता। इसलिए मुझे क्षमा करो।

रमा ने इस पत्र को भी फाड़कर फेंक दिया और कुर्सी पर बैठकर दीपक की ओर टकटकी बांधकर देखने लगा। दीपक उसे दिखाई देता था, इसमें संदेह है। इतनी ही एकाग्रता से वह कदाचित् आकाश की काली, अभेद्य मेघ-राशि की ओर ताकता !

मन की एक दशा वह भी होती है, जब आंखें खुली होती हैं और कुछ नहीं सूझता; कान खुले रहते हैं और कुछ नहीं सुनाई देता।

## अठारह

संध्या हो गई थी म्युनिसिपैलिटी के अहाते में सन्नाटा छा गया था। कर्मचारी एक-एक करके जा रहे थे। मेहतर कमरों में झाड़ू लगा रहा था। चपरासियों ने भी जूते पहनना शुरू कर दिया था। खोंचेवाले दिनभर की बिक्री के पैसे गिन रहे थे। पर रमानाथ अपनी कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था।

आज भी वह प्रात:काल आया था, पर आज भी कोई बड़ा शिकार न फंसा, वही दस रुपये मिलकर रह गए। अब अपनी आबरू बचाने का उसके पास और क्या उपाय था ! रमा ने रतन को झांसा देने की ठान ली। वह खूब जानता था कि रतन की यह अधीरता केवल इसलिए है कि शायद उसके रुपये मैंने खर्च कर दिए। अगर उसे मालूम हो जाए कि उसके रुपये तत्काल मिल सकते हैं, तो वह शांत हो जाएगी। रमा उसे रुपये से भरी हुई थैली दिखाकर उसका संदेह मिटा देना चाहता था। वह खजांची साहब के चले जाने की राह देख रहा था। उसने आज जान-बूझकर देर की थी। आज की आमदनी के आठ सौ रुपये उसके पास थे। इसे वह अपने घर ले जाना चाहता था। खजांची ठीक चार बजे उठा। उसे क्या गरज थी कि रमा से आज की आमदनी मांगता। रुपये गिनने से ही छुट्टी मिली। दिनभर वही लिखते-लिखते और रुपये गिनते-गिनते बेचारे की कमर दुख रही थी। रमा को जब मालूम हो गया कि खजांची साहब दूर निकल गए होंगे, तो उसने रजिस्टर बंद कर दिया और चपरासी से बोला—थैली उठाओ। चलकर जमा कर आएं।

चपरासी ने कहा—खजांची बाबू तो चले गए !

रमा ने आखें फाड़कर कहा—खजांची बाबू चले गए ! तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं? अभी कितनी दूर गए होंगे?

चपरासी—सड़क के नुक्कड़ तक पहुंचे होंगे।

रमानाथ—यह आमदनी कैसे जमा होगी?

चपरासी—हुकुम हो तो बुला लाऊं?

रमानाथ—अजी, जाओ भी, अब तक तो कहा नहीं, अब उन्हें आधे रास्ते से बुलाने जाओगे। हो तुम भी निरे बछिया के ताऊ। आज ज्यादा छान गए थे क्या? खैर रुपये इसी दराज में रखे रहेंगे। तुम्हारी जिम्मेदारी रहेगी।

चपरासी—नहीं बाबू साहब, मैं यहां रुपया नहीं रखने दूंगा। सब घड़ी बराबर नहीं जाती। कहीं रुपये उठ जायं, तो मैं बेगुनाह मारा जाऊं। सुभीते का ताला भी तो नहीं है यहां।

रमानाथ—तो फिर ये रुपये कहां रक्खूं?

चपरासी—हुजूर, अपने साथ लेते जाएं।

रमा तो यह चाहता ही था। एक इक्का मंगवाया, उस पर रुपयों की थैली रक्खी और घर चला। सोचता जाता था कि अगर रतन भभकी में आ गई, तो क्या पूछना! कह दूंगा, दो-ही चार दिन की कसर है। रुपये सामने देखकर उसे तसल्ली हो जाएगी।

जालपा ने थैली देखकर पूछा—क्या कंगन न मिला?

रमानाथ—अभी तैयार नहीं था, मैंने समझा रुपये लेता चलूं जिसमें उन्हें तस्कीन हो जाय।

जालपा—क्या कहा सराफ ने?

रमानाथ—कहा क्या, आज-कल करता है। अभी रतन देवी आई नहीं?

जालपा—आती ही होगी, उसे चैन कहां?

जब चिराग जले तक रतन न आई, तो रमा ने समझा अब न आएगी। रुपये आल्मारी में रख दिए और घूमने चल दिया। अभी उसे गए दस मिनट भी न हुए होंगे कि रतन आ पहुंची और आते-ही-आते बोली—कंगन तो आ गए होंगे?

जालपा—हां आ गए हैं, पहन लो! बेचारे कई दफा सराफ के पास गए। अभागा देता ही नहीं, हीले-हवाले करता है।

रतन—कैसा सराफ है कि इतने दिन से हीले-हवाले कर रहा है। मैं जानती कि रुपये झमेले में पड़ जाएंगे, तो देती ही क्यों। न रुपये मिलते हैं, न कंगन मिलता है!

रतन ने यह बात कुछ ऐसे अविश्वास के भाव से कही कि जालपा जल उठी। गर्व से बोली—आपके रुपये रखे हुए हैं, जब चाहिए ले जाइए। अपने बस की बात तो है नहीं। आखिर जब सराफ दगा, तभी तो लाएंगे?

रतन—कुछ वादा करता है, कब तक देगा?

जालपा—उसके वादों का क्या ठीक, सैकड़ों वादे तो कर चुका है।

रतन—तो इसके मानी यह हैं कि अब वह चीज न बनाएगा?

जालपा—जो चाहे समझ लो!

रतन—तो मेरे रुपये ही दे दो, बाज आई ऐसे कंगन से।

जालपा झमककर उठी, आल्मारी से थैली निकाली और रतन के सामने पटककर बोली—ये आपके रुपये रखे हैं, ले जाइए।

वास्तव में रतन की अधीरता का कारण वही था, जो रमा ने समझा था। उसे भ्रम हो रहा था कि इन लोगों ने मेरे रुपये खर्च कर डाले। इसीलिए वह बार-बार कंगन का तकाजा करती थी। रुपये देखकर उसका भ्रम शांत हो गया। कुछ लज्जित होकर बोली—अगर दो-चार दिन में देने का वादा करता हो तो रुपये रहने दो।

जालपा–मुझे तो आशा नहीं है कि इतनी जल्द दे दे। जब चीज तैयार हो-जायगी तो रुपये मांग लिए जाएंगे।

रतन–क्या जाने उस वक्त मेरे पास रुपये रहें या न रहें। रुपये आते तो दिखाई देते हैं, जाते नहीं दिखाई देते। न जाने किस तरह उड़ जाते हैं। अपने ही पास रख लो तो क्या बुरा?

जालपा–तो यहां भी तो वही हाल है। फिर पराई रकम घर में रखना जोखिम की बात भी तो है। कोई गोलमाल हो जाए, तो व्यर्थ का दंड देना पड़े। मेरे ब्याह के चौथे ही दिन मेरे सारे गहने चोरी चले गए। हम लोग जागते ही रहे, पर न जाने कब आंख लग गई, और चोरों ने अपना काम कर लिया। दस हजार की चपत पड़ गई। कहीं वही दुर्घटना फिर हो जाय तो कहीं के न रहें।

रतन–अच्छी बात है, मैं रुपये लिए जाती हूं; मगर देखना निश्चिंत न हो जाना। बाबूजी से कह देना सराफ का पिंड न छोड़ें।

रतन चली गई। जालपा खुश थी कि सिर से बोझ टला। बहुधा हमारे जीवन पर उन्हीं के हाथों कठोरतम आघात होता है, जो हमारे सच्चे हितैषी होते हैं।

रमा कोई नौ बजे घूमकर लौटा, जालपा रसोई बना रही थी। उसे देखते ही बोली–रतन आई थी, मैंने उसके सब रुपये दे दिए।

रमा के पैरों के नीचे से मिट्टी खिसक गई। आंखें फैलकर माथे पर जा पहुंचीं। घबराकर बोला–क्या कहा, रतन को रुपये दे दिए? तुमसे किसने कहा था कि उसे रुपये दे देना?

जालपा–उसी के रुपये तो तुमने लाकर रक्खे थे। तुम खुद उसका इंतजार करते रहे। तुम्हारे जाते ही वह आई और कंगन मांगने लगी। मैंने झल्लाकर उसके रुपये फेंक दिए।

रमा ने सावधान होकर कहा–उसने रुपये मांगे तो न थे?

जालपा–मांगे क्यों नहीं। हां, जब मैंने दे दिए तो अलबत्ता कहने लगी, इसे क्यों लौटाती हो, अपने पास ही पड़ा रहने दो। मैंने कह दिया, ऐसे शक्की मिजाज वालों का रुपया मैं नहीं रखती।

रमानाथ–ईश्वर के लिए तुम मुझसे बिना पूछे ऐसे काम मत किया करो।

जालपा–तो अभी क्या हुआ, उसके पास जाकर रुपये मांग लाओ; मगर अभी से रुपये घर में लाकर अपने जी का जंजाल क्यों मोल लोगे?

रमा इतना निस्तेज हो गया कि जालपा पर बिगड़ने की भी शक्ति उसमें न रही। रुआंसा होकर नीचे चला गया और स्थिति पर विचार करने लगा। जालपा पर बिगड़ना अन्याय था। जब रमा ने साफ कह दिया कि ये रुपये रतन के हैं, और इसका संकेत तक न किया कि मुझसे पूछे बगैर रतन को रुपये मत देना, तो जालपा का कोई अपराध नहीं।

उसने सोचा–इस समय झल्लाने और बिगड़ने से समस्या हल न होगी। शांत चित्त होकर विचार करने की आवश्यकता थी। रतन से रुपये वापस लेना अनिवार्य था। जिस समय वह यहां आई है, अगर मैं खुद मौजूद होता तो कितनी खूबसूरती से सारी मुश्किल आसान हो जाती। मुझको क्या शामत सवार थी कि घूमने निकला! एक दिन न घूमने जाता, तो कौन मरा जाता था! कोई गुप्त शक्ति मेरा अनिष्ट करने पर उतारू हो गई है। दस मिनट की अनुपस्थिति ने सारा खेल बिगाड़ दिया। वह कह रही थी कि रुपये रख लीजिए। जालपा ने जरा समझ से काम लिया होता तो यह नौबत काहे को आती। लेकिन फिर मैं बीती हुई बातें सोचने लगा। समस्या है, रतन

से रुपये वापस कैसे लिए जाएं। क्यों न चलकर कहूं, रुपये लौटाने से आप नाराज हो गई हैं। असल में मैं आपके लिए रुपये न लाया था। सराफ से इसलिए मांग लाया था, जिसमें वह चीज बनाकर दे दे। संभव है, वह खुद ही लज्जित होकर क्षमा मांगे और रुपये दे दे। बस इस वक्त वहां जाना चाहिए।

यह निश्चय करके उसने घड़ी पर नजर डाली। साढ़े आठ बजे थे। अंधकार छाया हुआ था। ऐसे समय रतन घर से बाहर नहीं जा सकती। रमा ने साइकिल उठाई और रतन से मिलने चला।

रतन के बंगले पर आज बड़ी बहार थी। यहां नित्य ही कोई-न-कोई उत्सव, दावत, पार्टी होती रहती थी। रतन का एकांत नीरस जीवन इन विषयों की ओर उसी भांति लपकता था, जैसे प्यासा पानी की ओर लपकता है। इस वक्त वहां बच्चों का जमघट था। एक आम के वृक्ष में झूला पड़ा था, बिजली की बात्तियां जल रही थीं, बच्चे झूला झूल रहे थे और रतन खड़ी झुला रही थी। हू-हक मचा हुआ था। वकील साहब इस मौसम में भी ऊनी ओवरकोट पहने बरामदे में बैठे सिगार पी रहे थे। रमा की इच्छा हुई, कि झूले के पास जाकर रतन से बातें करे, पर वकील साहब को खड़े देखकर वह संकोच के मारे उधर न जा सका। वकील साहब ने उसे देखते ही हाथ बढ़ा दिया और बोले—आओ रमा बाबू, कहो, तुम्हारे म्युनिसिपल बोर्ड की क्या खबरें हैं?

रमा ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—कोई नई बात तो नहीं हुई।

वकील—आपके बोर्ड में लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा? और कई बोर्डों ने तो पास कर दिया। जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार न होगा। आप तो योरप न गए होंगे? ओह ! क्या आजादी है, क्या दौलत है, क्या जीवन है, क्या उत्साह है ! बस मालूम होता है, यही स्वर्ग है। और स्त्रियां भी सचमुच देवियां हैं। इतनी हंसमुख, इतनी स्वच्छंद, यह सब स्त्री-शिक्षा का प्रसाद है !

रमा ने समाचार-पत्रों में इन देशों का जो थोड़ा-बहुत हाल पढ़ा था, उसके आधार पर बोला—वहां स्त्रियों का आचरण तो बहुत अच्छा नहीं है।

वकील—नान्सेंस ! अपने- अपने देश की प्रथा है। आप एक युवती को किसी युवक के साथ एकांत में विचरते देखकर दांतों तले उंगली दबाते हैं। आपका अंत:करण इतना मलिन हो गया है कि स्त्री-पुरुष को एक जगह देखकर आप संदेह किए बिना रह ही नहीं सकते, पर जहां लड़के और लड़कियां एक साथ शिक्षा पाते हैं, वहां यह जाति-भेद बहुत महत्त्व की वस्तु नहीं रह जाती—आपस में स्नेह और सहानुभूति की इतनी बातें पैदा हो जाती हैं कि कामुकता का अंश बहुत थोड़ा रह जाता है। यह समझ लीजिए कि जिस देश में स्त्रियों की जितनी अधिक स्वाधीनता है, वह देश उतना ही सभ्य है। स्त्रियों को कैद में, परदे में, या पुरुषों से कोसों दूर रखने का तात्पर्य यही निकलता है कि आपके यहां जनता इतनी आचार-भ्रष्ट है कि स्त्रियों का अपमान करने में जरा भी संकोच नहीं करती। युवकों के लिए राजनीति, धर्म, ललित-कला, साहित्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान और हजारों ही ऐसे विषय हैं, जिनके आधार पर वे युवतियों से गहरी दोस्ती पैदा कर सकते हैं। कामलिप्सा उन देशों के लिए आकर्षण का प्रधान विषय है, जहां लोगों की मनोवृत्तियां संकुचित रहती हैं। मैं सालभर योरप और अमेरीका में रह चुका हूं। कितनी ही सुंदरियों के साथ मेरी दोस्ती थी। उनके साथ खेला हूं, नाचा भी हूं;

पर कभी मुंह से ऐसा शब्द न निकलता था, जिसे सुनकर किसी युवती को लज्जा से सिर झुकाना पड़े, और फिर अच्छे और बुरे कहां नहीं हैं?

रमा को इस समय इन बातों में कोई आनंद न आया, वह तो इस समय दूसरी ही चिंता में मग्न था।

वकील साहब ने फिर कहा—जब तक हम स्त्री-पुरुषों को अबाध रूप से अपना-अपना मानसिक विकास न करने देंगे, हम अवनति की ओर खिसकते चले जाएंगे। बंधनों से समाज का पैर न बांधिए, उसके गले में कैदी की जंजीर न डालिए। विधवा-विवाह का प्रचार कीजिए, खूब जोरों से कीजिए, लेकिन यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि जब कोई अधेड़ आदमी किसी युवती से ब्याह कर लेता है तो क्यों अखबारों में इतना कुहराम मच जाता है। योरप में अस्सी बरस के बूढ़े युवतियों से ब्याह करते हैं, सत्तर वर्ष की वृद्धाएं युवकों से विवाह करती हैं, कोई कुछ नहीं कहता। किसी को कानोंकान खबर भी नहीं होती। हम बूढ़ों को मरने के पहले ही मार डालना चाहते हैं। हालांकि मनुष्य को कभी किसी सहगामिनी की जरूरत होती है तो वह बुढ़ापे में, जब उसे हरदम किसी अवलंब की इच्छा होती है, जब वह परमुखापेक्षी हो जाता है।

रमा का ध्यान झूले की ओर था। किसी तरह रतन से दो-दो बातें करने का अवसर मिले। इस समय उसकी सबसे बड़ी यही कामना थी। उसका वहां जाना शिष्टाचार के विरुद्ध था। आखिर उसने एक क्षण के बाद झूले की ओर देखकर कहा—ये इतने लड़के किधर से आ गए?

वकील—रतन बाई को बाल-समाज से बड़ा स्नेह है। न जाने कहां-कहां से इतने लड़के जमा हो जाते हैं। अगर आपको बच्चों से प्यार हो, तो जाइए।

रमा तो यह चाहता ही था, चट झूले के पास जा पहुंचा। रतन उसे देखकर मुस्कराई और बोली—इन शैतानों ने मेरी नाक में दम कर रक्खा है। झूले से इन सबों का पेट ही नहीं भरता। आइए, जरा आप भी बेगार कीजिए, मैं तो थक गई। यह कहकर वह पक्के चबूतरे पर बैठ गई। रमा झोंके देने लगा। बच्चों ने नया आदमी देखा, तो सब-के-सब अपनी बारी के लिए उतावले होने लगे। रतन के हाथों दो बारियां आ चुकी थीं, पर यह कैसे हो सकता था कि कुछ लड़के तो तीसरी बार झूलें, और बाकी बैठे मुंह ताकें। दो उतरते तो चार झूले पर बैठ जाते। रमा को बच्चों से नाममात्र को भी प्रेम न था; पर इस वक्त फंस गया था, क्या करता।

आखिर आध घंटे की बेगार के बाद उसका जी ऊब गया। घड़ी में साढ़े नौ बज रहे थे। मतलब की बात कैसे छेड़े। रतन तो झूले में इतनी मग्न थी, मानो उसे रुपयों की सुध ही नहीं है।

सहसा रतन ने झूले के पास जाकर कहा—बाबूजी, मैं बैठती हूं, मुझे झुलाइए; मगर नीचे से नहीं, झूले पर खड़े होकर पेंग मारिए।

रमा बचपन ही से झूले पर बैठते डरता था। एक बार मित्रों ने जबरदस्ती झूले पर बैठा दिया, तो उसे चक्कर आने लगा; पर इस अनुरोध ने उसे झूले पर आने के लिए मजबूर कर दिया। अपनी अयोग्यता कैसे प्रकट करे। रतन दो बच्चों को लेकर बैठ गई, और यह गीत गाने लगी—

**कदम की डरिया झूला पड़ गयो री,**
**राधा रानी झूलन आईं।**

रमा झूले पर खड़ा होकर पेंग मारने लगा, लेकिन उसके पांव कांप रहे थे, और दिल बैठा जाता था। जब झूला ऊपर से गिरता था, तो उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई तरल वस्तु उसके वक्ष में चुभती चली जा रही है—और रतन लड़कियों के साथ गा रही थी—

**कदम की डरिया झूला पड़ गयो री,**

**राधा रानी झूलन आईं।**

एक क्षण के बाद रतन ने कहा—जरा और बढ़ाइए साहब, आपसे तो झूला बढ़ता ही नहीं।

रमा ने लज्जित होकर और जोर लगाया, पर झूला न बढ़ा। रमा के सिर में चक्कर आने लगा।

रतन— आपको पेंग मारना नहीं आता, कभी झूला नहीं झूले?

रमा ने झिझकते हुए कहा—हां, इधर तो वर्षों से नहीं बैठा।

रतन—तो आप इन बच्चों को संभालकर बैठिए, मैं आपको झुलाऊंगी। अगर उस डाल से न छू ले तो कहिएगा ! रमा के प्राण सूख गए। बोला—आज तो बहुत देर हो गई है, फिर कभी आऊंगा।

रतन—अजी अभी क्या देर हो गई है, दस भी नहीं बजे। घबड़ाइए नहीं, अभी बहुत रात पड़ी है। खूब झूलकर जाइएगा। कल जालपा को लाइएगा, हम दोनों झूलेंगे।

रमा झूले पर से उतर आया तो उसका चेहरा सहमा हुआ था। मालूम होता था, अब गिरा, अब गिरा। वह लड़खड़ाता हुआ साइकिल की ओर चला और उस पर बैठकर तुरंत घर भागा।

कुछ दूर तक उसे कुछ होश न रहा। पांव आप ही आप पैडल घुमाते जाते थे। आधी दूर जाने के बाद उसे होश आया। उसने साइकिल घुमा, दी कुछ दूर चला, फिर उतरकर सोचने लगा—आज संकोच में पड़कर कैसी बाजी हाथ से खोई, वहां से चुपचाप अपना सा-मुंह लिए लौट आया। क्यों उसके मुंह से आवाज नहीं निकली। रतन कुछ हौवा तो थी नहीं, जो उसे खा जाती। सहसा उसे याद आया, थैली में आठ सौ रुपये थे, जालपा ने झुंझलाकर थैली की थैली उसके हवाले कर दी। शायद, उसने भी गिना नहीं, नहीं जरूर कहती। कहीं ऐसा न हो, थैली किसी को दे दे, या और रुपयों में मिला दे, तो गजब ही हो जाए। कहीं का न रहूं। क्यों न इसी वक्त चलकर बेशी रुपये मांग लाऊं, लेकिन देर बहुत हो गई है, सबेरे फिर आना पड़ेगा।

मगर यह दो सौ रुपये मिल भी गए, तब भी तो पांच सौ रुपयों की कमी रहेगी। उसका क्या प्रबंध होगा? ईश्वर ही बेड़ा पार लगाएं तो लग सकता है। सबेरे कुछ प्रबंध न हुआ, तो क्या होगा ! यह सोचकर वह कांप उठा।

जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं, जब निराशा में भी हमें आशा होती है। रमा ने सोचा, एक बार फिर गंगू के पास चलूं, शायद दुकान पर मिल जाय, उसके हांथ-पांव जोडूं संभव है, कुछ दया आ जाय। वह सराफे जा पहुंचा, मगर गंगू की दुकान बंद थी। वह लौटा ही था कि चरनदास आता हुआ दिखाई दिया। रमा को देखते ही बोला—बाबूजी, आपने तो इधर का रास्ता ही छोड़ दिया। कहिए रुपये कब तक मिलेंगे?

रमा ने विनम्र भाव से कहा—अब बहुत जल्द मिलेंगे भाई, देर नहीं है। देखो गंगू के रुपये चुकाए हैं, अब की तुम्हारी बारी है।

चरनदास—वह सब किस्सा मालूम है, गंगू ने होशियारी से अपने रुपये न ले लिए होते,

तो हमारी तरह टापा करते। साल भर हो रहा है। रुपये सैकड़े का सूद भी रखिए तो चौरासी रुपये होते हैं। कल आकर हिसाब कर जाइए, सब नहीं तो आधा-तिहाई कुछ दे दीजिए। लेते-देते रहने से मालिक को ढाढ़स रहता है। कान में तेल डालकर बैठे रहने से तो उसे शंका होने लगती है कि इनकी नीयत खराब है। तो कल कब आइएगा?

रमानाथ—भई, कल मैं रुपये लेकर तो न आ सकूंगा, यों जब कहो तब चला आऊं। क्यों, इस वक्त अपने सेठजी से चार-पांच सौ रुपयों का बंदोबस्त न करा दोगे? तुम्हारी मुट्ठी भी गर्म कर दूंगा।

चरनदास—कहां की बात लिए फिरते हो बाबूजी, सेठजी एक कौड़ी तो देंगे नहीं। उन्होंने यही बहुत सलूक किया कि नालिश नहीं कर दी। आपके पीछे मुझे बातें सुननी पड़ती हैं। क्या बड़े मुंशीजी से कहना पड़ेगा?

रमा ने झल्लाकर कहा—तुम्हारा देनदार मैं हूं, बड़े मुंशी नहीं हैं। मैं मर नहीं गया हूं, घर छोड़कर भागा नहीं जाता हूं। इतने अधीर क्यों हुए जाते हो?

चरनदास—साल भर हुआ, एक कौड़ी नहीं मिली, अधीर न हों तो क्या हों। कल कम-से-कम दो सौ की फिकर कर रखिएगा।

रमानाथ—मैंने कह दिया, मेरे पास अभी रुपये नहीं हैं।

चरनदास—रोज गठरी काट-काटकर रखते हो, उस पर कहते हो, रुपये नहीं हैं। कल रुपये जुटा रखना। कल आदमी जाएगा जरूर।

रमा ने उसका कोई जवाब न दिया, आगे बढ़ा। इधर आया था कि कुछ काम निकलेगा, उल्टे तकाजा सहना पड़ा। कहीं दुष्ट सचमुच बाबूजी के पास तकाजा न भेज दे। आग ही हो जायंगे। जालपा भी समझेगी, कैसा लबाड़िया आदमी है।

इस समय रमा की आंखों से आंसू तो न निकलते थे, पर उसका एक-एक रोआं रो रहा था। जालपा से अपनी असली हालत छिपाकर उसने कितनी भारी भूल की! वह समझदार औरत है, अगर उसे मालूम हो जाता कि मेरे घर में भूंजी भांग भी नहीं है, तो वह मुझे कभी उधार गहने न लेने देती। उसने तो कभी अपने मुंह से कुछ नहीं कहा। मैं ही अपनी शान जमाने के लिए मरा जा रहा था। इतना बड़ा बोझ सिर पर लेकर भी मैंने क्यों किफायत से काम नहीं लिया? मुझे एक-एक पैसा दांतों से पकडना चाहिए था। साल भर में मेरी आमदनी सब मिलाकर एक हजार से कम न हुई होगी। अगर किफायत से चलता, तो इन दोनों महाजनों के आधे-आधे रुपये जरूर अदा हो जाते, मगर यहां तो सिर पर शामत सवार थी। इसकी क्या जरूरत थी कि जालपा मुहल्ले भर की औरतों को जमा करके रोज सैर करने जाती? सैकड़ों रुपये तो तांगे वाला ले गया होगा, मगर यहां तो उस पर रोब जमाने की पड़ी हुई थी। सारा बाजार जान जाय कि लाला निरे लफंगे हैं, पर अपनी स्त्री न जानने पाए! वाह री बुद्धि! दरवाजे के लिए परदों की क्या जरूरत थी! दो लैंप क्यों लाया, नई निवाड़ लेकर चारपाइयां क्यों बिनवाई? उसने रास्ते ही में उन खर्चों का हिसाब तैयार कर लिया, जिन्हें उसकी हैसियत के आदमी को टालना चाहिए था। आदमी जब तक स्वस्थ रहता है, उसे इसकी चिंता नहीं रहती कि वह क्या खाता है, कितना खाता है, कब खाता है, लेकिन जब कोई विकार उत्पन्न हो जाता है, तो उसे याद आती है कि कल मैंने पकौड़ियां खाई थीं। विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी।

जालपा ने पूछा—कहां चले गए थे, बड़ी देर लगा दी?

रमानाथ—तुम्हारे कारण रतन के बंगले पर जाना पड़ा। तुमने सब रुपये उठाकर दे दिए, उसमें दो सौ रुपये मेरे भी थे।

जालपा—तो मुझे क्या मालूम था, तुमने कहा भी तो न था; मगर उनके पास से रुपये कहीं जा नहीं सकते, वह आप ही भेज देंगी।

रमानाथ—माना; पर सरकारी रकम तो कल दाखिल करनी पड़ेगी।

जालपा—कल मुझसे दो सौ रुपये ले लेना, मेरे पास हैं।

रमा को विश्वास न आया। बोला—कहीं हों न तुम्हारे पास ! इतने रुपये कहां से आए?

जालपा—तुम्हें इससे क्या मतलब, मैं तो दो सौ रुपये देने को कहती हूं।

रमा का चेहरा खिल उठा। कुछ-कुछ आशा बंधी। दो-सौ रुपये यह दे-दे, दो सौ रुपये रतन से ले लूं, सौ रुपये मेरे पास हैं ही, तो कुल तीन सौ की कमी रह जाएगी, मगर यही तीन सौ रुपये कहां से आएंगे? ऐसा कोई नजर न आता था, जिससे इतने रुपये मिलने की आशा की जा सके। हां, अगर रतन सब रुपये दे दे तो बिगड़ी बात बन जाय। आशा का यही एक आधार रह गया था।

जब वह खाना खाकर लेटा, तो जालपा ने कहा—आज किस सोच में पड़े हो?

रमानाथ—सोच किस बात का? क्या मैं उदास हूं?

जालपा—हां, किसी चिंता में पड़े हुए हो, मगर मुझसे बताते नहीं हो !

रमानाथ— ऐसी कोई बात होती तो तुमसे छिपाता?

जालपा—वाह, तुम अपने दिल की बात मुझसे क्यों कहोगे? ऋषियों की आज्ञा नहीं है।

रमानाथ—मैं उन ऋषियों के भक्तों में नहीं हूं।

जालपा—वह तो तब मालूम होता, जब मैं तुम्हारे हृदय में पैठकर देखती।

रमानाथ—वहां तुम अपनी ही प्रतिमा देखतीं।

रात को जालपा ने एक भयंकर स्वप्न देखा, वह चिल्ला पड़ी। रमा ने चौंककर पूछा—क्या है जालपा, क्या स्वप्न देख रही हो?

जालपा ने इधर-उधर घबड़ाई हुई आंखों से देखकर कहा—बड़े संकट में जान पड़ी थी। न जाने कैसा सपना देख रही थी !

रामनाथ—क्या देखा?

जालपा—क्या बताऊं, कुछ कहा नहीं जाता। देखती थी कि तुम्हें कई सिपाही पकड़े लिए जा रहे हैं। कितना भयंकर रूप था उनका !

रमा का खून सूख गया। दो-चार दिन पहले, इस स्वप्न को उसने हंसी में उड़ा दिया होता; इस समय वह अपने को सशंकित होने से न रोक सका, पर बाहर से हंसकर बोला—तुमने सिपाहियों से पूछा नहीं, इन्हें क्यों पकड़े लिए जाते हो?

जालपा—तुम्हें हंसी सूझ रही है, और मेरा हृदय कांप रहा है।

थोड़ी देर के बाद रमा ने नींद में बकना शुरू किया—अम्मां, कहे देता हूं, फिर मेरा मुंह न देखोगी, मैं डूब मरूंगा।

जालपा को अभी तक नींद न आई थी, भयभीत होकर उसने रमा को जोर से हिलाया और बोली—मुझे तो हंसते थे और खुद बकने लगे। सुनकर रोएं खड़े हो गए। स्वप्न देखते थे क्या?

रमा ने लज्जित होकर कहा—हां जी, न जाने क्या देख रहा था कुछ याद नहीं।

जालपा ने पूछा—अम्मांजी को क्यों धमका रहे थे। सच बताओ, क्या देखते थे?

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—कुछ याद नहीं आता, यों ही बकने लगा हूंगा।

जालपा—अच्छा तो करवट सोना। चित सोने से आदमी बकने लगता है।

रमा करवट पौढ़ गया; पर ऐसा जान पड़ता था, मानो चिंता और शंका दोनों आंखों में बैठी हुई निद्रा के आक्रमण से उनकी रक्षा कर रही हैं। जागते हुए दो बज गए। सहसा जालपा उठ बैठी, और सुराही से पानी उंड़ेलती हुई बोली—बड़ी प्यास लगी थी, क्या तुम अभी तक जाग ही रहे हो?

रमा—हां जी, नींद उचट गई है। मैं सोच रहा था, तुम्हारे पास दो सौ रुपये कहां से आ गए? मुझे इसका आश्चर्य है।

जालपा—ये रुपये मैं मायके से लाई थी, कुछ बिदाई में मिले थे, कुछ पहले से रक्खे थे।

रमानाथ—तब तो तुम रुपये जमा करने में बड़ी कुशल हो। यहां क्यों नहीं कुछ जमा किया?

जालपा ने मुस्कराकर कहा—तुम्हें पाकर अब रुपये की परवाह नहीं रही।

रमानाथ—अपने भाग्य को कोसती होगी!

जालपा—भाग्य को क्यों कोसूं, भाग्य को वह औरतें रोएं, जिनका पति निखट्टू हो, शराबी हो, दुराचारी हो, रोगी हो, तानों से स्त्री को छेदता रहे, बात-बात पर बिगड़े। पुरुष मन का हो तो स्त्री उसके साथ उपवास करके भी प्रसन्न रहेगी।

रमा ने विनोद भाव से कहा—तो मैं तुम्हारे मन का हूं!

जालपा ने प्रेम-पूर्ण गर्व से कहा—मेरी जो आशा थी, उससे तुम कहीं बढ़कर निकले। मेरी तीन सहेलियां हैं। एक का भी पति ऐसा नहीं। एक एम॰ ए॰ हैं पर सदा रोगी। दूसरा विद्वान् भी है और धनी भी, पर वेश्यागामी। तीसरा घरघुस्सू है और बिल्कुल निखट्टू।

रमा का हृदय गद्गद हो उठा। ऐसी प्रेम की मूर्ति और दया की देवी के साथ उसने कितना बड़ा विश्वासघात किया। इतना दुराव रखने पर भी जब इसे मुझसे इतना प्रेम है, तो मैं अगर उससे निष्कपट होकर रहता, तो मेरा जीवन कितना आनंदमय होता!

## उन्नीस

प्रात:काल रमा ने रतन के पास अपना आदमी भेजा। खत में लिखा, मुझे बड़ा खेद है कि कल जालपा ने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया, जो उसे न करना चाहिए था। मेरा विचार यह कदापि न था कि रुपये आपको लौटा दूं, मैंने सराफ को ताकीद करने के लिए उससे रुपये लिए थे। कंगन दो-चार रोज में अवश्य मिल जाएंगे। आप रुपये भेज दें। उसी थैली में दो सौ रुपये मेरे भी थे। वह भी भेजिएगा। अपने सम्मान की रक्षा करते हुए जितनी विनम्रता उससे हो सकती थी, उसमें कोई कसर नहीं रक्खी। जब तक आदमी लौटकर न आया, वह बड़ी व्यग्रता से उसकी राह देखता रहा। कभी सोचता, कहीं बहाना न कर दे. या घर पर मिले ही नहीं, या दो-

चार दिन के बाद देने का वादा करे। सारा दारोमदार रतन के रुपये पर था। अगर रतन ने साफ जवाब दे दिया, तो फिर सर्वनाश ! उसकी कल्पना से ही रमा के प्राण सूखे जा रहे थे। आखिर नौ बजे आदमी लौटा। रतन ने दो सौ रुपये तो दिए थे; मगर खत का कोई जवाब न दिया था।

रमा ने निराश आंखों से आकाश की ओर देखा। सोचने लगा, रतन ने खत का जवाब क्यों नहीं दिया? मामूली शिष्टाचार भी नहीं जानती? कितनी मक्कार औरत है ! रात को ऐसा मालूम होता था कि साधुता और सज्जनता की प्रतिमा ही है, पर दिल में यह गुबार भरा हुआ था ! शेष रुपयों की चिंता में रमा को नहाने-खाने की भी सुध न रही।

कहार अंदर गया, तो जालपा ने पूछा—तुम्हें कुछ काम-धंधे की भी खबर है कि मटरगश्ती ही करते रहोगे ! दस बज रहे हैं, और अभी तक तरकारी-भाजी का कहीं पता नहीं?

कहार ने त्योरियां बदलकर कहा—तो का चार हाथ-गोड़ कर लेई ! कामें से तो गवा रहिन। बाबू मेम साहब के तीर रुपैया लेबे का भेजिन रहा।

जालपा—कौन मेम साहब?

कहार—जौन मोटर पर चढ़कर आवत हैं।

जालपा—तो लाए रुपये?

कहार—लाए काहे नाहीं। पिरथी के छोर पर तो रहत हैं, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लाग !

जालपा—अच्छा चटपट जाकर तरकारी लाओ।

कहार तो उधर गया, रमा रुपये लिए हुए अंदर पहुंचा तो जालपा ने कहा—तुमने अपने रुपये रतन के पास से मंगवा लिए न? अब तो मुझसे न लोगे?

रमा ने उदासीन भाव से कहा—मत दो !

जालपा—मैंने कह दिया था रुपया दे दूंगी। तुम्हें इतनी जल्द मांगने की क्यों सूझी? समझी होगी, इन्हें मेरा इतना विश्वास भी नहीं।

रमा ने हताश होकर कहा—मैंने रुपये नहीं मांगे थे। केवल इतना लिख दिया था कि थैली में दो सौ रुपये ज्यादे हैं। उसने आप ही आप भेज दिए।

जालपा ने हंसकर कहा—मेरे रुपये बड़े भाग्यवान हैं, दिखाऊं? चुन-चुनकर नए रुपये रक्खे हैं। सब इसी साल के हैं, चमाचम ! देखो तो आंखें ठंडी हो जाएं।

इतने में किसी ने नीचे से आवाज दी—बाबूजी, सेठ ने रुपये के लिए भेजा है।

दयानाथ स्नान करने अंदर आ रहे थे, सेठ के प्यादे को देखकर पूछा—कौन सेठ, कैसे रुपये? मेरे यहां किसी के रुपये नहीं आते !

प्यादा—छोटे बाबू ने कुछ माल लिया था। साल भर हो गए, अभी तक एक पैसा नहीं दिया। सेठजी ने कहा है, बात बिगड़ने पर रुपये दिए तो क्या दिए। आज कुछ जरूर दिलवा दीजिए।

दयानाथ ने रमा को पुकारा और बोले—देखो, किस सेठ का आदमी आया है। उसका कुछ हिसाब बाकी है, साफ क्यों नहीं कर देते? कितना बाकी है इसका?

रमा कुछ जवाब न देने पाया था कि प्यादा बोल उठा—पूरे सात सौ हैं, बाबूजी !

दयानाथ की आंखें फैलकर मस्तक तक पहुंच गईं—सात सौ ! क्यों जी, यह तो सात सौ कहता है?

रमा ने टालने के इरादे से कहा—मुझे ठीक से मालूम नहीं।

प्यादा—मालूम क्यों नहीं। पुरजा तो मेरे पास है। तब से कुछ दिया ही नहीं, कम कहां से हो गए।

रमा ने प्यादे को पुकारकर कहा—चलो तुम दुकान पर, मैं खुद आता हूं।

प्यादा—हम बिना कुछ लिए न जाएंगे, साहब! आप यों ही टाल दिया करते हैं, और बातें हमको सुननी पड़ती हैं।

रमा सारी दुनिया के सामने जलील बन सकता था, किंतु पिता के सामने जलील बनना उसके लिए मौत से कम न था। जिस आदमी ने अपने जीवन में कभी हराम का एक पैसा न छुआ हो, जिसे किसी से उधार लेकर भोजन करने के बदले भूखों सो रहना मंजूर हो, उसका लड़का इतना बेशर्म और बेगैरत हो! रमा पिता की आत्मा का यह घोर अपमान न कर सकता था। वह उन पर यह बात प्रकट न होने देना चाहता था कि उनका पुत्र उनके नाम को बट्टा लगा रहा है। कर्कश स्वर में प्यादे से बोला—तुम अभी यहीं खड़े हो? हट जाओ, नहीं तो धक्के देकर निकाल दिए जाओगे।

प्यादा—हमारे रुपये दिलवाइए, हम चले जायं। हमें क्या आपके द्वार पर मिठाई मिलती है!

रमानाथ—तुम न जाओगे! जाओ लाला से कह देना नालिश कर दें।

दयानाथ ने डांटकर कहा—क्या बेशर्मी की बातें करते हो जी। जब गिरह में रुपये न थे, तो चीज लाए ही क्यों? और लाए, तो जैसे बने वैसे रुपये अदा करो। कह दिया, नालिश कर दो। नालिश कर देगा, तो कितनी आबरू रह जायगी? इसका भी कुछ खयाल है! सारे शहर में उंगलियां उठेंगी; मगर तुम्हें इसकी क्या परवा। तुमको यह सूझी क्या कि एकबारगी इतनी बड़ी गठरी सिर पर लाद ली। कोई शादी-ब्याह का अवसर होता, तो एक बात भी थी। और वह औरत कैसी है जो पति को ऐसी बेहूदगी करते देखती है और मना नहीं करती। आखिर तुमने क्या सोचकर यह कर्ज लिया? तुम्हारी ऐसी कुछ बड़ी आमदनी तो नहीं है!

रमा को पिता की यह डांट बहुत बुरी लग रही थी। उसके विचार में पिता को इस विषय में कुछ बोलने का अधिकार ही न था। निःसंकोच होकर बोला—आप नाहक इतना बिगड़ रहे हैं, आपसे रुपये मांगने जाऊं तो कहिएगा। मैं अपने वेतन से थोड़ा-थोड़ा करके सब चुका दूंगा।

अपने मन में उसने कहा—यह तो आप ही की करनी का फल है। आप ही के पाप का प्रायश्चित कर रहा हूं।

प्यादे ने पिता और पुत्र में वाद-विवाद होते देखा, तो चुपके से अपनी राह ली। मुंशीजी भुनभुनाते हुए स्नान करने चले गए। रमा ऊपर गया, तो उसके मुंह पर लज्जा और ग्लानि की फटकार बरस रही थी। जिस अपमान से बचने के लिए वह डाल-डाल, पात-पात भागता-फिरता था, वह हो ही गया। इस अपमान के सामने सरकारी रुपयों की फिक्र भी गायब हो गई। कर्ज लेने वाले बला के हिम्मती होते हैं। साधारण बुद्धि का मनुष्य ऐसी परिस्थितियों में पड़कर घबरा उठता है; पर बैठकबाजों के माथे पर बल तक नहीं पड़ता। रमा अभी इस कला में दक्ष नहीं हुआ था। इस समय यदि यमदूत उसके प्राण हरने आता, तो वह आंखों से दौड़कर उसका स्वागत करता। कैसे क्या होगा, यह शब्द उसके एक-एक रोम से निकल रहा था। कैसे क्या होगा! इससे अधिक वह इस समस्या की और व्याख्या न कर सकता था। यही प्रश्न एक सर्वव्यापी पिशाच की भांति उसे घूरता दिखाई देता था। कैसे क्या होगा! यही शब्द अगणित

बगूलों की भांति चारों ओर उठते नजर आते थे। वह इस पर विचार न कर सकता था। केवल उसकी ओर से आंखें बंद कर सकता था। उसका चित्त इतना खिन्न हुआ कि आंखें सजल हो गईं।

जालपा ने पूछा—तुमने तो कहा था, इसके अब थोड़े ही रुपये बाकी हैं।

रमा ने सिर झुकाकर कहा—यह दुष्ट झूठ बोल रहा था, मैंने कुछ रुपये दिए हैं।

जालपा—दिए होते, तो कोई रुपयों का तकाजा क्यों करता? जब तुम्हारी आमदनी इतनी कम थी तो गहने लिए ही क्यों? मैंने तो कभी जिद न की थी। और मान लो, मैं दो-चार बार कहती भी, तुम्हें समझ-बूझकर काम करना चाहिए था। अपने साथ मुझे भी चार बातें सुनवा दीं। आदमी सारी दुनिया से परदा रखता है, लेकिन अपनी स्त्री से परदा नहीं रखता। तुम मुझसे भी परदा रखते हो। अगर मैं जानती, तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है, तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियों को तांगे पर बैठा-बैठाकर सैर कराने ले जाती। अधिक-से-अधिक यही तो होता, कि कभी-कभी चित्त दुखी हो जाता, पर यह तकाजे तो न सहने पड़ते। कहीं नालिश कर दे, तो सात सौ के एक हजार हो जाएं। मैं क्या जानती थी कि तुम मुझ से यह छल कर रहे हो। कोई वेश्या तो थी नहीं कि तुम्हें नोच-खसोटकर अपना घर भरना मेरा काम होता। मैं तो भले-बुरे दोनों ही की साथिन हूं। भले में तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, बुरे में तो मैं तुम्हारे गले पड़ूंगी ही।

रमा के मुख से एक शब्द न निकला। दफ्तर का समय आ गया था। भोजन करने का अवकाश न था। रमा ने कपड़े पहने, और दफ्तर चला। जागेश्वरी ने कहा—क्या बिना भोजन किए चले जाओगे?

रमा ने कोई जवाब न दिया, और घर से निकलना ही चाहता था कि जालपा झपटकर नीचे आई और उसे पुकारकर बोली—मेरे पास जो दो सौ रुपये हैं, उन्हें क्यों नहीं सराफ को दे देते?

रमा ने चलते वक्त जान-बूझकर जालपा से रुपये न मांगे थे। वह जानता था, जालपा मांगते ही दे देगी; लेकिन इतनी बातें सुनने के बाद अब रुपये के लिए उसके सामने हाथ फैलाते उसे संकोच ही नहीं, भय होता था। कहीं वह फिर न उपदेश देने बैठ जाए—इसकी अपेक्षा आने वाली विपत्तियां कहीं हल्की थीं। मगर जालपा ने उसे पुकारा, तो कुछ आशा बंधी। ठिठक गया और बोला—अच्छी बात है, लाओ दे दो।

वह बाहर के कमरे में बैठ गया। जालपा दौड़कर ऊपर से रुपये लाई और गिन-गिनकर उसकी थैली में डाल दिए। उसने समझा था, रमा रुपये पाकर फूला न समाएगा; पर उसकी आशा पूरी न हुई। अभी तीन सौ रुपये की फिक्र करनी थी। वह कहां से आएंगे? भूखा आदमी इच्छापूर्ण भोजन चाहता है, दो-चार फुलकों से उसकी तुष्टि नहीं होती।

सड़क पर आकर रमा ने एक तांगा लिया और उससे जार्जटाउन चलने को कहा—शायद रतन से भेंट हो जाए। वह चाहे तो तीन सौ रुपये का बड़ी आसानी से प्रबंध कर सकती है। रास्ते में वह सोचता जाता था, आज बिल्कुल संकोच न करूंगा। जरा देर में जार्जटाउन आ गया। रतन का बंगला भी आया। वह बरामदे में बैठी थी। रमा ने उसे देखकर हाथ उठाया, उसने भी हाथ उठाया; पर वहां उसका सारा संयम टूट गया। वह बंगले में न जा सका। तांगा सामने से निकल गया। रतन बुलाती, तो वह चला जाता। वह बरामदे में न बैठी होती तब भी शायद वह अंदर

जाता, पर उसे सामने बैठे देखकर वह संकोच में डूब गया।

जब तांगा गवर्नमेंट हाउस के पास पहुंचा, तो रमा ने चौंककर कहा—चुंगी के दफ्तर चलो। तांगे वाले ने घोड़ा फेर दिया।

ग्यारह बजते-बजते रमा दफ्तर पहंचा। उसका चेहरा उतरा हुआ था। छाती धड़क रही थी। बड़े बाबू ने जरूर पूछा होगा। जाते ही बुलाएंगे। दफ्तर में जरा भी रियायत नहीं करते। तांगे से उतरते ही उसने पहले अपने कमरे की तरफ निगाह डाली। देखा, कई आदमी खड़े उसकी राह देख रहे हैं। वह उधर न जाकर रमेश बाबू के कमरे की ओर गया।

रमेश बाबू ने पूछा—तुम अब तक कहां थे जी, खजांची साहब तुम्हें खोजते फिरते हैं? चपरासी मिला था?

रमा ने अटकते हुए कहा—मैं घर पर न था। जरा वकील साहब की तरफ चला गया था। एक बड़ी मुसीबत में फंस गया हूं।

रमेश—कैसी मुसीबत, घर पर तो कुशल है।

रमानाथ— जी हां, घर पर तो कुशल है। कल शाम को यहां काम बहुत था, मैं उसमें ऐसा फंसा कि वक्त की कुछ खबर ही न रही। जब काम खत्म करके उठा, तो खजांची साहब चले गए थे। मेरे पास आमदनी के आठ सौ रुपये थे। सोचने लगा इसे कहां रक्खूं। मेरे कमरे में कोई संदूक है नहीं। यही निश्चय किया कि साथ लेता जाऊं। पांच सौ रुपये नकद थे, वह तो मैंने थैली में रक्खे तीन सौ रुपये के नोट जेब में रख लिए और घर चला। चौक में एक-दो चीजें लेनी थीं। उधर से होता हुआ घर पहुंचा तो नोट गायब थे।

रमेश बाबू ने आंखें फाड़कर कहा—तीन सौ के नोट गायब हो गए?

रमानाथ—जी हां, कोट के ऊपर की जेब में थे। किसी ने निकाल लिए?

रमेश—और तुमको मारकर थैली नहीं छीन ली?

रमानाथ—क्या बताऊं बाबूजी, तब से चित्त की जो दशा हो रही है, वह बयान नहीं कर सकता। तब से अब तक इसी फिक्र में दौड़ रहा हूं। कोई बंदोबस्त न हो सका।

रमेश—अपने पिता से तो कहा ही न होगा?

रमानाथ—उनका स्वभाव तो आप जानते हैं। रुपये तो न देते, उल्टी डांट सुनाते।

रमेश—तो फिर क्या फिक्र करोगे?

रमानाथ—आज शाम तक कोई न कोई फिक्र करूंगा ही।

रमेश ने कठोर भाव धारण करके कहा—तो फिर करो न ! इतनी लापरवाही तुमसे हुई कैसे ! यह मेरी समझ में नहीं आता। मेरी जेब से तो आज तक एक पैसा न गिरा। आंखें बंद करके रास्ता चलते हो या नशे में थे? मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता। सच-सच बतला दो, कहीं अनाप-शनाप तो नहीं खर्च कर डाले? उस दिन तुमने मुझसे क्यों रुपये मांगे थे?

रमा का चेहरा पीला पड़ गया। कहीं कलई तो न खुल जाएगी। बात बनाकर बोला—क्या सरकारी रुपया खर्च कर डालूंगा? उस दिन तो आपसे रुपये इसलिए मांगे थे कि बाबूजी को एक जरूरत आ पड़ी थी। घर में रुपये न थे। आपका खत मैंने उन्हें सुना दिया था। बहुत हंसे; दूसरा इंतजाम कर लिया। इन नोटों के गायब होने का तो मुझे खुद ही आश्चर्य है।

रमेश—तुम्हें अपने पिताजी से मांगते संकोच होता हो, तो मैं खत लिखकर मंगवा लूं।

रमा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—नहीं बाबूजी, ईश्वर के लिए ऐसा न कीजिएगा।

ऐसी ही इच्छा हो, तो मुझे गोली मार दीजिए।

रमेश ने एक क्षण तक कुछ सोचकर कहा—तुम्हें विश्वास है, शाम तक रुपये मिल जाएंगे?

रमानाथ—हां, आशा तो है।

रमेश—तो इस थैली के रुपये जमा कर दो, मगर देखो भाई, मैं साफ-साफ कहे देता हूं, अगर कल दस बजे रुपये न लाए तो मेरा दोष नहीं। कायदा तो यही कहता है कि मैं इसी वक्त तुम्हें पुलिस के हवाले करूं; मगर तुम अभी लड़के हो, इसलिए क्षमा करता हूं। वरना तुम्हें मालूम है, मैं सरकारी काम में किसी प्रकार की मुरौवत नहीं करता। अगर तुम्हारी जगह मेरा भाई या बेटा होता, तो मैं उसके साथ भी यही सलूक करता, बल्कि शायद इससे सख्त। तुम्हारे साथ तो फिर भी बड़ी नर्मी कर रहा हूं। मेरे पास रुपये होते तो तुम्हें दे देता, लेकिन मेरी हालत तुम जानते हो। हां, किसी का कर्ज नहीं रखता। न किसी को कर्ज देता हूं, न किसी से लेता हूं। कल रुपये न आए तो बुरा होगा। मेरी दोस्ती भी तुम्हें पुलिस के पंजे से न बचा सकेगी। मेरी दोस्ती ने आज अपना हक अदा कर दिया वरना इस वक्त तुम्हारे हाथों में हथकड़ियां होतीं।

हथकड़ियां! यह शब्द तीर की भांति रमा की छाती में लगा। वह सिर से पांव तक कांप उठा। उस विपत्ति की कल्पना करके उसकी आंखें डबडबा आईं। वह धीरे-धीरे सिर झुकाए, सजा पाए हुए कैदी की भांति जाकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया; पर यह भयंकर शब्द बीच-बीच में उसके हृदय में गूंज जाता था।

आकाश पर काली घटाएं छाई थीं। सूर्य का कहीं पता न था, क्या वह भी उस घटारूपी कारागार में बंद है, क्या उसके हाथों में भी हथकड़ियां हैं?

## बीस

रमा शाम को दफ्तर से चलने लगा, तो रमेश बाबू दौड़े हुए आए और कल रुपये लाने की ताकीद की। रमा मन में झुंझला उठा। आप बड़े ईमानदार की दुम बने हैं! ढोंगिया कहीं का! अगर अपनी जरूरत आ पड़े, तो दूसरों के तलवे सहलाते फिरेंगे; पर मेरा काम है, तो आप आदर्शवादी बन बैठे। यह सब दिखाने के दांत हैं, मरते समय इसके प्राण भी जल्दी नहीं निकलेंगे!

कुछ दूर चलकर उसने सोचा, एक बार फिर रतन के पास चलूं। और ऐसा कोई न था जिससे रुपये मिलने की आशा होती। वह जब उसके बंगले पर पहुंचा, तो वह अपने बगीचे में गोल चबूतरे पर बैठी हुई थी। उसके पास ही एक गुजराती जौहरी बैठा संदूक से सुंदर आभूषण निकाल-निकालकर दिखा रहा था। रमा को देखकर वह बहुत खुश हुई। 'आइये बाबू साहब, देखिए सेठजी कैसी अच्छी-अच्छी चीजें लाए हैं। देखिए, हार कितना सुंदर है, इसके दाम बारह सौ रुपये बताते हैं।'

रमा ने हार को हाथ में लेकर देखा और कहा—हां, चीज तो अच्छी मालूम होती है!

रतन—दाम बहुत कहते हैं।

जौहरी—बाईजी, ऐसा हार अगर कोई दो हजार में ला दे, तो जो जुर्माना कहिए, दूं। बारह

सौ मेरी लागत बैठ गई है।

रमा ने मुस्कराकर कहा—ऐसा न कहिए सेठजी, जुर्माना देना पड़ जाएगा।

जौहरी—बाबू साहब, हार तो सौ रुपये में भी आ जाएगा और बिल्कुल ऐसा ही। बल्कि चमक-दमक में इससे भी बढ़कर। मगर परखना चाहिए। मैंने खुद ही आपसे मोल-तोल की बात नहीं की। मोल-तोल अनाड़ियों से किया जाता है। आपसे क्या मोल-तोल। हम लोग निरे रोजगारी नहीं हैं बाबू साहब, आदमी का मिजाज देखते है। श्रीमतीजी ने क्या अमीराना मिजाज दिखाया है कि वाह!

रतन ने हार को लुब्ध नेत्रों से देखकर कहा—कुछ तो कम कीजिए, सेठजी! आपने तो जैसे कसम खा ली!

जौहरी—कमी का नाम न लीजिए, हुजूर! यह चीज आपकी भेंट है।

रतन—अच्छा, अब एक बात बतला दीजिए, कम-से-कम इसका क्या लेंगे?

जौहरी ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—बारह सौ रुपये और बारह कौड़ियां होंगी, हुजूर। आप से कसम खाकर कहता हूं, इसी शहर में पद्रह सौ का बचूगा, और आपसे कह जाऊंगा, किसने लिया।

यह कहते हुए जौहरी ने हार को रखने का केस निकाला। रतन को विश्वास हो गया, यह कुछ कम न करेगा। बालकों की भांति अधीर होकर बोली—आप तो ऐसा समेटे लेते हैं कि हार को नजर लग जाएगी!

जौहरी—क्या करूं, हुजूर जब ऐसे दरबार मे चीज की कदर नहीं होती, तो दुख होता ही है।

रतन ने कमरे में जाकर रमा को बुलाया और बोली—आप समझते हैं यह कुछ और उतरेगा?

रमानाथ—मेरी समझ में तो चीज एक हजार से ज्यादा की नहीं है।

रतन—उंह, होगा। मेरे पास तो छ: सौ रुपये है। आप चार सौ रुपये का प्रबंध कर दें, तो ले लूं। यह इसी गाड़ी से काशी जा रहा है। उधार न मानेगा। वकील साहब किसी जलसे में गए हैं, नौ-दस बजे के पहले न लौटेंगे। मैं आपको कल रुपये लौटा दूंगी।

रमा ने बड़े संकोच के साथ कहा—विश्वास मानिए, मैं बिल्कुल खाली हाथ हूं। मैं तो आपसे रुपये मांगने आया था। मुझे बड़ी सख्त जरूरत है। वह रुपये मुझे दे दीजिए, मैं आपके लिए कोई अच्छा-सा हार यहीं से ला दूंगा। मुझे विश्वास है, ऐसा हार सात-आठ सौ में मिल जाएगा।

रतन—चलिए, मैं आपकी बातों में नहीं आती। छ: महीने में एक कंगन तो बनवा न सके, अब हार क्या लाएंगे! मैं यहां कई दुकानें देख चुकी हूं, ऐसी चीज शायद ही कहीं निकले। और निकले भी, तो इसके ड्योढ़े दाम देने पड़ेंगे।

रमानाथ—तो इसे कल क्यों न बुलाइए, इसे सौदा बेचने की गरज होगी, तो आप ठहरेगा।

रतन—अच्छा कहिए, देखिए क्या कहता है।

दोनों कमरे के बाहर निकले, रमा ने जौहरी से कहा—तुम कल आठ बजे क्यों नहीं आते?

जौहरी—नहीं हुजूर, कल काशी में दो-चार बड़े रईसों से मिलना है। आज के न-जाने से बड़ी हानि हो जाएगी।

रतन—मेरे पास इस वक्त छः सौ रुपये हैं, आप हार दे जाइए; बाकी के रुपये काशी से लौटकर ले जाइएगा।

जौहरी—रुपये का तो कोई हर्ज न था, महीने-दो महीने में ले लेता; लेकिन हम परदेशी लोगों का क्या ठिकाना, आज यहां हैं, कल वहां हैं, कौन जाने यहां फिर कब आना हो ! आप इस वक्त एक हजार दे दें, दो सौ फिर दे दीजिएगा।

रमानाथ—तो सौदा न होगा।

जौहरी—इसका अख्तियार आपको है; मगर इतना कहे देता हूं कि ऐसा माल फिर न पाइएगा।

रमानाथ—रुपये होंगे तो माल बहुत मिल जायगा।

जौहरी—कभी-कभी दाम रहने पर भी अच्छा माल नहीं मिलता।

यह कहकर जौहरी ने फिर हार को केस में रक्खा और इस तरह संदूक समेटने लगा, मानो वह एक क्षण भी न रुकेगा।

रतन का रोयां-रोयां कान बना हुआ था, मानो कोई कैदी अपनी किस्मत का फैसला सुनने को खड़ा हो। उसके हृदय की सारी ममता, ममता का सारा अनुराग, अनुराग की सारी अधीरता, उत्कंठा और चेष्टा उसी हार पर केंद्रित हो रही थी, मानो उसके प्राण उसी हार के दानों में जा छिपे थे, मानो उसके जन्म-जन्मांतरों की संचित अभिलाषा उसी हार पर मंडरा रही थी। जौहरी को संदूक बंद करते देखकर वह जलविहीन मछली की भांति तड़पने लगी। कभी वह संदूक खोलती, कभी वह दराज खोलती; पर रुपये कहीं न मिले।

सहसा मोटर की आवाज सुनकर रतन ने फाटक की ओर देखा। वकील साहब चले आ रहे थे। वकील साहब ने मोटर बरामदे के सामने रोक दी और चबूतरे की तरफ चले। रतन ने चबूतरे के नीचे उतरकर कहा—आप तो नौ बजे आने को कह गए थे?

वकील—वहां कोरम ही पूरा न हुआ, बैठकर क्या करता ! कोई दिल से तो काम करना नहीं चाहता, सब मुफ्त में नाम कमाना चाहते हैं। यह क्या कोई जौहरी है?

जौहरी ने उठकर सलाम किया।

वकील साहब रतन से बोले—क्यों, तुमने कोई चीज पसंद की?

रतन—हां, एक हार पसंद किया है, बारह सौ रुपये मांगते हैं।

वकील—बस ! और कोई चीज पसंद करो। तुम्हारे पास सिर की कोई अच्छी चीज नहीं है।

रतन—इस वक्त मैं यही एक हार लूंगी। आजकल सिर की चीजें कौन पहनता है।

वकील—लेकर रख लो, पास रहेगी तो कभी पहन भी लोगी। नहीं तो कभी दूसरों को पहने देख लिया, तो कहोगी, मेरे पास होता, तो मैं भी पहनती।

वकील साहब को रतन से पति का-सा प्रेम नहीं, पिता का-सा स्नेह था। जैसे कोई स्नेही पिता मेले में लड़कों से पूछ-पूछकर खिलौने लेता है, वह भी रतन से पूछ-पूछकर खिलौने लेते थे। उसके कहने भर की देर थी। उनके पास उसे प्रसन्न करने के लिए धन के सिवा और चीज ही क्या थी। उन्हें अपने जीवन में एक आधार की जरूरत थी—सदेह आधार की, जिसके सहारे वह इस जीर्ण दशा में भी जीवन-संग्राम में खड़े रह सकें, जैसे किसी उपासक को प्रतिमा की जरूरत होती है। बिना प्रतिमा के वह किस पर फूल चढ़ाए, किसे गंगा-जल से

नहलाए, किसे स्वादिष्ट चीजों का भोग लगाए। इसी भांति वकील साहब को भी पत्नी की जरूरत थी। रतन उनके लिए सदेह कल्पना मात्र थी जिससे उनकी आत्मिक पिपासा शांत होती थी। कदाचित् रतन के बिना उनका जीवन उतना ही सूना होता, जितना आंखों के बिना मुख।

रतन ने केस में से हार निकालकर वकील साहब को दिखाया और बोली--इसके बारह सौ रुपये मांगते हैं।

वकील साहब की निगाह में रुपये का मूल्य आनंददायिनी शक्ति थी। अगर हार रतन को पसंद है, तो उन्हें इसकी परवा न थी कि इसके क्या दाम देने पड़ेंगे। उन्होंने चेक निकालकर जौहरी की तरफ देखा और पूछा--सच-सच बोलो, कितना लिखूं ! अगर फर्क पड़ा तो तुम जानोगे।

जौहरी ने हार को उलट-पलटकर देखा और हिचकते हुए बोला--साढ़े ग्यारह सौ कर दीजिए। वकील साहब ने चेक लिखकर उसको दिया, और वह सलाम करके चलता हुआ।

रतन का मुख इस समय वसन्त की प्राकृतिक शोभा की भांति विहसित था। ऐसा गर्व, ऐसा उल्लास उसके मुख पर कभी न दिखाई दिया था। मानो उसे संसार की संपत्ति मिल गई है।

हार को गले में लटकाए वह अंदर चली गई। वकील साहब के आचार-विचार में नई और पुरानी प्रथाओं का विचित्र मेल था। भोजन वह अभी तक किसी ब्राह्मण के हाथ का भी न खाते थे। आज रतन उनके लिए अच्छी-अच्छी चीजें बनाने गई, अपनी कृतज्ञता को वह कैसे जाहिर करे?

रमा कुछ देर तक तो बैठा वकील साहब का योरप-गौरव-गान सुनता रहा, अंत को निराश होकर चल दिया।

## इक्कीस

अगर इस समय किसी को संसार में सबसे दुखी, जीवन से निराश, चिताग्नि में जलते हुए प्राणी की मूर्ति देखनी हो, तो उस युवक को देखे, जो साइकिल पर बैठा हुआ, अल्फ्रेड पार्क के सामने चला जा रहा है। इस वक्त अगर कोई काला सांप नजर आए तो वह दोनों हाथ फैलाकर उसका स्वागत करेगा और उसके विष को सुधा की तरह पिएगा। उसकी रक्षा सुधा से नहीं, अब विष ही से हो सकती है। मौत ही अब उसकी चिंताओं का अंत कर सकती है, लेकिन क्या मौत उसे बदनामी से भी बचा सकती है? सबेरा होते ही, यह बात घर-घर फैल जायगी--सरकारी रुपया खा गया और जब पकड़ा गया, तब आत्महत्या कर ली ! कुल में कलंक लगाकर, मरने के बाद भी अपनी हंसी कराके चिंताओं से मुक्त हुआ तो क्या, लेकिन दूसरा उपाय ही क्या है।

अगर वह इस समय जाकर जालपा से सारी स्थिति कह सुनाए, तो वह उसके साथ अवश्य सहानुभूति दिखाएगी। जालपा को चाहे कितना ही दुख हो, पर अपने गहने निकालकर देने में एक क्षण का भी विलंब न करेगी। गहनों को गिरवी रखकर वह सरकारी रुपये अदा कर

सकता है। उसे अपना परदा खोलना पड़ेगा। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

मन में यह निश्चय करके रमा घर की ओर चला, पर उसकी चाल में वह तेजी न थी जो मानसिक स्फूर्ति का लक्षण है।

लेकिन घर पहुंचकर उसने सोचा—जब यही करना है, तो जल्दी क्या है, जब चाहूंगा मांग लूंगा। कुछ देर गप-शप करता रहा, फिर खाना खाकर लेटा। सहसा उसके जी में आया, क्यों न चुपके से कोई चीज उठा ले जाऊं? कुल-मर्यादा की रक्षा करने के लिए एक बार उसने ऐसा ही किया था। उसी उपाय से क्या वह प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता? अपनी जबान से तो शायद वह कभी अपनी विपत्ति का हाल न कह सकेगा। इसी प्रकार आगा-पीछा में पड़े हुए सबेरा हो जायगा। और तब उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिलेगा।

मगर उसे फिर शंका हुई, कहीं जालपा की आंख खुल जाय? फिर तो उसके लिए त्रिवेणी के सिवा और स्थान ही न रह जायगा। जो कुछ भी हो एक बार तो यह उद्योग करना ही पड़ेगा। उसने धीरे से जालपा का हाथ अपनी छाती पर से हटाया, और नीचे खड़ा हो गया। उसे ऐसा ख्याल हुआ कि जालपा हाथ हटाते ही चौंकी और फिर मालूम हुआ कि यह भ्रम-मात्र था। उसे अब जालपा के सलूके की जेब से चाभियों का गुच्छा निकालना था। देर करने का अवसर न था। नींद में भी निम्नचेतना अपना काम करती रहती है। बालक कितना ही गाफिल सोया हो, माता के चारपाई से उठते ही जाग पड़ता है, लेकिन जब चाभी निकालने के लिए झुका, तो उसे जान पड़ा जालपा मुस्करा रही है। उसने झट हाथ खींच लिया और लैंप के क्षीण प्रकाश में जालपा के मुख की ओर देखा, जो कोई सुखद स्वप्न देख रही थी। उसकी स्वप्न-सुख विलसित छवि देखकर उसका मन कातर हो उठा। हा! इस सरला के साथ मैं ऐसा विश्वासघात करूं? जिसके लिए मैं अपने प्राणों को भेंट कर सकता हूं, उसी के साथ यह कपट? जालपा का निष्कपट स्नेह-पूर्ण हृदय मानो उसके मुखमंडल पर अंकित हो रहा था। आह! जिस समय इसे ज्ञात होगा इसके गहने फिर चोरी हो गए, इसकी क्या दशा होगी? पछाड़ खायगी, सिर के बाल नोचेगी। वह किन आंखों से उसका यह क्लेश देखेगा? उसने सोचा—मैंने इसे आराम ही कौन-सा पहुंचाया है। किसी दूसरे से विवाह होता, तो अब तक वह रत्नों से लद जाती। दुर्भाग्यवश इस घर में आई, जहां कोई सुख नहीं—उल्टे और रोना पड़ा।

रमा फिर चारपाई पर लेट रहा। उसी वक्त जालपा की आंखें खुल गईं। उसके मुख की ओर देखकर बोली—तुम कहां गए थे? मैं अच्छा सपना देख रही थी। बड़ा बाग है, और हम-तुम दोनों उसमें टहल रहे हैं। इतने में तुम न जाने कहां चले जाते हो, एक और साधु आकर मेरे सामने खड़ा हो जाता है। बिल्कुल देवताओं का-सा उसका स्वरूप है। वह मुझसे कहता है—बेटी, मैं तुझे वर देने आया हूं। मांग, क्या मांगती है। मैं तुम्हें इधर-उधर खोज रही हूं कि तुमसे पूछूं क्या मांगू। और तुम कहीं दिखाई नहीं देते। मैं सारा बाग छान आई। पेड़ों पर झांककर देखा, तुम न-जाने कहां चले गए हो। बस इतने में नींद खुल गई, वरदान न मांगने पाई।

रमा ने मुस्कराते हुए कहा—क्या वरदान मांगतीं?

'मांगती जो जी में आता, तुम्हें क्या बता दूं?'

'नहीं, बताओ, शायद तुम बहुत-सा धन मांगतीं।'

'धन को तुम बहुत बड़ी चीज समझते होगे? मैं तो कुछ नहीं समझती।'

'हां, मैं तो समझता हूं। निर्धन रहकर जीना मरने से भी बदतर है। मैं अगर किसी देवता

को पकड़ पाऊं तो बिना काफी रुपये लिए न मानूं। मैं सोने की दीवार नहीं खड़ी करना चाहता, न राकफेलर और कारनेगी बनने की मेरी इच्छा है। मैं केवल इतना धन चाहता हूं कि जरूरत की मामूली चीजों के लिए तरसना न पड़े। बस कोई देवता मुझे पांच लाख दे दे, तो मैं फिर उससे कुछ न मांगूंगा। हमारे ही गरीब मुल्क में ऐसे कितने ही रईस, सेठ, ताल्लुकेदार हैं, जो पांच लाख एक साल में खर्च करते हैं, बल्कि कितनों ही का तो माहवार खर्च पांच लाख होगा। मैं तो इसमें सात जीवन काटने को तैयार हूं; मगर मुझे कोई इतना भी नहीं देता। तुम क्या मांगतीं? अच्छे-अच्छे गहने!'

जालपा ने त्योरियां चढ़ाकर कहा—क्यों चिढ़ाते हो मुझे! क्या मैं गहनों पर और स्त्रियों से ज्यादा जान देती हूं? मैंने तो तुमसे कभी आग्रह नहीं किया? तुम्हें जरूरत हो, आज इन्हें उठा ले जाओ, मैं खुशी से दे दूंगी।

रमा ने मुस्कराकर कहा—तो फिर बतलातीं क्यों नहीं?

जालपा—मैं यही मांगती कि मेरा स्वामी सदा मुझसे प्रेम करता रहे। उनका मन कभी मुझसे न फिरे।

रमा ने हंसकर कहा—क्या तुम्हें इसकी भी शंका है?

'तुम देवता भी होते तो शंका होती, तुम तो आदमी हो। मुझे तो ऐसी कोई स्त्री न मिली, जिसने अपने पति की निष्ठुरता का दुखड़ा न रोया हो। साल-दो साल तो वह खूब प्रेम करते हैं, फिर न जाने क्या उन्हें स्त्री से अरुचि-सी हो जाती है। मन चंचल होने लगता है। औरत के लिए इससे बड़ी विपत्ति नहीं। उस विपत्ति से बचने के सिवा मैं और क्या वरदान मांगती?'—यह कहते हुए जालपा ने पति के गले में बांहें डाल दीं और प्रणय-संचित नेत्रों से देखती हुई बोली—सच बताना, तुम अब भी मुझे वैसे ही चाहते हो, जैसे पहले चाहते थे? देखो, सच कहना, बोलो!

रमा ने जालपा के गले से चिमटकर कहा—उससे कहीं अधिक, लाख गुना!

जालपा ने हंसकर कहा—झूठ! बिल्कुल झूठ! सोलहों आना झूठ!

रमानाथ—यह तुम्हारी जबरदस्ती है। आखिर ऐसा तुम्हें कैसे जान पड़ा?

जालपा—आंखों से देखती हूं और कैसे जान पड़ा। तुमने मेरे पास बैठने की कसम खा ली है। जब देखो तुम गुमसुम रहते हो। मुझसे प्रेम होता, तो मुझ पर विश्वास भी होता। बिना विश्वास के प्रेम हो ही कैसे सकता है? जिससे तुम अपनी बुरी-स-बुरी बात न कह सको, उससे तुम प्रेम नहीं कर सकते। हां, उसके साथ विहार कर सकते हो, विलास कर सकते हो। उसी तरह जैसे कोई वेश्या के पास जाता है। वेश्या के पास लोग आनंद उठाने ही जाते हैं, कोई उससे मन की बात कहने नहीं जाता। तुम्हारी भी वही दशा है। बोलो है या नहीं? आंखें क्यों छिपाते हो? क्या मैं देखती नहीं, तुम बाहर से कुछ घबड़ाए हुए आते हो? बातें करते समय देखती हूं, तुम्हारा मन किसी और तरफ रहता है। भोजन में भी देखती हूं, तुम्हें कोई आनंद नहीं आता। दाल गाढ़ी है या पतली, शाक कम है या ज्यादा, चावल में कनी है या पक गए हैं, इस तरफ तुम्हारी निगाह नहीं जाती। बेगार की तरह भोजन करते हो और जल्दी से भागते हो। मैं यह सब क्या नहीं देखती? मुझे देखना न चाहिए! मैं विलासिनी हूं, इसी रूप में तो तुम मुझे देखते हो। मेरा काम है—विहार करना, विलास करना, आनंद करना। मुझे तुम्हारी चिंताओं से मतलब! मगर ईश्वर ने वैसा हृदय नहीं दिया। क्या करूं? मैं समझती हूं, जब मुझे जीवन ही

व्यतीत करना है, जब मैं केवल तुम्हारे मनोरंजन की ही वस्तु हूं, तो क्यों अपनी जान विपत्ति में डालूं?

जालपा ने रमा से कभी दिल खोलकर बात न की थी। वह इतनी विचारशील है, उसने अनुमान ही न किया था। वह उसे वास्तव में रमणी ही समझता था। अन्य पुरुषों की भांति वह भी पत्नी को इसी रूप में देखता था। वह उसके यौवन पर मुग्ध था। उसकी आत्मा का स्वरूप देखने की कभी चेष्टा ही न की। शायद वह समझता था, इसमें आत्मा है ही नहीं। अगर वह रूप-लावण्य की राशि न होती, तो कदाचित् वह उससे बोलना भी पसंद न करता। उसका सारा आकर्षण, उसकी सारी आसक्ति केवल उसके रूप पर थी। वह समझता था, जालपा इसी में प्रसन्न है। अपनी चिंताओं के बोझ से वह उसे दबाना नहीं चाहता था; पर आज उसे ज्ञात हुआ, जालपा उतनी ही चिंतनशील है, जितना वह खुद था। इस वक्त उसे अपनी मनोव्यथा कह डालने का बहुत अच्छा अवसर मिला था; पर हाय संकोच ! इसने फिर उसकी जबान बंद कर दी। जो बातें वह इतने दिनों तक छिपाए रहा, वह अब कैसे कहे? क्या ऐसा करना जालपा के आरोपित आक्षेपों को स्वीकार करना न होगा? हां, उसकी आंखों से आज भ्रम का परदा उठ गया। उसे ज्ञात हुआ कि विलास पर प्रेम का निर्माण करने की चेष्टा करना उसका अज्ञान था।

रमा इन्हीं विचारों में पड़ा-पड़ा सो गया, उस समय आधी रात से ऊपर गुजर गई थी। सोया तो इसी सबब से था कि बहुत सबेरे उठ जाऊंगा, पर नींद खुली, तो कमरे में धूप की किरणें आ आकर उसे जगा रही थीं। वह चटपट उठा और बिना मुंह-हाथ धोए, कपड़े पहनकर जाने को तैयार हो गया। वह रमेश बाबू के पास जाना चाहता था। अब उनसे यह कथा कहनी पड़ेगी। स्थिति का पूरा ज्ञान हो जाने पर वह कुछ-न-कुछ सहायता करने पर तैयार हो जाएंगे।

जालपा उस समय भोजन बनाने की तैयारी कर रही थी। रमा को इस भांति जाते देखकर प्रश्न-सूचक नेत्रों से देखा। रमा के चेहरे पर चिंता, भय, चंचलता और हिंसा मानो बैठी घूर रही थीं। एक क्षण के लिए वह बेसुध-सी हो गई। एक हाथ में छुरी और दूसरे में एक करेला लिए हुए वह द्वार की ओर ताकती रही। यह बात क्या है, उसे कुछ बताते क्यों नहीं? वह और कुछ न कर सके, हमदर्दी तो कर ही सकती है। उसके जी में आया—पुकार कर पूछूं, क्या बात है? उठकर द्वार तक आई भी; पर रमा सड़क पर दूर निकल गया था। उसने देखा, वह बड़ी तेजी से चला जा रहा है, जैसे सनक गया हो। न दाहिनी ओर ताकता है, न बाईं ओर। केवल सिर झुकाए; पथिकों से टकराता, पैरगाड़ियों की परवा न करता हुआ, भागा चला जा रहा था। आखिर वह लौटकर फिर तरकारी काटने लगी; पर उसका मन उसी ओर लगा हुआ था। क्या बात है, क्यों मुझसे इतना छिपाते हैं?

रमा रमेश के घर पहुंचा तो आठ बज गए थे। बाबू साहब चौकी पर बैठे संध्या कर रहे थे। इन्हें देखकर इशारे से बैठने को कहा। कोई आध घंटे में संध्या समाप्त हुई, बोले—क्या अभी मुंह-हाथ भी नहीं धोया, यही लीचड़पन मुझे नापसंद है। तुम और कुछ करो या न करो, बदन की सफाई तो करते रहो। क्या हुआ, रुपये का कुछ प्रबंध हुआ?

रमानाथ—इसी फिक्र में तो आपके पास आया हूं।

रमेश—तुम भी अजीब आदमी हो, अपने बाप से कहते तुम्हें क्यों हुए शर्म आती है? यही न होगा, तुम्हें ताने देंगे, लेकिन इस संकट से तो छूट जाओगे। उनसे सारी बातें साफ-साफ कह दो। ऐसी दुर्घटनाएं अक्सर हो जाया करती हैं। इसमें डरने की क्या बात है ! नहीं कहो, मैं

चलकर कह दूं।

रमानाथ—उनसे कहना होता, तो अब तक कभी कह चुका होता ! क्या आप कुछ बंदोबस्त नहीं कर सकते?

रमेश—कर क्यों नहीं सकता; पर करना नहीं चाहता। ऐसे आदमी के साथ मुझे कोई हमदर्दी नहीं हो सकती। तुम जो बात मुझसे कह सकते हो, क्या उनसे नहीं कह सकते? मेरी सलाह मानो। उनसे जाकर कह दो। अगर वह रुपये न दें तब मेरे पास आना।

रमा को अब और कुछ कहने का साहस न हुआ। लोग इतनी घनिष्ठता होने पर भी इतने कठोर हो सकते हैं। वह यहां से उठा; पर उसे कुछ सुझाई न देता था। चौवैया में आकाश से गिरते हुए जल-बिंदुओं की जो दशा होती है, वही इस समय रमा की हुई। दस कदम तेजी से आगे चलता, तो फिर कुछ सोचकर रुक जाता और दस-पांच कदम पीछे लौट जाता। कभी इस गली में घुस जाता, कभी उस गली में।

सहसा उसे एक बात सूझी, क्यों न जालपा को एक पत्र लिखकर अपनी सारी कठिनाइयां कह सुनाऊं। मुंह से तो वह कुछ न कह सकता था; पर कलम से लिखने में उसे कोई मुश्किल मालूम नहीं होती थी। पत्र लिखकर जालपा को दे दूंगा और बाहर के कमरे में आ बैठूंगा। इससे सरल और क्या हो सकता है? वह भागा हुआ घर आया, और तुरंत पत्र लिखा।

'प्रिय, क्या कहूं, किस विपत्ति में फंसा हुआ हूं। अगर एक घंटे के अंदर तीन सौ रुपये का प्रबंध न हो गया, तो हाथों में हथकड़ियां पड़ जाएंगी। मैंने बहुत कोशिश की, किसी से उधार ले लूं; किंतु कहीं न मिल सके। अगर तुम अपने दो-एक जेवर दे दो, तो मैं गिरों रखकर काम चला लूं। ज्योंही रुपये हाथ आ जाएंगे, छुड़ा दूंगा। अगर मजबूरी न आ पड़ती तो, तुम्हें कष्ट न देता। ईश्वर के लिए रुष्ट न होना। मैं बहुत जल्द छुड़ा दूंगा ..'

अभी यह पत्र समाप्त न हुआ था कि रमेश बाबू मुस्कराते हुए आकर बैठ गए और बोले—कहा उनसे तुमने?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—अभी तो मौका नहीं मिला।

रमेश—तो क्या दो-चार दिन में मौका मिलेगा? मैं डरता हूं कि कहीं आज भी तुम यों ही खाली हाथ न चले जाओ, नहीं गजब तो ही हो जाय !

रमानाथ—जब उनसे मांगने का निश्चय कर लिया, तो अब क्या चिंता !

रमेश—आज मौका मिले, तो जरा रतन के पास चले जाना! उस दिन मैंने कितना जोर देकर कहा था, लेकिन मालूम होता है तुम भूल गए।

रमानाथ—भूल तो नहीं गया, लेकिन उनसे कहते शर्म आती है।

रमेश—अपने बाप से कहते भी शर्म आती है? अगर अपने लोगों में यह संकोच न होता, तो आज हमारी यह दशा क्यों होती?

रमेश बाबू चले गए, तो रमा ने पत्र उठाकर जेब में डाला और उसे जालपा को देने का निश्चय करके घर में गया। जालपा आज किसी महिला के घर जाने को तैयार थी। थोड़ी देर हुई, बुलावा आ गया। उसने अपनी सबसे सुंदर साड़ी पहनी थी। हाथों में जड़ाऊ कंगन शोभा दे रहे थे, गले में चन्द्रहार। आईना सामने रखे हुए कानों में झूमक पहन रही थी। रमा को देखकर बोली—आज सबेरे कहां चले गए थे? हाथ-मुंह तक न धोया। दिन-भर तो बाहर रहते ही हो, शाम-सबेरे तो घर पर रहा करो। तुम नहीं रहते, तो घर सूना-सूना लगता है। मैं अभी सोच रही

थी, मुझे मैके जाना पड़े, तो मैं जाऊं या न जाऊं? मेरा जी तो वहां बिल्कुल न लगे।

रमानाथ—तुम तो कहीं जाने को तैयार बैठी हो।

जालपा—सेठानीजी ने बुला भेजा है, दोपहर तक चली आऊंगी।

रमा की दशा इस समय उस शिकारी की-सी थी, जो हिरनी को अपने शावकों के साथ किलोल करते देखकर तनी हुई बंदूक कंधे पर रख लेता है, और वह वात्सल्य और प्रेम की क्रीड़ा देखने में तल्लीन हो जाता है।

उसे अपनी ओर टकटकी लगाए देखकर जालपा ने मुस्कराकर कहा—देखो, मुझे नजर न लगा देना। मैं तुम्हारी आंखों से बहुत डरती हूं।

रमा एक ही उड़ान में वास्तविक संसार से कल्पना और कवित्व के संसार में जा पहुंचा। ऐसे अवसर पर जब जालपा का रोम-रोम आनंद से नाच रहा है, क्या वह अपना पत्र देकर उसकी सुखद कल्पनाओं को दलित कर देगा? वह कौन हृदयहीन व्याध है, जो चहकती हुई चिड़िया की गर्दन पर छुरी चला देगा? वह कौन अरसिक आदमी है, जो किसी प्रभात-कुसुम को तोड़कर पैरों से कुचल डालेगा? रमा इतना हृदयहीन, इतना अरसिक नहीं है। वह जालपा पर इतना बड़ा आघात नहीं कर सकता। उसके सिर कैसी ही विपत्ति क्यों न पड़ जाए, उसकी कितनी ही बदनामी क्यों न हो, उसका जीवन ही क्यों न कुचल दिया जाए, पर वह इतना निष्ठुर नहीं हो सकता। उसने अनुरक्त होकर कहा—नजर तो न लगाऊंगा, हां, हृदय से लगा लूंगा। इसी एक वाक्य में उसकी सारी चिंताएं, सारी बाधाएं विसर्जित हो गईं। स्नेह-संकोच की वेदी पर उसने अपने को भेंट कर दिया। इस अपमान के सामने जीवन के और सारे क्लेश तुच्छ थे। इस समय उसकी दशा उस बालक की-सी थी, जो फोड़े पर नश्तर की क्षणिक पीड़ा न सहकर उसके फूटने, नासूर पड़ने, वर्षों खाट पर पड़े रहने और कदाचित् प्राणांत हो जाने के भय को भी भूल जाता है।

जालपा नीचे जाने लगी, तो रमा ने कातर होकर उसे गले से लगा लिया और इस तरह भींच-भींचकर उसे आलिंगन करने लगा, मानो यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है, यही उसका अंतिम आलिंगन हो। उसके कर-पाश मानो रेशम के सहस्रों तारों से संगठित होकर जालपा से चिमट गए थे। मानो कोई मरणासन्न कृपण अपने कोष की कुंजी मुट्ठी में बंद किए हो, और प्रतिक्षण मुट्ठी कठोर पड़ती जाती हो। क्या मुट्ठी को बलपूर्वक खोल देने से ही उसके प्राण न निकल जाएंगे?

सहसा जालपा बोली—मुझे कुछ रुपये तो दे दो, शायद वहां कुछ जरूरत पड़े।

रमा ने चौंककर कहा—रुपये! रुपये तो इस वक्त नहीं हैं।

जालपा—हैं हैं, मुझसे बहाना कर रहे हो। बस मुझे दो रुपये दे दो, और ज्यादा नहीं चाहती।

यह कहकर उसने रमा की जेब में हाथ डाल दिया, और कुछ पैसे के साथ वह पत्र भी निकाल लिया।

रमा ने हाथ बढ़ाकर पत्र को जालपा से छीनने की चेष्टा करते हुए कहा—कागज मुझे दे दो, सरकारी कागज है।

जालपा—किसका खत है बता दो?

जालपा ने तह किए हुए पुरजे को खोलकर कहा—यह सरकारी कागज है! झूठे

कहीं के ! तुम्हारा ही लिखा

रमानाथ—दे दो, क्यों परेशान करती हो !

रमा ने फिर कागज छीन लेना चाहा; पर जालपा ने हाथ पीछे फेरकर कहा—मैं बिना पढ़े न दूंगी। कह दिया ज्यादा जिद करोगे, तो फाड़ डालूंगी।

रमानाथ—अच्छा फाड़ डालो।

जालपा—तब तो मैं जरूर पढ़ूंगी।

उसने दो कदम पीछे हटकर फिर खत को खोला और पढ़ने लगी।

रमा ने फिर उसके हाथ से कागज छीनने की कोशिश नहीं की। उसे जान पड़ा, आसमान फट पड़ा है, मानो कोई भंयकर जंतु उसे निगलने के लिए बढ़ा चला आता है। वह धड़-धड़ करता हुआ ऊपर से उतरा और घर के बाहर निकल गया। कहां अपना मुंह छिपा ले? कहां छिप जाए कि कोई उसे देख न सके? उसकी दशा वही थी, जो किसी नंगे आदमी की होती है। वह सिर से पांव तक कपड़े पहने हुए भी नंगा था। आह ! सारा परदा खुल गया ! उसकी सारी कपट-लीला खुल गई ! जिन बातों को छिपाने की उसने इतने दिनों चेष्टा की, जिनको गुप्त रखने के लिए उसने कौन-कौन-सी कठिनाइयां नहीं झेलीं, उन सबों ने आज मानो उसके मुंह पर कालिख पोत दी। वह अपनी दुर्गति अपनी आंखों से नहीं देख सकता। जालपा की सिसकियां, पिता की झिड़कियां, पड़ोसियों की कनफुसकियां सुनने की अपेक्षा मर जाना कहीं आसान होगा। जब कोई संसार में न रहेगा, तो उसे इसकी क्या परवा होगी, कोई उसे क्या कह रहा है। हाय ! केवल तीन सौ रुपयों के लिए उसका सर्वनाश हुआ जा रहा है, लेकिन ईश्वर की इच्छा है, तो वह क्या कर सकता है। प्रियजनों की नजरों से गिरकर जिए तो क्या जिए !

जालपा उसे कितना नीच, कितना कपटी, कितना धूर्त, कितना गपोड़िया समझ रही होगी। क्या वह अपना मुंह दिखा सकता है?

क्या संसार में कोई ऐसी जगह नहीं है, जहां वह नए जीवन का सूत्रपात कर सके, जहां वह संसार से अलग-थलग सबसे मुंह मोड़कर अपना जीवन काट सके। जहां वह इस तरह छिप जाय कि पुलिस उसका पता न पा सके। गंगा की गोद के सिवा ऐसी जगह और कहां थी। अगर जीवित रहा, तो महीने-दो महीने में अवश्य ही पकड़ लिया जाएगा। उस समय उसकी क्या दशा होगी—वह हथकड़ियां और बेड़ियां पहने अदालत में खडा होगा। सिपाहियों का एक दल उसके ऊपर सवार होगा। सारे शहर के लोग उसका तमाशा देखने जाएंगे। जालपा भी जाएगी। रतन भी जाएगी। उसके पिता, संबंधी, मित्र, अपने-पराए—सभी भिन्न-भिन्न भावों से उसकी दुर्दशा का तमाशा देखेंगे। नहीं, वह अपनी मिट्टी यों न खराब करेगा, न करेगा। इससे कहीं अच्छा है, कि वह डूब मरे !

मगर फिर खयाल आया कि जालपा किसकी होकर रहेगी ! हाय, मैं अपने साथ उसे भी ले डूबा ! बाबूजी और अम्मांजी तो रो-धोकर सब्र कर लेंगे, पर उसकी रक्षा कौन करेगा? क्या वह छिपकर नहीं रह सकता? क्या शहर से दूर किसी छोटे-से गांव में वह अज्ञातवास नहीं कर सकता? संभव है, कभी जालपा को उस पर दया आए, उसके अपराधों को क्षमा कर दे। संभव है, उसके पास धन भी हो जाए, पर यह असंभव है कि वह उसके सामने आंखें सीधी कर सके। न जाने इस समय उसकी क्या दशा होगी ! शायद मेरे पत्र का आशय समझ गई हो। शायद परिस्थिति का उसे कुछ ज्ञान हो गया हो। शायद उसने अम्मां को मेरा पत्र दिखाया हो और दोनों

घबराई हुई मुझे खोज रही हों। शायद पिताजी को बुलाने के लिए लड़कों को भेजा गया हो। चारों तरफ मेरी तलाश हो रही होगी। कहीं कोई इधर भी न आता हो। कदाचित मौत को देखकर भी वह इस समय इतना भयभीत न होता, जितना किसी परिचित को देखकर। आगे-पीछे चौकन्नी आंखों से ताकता हुआ, वह उस जलती हुई धूप में चला जा रहा था—कुछ खबर न थी, किधर। सहसा रेल की सीटी सुनकर वह चौंक पड़ा। अरे, मैं इतनी दूर निकल आया? रेलगाड़ी सामने खड़ी थी। उसे उस पर बैठ जाने की प्रबल इच्छा हुई, मानो उसमें बैठते ही वह सारी बाधाओं से मुक्त हो जाएगा, मगर जेब में रुपये न थे। उंगली में अंगूठी पड़ी हुई थी। उसने कुलियों के जमादार को बुलाकर कहा—कहीं यह अंगूठी बिकवा सकते हो? एक रुपया तुम्हें दूंगा। मुझे गाड़ी में जाना है। रुपये लेकर घर से चला था, पर मालूम होता है, कहीं गिर गए। फिर लौटकर जाने में गाड़ी न मिलेगी और बड़ा भारी नुकसान हो जाएगा।

जमादार ने उसे सिर से पांव तक देखा, अंगूठी ली और स्टेशन के अंदर चला गया। रमा टिकट-घर के सामने टहलने लगा। आंखें उसकी ओर लगी हुई थीं। दस मिनट गुजर गए और जमादार का कहीं पता नहीं। अंगूठी लेकर कहीं गायब तो नहीं हो जाएगा। स्टेशन के अंदर जाकर उसे खोजने लगा। एक कुली से पूछा। उसने पूछा—जमादार का नाम क्या है? रमा ने जबान दांतों से काट ली। नाम तो पूछा ही नहीं। बतलाए क्या? इतने में गाड़ी ने सीटी दी, रमा अधीर हो उठा। समझ गया, जमादार ने चरका दिया। बिना टिकट लिए ही गाड़ी में आ बैठा। मन में निश्चय कर लिया, साफ कह दूंगा मेरे पास टिकट नहीं है। अगर उतरना भी पड़ा, तो यहां से दस पांच कोस तो चला ही जाऊंगा।

गाड़ी चल दी, उस वक्त रमा को अपनी दशा पर रोना आ गया। हाय, न जाने उसे कभी लौटना नसीब भी होगा या नहीं। फिर यह सुख के दिन कहां मिलेंगे। यह दिन तो गए, हमेशा के लिए गए। इसी तरह सारी दुनिया से मुंह छिपाए, वह एक दिन मर जायगा। कोई उसकी लाश पर आंसू बहाने वाला भी न होगा। घरवाले भी रो-धोकर चुप हो रहेंगे। केवल थोड़े-से संकोच के कारण उसकी यह दशा हुई। उसने शुरू ही से, जालपा से अपनी सच्ची हालत कह दी होती, तो आज उसे मुंह पर कालिख लगाकर क्यों भागना पडता। मगर कहता कैसे, वह अपने को अभागिनी न समझने लगती? कुछ न सही, कुछ दिन तो उसने जालपा को सुखी रक्खा। उसकी लालसाओं की हत्या तो न होने दी। रमा के संतोष के लिए अब इतना ही काफी था।

अभी गाड़ी चले दस मिनट भी न बीते होंगे। गाड़ी का दरवाजा खुला, और टिकट बाबू अंदर आए। रमा के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। एक क्षण में वह उसके पास आ जाएगा। इतने आदमियों के सामने उसे कितना लज्जित होना पड़ेगा। उसका कलेजा धक्-धक् करने लगा। ज्यों-ज्यों टिकट बाबू उसके समीप आता था, उसकी नाड़ी की गति तीव्र होती जाती थी। आखिर बला सिर पर आ ही गई। टिकट बाबू ने पूछा—आपका टिकट?

रमा ने जरा सावधान होकर कहा—मेरा टिकट तो कुलियों के जमादार के पास ही रह गया। उसे टिकट लाने के लिए रुपये दिए थे। न जाने किधर निकल गया।

टिकट बाबू को यकीन न आया, बोला—मैं यह कुछ नहीं जानता। आपको अगले स्टेशन पर उतरना होगा। आप कहां जा रहे हैं?

रमानाथ—सफर तो बड़ी दूर का है, कलकत्ते तक जाना है।

टिकट बाबू—आगे के स्टेशन पर टिकट ले लीजिएगा।

रमानाथ—यही तो मुश्किल है। मेरे पास पचास का नोट था। खिड़की पर बड़ी भीड़ थी। मैंने नोट उस जमादार को टिकट लाने के लिए दिया; पर वह ऐसा गायब हुआ कि लौटा ही नहीं। शायद आप उसे पहचानते हों। लंबा-लंबा चेचक-रू आदमी है।

टिकट बाबू—इस विषय में आप लिखा-पढ़ी कर सकते हैं, मगर बिना टिकट के जा नहीं सकते।

रमा ने विनीत भाव से कहा—भाई साहब, आपसे क्या छिपाऊं। मेरे पास और रुपये नहीं हैं। आप जैसा मुनासिब समझें, करें।

टिकट बाबू—मुझे अफसोस है, बाबू साहब, कायदे से मजबूर हूं।

कमरे के सारे मुसाफिर आपस में कानाफूसी करने लगे। तीसरा दर्जा था, अधिकांश मजदूर बैठे हुए थे जो मजूरी की टोह में पूरब जा रहे थे। वे एक बाबू जाति के प्राणी को इस भांति अपमानित होते देखकर आनंद पा रहे थे। शायद टिकट बाबू ने रमा को धक्का देकर उतार दिया होता, तो और भी खुश होते। रमा को जीवन में कभी इतनी झेंप न हुई थी। चुपचाप सिर झुकाए खड़ा था। अभी तो जीवन की इस नई यात्रा का आरंभ हुआ है। न जाने आगे क्या-क्या विपत्तियां झेलनी पड़ेंगी। किस-किसके हाथों धोखा खाना पड़ेगा। उसके जी में आया—गाड़ी से कूद पड़ूं, इस छीछालेदार से तो मर जाना ही अच्छा। उसकी आंखें भर आई, उसने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया और रोने लगा।

सहसा एक बूढ़े आदमी ने, जो उसके पास ही बैठा हुआ था, पूछा—कलकत्ते में कहां जाओगे, बाबूजी?

रमा ने समझा, वह गंवार मुझे बना रहा है, झुंझलाकर बोला—तुमसे मतलब, मैं कहीं जाऊंगा।

बूढ़े ने इस उपेक्षा पर कुछ भी ध्यान न दिया, बोला—मैं भी वहीं चलूंगा। हमारा-तुम्हारा साथ हो जायगा। फिर धीरे से बोला—किराए के रुपये मुझसे ले लो, वहां दे देना।

अब रमा ने उसकी ओर ध्यान से देखा। कोई साठ-सत्तर साल का बूढ़ा घुला हुआ आदमी था। मांस तो क्या हड्डियां तक गल गई थीं। मूंछ और सिर के बाल मुड़े हुए थे। एक छोटी-सी बकुची के सिवा उसके पास कोई असबाब भी न था।

रमा को अपनी ओर ताकते देखकर वह फिर बोला—आप हबड़े ही उतरेंगे या और कहीं जाएंगे?

रमा ने एहसान के भार से दबकर कहा—बाबा, आगे मैं उतर पड़ूंगा। रुपये का कोई बंदोबस्त करके फिर आऊंगा।

बूढा—तुम्हें कितने रुपये चाहिए, मैं भी तो वहीं चल रहा हूं। जब चाहे दे देना। क्या मेरे दस-पांच रुपये लेकर भाग जाओगे। कहां घर है?

रमानाथ—यहीं, प्रयाग ही में रहता हूं।

बूढ़े ने भक्ति के भाव से कहा—धन्य है प्रयाग! धन्य है! मैं भी त्रिवेणी का स्नान करके आ रहा हूं, सचमुच देवताओं की पुरी है। तो कै रुपये निकालूं?

रमा ने सकुचाते हुए कहा—मैं चलते ही चलते रुपया न दे सकूंगा, यह समझ लो।

बूढ़े ने सरल भाव से कहा—अरे बाबूजी, मेरे दस-पांच रुपये लेकर तुम भाग थोड़े ही जाओगे। मैंने तो देखा, प्रयाग के पण्डे यात्रियों को बिना लिखाए-पढ़ाए रुपये दे देते हैं। दस

रुपये में तुम्हारा काम चल जाएगा?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—हां, इतने बहुत हैं।

टिकट बाबू को किराया देकर रमा सोचने लगा—यह बूढ़ा कितना सरल, कितना परोपकारी, कितना निष्कपट जीव है। जो लोग सभ्य कहलाते हैं, उनमें कितने आदमी ऐसे निकलेंगे, जो बिना जान-पहचान किसी यात्री को उबार लें। गाड़ी के और मुसाफिर भी बूढ़े को श्रद्धा के नेत्रों से देखने लगे।

रमा को बूढ़े की बातों से मालूम हुआ कि वह जाति का खटिक है, कलकत्ते में उसकी शाक-भाजी की दुकान है। रहने वाला तो बिहार का है, पर चालीस साल से कलकत्ते ही में रोजगार कर रहा है। देवीदीन नाम है, बहुत दिनों से तीर्थयात्रा की इच्छा थी, बदरीनाथ की यात्रा करके लौटा जा रहा है।

रमा ने आश्चर्य से पूछा—तुम बदरीनाथ की यात्रा कर आए? वहां तो पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चढ़ाइयां हैं।

देवीदीन—भगवान् की दया होती है तो सब कुछ हो जाता है, बाबूजी ! उनकी दया चाहिए।

रमानाथ—तुम्हारे बाल-बच्चे तो कलकत्ते ही में होंगे?

देवीदीन ने रूखी हंसी हंसकर कहा—बाल-बच्चे तो सब भगवान् के घर गए। चार बेटे थे। दो का ब्याह हो गया था। सब चल दिए। मैं बैठा हुआ हूं। मुझी से तो सब पैदा हुए थे। अपने बोए हुए बीज को किसान ही तो काटता है !

यह कहकर वह फिर हंसा। जरा देर बाद बोला—बुढ़िया अभी जीती है। देखें, हम दोनों में पहले कौन चलता है। वह कहती है, पहले मैं जाऊंगी, मैं कहता हूं ,पहले मैं जाऊंगा। देखो किसकी टेक रहती है। बन पड़ा तो तुम्हें दिखाऊंगा। अब भी गहने पहनती है। सोने की बालियां और सोने की हसली पहने दुकान पर बैठी रहती है। जब कहा कि चल तीर्थ कर आवें तो बोली—तुम्हारे तीर्थ के लिए क्या दुकान मिट्टी में मिला दूं? यह है जिंदगी का हाल। आज मरे कि कल मरे, मगर दुकान न छोड़ेगी। न कोई आगे, न कोई पीछे, न कोई रोने वाला, न कोई हंसने वाला, मगर माया बनी हुई है।अब भी एक-न-एक गहना बनवाती ही रहती है। न जाने कब उसका पेट भरेगा। सब घरों का यही हाल है। जहां देखो—हाय गहने ! हाय गहने ! गहने के पीछे जान दे दें, घर के आदमियों को भूखा मारें, घर की चीजें बेचें। और कहां तक कहूं, अपनी आबरू तक बेच दें। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सबको यही रोग लगा हुआ है। कलकत्ते में कहां काम करते हो, भैया?

रमानाथ—अभी तो जा रहा हूं। देखूं कोई नौकरी-चाकरी मिलती है या नहीं?

देवीदीन—तो फिर मेरे ही घर ठहरना। दो कोठरियां हैं, सामने दालान है, एक कोठरी ऊपर है। आज बेचूं तो दस हजार मिलें। एक कोठरी तुम्हें दे दूंगा। जब कहीं काम मिल जाय, तो अपना घर ले लेना। पचास साल हुए घर से भागकर हबड़े गया था, तब से सुख भी देखे, दुख भी देखे। अब मना रहा हूं, भगवान् ले चलो। हां, बुढ़िया को अमर कर दो। नहीं, तो उसकी दुकान कौन लेगा, घर कौन लेगा और गहने कौन लेगा !

यह कहकर देवीदीन फिर हंसा। वह इतना हंसोड़, इतना प्रसन्नचित्त था कि रमा को आश्चर्य हो रहा था। बेबात की बात पर हंसता था। जिस बात पर और लोग रोते हैं, उस पर उसे

हंसी आती थी। किसी जवान को भी रमा ने यों हंसते न देखा था। इतनी ही देर में उसने अपनी सारी जीवन-कथा कह सुनाई। कितने ही लतीफे याद थे। मालूम होता था, रमा से वर्षों की मुलाकात है। रमा को भी अपने विषय में एक मनगढ़ंत कथा कहनी पड़ी।

देवीदीन–तो तुम भी घर से भाग आए हो? समझ गया। घर में झगड़ा हुआ होगा। बहू कहती होगी–मेरे पास गहने नहीं, मेरा नसीब जल गया। सास-बहू में पटती न होगी। उनका कलह सुन-सुन जी और खट्टा हो गया होगा।

रमानाथ–हां बाबा, बात यही है, तुम कैसे जान गए?

देवीदीन हंसकर बोला–यह बड़ा भारी मंत्र है भैया ! इसे तेली की खोपड़ी पर जगाया जाता है। अभी लड़के-बाले नहीं हैं न?

रमानाथ–नहीं, अभी तो नहीं हैं।

देवीदीन–छोटे भाई भी होंगे?

रमा चकित होकर बोला–हां दादा, ठीक कहते हो। तुमने कैसे जाना?

देवीदीन फिर ठट्ठा मारकर बोला–यह सब मंत्रों का खेल है। ससुराल धनी होगी, क्यों?

रमानाथ–हां दादा, है तो।

देवीदीन–मगर हिम्मत न होगी।

रमानाथ–बहुत ठीक कहते हो, दादा। बड़े कम-हिम्मत हैं। जब से विवाह हुआ अपनी लड़की तक को तो बुलाया नहीं।

देवीदीन–समझ गया भैया, यही दुनिया का दस्तूर है। बेटे के लिए कहो चोरी करें, भीख मांगें , बेटी के लिए घर में कुछ है ही नहीं।

तीन दिन से रमा को नींद न आइ थी। दिनभर रुपये के लिए मारा-मारा फिरता, रात-भर चिंता में पड़ा रहता। इस वक्त बातें करते-करते उसे नींद आ गई। गरदन झुकाकर झपकी लेने लगा। देवीदीन से तुरंत अपनी गठरी खोली; उसमें से एक दरी निकाली, और तख्त पर बिछाकर बोला–तुम यहां आकर लेट रहो, भैया ! मैं तुम्हारी जगह पर बैठ जाता हूं।

रमा लेट रहा। देवीदीन बार-बार उसे स्नेह-भरी आंखों से देखता था, मानो उसका पुत्र कहीं परदेश से लौटा हो।

## बाईस

जब रमा कोठे से धम-धम नीचे उतर रहा था, उस वक्त जालपा को इसका जरा भी शंका न हुई कि वह घर से भागा जा रहा है। पत्र तो उसने पढ़ ही लिया था। जी ऐसा झुंझला रहा था कि चलकर रमा को खूब खरी-खरी सुनाऊं। मुझसे यह छल-कपट ! पर एक ही क्षण में उसके भाव बदल गए। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ है, सरकारी रुपये खर्च कर डाले हों। यही बात है, रतन के रुपये सराफ को दिए होंगे। उस दिन रतन को देने के लिए शायद वे सरकारी रुपये उठा लाए थे। यह सोचकर उसे फिर क्रोध आया–यह मुझसे इतना परदा क्यों करते हैं? क्यों मुझसे बढ़-बढ़कर बातें करते थे? क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि संसार में अमीर-गरीब दोनों ही होते हैं? क्या सभी स्त्रियां गहनों से लदी रहती हैं? गहने न पहनना क्या कोई पाप है? जब और

जरूरी कामों से रुपये बचते हैं, तो गहने भी बन जाते हैं। पेट और तन काटकर, चोरी या बेईमानी करके तो गहने नहीं पहने जाते ! क्या उन्होंने मुझे ऐसी गई-गुजरी समझ लिया !

उसने सोचा, रमा अपने कमरे में होगा, चलकर पूछूं, कौन से गहने चाहते हैं। परिस्थिति की भयंकरता का अनुमान करके क्रोध की जगह उसके मन में भय का संचार हुआ। वह बड़ी तेजी से नीचे उतरी। उसे विश्वास था, वह नीचे बैठे हुए इंतजार कर रहे होंगे। कमरे में आई तो उनका पता न था। साइकिल रक्खी हुई थी, तुरंत दरवाजे से झांका। सड़क पर भी नहीं। कहां चले गए? लड़के दोनों पढ़ने स्कूल गए थे, किसको भेजे कि जाकर उन्हें बुला लाए। उसके हृदय में एक अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। फौरन ऊपर गई, गले का हार और हाथ का कंगन उतारकर रूमाल में बांधा, फिर नीचे उतरी, सड़क पर आकर एक तांगा लिया, और कोचवान से बोली—चुंगी कचहरी चलो। वह पछता रही थी कि मैं इतनी देर बैठी क्यों रही। क्यों न गहने उतारकर तुरंत दे दिए।

रास्ते में वह दोनों तरफ बड़े ध्यान से देखती जाती थी ! क्या इतनी जल्द इतनी दूर निकल आए? शायद देर हो जाने के कारण वह भी तांगे ही पर गए हैं, नहीं तो अब तक जरूर मिल गए होते। तांगे वाले से बोली—क्यों जी, अभी तुमने किसी बाबूजी को तांगे पर जाते देखा?

तांगे वाले ने कहा—हां माईजी, एक बाबू अभी इधर ही से गए हैं।

जालपा को कुछ ढाढ़स हुआ, रमा के पहुंचते-पहुंचते वह भी पहुंच जाएगी। कोचवान से बार-बार घोड़ा तेज करने को कहती। जब वह दफ्तर पहुंची, तो ग्यारह बज गए थे। कचहरी में सैकड़ों आदमी इधर-उधर दौड़ रहे थे। किससे पूछे? न जाने वह कहां बैठते हैं।

सहसा एक चपरासी दिखलाई दिया। जालपा ने उसे बुलाकर कहा—सुनो जी, जरा बाबू रमानाथ को तो बुला लाओ।

चपरासी बोला—उन्हीं को बुलाने जा रहा हूं। बड़े बाबू ने भेजा है। आप क्या उनके घर ही से आई हैं?

जालपा—हां, मैं तो घर ही से आ रही हूं। अभी दस मिनट हुए वह घर से चले हैं।

चपरासी—यहां तो नहीं आए।

जालपा बड़े असमंजस में पड़ी। वह यहां भी नहीं आए, रास्ते में भी नहीं मिले, तो फिर गए कहां? उसका दिल बांसों उछलने लगा। आंखें भर-भर आने लगीं। वहां बड़े बाबू के सिवा वह और किसी को न जानती थी। उनसे बोलने का अवसर कभी न पड़ा था, पर इस समय उसका संकोच गायब हो गया। भय के सामने मन के और सभी भाव दब जाते हैं। चपरासी से बोली—जरा बड़े बाबू से कह दो नहीं चलो, मैं ही चलती हूं। बड़े बाबू से कुछ बातें करनी हैं।

जालपा का ठाट-बाट और रंग-ढंग देखकर चपरासी रोब में आ गया, उल्टे पांव बड़े बाबू के कमरे की ओर चला। जालपा उसके पीछे-पीछे हो ली। बड़े बाबू खबर पाते ही तुरंत बाहर निकल आए।

जालपा ने कदम आगे बढ़ाकर कहा—क्षमा कीजिए, बाबू साहब, आपको कष्ट हुआ। वह पंद्रह-बीस मिनट हुए घर से चले, क्या अभी तक यहां नहीं आए?

रमेश—अच्छा आप मिसेज रमानाथ हैं। अभी तो यहां नहीं आए। मगर दफ्तर के वक्त सैर-सपाटे करने की तो उसकी आदत न थी।

जालपा ने चपरासी की ओर ताकते हुए कहा—मैं आपसे कुछ अर्ज करना चाहती हूं।

रमेश—तो चलो अंदर बैठो, यहां कब तक खड़ी रहोगी। मुझे आश्चर्य है कि वह गए कहां ! कहीं बैठे शतरंज खेल रहे होंगे।

जालपा—नहीं बाबूजी, मुझे ऐसा भय हो रहा है कि वह कहीं और न चले गए हों। अभी दस मिनट हुए, उन्होंने मेरे नाम एक पुरजा लिखा था। (जेब से टटोलकर) जी हां, देखिए वह पुरजा मौजूद है। आप उन पर कृपा रखते हैं, तो कोई परदा नहीं। उनके जिम्मे कुछ सरकारी रुपये तो नहीं निकलते !

रमेश ने चकित होकर कहा—क्यों, उन्होंने तुमसे कुछ नहीं कहा?

जालपा—कुछ नहीं। इस विषय में कभी एक शब्द भी नहीं कहा।

रमेश—कुछ समझ में नहीं आता। आज उन्हें तीन सौ रुपये जमा करना है। परसों की आमदनी उन्होंने जमा नहीं की थी? नोट थे, जेब में डालकर चल दिए। बाजार में किसी ने नोट निकाल लिए। (मुस्कराकर) किसी और देवी की पूजा तो नहीं करते?

जालपा का मुख लज्जा से नत हो गया। बोली—अगर यह ऐब होता, तो आप भी उस इल्जाम से न बचते। जेब से किसी ने निकाल लिए होंगे। मारे शर्म के मुझसे कहा न होगा। मुझसे जरा भी कहा होता, तो तुरंत रुपये निकालकर दे देती, इसमें बात ही क्या थी।

रमेश बाबू ने अविश्वास के भाव से पूछा—क्या घर में रुपये हैं?

जालपा ने निःशंक होकर कहा—तीन सौ चाहिए न, मैं अभी लिए आती हूं।

रमेश—अगर वह घर पर आ गए हों, तो भेज देना।

जालपा आकर तांगे पर बैठी और कोचवान से चौक चलने को कहा। उसने अपना हार बेच डालने का निश्चय कर लिया। यों उसकी कई सहेलियां थीं, जिनसे उसे रुपये मिल सकते थे। स्त्रियों में बड़ा स्नेह होता है। पुरुषों की भांति उनकी मित्रता केवल पान-पत्ते तक ही समाप्त नहीं हो जाती; मगर अवसर नहीं था। सराफे में पहुंचकर वह सोचने लगी; किस दुकान पर जाऊं। भय हो रहा था, कहीं ठगी न जाऊं। इस सिरे से उस सिरे तक चक्कर लगा आई, किसी दुकान पर जाने की हिम्मत न पड़ी। उधर वक्त भी निकला जाता था। आखिर एक दुकान पर एक बूढ़े सराफ को देखकर उसका संकोच कुछ कम हुआ। सराफ बड़ा घाघ था, जालपा की झिझक और हिचक देखकर समझ गया, अच्छा शिकार फंसा।

जालपा ने हार दिखाकर कहा—आप इसे ले सकते हैं?

सराफ ने हार को इधर-उधर देखकर कहा—मुझे चार पैसे की गुंजाइश होगी, तो क्यों न ले लूंगा। माल चोखा नहीं है।

जालपा—तुम्हें लेना है, इसलिए माल चोखा नहीं है, बेचना होता, तो चोखा होता। कितने में लोगे?

सराफ—आप ही कह दीजिए।

सराफ ने साढ़े तीन सौ दाम लगाए, और बढ़ते-बढ़ते चार सौ तक पहुंचा। जालपा को देर हो रही थी; रुपये लिए और चल खड़ी हुई। जिस हार को उसने इतने चाव से खरीदा था, जिसकी लालसा उसे बाल्यकाल ही में उत्पन्न हो गई थी, उसे आज आधे दामों बेचकर उसे जरा भी दुःख नहीं हुआ, बल्कि गर्वमय हर्ष का अनुभव हो रहा था। जिस वक्त रमा को मालूम होगा कि उसने रुपये दे दिए हैं, उन्हें कितना आनंद होगा। कहीं दफ्तर पहुंच गए हों तो बड़ा मजा हो। यह सोचती हुई वह फिर दफ्तर पहुंची। रमेश बाबू

उसे देखते हुए बोले—क्या हुआ, घर पर मिले?

जालपा—क्या अभी तक यहां नहीं आए? घर तो नहीं गए। यह कहते हुए उसने नोटों का पुलिंदा रमेश बाबू की तरफ बढ़ा दिया।

रमेश बाबू नोटों को गिनकर बोले—ठीक है; मगर वह अब तक कहां हैं। अगर न आना था, तो एक खत लिख देते। मैं तो बड़े संकट में पड़ा हुआ था। तुम बड़े वक्त से आ गईं। इस वक्त तुम्हारी सूझ-बूझ देखकर जी खुश हो गया। यही सच्ची देवियों का धर्म है।

जालपा फिर तांगे पर बैठकर घर चली तो उसे मालूम हो रहा था, मैं कुछ ऊंची हो गई हूं। शरीर में एक विचित्र स्फूर्ति दौड़ रही थी। उसे विश्वास था, वह आकर चिंतित बैठे होंगे। वह जाकर पहले उन्हें खूब आड़े हाथों लेगी, और खूब लज्जित करने के बाद यह हाल कहेगी, लेकिन जब घर में पहुंची तो रमानाथ का कहीं पता न था।

जागेश्वरी ने पूछा—कहां चली गई थीं इस धूप में?

जालपा—एक काम से चली गई थी। आज उन्होंने भोजन नहीं किया, न जाने कहां चले गए।

जागेश्वरी—दफ्तर गए होंगे।

जालपा—नहीं, दफ्तर नहीं गए। वहां से एक चपरासी पूछने आया था।

यह कहती हुई वह ऊपर चली गई, बचे हुए रुपये संदूक में रखे और पंखा झलने लगी। मारे गरमी के देह फुंकी जा रही थी, लेकिन कान द्वार की ओर लगे थे। अभी तक उसे इसकी जरा भी शंका न थी कि रमा ने विदेश की राह ली है।

चार बजे तक तो जालपा को विशेष चिंता न हुई लेकिन ज्यों-ज्यों दिन ढलने लगा, उसकी चिंता बढ़ने लगी। आखिर वह सबसे ऊंची छत पर चढ़ गई, हालांकि उसके जीर्ण होने के कारण कोई ऊपर नहीं आता था, और वहां चारों तरफ नजर दौड़ाई; लेकिन रमा किसी तरफ से आता दिखाई न दिया।

जब संध्या हो गई और रमा घर न आया, तो जालपा का जी घबराने लगा। कहां चले गए? वह दफ्तर से घर आए बिना कहीं बाहर न जाते थे। अगर किसी मित्र के घर होते, तो क्या अब तक न लौटते? मालूम नहीं, जेब में कुछ है भी या नहीं। बेचारे दिनभर से न मालूम कहां भटक रहे होंगे। वह फिर पछताने लगी कि उनका पत्र पढ़ते ही उसने क्यों न हार निकालकर दे दिया। क्यों दुविधे में पड़ गई। बेचारे शर्म के मारे घर न आते होंगे। कहां जाय? किससे पूछे?

चिराग जल गए, तो उससे न रहा गया। सोचा, शायद रतन से कुछ पता चले। उसके बंगले पर गई तो मालूम हुआ, आज तो वह इधर आए ही नहीं।

जालपा ने उन सभी पार्कों और मैदानों को छान डाला, जहां रमा के साथ वह बहुधा घूमने आया करती थी, और नौ बजते-बजते निराश लौट आई। अब तक उसने अपने आंसुओं को रोका था; लेकिन घर में कदम रखते ही जब उसे मालूम हो गया कि अब तक वह नहीं आए, तो वह हताश होकर बैठ गई। उसकी यह शंका अब दृढ़ हो गई कि वह जरूर कहीं चले गए। फिर भी कुछ आशा थी कि शायद मेरे पीछे आए हों और फिर चले गए हों। जाकर जागेश्वरी से पूछा—वह घर आए थे, अम्मांजी?

जागेश्वरी—यार-दोस्तों में बैठे कहीं गपशप कर रहे होंगे। घर तो सराय है। दस बजे घर से निकले थे, अभी तक पता नहीं।

जालपा—दफ्तर से घर आकर तब वह कहीं जाते थे। आज तो आए नहीं। कहिए तो गोपी बू को भेज दूं। जाकर देखें, कहां रह गए।

जागेश्वरी—लड़के इस वक्त कहां देखने जाएंगे। उनका क्या ठीक है। थोड़ी देर और देख ।, फिर खाना उठाकर रख देना। कोई कहां तक इंतजार करे।

जालपा ने इसका कुछ जवाब न दिया। दफ्तर की कोई बात उनसे न कही। जागेश्वरी नकर घबड़ा जाती, और उसी वक्त रोना-पीटना मच जाता। वह ऊपर जाकर लेट गई और पने भाग्य पर रोने लगी। रह-रहकर चित्त ऐसा विकल होने लगा, मानो कलेजे में शूल उठ रहा । बार-बार सोचती, अगर रातभर न आए तो कल क्या करना होगा? जब तक कुछ पता न ले कि वह किधर गए, तब तक कोई जाय तो कहां जाय ! आज उसके मन ने पहली बार ीकार किया कि यह सब उसी की करनी का फल है। यह सच है कि उसने कभी आभूषणों ; लिए आग्रह नहीं किया; लेकिन उसने कभी स्पष्ट रूप से मना भी तो नहीं किया। अगर गहने ारी जाने के बाद इतनी अधीर न हो गई होती, तो आज यह दिन क्यों आता। मन की इस दुर्बल ावस्था में जालपा अपने भार से अधिक भाग अपने ऊपर लेने लगी; वह जानती थी, रमा श्वत लेता है, नोच-खसोटकर रुपये लाता है। फिर भी कभी उसने मना नहीं किया। उसने ुद क्यों अपनी कमली के बाहर पांव फैलाया? क्यों उसे रोज सैर-सपाटे की सूझती थी? पहारों को ले-लेकर वह क्यों फूली न समाती थी? इस जिम्मेदारी को भी इस वक्त जालपा ापने ही ऊपर ले रही थी। रमानाथ ने प्रेम के वश होकर उसे प्रसन्न करने के लिए ही तो सब ुछ करते थे। युवकों का यही स्वभाव है। फिर उसने उनकी रक्षा के लिए क्या किया? क्यों उसे ह समझ न आई कि आमदनी से ज्यादा खर्च करने का दंड एक दिन भोगना पड़ेगा। अब उसे सी कितनी ही बातें याद आ रही थीं, जिनसे उसे रमा के मन की विकलता का परिचय पा ाना चाहिए था; पर उसने कभी उन बातों की ओर ध्यान न दिया।

जालपा इन्हीं चिंताओं में डूबी हुई न जाने कब तक बैठी रही। जब चौकीदारों की ीटियों की आवाज उसके कानों में आई, तो वह नीचे जाकर जागेश्वरी से बोली—वह तो अब क नहीं आए। आप चलकर भोजन कर लीजिए।

जागेश्वरी बैठे-बैठे झपकियां ले रही थी। चौंककर बोली—कहां चले गए थे?

जालपा—वह तो अब तक नहीं आए।

जागेश्वरी—अब तक नहीं आए? आधी रात तो हो गई होगी। जाते वक्त तुमसे कुछ कहा ी नहीं?

जालपा—कुछ नहीं।

जागेश्वरी—तुमने तो कुछ नहीं कहा?

जालपा—मैं भला क्यों कहती।

जागेश्वरी—तो मैं लालाजी को जगाऊं?

जालपा—इस वक्त जगाकर क्या कीजिएगा? आप चलकर कुछ खा लीजिए न।

जागेश्वरी—मुझसे अब कुछ न खाया जायगा। ऐसा मनमौजी लड़का है कि कुछ कहा न ुना, न जाने कहां जाकर बैठ रहा। कम-से-कम कहला तो देता कि मैं इस वक्त न आऊंगा।

जागेश्वरी फिर लेट रही, मगर जालपा उसी तरह बैठी रही। यहां तक कि सारी रात गुजर ई—पहाड़-सी रात जिसका एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान कट रहा था।

# तेईस

एक सप्ताह हो गया, रमा का कहीं पता नहीं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बेचारे रमेश बाबू दिन में कई-कई बार आकर पूछ जाते हैं। तरह-तरह के अनुमान हो रहे हैं। केवल इतना ही पता चलता है कि रमानाथ ग्यारह बजे रेलवे स्टेशन की ओर गए थे। मुंशी दयानाथ का खयाल है, यद्यपि वे इसे स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं करते कि रमा ने आत्महत्या कर ली। ऐसी दशा में यही होता है। इसकी कई मिसालें उन्होंने खुद आंखों से देखी हैं। सास और ससुर दोनों ही जालपा पर सारा इल्जाम थोप रहे हैं। साफ-साफ कह रहे हैं कि इसी के कारण उसके प्राण गए। इसने उसका नाकों दम कर दिया। पूछो, थोड़ी-सी तो आपकी आमदनी, फिर तुम्हें रोज सैर-सपाटे और दावत-तवाजे की क्यों सूझती थी। जालपा पर किसी को दया नहीं आती। कोई उसके आंसू नहीं पोंछता। केवल रमेश बाबू उसकी तत्परता और सद्बुद्धि की प्रशंसा करते हैं, लेकिन मुंशी दयानाथ की आंखों में उस कृत्य का कुछ मूल्य नहीं। आग लगाकर पानी लेकर दौड़ने से कोई निर्दोष नहीं हो जाता।

एक दिन दयानाथ वाचनालय से लौटे, तो मुंह लटका हुआ था। एक तो उनकी सूरत यों ही मुहर्रमी थी, उस पर मुंह लटका लेते थे तो कोई बच्चा भी कह सकता था कि इनका मिजाज बिगड़ा हुआ है।

जागेश्वरी ने पूछा—क्या है, किसी से कहीं बहस हो गई क्या?

दयानाथ—नहीं जी, इन तकाजों के मारे हैरान हो गया। जिधर जाओ, उधर लोग नोचने दौड़ते हैं, न जाने कितना कर्ज ले रक्खा है। आज तो मैंने साफ कह दिया, मैं कुछ नहीं जानता। मैं किसी का देनदार नहीं हूं। जाकर मेमसाहब से मांगो।

इसी वक्त जालपा आ पड़ी। ये शब्द उसके कानों में पड़ गए। इन सात दिनों में उसकी सूरत ऐसी बदल गई थी कि पहचानी न जाती थी। रोते-रोते आंखें सूज आई थीं। ससुर के ये कठोर शब्द सुनकर तिलमिला उठी, बोली—जी हां। आप उन्हें सीधे मेरे पास भेज दीजिए, मैं उन्हें या तो समझा दूंगी, या उनके दाम चुका दूंगी।

दयानाथ ने तीखे होकर कहा—क्या दे दोगी तुम, हजारों का हिसाब है, सात सौ तो एक ही सराफ के हैं। अभी कै पैसे दिए हैं तुमने?

जालपा—उसके गहने मौजूद हैं, केवल दो-चार बार पहने गए हैं। वह आए तो मेरे पास भेज दीजिए। मैं उसकी चीजें वापस कर दूंगी। बहुत होगा दस-पांच रुपये तावान के ले लेगा।

यह कहती हुई वह ऊपर जा रही थी कि रतन आ गई और उसे गले से लगाती हुई बोली—क्या अब तक कुछ पता नहीं चला?

जालपा को इन शब्दों में स्नेह और सहानुभूति का एक सागर उमड़ता हुआ जान पड़ा। यह गैर होकर इतनी चिंतित है, और यहां अपने ही सास और ससुर हाथ धोकर पीछे पड़े हुए हैं। इन अपनों से गैर ही अच्छे। आंखों में आंसू भरकर बोली—अभी तो कुछ पता नहीं चला बहन।

रतन—यह बात क्या हुई, कुछ तुमसे तो कहा-सुनी नहीं हुई?

जालपा—जरा भी नहीं, कसम खाती हूं। उन्होंने नोटों के खो जाने का मुझसे जिक्र ही

नहीं किया। अगर इशारा भी कर देते, तो मैं रुपये दे देती। जब वह दोपहर तक नहीं आए और मैं खोजती हुई दफ्तर गई, तब मुझे मालूम हुआ, कुछ नोट खो गए हैं। उसी वक्त जाकर मैंने रुपये जमा कर दिए।

रतन—मैं तो समझती हूं, किसी से आंखें लड़ गईं। दस-पांच दिन में आप पता लग जायगा। यह बात सच न निकले, तो जो कहो दूं।

जालपा ने हकबकाकर पूछा—क्या तुमने कुछ सुना है?

रतन—नहीं, सुना तो नहीं; पर मेरा अनुमान है।

जालपा—नहीं रतन, मैं इस पर जरा भी विश्वास नहीं करती। यह बुराई उनमें नहीं है, और चाहे जितनी बुराइयां हों। मुझे उन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

रतन ने हंसकर कहा—इस कला में ये लोग निपुण होते हैं। तुम बेचारी क्या जानो?

जालपा दृढ़ता से बोली—अगर वह इस कला में निपुण होते हैं, तो हम भी हृदय को परखने में कम निपुण नहीं होतीं। मैं इसे नहीं मान सकती। अगर वह मेरे स्वामी थे, तो मैं भी उनकी स्वामिनी थी।

रतन—अच्छा चलो, कहीं घूमने चलती हो? चलो, तुम्हें कहीं घुमा लावें।

जालपा—नहीं, इस वक्त तो मुझे फुरसत नहीं है। फिर घरवाले यों ही प्राण लेने पर तुले हुए हैं, तब तो जा... ...ही न छोड़ेंगे। किधर जाने का विचार है?

रतन—कहीं नहीं, जरा बाजार तक जाना था।

जालपा—क्या लेना है?

रतन—जौहरियों की दुकान पर एक-दो चीज देखूंगी। बस, मैं तुम्हारे-जैसा कंगन चाहती हूं। बाबूजी ने भी कई महीने के बाद रुपये लौटा दिए। अब खुद तलाश करूंगी।

जालपा—मेरे कंगन में ऐसे कौन-से रूप लगे हैं। बाजार में उससे बहुत अच्छे मिल सकते हैं।

रतन—मैं तो उसी नमूने का चाहती हूं।

जालपा—उस नमूने का तो बना-बनाया मुश्किल से मिलेगा, और बनवाने में महीनों का झंझट। अगर सब्र न आता हो, तो मेरा ही कंगन ले लो, मैं फिर बनवा लूंगी

रतन ने उछलकर कहा—वाह, तुम अपना कंगन दे दो, तो क्या कहना है! मूसलों ढोल बजाऊं! छः सौ का था न?

जालपा—हां, था तो छः सौ का, मगर महीनों सराफ की दुकान की खाक छाननी पड़ी थी। जड़ाई तो खुद बैठकर करवाई थी। तुम्हारे खातिर दे दूंगी।

जालपा ने कंगन निकालकर रतन के हाथों में पहना दिए। रतन के मुख पर एक विचित्र गौरव का आभास हुआ, मानो किसी कंगाल को पारस मिल गया हो। यही आत्मिक आनंद की चरम सीमा है। कृतज्ञता से भरे हुए स्वर से बोली—तुम जितना कहो, उतना देने को तैयार हूं। तुम्हें दबाना नहीं चाहती। तुम्हारे लिए यही क्या कम है कि तुमने इसे मुझे दे दिया। मगर एक बात है। अभी मैं सब रुपये न दे सकूंगी, अगर दो सौ रुपये फिर दे दूं तो कुछ हरज है?

जालपा ने साहसपूर्वक कहा—कोई हरज नहीं, जी चाहे कुछ भी मत दो।

रतन—नहीं, इस वक्त मेरे पास चार सौ रुपये हैं, मैं दिए जाती हूं। मेरे पास रहेंगे तो किसी दूसरी जगह खर्च हो जाएंगे। मेरे हाथ में तो रुपये टिकते ही नहीं, करूं क्या। जब तक

खर्च न हो जाएं, मुझे एक चिंता-सी लगी रहती है, जैसे सिर पर कोई बोझ सवार हो।

जालपा ने कंगन की डिबिया उसे देने के लिए निकाली तो उसका दिल मसोस उठा। उसकी कलाई पर यह कंगन देखकर रमा कितना खुश होता था। आज वह होता तो क्या यह चीज इस तरह जालपा के हाथ से निकल जाती ! फिर कौन जाने कंगन पहनना उसे नसीब भी होगा या नहीं। उसने बहुत जब्त किया, पर आंसू निकल ही आए।

रतन उसके आंसू देखकर बोली—इस वक्त रहने दो बहन, फिर ले लूंगी, जल्दी ही क्या है।

जालपा ने उसकी ओर बक्स को बढ़ाकर कहा—क्यों, क्या मेरे आंसू देखकर? तुम्हारी खातिर से दे रही हूं, नहीं यह मुझे प्राणों से भी प्रिय था। तुम्हारे पास इसे देखूंगी, तो मुझे तस्कीन होती रहेगी। किसी दूसरे को मत देना, इतनी दया करना।

रतन—किसी दूसरे को क्यों देने लगी। इसे तुम्हारी निशानी समझूंगी। आज बहुत दिन के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई। केवल दु:ख इतना ही है, कि बाबूजी अब नहीं हैं। मेरा मन कहता है कि वे जल्दी ही आयंगे। वे मारे शर्म के चले गए हैं, और कोई बात नहीं। वकील साहब को भी यह सुनकर बड़ा दु:ख हुआ। लोग कहते हैं, वकीलों का हृदय कठोर होता है, मगर इनको तो मैं देखती हूं, जरा भी किसी की विपत्ति सुनी और तड़प उठे।

जालपा ने मुस्कराकर कहा—बहन, एक बात पूछूं, बुरा तो न मानोगी? वकील साहब से तुम्हारा दिल तो न मिलता होगा।

रतन का विनोद-रंजित, प्रसन्न मुख एक क्षण के लिए मलिन हो उठा। मानो किसी ने उसे उस चिर-स्नेह की याद दिला दी हो, जिसके नाम को वह बहुत पहले रो चुकी थी। बोली—मुझे तो कभी यह खयाल भी नहीं आया बहन कि मैं युवती हूं और वे बूढ़े हैं। मेरे हृदय में जितना प्रेम, जितना अनुराग है, वह सब मैंने उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग, यौवन या रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है। मेरे ही कारण वे इस अवस्था में इतना परिश्रम कर रहे हैं, और दूसरा है ही कौन। क्या यह छोटी बात है? कल कहीं चलोगी? कहो तो शाम को आऊं?

जालपा—जाऊंगी तो मैं कहीं नहीं, मगर तुम आना जरूर। दो घड़ी दिल बहलेगा। कुछ अच्छा नहीं लगता। मन डाल-डाल दौड़ता-फिरता है। समझ में नहीं आता, मुझसे इतना संकोच क्यों किया? यह भी मेरा ही दोष है। मुझमें जरूर उन्होंने कोई ऐसी बात देखी होगी, जिसके कारण मुझसे परदा करना उन्हें जरूरी मालूम हुआ। मुझे यही दु:ख है कि मैं उनका सच्चा स्नेह न पा सकी। जिससे प्रेम होता है, उससे हम कोई भेद नहीं रखते।

रतन उठकर चली तो जालपा ने देखा—कंगन का बक्स मेज पर पड़ा हुआ है। बोली—इसे लेती जाओ बहन, यहां क्यों छोड़े जाती हो।

रतन—ले जाऊंगी, अभी क्या जल्दी पड़ी है। अभी पूरे रुपये भी तो नहीं दिए !

जालपा—नहीं, नहीं; लेती जाओ। मैं न मानूंगी।

मगर रतन सीढ़ी से नीचे उतर गई। जालपा हाथ में कंगन लिए खड़ी रही।

थोड़ी देर बाद जालपा ने संदूक से पांच सौ रुपये निकाले और दयानाथ के पास जाकर बोली—यह रुपये लीजिए; नारायणदास के पास भिजवा दीजिए। बाकी रुपये भी मैं जल्द ही दे दूंगी।

दयानाथ ने झेंपकर कहा—रुपये कहां मिल गए?

जालपा ने निःसंकोच होकर कहा—रतन के हाथ कंगन बेच दिया। दयानाथ उसका मुंह ताकने लगे।

## चौबीस

एक महीना गुजर गया। प्रयाग के सबसे अधिक छपने वाले दैनिक पत्र में एक नोटिस निकल रहा है, जिसमें रमानाथ के घर लौट आने की प्रेरणा दी गई है; और उसका पता लगा लेने वाले आदमी को पांच सौ रुपये इनाम देने का वचन दिया गया है; मगर अभी कहीं से कोई खबर नहीं आई। जालपा चिंता और दुःख से घुलती चली जाती है। उसकी दशा देखकर दयानाथ को भी उस पर दया आने लगी है। आखिर एक दिन उन्होंने दीनदयाल को लिखा—आप आकर बहू को कुछ दिनों के लिए ले जाइए। दीनदयाल यह समाचार पाते ही घबड़ाए हुए आए; पर जालपा ने मैके जाने से इंकार कर दिया।

दीनदयाल ने विस्मित होकर कहा—क्या यहां पड़े-पड़े प्राण देने का विचार है?

जालपा ने गंभीर स्वर में कहा—अगर प्राणों को इसी भाँति जाना होगा, तो कौन रोक सकता है। मैं अभी नहीं मरने की दादाजी, सच मानिए। अभागिनों के लिए वहां भी जगह नहीं है।

दीनदयाल—आखिर चलने में हरज ही क्या है। शहजादी और बासन्ती दोनों आई हुई हैं। उनके साथ हंस-बोलकर जी बहलता रहेगा।

जालपा—यहां लाला और अम्मांजी को अकेली छोड़कर जाने को मेरा जी नहीं चाहता। जब रोना ही लिखा है, तो रोऊंगी।

दीनदयाल—यह बात क्या हुई, सुनते हैं कुछ कर्ज हो गया था, कोई कहता है, सरकारी रकम खा गए थे।

जालपा—जिसने आपसे यह कहा, उसने सरासर झूठ कहा।

दीनदयाल—तो फिर क्यों चले गए?

जालपा—यह मैं बिल्कुल नहीं जानती। मुझे बार-बार खुद यही शंका होती है।

दीनदयाल—लाला दयानाथ से तो झगड़ा नहीं हुआ?

जालपा—लालाजी के सामने तो वह सिर तक नहीं उठाते, पान तक नहीं खाते, भला झगड़ा क्या करेंगे। उन्हें घूमने का शौक था। सोचा होगा—यों तो कोई जाने न देगा, चलो भाग चलें।

दीनदयाल—शायद ऐसा ही हो। कुछ लोगों को इधर-उधर भटकने की सनक होती है। तुम्हें यहां जो कुछ तकलीफ हो, मुझसे साफ-साफ कह दो। खरच के लिए कुछ भेज दिया करूं?

जालपा ने गर्व से कहा—मुझे कोई तकलीफ नहीं है, दादाजी! आपकी दया से किसी चीज की कमी नहीं है।

दयानाथ और जागेश्वरी, दोनों ने जालपा को समझाया; पर वह जाने पर राजी न हुई। तब दयानाथ झुंझलाकर बोले—यहां दिन-भर पड़े-पड़े रोने से तो अच्छा है।

जालपा—क्या वह कोई दूसरी दुनिया है, या मैं वहां जाकर कुछ और हो जाऊंगी। और फिर रोने से क्यों डरूं? जब हंसना था, तब हंसती थी, जब रोना है, तो रोऊंगी। वह काले कोसों चले गए हों; पर मुझे तो हरदम यहीं बैठे दिखाई देते हैं। यहां वे स्वयं नहीं हैं, पर घर की एक-एक चीज में बसे हुए हैं। यहां से जाकर तो मैं निराशा से पागल हो जाऊंगी।

दीनदयाल समझ गए यह अभिमानिनी अपनी टेक न छोड़ेगी। उठकर बाहर चले गए। संध्या समय चलते वक्त उन्होंने पचास रुपये का एक नोट जालपा की तरफ बढ़ाकर कहा—इसे रख लो, शायद कोई जरूरत पड़े।

जालपा ने सिर हिलाकर कहा—मुझे इसकी बिल्कुल जरूरत नहीं है, दादाजी। हां, इतना चाहती हूं कि आप मुझे आशीर्वाद दें। संभव है, आपके आशीर्वाद से मेरा कल्याण हो।

दीनदयाल की आंखों में आंसू भर आए, नोट वहीं चारपाई पर रखकर बाहर चले आए।

क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जल-शून्य टुकड़े कभी-कभी आकाश में दौड़ते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर लेटी हुई उन मेघ-खंडों की किलोलें देखा करती। चिंता-व्यथित प्राणियों के लिए इससे अधिक मनोरंजन की और वस्तु ही कौन है? बादल के टुकड़े भांति-भांति के रंग बदलते, भांति-भांति के रूप भरते, कभी आपस में प्रेम से मिल जाते, कभी रूठकर अलग-अलग हो जाते, कभी दौड़ने लगते, कभी ठिठक जाते। जालपा सोचती, रमानाथ भी कहीं बैठे यही मेघ-क्रीड़ा देखते होंगे। इस कल्पना में उसे विचित्र आनंद मिलता। किसी माली को अपने लगाए पौधों से, किसी बालक को अपने बनाए हुए घरौंदों से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे उन आकाशगामी जीवों से होता था। विपत्ति में हमारा मन अंतर्मुखी हो जाता है। जालपा को अब यही शंका होती थी कि ईश्वर ने मेरे पापों का यह दंड दिया है। आखिर रमानाथ किसी का गला दबाकर ही तो रोज रुपये लाते थे। कोई खुशी से तो न दे देता। यह रुपये देखकर वह कितनी खुश होती थी। इन्हीं रुपयों से तो नित्य शौक-शृंगार की चीजें आती रहती थीं। उन वस्तुओं को देखकर अब उसका जी जलता था। यही सारे दुःखों की मूल हैं। इन्हीं के लिए तो उसके पति को विदेश जाना पड़ा। वे चीजें उसकी आंखों में अब कांटों की तरह गड़ती थीं, उसके हृदय में शूल की तरह चुभती थीं।

आखिर एक दिन उसने इन चीजों को जमा किया—मखमली स्लीपर, रेशमी मोजे, तरह-तरह की बेलें, फीते, पिन, कंघियां, आईने, कोई कहां तक गिनाए। अच्छा-खासा एक ढेर हो गया। वह इस ढेर को गंगा में डुबा देगी, और अब से एक नए जीवन का सूत्रपात करेगी। इन्हीं वस्तुओं के पीछे, आज उसकी यह गति हो रही है। आज वह इस मायाजाल को नष्ट कर डालेगी। उनमें कितनी ही चीजें तो ऐसी सुंदर थीं कि उन्हें फेंकते मोह आता था; मगर ग्लानि की उस प्रचंड ज्वाला को पानी के ये छींटे क्या बुझाते। आधी रात तक वह इन चीजों को उठा-उठाकर अलग रखती रही, मानो किसी यात्रा की तैयारी कर रही हो। हां, यह वास्तव में यात्रा ही थी—अंधेरे से उजाले की, मिथ्या से सत्य की। मन में सोच रही थी, अब यदि ईश्वर की दया हुई और वह फिर लौटकर घर आए, तो वह इस तरह रहेगी कि थोड़े-से-थोड़े में निर्वाह हो जाय। एक पैसा भी व्यर्थ न खर्च करेगी। अपनी मजदूरी के ऊपर एक कौड़ी भी घर में न आने देगी। आज से उसके नए जीवन का आरंभ होगा।

ज्योंही चार बजे; सड़क पर लोगों के आने-जाने की आहट मिलने लगी। जालपा ने बेग उठा लिया और गंगा-स्नान करने चली। बेग बहुत भारी था, हाथ में उसे लटकाकर दस कदम भी चलना कठिन हो गया। बार-बार हाथ बदलती थी। यह भय भी लगा हुआ था कि कोई देख न ले। बोझ लेकर चलने का उसे कभी अवसर न पड़ा था। इक्के वाले पुकारते थे; पर वह इधर कान न देती थी। यहां तक कि हाथ बेकाम हो गए, तो उसने बेग को पीठ पर रख लिया और कदम बढ़ाकर चलने लगी। लंबा घूंघट निकाल लिया था कि कोई पहचान न सके।

वह घाट के समीप पहुंची, तो प्रकाश हो गया था। सहसा उसने रतन को अपनी मोटर पर आते देखा। उसने चाहा, सिर झुकाकर मुंह छिपा ले; पर रतन ने दूर ही से पहचान लिया, मोटर रोककर बोली—कहां जा रही हो बहन, यह पीठ पर बेग कैसा है?

जालपा ने घूंघट हटा लिया और निःशंक होकर बोली—गंगा-स्नान करने जा रही हूं।

रतन—मैं तो स्नान करके लौट आई, लेकिन चलो, तुम्हारे साथ चलती हूं। तुम्हें घर पहुंचाकर लौट जाऊंगी। बेग रख दो।

जालपा—नहीं-नहीं, यह भारी नहीं है। तुम जाओ, तुम्हें देर होगी। मैं चली जाऊंगी।

मगर रतन ने न माना, कार से उतरकर उसके हाथ से बेग ले ही लिया और कार में रखती हुई बोली—क्या भरा है तुमने इसमें, बहुत भारी है। खोलकर देखूं?

जालपा—इसमें तुम्हारे देखने लायक कोई चीज नहीं है।

बेग में ताला न लगा था। रतन ने खोलकर देखा, तो विस्मित होकर बोली—इन चीजों को कहां लिए जाती हो?

जालपा ने कार पर बैठते हुए कहा—इन्हें गंगा में बहा दूंगी।

रतन ने और भी विस्मय में पड़कर कहा—गंगा में! कुछ पागल तो नहीं हो गई हो। चलो, घर लौट चलो। बेग रखकर फिर आ जाना।

जालपा ने दृढ़ता से कहा—नहीं रतन, मै इन चीजों को डुबाकर ही जाऊंगी।

रतन—आखिर क्यों?

जालपा—पहले कार को बढ़ाओ, फिर बताऊं।

रतन—नहीं, पहले बता दो।

जालपा—नहीं, यह न होगा। पहले कार को बढ़ाओ।

रतन ने हारकर कार को बढ़ाया और बोली—अच्छा अब तो बताओगी?

जालपा ने उलाहने के भाव से कहा—इतनी बात तो तुम्हें खुद ही समझ लेनी चाहिए थी। मुझसे क्या पूछती हो। अब वे चीजें मेरे किस काम की हैं! इन्हें देख-देखकर मुझे दुख होता है। जब देखने वाला ही न रहा, तो इन्हें रखकर क्या करूं?

रतन ने एक लंबी सांस खींची और जालपा का हाथ पकड़कर कांपते हुए स्वर में बोली—बाबूजी के साथ तुम यह बहुत बड़ा अन्याय कर रही हो, बहन। वे कितनी उमंग से इन्हें लाए होंगे। तुम्हारे अंगों पर इनकी शोभा देखकर कितना प्रसन्न हुए होंगे। एक-एक चीज उनके प्रेम की एक-एक स्मृति है। उन्हें गंगा में बहाकर तुम उस प्रेम का घोर अनादर कर रही हो।

जालपा विचार में डूब गई, मन में संकल्प-विकल्प होने लगा; किंतु एक ही क्षण में वह फिर संभल गई, बोली—यह बात नहीं है बहन! जब तक ये चीजें मेरी आंखों से दूर न हो

जाएंगी, मेरा चित्त शांत न होगा। इसी विलासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।

रतन—तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है जालपा, मैं तो शायद ऐसा न कर सकती।

जालपा—लेकिन मैं तो इन्हें अपनी विपत्ति का मूल समझती हूं।

एक क्षण चुप रहने के बाद वह फिर बोली—उन्होंने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, बहन! जो पुरुष अपनी स्त्री से कोई परदा रखता है, मैं समझती हूं, वह उससे प्रेम नहीं करता। मैं उनकी जगह पर होती, तो यों तिलांजलि देकर न भागती। अपने मन की सारी व्यथा कह सुनाती और जो कुछ करती, उनकी सलाह से करती। स्त्री और पुरुष में दुराव कैसा!

रतन ने गंभीर मुस्कान के साथ कहा—ऐसे पुरुष तो बहुत कम होंगे, जो स्त्री से अपना दिल खोलते हों। जब तुम स्वयं दिल में चोर रखती हो, तो उनसे क्यों आशा रखती हो कि वे तुमसे कोई परदा न रक्खें। तुम ईमान से कह सकती हो कि तुमने उनसे परदा नहीं रक्खा?

जालपा ने सकुचाते हुए कहा—मैंने अपने मन में चोर नहीं रखा।

रतन ने जोर देकर कहा—झूठ बोलती हो, बिल्कुल झूठ, अगर तुमने विश्वास किया होता, तो वे भी खुलते।

जालपा इस आक्षेप को अपने सिर से न टाल सकी। उसे आज ज्ञात हुआ कि कपट का आरंभ पहले उसी की ओर से हुआ।

गंगा का तट आ पहुंचा। कार रुक गई। जालपा उतरी और बेग को उठाने लगी, किंतु रतन ने उसका हाथ हटाकर कहा—नहीं, मैं इसे न ले जाने दूंगी। समझ लो कि डूब गए।

जालपा—ऐसा कैसे समझ लूं।

रतन—मुझ पर दया करो, बहन के नाते।

जालपा—बहन के नाते तुम्हारे पैर धो सकती हूं, मगर इन कांटों को हृदय में नहीं रख सकती।

रतन ने भौंहें सिकोड़कर कहा—किसी तरह न मानोगी?

जालपा ने स्थिर भाव से कहा—हां, किसी तरह नहीं।

रतन ने विरक्त होकर मुंह फेर लिया। जालपा ने बेग उठा लिया और तेजी से घाट से उतरकर जल-तट तक पहुंच गई, फिर बेग को उठाकर पानी में फेंक दिया। अपनी निर्बलता पर यह विजय पाकर उसका मुख प्रदीप्त हो गया। आज उसे जितना गर्व और आनंद हुआ, उतना इन चीजों को पाकर भी न हुआ था। उन असंख्य प्राणियों में जो इस समय स्नान-ध्यान कर रहे थे, कदाचित् किसी को अपने अंतःकरण में प्रकाश का ऐसा अनुभव न हुआ होगा। मानो प्रभात की सुनहरी ज्योति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो रही है।

जब वह स्नान करके ऊपर आई, तो रतन ने पूछा—डुबा दिया?

जालपा—हां।

रतन—बड़ी निठुर हो।

जालपा—यही निठुरता मन पर विजय पाती है। अगर कुछ दिन पहले निठुर हो जाती, तो आज यह दिन क्यों आता।

कार चल पड़ी

# पच्चीस

रमानाथ को कलकत्ते आए दो महीने के ऊपर हो गए हैं। वह अभी तक देवीदीन के घर पड़ा हुआ है। उसे हमेशा यही धुन सवार रहती है कि रुपये कहां से आवें; तरह-तरह के मंसूबे बांधता है, भांति-भांति की कल्पनाएं करता है, पर घर से बाहर नहीं निकलता। हां, जब खूब अंधेरा हो जाता है, तो वह एक बार मुहल्ले के वाचनालय में जरूर जाता है। अपने नगर और प्रांत के समाचारों के लिए उसका मन सदैव उत्सुक रहता है। उसने वह नोटिस देखी, जो दयानाथ ने पत्रों में छपवाई थी; पर उस पर विश्वास न आया। कौन जाने, पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने के लिए माया रची हो। रुपये भला किसने चुकाए होंगे? असंभव।

एक दिन उसी पत्र में रमानाथ को जालपा का एक खत छपा मिला; जालपा ने आग्रह और याचना से भरे हुए शब्दों में उसे घर लौट आने की प्रेरणा की थी। उसने लिखा था—तुम्हारे जिम्मे किसी का कुछ बाकी नहीं है, कोई तुमसे कुछ न कहेगा। रमा का मन चंचल हो उठा; लेकिन तुरंत ही उसे खयाल आया—यह भी पुलिस की शरारत होगी। जालपा ने यह पत्र लिखा, इसका क्या प्रमाण है? अगर यह भी मान लिया जाए कि रुपये घरवालों ने अदा कर दिए होंगे, तो क्या इस दशा में भी वह घर जा सकता है। शहर भर में उसकी बदनामी हो ही गई होगी, पुलिस में इत्तला की ही जा चुकी होगी। उसने निश्चय किया कि मैं नहीं जाऊंगा। जब तक कम-से-कम पांच हजार रुपये हाथ में न हो जायंगे, घर जाने का नाम न लूंगा। और रुपये नहीं दिए गए, पुलिस मेरी खोज में है, तो कभी घर न जाऊंगा। कभी नहीं।

देवीदीन के घर में दो कोठरियां थीं और सामने एक बरामदा था। बरामदे में दुकान थी, एक कोठरी में खाना बनता था, दूसरी कोठरी में बरतन-भांड़े रक्खे हुए थे। ऊपर एक कोठरी थी और छोटी-सी खुली हुई छत। रमा इसी ऊपर के हिस्से में रहता था। देवीदीन के रहने, सोने, बैठने का कोई विशेष स्थान न था। रात को दुकान बढ़ाने के बाद वही बरामदा शयन-गृह बन जाता था। दोनों वहीं पड़े रहते थे। देवीदीन का काम चिलम पीना और दिन-भर गप्पें लड़ाना था। दुकान का सारा काम बुढ़िया करती थी। मंडी जाकर माल लाना, स्टेशन से माल भेजना या लेना, यह सब भी वही कर लेती थी। देवीदीन ग्राहकों को पहचानता तक न था। थोड़ी-सी हिंदी जानता था। बैठा-बैठा रामायण, तोता-मैना, रामलीला या माता मरियम की कहानी पढ़ा करता। जब से रमा आ गया है, बुड्ढे को अंग्रेजी पढ़ने का शौक हो गया है। सबेरे ही प्राइमर लाकर बैठ जाता है, और नौ-दस बजे तक अक्षर पढ़ता रहता है। बीच-बीच में लतीफे भी होते जाते हैं, जिनका देवीदीन के पास अखंड भंडार है। मगर जग्गो को रमा का आसन जमाना अच्छा नहीं लगता। वह उसे अपना मुनीम तो बनाए हुए है—हिसाब-किताब उसी से लिखवाती है; पर इतने से काम के लिए वह एक आदमी रखना व्यर्थ समझती है। यह काम तो वह गाहकों से यों ही करा लेती थी। उसे रमा का रहना खलता था; पर रमा इतना नम्र, इतना सेवा-तत्पर, इतना धर्मनिष्ठ है कि वह स्पष्ट रूप से कोई आपत्ति नहीं कर सकती। हां, दूसरों पर रखकर श्लेष रूप से उसे सुना-सुनाकर दिल का गुबार निकालती रहती है। रमा ने अपने को ब्राह्मण कह रक्खा है और उसी धर्म का पालन करता है। ब्राह्मण और धर्मनिष्ठ बनकर वह दोनों प्राणियों का श्रद्धापात्र बन सकता है। बुढ़िया के भाव और व्यवहार को वह खूब समझता है; पर करे क्या? बेहयाई करने पर मजबूर है। परिस्थिति ने उसके आत्म-सम्मान का अपहरण कर डाला है।

एक दिन रमानाथ वाचनालय में बैठा हुआ पत्र पढ़ रहा था कि एकाएक उसे रतन दिखाई पड़ गई। उसके अंदाज से मालूम होता था कि वह किसी को खोज रही है। बीसों आदमी बैठे पुस्तकें और पत्र पढ़ रहे थे। रमा की छाती धक-धक करने लगी। वह रतन की आंखें बचाकर सिर झुकाए हुए कमरे से निकल गया और पीछे के अंधेरे बरामदे में, जहां पुराने टूटे-फटे संदूक और कुर्सियां पड़ी हुई थीं, छिपा खड़ा रहा। रतन से मिलने और घर के समाचार पूछने के लिए उसकी आत्मा तड़प रही थी; पर मारे संकोच के सामने न आ सकता था। आह ! कितनी बातें पूछने की थीं ! पर उनमें मुख्य यही थी कि जालपा के विचार उसके विषय में क्या हैं। उसकी निष्ठुरता पर रोती तो नहीं है। उसकी उद्दंडता पर क्षुब्ध तो नहीं है? उसे धूर्त और बेईमान तो नहीं समझ रही है? दुबली तो नहीं हो गई है? और लोगों के क्या भाव हैं? क्या घर की तलाशी हुई? मुकदमा चला? ऐसी ही हजारों बातें जानने के लिए वह विकल हो रहा था; पर मुंह कैसे दिखाए ! वह झांक-झांककर देखता रहा। जब रतन चली गई—मोटर चल दिया, तब उसकी जान में जान आई। उसी दिन से एक सप्ताह तक वह वाचनालय न गया। घर से निकला तक नहीं।

कभी-कभी पड़े-पड़े रमा का जी ऐसा घबड़ाता कि पुलिस में जाकर सारी कथा कह सुनाए। जो कुछ होना है, हो जाय। साल-दो साल की कैद इस आजीवन कारावास से तो अच्छी ही है। फिर वह नए सिरे से जीवन-संग्राम में प्रवेश करेगा, हाथ-पांव बचाकर काम करेगा, अपनी चादर के बाहर जौ-भर भी पांव न फैलाएगा, लेकिन एक ही क्षण में हिम्मत टूट जाती।

इस प्रकार दो महीने और बीत गए। पूस का महीना आया। रमा के पास जाड़ों का कोई कपड़ा न था। घर से तो वह कोई चीज लाया ही न था, यहां भी कोई चीज बनवा न सका था। अब तक तो उसने धोती ओढ़कर किसी तरह रातें काटीं, पर पूस के कड़कड़ाते जाड़े लिहाफ या कंबल के बगैर कैसे कटते। बेचारा रात-भर गठरी बना पड़ा रहता। जब बहुत सर्दी लगती, तो बिछावन ओढ़ लेता। देवीदीन ने उसे एक पुरानी दरी बिछाने को दे दी थी। उसके घर में शायद यही सबसे अच्छा बिछावन था। इस श्रेणी के लोग चाहे दस हजार के गहन पहन लें, शादी-ब्याह में दस हजार खर्च कर दें, पर बिछावन गूदड़ा ही रक्खेंगे। इस सड़ी हुई दरी से जाड़ा भला क्या जाता, पर कुछ न होने से अच्छा ही था। रमा संकोचवश देवीदीन से कुछ कह न सकता था और देवीदीन भी शायद इतना बड़ा खर्च न उठाना चाहता था, या संभव है, इधर उसकी निगाह ही न जाती हो। जब दिन ढलने लगता, तो रमा रात के कष्ट की कल्पना से भयभीत हो उठता था, मानो काली बला दौड़ती चली आती हो। रात को बार-बार खिड़की खोलकर देखता कि सबेरा होने में कितनी कसर है।

एक दिन शाम को वह वाचनालय जा रहा था कि उसने देखा एक बड़ी कोठी के सामने हजारों कंगले जमा हैं। उसने सोचा—यह क्या बात है, क्यों इतने आदमी जमा हैं? भीड़ के अंदर घुसकर देखा, तो मालूम हुआ, सेठजी कंबलों का दान कर रहे हैं। कंबल बहुत घटिया थे, पतले और हल्के; पर जनता एक पर एक टूटी पड़ती थी। रमा के मन में आया, एक कंबल ले लूं। यहां मुझे कौन जानता है। अगर कोई जान भी जाय, तो क्या हरज? गरीब ब्राह्मण अगर दान का अधिकारी नहीं तो और कौन है। लेकिन एक ही क्षण में उसका आत्म-सम्मान जाग उठा। वह कुछ देर वहां खड़ा ताकता रहा, फिर आगे बढ़ा। उसके माथे पर तिलक देखकर मुनीमजी ने समझ लिया, यह ब्राह्मण है। इतने सारे कंगलों में ब्राह्मणों की संख्या बहुत कम थी। ब्राह्मणों को

दान देने का पुण्य कुछ और ही है। मुनीम मन में प्रसन्न था कि एक ब्राह्मण देवता दिखाई तो दिए! इसलिए जब उसने रमा को जाते देखा, तो बोला—पंडितजी, कहां चले, कंबल तो लेते जाइए! रमा मारे संकोच के गड़ गया। उसके मुंह से केवल इतना ही निकला—मुझे इच्छा नहीं है। यह कहकर वह फिर बढ़ा। मुनीमजी ने समझा, शायद कंबल घटिया देखकर देवताजी चले जा रहे हैं। ऐसे आत्म-सम्मान वाले देवता उसे अपने जीवन में शायद कभी मिले ही न थे। कोई दूसरा ब्राह्मण होता, दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातें करता और अच्छे कंबल मांगता। यह देवता बिना कुछ कहे, निर्व्याज भाव से चले जा रहे हैं, तो अवश्य कोई त्यागी जीव हैं। उसने लपककर रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—आओ तो महाराज, आपके लिए चोखा कंबल रक्खा है। यह तो कंगलों के लिए है। रमा ने देखा कि बिना मांगे एक चीज मिल रही है, जबरदस्ती गले लगाई जा रही है, तो वह दो बार और नहीं-नहीं करके मुनीम के साथ अंदर चला गया। मुनीम ने उसे कोठी में ले जाकर तख्त पर बैठाया और एक अच्छा-सा दबीज कंबल भेंट किया। रमा की संतोष- वृत्ति का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने पांच रुपये दक्षिणा भी देना चाहा; किन्तु रमा ने उसे लेने से साफ इंकार कर दिया। जन्म-जन्मांतर की संचित मर्यादा कंबल लेकर ही आहत हो उठी थी। दक्षिणा के लिए हाथ फैलाना उसके लिए असंभव हो गया।

मुनीम ने चकित होकर कहा—आप यह भेंट न स्वीकार करेंगे, तो सेठजी को बड़ा दु:ख होगा।

रमा ने विरक्त होकर कहा—आपके आग्रह से मैंने कंबल ले लिया; पर दक्षिणा नहीं ले सकता। मुझे धन की आवश्यकता नहीं। जिस सज्जन के घर टिका हुआ हूं, वह मुझे भोजन देते हैं। और मुझे लेकर क्या करना है?

'सेठजी मानेंगे नहीं।'

'आप मेरी ओर से क्षमा मांग लीजिएगा।'

'आपके त्याग को धन्य है। ऐसे ही ब्राह्मणों से धर्म की मर्यादा बनी हुई है। कुछ देर बैठिए तो, सेठजी आते होंगे। आपके दर्शन पाकर बहुत प्रसन्न होंगे। ब्राह्मणों के परम भक्त हैं। और त्रिकाल संध्या-वंदन करते हैं महाराज, तीन बजे रात को गंगा-तट पर पहुंच जाते हैं और वहां से आकर पूजा पर बैठ जाते हैं। दस बजे भागवत का पारायण करते हैं। मध्याह्न को भोजन पाते हैं, तब कोठी में आते हैं। तीन-चार बजे फिर संध्या करने चले जाते हैं। आठ बजे थोड़ी देर के लिए फिर आते हैं। नौ बजे ठाकुरद्वारे में कीर्तन सुनते हैं और फिर संध्या करके भोजन पाते हैं। थोड़ी देर में आते ही होंगे। आप कुछ देर बैठें, तो बड़ा अच्छा हो। आपका स्थान कहां है?'

रमा ने प्रयाग न बताकर काशी बतलाया। इस पर मुनीमजी का आग्रह और बढ़ा; पर रमा को यह शंका हो रही थी कि कहीं सेठजी ने कोई धार्मिक प्रसंग छेड दिया, तो सारी कलई खुल जायगी। किसी दूसरे दिन आने का वचन देकर उसने पिंड छुड़ाया।

नौ बजे वह वाचनालय से लौटा, तो डर रहा था कि कहीं देवीदीन ने कंबल देखकर पूछा—कहां से लाए, तो क्या जवाब दूंगा। कोई बहाना कर दूंगा। कह दूंगा, एक पहचान की दुकान से उधार लाया हूं।

देवीदीन ने कंबल देखते ही पूछा—सेठ करोड़ीमल के यहां पहुंच गए क्या, महाराज?

रमा ने पूछा—कौन सेठ करोड़ीमल?

'अरे वही, जिसकी वह बड़ी लाल कोठी है।'

रमा कोई बहाना न कर सका। बोला—हां, मुनीमजी ने पिंड ही न छोड़ा! बड़ा धर्मात्मा जीव है।

देवीदीन ने मुस्कराकर कहा—बड़ा धर्मात्मा! उसी के थामे तो यह धरती थमी है, नहीं तो अब तक मिट गई होती!

रमानाथ—काम तो धर्मात्माओं ही के करता है, मन का हाल ईश्वर जाने। जो सारे दिन पूजापाठ और दान-व्रत में लगा रहे, उसे धर्मात्मा नहीं तो और क्या कहा जाय।

देवीदीन—उसे पापी कहना चाहिए; महापापी। दया तो उसके पास से होकर भी नहीं निकली। उसकी जूट की मिल है। मजूरों के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल में होती है, और कहीं नहीं होती। आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से। चर्बी-मिला घी बेचकर इसने लाखों कमा लिए। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरंत तलब काट लेता है। अगर साल में दो-चार हजार दान न कर दे, तो पाप का धन पचे कैसे! धर्म-कर्म वाले ब्राह्मण तो उसके द्वार पर झांकते भी नहीं। तुम्हारे सिवा वहां कोई पंडित था?

रमा ने सिर हिलाया।

'कोई जाता ही नहीं। हां, लोभी-लंपट पहुंच जाते हैं। जितने पुजारी देखे, सबको पत्थर ही पाया। पत्थर पूजते-पूजते इनके दिल भी पत्थर हो जाते हैं। इसके तीन तो बड़े-बड़े धरमशाले हैं, मुदा है पाखंडी। आदमी चाहे और कुछ न करे, मन में दया बनाए रखे। यही सौ धरम का एक धरम है।'

दिन की रक्खी हुई रोटियां खाकर जब रमा कंबल ओढ़कर लेटा, तो उसे बड़ी ग्लानि होने लगी। रिश्वत में उसने हजारों रुपये मारे थे; पर कभी एक क्षण के लिए भी उसे ग्लानि न आई थी। रिश्वत बुद्धि से, कौशल से, पुरुषार्थ से मिलती है। दान पौरुषहीन, कर्महीन या पाखंडियों का आधार है। वह सोच रहा था—मैं अब इतना दीन हूं कि भोजन और वस्त्र के लिए मुझे दान लेना पड़ता है! वह देवीदीन के घर दो महीने से पड़ा हुआ था, पर देवीदीन उसे भिक्षुक नहीं मेहमान समझता था। उसके मन में कभी दान का भाव आया ही न था। रमा के मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम थाने में जाकर अपना सारा वृत्तांत कह सुनाए। यही न होगा, दो-तीन साल की सजा हो जाएगी, फिर तो यों प्राण सूली पर न टंगे रहेंगे। कहीं डूब ही क्यों न मरूं। इस तरह जीने से फायदा ही क्या! न घर का हूं न घाट का। दूसरों का भार तो क्या उठाऊंगा, अपने ही लिए दूसरों का मुंह ताकता हूं। इस जीवन से किसका उपकार हो रहा है? धिक्कार है मेरे जीने को!

रमा ने निश्चय किया, कल निःशंक होकर काम की टोह में निकलूंगा। जो कुछ होना है, हो।

## छब्बीस

अभी रमा हाथ-मुंह धो रहा था कि देवीदीन प्राइमर लेकर आ पहुंचा और बोला—भैया, यह तुम्हारी अंगरेजी बड़ी विकट है। एस-आई-आर 'सर' होता है, तो पी-आई-टी 'पिट' क्यों हो

जाता है? बी-यू-टी 'बट' है; लेकिन पी-यू-टी 'पुट' क्यों होता है? तुम्हें भी बड़ी कठिन लगती होगी।

रमा ने मुस्कराकर कहा—पहले तो कठिन लगती थी, पर अब तो आसान मालूम होती है।

देवीदीन—जिस दिन पराइमर खतम होगी, महाबीरजी को सवा सेर लड्डू चढ़ाऊंगा। पराई-मर का मतलब है, पराई स्त्री मर जाय। मैं कहता हूं, हमारी-मर। पराई के मरने से हमें क्या सुख ! तुम्हारे बाल-बच्चे तो हैं न, भैया?

रमा ने इस भाव से कहा, मानो हैं, पर न होने के बराबर हैं—हां, हैं तो।

'कोई चिट्ठी-चपाती आई थी?'

'ना।'

'और न तुमने लिखी? अरे! तीन महीने से कोई चिट्ठी ही नहीं भेजी? घबड़ाते न होंगे लोग?'

'जब तक यहां कोई ठिकाना न लग जाय, क्या पत्र लिखूं।'

'अरे भले आदमी, इतना तो लिख दो कि मैं यहां कुशल से हूं। घर से भाग आए थे; उन लोगों को कितनी चिंता हो रही होगी! मां-बाप तो हैं न?'

'हां, हैं तो।'

देवीदीन ने गिड़गिड़ाकर कहा—तो भैया, आज ही चिट्ठी डाल दो, मेरी बात मानो।

रमा ने अब तक अपना हाल छिपाया था। उसके मन में कितनी ही बार इच्छा हुई कि देवीदीन से कह दूं; पर बात होंठों तक आकर रुक जाती थी। वह देवीदीन के मुंह से आलोचना सुनना चाहता था। वह जानना चाहता था कि यह क्या सलाह देता है। इस समय देवीदीन के सद्भाव ने उसे पराभूत कर दिया। बोला—घर से भाग आया हूं, दादा!

देवीदीन ने मूंछों में मुस्कराकर कहा—यह तो मैं जानता हूं, क्या बाप से लड़ाई हो गई?

'नहीं।'

'मां ने कुछ कहा होगा?'

'यह भी नहीं।'

'तो घरवाली से ठन गई होगी। वह कहती होगी, मैं अलग रहूंगी, तुम कहते होगे मैं अपने मां-बाप से अलग न रहूंगा। या गहने के लिए जिद करती होगी। नाक में दम कर दिया होगा। क्यों?'

रमा ने लज्जित होकर कहा—कुछ ऐसी बात थी, दादा! वह तो गहनों की बहुत इच्छुक न थी; लेकिन पा जाती थी, तो प्रसन्न हो जाती थी, और मैं प्रेम की तरंग में आगा-पीछा कुछ न सोचता था।

देवीदीन के मुंह से मानो आप-ही-आप निकल आया—सरकारी रकम तो नहीं उड़ा दी?

रमा को रोमांच हो आया। छाती धक-से हो गई। वह सरकारी रकम की बात उससे छिपाना चाहता था। देवीदीन के इस प्रश्न ने मानो उस पर छापा मार दिया। वह कुशल सैनिक की भांति अपनी सेना को घाटियों से, जासूसों की आंख बचाकर, निकाल ले जाना चाहता था; पर इस छापे ने उसकी सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। वह एकाएक कुछ निश्चय न कर सका कि इसका क्या जवाब दूं।

देवीदीन ने उसके मन का भाव भांपकर कहा—प्रेम बड़ा बेढब होता है, भैया ! बड़े-बड़े चूक जाते हैं, तुम तो अभी लड़के हो। गबन के हजारों मुकदमे हर साल होते हैं। तहकीकात की जाय, तो सबका कारण एक ही होगा—गहना। दस-बीस वारदात तो मैं आंखों देख चुका हूं। यह रोग ही ऐसा है। औरत मुंह से तो यही कहे जाती है कि यह क्यों लाए, वह क्यों लाए, रुपये कहां से आवेंगे; लेकिन उसका मन आनंद से नाचने लगता है। यहीं एक डाक-बाबू रहते थे। बेचारे ने छुरी से गला काट लिया। एक दूसरे मियां साहब को मैं जानता हूं, जिनको पांच साल की सजा हो गई, जेहल में मर गए। एक तीसरे पंडितजी को जानता हूं, जिन्होंने अफीम खाकर जान दे दी। बुरा रोग है। दूसरों को क्या कहूं, मैं ही तीन साल की सजा काट चुका हूं। जवानी की बात है, जब इस बुढ़िया पर जोबन था, ताकती थी तो मानो कलेजे पर तीर चला देती थी। मैं डाकिया था। मनीआर्डर तकसीम किया करता था। यह कानों के झुमको के लिए जान खा रही थी। कहती थी, सोने ही के लूंगी। इसका बाप चौधरी था। मेवे की दुकान थी। मिजाज बढ़ा हुआ था। मुझ पर प्रेम का नसा छाया हुआ था। अपनी आमदनी की डींगें मारता रहता था। कभी फूल के हार लाता, कभी मिठाई, कभी अतर-फुलेल। सहर का हलका था। जमाना अच्छा था। दुकानदारों से जो चीज मांग लेता, मिल जाती थी। आखिर मैंने एक मनीआर्डर पर झूठे दस्तखत बनाकर रुपये उड़ा लिए। कुल तीस रुपये थे। झुमके लाकर इसे दिए। इतनी खुश हुई, इतनी खुश हुई, कि कुछ न पूछो, लेकिन एक ही महीने में चोरी पकड़ ली गई। तीन साल की सजा हो गई। सजा काटकर निकला तो यहां भाग आया। फिर कभी घर नहीं गया। यह मुंह कैसे दिखाता। हां, घर पत्र भेज दिया। बुढ़िया खबर पाते ही चली आई। यह सब कुछ हुआ, मगर गहनों से उसका पेट नहीं भरा। जब देखो, कुछ-न-कुछ बनता ही रहता है। एक चीज आज बनवाई, कल उसी को तुड़वाकर कोई दूसरी चीज बनवाई। यही तार चला जाता है। एक सोनार मिल गया है, मजूरी में साग-भाजी ले जाता है। मेरी तो सलाह है, घर पर एक खत लिख दो, लेकिन पुलिस तो तुम्हारी टोह में होगी। कहीं पता मिल गया, तो काम बिगड़ जायगा। मै न किसी से एक खत लिखाकर भेज दूं?

रमा ने आग्रहपूर्वक कहा—नहीं, दादा ! दया करो। अनर्थ हो जायगा। पुलिस से ज्यादा तो मुझे घरवालों का भय है।

देवीदीन—घर वाले खबर पाते ही आ जाएंगे। यह चर्चा ही न उठेगी। उनकी कोई चिंता नहीं। डर पुलिस ही का है।

रमानाथ—मैं सजा से बिल्कुल नहीं डरता। तुमसे कहा नहीं, एक दिन मुझे वाचनालय में जान-पहचान की एक स्त्री दिखाई दी। हमारे घर बहुत आती-जाती थी। मेरी स्त्री से बड़ी मित्रता थी। एक बड़े वकील की पत्नी है। उसे देखते ही मेरी नानी मर गई। ऐसा सिटपिटा गया कि उसकी ओर ताकने की हिम्मत न पड़ी। चुपके से उठकर पीछे के बरामदे में जा छिपा। अगर उस वक्त उससे दो-चार बातें कर लेता, तो घर का सारा समाचार मालूम हो जाता और मुझे यह विश्वास है कि वह इस मुलाकात की किसी से चर्चा भी न करती। मेरी पत्नी से भी न कहती, लेकिन मेरी हिम्मत ही न पड़ी। अब अगर मिलना भी चाहूं, तो नहीं मिल सकता। उसका पता-ठिकाना कुछ भी तो नहीं मालूम।

देवीदीन—तो फिर उसी को क्यों नहीं एक चिट्ठी लिखते?

रमानाथ—चिट्ठी तो मुझसे न लिखी जाएगी।

देवीदीन–तो कब तक चिट्ठी न लिखोगे?

रमानाथ–देखा चाहिए।

देवीदीन–पुलिस तुम्हारी टोह में होगी।

देवीदीन चिंता में डूब गया। रमा को भ्रम हुआ, शायद पुलिस का भय इसे चिंतित कर रहा है। बोला–हां, इसकी शंका मुझे हमेशा बनी रहती है। तुम देखते हो, मैं दिन को बहुत कम घर से निकलता हूं, लेकिन मैं तुम्हें अपने साथ नहीं घसीटना चाहता। मैं तो जाऊंगा ही, तुम्हें क्यों उलझन में डालूं। सोचता हूं, कहीं और चला जाऊं, किसी ऐसे गांव में जाकर रहूं, जहां पुलिस की गंध भी न हो।

देवीदीन ने गर्व से सिर उठाकर कहा–मेर बारे में तुम कुछ चिंता न करो भैया, यहां पुलिस से डरने वाले नहीं हैं। किसी परदेशी को अपने घर ठहराना पाप नहीं है। हमें क्या मालूम किसके पीछे पुलिस है? यह पुलिस का काम है, पुलिस जाने। मैं पुलिस का मुखबिर नहीं, जासूस नहीं, गोइंदा नहीं। तुम अपने को बचाए रहो, देखो भगवान् क्या करते हैं। हां, कहीं बुढ़िया से न कह देना, नहीं तो उसके पेट में पानी न पचेगा।

दोनों एक क्षण चुपचाप बैठे रहे। दोनों इस प्रसंग को इस समय बंद कर देना चाहते थे। सहसा देवीदीन ने कहा–क्यों भैया, कहो तो मैं तुम्हारे घर चला जाऊं। किसी को कानोंकान खबर न होगी। मैं इधर उधर से सारा ब्योरा पूछ आऊंगा। तुम्हारे पिता से मिलूंगा, तुम्हारी माता को समझाऊंगा, तुम्हारी घरवाली से बातचीत करूंगा। फिर जैसा उचित जान पड़े, वैसा करना।

रमा ने मन ही-मन प्रसन्न होकर कहा–लेकिन कैसे पूछोगे दादा, लोग कहेंगे न कि तुमसे इन बातों से क्या मतलब?

देवीदीन ने ठट्ठा मारकर कहा–भैया, इससे सहज तो कोई काम ही नहीं। एक जनेऊ गले में डाला और ब्राह्मन बन गए। फिर चाहे हाथ देखो, चाहे, कुंडली बांचो, चाहे सगुन विचारो, सब कुछ कर सकते हो। बुढ़िया भिक्षा लेकर आवेगी। उसे देखते ही कहूंगा, माता तेरे को पुत्र के परदेस जाने का बड़ा कष्ट है, क्या तेरा कोई पुत्र विदेस गया है? इतना सुनते ही घर-भर के लोग आ जाएंगे। वह भी आवेगी। उसका हाथ देखूंगा। इन बातों में मै पक्का हूं भैया, तुम निश्चिंत रहो। कुछ कमा लाऊंगा, देख लेना। माघ-मेला भी होगा। स्नान करता आऊंगा।

रमा की आंखें मनोल्लास से चमक उठीं। उसका मन मधुर कल्पनाओं के संसार में जा पहुंचा। जालपा उसी वक्त रतन के पास दौड़ी जायगी। दोनों भांति-भांति के प्रश्न करेंगी–क्यों बाबा, वह कहां गए हैं? अच्छी तरह हैं न? कब तक घर आवेंगे? कभी बाल-बच्चों की सुधि आती है उनको? वहां किसी कामिनी के माया-जाल में तो नहीं फंस गए? दोनों शहर का नाम भी पूछेंगी। कहीं दादा ने सरकारी रुपये चुका दिए हों, तो मजा आ जाय। तब एक ही चिंता रहेगी।

देवीदीन बोला–तो है न सलाह?

रमानाथ–कहां जायंगे दादा, कष्ट होगा।

'माघ का स्नान भी तो करूंगा। कष्ट के बिना कहीं पुन्न होता है! मैं तो कहता हूं, तुम भी चलो। मैं वहां सब रंग-ढंग देख लूंगा। अगर देखना कि मामला टिचन है, तो चैन से घर चले जाना। कोई खटका मालूम हो, तो मेरे साथ ही लौट आना।'

रमा ने हंसकर कहा–कहां की बात करते हो, दादा! मैं यों कभी न जाऊंगा। स्टेशन पर

उतरते ही कहीं पुलिस का सिपाही पकड़ ले, तो बस !

देवीदीन ने गंभीर होकर कहा—सिपाही क्या पकड़ लेगा, दिल्लगी है ! मुझसे कहो, मैं प्रयागराज के थाने में ले जाकर खड़ा कर दूं। अगर कोई तिरछी आंखों से भी देख ले तो मूंछ मुड़ा लूं ! ऐसी बात भला ! सैकड़ों खूनियों को जानता हूं जो यहां कलकत्ते में रहते हैं। पुलिस के अफसरों के साथ दावतें खाते हैं, पुलिस उन्हें जानती है, फिर भी उनका कुछ नहीं कर सकती ! रुपये में बड़ा बल है, भैया !

रमा ने कुछ जवाब न दिया। उसके सामने यह नया प्रश्न आ खड़ा हुआ। जिन बातों को वह अनुभव न होने के कारण महाकष्ट-साध्य समझता था, उन्हें इस बूढ़े ने निर्मूल कर दिया, और बूढ़ा शेखीबाजों में नहीं है, वह मुंह से जो कहता है, उसे पूरा कर दिखाने की सामर्थ्य रखता है। उसने सोचा, तो क्या मैं सचमुच देवीदीन के साथ घर चला जाऊं? यहां कुछ रुपये मिल जाते, तो नए सूट बनवा लेता, फिर शान से जाता। वह उस अवसर की कल्पना करने लगा, जब वह नया सूट पहने हुए घर पहुंचेगा। उसे देखते ही गोपी और विश्वम्भर दौड़ेंगे—भैया आए, भैया आए ! दादा निकल आयंगे। अम्मां को पहले विश्वास न आयगा, मगर जब दादा जाकर कहेंगे—हां, आ तो गए, तब वह रोती हुई द्वार की ओर चलेंगी। उसी वक्त मैं पहुंचकर उनके पैरों पर गिर पड़ूंगा। जालपा वहां न आएगी। वह मान किए बैठी रहेगी। रमा ने मन-ही-मन वह वाक्य भी सोच लिए, जो वह जालपा को मनाने के लिए कहेगा। शायद रुपये की चर्चा ही न आए। इस विषय पर कुछ कहते हुए सभी को संकोच होगा। अपने प्रियजनों से जब कोई अपराध हो जाता है, तो हम उघटकर उसे दुखी नहीं करते। चाहते हैं कि उस बात का उसे ध्यान ही न आए, उसके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं कि उसे हमारी ओर से जरा भी भ्रम न हो, वह भूलकर भी यह न समझे कि मेरी अपकीर्ति हो रही है।

देवीदीन ने पूछा—क्या सोच रहे हो? चलोगे न?

रमा ने दबीज़बान से कहा—तुम्हारी इतनी दया है, तो चलूंगा, मगर पहले तुम्हें मेरे घर जाकर पूरा-पूरा समाचार लाना पड़ेगा। अगर मेरा मन न भरा, तो मैं लौट आऊंगा।

देवीदीन ने दृढ़ता से कहा—मंजूर।

रमा ने संकोच से आंखें नीची करके कहा—एक बात और है?

देवीदीन—क्या बात है? कहो।

'मुझे कुछ कपड़े बनवाने पड़ेंगे।'

'बन जायेंगे।'

'मैं घर पहुंचकर तुम्हारे रुपये दिला दूंगा ।'

'और मैं तुम्हारी गुरु-दक्षिणा भी वहीं दे दूंगा।'

'गुरु-दक्षिणा भी मुझी को देनी पड़ेगी। मैंने तुम्हें चार हरफ अंग्रेजी पढ़ा दिए, तुम्हारा इससे कोई उपकार न होगा। तुमने मुझे पाठ पढ़ाए हैं, उन्हें मैं उम्र भर नहीं भूल सकता। मुंह पर बड़ाई करना खुशामद है, लेकिन दादा, माता-पिता के बाद जितना प्रेम मुझे तुमसे है, उतना और किसी से नहीं। तुमने ऐसे गाढ़े समय मेरी बांह पकड़ी, जब मैं बीच धार में बहा जा रहा था। ईश्वर ही जाने, अब तक मेरी क्या गति हुई होती, किस घाट लगा होता !'

देवीदीन ने चुहल से कहा—और जो कहीं तुम्हारे दादा ने मुझे घर में न घुसने दिया तो?

रमा ने हंसकर कहा—दादा तुम्हें अपना बड़ा भाई समझेंगे, तुम्हारी इतनी खातिर करेंगे

कि तुम ऊब जाओगे। जालपा तुम्हारे चरण धो-धो पिएगी, तुम्हारी इतनी सेवा करेगी कि जवान हो जाओगे।

देवीदीन ने हंसकर कहा—तब तो बुढ़िया डाह के मारे जल मरेगी। मानेगी नहीं, नहीं तो मेरा जी चाहता है कि हम दोनों यहां से अपना डेरा-डंडा लेकर चलते और वहीं अपनी सिरकी तानते। तुम लोगों के साथ जिंदगी के बाकी दिन आराम से कट जाते; मगर इस चुड़ैल से कलकत्ता न छोड़ा जायगा। तो बात पक्की हो गई न?

'हां, पक्की ही है।'

'दुकान खुले तो चलें, कपड़े लावें। आज ही सिलने को दे दें।'

देवीदीन के चले जाने के बाद रमा बड़ी देर तक आनंद-कल्पनाओं में मग्न बैठा रहा। जिन भावनाओं को उसने कभी मन में आश्रय न दिया था, जिनकी गहराई और विस्तार और उद्वेग से वह इतना भयभीत था कि उनमें फिसलकर डूब जाने के भय से चंचल मन को उधर भटकने भी न देता था, उसी अथाह और अछोर कल्पना-सागर में वह आज स्वच्छंद रूप से क्रीड़ा करने लगा। उसे अब एक नौका मिल गई थी। वह त्रिवेणी की सैर, वह अल्फ्रेड पार्क की बहार, वह खुसरो बाग का आनंद, वह मित्रों के जलसे, सब याद आ-आकर हृदय को गुदगुदाने लगे। रमेश उसे देखते ही गले लिपट जायंगे। मित्रगण पूछेंगे, कहां गए थे, यार? खूब सैर की? रतन उसकी खबर पाते ही दौड़ी आएगी और पूछेगी—तुम कहां ठहरे थे, बाबूजी? मैंने सारा कलकत्ता छान मारा। फिर जालपा की मान-प्रतिमा सामने आ खड़ी हुई।

सहसा देवीदीन ने आकर कहा—भैया, दस बज गए, चलो बाजार होते आवें।

रमा ने चौंककर पूछा—क्या दस बज गए?

देवीदीन—दस नहीं, ग्यारह का अमल होगा।

रमा चलने को तैयार हुआ, लेकिन द्वार तक आकर रुक गया।

देवीदीन ने पूछा—'क्यों खड़े कैसे हो गए?'

''तुम्हीं चले जाओ; मैं जाकर क्या करूंगा!'

''क्या डर रहे हो?'

''नहीं, डर नहीं रहा हूं, मगर क्या फायदा?'

'मैं अकेले जाकर क्या करूंगा! मुझे क्या मालूम, तुम्हें कौन कपड़ा पसंद है। चलकर अपनी पसंद से ले लो। वहीं दरजी को दे देंगे।'

'तुम जैसा कपड़ा चाहे ले लेना। मुझे सब पंसद है।'

'तुम्हें डर किस बात का है? पुलिस तुम्हारा कुछ नहीं करेगी। कोई तुम्हारी तरफ ताकेगा भी नहीं।''

'मैं डर नहीं रहा हूं दादा। जाने की इच्छा नहीं है।'

'डर नहीं रहे हो, तो क्या कर रहे हो। कह रहा हूं कि कोई तुम्हें कुछ न कहेगा, इसका मेरा जिम्मा, मुदा तुम्हारी जान निकली जाती है!'

देवीदीन ने बहुत समझाया, आश्वासन दिया; पर रमा जाने पर राजी न हुआ। वह डरने से कितना ही इंकार करे; पर उसकी हिम्मत घर से बाहर निकलने की न पड़ती थी। वह सोचता था, अगर किसी सिपाही ने पकड़ लिया, तो देवीदीन क्या कर लेगा। माना सिपाही से इसका परिचय भी हो, तो यह आवश्यक नहीं कि वह सरकारी मामले में मैत्री का निर्वाह करे। यह

मिन्नत-खुशामद करके रह जाएगा, जाएगी मेरे सिर। कहीं पकड़ा जाऊं, तो प्रयाग के बदले जेल जाना पड़े। आखिर देवीदीन लाचार होकर अकेला ही गया।

देवीदीन घंटे-भर में लौटा, तो देखा, रमा छत पर टहल रहा है। बोला—कुछ खबर है, कै बज गए? बारह का अमल है। आज रोटी न बनाओगे क्या? घर जाने की खुशी में खाना-पीना छोड़ दोगे?

रमा ने झेंपकर कहा—बना लूंगा दादा, जल्दी क्या है।

''यह देखो, नमूने लाया हूं, इनमें जौन-सा पसंद करो, ले लूं।''

यह कह कर देवीदीन ने ऊनी और रेशमी कपड़ों के सैकड़ों नमूने निकालकर रख दिए। पांच-छः रुपये गज से कम का कोई कपड़ा न था।

रमा ने नमूनों को उलट-पलटकर देखा और बोला—इतने महंगे कपड़े क्यों लाए, दादा? और सस्ते न थे?

'सस्ते थे, मुदा विलायती थे।'

'तुम विलायती कपड़े नहीं पहनते?'

'इधर बीस साल से तो नहीं लिए, उधर की बात नहीं कहता। कुछ बेसी दाम लग जाता है, पर रुपया तो देस ही में रह जाता है।'

रमा ने लजाते हुए कहा—तुम नियम के बड़े पक्के हो, दादा।

देवीदीन की मुद्रा सहसा तेजवान हो गई। उसकी बुझी हुई आंखें चमक उठीं। देह की नसें तन गईं। अकड़कर बोला—जिस देस में रहते हैं, जिसका अन्न-जल खाते हैं, उसके लिए इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी सुदेसी की भेंट कर चुका हूं, भैया! ऐसे-ऐसे पट्ठे थे, कि तुमसे क्या कहें। दोनों बिदेसी कपड़ों की दुकान पर तैनात थे। क्या मजाल थी कोई गाहक दुकान पर आ जाय। हाथ जोड़कर, घिघियाकर, धमकाकर, लजवाकर सबको फेर लेते थे। बजाजे में सियार लोटने लगे। सबों ने जाकर कमिसनर से फरियाद की। सुनकर आग हो गया। बीस फौजी गोरे भेजे कि अभी जाकर बाजार से पहरे उठा दो। गोरों ने दोनों भाइयों से कहा—यहां से चले जाव, मुदा वह अपनी जगह से जौ-भर न हिले। भीड़ लग गई। गोरे उन पर घोड़े चढ़ा लाते थे; पर दोनों चट्टान की तरह डटे खड़े थे। आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डंडों से पीटना सुरू किया। दोनों वीर डंडे खाते थे, पर जगह से न हिलते थे। जब बड़ा भाई गिर पड़ा तो छोटा उसकी जगह पर आ खड़ा हुआ। अगर दोनों अपने डंडे सभांल लेते तो भैया उन बीसों मार भगाते; लेकिन हाथ उठाना तो बड़ी बात है, सिर तक न उठाया। अन्त में छोटा भी वहीं गिर पड़ा। दोनों को लोगों ने उठाकर अस्पताल भेजा। उसी रात को दोनों सिधार गए। तुम्हारे चरन छूकर कहता हूं भैया, उस बखत ऐसा जान पड़ता था कि मेरी छाती गज-भर की हो गई है, पांव जमीन पर न पड़ते थे, यही उमंग आती थी कि भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता, तो इस समय उन्हें भी भेज देता। जब अर्थी चली है, तो एक लाख आदमी साथ थे। बेटों को गंगा में सौंपकर मैं सीधे बजाजे पहुंचा और उसी जगह खड़ा हुआ; जहां दोनों बीरों की लहास गिरी थी। गाहक के नाम चिड़िए का पूत तक न दिखाई दिया। आठ दिन वहां से हिला तक नहीं। बस भोर के समय आध घंटे के लिए घर आता था और नहा-धोकर कुछ जलपान करके चला जाता था। नवें दिन दुकानदारों ने कसम खाई कि बिलायती कपड़े अब न मंगावेंगे। तब पहरे

उठा लिए गए। तब से बिदेसी दियासलाई तक घर में नहीं लाया।

रमा ने सच्चे दिल से कहा—दादा, तुम सच्चे वीर हो, और वे दोनों लड़के भी सच्चे योद्धा थे। तुम्हारे दर्शनों से आंखें पवित्र होती हैं।

देवीदीन ने इस भाव से देखा मानो इस बड़ाई को वह बिल्कुल अतिशयोक्ति नहीं समझता। शहीदों की शान से बोला—इन बड़े-बड़े आदमियों के किए कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है, छोकरियों की भांति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बड़े-बड़े देस-भगतों को बिना बिलायती सराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो, तो एक भी देसी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिए, घर का और सब सामान बिलायती है। सब-के-सब भोग-बिलास में अंधे हो रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देस का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देस का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार तो कर लो। गरीबों को लूटकर बिलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। इसीलिए तुम्हारा इस देस में जनम हुआ है। हां, रोए जाव, बिलायती सराबें उड़ाओ, बिलायती मोटरें दौड़ाओ, बिलायती मुरब्बे और अचार चक्खो, बिलायती बरतनों में खाओ, बिलायती दवाइयां पियो, पर देस के नाम को रोये जाव। मुदा इस रोने से कुछ न होगा। रोने से मां दूध पिलाती है, सेर अपना सिकार नहीं छोड़ता। रोओ उसके सामने, जिसमें दया और धरम हो। तुम धमकाकर ही क्या कर लोगे? जिस धमकी में कुछ दम नहीं है, उस धमकी की परवाह कौन करता है। एक बार यहां एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर खूब उछले-कूदे, जब वह नीचे आए, तब मैंने उनसे पूछा—साहब, सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, तो उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है? तुम भी बड़ी-बड़ी तलब लोगे; तुम भी अंगरेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंगरेजी ठाठ बनाए घूमोगे, इस सुराज से देस का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बंदों की जिंदगी भले आराम और ठाठ से गुजरे; पर देस का तो कोई भला न होगा। बस, बगलें झांकने लगे। तुम दिन में पांच बेर खाना चाहते हो, और वह भी बढ़िया माल; गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूसकर तो सरकार तुम्हें हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है? अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग-बिलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जायगा तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगे।

रमा भद्र-समाज पर यह आक्षेप न सुन सका। आखिर वह भी तो भद्र-समाज का ही एक अंग था। बोला—यह बात तो नहीं है दादा, कि पढ़े-लिखे लोग किसानों का ध्यान नहीं करते। उनमें से कितने ही खुद किसान थे, या हैं। उन्हें अगर विश्वास हो जाय कि हमारे कष्ट उठाने से किसानों का कोई उपकार होगा और जो बचत होगी, वह किसानों के लिए खर्च की जायगी, तो वह खुशी से कम वेतन पर काम करेंगे; लेकिन जब वह देखते हैं कि बचत दूसरे हड़प जाते हैं, तो वह सोचते हैं, अगर दूसरों को ही खाना है, तो हम क्यों न खाएं।

देवीदीन—तो सुराज मिलने पर दस-दस, पांच-पांच हजार के अफसर नहीं रहेंगे? वकीलों की लूट नहीं रहेगी? पुलिस की लूट बंद हो जाएगी?

एक क्षण के लिए रमा सिटपिटा गया। इस विषय में उसने खुद कभी विचार न किया था; मगर तुरंत ही उसे जवाब सूझ गया। बोला—दादा, तब तो सभी काम बहुमत से होगा। अगर बहुमत कहेगा कि कर्मचारियों के वेतन घटा दिए जाएं; तो घट जाएंगे। देहातों के संगठनों के

लिए भी बहुमत जितने रुपये मांगेगा, मिल जाएंगे। कुंजी बहुमत के हाथ में रहेगी, और अभी दस-पांच बरस चाहे न हो लेकिन आगे चलकर बहुमत किसानों और मजूरों ही का हो जाएगा।

देवीदीन ने मुस्कराकर कहा—भैया, तुम भी इन बातों को समझते हो। यही मैंने भी सोचा था। भगवान् करे, कुछ दिन और जिऊं। मेरा पहला सवाल यह होगा कि बिलायती चीजों पर दुगुना महसूल लगया जाय और मोटरों पर चौगुना। अच्छा अब भोजन बनाओ। सांझ को चलकर कपड़े दरजी को दे देंगे। मैं भी जब तक खा लूं।

शाम को देवीदीन ने आकर कहा—चलो भैया, अब तो अंधेरा हो गया।

रमा सिर पर हाथ धरे बैठा हुआ था। मुख पर उदासी छाई हुई थी। बोला—दादा, मैं घर न जाऊंगा।

देवीदीन ने चकित होकर पूछा—क्यों क्या बात हुई?

रमा की आंखें सजल हो गईं। बोला—कौन-सा मुंह लेकर जाऊं, दादा! मुझे तो डूब मरना चाहिए था।

यह कहते-कहते वह खुलकर रो पड़ा। वह वेदना जो अब तक मूर्छित पड़ी थी, शीतल जल के यह छींटे पाकर सचेत हो गई और उसके क्रंदन ने रमा के सारे अस्तित्व को जैसे छेद डाला। इसी क्रंदन के भय से वह उसे छेड़ता न था, उसे सचेत करने की चेष्टा न करता था। संयत विस्मृति से उसे अचेत ही रखना चाहता था, मानो कोई दु:खिनी माता अपने बालक को इसलिए जगाते डरती हो कि वह तुरंत खाने को मांगने लगेगा।

## सत्ताईस

कई दिनों के बाद एक दिन कोई आठ बजे रमा पुस्तकालय से लौट रहा था कि मार्ग में उसे कई युवक शतरंज के किसी नक्शे की बातचीत करते मिले। यह नक्शा वहां के एक हिंदी दैनिक पत्र में छपा था और उसे हल करने वाले को पचास रुपये इनाम देने का वचन दिया गया था। नक्शा असाध्य-सा जान पड़ता था। कम-से-कम इन युवकों की बातचीत से ऐसा ही टपकता था। यह भी मालूम हुआ कि वहां के और भी कितने ही शतरंजबाजों ने उसे हल करने के लिए भरपूर जोर लगाया; पर कुछ पेश न गई। अब रमा को याद आया कि पुस्तकालय में एक पत्र पर बहुत-से आदमी झुके हुए थे और उस नक्शे की नकल कर रहे थे। जो आता था, दो-चार मिनट तक वह पत्र देख लेता था। अब मालूम हुआ, यह बात थी।

रमा का इनमें से किसी से भी परिचय न था; पर वह यह नक्शा देखने के लिए इतना उत्सुक हो रहा था कि उससे बिना पूछे न रहा गया। बोला—आप लोगों में किसी के पास वह नक्शा है?

युवकों ने एक कंबलपोश आदमी को नक्शे की बात पूछते सुना तो समझे कोई अताई होगा। एक ने रुखाई से कहा—हां, है तो, मगर तुम देखकर क्या करोगे, यहां अच्छे-अच्छे गोते खा रहे हैं। एक महाशय, जो शतरंज में अपना सानी नहीं रखते, उसे हल करने के लिए सौ रुपये अपने पास से देने को तैयार हैं।

दूसरा युवक बोला—दिखा क्यों नहीं देते जी, कौन जाने यही बेचारे हल कर लें, शायद इन्हीं की सूझ लड़ जाए।

इस प्रेरणा में सज्जनता नहीं व्यंग्य था, उसमें यह भाव छिपा था कि हमें दिखाने में कोई उज्र नहीं है, देखकर अपनी आंखों को तृप्त कर लो मगर तुम जैसे उल्लू उसे समझ ही नहीं सकते, हल क्या करेंगे।

जान-पहचान की एक दुकान में जाकर उन्होंने रमा को नक्शा दिखाया। रमा को तुरंत याद आ गया, यह नक्शा पहले भी कहीं देखा है। सोचने लगा, कहां देखा है?

एक युवक ने चुटकी ली—आपने तो हल कर लिया होगा!

दूसरा—अभी नहीं किया तो एक क्षण में किए लेते हैं!

तीसरा—जरा दो-एक चाल बताइए तो?

रमा ने उत्तेजित होकर कहा—यह मैं नहीं कहता कि मैं उसे हल कर ही लूंगा, मगर ऐसा नक्शा मैंने एक बार हल किया है, और संभव है, इसे भी हल कर लूं। जरा कागज पेंसिल दीजिए तो नकल कर लूं।

युवकों का अविश्वास कुछ कम हुआ। रमा को कागज-पेंसिल मिल गया। एक क्षण में उसने नक्शा नकल कर लिया और युवकों को धन्यवाद देकर चला। एकाएक उसने फिरकर पूछा—जवाब किसके पास भेजना होगा?

एक युवक ने कहा—'प्रजा-मित्र' के संपादक के पास।

रमा ने घर पहुंचकर उस नक्शे पर दिमाग लगाना शुरू किया, लेकिन मुहरों की चालें सोचने की जगह वह यही सोच रहा था कि यह नक्शा कहां देखा। शायद याद आते ही उसे नक्शे का हल भी सूझ जायगा। अन्य प्राणियों की तरह मस्तिष्क भी कार्य में तत्पर न होकर बहाने खोजता है। कोई आधार मिल जाने से वह मानो छुट्टी पा जाता है। रमा आधी रात तक नक्शा सामने खोले बैठा रहा। शतरंज की जो बड़ी-बड़ी मार्के की बाजियां खेली थीं, उन सबका नक्शा उसे याद था, पर यह नक्शा कहां देखा?

सहसा उसकी आंखों के सामने बिजली-सी कौंध गई। खोई हुई स्मृति मिल गई। अहा! राजा साहब ने यह नक्शा दिया था। हां, ठीक है। लगातार तीन दिन दिमाग लड़ाने के बाद इसे उसने हल किया था। नक्शे की नकल भी कर लाया था। फिर तो उसे एक-एक चाल याद आ गई। एक क्षण में नक्शा हल हो गया! उसने उल्लास के नशे में जमीन पर दो-तीन कुलांचें लगाईं, मूछों पर ताव दिया, आईने में मुंह देखा और चारपाई पर लेट गया। इस तरह अगर महीने में एक नक्शा मिलता जाए, तो क्या पूछना!

देवीदीन अभी आग सुलगा रहा था कि रमा प्रसन्न मुख आकर बोला—दादा, जानते हो 'प्रजा-मित्र' अखबार का दफ्तर कहां है?

देवीदीन—जानता क्यों नहीं हूं। यहां कौन अखबार है, जिसका पता मुझे न मालूम हो। 'प्रजा-मित्र' का संपादक एक रंगीला युवक है, जो हरदम मुंह में पान भरे रहता है। मिलने जाओ, तो आंखों से बातें करता है, मगर है हिम्मत का धनी। दो बेर जेहल हो आया है।

रमा—आज जरा वहां तक जाओगे?

देवीदीन ने कातर भाव से कहा—मुझे भेजकर क्या करोगे? मैं न जा सकूंगा।

'क्या बहुत दूर है?'

'नहीं, दूर नहीं है।'

'फिर क्या बात है?'

देवीदीन ने अपराधियों के भाव से कहा—बात कुछ नहीं है; बुढ़िया बिगड़ती है। उसे बचन दे चुका हूं कि सुदेसी-बिदेसी के झगड़े में न पड़ूंगा, न किसी अखबार के दफ्तर में जाऊंगा। उसका दिया खाता हूं, तो उसका हुकुम भी तो बजाना पड़ेगा।

रमा ने मुस्कराकर कहा—दादा, तुम तो दिल्लगी करते हो। मेरा एक बड़ा जरूरी काम है। उसने शतरंज का एक नक्शा छापा था, जिस पर पचास रुपया इनाम है। मैंने वह नक्शा हल कर दिया है। आज छप जाय, तो मुझे यह इनाम मिल जाय। अखबारों के दफ्तर में अक्सर खुफिया पुलिस के आदमी आते-जाते रहते हैं। यही भय है। नहीं, मैं खुद चला जाता; लेकिन तुम नहीं जा रहे हो तो लाचार मुझे ही जाना पड़ेगा। बड़ी मेहनत से यह नक्शा हल किया है। सारी रात जागता रहा हूं।

देवीदीन ने चिंतित स्वर में कहा—तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं।

रमा ने हैरान होकर पूछा—तो फिर? क्या डाक से भेज दूं?

देवीदीन ने एक क्षण सोचकर कहा—नहीं, डाक से क्या भेजोगे। सादा लिफाफा इधर-उधर हो जाय, तो तुम्हारी मेहनत अकारथ जाय। रजिस्ट्री कराओ, तो कहीं परसों पहुंचेगा। कल इतवार है। किसी और ने जवाब भेज दिया, तो इनाम वह मार ले जायगा। यह भी तो हो सकता है कि अखबार वाले धांधली कर बैठें और तुम्हारा जवाब अपने नाम से छापकर रुपया हजम कर लें।

रमा ने दुबिधे में पड़कर कहा—मैं ही चला जाऊंगा।

'तुम्हें मैं न जाने दूंगा। कहीं फंस जाओ तो बस!'

'फसंना तो एक दिन है ही। कब तक छिपा रहूंगा?'

'तो मरने के पहले ही क्यों रोना-पीटना हो। जब फंसोगे, तब देखी जाएगी। लाओ, मैं चला जाऊं। बुढ़िया से कोई बहाना कर दूंगा। अभी भेंट भी हो जाएगी। दफ्तर ही में रहते भी हैं। फिर घूमने-घामने चल देंगे, तो दस बजे से पहले न लौटेंगे।'

रमा ने डरते-डरते कहा—तो दस बजे बाद जाना, क्या हरज है।

देवीदीन ने खड़े होकर कहा—तब तक कोई दूसरा काम आ गया, तो आज रह जाएगा। घंटे-भर में लौट आता हूं। अभी बुढ़िया देर में आएगी।

यह कहते हुए देवीदीन ने अपना काला कंबल ओढ़ा, रमा से लिफाफा लिया और चल दिया।

जग्गो साग-भाजी और फल लेने मंडी गई हुई थी। आध घंटे में सिर पर एक टोकरी रक्खे और एक बड़ा-सा टोकरा मजूर के सिर पर रखवाए आई। पसीने से तर थी। आते ही बोली—कहां गए? जरा बोझा तो उतारो, गरदन टूट गई।

रमा ने आगे बढ़कर टोकरी उतरवा ली। इतनी भारी थी कि संभाले न संभलती थी।

जग्गो ने पूछा—वह कहां गए हैं?

रमा ने बहाना किया—मुझे तो नहीं मालूम, अभी इसी तरफ चले गए हैं।

बुढ़िया ने मजूर के सिर का टोकरा उतरवाया और जमीन पर बैठकर एक टूटी-सी पंखिया झलती हुई बोली—चरस की चाट लगी होगी और क्या, मैं मर-मर कमाऊं और यह

बैठे-बैठे मौज उड़ाएं और चरस पीएं।

रमा जानता था, देवीदीन चरस पीता है, पर बुढ़िया को शांत करने के लिए बोला—क्या चरस पीते हैं? मैंने तो नहीं देखा।

बुढ़िया ने पीठ की साड़ी हटाकर उसे पंखी की डंडी से खुजाते हुए कहा—इनसे कौन नसा छूटा है, चरस यह पीएं, गांजा यह पीएं, सराब इन्हें चाहिए, भांग इन्हें चाहिए, हां अभी तक अफीम नहीं खाई, या राम जाने खाते हों, मैं कौन हरदम देखती रहती हूं। मैं तो सोचती हूं कौन जाने आगे क्या हो, हाथ में चार पैसे होंगे, तो पराए भी अपने हो जाएंगे; पर इस भले आदमी को रत्ती-भर चिंता नहीं सताती। कभी तीरथ है, कभी कुछ, कभी कुछ, मेरा तो (नाक पर उंगली रखकर) नाक में दम आ गया। भगवान् उठा ले जाते तो यह कुसंग तो छूट जाती। तब याद करेंगे लाला! तब जग्गो कहां मिलेगी, जो कमा-कमाकर गुलछर्रे उड़ाने को दिया करेगी। तब रकत के आंसू न रोएं, तो कह देना कोई कहता था। (मजूर से) कै पैसे हुए तेरे?

मजूर ने बीड़ी जलाते हुए कहा—बोझा देख लो दाई, गरदन टूट गई!

जग्गो ने निर्दय भाव से कहा—हां-हां, गरदन टूट गई! बड़ी सुकुमार है न? यह ले, कल फिर चले आना।

मजूर ने कहा—यह तो बहुत कम है। मेरा पेट न भरेगा।

जग्गो ने दो पैसे और थोड़े से आलू देकर उसे विदा किया और दुकान सजाने लगी। सहसा उसे हिसाब की याद आ गई। रमा से बोली—भैया, जरा आज का खरचा तो टांक दो। बाजार में जैसे आग लग गई है।

बुढ़िया छबड़ियों में चीजें लगा-लगाकर रखती जाती थी और हिसाब भी लिखाती जाती थी। आलू, टमाटर, कद्दू, केले, पालक, सेम, संतरे, गोभी, सब चीजों का तौल और दर उसे याद था। रमा से दोबारा पढ़वाकर उसने सुना तब उसे संतोष हुआ। इन सब कामों से छुट्टी पाकर उसने अपनी चिलम भरी और मोढ़े पर बैठकर पीने लगी; लेकिन उसके अंदाज से मालूम होता था कि वह तंबाकू का रस लेने के लिए नहीं, दिल को जलाने के लिए पी रही है। एक क्षण के बाद बोली—दूसरी औरत होती तो घड़ी भर इसके साथ निबाह न होता, घड़ी भर। पहर रात से चक्की में जुत जाती हूं और दस बजे रात तक दुकान पर बैठी सती होती रहती हूं। खाते-पीते बारह बजते हैं तब जाकर चार पैसे दिखाई देते हैं, और जो कुछ कमाती हूं, यह नसे में बरबाद कर देता है। सात कोठरी में छिपा के रक्खूं, पर इसकी निगाह पहुंच जाती है। निकाल लेता है। कभी एकाध चीज-बस्त बनवा लेती हूं तो वह आंखों में गड़ने लगती है। तानों से छेदने लगता है। भाग में लड़कों का सुख भोगना नहीं बदा था, तो क्या करूं! छाती फाड़ के मर जाऊं? मांगे से मौत भी तो नहीं मिलती। सुख भोगना लिखा होता, तो जवान बेटे चल देते, और इस पियक्कड़ के हाथों मेरी यह सांसत होती! इसी ने सुदेसी के झगड़े में पड़कर मेरे लालों की जान ली। आओ, इस कोठरी में भैया, तुम्हें मुग्दर की जोड़ी दिखाऊं। दोनों इस जोड़ी से पांच-पांच सौ हाथ फेरते थे।

अंधेरी कोठरी में जाकर रमा ने मुग्दर की जोड़ी देखी। उस पर वार्निश थी, साफ-सुथरी मानो अभी किसी ने फेरकर रख दिया हो।

बुढ़िया ने सगर्व नेत्रों से देखकर कहा—लोग कहते थे कि यह जोड़ी महाब्राह्मन को दे दे, तुझे देख-देख कलक होगा। मैंने कहा—यह जोड़ी मेरे लालों की जुगल जोड़ी है।

यही मेरे दोनों लाल हैं।

बुढ़िया के प्रति आज रमा के हृदय में असीम श्रद्धा जाग्रत हुई। कितना पावन धैर्य है, कितनी विशाल वत्सलता, जिसने लकड़ी के इन दो टुकड़ों को जीवन प्रदान कर दिया है। रमा ने जग्गो को माया और लोभ में डूबी हुई, पैसे पर जान देने वाली, कोमल भावों से सर्वथा विहीन समझ रक्खा था। आज उसे विदित हुआ कि उसका हृदय कितना स्नेहमय, कितना कोमल, कितना मनस्वी है। बुढ़िया ने उसके मुंह की ओर देखा, तो न जाने क्यों उसका मातृ-हृदय उसे गले लगाने के लिए अधीर हो उठा। दोनों के हृदय प्रेम के सूत्र में बंध गए। एक ओर पुत्र-स्नेह था, दूसरी ओर मातृ-भक्ति। वह मालिन्य जो अब तक गुप्त भाव से दोनों को पृथक् किए हुए था, आज एकाएक दूर हो गया।

बुढ़िया ने कहा—मुंह-हाथ धो लिया है न बेटा। बड़े मीठे संतरे लाई हूं, एक लेकर चखो तो।

रमा ने संतरा खाते हुए कहा—आज से मैं तुम्हें अम्मां कहा करूंगा।

बुढ़िया के शुष्क, ज्योतिहीन, ठंडे, कृपण नेत्रों से मोती के-से दो बिंदु निकल पड़े।

इतने में देवीदीन दबे पांव आकर खड़ा हो गया। बुढ़िया ने तड़पकर पूछा—यह इतने सबेरे किधर सवारी गई थी सरकार की?

देवी ने सरलता से मुस्कराकर कहा—कहीं नहीं, जरा एक काम से चला गया था।

'क्या काम था, जरा मैं भी तो सुनूं, या मेरे सुनने लायक नहीं है?'

'पेट में दरद था, जरा वैदजी के पास चूरन लेने गया था।'

'झूठे हो तुम, उड़ो उससे जो तुम्हें जानता न हो। चरस की टोह में गए थे तुम।'

'नहीं, तेरे चरन छूकर कहता हूं। तू झूठ-मूठ मुझे बदनाम करती है।'

'तो फिर कहां गए थे तुम?'

'बता तो दिया। रात खाना दो कौर ज्यादा खा गया था, सो पेट फूल गया, और मीठा मीठा '

'झूठ है, बिल्कुल झूठ ! तुम चाहे झूठ बोलो, तुम्हारा मुंह साफ कहे देता है, यह बहाना है, चरस, गांजा, इसी टोह में गए थे तुम। मैं एक न मानूंगी। तुम्हें इस बुढ़ापे में नसे की सूझती है, यहां मेरी मरन हुई जाती है। सबेरे के गए-गए नौ बजे लौटे हैं, जानो यहां कोई इनकी लौंडी है।'

देवीदीन ने एक झाड़ू लेकर दुकान में झाड़ू लगाना शुरू किया, पर बुढ़िया ने उसके हाथ से झाड़ू छीन लिया और पूछा—तुम अब तक थे कहां? जब तक यह न बताओगे, भीतर घुसने न दूंगी।

देवीदीन ने सिटपिटाकर कहा—क्या करोगी पूछकर, एक अखबार के दफ्तर में तो गया था। जो चाहे कर ले।

बुढ़िया ने माथा ठोंककर कहा—तुमने फिर वही लत पकड़ी? तुमने कान न पकड़ा था कि अब कभी अखबारों के नगीच न जाऊंगा। बोलो, यही मुंह था कि कोई और !

'तू बात तो समझती नहीं, बस बिगड़ने लगती है।'

'खूब समझती हूं। अखबार वाले दंगा मचाते हैं और गरीबों को जेहल ले जाते हैं। आज बीस साल से देख रही हूं। वहां जो आता-जाता है, पकड़ लिया जाता है। तलासी तो आए दिन हुआ करती है। क्या बुढ़ापे में जेहल की रोटियां तोड़ोगे?'

देवीदीन ने एक लिफाफा रमानाथ को देकर कहा–यह रुपये हैं भैया, गिन लो। देख, यह रुपये वसूल करने गया था। जी न मानता हो, तो आधे ले ले!

बुढ़िया ने आंखें फाड़कर कहा–अच्छा! तो तुम अपने साथ इस बेचारे को भी डुबाना चाहते हो। तुम्हारे रुपये में आग लगा दूंगी। तुम रुपये मत लेना, भैया! जान से हाथ धोओगे। अब सेंतमेंत आदमी नहीं मिलते, तो सब लालच दिखाकर लोगों को फंसाते हैं। बाजार में पहरा दिलावेंगे, अदालत में गवाही करावेंगे! फेंक दो उसके रुपये; जितने रुपये चाहो; मुझसे ले जाओ।

जब रमानाथ ने सारा वृत्तांत कहा, तो बुढ़िया का चित्त शांत हुआ। तनी हुई भवें ढीली पड़ गईं, कठोर मुद्रा नर्म हो गई। मेघ-पट को हटाकर नीला आकाश हंस पड़ा। विनोद करके बोली–इसमें से मेरे लिए क्या लाओगे, बेटा?

रमा ने लिफाफा उसके सामने रखकर कहा–तुम्हारे तो सभी हैं, अम्मां! मैं रुपये लेकर क्या करूंगा?

'घर क्यों नहीं भेज देते। इतने दिन आए हो गए, कुछ भेजा नहीं।'

'मेरा घर यही है, अम्मां! कोई दूसरा घर नहीं है।'

बुढ़िया का मातृत्व वंचित हृदय गद्‌गद हो उठा। इस मातृ-भक्ति के लिए कितने दिनों से उसकी आत्मा तड़प रही थी। इस कृपण हृदय में जितना प्रेम संचित हो रहा था, वह सब माता के स्तन में एकत्र होने वाले दूध की भांति बाहर निकलने के लिए आतुर हो गया।

उसने नोटों को गिनकर कहा–पचास हैं, बेटा! पचास मुझसे और ले लो। चाय का पतीला रखा हुआ है। चाय की दुकान खोल दो। यहीं एक तरफ चार-पांच मोढ़े और मेज रख लेना। दो-दो घंटे सांझ-सवेरे बैठ जाओगे तो गुजर भर को मिल जायगा। हमारे जितने गाहक आवेंगे, उनमें से कितने ही चाय भी पी लेंगे।

देवीदीन बोला–तब चरस के पैसे मैं इस दुकान से लिया करूंगा!

बुढ़िया ने विहंसित और पुलकित नेत्रों से देखकर कहा–कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लूंगी। इस फेर में न रहना।

रमा अपने कमरे में गया, तो उसका मन बहुत प्रसन्न था। आज उसे कुछ वही आनंद मिल रहा था, जो अपने घर भी कभी न मिला था। घर पर जो स्नेह मिलता था, वह उसे मिलना ही चाहिए था। यहां जो स्नेह मिला, वह मानो आकाश से टपका था।

उसने स्नान किया, माथे पर तिलक लगाया और पूजा का स्वांग भरने बैठा कि बुढ़िया आकर बोली–बेटा, तुम्हें रसोई बनाने में बड़ी तकलीफ होती है। मैंने एक ब्राह्मनी ठीक कर दी है। बेचारी बड़ी गरीब है। तुम्हारा भोजन बना दिया करेगी। उसके हाथ का तो तुम खा लोगे? धरम-करम से रहती है बेटा, ऐसी बात नहीं है। मुझसे रुपये पैसे उधार ले जाती है। इसी से राजी हो गई है।

उन वृद्ध आंखों से प्रगाढ़, अखंड मातृत्व झलक रहा था, कितना विशुद्ध, कितना पवित्र! ऊंच-नीच और जाति-मर्यादा का विचार आप ही आप मिट गया। बोला–जब तुम मेरी माता हो गईं तो फिर काहे का छूत-विचार! मैं तुम्हारे ही हाथ का खाऊंगा।

बुढ़िया ने जीभ दांतों से दबाकर कहा–अरे नहीं बेटा! मैं तुम्हारा धरम न लूंगी, कहां तुम बराम्हन और कहां हम खटिक। ऐसा कहीं हुआ है।

'मैं तो तुम्हारी रसोई में खाऊंगा। जब मां-बाप खटिक हैं, तो बेटा भी खटिक है। जिसकी आत्मा बड़ी हो वही ब्राह्मण है।'

'और जो तुम्हारे घरवाले सुनें तो क्या कहें !'

'मुझे किसी के कहने-सुनने की चिंता नहीं है, अम्मां ! आदमी पाप से नीच होता है, खाने-पीने से नीच नहीं होता। प्रेम से जो भोजन मिलता है, वह पवित्र होता है। उसे तो देवता भी खाते हैं।'

बुढ़िया के हृदय में भी जाति-गौरव का भाव उदय हुआ। बोली—बेटा, खटिक कोई नीच जात नहीं है। हम लोग बराम्हन के हाथ का भी नहीं खाते। कहार का पानी तक नहीं पीते। मांस-मछरी हाथ से नहीं छूते, कोई-कोई सराब पीते हैं, मुदा लुक-छिपकर। इसने किसी को नहीं छोड़ा, बेटा ! बड़े-बड़े तिलकधारी गटागट पीते हैं। लेकिन मेरी रोटियां तुम्हें अच्छी नहीं लगेंगी?

रमा ने मुस्कराकर कहा—प्रेम की रोटियों में अमृत रहता है, अम्मां ! चाहे गेहूं की हों या बाजरे की।

बुढ़िया यहां से चली तो मानो अंचल में आनंद की निधि भरे हो।

## अट्ठाईस

जब से रमा चला गया था, रतन को जालपा के विषय में चिंता हो गई थी। वह किसी बहाने से उसकी मदद करते रहना चाहती थी। इसके साथ ही यह भी चाहती थी कि जालपा किसी तरह ताड़ने न पाए। अगर कुछ रुपया खर्च करके भी रमा का पता चल सकता, तो वह सहर्ष खर्च कर देती, और जालपा की वह रोती हुई आंख देखकर उसका हृदय मसोस उठता था। वह उसे प्रसन्न-मुख देखना चाहती थी। अपने अंधेरे, रोने घर से ऊबकर वह जालपा के घर चली जाया करती थी। वहां घड़ी-भर हंस-बोल लेने से उसका चित्त प्रसन्न हो जाता था। अब वहां भी वही नहूसत छा गई। यहां आकर उसे अनुभव होता था कि मैं भी संसार में हूं, उस संसार में जहां जीवन है, लालसा है, प्रेम है, विनोद है। उसका अपना जीवन व्रत की वेदी पर अर्पित हो गया था। वह तन-मन से उस व्रत का पालन करती थी; पर शिवलिंग के ऊपर रखे हुए घट में क्या वह प्रवाह है, तरंग है, नाद है, जो सरिता में है? वह शिव के मस्तक को शीतल करता रहे, यही उसका काम है, लेकिन क्या उसमें सरिता के प्रवाह और तरंग और नाद का लोप नहीं हो गया है?

इसमें संदेह नहीं कि नगर के प्रतिष्ठित और संपन्न घरों से रतन का परिचय था; लेकिन जहां प्रतिष्ठा थी, वहां तकल्लुफ था, दिखावा था, ईर्ष्या थी, निंदा थी। क्लब के संसर्ग से भी उसे अरुचि हो गई थी। वहां विनोद अवश्य था, क्रीड़ा अवश्य थी; किंतु पुरुषों के आतुर नेत्र भी थे, विकल हृदय भी, उन्मत्त शब्द भी। जालपा के घर अगर वह शान न थी, वह दौलत न थी, तो वह दिखावा भी न था, वह ईर्ष्या भी न थी। रमा जवान था, रूपवान था, चाहे रसिक भी हो; पर रतन को अभी तक उसके विषय में संदेह करने का कोई अवसर न मिला था, और जालपा

जैसी सुंदरी के रहते हुए उसकी संभावना भी न थी। जीवन के बाजार में और सभी दुकानदारों की कुटिलता और जट्टूपन से तंग आकर उसने इस छोटी-सी दुकान का आश्रय लिया था; किंतु यह दुकान भी टूट गई। अब वह जीवन की सामग्रियां कहां बेसाहेगी, सच्चा माल कहां पावेगी?

एक दिन वह ग्रामोफोन लाई और शाम तक बजाती रही। दूसरे दिन ताजे मेवों की एक कटोरी लाकर रख गई। जब आती तो कोई सौगात लिए आती। अब तक वह जागेश्वरी से बहुत कम मिलती थी; पर अब बहुधा उसके पास आ बैठती और इधर-उधर की बातें करती। कभी-कभी उसके सिर में तेल डालती और बाल गूंथती। गोपी और विश्वम्भर से भी अब स्नेह हो गया। कभी-कभी दोनों को मोटर पर घुमाने ले जाती। स्कूल से आते ही दोनों उसके बंगले पर पहुंच जाते और कई लड़कों के साथ वहां खेलते। उनके रोने-चिल्लाने और झगड़ने में रतन को हार्दिक आनंद प्राप्त होता था। वकील साहब को भी अब रमा के घरवालों से कुछ आत्मीयता हो गई थी। बार-बार पूछते रहते थे—रमा बाबू का कोई खत आया? कुछ पता लगा? उन लोगों को कोई तकलीफ तो नहीं है?

एक दिन रतन आई, तो चेहरा उतरा हुआ था। आंखें भारी हो रही थीं। जालपा ने पूछा—आज जी अच्छा नहीं है क्या?

रतन ने कुंठित स्वर में कहा—जी तो अच्छा है; पर रात-भर जागना पड़ा। रात से उन्हें बड़ा कष्ट है। जाड़ों में उनको दमे का दौरा हो जाता है। बेचारे जाड़ों भर एमलशन और सनाटोजन और न जाने कौन-कौन से रस खाते रहते हैं; पर यह रोग गला नहीं छोड़ता। कलकत्ते में एक नामी वैद्य हैं। अबकी उन्हीं से इलाज कराने का इरादा है। कल चली जाऊंगी। मुझे ले तो नहीं जाना चाहते, कहते हैं, वहां बहुत कष्ट होगा, लेकिन मेरा जी नहीं मानता। कोई बोलने वाला तो होना चाहिए। वहां दो बार हो आई हूं, और जब-जब गई हूं, बीमार हो गई हूं। मुझे वहां जरा भी अच्छा नहीं लगता; लेकिन अपने आराम को देखूं या उनकी बीमारी को देखूं। बहन कभी-कभी ऐसा जी ऊब जाता है कि थोड़ी-सी संखिया खाकर सो रहूं। विधाता से इतना भी नहीं देखा जाता। अगर कोई मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें अच्छा कर दे, कि इस बीमारी की जड़ टूट जावे, तो मैं खुशी से दे दूंगी।

जालपा ने सशंक होकर कहा—यहां किसी वैद्य को नहीं बुलाया?

'यहां के वैद्यों को देख चुकी हूं, बहन! वैद्य-डॉक्टर सबको देख चुकी!'

'तो कब तक आओगी?'

'कुछ ठीक नहीं। उनकी बीमारी पर है। एक सप्ताह में आ जाऊं, महीने-दो महीने लग जायं, क्या ठीक है; मगर जब तक बीमारी की जड़ न टूट जायगी, न आऊंगी।'

विधि अंतरिक्ष में बैठी हंस रही थी। जालपा मन में मुस्कराई। जिस बीमारी की जड़ जवानी में न टूटी, बुढ़ापे में क्या टूटेगी; लेकिन इस सदिच्छा से सहानुभूति न रखना असंभव था। बोली—ईश्वर चाहेंगे, तो वह वहां से जल्द अच्छे होकर लौटेंगे, बहन!

'तुम भी चलतीं तो बड़ा आनंद आता।'

जालपा ने करुण भाव से कहा—क्या चलूं बहन, जाने भी पाऊं। यहां दिन-भर यह आशा लगी रहती है कि कोई खबर मिलेगी। वहां मेरा जी और घबड़ाया करेगा।

'मेरा दिल तो कहता है कि बाबूजी कलकत्ते में हैं।'

'तो जरा इधर-उधर खोजना। अगर कहीं पता मिले तो मुझे तुरंत खबर देना।'

'यह तुम्हारे कहने की बात नहीं है, जालपा।'

'यह मुझे मालूम है। ख़त तो बराबर भेजती रहोगी?'

'हां अवश्य, रोज नहीं तो अंतरे दिन जरूर लिखा करूंगी; मगर तुम भी जवाब देना।'

जालपा पान बनाने लगी। रतन उसके मुंह की ओर अपेक्षा के भाव से ताकती रही, मानो कुछ कहना चाहती है और संकोचवश नहीं कह सकती। जालपा ने पान देते समय उसके मन का भाव ताड़कर कहा—क्या है बहन, क्या कह रही हो?

रतन—कुछ नहीं, मेरे पास कुछ रुपये हैं, तुम रख लो। मेरे पास रहेंगे, तो खर्च हो जायंगे।

जालपा ने मुस्कराकर आपत्ति की—और जो मुझसे खर्च हो जायं?

रतन ने प्रफुल्ल मन से कहा—तुम्हारे ही तो हैं बहन, किसी गैर के तो नहीं हैं।

जालपा विचारों में डूबी हुई जमीन की तरफ ताकती रही। कुछ जवाब न दिया। रतन ने शिकवे के अंदाज से कहा—तुमने कुछ जवाब नहीं दिया बहन, मेरी समझ में नहीं आता, तुम मुझसे खिंची क्यों रहती हो। मैं चाहती हूं, हममें और तुममें जरा भी अंतर न रहे लेकिन तुम मुझसे दूर भागती हो। अगर मान लो मेरे सौ-पचास रुपये तुम्हीं से खर्च हो गए, तो क्या हुआ। बहनों में तो ऐसा कौड़ी-कौड़ी का हिसाब नहीं होता।

जालपा ने गंभीर होकर कहा—कुछ कहूं, बुरा तो न मानोगी?

'बुरा मानने की बात होगी तो जरूर बुरा मानूंगी।'

'मैं तुम्हारा दिल दुखाने के लिए नहीं कहती। संभव है, तुम्हें बुरी लगे। तुम अपने मन में सोचो, तुम्हारे इस बहनापे में दया का भाव मिला हुआ है या नहीं? तुम मेरी गरीबी पर तरस खाकर '

रतन ने लपककर दोनों हाथों से उसका मुंह बंद कर दिया और बोली—बस अब रहने दो। तुम चाहे जो खयाल करो; मगर यह भाव कभी मेरे मन में न था और न हो सकता है। मैं तो जानती हूं, अगर मुझे भूख लगी हो, तो मैं निस्संकोच होकर तुमसे कह दूंगी, बहन, मुझे कुछ खाने को दो, भूखी हूं।

जालपा ने उसी निर्ममता से कहा—इस समय तुम ऐसा कह सकती हो। तुम जानती हो कि किसी दूसरे समय तुम पूरियों या रोटियों के बदले मेवे खिला सकती हो, लेकिन ईश्वर न करे कोई ऐसा समय आए जब तुम्हारे घर में रोटी का टुकड़ा न हो, तो शायद तुम इतनी निस्संकोच न हो सको।

रतन ने दृढ़ता से कहा—मुझे उस दशा में भी तुमसे मांगने में संकोच न होगा। मैत्री परिस्थितियों का विचार नहीं करती। अगर यह विचार बना रहे, तो समझ लो मैत्री नहीं है। ऐसी बातें करके तुम मेरा द्वार बंद कर रही हो। मैंने मन में समझा था, तुम्हारे साथ जीवन के दिन काट दूंगी; लेकिन तुम अभी से चेतावनी दिए देती हो। अभागों को प्रेम की भिक्षा भी नहीं मिलती।

यह कहते-कहते रतन की आंखें सजल हो गईं। जालपा अपने को दु:खिनी समझ रही थी और दुखी जनों को निर्मम सत्य कहने की स्वाधीनता होती है। लेकिन रतन की मनोव्यथा उसकी व्यथा से कहीं विदारक थी। जालपा के पति के लौट आने की अब भी आशा थी। वह जवान है, उसके आते ही जालपा को ये बुरे दिन भूल जाएंगे। उसकी आशाओं का सूर्य फिर

उदय होगा। उसकी इच्छाएं फिर फूले-फलेंगी। भविष्य अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओं के साथ उसके सामने था—विशाल, उज्ज्वल, रमणीक। रतन का भविष्य क्या था? कुछ नहीं; शून्य, अंधकार!

जालपा आंखें पोंछकर उठ खड़ी हुई। बोली—पत्रों के जवाब देती रहना। रुपये देती जाओ।

रतन ने पर्स से नोटों का एक बंडल निकालकर उसके सामने रख दिया; पर उसके चेहरे पर प्रसन्नता न थी।

जालपा ने सरल भाव से कहा—क्या बुरा मान गईं।

रतन ने रूठे हुए शब्दों में कहा—बुरा मानकर तुम्हारा क्या कर लूंगी।

जालपा ने उसके गले में बांहें डाल दीं। अनुराग से उसका हृदय गद्‌गद हो गया। रतन से उसे इतना प्रेम कभी न हुआ था। वह उससे अब तक खिंचती थी, ईर्ष्या करती थी। आज उसे रतन का असली रूप दिखाई दिया।

यह सचमुच अभागिनी है और मुझसे बढ़कर।

एक क्षण बाद, रतन आंखों में आंसू और हंसी एक साथ भरे विदा हो गई।

## उनतीस

कलकत्ते में वकील साहब ने ठरहने का इंतजाम कर लिया था। कोई कष्ट न हुआ। रतन ने महराज और टीमल कहार को साथ ले लिया था। दोनों वकील साहब के पुराने नौकर थे और घर के-से आदमी हो गए थे। शहर के बाहर एक बंगला था। उसके तीन कमरे मिल गए। इससे ज्यादा जगह की वहां जरूरत भी न थी। हाते में तरह-तरह के फूल-पौधे लगे हुए थे। स्थान बहुत सुंदर मालूम होता था। पास-पड़ोस में और कितने ही बंगले थे। शहर के लोग उधर हवाखोरी के लिए जाया करते थे और हरे होकर लौटते थे, पर रतन को वह जगह फाड़े खाती थी। बीमार के साथ वाले भी बीमार होते हैं। उदासों के लिए स्वर्ग भी उदास है।

सफर ने वकील साहब को और भी शिथिल कर दिया था। दो-तीन दिन तो उनकी दशा उससे भी खराब रही, जैसी प्रयाग में थी, लेकिन दवा शुरू होने के दो-तीन दिन बाद वह कुछ संभलने लगे। रतन सुबह से आधी रात तक उनके पास ही कुर्सी डाले बैठी रहती। स्नान-भोजन की भी सुधि न रहती। वकील साहब चाहते थे कि यह यहां से हट जाय तो दिल खोलकर कराहें। उसे तस्कीन देने के लिए वह अपनी दशा को छिपाने की चेष्टा करते रहते थे। वह पूछती, आज कैसी तबीयत है? तो वह फीकी मुस्कराहट के साथ कहते—आज तो जी बहुत हल्का मालूम होता है। बेचारे सारी रात करवटें बदलकर काटते थे; पर रतन पूछती—रात नींद आई थी? तो कहते—हां, खूब सोया। रतन पथ्य सामने ले जाती, तो अरुचि होने पर भी खा लेते। रतन समझती, अब यह अच्छे हो रहे हैं। कविराज जी से भी वह यही समाचार कहती। वह भी अपने उपचार की सफलता पर प्रसन्न थे।

एक दिन वकील साहब ने रतन से कहा—मुझे डर है कि मुझे अच्छा होकर तुम्हारी दवा न करनी पड़े।

रतन ने प्रसन्न होकर कहा—इससे बढ़कर क्या बात होगी। मैं तो ईश्वर से मनाती हूं कि तुम्हारी बीमारी मुझे दे दें।

'शाम को घूम आया करो। अगर बीमार पड़ने की इच्छा हो, तो मेरे अच्छे हो जाने पर पड़ना।'

'कहां जाऊं, मेरा तो कहीं जाने को जी ही नहीं चाहता। मुझे यहीं सबसे अच्छा लगता है।'

वकील साहब को एकाएक रमानाथ का खयाल आ गया। बोले—जरा शहर के पार्कों में घूम-घाम कर देखो, शायद रमानाथ का पता चल जाय।

रतन को अपना वादा याद आ गया। रमा को पा जाने की आनंदमय आशा ने एक क्षण के लिए उसे चंचल कर दिया। कहीं वह पार्क में बैठे मिल जाएं, तो पूछूं कहिए बाबूजी, अब कहां भागकर जाइएगा? इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल उठी। बोली—जालपा से मैंने वादा तो किया था कि पता लगाऊंगी; पर यहां आकर भूल गई।

वकील साहब ने साग्रह कहा—आज चली जाओ। आज क्या, शाम को रोज घंटे-भर के लिए निकल जाया करो।

रतन ने चिंतित होकर कहा—लेकिन चिंता तो लगी रहेगी।

वकील साहब ने मुस्कराकर कहा—मेरी? मैं तो अच्छा हो रहा हूं।

रतन ने संदिग्ध भाव से कहा—अच्छा, चली जाऊंगी।

रतन को कल से वकील साहब के आश्वासन पर कुछ संदेह होने लगा था। उनकी चेष्टा से अच्छे होने का कोई लक्षण उसे न दिखाई देता था। इनका चेहरा क्यों दिन-दिन पीला पड़ता जाता है! इनकी आंखें क्यों हरदम बंद रहती हैं! देह क्यों दिन-दिन घुलती जाती है! महराज और कहार से वह यह शंका न कह सकती थी। कविराज से पूछते उसे संकोच होता था। अगर कहीं रमा मिल जाते, तो उनसे पूछती। वह इतने दिनों से यहां हैं, किसी दूसरे डॉक्टर को दिखाती। इन कविराज जी से उसे कुछ-कुछ निराशा हो चली थी।

जब रतन चली गई, तो वकील साहब ने टीमल से कहा—मुझे जरा उठाकर बिठा दो, टीमल। पड़े-पड़े कमर सीधी हो गई। एक प्याली चाय पिला दो। कई दिन हो गए, चाय की सूरत नहीं देखी। यह पथ्य मुझे मारे डालता है। दूध देखकर ज्वर चढ़ आता है, पर उनकी खातिर से पी लेता हूं! मुझे तो इन कविराज की दवा से कोई फायदा नहीं मालूम होता। तुम्हे क्या मालूम होता है?

टीमल ने वकील साहब को तकिए के सहारे बैठाकर कहा—बाबूजी सो देख लेव, यह तो मैं पहले ही कहने वाला था। सो देख लेव, बहूजी के डर के मारे नहीं कहता था।

वकील साहब ने कई मिनट चुप रहने के बाद कहा—मैं मौत से डरता नहीं, टीमल! बिल्कुल नहीं। मुझे स्वर्ग और नरक पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। अगर संस्कारों के अनुसार आदमी को जन्म लेना पड़ता है, तो मुझे विश्वास है, मेरा जन्म किसी अच्छे घर में होगा। फिर भी मरने को जी नहीं चाहता। सोचता हूं, मर गया तो क्या होगा।

टीमल ने कहा—बाबूजी सो देख लेव, आप ऐसी बातें न करें। भगवान् चाहेंगे, तो आप अच्छे हो जाएंगे। किसी दूसरे डाक्टर को बुलाऊं? आप लोग तो इंग्रेजी पढ़े हैं, सो देख लेव, कुछ मानते ही नहीं, मुझे तो कुछ और ही संदेह हो रहा है। कभी-कभी गंवारों की भी सुन लिया

करो। सो देख लेव, आप मानो चाहे न मानो, मैं तो एक सयाने को लाऊंगा। बंगाल के ओझे-सयाने मसहूर हैं।

वकील साहब ने मुंह फेर लिया। प्रेत-बाधा का वह हमेशा मजाक उड़ाया करते थे। कई ओझों को पीट चुके थे। उनका खयाल था कि यह प्रवंचना है, ढोंग है; लेकिन इस वक्त उनमें इतनी शक्ति भी न थी कि टीमल के इस प्रस्ताव का विरोध करते। मुंह फेर लिया।

महराज ने चाय लाकर कहा—सरकार, चाय लाया हूं।

वकील साहब ने चाय के प्याले को क्षुधित नेत्रों से देखकर कहा—ले जाओ, अब न पीऊंगा। उन्हें मालूम होगा, तो दुखी होंगी। क्यों महराज, जब से मैं आया हूं मेरा चेहरा कुछ हरा हुआ है?

महराज ने टीमल की ओर देखा। वह हमेशा दूसरों की राय देखकर राय दिया करते थे। खुद सोचने की शक्ति उनमें न थी। अगर टीमल ने कहा है, आप अच्छे हो रहे हैं, तो वह भी इसका समर्थन करेंगे। टीमल ने इसके विरुद्ध कहा है, तो उन्हें भी इसके विरुद्ध ही कहना चाहिए। टीमल ने उनके असमंजस को भांपकर कहा—हरा क्यों नहीं हुआ है, हां, जितना होना चाहिए उतना नहीं हुआ।

महराज बोले—हां, कुछ हरा जरूर हुआ है, मुदा बहुत कम।

वकील साहब ने कुछ जवाब नहीं दिया। दो-चार वाक्य बोलने के बाद वह शिथिल हो जाते थे और दस-पांच मिनट शांत अचेत पड़े रहते थे। कदाचित् उन्हें अपनी दशा का यथार्थ ज्ञान हो चुका था। उसके मुख पर, बुद्धि पर, मस्तिष्क पर मृत्यु की छाया पड़ने लगी थी। अगर कुछ आशा थी, तो इतनी ही कि शायद मन की दुर्बलता से उन्हें अपनी दशा इतनी हीन मालूम होती हो। उनका दम अब पहले से ज्यादा फूलने लगा था। कभी-कभी तो ऊपर की सांस ऊपर ही रह जाती थी। जान पड़ता था, बस अब प्राण निकला। भीषण प्राण-वेदना होने लगती थी। कौन जाने, कब यही अवरोध एक क्षण और बढ़कर जीवन का अंत कर दे।

सामने उद्यान में चांदनी कुहरे की चादर ओढ़े, जमीन पर पड़ी सिसक रही थी। फूल और पौधे मलिन मुख, सिर झुकाए, आशा और भय से विकल हो-होकर मानो उसके वक्ष पर हाथ रखते थे, उसकी शीतल देह को स्पर्श करते थे और आंसू की दो बूदें गिराकर फिर उसी भांति देखने लगते थे।

सहसा वकील साहब ने आंखें खोलीं। आंखों के दोनों कोनों में आंसू की बूदें मचल रही थीं।

क्षीण स्वर में बोले—टीमल ! क्या सिद्धू आए थे?

फिर इस प्रश्न पर आप ही लज्जित हो मुस्कराते हुए बोले—मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे सिद्धू आए हों।

फिर गहरी सांस लेकर चुप हो गए, और आंखें बंद कर लीं।

सिद्धू उस बेटे का नाम था, जो जवान होकर मर गया था। इस समय वकील साहब को बराबर उसी की याद आ रही थी। कभी उसका बालपन सामने आ जाता, कभी उसका मरना आगे दिखाई देने लगता—कितने स्पष्ट, कितने सजीव चित्र थे। उनकी स्मृति कभी इतनी मूर्तिमान, इतनी चित्रमय न थी।

कई मिनट के बाद उन्होंने फिर आंखें खोलीं और इधर-उधर खोई हुई आंखों से देखा।

उन्हें, अभी ऐसा जान पड़ता था कि मेरी माता आकर पूछ रही हैं, 'बेटा, तुम्हारा जी कैसा है?'

सहसा उन्होंने टीमल से कहा—यहां आओ। किसी वकील को बुला लाओ, जल्दी जाओ, नहीं वह घूमकर आती होंगी।

इतने में मोटर का हार्न सुनाई दिया और एक पल में मोटर आ पहुंची। वकील को बुलाने की बात उड़ गई।

वकील साहब ने प्रसन्न-मुख होकर पूछा—कहां-कहां गईं? कुछ उसका पता मिला?

रतन ने उनके माथे पर हाथ रखते हुए कहा—कई जगह देखा। कहीं न दिखाई दिए। इतने बड़े शहर में सड़कों का पता तो जल्दी चलता नहीं, वह भला क्या मिलेंगे। दवा खाने का समय तो आ गया न?

वकील साहब ने दबी जबान से कहा—लाओ, खा लूं।

रतन ने दवा निकाली और उन्हें उठाकर पिलाई। इस समय वह न जाने क्यों कुछ भयभीत-सी हो रही थी। एक अस्पष्ट, अज्ञात शंका उसके हृदय को दबाए हुए थी।

एकाएक उसने कहा—उन लोगों में से किसी को तार दे दूं?

वकील साहब ने प्रश्न की आंखों से देखा। फिर आप ही आप उसका आशय समझकर बोले—नहीं-नहीं, किसी को बुलाने की जरूरत नहीं। मैं अच्छा हो रहा हूं।

फिर एक क्षण के बाद सावधान होने की चेष्टा करके बोले—मैं चाहता हूं कि अपनी वसीयत लिखवा दूं।

जैसे एक शीतल, तीव्र बाण रतन के पैर से घुसकर सिर से निकल गया। मानो उसकी देह के सारे बंधन खुल गए, सारे अवयव बिखर गए, उसके मस्तिष्क के सारे परमाणु हवा में उड़ गए। मानो नीचे से धरती निकल गई, ऊपर से आकाश निकल गया और अब वह निराधार, निस्पंद, निर्जीव खड़ी है। अवरुद्ध, अश्रु-कंपित कंठ से बोली-घर से किसी को बुलाऊं? यहां किससे सलाह ली जाए? कोई भी तो अपना नहीं है।

'अपनों' के लिए इस समय रतन अधीर हो रही थी। कोई भी तो अपना होता, जिस पर वह विश्वास कर सकती, जिससे सलाह ले सकती। घर के लोग आ जाते, तो दौड़-धूप करके किसी दूसरे डाक्टर को बुलाते। वह अकेली क्या-क्या करे? आखिर भाई-बंद और किस दिन काम आवेंगे। संकट में ही अपने काम आते हैं। फिर यह क्यों कहते हैं कि किसी को मत बुलाओ।

वसीयत की बात फिर उसे याद आ गई। यह विचार क्यों इनके मन में आया? वैद्यजी ने कुछ कहा तो नहीं? क्या होने वाला है, भगवान्! यह शब्द अपने सारे संसर्गों के साथ उसके हृदय को विदीर्ण करने लगा। चिल्ला-चिल्लाकर रोने के लिए उसका मन विकल हो उठा। अपनी माता याद आई। उसके अंचल में मुंह छिपाकर रोने की आकांक्षा उसके मन में उत्पन्न हुई। उस स्नेहमय अंचल में रोकर उसकी बाल-आत्मा को कितना संतोष होता था। कितनी जल्द उसकी सारी मनोव्यथा शांत हो जाती थी। आह! यह आधार भी अब नहीं।

महराज ने अकार कहा—सरकार, भोजन तैयार है। थाली परसूं?

रतन ने उसकी ओर कठोर नेत्रों से देखा। वह बिना जवाब की अपेक्षा किए चुपके-से चला गया।

मगर एक ही क्षण में रतन को महराज पर दया आ गई। उसने कौन-सी बुराई की जो

भोजन के लिए पूछने आया। भोजन भी ऐसी चीज है, जिसे कोई छोड़ सके ! वह रसोई में जाकर महराज से बोली—तुम लोग खा लो, महराज ! मुझे आज भूख नहीं लगी है।

महराज ने आग्रह किया—दो ही फुलके खा लीजिए, सरकार !

रतन ठिठक गई। महराज के आग्रह में इतनी सहृदयता, इतनी संवेदना भरी हुई थी कि रतन को एक प्रकार की सांत्वना का अनुभव हुआ। यहां कोई अपना नहीं है, यह सोचने में उसे अपनी भूल प्रतीत हुई। महराज ने अब तक रतन को कठोर स्वामिनी के रूप में देखा था। वही स्वामिनी आज उसके सामने खड़ी मानो सहानुभूति की भिक्षा मांग रही थी। उसकी सारी सद्वृत्तियां उमड़ उठीं। रतन को उसके दुर्बल मुख पर अनुराग का तेज नजर आया।

उसने पूछा—क्यों महराज, बाबूजी को इस कविराज की दवा से कोई लाभ हो रहा है?

महराज ने डरते-डरते वही शब्द दुहरा दिए, जो आज वकील साहब से कहे थे—कुछ-कुछ तो हो रहा है, लेकिन जितना होना चाहिए उतना नहीं।

रतन ने अविश्वास के अंदाज से देखकर कहा—तुम भी मुझे धोखा देते हो, महराज !

महराज की आंखें डबडबा गईं। बोले—भगवान् सब अच्छा ही करेंगे बहूजी, घबड़ाने से क्या होगा। अपना तो कोई बस नहीं है।

रतन ने पूछा—यहां कोई ज्योतिषी न मिलेगा? जरा उससे पूछते। कुछ पूजा-पाठ भी करा लेने से अच्छा होता है।

महराज ने तुष्टि के भाव से कहा—यह तो मैं पहले ही कहने वाला था, बहूजी ! लेकिन बाबूजी का मिजाज तो जानती हो। इन बातों से वह कितना बिगड़ते हैं।

रतन ने दृढ़ता से कहा—सबेरे किसी को जरूर बुला लाना।

'सरकार चिढ़ेंगे !'

'मैं तो कहती हूं।'

यह कहती हुई वह कमरे में आई और रोशनी के सामने बैठकर जालपा को पत्र लिखने लगी—

'बहन, नहीं कह सकती, क्या होने वाला है। आज मुझे मालूम हुआ है कि मैं अब तक मीठे भ्रम में पड़ी हुई थी। बाबूजी अब तक मुझसे अपनी दशा छिपाते थे, मगर आज यह बात उनके काबू से बाहर हो गई। तुमसे क्या कहूं, आज वह वसीयत लिखने की चर्चा कर रहे थे। मैंने ही टाला। दिल घबड़ा रहा है बहन, जी चाहता है, थोड़ी-सी संखिया खाकर सो रहूं। विधाता को संसार दयालु, कृपालु, दीन-बंधु और जाने कौन-कौन-सी उपाधियां देता है। मैं कहती हूं, उससे निर्दयी, निर्मम, निष्ठुर कोई शत्रु भी नहीं हो सकता। पूर्वजन्म का संस्कार केवल मन को समझाने की चीज है। जिस दंड का हेतु ही हमें न मालूम हो, उस दंड का मूल्य ही क्या ! वह तो जबर्दस्त की लाठी है, जो आघात करने के लिए कोई कारण गढ़ लेती है। इस अंधेरे, निर्जन, कांटों से भरे हुए जीवन-मार्ग में मुझे केवल एक टिमटिमाता हुआ दीपक मिला था। मैं उसे अंचल में छिपाए, विधि को धन्यवाद देती हुई, गाती चली जाती थी; पर वह दीपक भी मुझसे छीना जा रहा है। इस अंधकार में मैं कहां जाऊंगी, कौन मेरा रोना सुनेगा, कौन मेरी बांह पकड़ेगा।'

'बहन, मुझे क्षमा करना। मुझे बाबूजी का पता लगाने का अवकाश नहीं मिला। आज कई पार्कों का चक्कर लगा आई; पर कहीं पता नहीं चला। कुछ अवसर मिला तो फिर जाऊंगी।'

'माताजी को मेरा प्रणाम कहना।'

पत्र लिखकर रतन बरामदे में आई। शीतल समीर के झोंके आ रहे थे। प्रकृति मानो रोग-शय्या पर पड़ी सिसक रही थी।

उसी वक्त वकील साहब की सांस वेग से चलने लगी।

# तीस

रात के तीन बज चुके थे। रतन आधी रात के बाद आरामकुर्सी पर लेटे ही लेटे झपकियां ले रही थी कि सहसा वकील साहब के गले का खर्राटा सुनकर चौंक पड़ी। उल्टी सांसें चल रही थीं। वह उनके सिरहाने चारपाई पर बैठ गई और उनका सिर उठाकर अपनी जांघ पर रख लिया। अभी न जाने कितनी रात बाकी है। मेज पर रखी हुई छोटी घड़ी की ओर देखा। अभी तीन बजे थे। सबेरा होने में चार घंटे की देर थी। कविराज कहीं नौ बजे आवेंगे ! यह सोचकर वह हताश हो गई। अभागिनी रात क्या अपना काला मुंह लेकर विदा न होगी ! मालूम होता है, एक युग हो गया !

कई मिनट के बाद वकील साहब की सांस रुकी। सारी देह पसीने में तर थी। हाथ से रतन को हट जाने का इशारा किया और तकिए पर सिर रखकर फिर आखें बद कर लीं।

एकाएक उन्होंने क्षीण स्वर में कहा—रतन, अब विदाई का समय आ गया। मेरे अपराध

उन्होंने दोनों हाथ जोड़ लिए और उसकी ओर दीन याचना की आंखों से देखा। कुछ कहना चाहते थे, पर मुंह से आवाज न निकली।

रतन ने चीखकर कहा—टीमल, महराज, क्या दोनों मर गए?

महराज ने आकर कहा—मैं सोया थोड़े ही था बहूजी, क्या बाबूजी ?

रतन ने डांटकर कहा—बको मत, जाकर कविराज को बुला लाओ, कहना अभी चलिए।

महराज ने तुरंत अपना पुराना ओवरकोट पहना, सोटा उठाया और चल दिया। रतन उठकर स्टोव जलाने लगी कि शायद सेंक से कुछ फायदा हो। उसकी सारी घबराहट, सारी दुर्बलता, सारा शोक मानो लुप्त हो गया। उसकी जगह एक प्रबल आत्मनिर्भरता का उदय हुआ। कठोर कर्त्तव्य ने उसके सारे अस्तित्व को सचेत कर दिया।

स्टोव जलाकर उसने रुई के गाले से छाती को सेंकना शुरू किया। कोई पंद्रह मिनट तक ताबड़तोड़ सेंकने के बाद वकील साहब की सांस कुछ थमी। आवाज काबू में हुई। रतन के दोनों हाथ अपने गालों पर रखकर बोले—तुम्हें बड़ी तकलीफ हो रही है, मुन्नी ! क्या जानता था, इतनी जल्द यह समय आ जाएगा। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, प्रिये ! ओह कितना बड़ा अन्याय ! मन की सारी लालसा मन में रह गई। मैंने तुम्हारे जीवन का सर्वनाश कर दिया—क्षमा करना।

यही अंतिम शब्द थे जो उनके मुख से निकले। यही जीवन का अंतिम सूत्र था, यही मोह का अंतिम बंधन था।

रतन ने द्वार की ओर देखा। अभी तक महराज का पता न था। हां, टीमल खड़ा था—और सामने अथाह अंधकार जैसे अपने जीवन की अंतिम वेदना से मूर्छित पड़ा था।

रतन ने कहा—टीमल, जरा पानी गरम करोगे?

टीमल ने वहीं खड़े-खड़े कहा—पानी गरम करके क्या करोगी बहूजी, गोदान करा दो। दो बूंद गंगाजल मुंह में डाल दो।

रतन ने पति की छाती पर हाथ रक्खा। छाती गरम थी। उसने फिर द्वार की ओर ताका। महराज न दिखाई दिए। वह अब भी सोच रही थी, कविराजजी आ जाते तो शायद इनकी हालत संभल जाती। पछता रही थी कि इन्हें यहां क्यों लाई? कदाचित् रास्ते की तकलीफ और जलवायु ने बीमारी को असाध्य कर दिया। यह भी पछतावा हो रहा था कि मैं संध्या समय क्यों घूमने चली गई। शायद उतनी ही देर में इन्हें ठंड लग गई। जीवन एक दीर्घ पश्चात्ताप के सिवा और क्या है !

पछतावे की एक-दो बात थी ! इस आठ साल के जीवन में मैंने पति को क्या आराम पहुंचाया? वह बारह बजे रात तक कानूनी पुस्तकें देखते रहते थे, मैं पड़ी सोती रहती थी। वह संध्या समय भी मुवक्किलों से मामले की बातें करते थे, मैं पार्क और सिनेमा की सैर करती थी, बाजारों में मटरगश्ती करती थी। मैंने इन्हें धनोपार्जन के एक यंत्र के सिवा और क्या समझा ! यह कितना चाहते थे कि मैं इनके साथ बैठूं और बातें करूं; पर मैं भागती फिरती थी। मैंने कभी इनके हृदय के समीप जाने की चेष्टा नहीं की, कभी प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा। अपने घर में दीपक न जलाकर दूसरों के उजाले घर का आनंद उठाती फिरी—मनोरंजन के सिवा मुझे और कुछ सूझता ही न था। विलास और मनोरंजन, यही मेरे जीवन के दो लक्ष्य थे। अपने जले हुए दिल को इस तरह शांत करके मैं संतुष्ट थी। खीर और मलाई की थाली क्यों न मुझे मिली, इस क्षोभ में मैंने अपनी रोटियों को लात मार दी।

आज रतन को उस प्रेम का पूर्ण परिचय मिला, जो इस विदा होने वाली आत्मा को उससे था—वह इस समय भी उसी की चिंता में मग्न थी। रतन के लिए जीवन में फिर भी कुछ आनंद था, कुछ रुचि थी, कुछ उत्साह था। इनके लिए जीवन में कौन-सा सुख था! न खाने-पीने का सुख, न मेले-तमाशे का शौक। जीवन क्या, एक दीर्घ तपस्या थी, जिसका मुख्य उद्देश्य कर्त्तव्य का पालन था? क्या रतन उनका जीवन सुखी न बना सकती थी? क्या एक क्षण के लिए कठोर कर्त्तव्य की चिंताओं से उन्हें मुक्त न कर सकती थी? कौन कह सकता है कि विराम और विश्राम से यह बुझने वाला दीपक कुछ दिन और न प्रकाशमान रहता। लेकिन उसने कभी अपने पति के प्रति अपना कर्त्तव्य ही न समझा। उसकी अंतरात्मा सदैव विद्रोह करती रही, केवल इसलिए कि इनसे मेरा संबंध क्यों हुआ? क्या उस विषय में सारा अपराध इन्हीं का था ! कौन कह सकता है कि दरिद्र माता-पिता ने मेरी और भी दुर्गति न की होती—जवान आदमी भी सब-के-सब क्या आदर्श ही होते हैं? उनमें भी तो व्यभिचारी, क्रोधी, शराबी सभी तरह के होते हैं। कौन कह सकता है, इस समय मैं किस दशा म होती। रतन का एक-एक रोआं इस समय उसका तिरस्कार कर रहा था। उसने पति के शीतल चरणों पर सिर झुका लिया और बिलख-बिलखकर रोने लगी। वह सारे कठोर भाव जो बराबर उसके मन में उठते रहते थे, वह सारे कटु वचन जो उसने जल-जलकर उन्हें कहे थे, इस समय सैकड़ों बिच्छुओं के समान उसे डंक मार रहे थे। हाय ! मेरा यह व्यवहार उस प्राणी के साथ था, जो सागर की भाँति गंभीर था।

इस हृदय में कितनी कोमलता थी, कितनी उदारता ! मैं एक बीड़ा पान दे देती थी, तो कितना प्रसन्न हो जाते थे। जरा हंसकर बोल देती थी, तो कितने तृप्त हो जाते थे, पर मुझसे इतना भी न होता था। इन बातों को याद कर-करके उसका हृदय फटा जाता था। उन चरणों पर सिर रक्खे हुए उसे प्रबल आकांक्षा हो रही थी कि मेरे प्राण इसी क्षण निकल जायें। उन चरणों को मस्तक से स्पर्श करके उसके हृदय में कितना अनुराग उमड़ा आता था, मानो एक युग की संचित निधि को वह आज ही, इसी क्षण, लुटा देगी। मृत्यु की दिव्य ज्योति के सम्मुख उसके अंदर का सारा मालिन्य, सारी दुर्भावना, सारा विद्रोह मिट गया था।

वकील साहब की आंखें खुली हुई थीं; पर मुख पर किसी भाव का चिह्न न था। रतन की विह्लता भी अब उनकी बुझती हुई चेतना को प्रदीप्त न कर सकती थी। हर्ष और शोक के बंधन से वह मुक्त हो गए थे, कोई रोए तो गम नहीं, हंसे तो खुशी नहीं।

टीमल ने आचमनी में गंगाजल लेकर उनके मुंह में डाल दिया। आज उन्होंने कुछ बाधा न दी। वह जो पाखंडों और रूढ़ियों का शत्रु था, इस समय शांत हो गया था, इसलिए नहीं कि उसमें धार्मिक विश्वास का उदय हो गया था, बल्कि इसलिए कि उसमें अब कोई इच्छा न थी। इतनी ही उदासीनता से वह विष का घूंट पी जाता।

मानव-जीवन की सबसे महान् घटना कितनी शांति के साथ घटित हो जाती है। वह विश्व का एक महान् अंग, वह महत्वाकांक्षाओं का प्रचंड सागर, वह उद्योग का अनंत भांडार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दु:ख का लीला-क्षेत्र, वह बुद्धि और बल की रंगभूमि न जाने कब और कहां लीन हो जाती है, किसी को खबर नहीं होती। एक हिचकी भी नहीं, एक उच्छ्‌वास भी नहीं, एक आह भी नहीं निकलती ! सागर की हिलोरों का कहां अंत होता है, कौन बता सकता है। ध्वनि कहां वायु-मग्न हो जाती है, कौन जानता है। मानवीय जीवन उस हिलोर के सिवा, उस ध्वनि के सिवा और क्या है ! उसका अवसान भी उतना ही शांत, उतना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य है। भूतों के भक्त पूछते हैं, क्या वस्तु निकल गई? कोई विज्ञान का उपासक कहता है, एक क्षीण ज्योति निकल जाती है। कपोल-विज्ञान के पुजारी कहते हैं, आंखों से प्राण निकले, मुंह से निकले, ब्रह्मांड से निकले। कोई उनसे पूछे, हिलोर लय होते समय क्या चमक उठती है? ध्वनि लीन होते समय क्या मूर्तिमान हो जाती है? यह उस अनंत यात्रा का एक विश्राम मात्र है, जहां यात्रा का अंत नहीं, नया उत्थान होता है।

कितना महान् परिवर्तन ! वह जो मच्छर के डंक को सहन न कर सकता था, अब उसे चाहे मिट्टी में दबा दो, चाहे अग्नि-चिता पर रख दो, उसके माथे पर बल तक न पड़ेगा।

टीमल ने वकील साहब के मुख की ओर देखकर कहा—बहूजी, आइए खाट से उतार दें। मालिक चले गए !

यह कहकर वह भूमि पर बैठ गया और दोनों आंखों पर हाथ रखकर फूट-फूटकर रोने लगा। आज तीस वर्ष का साथ छूट गया। जिसने कभी आधी बात नहीं कही, कभी तू करके नहीं पुकारा, वह मालिक अब उसे छोड़े चला जा रहा था।

रतन अभी तक कविराज की बाट जोह रही थी। टीमल के मुख से यह शब्द सुनकर उसे धक्का-सा लगा। उसने उठकर पति की छाती पर हाथ रक्खा। साठ वर्ष तक अविश्राम गति से चलने के बाद वह अब विश्राम कर रही थी। फिर उसे माथे पर हाथ रखने की हिम्मत न पड़ी। उस देह को स्पर्श करते हुए, उस मरे हुए मुख की ओर ताकते हुए, उसे ऐसा विराग हो रहा था,

जो ग्लानि से मिलता था। अभी जिन चरणों पर सिर रखकर वह रोई थी, उसे छूते हुए उसकी उंगलियां कटी-सी जाती थीं। जीवन-सूत्र इतना कोमल है, उसने कभी न समझा था। मौत का खयाल कभी उसके मन में न आया था। उस मौत ने आंखों के सामने उसे लूट लिया !

एक क्षण के बाद टीमल ने कहा—बहूजी, अब क्या देखती हो, खाट के नीचे उतार दो। जो होना था हो गया।

उसने पैर पकड़ा, रतन ने सिर पकड़ा और दोनों ने शव को नीचे लिटा दिया और वहीं जमीन पर बैठकर रतन रोने लगी, इसलिए नहीं कि संसार में अब उसके लिए कोई अवलंब न था, बल्कि इसलिए कि वह उसके साथ अपने कर्त्तव्य को पूरा न कर सकी।

उसी वक्त मोटर की आवाज आई और कविराजजी ने पदार्पण किया।

कदाचित् अब भी रतन के हृदय में कहीं आशा की कोई बुझती हुई चिनगारी पड़ी हुई थी ! उसने तुरंत आंखें पोंछ डालीं, सिर का अंचल संभाल लिया, उलझे हुए केश समेट लिए और खड़ी होकर द्वार की ओर देखने लगी। प्रभात ने आकाश को अपनी सुनहली किरणों से रंजित कर दिया था। क्या इस आत्मा के नव-जीवन का यही प्रभात था।

## इकतीस

उसी दिन शव काशी लाया गया। यहीं उसकी दाह-क्रिया हुई। वकील साहब के एक भतीजे मालवे में रहते थे। उन्हें तार देकर बुला लिया गया। दाह-क्रिया उन्होंने की। रतन को चिता के दृश्य की कल्पना ही से रोमांच होता था। वहां पहुंचकर शायद वह बेहोश हो जाती।

जालपा आजकल प्राय: सारे दिन उसी के साथ रहती। शोकातुर रतन को न घर-बार की सुधि थी, न खाने-पीने की। नित्य ही कोई-न-कोई ऐसी बात याद आ जाती जिस पर वह घंटों रोती। पति के साथ उसका जो धर्म था, उसके एक अंश का भी उसने पालन किया होता, तो उसे बोध होता। अपनी कर्त्तव्यहीनता, अपनी निष्ठुरता, अपनी शृंगार-लोलुपता की चर्चा करके वह इतना रोती कि हिचकियां बंध जातीं। वकील साहब के सद्गुणों की चर्चा करके ही वह अपनी आत्मा को शांति देती थी। जब तक जीवन के द्वार पर एक रक्षक बैठा हुआ था, उसे कुत्ते या बिल्ली या चोर-चकार की चिंता न थी; लेकिन अब द्वार पर कोई रक्षक न था, इसलिए वह सजग रहती थी—पति का गुणगान किया करती। जीवन का निर्वाह कैसे होगा, नौकरों-चाकरों में किन-किन को जवाब देना होगा, घर का कौन-कौन-सा खर्च कम करना होगा, इन प्रश्नों के विषय में दोनों में कोई बात न होती। मानो यह चिंता मृत आत्मा के प्रति अभक्ति होगी। भोजन करना, साफ वस्त्र पहनना और मन को कुछ पढ़कर बहलाना भी उसे अनुचित जान पड़ता था। श्राद्ध के दिन उसने अपने सारे वस्त्र और आभूषण महापात्र को दान कर दिए। इन्हें लेकर अब वह क्या करेगी? इनका व्यवहार करके क्या वह अपने जीवन को कलंकित करेगी ! इसके विरुद्ध पति की छोटी से छोटी वस्तु को भी स्मृति-चिह्न समझकर वह देखती-भालती रहती थी। उसका स्वभाव इतना कोमल हो गया था कि कितनी ही बड़ी हानि हो जाय, उसे क्रोध न आता था। टीमल के हाथ से चाय का सेट छूटकर गिर पड़ा; पर रतन के माथे पर बल तक न

आया। पहले एक दवात टूट जाने पर इसी टीमल को उसने बुरी डांट बताई थी; निकाले देती थी; पर आज उससे कई गुने नुकसान पर उसने जबान तक न खोली। कठोर भाव उसके हृदय में आते हुए मानो डरते थे कि कहीं आघात न पहुंचे या शायद पति-शोक और पति-गुणगान के सिवा और किसी भाव या विचार को मन में लाना वह पाप समझती थी।

वकील साहब के भतीजे का नाम था मणिभूषण। बड़ा ही मिलनसार, हंसमुख, कार्य-कुशल। इसी एक महीने में उसने अपने सैकड़ों मित्र बना लिए। शहर में जिन-जिन वकीलों और रईसों से वकील साहब का परिचय था, उन सबसे उसने ऐसा मेल-जोल बढ़ाया, ऐसी बेतकल्लुफी पैदा की कि रतन को खबर नहीं और उसने बैंक का लेन-देन अपने नाम से शुरू कर दिया। इलाहाबाद बैंक में वकील साहब के बीस हजार रुपये जमा थे। उस पर तो उसने कब्जा कर ही लिया, मकानों के किराए भी वसूल करने लगा। गांवों की तहसील भी खुद ही शुरू कर दी, मानो रतन से कोई मतलब नहीं है।

एक दिन टीमल ने आकर रतन से कहा—बहूजी, जाने वाला तो चला गया, अब घर-द्वार की भी कुछ खबर लीजिए। मैंने सुना, भैयाजी ने बैंक का सब रुपया अपने नाम करा लिया।

रतन ने उसकी ओर ऐसे कठोर कुपित नेत्रों से देखा कि उसे फिर कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। उस दिन शाम को मणिभूषण ने टीमल को निकाल दिया—चोरी का इल्जाम लगाकर निकाला जिससे रतन कुछ कह भी न सके।

अब केवल महराज रह गए। उन्हें मणिभूषण ने भंग पिला-पिलाकर ऐसा मिलाया कि वह उन्हीं का दम भरने लगे। महरी से कहते, बाबूजी का बड़ा रईसाना मिजाज है। कोई सौदा लाओ, कभी नहीं पूछते, कितने का लाए। बड़ों के घर में बड़े ही होते हैं। बहूजी बाल की खाल निकाला करती थीं; यह बेचारे कुछ नहीं बोलते। महरी का मुंह पहले ही सी दिया गया था। उसके अधेड़ यौवन ने नए मालिक की रसिकता को चंचल कर दिया था। वह एक न एक बहाने से बाहर की बैठक में ही मंडलाया करती। रतन को जरा भी खबर न थी, किस तरह उसके लिए व्यूह रचा जा रहा है।

एक दिन मणिभूषण ने रतन से कहा—काकीजी, अब तो मुझे यहां रहना व्यर्थ मालूम होता है। मैं सोचता हूं, अब आपको लेकर घर चला जाऊं। वहां आपकी बहू आपकी सेवा करेगी; बाल-बच्चों में आपका जी बहल जायगा और खर्च भी कम हो जाएगा। आप कहें तो यह बंगला बेच दिया जाय। अच्छे दाम मिल जायंगे।

रतन इस तरह चौंकी, मानो उसकी मूर्छा भंग हो गई हो, मानो किसी ने उसे झंझोड़कर जगा दिया हो। सकपकाई हुई आंखों से उसकी ओर देखकर बोली—क्या मुझसे कुछ कह रहे हो?

मणिभूषण—जी हां, कह रहा था कि अब हम लोगों का यहां रहना व्यर्थ है। आपको लेकर चला जाऊं, तो कैसा हो?

रतन ने उदासीनता से कहा—हां, अच्छा तो होगा।

मणिभूषण—काकाजी ने कोई वसीयतनामा लिखा हो, तो लाइए देखूं। उनकी इच्छाओं के आगे सिर झुकाना हमारा धर्म है।

रतन ने उसी भांति आकाश पर बैठे हुए, जैसे संसार की बातों से अब उसे कोई सरोकार ही न रहा हो, जवाब दिया—वसीयत तो नहीं लिखी। और क्या जरूरत थी?

मणिभूषण ने फिर पूछा—शायद कहीं लिखकर रख गए हों?

रतन—मुझे तो कुछ मालूम नहीं। कभी जिक्र नहीं किया।

मणिभूषण ने मन में प्रसन्न होकर कहा—मेरी इच्छा है कि उनकी कोई यादगार बनवा दी जाय।

रतन ने उत्सुकता से कहा—हां-हां, मैं भी चाहती हूं।

मणिभूषण—गांव की आमदनी कोई तीन हजार साल की है, यह आपको मालूम है। इतना ही उनका वार्षिक दान होता था। मैंने उनके हिसाब की किताब देखी है। दो सौ ढाई-सौ से किसी महीने में कम नहीं है। मेरी सलाह है कि वह सब ज्यों-का-त्यों बना रहे।

रतन ने प्रसन्न होकर कहा—हां, और क्या।

मणिभूषण—तो गांव की आमदनी तो धर्मार्थ पर अर्पण कर दी जाए। मकानों का किराया कोई दो सौ रुपये महीना है। इससे उनके नाम पर एक छोटी-सी संस्कृत पाठशाला खोल दी जाए।

रतन—बहुत अच्छा होगा।

मणिभूषण—और यह बंगला बेच दिया जाए। इस रुपये को बैंक में रख दिया जाय।

रतन—बहुत अच्छा होगा। मुझे रुपये-पैसे की अब क्या जरूरत है।

मणिभूषण—आपकी सेवा के लिए तो हम सब हाजिर हैं। मोटर भी अलग कर दी जाय। अभी से यह फिक्र की जाएगी, तब जाकर कहीं। दो-तीन महीने में फुरसत मिलेगी।

रतन ने लापरवाही से कहा—अभी जल्दी क्या है। कुछ रुपये बैंक में तो हैं।

मणिभूषण—बैंक में कुछ रुपये थे, मगर महीने भर से खर्च भी तो हो रहे हैं। हजार-पांच सौ पड़े होंगे। यहां तो रुपये जैसे हवा में उड़ जाते हैं। मुझसे तो इस शहर में एक महीना भी न रहा जाय। मोटर को तो जल्द ही निकाल देना चाहिए।

रतन ने इसके जवाब में भी यही कह दिया—अच्छा तो होगा। वह उस मानसिक दुर्बलता की दशा में थी, जब मनुष्य को छोटे-छोटे काम भी असूझ मालूम होने लगते हैं। मणिभूषण की कार्य-कुशलता ने एक प्रकार से उसे पराभूत कर दिया था। इस समय जो उसके साथ थोड़ी-सी भी सहानुभूति दिखा देता, उसी को वह अपना शुभचिंतक समझने लगती। शोक और मनस्ताप ने उसके मन को इतना कोमल और नर्म बना दिया था कि उस पर किसी की भी छाप पड़ सकती थी। उसकी सारी मलिनता और भिन्नता मानो भस्म हो गई थी; वह सभी को अपना समझती थी। उसे किसी पर संदेह न था, किसी से शंका न थी। कदाचित् उसके सामने कोई चोर भी उसकी संपत्ति का अपहरण करता तो वह शोर न मचाती।

## बत्तीस

षोड़शी के बाद से जालपा ने रतन के घर आना-जाना कम कर दिया था। केवल एक बार घंटे-दो घंटे के लिए चली जाया करती थी। इधर कई दिनों से मुंशी दयानाथ को ज्वर आने लगा था। उन्हें ज्वर में छोड़कर कैसे जाती। मुंशीजी को जरा भी ज्वर आता, तो वह बक-झक

करने लगते थे। कभी गाते, कभी रोते, कभी यमदूतों को अपने सामने नाचते देखते। उनका जी चाहता कि सारा घर मेरे पास बैठा रहे, संबंधियों को भी बुला लिया जाय, जिसमें वह सबसे अंतिम भेंट कर लें। क्योंकि इस बीमारी से बचने की उन्हें आशा न थी। यमराज स्वयं उनके सामने विमान लिए खड़े थे। जागेश्वरी और सब कुछ कर सकती थी, उनकी बक-झक न सुन सकती थी। ज्योंही वह रोने लगते, वह कमरे से निकल जाती। उसे भूत-बाधा का भ्रम होता था।

मुंशीजी के कमरें में कई समाचार-पत्रों के फाइल थे। यही उन्हें एक व्यसन था। जालपा का जी वहां बैठे-बैठे घबड़ाने लगता, तो इन फाइलों को उलट-पलटकर देखने लगती। एक दिन उसने एक पुराने पत्र में शतरंज का एक नक्शा देखा, जिसे हल कर देने के लिए किसी सज्जन ने पुरस्कार भी रक्खा था। उसे खयाल आया कि जिस ताक पर रमानाथ की बिसात और मुहरे रक्खे हुए हैं उस पर एक किताब में कई नक्शे भी दिए हुए हैं। वह तुरंत दौड़ी हुई ऊपर गई और वह कापी उठा लाई। यह नक्शा उस कापी में मौजूद था, और नक्शा ही न था, उसका हल भी दिया हुआ था। जालपा के मन में सहसा यह विचार चमक पड़ा, इस नक्शे को किसी पत्र म छपा दूं तो कैसा हो ! शायद उनकी निगाह पड़ जाय। यह नक्शा इतना सरल तो नहीं है कि आसानी से हल हो जाय। इस नगर में जब कोई उनका सानी नहीं है, तो ऐसे लोगों की सख्या बहुत नहीं हो सकती, जो यह नक्शा हल कर सकें। कुछ भी हो, जब उन्होंने यह नक्शा हल किया है, तो इसे देखते ही फिर हल कर लेंगे। जो लोग पहली बार देखेंगे, उन्हें दो-एक दिन सोचने में लग जायंगे। मैं लिख दूंगी कि जो सबसे पहले हल कर ले, उसी को पुरस्कार दिया जाय। जुआ तो है ही। उन्हें रुपये न भी मिलें, तो भी इतना तो संभव है ही कि हल करने वाला में उनका नाम भी हो। कुछ पता लग जायगा। कुछ भी न हो, तो रुपये ही तो जायंगे। दस रुपये का पुरस्कार रख दूं। पुरस्कार कम होगा, तो कोई बड़ा खिलाड़ी इधर ध्यान न देगा। यह बात भी रमा के हित की ही होगी।

इसी उधेड़-बुन में वह आज रतन से न मिल सकी। रतन दिन-भर तो उसकी राह देखती रही। जब वह शाम को भी न गई, तो उससे न रहा गया। आज वह पति-शोक के बाद पहली बार घर से निकली। कहीं रौनक न थी, कहीं जीवन न था, मानो सारा नगर शोक मना रहा है। उसे तेज मोटर चलाने की धुन थी, पर आज वह तांगे से भी कम जा रही थी। एक वृद्धा को सड़क के किनारे बैठे देखकर उसने मोटर रोक दिया और उसे चार आने दे दिए। कुछ आगे और बढी, तो दो कांस्टेबल एक कैदी को लिए जा रहे थे। उसने मोटर रोकर एक कांस्टेबल को बुलाया और उसे एक रुपया देकर कहा—इस कैदी को मिठाई खिला देना। कांस्टेबल ने सलाम करके रुपया ले लिया। दिल में खुश हुआ, आज किसी भाग्यवान् का मुंह देखकर उठा था।

जालपा ने उसे देखते ही कहा—क्षमा करना बहन, आज मैं न आ सकी। दादाजी को कई दिन से ज्वर आ रहा है।

रतन ने तुरंत मुंशीजी के कमरे की ओर कदम उठाया और पूछा—यहीं हैं न? तुमने मुझसे न कहा।

मुंशीजी का ज्वर इस समय कुछ उतरा हुआ था। रतन को देखते ही बोले—बड़ा दु:ख

हुआ देवीजी, मगर यह तो संसार है। आज एक की बारी है, कल दूसरे की बारी है। यही चल-चलाव लगा हुआ है। अब मैं भी चला। नहीं बच सकता। बड़ी प्यास है, जैसे छाती में कोई भट्ठी जल रही हो। फुंका जाता हूं। कोई अपना नहीं होता। बाईजी, संसार के नाते सब स्वार्थ के नाते हैं। आदमी अकेला हाथ पसारे एक दिन चला जाता है। हाय-हाय ! लड़का था वह भी हाथ से निकल गया ! न जाने कहां गया। आज होता, तो एक पानी देने वाला तो होता। यह दो लौंडे हैं, इन्हें कोई फिक्र ही नहीं, मैं मर जाऊं या जी जाऊं। इन्हें तीन दफे खाने को चाहिए, तीन दफे पानी पीने को। बस और किसी काम के नहीं। यहां बैठते दोनों का दम घुटता है। क्या करूं। अबकी न बचूंगा।

रतन ने तस्कीन दी—यह मलेरिया है, दो-चार दिन में आप अच्छे हो जायंगे। घबड़ाने की कोई बात नहीं।

मुंशीजी ने दीन नेत्रों से देखकर कहा—बैठ जाइए बहूजी, आप कहती हैं, आपका आशीर्वाद है तो शायद बच जाऊं, लेकिन मुझे तो आशा नहीं है। मैं भी ताल ठोंके यमराज से लड़ने को तैयार बैठा हूं। अब उनके घर मेहमानी खाऊंगा। अब कहां जाते हैं बचकर बचा ! ऐसा-ऐसा ग्गेदं. कि वह भी याद करें। लोग कहते हैं, वहां भी आत्माएं इसी तरह रहती हैं। इसी तरह वहां भी कचहरियां हैं, हाकिम हैं, राजा हैं, रंक हैं। व्याख्यान होते हैं, समाचार-पत्र छपते हैं। फिर क्या चिंता है। वहां भी अहलमद हो जाऊंगा। मजे से अखबार पढ़ा करूंगा।

रतन को ऐसी हंसी छूटी कि वहां खड़ी न रह सकी। मुंशीजी विनोद के भाव से वे बातें नहीं कर रहे थे। उनके चेहरे पर गंभीर विचार की रेखा थी। आज डेढ़-दो महीने के बाद रतन हंसी, और इस असामयिक हंसी को छिपाने के लिए कमरे से निकल आई। उसके साथ ही जालपा भी बाहर आ गई।

रतन ने अपराधी नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा—दादाजी ने मन में क्या समझा होगा। सोचते होंगे, मैं तो जान से मर रहा हूं और इसे हंसी सूझती है। अब वहां न जाऊंगी, नहीं ऐसी ही कोई बात फिर कहेंगे, तो मैं बिना हंसे न रह सकूंगी। देखो तो आज कितनी बे-मौका हंसी आई है।

वह अपने मन को इस उच्छृंखलता के लिए धिक्कारने लगी। जालपा ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा—मुझे भी अक्सर इनकी बातों पर हंसी आ जाती है, बहन ! इस वक्त तो इनका ज्वर कुछ हल्का है। जब जोर का ज्वर होता है तब तो यह और भी ऊल-जलूल बकने लगते हैं। उस वक्त हंसी रोकनी मुश्किल हो जाती है। आज सबेरे कहने लगे—मेरा पेट भक हो गया—मेरा पेट भक हो गया। इसकी रट लगा दी। इसका आशय क्या था, न मैं समझ सकी, न अम्मां समझ सकीं; पर वह बराबर यही रटे जाते थे—पेट भक हो गया ! पेट भक हो गया ! आओ कमरे में चलें।

रतन—मेरे साथ न चलोगी?

जालपा—आज तो न चल सकूंगी, बहन।

'कल आओगी?'

'कह नहीं सकती। दादा का जी कुछ हल्का रहा, तो आऊंगी।'

'नहीं भाई, जरूर आना। तुमसे एक सलाह करनी है।'

'क्या सलाह है?'

'मन्नी कहते हैं, यहां अब रहकर क्या करना है, घर चलो। बंगले को बेच देने को कहते हैं।'

जालपा ने एकाएक ठिठककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—यह तो तुमने बुरी खबर सुनाई, बहन ! मुझे इस दशा में तुम छोड़कर चली जाओगी? मैं न जाने दूंगी ! मन्नी से कह दो, बंगला बेच दें; मगर जब तक उनका कुछ पता न चल जायगा। मैं तुम्हें न छोड़ूंगी। तुम कुल एक हफ्ते बाहर रहीं, मुझे एक-एक पल पहाड़ हो गया। मैं न जानती थी कि मुझे तुमसे इतना प्रेम हो गया है। अब तो शायद मैं मर ही जाऊं। नहीं बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, अभी जाने का नाम न लेना।

रतन की भी आंखें भर आईं। बोली—मुझसे भी वहां न रहा जायगा, सच कहती हूं! मैं तो कह दूंगी, मुझे नहीं जाना है। जालपा उसका हाथ पकड़े हुए ऊपर अपने कमरे में ले गई और उसके गले में हाथ डालकर बोली—कसम खाओ कि मुझे छोड़कर न जाओगी।

रतन ने उसे अंकवार में लेकर कहा—लो, कसम खाती हूं, न जाऊंगी। चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। मेरे लिए वहां क्या रक्खा है। बंगला भी क्यों बेचूं। दो-ढाई सौ मकानों का किराया है। हम दोनों के गुजर के लिए काफी है। मैं आज ही मन्नी से कह दूंगी—मैं न जाऊंगी।

सहसा फर्श पर शतरंज के मुहरे और नक्शे देखकर उसने पूछा—यह शतरंज किसके साथ खेल रही थीं?

जालपा ने शतरंज के नक्शे पर अपने भाग्य का पांसा फेंकने की जो बात सोची थी, वह सब उससे कह सुनाई। मन में डर रही थी कि यह कहीं इस प्रस्ताव को व्यर्थ न समझे, पागलपन न खयाल करे; लेकिन रतन सुनते ही बाग-बाग हो गई। बोली—दस रुपये तो बहुत कम पुरस्कार है। पचास रुपये कर दो। रुपये मैं देती हूं।

जालपा ने शंका की—लेकिन इतने पुरस्कार के लोभ से कहीं अच्छे शतरंजबाजों ने मैदान में कदम रक्खा तो?

रतन ने दृढ़ता से कहा—कोई हरज नहीं। बाबूजी की निगाह पड़ गई, तो वह इसे जरूर हल कर लेंगे और मुझे आशा है कि सबसे पहले उन्हीं का नाम आवेगा। कुछ न होगा; तो पता तो लग ही जायगा। अखबार के दफ्तर में तो उनका पता आ ही जायगा। तुमने बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला है। मेरा मन कहता है, इसका अच्छा फल होगा. मैं अब मन की प्रेरणा की कायल हो गई हूं। जब मैं इन्हें लेकर कलकत्ते चली थी, उस वक्त मेरा मन कह रहा था, यहां जाना अच्छा न होगा।

जालपा—तो तुम्हें आशा है?

'पूरी ! मैं कल सबेरे रुपये लेकर आऊंगी।'

'तो मैं आज खत लिख रक्खूंगी। किसके पास भेजूं? वहां का कोई प्रसिद्ध पत्र होना चाहिए।'

'वहां तो 'प्रजा-मित्र' की बड़ी चर्चा थी। पुस्तकालयों में अक्सर लोग उसी को पढ़ते नजर आते थे।'

'तो 'प्रजा-मित्र' ही को लिखूंगी; लेकिन रुपये हड़प कर जाय और नक्शा न छापे तो क्या हो?'

'होगा क्या, पचास रुपये ही तो ले जाएगा। दमड़ी की हँड़िया खोकर कुत्ते की जात तो पहचान ली जायगी; लेकिन ऐसा हो नहीं सकता। जो लोग देशहित के लिए जेल जाते हैं, तरह-तरह की धौंस सहते हैं, वे इतने नीच नहीं हो सकते। मेरे साथ आध घंटे के लिए चलो तो तुम्हें इसी वक्त रुपये दे दूं।'

जालपा ने नीमराजी होकर कहा—इस वक्त कहां चलूं। कल ही आऊंगी।

उसी वक्त मुंशीजी पुकार उठे—बहू! बहू!

जालपा तो लपकी हुई उनके कमरे की ओर चली। रतन बाहर जा रही थी कि जागेश्वरी पंखा लिए अपने को झलती हुई दिखाई पड़ गईं। रतन ने पूछा—तुम्हें गर्मी लग रही है अम्मांजी? मैं तो ठंड के मारे कांप रही हूं। अरे! तुम्हारे पांवों में यह क्या उजला-उजला लगा हुआ है? क्या आटा पीस रही थीं?

जागेश्वरी ने लज्जित होकर कहा—हां, वैद्यजी ने इन्हें हाथ के आटे की रोटी खाने को कहा है। बाजार में हाथ का आटा कहां मयस्सर? मुहल्ले में कोई पिसनहारी नहीं मिलती। मजूरिनें तक चक्की से आटा पिसवा लेती हैं। मैं तो एक आना सेर देने को राजी हूं; पर कोई मिलती ही नहीं।

रतन ने अचंभे से कहा—तुमसे चक्की चल जाती है?

जागेश्वरी ने झेंप से मुस्कराकर कहा—कौन बहुत था। पाव भर तो दो दिन के लिए हो जाता है। खाते नहीं एक कौर भी। बहू पीसने जा रही थी, लेकिन फिर मुझे उनके पास बैठना पड़ता। मुझे रात-भर चक्की पीसना गौं है, उनके पास घड़ी भर बैठना गौं नहीं।

रतन जाकर जांत के पास एक मिनट खड़ी रही, फिर मुस्कराकर माची पर बैठ गई और बोली—तुमसे तो अब जांत न चलता होगा, मांजी! लाओ थोड़ा-सा गेहूं मुझे दो, देखूं तो।

जागेश्वरी ने कानों पर हाथ रखकर कहा—अरे नहीं बहू, तुम क्या पीसोगी! चलो यहां से।

रतन ने प्रमाण दिया—मैंने बहुत दिनों तक पीसा है, मांजी। जब मैं अपने घर थी, तो रोज पीसती थी। मेरी अम्मां, लाओ थोड़ा-सा गेहूं।

'हाथ दुखने लगेगा। छाले पड़ जाएंगे।'

'कुछ नहीं होगा मांजी, आप गेहूं तो लाइए।'

जागेश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर उठाने की कोशिश करके कहा—गेहूं घर में नहीं हैं। अब इस वक्त बाजार से कौन लावे।

'अच्छा चलिए, मैं भंडारे में देखूं। गेहूं होगा कैसे नहीं।'

रसोई की बगल वाली कोठरी में सब खाने-पीने का सामान रहता था। रतन अंदर चली गई और हाँडियों में टटोल-टटोलकर देखने लगी। एक हांडी में गेहूं निकल आए। बड़ी खुश हुई। बोली—देखो मांजी, निकले कि नहीं, तुम मुझसे बहाना कर रही थीं।

उसने एक टोकरी में थोड़ा-सा गेहूं निकाल लिया और खुश-खुश चक्की पर जाकर

पीसने लगी। जागेश्वरी ने जाकर जालपा से कहा—बहू, वह जांत पर बैठी गेहूं पीस रही हैं। उठाती हूं, उठतीं ही नहीं। कोई देख ले तो क्या कहे।

जालपा ने मुंशीजी के कमरे से निकलकर सास की घबराहट का आनंद उठाने के लिए कहा—यह तुमने क्या गजब किया, अम्मांजी! सचमुच, कोई देख ले तो नाक ही कट जाय! चलिए, जरा देखूं।

जागेश्वरी ने विवशता से कहा—क्या करूं, मैं तो समझा के हार गई, मानतीं ही नहीं।

जालपा ने जाकर देखा, तो रतन गेहूं पीसने में मग्न थी। विनोद के स्वाभाविक आनंद से उसका चेहरा खिला हुआ था। इतनी ही देर में उसके माथे पर पसीने की बूंदें आ गई थीं। उसके बलिष्ठ हाथों मे जांत लट्टू के समान नाच रहा था।

जालपा ने हंसकर कहा—ओ री, आटा महीन हा, नहीं पैसे न मिलेंगे।

रतन को सुनाई न दिया। बहरों की भांति अनिश्चित भाव से मुस्कराई। जालपा ने और जोर से कहा—आटा खूब महीन पीसना, नहीं पैसे न पाएगी। रतन ने भी हंसकर कहा—जितना महीन कहिए उतना महीन पीस दूं, बहूजी। पिसाई अच्छी मिलनी चाहिए।

जालपा—धेले सेर।

रतन—धेले सेर सही।

जालपा—मुंह धो आओ। धेले सेर मिलेंगे।

रतन—मैं यह सब पीसकर उठूंगी। तुम यहां क्यों खड़ी हो?

जालपा—आ जाऊं, मैं भी खिंचा दूं।

रतन—जी चाहता है, कोई जांत का गीत गाऊं!

जालपा—अकेले कैसे गाओगी! (जागेश्वरी से) अम्मां आप जरा दादाजी के पास बैठ जायं, मैं अभी आती हूं।

जालपा भी जांत पर जा बैठी और दोनों जांत का यह गीत गाने लगीं।

**मोही जोगिन बनाके कहां गए रे जोगिया।**

दोनों के स्वर मधुर थे। जांत की घुमुर-घुमुर उनके स्वर के साथ साज का काम कर रही थी। जब दोनों एक कड़ी गाकर चुप हो जातीं, तो जांत का स्वर मानो कंठ-ध्वनि से रंजित होकर और भी मनोहर हो जाता था। दोनों के हृदय इस समय जीवन के स्वाभाविक आनंद से पूर्ण थे? न शोक का भार था, न वियोग का दु:ख। जैसे दो चिड़ियां प्रभात की अपूर्व शोभा से मग्न होकर चहक रही हों।

## तेंतिस

रमानाथ की चाय की दुकान खुल तो गई, पर केवल रात को खुलती थी। दिन-भर बंद रहती थी। रात को भी अधिकतर देवीदीन ही दुकान पर बैठता, पर बिक्री अच्छी हो जाती थी। पहले ही दिन तीन रुपये के पैसे आए, दूसरे दिन से चार-पांच रुपये का औसत पड़ने लगा। चाय

इतनी स्वादिष्ट होती थी कि जो एक बार यहां चाय पी लेता फिर दूसरी दुकान पर न जाता। रमा ने मनोरंजन की भी कुछ सामग्री जमा कर दी। कुछ रुपये जमा हो गए, तो उसने एक सुंदर मेज ली। चिराग जलने के बाद साग-भाजी की बिक्री ज्यादा न होती थी। वह उन टोकरों को उठाकर अंदर रख देता और बरामदे में वह मेज लगा देता। उस पर ताश के सेट रख देता। दो दैनिक-पत्र भी मंगाने लगा। दुकान चल निकली। उन्हीं तीन-चार घंटों में छः-सात रुपये आ जाते थे और सब खर्च निकालकर तीन-चार रुपये बच रहते थे।

इन चार महीनों की तपस्या ने रमा की भोग-लालसा को और भी प्रचंड कर दिया था। जब तक हाथ में रुपये न थे, वह मजबूर था। रुपये आते ही सैर-सपाटे की धुन सवार हो गई। सिनेमा की याद भी आई। रोज के व्यवहार की मामूली चीजें, जिन्हें अब तक वह टालता आया था, अब अबाध रूप से आने लगीं। देवीदीन के लिए वह एक सुंदर रेशमी चादर लाया। जग्गो के सिर में पीड़ा होती रहती थी। एक दिन सुगंधित तेल की शीशियां लाकर उसे दे दीं। दोनों निहाल हो गए। अब बुढ़िया कभी अपने सिर पर बोझ लाती तो डांटता—काकी, अब तो मैं भी चार पैसे कमाने लगा हूं, अब तू क्यों जान देती है? अगर फिर कभी तेरे सिर पर टोकरी देखी तो कहे देता हूं, दुकान उठाकर फेंक दूंगा। फिर मुझे जो सजा चाहे दे देना। बुढ़िया बेटे की डांट सुनकर गद्गद हो जाती। मंडी से बोझ लाती तो पहले चुपके से देखती, रमा दुकान पर नहीं है। अगर वह बैठा होता तो किसी कुली को एक-दो पैसा देकर उसके सिर पर रख देती। वह न होता तो लपकी हुई आती और जल्दी से बोझ उतारकर शांत बैठ जाती, जिससे रमा भांप न सके।

एक दिन 'मनोरमा थियेटर' में राधेश्याम का कोई नया ड्रामा होने वाला था। इस ड्रामे की बड़ी धूम थी। एक दिन पहले से ही लोग अपनी जगहें रक्षित करा रहे थे। रमा को भी अपनी जगह रक्षित करा लेने की धुन सवार हुई। सोचा, कहीं रात को टिकट न मिला तो टापते रह जायंगे। तमाशे की बड़ी तारीफ है। उस वक्त एक के दो देने पर भी जगह न मिलेगी। इसी उत्सुकता ने पुलिस के भय को भी पीछे डाल दिया। ऐसी आफत नहीं आई है कि घर से निकलते ही पुलिस पकड़ लेगी। दिन को न सही, रात को तो निकलता ही हूं। पुलिस चाहती तो क्या रात को न पकड़ लेती। फिर मेरा वह हुलिया भी नहीं रहा। पगड़ी चेहरा बदल देने के लिए काफी है। यों मन को समझाकर वह दस बजे घर से निकला। देवीदीन कहीं गया हुआ था। बुढ़िया ने पूछा—कहां जाते हो, बेटा? रमा ने कहा—कहीं नहीं काकी, अभी आता हूं।

रमा सड़क पर आया, तो उसका साहस हिम की भांति पिघलने लगा। उसे पग-पग पर शंका होती थी, कोई कांस्टेबल न आ रहा हो। उसे विश्वास था कि पुलिस का एक-एक चौकीदार भी उसका हुलिया पहचानता है और उसके चेहरे पर निगाह पड़ते ही पहचान लेगा। इसलिए वह नीचे सिर झुकाए चल रहा था। सहसा उसे खयाल आया, गुप्त पुलिस वाले सादे कपड़े पहने इधर-उधर घूमा करते हैं। कौन जाने, जो आदमी मेरे बगल में आ रहा है, कोई जासूस ही हो। मेरी ओर ध्यान से देख रहा है। यों सिर झुकाकर चलने से ही तो नहीं उसे संदेह हो रहा है। यहां और सभी सामने ताक रहे हैं। कोई यों सिर झुकाकर नहीं चल रहा है। मोटरों की

इस रेल-पेल में सिर झुकाकर चलना मौत को नेवता देना है। पार्क में कोई इस तरह चहलकदमी करे, तो कर सकता है। यहां तो सामने देखना चाहिए। लेकिन बगल वाला आदमी अभी तक मेरी ही तरफ ताक रहा है। है शायद कोई खुफिया ही। उसका साथ छोड़ने के लिए वह एक तंबोली की दुकान पर पान खाने लगा। वह आदमी आगे निकल गया। रमा ने आराम की लंबी सांस ली।

अब उसने सिर उठा लिया और दिल मजबूत करके चलने लगा। इस वक्त ट्राम का भी कहीं पता न था, नहीं उसी पर बैठ लेता। थोड़ी ही दूर चला होगा कि तीन कांस्टेबल आते दिखाई दिए। रमा ने सड़क छोड़ दी और पटरी पर चलने लगा। ख्वामख्वाह सांप के बिल में उंगली डालना कौन-सी बहादुरी है। दुर्भाग्य की बात, तीनों कांस्टेबलों ने भी सड़क छोड़कर वही पटरी ले ली। मोटरों के आने-जाने से बार-बार इधर-उधर दौड़ना पड़ता था। रमा का कलेजा धक्-धक् करने लगा। दूसरी पटरी पर जाना तो संदेह को ओर भी बढ़ा देगा। कोई ऐसी गली भी नहीं जिसमें घुस जाऊं। अब तो सब बहुत समीप आ गए। क्या बात है, सब मेरी ही तरफ देख रहे हैं। मैंने बड़ी हिमाकत की कि यह पगड़ बांध लिया और बंधी भी कितनी बेतुकी। एक टीले-सा ऊपर उठ गया है। यह पगड़ी आज मुझे पकड़ावेगी। बांधी थी कि इससे सूरत बदल जाएगी। यह उल्टे और तमाशा बन गई। हां, तीनों मेरी ही ओर ताक रहे हैं। आपस में कुछ बातें भी कर रहे हैं। रमा को ऐसा जान पड़ा, पैरों में शक्ति नहीं है। शायद सब मन में मेरा हुलिया मिला रहे हैं। अब नहीं बच सकता। घर वालों को मेरे पकड़े जाने की खबर मिलेगी, तो कितने लज्जित होंगे। जालपा तो रो-रोकर प्राण ही दे देगी। पांच साल से कम सजा न होगी। आज इस जीवन का अत हो रहा है।

इस कल्पना ने उसके ऊपर कुछ ऐसा आतंक जमाया कि उसके औसान जाते रहे। जब सिपाहियों का दल समीप आ गया, तो उसका चेहरा भय से कुछ ऐसा विकृत हो गया, उसकी आंखें कुछ ऐसी सशंक हो गईं और अपने को उनकी आंखों से बचाने के लिए वह कुछ इस तरह दूसरे आदमियों की आड़ खोजने लगा कि मामूली आदमी को भी उस पर संदेह होना स्वाभाविक था, फिर पुलिस वालों की मंजी हुई आंखें क्यों चूकतीं। एक ने अपने साथी से कहा—यो मनई चोर न होय, तो तुमरी टांगन ते निकर जाई। कस चोरन की नाईं ताकत है। दूसरा बोला—कुछ संदेह तो हमऊ का हुय रहा है। फुरै कह्यो पांडे, असली चोर है।

तीसरा आदमी मुसलमान था, उसने रमानाथ को ललकारा—ओ जी ओ पगड़ी, जरा इधर आना, तुम्हारा क्या नाम है?

रमानाथ ने सीनाजोरी के भाव से कहा—हमारा नाम पूछकर क्या करोगे? मैं क्या चोर हूं?

'चोर नहीं, तुम शाह हो, नाम क्यों नहीं बताते?'

रमा ने एक क्षण आगा-पीछा में पड़कर कहा—हीरालाल।

'घर कहां है?'

'घर !'

'हां, घर ही पूछते हैं।'

'शाहजहांपुर।'

'कौन मुहल्ला?'

रमा शाहजहांपुर न गया था, न कोई कल्पित नाम ही उसे याद आया कि बता दे। दुस्साहस के साथ बोला—तुम तो मेरा हुलिया लिख रहे हो!

कांस्टेबल ने भभकी दी—तुम्हारा हुलिया पहले से ही लिखा हुआ है! नाम झूठ बताया, सकूनत झूठ बताई, मुहल्ला पूछा तो बगलें झांकने लगे। महीनों से तुम्हारी तलाश हो रही है, आज जाकर मिले हो। चलो थाने पर।

यह कहते हुए उसने रमानाथ का हाथ पकड़ लिया। रमा ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा करके कहा—वारंट लाओ तब हम चलेंगे। क्या मुझे कोई देहाती समझ लिया है?

कांस्टेबल ने एक सिपाही से कहा—पकड़ लो जी इनका हाथ, वहीं थाने पर वारंट दिखाया जाएगा।

शहरों में ऐसी घटनाएं मदारियों के तमाशों से भी ज्यादा मनोरंजक होती हैं। सैकड़ों आदमी जमा हो गए। देवीदीन इसी समय अफीम लेकर लौटा आ रहा था, यह जमाव देखकर वह भी आ गया। देखा कि तीन कांस्टेबल रमानाथ को घसीटे लिए जा रहे हैं। आगे बढ़कर बोला—हैं-हैं, जमादार! यह क्या करते हो? यह पंडितजी तो हमारे मिहमान हैं, कहां पकड़े लिए जाते हो?

तीनों कांस्टेबल देवीदीन से परिचित थे। रुक गए। एक ने कहा—तुम्हारे मिहमान हैं यह, कब से?

देवीदीन ने मन में हिसाब लगाकर कहा—चार महीने से कुछ बेशी हुए होंगे। मुझे प्रयाग में मिल गए थे। रहने वाले भी वहीं के हैं। मेरे साथ ही तो आए थे।

मुसलमान सिपाही ने मन में प्रसन्न होकर कहा—इनका नाम क्या है?

देवीदीन ने सिटपिटाकर कहा—नाम इन्होंने बताया न होगा?

सिपाहियों का संदेह दृढ़ हो गया। पांडे ने आंखें निकालकर कहा—जान परत है तुमहू मिले हौ, नांव काहे नाहीं बतावत हो इनका?

देवीदीन ने आधारहीन साहस के भाव से कहा—मुझसे रोब न जमाना पांडे, समझे! यहां धमकियों में नहीं आने के।

मुसलमान सिपाही ने मानो मध्यस्थ बनकर कहा—बूढ़े बाबा, तुम तो ख्वामख्वाह बिगड़ रहे हो। इनका नाम क्यों नहीं बतला देते?

देवीदीन ने कातर नेत्रों से रमा की ओर देखकर कहा—हम लोग तो रमानाथ कहते हैं। असली नाम यही है या कुछ और, यह हम नहीं जानते।

पांडे ने आंखें निकालकर हथेली को सामने करके कहा—बोलो पंडितजी, क्या नाम है तुम्हारा? रमानाथ या हीरालाल? या दोनों—एक घर का एक ससुराल का।

तीसरे सिपाही ने दर्शकों को संबोधित करके कहा—नांव है रमानाथ, बतावत है हीरालाल। सबूत हुय गवा। दर्शकों में कानाफूसी होने लगी। शुबहे की बात तो है।

'साफ है, नाम और पता दोनों गलत बता दिया।'

एक मारवाड़ी सज्जन बोले—उचक्को सो है।

एक मौलवी साहब ने कहा—कोई इश्तिहारी मुलजिम है।

जनता को अपने साथ देखकर सिपाहियों को और भी जोर हो गया। रमा को भी अब उनके साथ चुपचाप चले जाने ही में अपनी कुशल दिखाई दी। इस तरह सिर झुका लिया, मानो उसे इसकी बिल्कुल परवा नहीं है कि उस पर लाठी पड़ती है या तलवार। इतना अपमानित वह कभी न हुआ था। जेल की कठोरतम यातना भी इतनी ग्लानि न उत्पन्न करती।

थोड़ी देर में पुलिस स्टेशन दिखाई दिया। दर्शकों की भीड़ बहुत कम हो गई थी। रमा ने एक बार उनकी ओर लज्जित आशा के भाव से ताका। देवीदीन का पता न था। रमा के मुंह से एक लंबी सांस निकल गई। इस विपत्ति में क्या यह सहारा भी हाथ से निकल गया?

## चौंतीस

पुलिस स्टेशन के दफ्तर में इस समय बड़ी मेज के सामने चार आदमी बैठे हुए थे। एक दारोगा थे, गोरे से, शौकीन, जिनकी बड़ी-बड़ी आंखों में कोमलता की झलक थी। उनकी बगल में नायब दारोगा थे। यह सिक्ख थे, बहुत हंसमुख, सजीवता के पुतले, गेहुंआं रंग, सुडौल, सुगठित शरीर। सिर पर केश था, हाथों में कड़े; पर सिगार से परहेज न करते थे। मेज की दूसरी तरफ इंस्पेक्टर और डिप्टी सुपरिंटेंडेंट बैठे हुए थे। इंस्पेक्टर अधेड़, सांवला, लंबा आदमी था, कौड़ी की-सी आंखें, फूले हुए गाल और ठिगना कद। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट लंबा छरहरा जवान था, बहुत ही विचारशील और अल्पभाषी। इसकी लंबी नाक और ऊंचा मस्तक उसकी कुलीनता के साक्षी थे।

डिप्टी ने सिगार का एक कश लेकर कहा—बाहरी गवाहों से काम नहीं चल सकेगा। इनमें से किसी को एप्रूवर बनना होगा। और कोई अल्टरनेटिव नहीं है।

इंस्पेक्टर ने दारोगा की ओर देखकर कहा—हम लोगों ने कोई बात उठा तो नहीं रक्खी, हलफ से कहता हूं। सभी तरह के लालच देकर हार गए। सबों ने ऐसी गुट कर रक्खी है कि कोई टूटता ही नहीं। हमने बाहर के गवाहों को भी आजमाया, पर सब कानों पर हाथ रखते हैं।

डिप्टी—उस मारवाड़ी को फिर आजमाना होगा। उसके बाप को बुलाकर खूब धमकाइए। शायद इसका कुछ दबाव पड़े।

इंस्पेक्टर—हलफ से कहता हूं, आज सुबह से हम लोग यही कर रहे हैं। बेचारा बाप लड़के के पैरों पर गिरा, पर लड़का किसी तरह राजी नहीं होता।

कुछ देर तक चारों आदमी विचारों में मग्न बैठे रहे। अंत में डिप्टी ने निराशा के भाव से कहा—मुकदमा नहीं चल सकता। मुफ्त की बदनामी हुई।

इंस्पेक्टर—एक हफ्ते की मुहलत और लीजिए, शायद कोई टूट जाय।

यह निश्चय करके दोनों आदमी यहां से रवाना हुए। छोटे दारोगा भी उसके साथ ही चले गए। दारोगाजी ने हुक्का मंगवाया कि सहसा एक मुसलमान सिपाही ने आकर कहा—दारोगाजी, लाइए कुछ इनाम दिलवाइए। एक मुलजिम को शुबहे पर गिरफ्तार किया है। इलाहाबाद का

रहने वाला है, नाम है रमानाथ। पहले नाम और सकूनत दोनों गलत बतलाई थीं। देवीदीन खटिक जो नुक्कड़ पर रहता है, उसी के घर ठहरा हुआ है। जरा डांट बताइएगा तो सब कुछ उगल देगा।

दारोगा—देवीदीन वही है न जिसके दोनों लड़के . ।

सिपाही—जी हां, वही है।

इतने में रमानाथ भी दारोगा के सामने हाजिर किया गया। दारोगा ने उसे सिर से पांव तक देखा, मानो मन में उसका हुलिया मिला रहे हों। तब कठोर दृष्टि से देखकर बोले—अच्छा, यह इलाहाबाद का रमानाथ है। खूब मिले भाई। छ: महीने से परेशान कर रहे हो। कैसा साफ हुलिया है कि अंधा भी पहचान ले। यहां कब से आए हो?

कांस्टेबल ने रमा को परामर्श दिया—सब हाल सच-सच कह दो, तो तुम्हारे साथ कोई सख्ती न की जाएगी।

रमा ने प्रसन्नचित्त बनने की चेष्टा करके कहा—अब तो आपके हाथ में हूं, रियायत कीजिए या सख्ती कीजिए। इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी में नौकर था। हिमाकत कहिए या बदनसीबी, चुंगी के चार सौ रुपये मुझसे खर्च हो गए। मैं वक्त पर रुपये जमा न कर सका। शर्म के मारे घर के आदमियों से कुछ न कहा, नहीं तो इतने रुपये इंतजाम हो जाना कोई मुश्किल न था। जब कुछ बस न चला, तो वहां से भागकर यहां चला आया। इसमें एक हर्फ भी गलत नहीं है।

दारोगा ने गंभीर भाव से कहा—मामला कुछ संगीन है, क्या कुछ शराब का चस्का पड़ गया था?

'मुझसे कसम ले लीजिए, जो कभी शराब मुंह से लगाई हो।'

कांस्टेबल ने विनोद करके कहा—मुहब्बत के बाजार में लुट गए होंगे, हुजूर।

रमा ने मुस्कराकर कहा—मुझसे फाकेमस्तों का वहां कहां गुजर?

दारोगा—तो क्या जुआ खेल डाला? या, बीवी के लिए जेवर बनवा डाले!

रमा झेंपकर रह गया। अपराधी मुस्कराहट उसके मुख पर रो पड़ी।

दारोगा—अच्छी बात है, तुम्हें भी यहां खासे मोटे जेवर मिल जायंगे!

एकाएक बूढ़ा देवीदीन आकर खड़ा हो गया।

दारोगा ने कठोर स्वर में कहा—क्या काम है यहां?

देवीदीन—हुजूर को सलाम करने चला आया। इन बेचारों पर दया की नजर रहे हुजूर, बेचारे बड़े सीधे आदमी हैं।

दारोगा—बचा सरकारी मुलजिम को घर में छिपाते हो, उस पर सिफारिश करने आए हो!

देवीदीन—मैं क्या सिफारिस करूंगा हुजूर, दो कौड़ी का आदमी।

दारोगा—जानता है, इन पर वारंट है, सरकारी रुपये गबन कर गए हैं।

देवीदीन—हुजूर, भूल-चूक आदमी से ही तो होती है। जवानी की उम्र है ही, खर्च हो गए होंगे।

दारोगा ने तड़पकर कहा—यह क्या है?

देवीदीन—कुछ नहीं है, हुजूर को पान खाने को।

दारोगा—रिश्वत देना चाहता है ! क्यों? कहो तो बचा, इसी इल्जाम में भेज दूं।

देवीदीन—भेज दीजिए सरकार। घरवाली लकड़ी-कफन की फिकर से छूट जाएगी। वहीं बैठा आपको दुआ दूंगा।

दारोगा—अबे इन्हें छुड़ाना है तो पचास गिन्नियां लाकर सामने रक्खो। जानते हो इनकी गिरफ्तारी पर पांच सौ रुपये का इनाम है !

देवीदीन—आप लोगों के लिए इतना इनाम हुजूर क्या है। यह गरीब परदेसी आदमी हैं, जब तक जिएंगे आपको याद करेंगे।

दारोगा—बक-बक मत कर, यहां धरम कमाने नहीं आया हूं।

देवीदीन—बहुत तंग हूं हुजूर। दुकान-दारी तो नाम की है।

कांस्टेबल—बुढ़िया से मांग जाके।

देवीदीन—कमाने वाला तो मैं ही हूं हुजूर, लड़कों का हाल जानते ही हो। तन-पेट काटकर कुछ रुपये जमा कर रखे थे, सो अभी सातों-धाम किए चला आता हूं। बहुत तंग हो गया हूं।

दारोगा—तो अपनी गिन्नियां उठा ले। इसे बाहर निकाल दो जी।

देवीदीन—आपका हुकुम है, तो लीजिए जाता हूं। धक्के क्यों दिलवाइएगा।

दारोगा—(कांस्टेबल से) इन्हें हिरासत में रखो। मुंशी से कहो इनका बयान लिख लें।

देवीदीन के होंठ आवेश से कांप रहे थे। उसके चेहरे पर इतनी व्यग्रता रमा ने कभी नहीं देखी, जैसे कोई चिड़िया अपने घोंसले में कौवे को घुसते देखकर विहल हो गई हो। वह एक मिनट तक थाने के द्वार पर खड़ा रहा, फिर पीछे फिरा और एक सिपाही से कुछ कहा, तब लपका हुआ सड़क पर चला गया, मगर एक ही पल में फिर लौटा और दारोगा से बोला—हुजूर, दो घंटे की मुहलत न दीजिएगा?

रमा अभी वहीं खड़ा था। उसकी यह ममता देखकर रो पड़ा। बोला—दादा, अब तुम हैरान न हो, मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह होने दो। मेरे भी यहां होते, तो इससे ज्यादा और क्या करते ! मैं मरते दम तक तुम्हारा उपकार

देवीदीन ने आंखें पोंछते हुए कहा—कैसी बातें कर रहे हो, भैया ! जब रुपये पर आई तो देवीदीन पीछे हटने वाला आदमी नहीं है। इतने रुपये तो एक-एक दिन जुए में हार-जीत गया हूं। अभी घर बेच दूं, तो दस हजार की मालियत है। क्या सिर पर लाद कर ले जाऊंगा। दारोगाजी, अभी भैया को हिरासत में न भेजो। मैं रुपये की फिकर करके थोड़ी देर में आता हूं।

देवीदीन चला गया तो दारोगाजी ने सहृदयता से भरे स्वर में कहा—है तो खुर्राट, मगर बड़ा नेक। तुमने इसे कौन-सी बूटी सुंघा दी?

रमा ने कहा—गरीबों पर सभी को रहम आता है।

दारोगा ने मुस्कराकर कहा—पुलिस को छोड़कर; इतना और कहिए। मुझे तो यकीन नहीं कि पचास गिन्नियां लावे।

रमानाथ–अगर लाए भी तो उससे इतना बड़ा तावान नहीं दिलाना चाहता। आप मुझे शौक से हिरासत में ले लें।

दारोगा–मुझे पांच सौ के बदले साढ़े छः सौ मिल रहे हैं, क्यों छोड़ूं। तुम्हारी गिरफ्तारी का इनाम मेरे किसी दूसरे भाई को मिल जाय, तो क्या बुराई है।

रमानाथ–जब मुझे चक्की पीसनी है, तो जितनी जल्द पीस लूं उतना ही अच्छा। मैंने समझा था, मैं पुलिस की नजरों से बचकर रह सकता हूं। अब मालूम हुआ कि यह बेकली और आठों पहर पकड़ लिए जाने का खौफ जेल से कम जानलेवा नहीं।

दारोगाजी को एकाएक जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गई। मेज के दराज से एक मिसल निकाली, उसके पन्ने इधर-उधर उल्टे, तब नम्रता से बोले–अगर मैं कोई ऐसी तरकीब बतलाऊं कि देवीदीन के रुपये भी बच जाएं और तुम्हारे ऊपर भी हर्फ न आए तो कैसा?

रमा ने अविश्वास के भाव से कहा–ऐसी कोई तरकीब है, मुझे तो आशा नहीं।

दारोगा–अभी साईं के सौ खेल हैं। इसका इंतजाम मैं कर सकता हूं। आपको महज एक मुकदमे में शहादत देनी पड़ेगी?

रमानाथ–झूठी शहादत होगी।

दारोगा–नहीं; बिल्कुल सच्ची। बस समझ लो कि आदमी बन जाओगे। म्युनिसिपैलिटी के पंजे से तो छूट जाओगे, शायद सरकार परवरिश भी करे। यों अगर चालान हो गया तो पांच साल से कम की सजा न होगी। मान लो इस वक्त देवी तुम्हें बचा भी ले, तो बकरे की मां कब तक खैर मनाएगी। जिंदगी खराब हो जायगी। तुम अपना नफा-नुकसान खुद समझ लो। मैं जबरदस्ती नहीं करता।

दारोगाजी ने डकैती का वृत्तांत कह सुनाया। रमा ऐसे कई मुकदमे समाचार-पत्रों में पढ़ चुका था। संशय के भाव से बोला–तो मुझे मुखबिर बनना पड़ेगा और यह कहना पड़ेगा कि मैं भी इन डकैतियों में शरीक था। यह तो झूठी शहादत हुई।

दारोगा–मुआमला बिल्कुल सच्चा है। आप बेगुनाहों को न फंसाएंगे। वही लोग जेल जाएंगे जिन्हें जाना चाहिए। फिर झूठ कहां रहा? डाकुओं के डर से यहां के लोग शहादत देने पर राजी नहीं होते। बस और कोई बात नहीं। यह मैं मानता हूं कि आपको कुछ झूठ बोलना पड़ेगा, लेकिन आपकी जिंदगी बनी जा रही है, इसके लिहाज से तो इतना झूठ कोई चीज नहीं। खूब सोच लीजिए। शाम तक जवाब दीजिएगा।

रमा के मन में बात बैठ गई। अगर एक बार झूठ बोलकर वह अपने पिछले कर्मों का प्रायश्चित् कर सके और भविष्य भी सुधार ले, तो पूछना ही क्या। जेल से तो बच जायगा। इसमें बहुत आगा-पीछा की जरूरत ही न थी। हां, इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि उस पर फिर म्युनिसिपैलिटी अभियोग न चलाएगी और उसे कोई जगह अच्छी मिल जायगी। वह जानता था, पुलिस की गरज है और वह मेरी कोई वाजिब शर्त अस्वीकार न करेगी। इस तरह बोला, मानो उसकी आत्मा धर्म और अधर्म के संकट में पड़ी हुई है–मुझे यही डर है कि कहीं मेरी गवाही से बेगुनाह लोग न फंस जाएं।

दारोगा–इसका मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूं।

रमानाथ—लेकिन कल को म्युनिसिपैलिटी मेरी गर्दन नापे तो मैं किसे पुकारूंगा?

दारोगा—मजाल है, म्युनिसिपैलिटी चूं कर सके। फौजदारी के मुकदमे में मुद्दई तो सरकार ही होगी। जब सरकार आपको मुआफ कर देगी, तो मुकदमा कैसे चलाएगी। आपको तहरीरी मुआफीनामा दे दिया जायगा, साहब।

रमानाथ—और नौकरी?

दारोगा—वह सरकार आप इंतजाम करेगी। ऐसे आदमियों को सरकार खुद अपना दोस्त बनाए रखना चाहती है। अगर आपकी शहादत बढ़िया हुई और उस फरीक की जिरहों के जाल से आप निकल गए, तो फिर आप पारस हो जाएंगे!

दारोगा ने उसी वक्त मोटर मंगवाई और रमा को साथ लेकर डिप्टी साहब से मिलने चल दिए। इतनी बड़ी कारगुजारी दिखाने में विलंब क्यों करते? डिप्टी से एकांत में खूब जीट उड़ाई। इस आदमी का यों पता लगाया। इसकी सूरत देखते ही भांप गया कि मफरूर है, बस गरफ्तार ही तो कर लिया! बात सोलहों आने सच निकली। निगाह कहीं चूक सकती है! हुजूर, मुजरिम की आंखें पहचानता हूं। इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी के रुपये गबन करके भागा है। इस मामले में शहादत देने को तैयार है। आदमी पढ़ा-लिखा, सूरत का शरीफ और जहीन है।

डिप्टी ने संदिग्ध भाव से कहा—हां, आदमी तो होशियार मालूम होता है।

'मगर मुआफीनामा लिए बगैर इसे हमारा एतबार न होगा। कहीं इसे यह शुबहा हुआ कि हम लोग इसके साथ कोई चाल चल रहे हैं, तो साफ निकल जाएगा।'

डिप्टी—यह तो होगा ही। गवर्नमेंट से इसके बारे में बातचीत करना होगा। आप टेलीफोन मिलाकर इलाहाबाद पुलिस से पूछिए कि इस आदमी पर कैसा मुकदमा है। यह सब तो गवर्नमेंट को बताना होगा। दारोगाजी ने टेलीफोन डाइरेक्टरी देखी, नंबर मिलाया और बातचीत शुरू हुई।

डिप्टी—क्या बोला?

दारोगा—कहता है, यहां इस नाम के किसी आदमी पर मुकदमा नहीं है।

डिप्टी—यह कैसा है भाई, कुछ समझ में नहीं आता। इसने नाम तो नहीं बदल दिया?

दारोगा—कहता है, म्युनिसिपैलिटी में किसी ने रुपये गबन नहीं किए। कोई मामला नहीं है।

डिप्टी—ये तो बड़ा ताज्जुब का बात है। आदमी बोलता है हम रुपया लेकर भागा; म्युनिसिपैलिटी बोलता है कोई रुपया गबन नहीं किया। यह आदमी पागल तो नहीं?

दारोगा—मेरी समझ में कोई बात नहीं आती, अगर कह दें कि तुम्हारे ऊपर कोई इल्जाम नहीं है, तो फिर उसकी गर्द भी न मिलेगी।

'अच्छा, म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर से पूछिए।'

दारोगा ने फिर नंबर मिलाया। सवाल-जवाब होने लगा।

दारोगा—आपके यहां रमानाथ कोई क्लर्क था?

जवाब—जी हां; था।

दारोगा—वह कुछ रुपये गबन करके भागा है?

जवाब—नहीं। वह घर से भागा है, पर गबन नहीं किया। क्या वह आपके यहां है?

दारोगा—जी हां, हमने उसे गिरफ्तार किया है। वह खुद कहता है कि मैंने रुपये गबन किए। बात क्या है?

जवाब—पुलिस तो लाल बुझक्कड़ है। जरा दिमाग लड़ाइए।

दारोगा—यहां तो अक्ल काम नहीं करती।

जवाब—यहीं क्या, कहीं भी काम नहीं करती। सुनिए, रमानाथ ने मीजान लगाने में गलती की, डरकर भागा। बाद को मालूम हुआ कि तहबील में कोई कमी न थी। आई समझ में बात?

डिप्टी—अब क्या करना होगा खां, साहब। चिड़िया हाथ से निकल गया!

दारोगा—निकल कैसे जाएगी हुजूर। रमानाथ से यह बात कही ही क्यों जाए? बस उसे किसी ऐसे आदमी से मिलने न दिया जाय जो बाहर की खबरें पहुंचा सके। घरवालों को उसका पता अब लग जावेगा ही, कोई न कोई जरूर उसकी तलाश में आवेगा। किसी को न आने दें। तहरीर में कोई बात न लाई जाए। जबानी इत्मीनान दिला दिया जाय। कह दिया जाय, कमिश्नर साहब को मुआफीनामा के लिए रिपोर्ट की गई है। इंस्पेक्टर साहब से भी राय ले ली जाय।

इधर तो यह लोग सुपरिंटेंडेंट से परामर्श कर रहे थे, उधर एक घंटे में देवीदीन लौटकर थाने आया तो कांस्टेबल ने कहा—दारोगाजी तो साहब के पास गए।

देवीदीन ने घबड़ाकर कहा—तो बाबूजी को हिरासत में डाल दिया?

कांस्टेबल—नहीं, उन्हें भी साथ ले गये।

देवीदीन ने सिर पीटकर कहा—पुलिस वालों की बात का कोई भरोसा नहीं। कह गया कि एक घंटे में रुपये लेकर आता हूं, मगर इतना भी सबर न हुआ। सरकार से पांच ही सौ तो मिलेंगे। मैं छः सौ देने को तैयार हूं। हां, सरकार में कारगुजारी हो जायगी और क्या। वहीं से उन्हें परागराज भेज देंगे। मुझसे भेंट भी न होगी। बुढ़िया रो-रोकर मर जायगी। यह कहता हुआ देवीदीन वहीं जमीन पर बैठ गया।

कांस्टेबल ने पूछा—तो यहां कब तक बैठे रहोगे?

देवीदीन ने मानो कोड़े की काट से आहत होकर कहा—अब तो दारोगाजी से दो-दो बातें करके ही जाऊंगा। चाहे जेहल ही जाना पड़े, पर फटकारूंगा जरूर, बुरी तरह फटकारूंगा। आखिर उनके भी तो बाल-बच्चे होंगे। क्या भगवान् से जरा भी नहीं डरते! तुमने बाबूजी को जाती बार देखा था? बहुत रंजीदा थे?

कांस्टेबल—रंजीदा तो नहीं थे, खासी तरह हंस रहे थे। दोनों जने मोटर में बैठकर गए हैं।

देवीदीन ने अविश्वास के भाव से कहा—हंस व [illegible] रहे होंगे बेचारे। मुंह से चाहे हंस लें, दिल तो रोता ही होगा।

देवीदीन को यहां बैठे एक घंटा भी न हुआ था कि सहसा जग्गो आ खड़ी हुई। देवीदीन को द्वार पर बैठे देखकर बोली—तुम यहां क्या करने लगे? भैया कहां हैं?

देवीदीन ने मर्माहत होकर कहा—भैया को ले गए सुपरीडंट के पास। न जाने भेंट होती है

कि ऊपर ही ऊपर परागराज भेज दिए जाते हैं।

जग्गो—दारोगाजी भी बड़े वह हैं। कहां तो कहा था कि इतना लेंगे, कहां लेकर चल दिए !

देवीदीन—इसीलिए तो बैठा हूं कि आवें तो दो-दो बातें कर लूं।

जग्गो—हां, फटकारना जरूर। जो अपनी बात का नहीं, वह अपने बाप का क्या होगा। मैं तो खरी कहूंगी। मेरा क्या कर लेंगे !

देवीदीन—दुकान पर कौन है?

जग्गो—बंद कर आई हूं। अभी बेचारे ने कुछ खाया भी नहीं। सबेरे से वैसे ही हैं। चूल्हे में जाय वह तमासा। उसी के टिकट लेने तो जाते थे। न घर से निकलते तो काहे को यह बला सिर पड़ती।

देवीदीन—जो उधर ही से पराग भेज दिया तो?

जग्गो—तो चिट्ठी तो आवेगी ही। चलकर वहीं देख आवेंगे?

देवीदीन—(आंखों में आंसू भरकर) सजा हो जायगी?

जग्गो—रुपया जमा कर देंगे तब काहे को होगी। सरकार अपने रुपये ही तो लेगी?

देवीदीन—नहीं पगली, ऐसा नहीं होता। चोर माल लौटा दे तो वह छोड़ थोड़े ही दिया जाएगा।

जग्गो ने परिस्थिति की कठोरता अनुभव करके कहा—दारोगाजी

वह अभी बात भी पूरी न करने पाई थी कि दारोगाजी की मोटर सामने आ पहुंची। इंस्पेक्टर साहब भी थे। रमा इन दोनों को देखते ही मोटर से उतरकर आया और प्रसन्न मुख से बोला—तुम यहां देर से बैठे हो क्या दादा? आओ, कमरे में चलो। अम्मां, तुम कब आईं?

दारोगाजी ने विनोद करके कहा—कहो चौधरी, लाए रुपये?

देवीदीन—जब कह गया कि मैं थोड़ी देर में आता हूं, तो आपको मेरी राह देख लेनी चाहिए थी। चलिए, अपने रुपये लीजिए।

दारोगा—खोदकर निकाले होंगे?

देवीदीन—आपके अकबाल से हजार-पांच सौ अभी ऊपर ही निकल सकते हैं। जमीन खोदने की जरूरत नहीं पड़ी। चलो भैया, बुढ़िया कब से खड़ी है। मैं रुपये चुकाकर आता हूं। यह तो इसपिट्टर साहब थे न? पहले इसी थाने में थे।

दारोगा—तो भाई, अपने रुपये ले जाकर उसी हांड़ी में रख दो। अफसरों की सलाह हुई कि इन्हें छोड़ना न चाहिए। मेरे बस की बात नहीं है।

इंस्पेक्टर साहब तो पहले ही दफ्तर में चले गए थे। ये तीनों आदमी बातें करते उसके बगल वाले कमरे में गए।

देवीदीन ने दारोगा की बात सुनी, तो भौंहे तिरछी हो गईं। बोला—दारोगाजी, मरदों की एक बात होती है, मैं तो यही जानता हूं। मैं रुपये आपके हुक्म से लाया हूं। आपको अपना कौल पूरा करना पड़ेगा। कहके मुकर जाना नीचों का काम है।

इतने कठोर शब्द सुनकर दारोगाजी को भन्ना जाना चाहिए था; पर उन्होंने जरा भी बुरा

न माना। हंसते हुए बोले—भई अब चाहे, नीच कहो, चाहे दगाबाज कहो; पर हम इन्हें छोड़ नहीं सकते। ऐसे शिकार रोज नहीं मिलते। कौल के पीछे अपनी तरक्की नहीं छोड़ सकता।

दारोगा के हंसने पर देवीदीन और भी तेज हुआ—तो आपने कहा किस मुंह से था?

दारोगा—कहा तो इसी मुंह से था, लेकिन मुंह हमेशा एक-सा तो नहीं रहता। इसी मुंह से जिसे गाली देता हूं, उसकी इसी मुंह से तारीफ भी करता हूं।

देवीदीन—(तिनककर) यह मूंछें मुड़वा डालिए।

दारोगा—मुझे बड़ी खुशी से मंजूर है। नीयत तो मेरी पहले ही थी; पर शर्म के मारे न मुड़वाता था। अब तुमने दिल मजबूत कर दिया।

देवीदीन—हंसिए मत दारोगाजी, आप हंसते हैं और मेरा खून जला जाता है। मुझे चाहे जेहल ही क्यों न हो जाए; लेकिन मैं कप्तान साहब से जरूर कह दूंगा। हूं तो टके का आदमी पर आपके अकबाल से बड़े अफसरों तक पहुंच है।

दारोगा—अरे, यार तो क्या सचमुच कप्तान साहब से मेरी शिकायत कर दोगे?

देवीदीन ने समझा कि धमकी कारगर हुई। अकड़कर बोला—आप जब किसी की नहीं सुनते, बात कहकर मुकर जाते हैं, तो दूसरे भी अपने-सी करेंगे ही। मेम साहब तो रोज ही दुकान पर आती हैं।

दारोगा—कौन, देवी? अगर तुमने साहब या मेम साहब से मेरी कुछ शिकायत की, तो कसम खाकर कहता हूं, कि घर खुदवाकर फेंक दूंगा।

देवीदीन—जिस दिन मेरा घर खुदेगा, उस दिन यह पगड़ी और चपरास भी न रहेगी, हुजूर।

दारोगा—अच्छा तो मारो हाथ पर हाथ। हमारी तुम्हारी दो-दो चोटें हो जायं, यही सही।

देवीदीन—पछताओगे सरकार, कहे देता हूं पछताओगे।

रमा अब जब्त न कर सका। अब तक वह देवीदीन के बिगड़ने का तमाशा देखने के लिए भीगी बिल्ली बना खड़ा था। कहकहा मारकर बोला—दादा, दारोगाजी तुम्हें चिढ़ा रहे हैं। हम लोगों में ऐसी सलाह हो गई है कि मैं बिना कुछ लिए-दिए ही छूट जाऊंगा, ऊपर से नौकरी भी मिल जायगी। साहब ने पक्का वादा किया है। मुझे अब यहीं रहना होगा।

देवीदीन ने रास्ता भटके हुए आदमी की भांति कहा—कैसी बात है भैया, क्या कहते हो! क्या पुलिस वालों के चकमे में आ गए? इसमें कोई न कोई चाल जरूर छिपी होगी।

रमा ने इत्मीनान के साथ कहा—और बात नहीं, एक मुकदमे में शहादत देनी पड़ेगी।

देवीदीन ने संशय से सिर हिलाकर कहा—झूठा मुकदमा होगा?

रमानाथ—नहीं दादा; बिल्कुल सच्चा मामला है। मैंने पहले ही पूछ लिया है।

देवीदीन की शंका शांत न हुई। बोला—मैं इस बारे में और कुछ नहीं कह सकता भैया, जरा सोच-समझकर काम करना। अगर मेरे रुपयों को डरते हो, तो यही समझ लो कि देवीदीन ने अगर रुपयों की परवा की होती, तो आज लखपति होता। इन्हीं हाथों से सौ-सौ रुपये रोज कमाए और सब-के-सब उड़ा दिए हैं। किस मुकदमे में सहादत देनी है? कुछ मालूम हुआ?

दारोगाजी ने रमा को जवाब देने का अवसर न देकर कहा—वही डकैतियों वाला मुआमला है जिसमें कई गरीब आदमियों की जान गई थी। इन डाकुओं ने सूबे-भर में हंगामा मचा रक्खा था। उनके डर के मारे कोई आदमी गवाही देने पर राजी नहीं होता।

देवीदीन ने उपेक्षा के भाव से कहा—अच्छा तो यह मुखबिर बन गए? यह बात है। इसमें तो जो पुलिस सिखाएगी वही तुम्हें कहना पड़ेगा, भैया! मैं छोटी समझ का आदमी हूं, इन बातों का मर्म क्या जानूं; पर मुझसे मुखबिर बनने को कहा जाता, तो मैं न बनता, चाहे कोई लाख रुपया देता। बाहर के आदमी को क्या मालूम कौन अपराधी है, कौन बेकसूर है। दो-चार अपराधियों के साथ दो-चार बेकसूर भी जरूर ही होंगे।

दारोगा—हरगिज नहीं। जितने आदमी पकड़े गए हैं, सब पक्के डाकू हैं।

देवीदीन—यह तो आप कहते हैं न, हमें क्या मालूम।

दारोगा—हम लोग बेगुनाहों को फंसाएंगे ही क्यों? यह तो सोचो।

देवीदीन—यह सब भुगते बैठा हूं, दारोगाजी! इससे तो यही अच्छा है कि आप इनका चालान कर दें। साल-दो साल का जेहल ही तो होगा। एक अधरम के दंड से बचने के लिए बेगुनाहों का खून तो सिर पर न चढ़ेगा!

रमा ने भीरुता से कहा—मैंने खूब सोच लिया है दादा, सब कागज देख लिए हैं, इसमें कोई बेगुनाह नहीं है।

देवीदीन ने उदास होकर कहा—होगा भाई! जान भी तो प्यारी होती है!

यह कहकर वह पीछे घूम पड़ा। अपने मनोभावों को इससे स्पष्ट रूप से वह प्रकट न कर सकता था।

एकाएक उसे एक बात याद आ गई। मुड़कर बोला—तुम्हें कुछ रुपये देता जाऊं।

रमा ने खिसियाकर कहा—क्या जरूरत है?

दारोगा—आज से इन्हें यहीं रहना पड़ेगा।

देवीदीन ने कर्कश स्वर में कहा—हां हुजूर, इतना जानता हूं। इनकी दावत होगी, बंगला रहने को मिलेगा, नौकर मिलेंगे, मोटर मिलेगी। यह सब जानता हूं। कोई बाहर का आदमी इनसे मिलने न पावेगा, न यह अकेले आ-जा सकेंगे, यह सब देख चुका हूं।

यह कहता हुआ देवीदीन तेजी से कदम उठाता हुआ चल दिया, मानो वहां उसका दम घुट रहा हो। दारोगा ने उसे पुकारा, पर उसने फिरकर न देखा। उसके मुख पर पराभूत वेदना छाई हुई थी।

जग्गो ने पूछा—भैया नहीं आ रहे हैं?

देवीदीन ने सड़क की ओर ताकते हुए कहा—भैया अब नहीं आवेंगे। जब अपने ही अपने न हुए तो बेगाने तो बेगाने हैं ही!

वह चला गया। बुढ़िया भी पीछे-पीछे भुनभुनाती चली।

# पैंतीस

रुदन में कितना उल्लास, कितनी शांति, कितना बल है। जो कभी एकांत में बैठकर, किसी की स्मृति में, किसी के वियोग में, सिसक-सिसक और बिलख-बिलख नहीं रोया, वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है, जिस पर सैकड़ों हंसियां न्योछावर हैं। उस मीठी वेदना का आनंद उन्हीं से पूछो, जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया है। हंसी के बाद मन खिन्न हो जाता है, आत्मा क्षुब्ध हो जाती है, मानो हम थक गए हों, पराभूत हो गए हों। रुदन के पश्चात् एक नवीन स्फूर्ति, एक नवीन जीवन, एक नवीन उत्साह का अनुभव होता है। जालपा के पास 'प्रजा-मित्र' कार्यालय का पत्र पहुंचा, तो उसे पढ़कर वह रो पड़ी। पत्र एक हाथ में लिए, दूसरे हाथ से चौखट पकड़े, वह खूब रोई। क्या सोचकर रोई, वह कौन कह सकता है। कदाचित् अपने उपाय की इस आशातीत सफलता ने उसकी आत्मा को विह्वल कर दिया, आनंद की उस गहराई पर पहुंचा दिया जहां पानी है, या उस ऊंचाई पर जहां उष्णता हिम बन जाती है। आज छः महीने के बाद यह सुख-संवाद मिला। इतने दिनों वह छलमयी आशा और कठोर दुराशा का खिलौना बनी रही। आह ! कितनी बार उसके मन में तरंग उठी कि इस जीवन का क्यों न अंत कर दूं ! कहीं मैंने सचमुच प्राण त्याग दिए होते तो उनके दर्शन भी न पाती ! पर उनका हिया कितना कठोर है। छः महीने से वहां बैठे हैं, एक पत्र भी न लिखा, खबर तक नहीं ली। आखिर यही न समझ लिया होगा कि बहुत होगा रो-रोकर मर जायगी। उन्होंने मेरी परवाह ही कब की ! दस-बीस रुपये तो आदमी यार-दोस्तों पर भी खर्च कर देता है। वह प्रेम नहीं है। प्रेम हृदय की वस्तु है, रुपये की नहीं। जब तक रमा का कुछ पता न था, जालपा सारा इल्जाम अपने सिर रखती थी; पर आज उनका पता पाते ही उसका मन अकस्मात् कठोर हो गया। तरह-तरह के शिकवे पैदा होने लगे। वहां क्या समझकर बैठे हैं? इसीलिए तो कि वह स्वाधीन हैं, आजाद हैं, किसी का दिया नहीं खाते। इसी तरह मैं कहीं बिना कहे-सुने चली जाती, तो वह मेरे साथ किस तरह पेश आते? शायद तलवार लेकर गर्दन पर सवार हो जाते या जिंदगी भर मुंह न देखते। वहीं खड़े-खड़े जालपा ने मन-ही-मन शिकायतों का दफ्तर खोल दिया।

सहसा रमेश बाबू ने द्वार पर पुकारा—गोपी, गोपी, जरा इधर आना। मुंशीजी ने अपने कमरे में पड़े-पड़े कराहकर कहा—कौन है भाई, कमरे में आ जाओ। अरे ! आप हैं रमेश बाबू ! बाबूजी, मैं तो मरकर जिया हूं। बस यही समझिए कि नई जिंदगी हुई। कोई आशा न थी। कोई आगे न कोई पीछे; दोनों लौंडे आवारा हैं, मैं मरूं या जीऊं, उनसे मतलब नहीं। उनकी मां को मेरी सूरत देखते डर लगता है। बस बेचारी बहू ने मेरी जान बचाई। वह न होती तो अब तक चल बसा होता।

रमेश बाबू ने कृत्रिम संवेदना दिखाते हुए कहा—आप इतने बीमार हो गए और मुझे खबर तक न हुई। मेरे यहां रहते आपको इतना कष्ट हुआ ! बहू ने भी मुझे एक पुर्जा न लिख दिया। छुट्टी लेनी पड़ी होगी?

मुंशी—छुट्टी के लिए दरख्वास्त तो भेज दी थी; मगर साहब मैंने डाक्टरी सर्टिफिकेट

नहीं भेजी। सोलह रुपये किसके घर से लाता। एक दिन सिविल सर्जन के पास गया, मगर उन्होंने चिट्ठी लिखने से इनकार किया। आप तो जानते हैं वह बिना फीस लिए बात नहीं करते। मैं चला आया और दरख्वास्त भेज दी। मालूम नहीं मंजूर हुई या नहीं। यह तो डाक्टरों का हाल है। देख रहे हैं कि आदमी मर रहा है, पर बिना भेंट लिए कदम न उठावेंगे!

रमेश बाबू ने चिंतित होकर कहा—यह तो आपने बुरी खबर सुनाई। मगर आपकी छुट्टी नामंजूर हुई तो क्या होगा?

मुंशीजी ने माथा ठोंकर कहा—होगा क्या, घर बैठ रहूंगा। साहब पूछेंगे तो साफ कह दूंगा, मैं सर्जन के पास गया था, उसने छुट्टी नहीं दी। आखिर इन्हें क्यों सरकार ने नौकर रक्खा है। महज कुर्सी की शोभा बढ़ाने के लिए? मुझे डिसमिस हो जाना मंजूर है, पर सर्टिफिकेट न दूंगा। लौंडे गायब हैं। आपके लिए पान तक लाने वाला कोई नहीं। क्या करूं?

रमेश ने मुस्कराकर कहा—मेरे लिए आप तरद्दुद न करें। मैं आज पान खाने नहीं, भरपेट मिठाई खाने आया हूं। (जालपा को पुकारकर) बहूजी, तुम्हारे लिए खुशखबरी लाया हूं। मिठाई मंगवा लो।

जालपा ने पान की तश्तरी उनके सामने रखकर कहा—पहले वह खबर सुनाइए। शायद आप जिस खबर को नई-नई समझ रहे हों, वह पुरानी हो गई हो।

रमेश—जी कहीं हो न! रमानाथ का पता चल गया। कलकत्ते में हैं।

जालपा—मुझे पहले ही मालूम हो चुका है।

मुंशीजी झपटकर उठ बैठे। उनका ज्वर मानो भागकर उत्सुकता की आड़ में जा छिपा। रमेश का हाथ पकड़कर बोले—मालूम हो गया कलकत्ते में हैं? कोई खत आया था?

रमेश—खत नहीं था, एक पुलिस इंक्वायरी थी। मैंने कह दिया, उन पर किसी तरह का इल्जाम नहीं है। तुम्हें कैसे मालूम हुआ, बहूजी?

जालपा ने अपनी स्कीम बयान की। 'प्रजा-मित्र' कार्यालय का पत्र भी दिखाया। पत्र के साथ रुपयों की एक रसीद थी जिस पर रमा का हस्ताक्षर था।

रमेश—दस्तखत तो रमा बाबू का है, बिल्कुल साफ। धोखा हो ही नही सकता। मान गया बहूजी तुम्हें! वाह, क्या हिकमत निकाली है! हम सबके कान काट लिए। किसी को न सूझी। अब जो सोचते हैं, तो मालूम होता है, कितनी आसान बात थी। किसी को जाना चाहिए जो बचा को पकड़कर घसीट लाए।

यह बातचीत हो रही थी कि रतन आ पहुंची। जालपा उसे देखते ही वहां से निकली और उसके गले से लिपटकर बोली—बहन कलकत्ते से पत्र आ गया। वहीं हैं।

रतन—मेरे सिर की कसम?

जालपा—हां, सच कहती हूं। खत देखो न!

रतन—तो आज ही चली जाओ।

जालपा—यही तो मैं भी सोच रही हूं। तुम चलोगी?

रतन—चलने को तो मैं तैयार हूं, लेकिन अकेला घर किस पर छोड़ूं! बहन, मुझे मणिभूषण पर कुछ शुबहा होने लगा है। उसकी नीयत अच्छी नहीं मालूम होती। बैंक में बीस

हजार रुपये से कम न थे। सब न जाने कहां उड़ा दिए। कहता है, क्रिया-कर्म में खर्च हो गए। हिसाब मांगती हूं, तो आंखें दिखाता है। दफ्तर की कुंजी अपने पास रखे हुए है। मांगती हूं, तो टाल जाता है। मेरे साथ कोई कानूनी चाल चल रहा है। डरती हूं, मैं उधर जाऊं, इधर वह सब कुछ ले-देकर चलता बने। बंगले के गाहक आ रहे हैं। मैं भी सोचती हूं, गांव में जाकर शांति से पड़ी रहूं। बंगला बिक जायगा, तो नकद रुपये हाथ आ जाएंगे। मैं न रहूंगी, तो शायद ये रुपये मुझे देखने को भी न मिलें। गोपी को साथ लेकर आज ही चली जाओ। रुपये का इंतजाम मैं कर दूंगी।

जालपा—गोपीनाथ तो शायद न जा सकें। दादा की दवा-दारू के लिए भी तो कोई चाहिए।

रतन—वह मैं कर दूंगी। मैं रोज सबेरे आ जाऊंगी और दवा देकर चली जाऊंगी। शाम को भी एक बार आ जाया करूंगी।

जालपा ने मुस्कराकर कहा—और दिन-भर उनके पास बैठा कौन रहेगा?

रतन—मैं थोड़ी देर बैठी भी रहा करूंगी; मगर तुम आज ही जाओ। बेचारे वहां न जाने किस दशा में होंगे। तो यही तय रही न?

रतन मुंशीजी के कमरे में गई, तो रमेश बाबू उठकर खड़े हो गए और बोले—आइए देवीजी, रमा बाबू का पता चल गया!

रतन—इसमें आधा श्रेय मेरा है।

रमेश—आपकी सलाह से तो हुआ ही होगा। अब उन्हें यहां लाने की फिक्र करनी है।

रतन—जालपा चली जाएं और पकड़ लाएं। गोपी को साथ लेती जावें। आपको इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है, दादाजी?

मुंशीजी को आपत्ति तो थी, उनका बस चलता तो इस अवसर पर दस-पांच आदमियों को और जमा कर लेते, फिर घर के आदमियों के चले जाने पर क्यों आपत्ति न होती, मगर समस्या ऐसी आ पड़ी थी कि कुछ बोल न सके।

गोपी कलकत्ते की सैर का ऐसा अच्छा अवसर पाकर क्यों न खुश होता। विशम्भर दिल में ऐंठकर रह गया। विधाता ने उसे छोटा न बनाया होता, तो आज उसकी यह हकतलफी न होती। गोपी ऐसे कहां के बड़े होशियार हैं, जहां जाते हैं कोई-न-कोई चीज खो आते हैं। हां, मुझसे बड़े हैं। इस दैवी विधान ने उसे मजबूर कर दिया।

रात को नौ बजे जालपा चलने को तैयार हुई। सास-ससुर के चरणों पर सिर झुकाकर आशीर्वाद लिया, विशम्भर रो रहा था, उसे गले लगा कर प्यार किया और मोटर पर बैठी रतन स्टेशन तक पहुंचाने के लिए आई थी।

मोटर चली तो जालपा ने कहा—बहन, कलकत्ता तो बहुत बड़ा शहर होगा। वहां कैसे पता चलेगा?

रतन—पहले 'प्रजा-मित्र' के कार्यालय में जाना। वहां से पता चल जाएगा। गोपी बाबू तो हैं ही।

जालपा—ठहरूंगी कहां?

रतन–कई धर्मशाले हैं। नहीं होटल में ठहर जाना। देखो रुपये की जरूरत पड़े, तो मुझे तार देना। कोई-न-कोई इंतजाम करके भेजूंगी। बाबूजी आ जाएं, तो मेरा बड़ा उपकार हो। यह मणिभूषण मुझे तबाह कर देगा।

जालपा–होटल वाले बदमाश तो न होंगे?

रतन–कोई जरा भी शरारत करे, तो ठोकर मारना। बस, कुछ पूछना मत। ठोकर जमाकर तब बात करना। (कमर से एक छुरी निकालकर) इसे अपने पास रख लो। कमर में छिपाए रखना। मैं जब कभी बाहर निकलती हूं, तो इसे अपने पास रख लेती हूं। इससे दिल बड़ा मजबूत रहता है। जो मर्द किसी स्त्री को छेड़ता है, उसे समझ लो कि पल्ले सिरे का कायर, नीच और लंपट है। तुम्हारी छुरी की चमक और तुम्हारे तेवर देखकर ही उसकी रूह फना हो जायगी। सीधा दुम दबाकर भागेगा, लेकिन अगर ऐसा मौका आ ही पड़े जब तुम्हें छुरी से काम लेने के लिए मजबूर हो जाना पड़े, तो जरा भी मत झिझकना। छुरी लेकर पिल पड़ना। इसकी बिल्कुल फिक्र मत करना कि क्या होगा, क्या न होगा। जो कुछ होगा, हो जायगा।

जालपा ने छुरी ले ली, पर कुछ बोली नहीं। उसका दिल भारी हो रहा था। इतनी बातें सोचने और पूछने की थीं उनके विचार से ही उसका दिल बैठा जाता था।

स्टेशन आ गया। कुलियों ने असबाब उतारा। गोपी टिकट लाया। जालपा पत्थर की मूर्ति की भांति प्लेटफार्म पर खड़ी रही, मानो चेतना शून्य हो गई हो। किसी बड़ी परीक्षा के पहले हम मौन हो जाते हैं। हमारी सारी शक्तियां उस संग्राम की तैयारी में लग जाती हैं।

रतन ने गोपी से कहा–होशियार रहना।

गोपी इधर कई महीनों से कसरत करता था। चलता तो मुड्ढे और छाती को देखा करता। देखने वालों को तो वह ज्यों का त्यों मालूम होता है, पर अपनी नजर में वह कुछ और हो गया था। शायद उसे आश्चर्य होता था कि उसे आते देखकर क्यों लोग रास्ते से नहीं हट जाते, क्यों उसके डील-डौल से भयभीत नहीं हो जाते। अकड़कर बोला–किसी ने जरा चीं-चपड़ की तो हड्डी तोड़ दूंगा।

रतन मुस्कराई–यह तो मुझे मालूम है। सो मत जाना।

गोपी–पलक तक तो झपकेगी नहीं। मजाल है नींद आ जाय।

गाड़ी आ गई। गोपी ने एक डिब्बे में घुसकर कब्जा जमाया। जालपा की आंखों में आंसू भरे हुए थे। बोली–बहन, आशीर्वाद दो कि उन्हें लेकर कुशल से लौट आऊं।

इस समय उसका दुर्बल मन कोई आश्रय, कोई सहारा, कोई बल ढूंढ रहा था और आशीर्वाद और प्रार्थना के सिवा वह बल उसे कौन प्रदान करता। यही बल और शांति का वह अक्षय भंडार है जो किसी को निराश नहीं करता, जो सबकी बांह पकड़ता है, सबका बेड़ा पार लगाता है।

इंजन ने सीटी दी। दोनों सहेलियां गले मिलीं। जालपा गाड़ी में जा बैठी।

रतन ने कहा–जाते ही जाते खत भेजना।

जालपा ने सिर हिलाया।

अगर मेरी जरूरत मालूम हो, तो तुरंत लिखना। मैं सब कुछ छोड़कर चली आऊंगी।'

जालपा ने सिर हिला दिया।

'रास्ते में रोना मत।'

जालपा हंस पड़ी। गाड़ी चल दी।

## छत्तीस

देवीदीन ने चाय की दुकान उसी दिन से बंद कर दी थी और दिन-भर उस अदालत की खाक छानता फिरता था जिसमें डकैती का मुकदमा पेश था और रमानाथ की शहादत हो रही थी। तीन दिन रमा की शहादात बराबर होती रही और तीनों दिन देवीदीन ने न कुछ खाया और न सोया। आज भी उसने घर आते ही आते कुरता उतार दिया और एक पंखिया लेकर झलने लगा। फागुन लग गया था और कुछ-कुछ गर्मी शुरू हो गई थी, पर इतनी गर्मी न थी कि पसीना बहे या पंखे की जरूरत हो। अफसर लोग तो जाड़ों के कपड़े पहने हुए थे, लेकिन देवीदीन पसीने में तर था। उसका चेहरा, जिस पर निष्कपट बुढ़ापा हंसता रहता था, खिसियाया हुआ था, मानो बेगार से लौटा हो।

जग्गो ने लोटे में पानी लाकर रख दिया और बोली—चिलम रख दूं? देवीदीन की आज तीन दिन से यह खातिर हो रही थी। इसके पहले बुढ़िया कभी चिलम रखने को न पूछती थी। देवीदीन इसका मतलब समझता था। बुढ़िया को सदय नेत्रों से देखकर बोला—नहीं, रहने दो, चिलम न पिऊंगा।

'तो मुंह-हाथ तो धो लो। गर्द पड़ी हुई है।'

'धो लूंगा, जल्दी क्या है।'

बुढ़िया आज का हाल जानने को उत्सुक थी, पर डर रही थी कहीं देवीदीन झुंझला न पड़े। वह उसकी थकान मिटा देना चाहती थी, जिससे देवीदीन प्रसन्न होकर आप-ही-आप सारा वृत्तांत कह चले।

'तो कुछ जलपान तो कर लो। दोपहर को भी तो कुछ नहीं खाया था, मिठाई लाऊं? लाओ, पंखी मुझे दे दो।'

देवीदीन ने पंखिया दे दी। बुढ़िया झलने लगी। दो-तीन मिनट तक आंखें बंद करके बैठे रहने के बाद देवीदीन ने कहा—आज भैया की गवाही खत्म हो गई।

बुढ़िया का हाथ रुक गया। बोली—तो कल से वह घर आ जाएंगे?

देवीदीन—अभी नहीं छुट्टी मिली जाती, यही बयान दीवानी में देना पडेगा। और अब वह यहां आने ही क्यों लगे। कोई अच्छी जगह मिल जायगी, घोड़े पर चढ़े-चढ़े घूमेंगे, मगर है बड़ा पक्का मतलबी। पंद्रह बेगुनाहों को फंसा दिया। पांच-छ: को तो फांसी हो जाएगी। औरों को दस-दस बारह-बारह साल की सजा मिली रक्खी है। इसी के बयान से मुकदमा सबूत हो गया। कोई कितनी ही जिरह करे, क्या मजाल जरा भी हिचकिचाए। अब एक भी न बचेगा। किसने कर्म किया, किसने नहीं किया इसका हाल दैव जाने; पर मारे सब जाएंगे। घर से भी तो

सरकारी रुपया खाकर भागा था। हमें बड़ा धोखा हुआ।

जग्गो ने मीठे तिरस्कार से देखकर कहा—अपनी नेकी-बदी अपने साथ है। मतलबी तो संसार है, कौन किसके लिए मरता है।

देवीदीन ने तीव्र स्वर में कहा—अपने मतलब के लिए जो दूसरों का गला काटे उसको जहर दे देना भी पाप नहीं है।

सहसा दो प्राणी आकर खड़े हो गए। एक गोरा, खूबसूरत लड़का था, जिसकी उम्र पंद्रह-सोलह साल से ज्यादा न थी। दूसरा अधेड़ था और सूरत से चपरासी मालूम होता था।

देवीदीन ने पूछा—किसे खोजते हो?

चपरासी ने कहा—तुम्हारा ही नाम देवीदीन है न? मैं 'प्रजा-मित्र' के दफ्तर से आया हूं। यह बाबू उन्हीं रमानाथ के भाई हैं जिन्हें सतरंज का इनाम मिला था। यह उन्हीं की खोज में दफ्तर गए थे। संपादकजी ने तुम्हारे पास भेज दिया। तो मैं जाऊं न?

यह कहता हुआ वह चला गया। देवीदीन ने गोपी को सिर से पांव तक देखा। आकृति रमा से मिलती थी। बोला—आओ बेटा, बैठो। कब आए घर से?

गोपी ने एक खटिक की दुकान पर बैठना शान के खिलाफ समझा। खड़ा-खड़ा बोला—आज ही तो आया हूं। भाभी भी साथ हैं। धर्मशाले में ठहरा हुआ हूं।

देवीदीन ने खड़े होकर कहा—तो जाकर बहू को यहां लाओ न। ऊपर तो रमा बाबू का कमरा है ही, आराम से रहो। धरमसाले में क्यों पड़े रहोगे। नहीं चलो, मैं भी चलता हूं। यहां सब तरह का आराम है।

उसने जग्गो को यह खबर सुनाई और ऊपर झाड़ू लगाने को कहकर गोपी के साथ धर्मशाले चल दिया। बुढ़िया ने तुरंत ऊपर जाकर झाड़ू लगाया, लपककर हलवाई की दुकान से मिठाई और दही लाई। सुराही में पानी भरकर रख दिया। फिर अपना हाथ-मुंह धोया, एक रंगीन साड़ी निकाली, गहने पहने और बन-ठनकर बहू की राह देखने लगी।

इतने में फिटन भी आ पहुंची। बुढ़िया ने जाकर जालपा को उतारा। जालपा पहले तो साग-भाजी की दुकान देखकर कुछ झिझकी, पर बुढ़िया का स्नेह-स्वागत देखकर उसकी झिझक दूर हो गई। उसके साथ ऊपर गई, तो हर एक चीज इसी तरह अपनी जगह पर पाई मानो अपना ही घर हो।

जग्गो ने लोटे में पानी रखकर कहा—इसी घर में भैया रहते थे, बेटी! आज पंद्रह रोज से घर सूना पड़ा हुआ है। हाथ-मुंह धोकर दही-चीनी खा लो न, बेटी! भैया का हाल तो अभी तुम्हें न मालूम हुआ होगा।

जालपा ने सिर हिलाकर कहा—कुछ ठीक-ठीक नहीं मालूम हुआ। वह जो पत्र छपता है, वहां मालूम हुआ था कि पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है।

देवीदीन भी ऊपर आ गया था। बोला—गिरफ्तार तो किया था, पर अब तो वह एक मुकदमे में सरकारी गवाह हो गए हैं। परागराज में अब उन पर कोई मुकदमा न चलेगा और साइत नौकरी-चाकरी भी मिल जाए।

जालपा ने गर्व से कहा—क्या इसी डर से वह सरकारी गवाह हो गए हैं? वहां तो उन

पर कोई मामला ही नहीं है। मुकदमा क्यों चलेगा?

देवीदीन ने डरते-डरते कहा—कुछ रुपये-पैसे का मुआमला था न?

जालपा ने मानो आहत होकर कहा—वह कोई बात न थी। ज्योंही हम लोगों को मालूम हुआ कि कुछ सरकारी रकम इनसे खर्च हो गई है, उसी वक्त पहुंचा दी। यह व्यर्थ घबड़ाकर चले आए और फिर ऐसी चुप्पी साधी कि अपनी खबर तक न दी।

देवीदीन का चेहरा जगमगा उठा, मानो किसी व्यथा से आराम मिल गया हो। बोला—तो यह हम लोगों को क्या मालूम ! बार-बार समझाया कि घर पर खत-पत्तर भेज दो, लोग घबड़ाते होंगे; पर मारे शर्म के लिखते ही न थे। इसी धोखे में पड़े रहे कि परागराज में मुकदमा चल गया होगा। जानते तो सरकारी गवाह क्यों बनते?

'सरकारी गवाह' का आशय जालपा से छिपा न था। समाज में उनकी जो निंदा और अपकीर्ति होती है, यह भी उससे छिपी न थी। सरकारी गवाह क्यों बनाए जाते हैं, किस तरह प्रलोभन दिया जाता है, किस भांति वह पुलिस के पुतले बनकर अपने ही मित्रों का गला घोंटते हैं, यह उसे मालूम था। मगर कोई आदमी अपने बुरे आचरण पर लज्जित होकर भी सत्य का उद्घाटन करे, छल और कपट का आवरण हटा दे, तो वह सज्जन है, उसके साहस की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। मगर शर्त यही है कि वह अपनी गोष्ठी के साथ किए का फल भोगने को तैयार रहे। हंसता-खेलता फांसी पर चढ़ जाए तो वह सच्चा वीर है, लेकिन अपने प्राणों की रक्षा के लिए स्वार्थ के नीच विचार से, दंड की कठोरता से भयभीत होकर अपने साथियों से दगा करे, आस्तीन का सांप बन जाए तो वह कायर है, पतित है, बेहया है। विश्वासघात डाकुओं और समाज के शत्रुओं में भी उतना ही हेय है जितना किसी अन्य क्षेत्र में। ऐसे प्राणी को समाज कभी क्षमा नहीं करता, कभी नहीं—जालपा इसे खूब समझती थी। यहां तो समस्या और भी जटिल हो गई थी। रमा ने दंड के भय से अपने किए हुए पापों का परदा नहीं खोला था। उसमें कम-से-कम सच्चाई तो होती। निंद्य होने पर भी आंशिक सच्चाई का एक गुण तो होता। यहां तो उन पापों का परदा खोला गया था, जिनकी हवा तक उसे न लगी थी। जालपा को सहसा इसका विश्वास न आया। अवश्य कोई-न-कोई बात हुई होगी, जिसने रमा को सरकारी गवाह बनने पर मजबूर कर दिया होगा। सकुचाती हुई बोली—क्या यहां भी कोई कोई बात हो गई थी?

देवीदीन उसकी मनोव्यथा का अनुभव करता हुआ बोला—कोई बात नहीं। यहां वह मेरे साथ ही परागराज से आए। जब से आए यहां से कहीं गए नहीं। बाहर निकलते ही न थे। बस एक दिन निकले और उसी दिन पुलिस ने पकड़ लिया। एक सिपाही को आते देखकर डरे कि मुझी को पकड़ने आ रहा है, भाग खड़े हुए। उस सिपाही को खटका हुआ। उसने शुबहे में गिरफ्तार कर लिया। मैं भी इनके पीछे थाने में पहुंचा। दारोगा पहले तो रिसवत मांगते थे, मगर जब मैं घर से रुपये लेकर गया, तो वहां और ही गुल खिल चुका था। अफसरों में न जाने क्या बातचीत हुई। उन्हें सरकारी गवाह बना लिया। मुझसे तो भैया ने कहा कि इस मुआमले में बिल्कुल झूठ न बोलना पड़ेगा। पुलिस का मुकदमा सच्चा है। सच्ची बात कह देने में क्या हरज है। मैं चुप हो रहा। क्या करता

जग्गो—न जाने सबों ने कौन-सी बूटी सुंघा दी। भैया तो ऐसे न थे। दिन-भर अम्मां-अम्मां करते रहते थे। दुकान पर सभी तरह के लोग आते हैं, मर्द भी औरत भी। क्या मजाल कि किसी की ओर आंख उठाकर देखा हो।

देवीदीन—कोई बुराई न थी। मैंने तो ऐसा लड़का ही नहीं देखा। उसी धोखे में आ गए।

जालपा ने एक मिनट सोचने के बाद कहा—क्या उनका बयान हो गया?

'हां, तीन दिन बराबर होता रहा। आज खतम हो गया।'

जालपा ने उद्विग्न होकर कहा—तो अब कुछ नहीं हो सकता? मैं उनसे मिल सकती हूं?

देवीदीन जालपा के इस प्रश्न पर मुस्करा पड़ा। बोला—हां, और क्या, जिसमें जाकर भंडाफोड़ कर दो, सारा खेल बिगाड़ दो! पुलिस ऐसी गधी नहीं है। आजकल कोई भी उनसे नही मिलने पाता। कड़ा पहरा रहता है।

इस प्रश्न पर इस समय और कोई बातचीत न हो सकती थी। इस गुत्थी को सुलझाना आसान न था। जालपा ने गोपी को बुलाया। वह छज्जे पर खड़ा सड़क का तमाशा देख रहा था। ऐसा शरमा रहा था, मानो ससुराल आया हो। धीरे-धीरे आकर खड़ा हो गया।

जालपा ने कहा—मुंह-हाथ धोकर कुछ खा तो लो। दही तो तुम्हें बहुत अच्छा लगता है।

गोपी लजा कर फिर बाहर चला गया।

देवीदीन ने मुस्कराकर कहा—हमारे सामने न खाएंगे। हम दोनों चले जाते हैं। तुम्हें जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कह देना, बहूजी! तुम्हारा ही घर है। भैया को तो हम अपना ही समझते थे। और हमारे कौन बैठा हुआ है।

जग्गो ने गर्व से कहा—वह तो मेरे हाथ का बनाया खा लेते थे। गरूर तो छू नहीं गया था।

जालपा ने मुस्कराकर कहा—अब तुम्हें भोजन न बनाना पड़ेगा, मांजी, मैं बना दिया करूंगी।

जग्गो ने आपत्ति की—हमारी बिरादरी में दूसरों के हाथ का खाना मना है, बहू। अब चार दिन के लिए बिरादरी में नक्कू क्या बनूं!

जालपा—हमारी बिरादरी में भी तो दूसरों का खाना मना है।

जग्गो—यहां तुम्हें कौन देखने आता है। फिर पढ़े-लिखे आदमी इन बातों का विचार भी तो नहीं करते। हमारी बिरादरी तो मूरख लोगों की है।

जालपा—यह तो अच्छा नहीं लगता कि तुम बनाओ और मैं खाऊं। जिसे बहू बनाया, उसके हाथ का खाना पड़ेगा। नहीं खाना था, तो बहू क्यों बनाया।

देवीदीन ने जग्गो की ओर प्रशंसा-सूचक नेत्रों से देखकर कहा—बहू ने बात पते की कह दी। इसका जवाब सोचकर देना। अभी चलो। इन लोगों को जरा आराम करने दो!

दोनों नीचे चले गए, तो गोपी ने आकर कहा—भैया इसी खटिक के यहां रहते थे क्या? खटिक ही तो मालूम होते हैं।

जालपा ने फटकारकर कहा—खटिक हों या चमार हों; लेकिन हमसे और तुमसे सौगुने अच्छे हैं। एक परदेशी आदमी को छः महीने तक अपने घर में ठहराया, खिलाया, पिलाया।

हममें है इतनी हिम्मत ! यहां तो कोई मेहमान आ जाता है, तो वह भी भारी हो जाता है। अगर यह नीचे हैं, तो हम इनसे कहीं नीचे हैं।

गोपी मुंह-हाथ धो चुका था। मिठाई खाता हुआ बोला—किसी को ठहरा लेने से कोई ऊंचा नहीं हो जाता। चमार कितना ही दान-पुण्य करे, पर रहेगा तो चमार ही।

जालपा—मैं उस चमार को उस पंडित से अच्छा समझूंगी, जो हमेशा दूसरों का धन खाया करता है।

जलपान करके गोपी नीचे चला गया। शहर घूमने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जालपा की इच्छा कुछ खाने की न हुई। उसके सामने एक जटिल समस्या खड़ी थी—रमा को कैसे इस दलदल से निकाले। उस निंदा और उपहास की कल्पना ही से उसका अभिमान आहत हो उठता था। हमेशा के लिए वह सबकी आंखों से गिर जाएंगे, किसी को मुंह न दिखा सकेंगे।

फिर, बेगुनाहों का खून किसकी गर्दन पर होगा। अभियुक्तों में न जाने कौन अपराधी है, कौन निरपराध है, कितने द्वेष के शिकार हैं, कितने लोभ के। सभी सजा पा जाएंगे। शायद दो-चार को फांसी भी हो जाय। किस पर यह हत्या पड़ेगी?

उसने फिर सोचा, माना किसी पर हत्या न पड़ेगी। कौन जानता है, हत्या पड़ती है या नहीं; लेकिन अपने स्वार्थ के लिए—ओह ! कितनी बड़ी नीचता है। यह कैसे इस बात पर राजी हुए ! अगर म्युनिसिपैलिटी के मुकदमा चलाने का भय भी था, तो दो-चार साल की कैद के सिवा और क्या होता? उससे बचने के लिए इतनी घोर नीचता पर उतर आए !

अब अगर मालूम भी हो जाए कि म्युनिसिपैलिटी कुछ नहीं कर सकती, तो अब हो ही क्या सकता है। इनकी शहादत तो हो ही गई।

सहसा एक बात किसी भारी कील की तरह उसके हृदय में चुभ गई। क्यों न यह अपना बयान बदल दें। उन्हें मालूम हो जाए कि म्युनिसिपैलिटी उनका कुछ नहीं कर सकती, तो शायद वह खुद ही अपना बयान बदल दें। यह बात उन्हें कैसे बताई जाए? किसी तरह संभव है।

वह अधीर होकर नीचे उतर आई और देवीदीन को इशारे से बुलाकर बोली—क्यों दादा, उनके पास कोई खत भी नहीं पहुंच सकता? पहरे वालों को दस-पांच रुपये देने से तो शायद खत पहुंच जाय।

देवीदीन ने गर्दन हिलाकर कहा—मुसकिल है। पहरे पर बड़े जंचे हुए आदमी रखे गए हैं। मैं दो बार गया था। सबों ने फाटक के सामने खड़ा भी न होने दिया।

'उस बंगले के आसपास क्या है?'

'एक ओर तो दूसरा बंगला है। एक ओर एक कलमी आम का बाग है और सामने सड़क है।'

'हां, शाम को घूमने-घामने तो निकलते ही होंगे?'

'हां, बाहर कुरसी डालकर बैठते हैं। पुलिस के दो-एक अफसर भी साथ रहते हैं।'

'अगर कोई उस बाग में छिपकर बैठे, तो कैसा हो ! जब उन्हें अकेले देखे, खत फेंक दे। वह जरूर उठा लेंगे।'

देवीदीन ने चकित होकर कहा—हां, हो तो सकता है; लेकिन अकेले मिलें तब तो !

जरा और अंधेरा हुआ, तो जालपा ने देवीदीन को साथ लिया और रमानाथ का बंगला देखने चली। एक पत्र लिखकर जेब में रख लिया था। बार-बार देवीदीन से पूछती, अब कितनी दूर है? अच्छा ! अभी इतनी ही दूर और ! वहां हाते में रोशनी तो होगी ही उसके दिल में लहरें-सी उठने लगीं। रमा अकेले टहलते हुए मिल जाएं, तो क्या पूछना। रूमाल में बांधकर खत को उनके सामने फेंक दूं। उनकी सूरत बदल गई होगी।

सहसा उसे शंका हो गई—कहीं वह पत्र पढ़कर भी अपना बयान न बदलें, तब क्या होगा? कौन जाने अब मेरी याद भी उन्हें है या नहीं। कहीं मुझे देखकर वह मुंह फेर लें तो? इस शंका से वह सहम उठी। देवीदीन से बोली—क्यों दादा, वह कभी घर की चर्चा करते थे?

देवीदीन ने सिर हिलाकर कहा—कभी नहीं। मुझसे तो कभी नहीं की। उदास बहुत रहते थे।

इन शब्दों ने जालपा की शंका को और भी सजीव कर दिया। शहर की घनी बस्ती से ये लोग दूर निकल आए थे। चारों ओर सन्नाटा था। दिन भर वेग से चलने के बाद इस समय पवन भी विश्राम कर रहा था। सड़क के किनारे के वृक्ष और मैदान चन्द्रमा के मंद प्रकाश मे हतोत्साह, निर्जीव-से मालूम होते थे। जालपा को ऐसा आभास होने लगा कि उसके प्रयास का कोई फल नहीं है, उसकी यात्रा का कोई लक्ष्य नहीं है, इस अनंत मार्ग में उसकी दशा उस अनाथ की-सी है जो मुट्ठीभर अन्न के लिए द्वार-द्वार फिरता हो। वह जानता है, अगले द्वार पर उसे अन्न न मिलेगा, गालियां ही मिलेंगी, फिर भी वह हाथ फैलाता है, बढ़ती मनाता है। उसे आशा का अवलंब नहीं निराशा ही का अवलंब है।

एकाएक सड़क के दाहनी तरफ बिजली का प्रकाश दिखाई दिया।

देवीदीन ने एक बंगले की ओर उंगली उठाकर कहा—यही उनका बंगला है।

जालपा ने डरते-डरते,उधर देखा, मगर बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। कोई आदमी न था। फाटक पर ताला पड़ा हुआ था।

जालपा बोली--यहां तो कोई नहीं है।

देवीदीन ने फाटक के अंदर झांककर कहा—हां, शायद यह बगला छोड़ दिया।

'कहीं घूमने गए होंगे?'

'घूमने जाते तो द्वार पर पहरा होता। यह बंगला छोड़ दिया।'

'तो लौट चलें।'

'नहीं, जरा पता लगाना चाहिए, गए कहां?'

बंगले की दाहनी तरफ आमों के बाग में प्रकाश दिखाई दिया। शायद खटिक बाग की रखवाली कर रहा था। देवीदीन ने बाग में आकर पुकारा—कौन है यहां? किसने यह बाग लिया है?

एक आदमी आमों के झुरमुट से निकल आया। देवीदीन ने उसे पहचानकर कहा—अरे ! तुम हो जंगली? तुमने यह बाग लिया है?

जगंली ठिगना-सा गठीला आदमी था, बोला—हां दादा, ले लिया, पर कुछ है नहीं। डंड ही भरना पड़ेगा। तुम यहां कैसे आ गए?

'कुछ नहीं, यों ही चला आया था। इस बंगले वाले आदमी क्या हुए?'

जंगली ने इधर-उधर देखकर कनबतियों में कहा—इसमें वही मुखबर टिका हुआ था। आज सब चले गए। सुनते हैं, पंद्रह-बीस दिन में आएंगे, जब फिर हाइकोर्ट में मुकदमा पेस होगा। पढ़े-लिखे आदमी भी ऐसे दगाबाज होते हैं, दादा ! सरासर झूठी गवाही दी। न जाने इसके बाल-बच्चे हैं या नहीं, भगवान् को भी नहीं डरा !

जालपा वहीं खड़ी थी। देवीदीन ने जंगली को और जहर उगलने का अवसर न दिया। बोला—तो पंद्रह-बीस दिन में आएंगे, खूब मालूम है?

जंगली—हां, वही पहरे वाले कह रहे थे।

'कुछ मालूम हुआ, कहां गए हैं?'

'वही मौका देखने गए हैं जहां वारदात हुई थी।'

देवीदीन चिलम पीने लगा और जालपा सड़क पर आकर टहलने लगी। रमा की यह निंदा सुनकर उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता था। उसे रमा पर क्रोध न आया, ग्लानि न आई, उसे हाथों का सहारा देकर इस दलदल से निकालने के लिए उसका मन विकल हो उठा। रमा चाहे उसे दुत्कार ही क्यों न दे, उसे ठुकरा ही क्यों न दे, वह उसे अपयश के अंधेरे खड्ड में न गिरने देगी।

जब दोनों यहां से चले तो जालपा ने पूछा—इस आदमी से कह दिया न कि जब वह आ जायं तो हमें खबर दे दे?

'हां, कह दिया।'

## सैंतीस

एक महीना गुजर गया। गोपीनाथ पहले तो कई दिन कलकत्ते की सैर करता रहा, मगर चार-पांच दिन में ही यहां से उसका जी ऐसा उचाट हुआ कि घर की रट लगानी शुरू की। आखिर जालपा ने उसे लौटा देना ही अच्छा समझा। यहां तो वह छिप-छिप कर रोया करता था।

जालपा कई बार रमा के बंगले तक हो आई। वह जानती थी कि अभी रमा नहीं आए हैं। फिर भी वहां का एक चक्कर लगा आने में उसको एक विचित्र संतोष होता था।

जालपा कुछ पढ़ते-पढ़ते या लेटे-लेटे थक जाती, तो एक क्षण के लिए खिड़की के सामने आ खड़ी होती थी। एक दिन शाम को वह खिड़की के सामने आई, तो सड़क पर मोटरों की एक कतार नजर [illegible] इतनी मोटरें कहां जा रही हैं ! गौर से देखने लगी। छः मोटरें थीं। उनमें पुलिस [illegible] एक में सब सिपाही थे। आखिरी मोटर पर जब उसकी निगाह पड़ी तो, [illegible] बिजली की लहर दौड़ गई। वह ऐसी तन्मय हुई कि खिड़की से जीने तक [illegible] को रोक लेना चाहती हो; पर इसी एक पल में उसे मालूम हो गया कि मेरे ना[illegible] मोटरें निकल जाएंगी। वह फिर खिड़की के सामने आयी। रमा अब बिल्कुल सामने आ गया था। उसकी आंखें खिड़की की ओर लगी हुई

थीं। जालपा ने इशारे से कुछ कहना चाहा; पर संकोच ने रोक दिया। ऐसा मालूम हुआ कि रमा की मोटर कुछ धीमी हो गई है। देवीदीन की आवाज भी सुनाई दी; मगर मोटर रुकी नहीं। एक ही क्षण में वह आगे बढ़ गई; पर रमा अब भी रह-रहकर खिड़की की ओर ताकता जाता था।

जालपा ने जीने पर आकर कहा—दादा !

देवीदीन ने सामने आकर कहा—भैया आ गए ! वह क्या मोटर जा रही है !

यह कहता हुआ वह ऊपर आ गया। जालपा ने उत्सुकता को संकोच से दबाते हुए कहा—तुमसे कुछ कहा?

देवीदीन—और क्या कहते, खाली राम-राम की। मैंने कुसल पूछी। हाथ से दिलासा देते चले गए। तुमने देखा कि नहीं?

जालपा ने सिर झुकाकर कहा—देखा क्यों नहीं? खिड़की पर जरा खड़ी थी।

'उन्होंने भी तुम्हें देखा होगा?'

'खिड़की की ओर ताकते तो थे।'

'बहुत चकराए होंगे कि यह कौन है !'

'कुछ मालूम हुआ मुकदमा कब पेश होगा?'

'कल ही तो।'

'कल ही ! इतनी जल्द। तब तो जो कुछ करना है आज ही करना होगा। किसी तरह मेरा खत उन्हें मिल जाता, तो काम बन जाता।'

देवीदीन ने इस तरह ताका मानो कह रहा है, तुम इस काम को जितना आसान समझती हो उतना आसान नहीं है।

जालपा ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा—क्या तुम्हें संदेह है कि वह अपना बयान बदलने पर राजी होंगे?

देवीदीन को अब इसे स्वीकार करने के सिवा और कोई उपाय न सूझा। बोला—हां, बहूजी, मुझे इसका बहुत अंदेसा है। और सच पूछो तो है भी जोखिम। अगर वह बयान बदल भी दें, तो पुलिस के पंजे से नहीं छूट सकते। वह कोई दूसरा इल्जाम लगा कर उन्हें पकड़ लेगी और फिर नया मुकदमा चलावेगी।

जालपा ने ऐसी नजरों से देखा, मानो वह इस बात से जरा भी नहीं डरती। फिर बोली—दादा, मैं उन्हें पुलिस के पंजे से बचाने का ठेका नहीं लेती। मैं केवल यह चाहती हूं कि हो सके तो अपयश से उन्हें बचा लूं। उनके हाथों इतने घरों की बरबादी होते नहीं देख सकती। अगर वह सचमुच डकैतियों में शरीक होते, तब भी मैं यही चाहती की वह अंत तक अपने साथियों के साथ रहें और जो सिर पर पड़े उसे खुशी से झेलें। मैं यह कभी न पसंद करती कि वह दूसरों को दगा देकर मुखबिर बन जायं; लेकिन यह मामला तो बिल्कुल झूठ है। मैं यह किसी तरह नहीं बरदाश्त कर सकती कि वह अपने स्वार्थ के लिए झूठी गवाही दें। अगर उन्होंने खुद अपना बयान न बदला, तो मैं अदालत में जाकर सारा कच्चा चिट्ठा खोल दूंगी, चाहे नतीजा कुछ भी हो। वह हमेशा के लिए मुझे त्याग दें, मेरी सूरत न देखें, यह मंजूर है; पर यह नहीं हो सकता कि वह इतना बड़ा कलंक माथे पर लगावें। मैंने अपने पत्र में सब लिख दिया है।

देवीदीन ने उसे आदर की दृष्टि से देखकर कहा—तुम सब कर लोगी बहू, अब मुझे विश्वास हो गया। जब तुमने कलेजा इतना मजबूत कर लिया है, तो तुम सब कुछ कर सकती हो।

'तो यहां से नौ बजे चलें?'

'हां, मैं तैयार हूं।'

## अड़तीस

वह रमानाथ, जो पुलिस के भय से बाहर न निकलता था, जो देवीदीन के घर में चोरों की तरह पड़ा जिंदगी के दिन पूरे कर रहा था, आज दो महीनों से राजसी भोग-विलास में डूबा हुआ है। रहने को सुंदर सजा हुआ बंगला है, सेवा-टहल के लिए चौकीदारों का एक दल, सवारी के लिए मोटर। भोजन पकाने के लिए एक काश्मीरी बावरची है। बड़े-बड़े अफसर उसका मुंह ताका करते हैं। उसके मुंह से बात निकली नहीं कि पूरी हुई। इतने ही दिनों में उसके मिजाज में इतनी नफासत आ गई है, मानो वह खानदानी रईस हो। विलास ने उसकी विवेक-बुद्धि को सम्मोहित-सा कर दिया है। उसे कभी इसका खयाल भी नहीं आता कि मैं क्या कर रहा हूं और मेरे हाथों कितने बेगुनाहों का खून हो रहा है। उसे एकांत-विचार का अवसर ही नहीं दिया जाता। रात को वह अधिकारियों के साथ सिनेमा या थिएटर देखने जाता है, शाम को मोटरों की सैर होती है। मनोरंजन के नित्य नए सामान होते रहते हैं। जिस दिन अभियुक्तों को मजिस्ट्रेट ने सेशन सुपुर्द किया, सबसे ज्यादा खुशी उसी को हुई। उसे अपना सौभाग्य-सूर्य उदय होता हुआ मालूम होता था।

पुलिस को मालूम था कि सेशन जज के इजलास में यह बहार न होगी। संयोग से जज हिन्दुस्तानी थे और निष्पक्षता के लिए बदनाम। पुलिस हो या चोर, उनकी निगाह में बराबर था। वह किसी के साथ रू-रिआयत न करते थे। इसलिए पुलिस ने रमा को एक बार उन स्थानों की सैर कराना जरूरी समझा, जहां वारदातें हुई थीं। एक जमींदार की सजी-सजाई कोठी में डेरा पड़ा। दिन-भर लोग शिकार खेलते, रात को ग्रामोफोन सुनते, ताश खेलते और बजरों पर नदियों की सैर करते। ऐसा जान पड़ता था कि कोई राजकुमार शिकार खेलने निकला है।

इस भोग-विलास में रमा को अगर कोई अभिलाषा थी, तो यह कि जालपा भी यहां होती। जब तक वह पराश्रित था, दरिद्र था, उसकी विलासेंद्रियां मानो मूर्च्छित हो रही थीं। इन शीतल झोंकों ने उन्हें फिर सचेत कर दिया। वह इस कल्पना में मग्न था कि यह मुकदमा खत्म होते ही उसे अच्छी जगह मिल जायगी। तब वह जाकर जालपा को मना लावेगा और आनंद से जीवन-सुख भोगेगा। हां, वह नए प्रकार का जीवन होगा, उसकी मर्यादा कुछ और होगी, सिद्धांत कुछ और होंगे। उसमें कठोर संयम होगा और पक्का नियंत्रण! अब उसके जीवन का कुछ उद्देश्य होगा, कुछ आदर्श होगा। केवल खाना, सोना और रुपये के लिए हाय-हाय करना ही जीवन का व्यापार न होगा। इसी मुकदमे के साथ इस मार्ग-हीन जीवन का अंत हो जायगा।

दुर्बल इच्छा ने उसे यह दिन दिखाया था और अब एक नए और संस्कृत जीवन का स्वप्न दिखा रही थी। शराबियों की तरह ऐसे मनुष्य रोज ही संकल्प करते हैं; लेकिन उन संकल्पों का अंत क्या होता है? नए-नए प्रलोभन सामने आते रहते हैं और संकल्प की अवधि भी बढ़ती चली जाती है। नए प्रभात का उदय कभी नहीं होता।

एक महीना देहात की सैर के बाद रमा पुलिस के सहयोगियों के साथ अपने बंगले पर जा रहा था। रास्ता देवीदीन के घर के सामने से था; कुछ दूर ही से उसे अपना कमरा दिखाई दिया। अनायास ही उसकी निगाह ऊपर उठ गई। खिड़की के सामने कोई खड़ा था। इस वक्त देवीदीन वहां क्या कर रहा है? उसने जरा ध्यान से देखा। यह तो कोई औरत है ! मगर औरत कहां से आई? क्या देवीदीन ने वह कमरा किराए पर तो नहीं उठा दिया? ऐसा तो उसने कभी नहीं किया।

मोटर जरा और समीप आई तो उस औरत का चेहरा साफ नजर आने लगा। रमा चौंक पड़ा। यह तो जालपा है ! बेशक जालपा है ! मगर नहीं, जालपा यहां कैसे आयगी? मेरा पता-ठिकाना उसे कहां मालूम ! कहीं बुढ्ढे ने उसे खत तो नहीं लिख दिया? जालपा ही है। नायब दारोगा मोटर चला रहा था। रमा ने बड़ी मित्रता के साथ कहा—सरदार साहब, एक मिनट के लिए रुक जाइए। मैं जरा देवीदीन से एक बात कर लूं। नायब ने मोटर जरा धीमी कर दी; लेकिन फिर कुछ सोचकर उसे आगे बढ़ा दिया।

रमा ने तेज होकर कहा—आप तो मुझे कैदी बनाए हुए हैं।

नायब ने खिसियाकर कहा—आप तो जानते हैं, डिप्टी साहब कितनी जल्द जामे से बाहर हो जाते हैं।

बंगले पर पहुंचकर रमा सोचने लगा, जालपा से कैसे मिलूं। वहां जालपा ही थी, इसमें अब उसे कोई शुबहा न था। आंखों को कैसे धोखा देता। हृदय में एक ज्वाला-सी उठी हुई थी, क्या करूं? कैसे जाऊं? उसे कपड़े उतारने की सुधि भी न रही। पंद्रह मिनट तक वह कमरे के द्वार पर खड़ा रहा। कोई हिकमत न सूझी। लाचार पलंग पर लेटा रहा।

जरा ही देर में वह फिर उठा और सामने सहन में निकल आया। सड़क पर उसी वक्त बिजली रोशन हो गई। फाटक पर चौकीदार खड़ा था। रमा को उस पर इस समय इतना क्रोध आया, कि गोली मार दे। अगर मुझे कोई अच्छी जगह मिल गई, तो एक-एक से समझूंगा। तुम्हें तो डिसमिस कराके छोड़ूंगा। कैसा शैतान की तरह सिर पर सवार है। मुंह तो देखो जरा। मालूम होता है बकरी की दुम है। वाह रे आपकी पगड़ी। कोई टोकरी ढोने वाला कुली है। अभी कुत्ता भूंक पड़े, तो आप दुम दबाकर भागेंगे; मगर यहां ऐसे डटे खड़े हैं मानो किसी किले के द्वार की रक्षा कर रहे हैं।

एक चौकीदार ने आकर कहा—इसपिट्टर साहब ने बुलाया है। कुछ नए तवे मंगवाए हैं।

रमा ने झल्लाकर कहा—मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

फिर सोचने लगा। जालपा यहां कैसे आई? अकेले ही आई है या और कोई साथ है? जालिम ने बुड्ढे से एक मिनट भी बात नहीं करने दिया। जालपा पूछेगी तो जरूर, कि क्यों भागे थे। साफ-साफ कह दूंगा, उस समय और कर ही क्या सकता था। पर इन थोड़े दिनों के कष्ट ने

जीवन का प्रश्न तो हल कर दिया। अब आनंद से जिंदगी कटेगी। कोशिश करके उसी तरफ अपना तबादला करवा लूंगा। यह सोचते-सोचते रमा को खयाल आया कि जालपा भी यहां मेरे साथ रहे, तो क्या हरज है। बाहर वालों से मिलने की रोक-टोक है। जालपा के लिए क्या रुकावट हो सकती है। लेकिन इस वक्त इस प्रश्न को छेड़ना उचित नहीं। कल इसे तय करूंगा। देवीदीन भी विचित्र जीव है। पहले तो कई बार आया, पर आज उसने भी सन्नाटा खींच लिया। कम-से-कम इतना तो हो सकता था कि आकर पहरे वाले कांस्टेबल से जालपा के आने की खबर मुझे देता। फिर मैं देखता कि कौन जालपा को नहीं आने देता। पहले इस तरह की कैद जरूरी थी; पर अब तो मेरी परीक्षा पूरी हो चुकी। शायद सब लोग खुशी से राजी हो जाएंगे।

रसोइया थाली लाया। मांस एक ही तरह का था। रमा थाली देखते ही झल्ला गया। इन दिनों रुचिकर भोजन देखकर ही उसे भूख लगती थी। जब तक चार-पांच प्रकार का मांस न हो, चटनी-अचार न हो, उसकी तृप्ति न होती थी।

बिगड़कर बोला—क्या खाऊं तुम्हारा सिर? थाली उठा ले जाओ।

रसोइए ने डरते-डरते कहा—हुजूर, इतनी जल्द और चीजें कैसे बनाता! अभी कुल दो घंटे तो आए हुए हैं

'दो घंटे तुम्हारे लिए थोड़े होते हैं!'

'अब हुजूर से क्या कहूं!'

'मत बको।'

'हुजूर '

'मत बको? डैम!'

रसोइए ने फिर कुछ न कहा। बोतल लाया, बर्फ तोड़कर ग्लास में डाली और पीछे हटकर खड़ा हो गया।

रमा को इतना क्रोध आ रहा था कि रसोइए को नोंच खाए। उसका मिजाज इन दिनों बहुत तेज हो गया था।

शराब का दौर शुरू हुआ, तो रमा का गुस्सा और भी तेज हुआ। लाल-लाल आंखों से देखकर बोला—चाहूं तो अभी तुम्हारा कान पकड़कर निकाल दूं। अभी, इसी दम! तुमने समझा क्या है!

उसका क्रोध बढ़ता देखकर रसोइया चुपके-से सरक गया। रमा ने ग्लास लिया और दो-चार लुकमे खाकर बाहर सहन में टहलने लगा। यही धुन सवार थी, कैसे यहां से निकल जाऊं।

एकाएक उसे ऐसा जान पड़ा कि तार के बाहर वृक्षों की आड़ में कोइ है। हां, कोई खड़ा उसकी तरफ ताक रहा है। शायद इशारे से अपनी तरफ बुला रहा है। रमानाथ का दिल धकड़ने लगा। कहीं षड्यंत्रकारियों ने उसके प्राण लेने की तो नहीं ठानी है! यह शंका उसे सदैव बनी रहती थी। इसी खयाल से वह रात को बंगले के बाहर बहुत कम निकलता था। आत्म-रक्षा के भाव ने उसे अंदर चले जाने की प्रेरणा की। उसी वक्त एक मोटर सड़क पर निकली। उसके प्रकाश में रमा ने देखा, वह अंधेरी छाया स्त्री है। उसकी साड़ी साफ नजर आ रही है। फिर उसे ऐसा मालूम हुआ कि वह स्त्री उसकी ओर आ रही है। उसे फिर शंका हुई, कोई मर्द यह वेश

बदलकर मेरे साथ छल तो नहीं कर रहा है। वह ज्यों-ज्यों पीछे हटता गया, वह छाया उसकी ओर बढ़ती गई, यहां तक कि तार के पास आकर उसने कोई चीज रमा की तरफ फेंकी। रमा चीख मारकर पीछे हट गया; मगर वह केवल एक लिफाफा था। उसे कुछ तस्कीन हुई। उसने फिर जो सामने देखा, तो वह छाया अंधकार में विलीन हो गई थी। रमा ने लपककर वह लिफाफा उठा लिया। भय भी था और कौतूहल भी। भय कम था, कौतूहल अधिक। लिफाफे को हाथ में लेकर देखने लगा। सिरनामा देखते ही उसके हृदय में फुरहरियां-सी उड़ने लगीं। लिखावट जालपा की थी। उसने फौरन लिफाफा खोला। जालपा ही की लिखावट थी। उसने एक ही सांस में पत्र पढ़ डाला और तब एक लंबी सांस ली। उसी सांस के साथ चिंता का वह भीषण भार जिसने आज छः महीने से उसकी आत्मा को दबाकर रक्खा था, वह सारी मनोव्यथा जो उसका जीवन-रक्त चूस रही थी, वह सारी दुर्बलता, लज्जा, ग्लानि मानो उड़ गई, छू मंतर हो गई। इतनी स्फूर्ति, इतना गर्व, इतना आत्म-विश्वास उसे कभी न हुआ था। पहली सनक यह सवार हुई, अभी चलकर दारोगा से कह दूं, मुझे इस मुकदमे से कोई सरोकार नहीं है; लेकिन फिर खयाल आया, बयान तो अब हो ही चुका, जितना अपयश मिलना था, मिल ही चुका, अब उसके फल से क्यों हाथ धोऊं। मगर इन सबों ने मुझे कैसा चकमा दिया है ! और अभी तक मुगालते में डाले हुए हैं। सब-के-सब मेरी दोस्ती का दम भरते हैं, मगर अभी तक असली बात मुझसे छिपाए हुए हैं। अब भी इन्हें मुझ पर विश्वास नहीं। अभी इसी बात पर अपना बयान बदल दूं, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो। यही न होगा, मुझे कोई जगह न मिलेगी। बला से, इन लोगों के मनसूबे तो खाक में मिल जाएंगे। इस दगाबाजी की सजा तो मिल जायगी। और, यह कुछ न सही, इतनी बड़ी बदनामी से तो बच जाऊंगा। यह सब शरारत जरूर करेंगे, लेकिन झूठा इल्जाम लगाने के सिवा और कर ही क्या सकते हैं। जब मेरा यहा रहना साबित ही नहीं तो मुझ पर दोष ही क्या लग सकता है। सबों के मुंह में कालिख लग जायगी। मुंह तो दिखाया न जाएगा मुकदमा क्या चलाएंगे।

मगर नहीं, इन्होंने मुझसे चाल चली है, तो मैं भी इनसे वही चाल चलूंगा। कह दूगा, अगर मुझे आज कोई अच्छी जगह मिल जाएगी, तो मैं शहादत दूंगा, वरना साफ कह दूंगा, इस मामले से मेरा कोई संबंध नहीं। नहीं तो पीछे से किसी छोटे-मोटे थाने में नायब दारोगा बनाकर भेज दें और वहां सड़ा करूं। लूंगा इंस्पेक्टरी और कल दस बजे मेरे पास नियुक्ति का परवाना आ जाना चाहिए। वह चला कि इसी वक्त दारोगा से कह दूं, लेकिन फिर रुक गया। एक बार जालपा से मिलने के लिए उसके प्राण तड़प रहे थे। उसके प्रति इतना अनुराग, इतनी श्रद्धा उसे कभी न हुई थी, मानो वह कोई दैवी-शक्ति हो जिसे देवताओं ने उसकी रक्षा के लिए भेजा हो।

दस बज गए थे। रमानाथ ने बिजली गुल कर दी और बरामदे में आकर जोर से किवाड़ बंद कर दिए, जिसमें पहरे वाले सिपाही को मालूम हो, अंदर से किवाड़ बंद करके सो रहे हैं। वह अंधेरे बरामदे में एक मिनट खड़ा रहा। तब आहिस्ता से उतरा और कांटेदार फेंसिंग के पास आकर सोचने लगा, उस पार कैसे जाऊं? शायद अभी जालपा बगीचे में हो। देवीदीन जरूर उसके साथ होगा। केवल यही तार उसकी राह रोके हुए था। उसे फांद जाना असंभव था। उसने तारों के बीच से होकर निकल जाने का निश्चय किया। अपने सब कपड़े समेट लिए और कांटों

को बचाता हुआ सिर और कंधे को तार के बीच में डाला; पर न जाने कैसे कपड़े फंस गए। उसने हाथ से कपड़ों को छुड़ाना चाहा, तो आस्तीन कांटों में फंस गई। धोती भी उलझी हुई थी। बेचारा बड़े सकंट में पड़ा। न इस पार जा सकता था, न उस पार। जरा भी असावधानी हुई और कांटे उसकी देह में चुभ जाएंगे।

मगर इस वक्त उसे कपड़ों की परवा न थी। उसने गर्दन और आगे बढ़ाई और कपड़ों में लंबा चीरा लगाता उस पार निकल गया। सारे कपड़े तार-तार हो गए। पीठ में भी कुछ खरोंचे लगे; पर इस समय कोई बंदूक का निशाना बांधकर भी उसके सामने खड़ा हो जाता, तो भी वह पीछे न हटता। फटे हुए कुरते को उसने वहीं फेंक दिया; गले की चादर फट जाने पर भी काम दे सकती थी, उसे उसने ओढ़ लिया, धोती समेट ली और बगीचे में घूमने लगा। सन्नाटा था। शायद रखवाला खटिक खाना खाने गया हुआ था। उसने दो-तीन बार धीरे-धीरे जालपा का नाम लेकर पुकारा भी। किसी की आहट न मिली; पर निराशा होने पर भी मोह ने उसका गला न छोड़ा। उसने एक पेड़ के नीचे जाकर देखा। समझ गया, जालपा चली गई। वह उन्हीं पैरों देवीदीन के घर की ओर चला। उसे जरा भी शोक न था। बला से किसी को मालूम हो जाय कि मैं बंगले से निकल आया हूं, पुलिस मेरा कर ही क्या सकती है। मैं कैदी नहीं हूं, गुलामी नहीं लिखाई है।

आधी रात हो गई थी। देवीदीन भी आध घंटा पहले लौटा था और खाना खाने जा रहा था कि एक नंगे-धड़ंगे आदमी को देखकर चौंक पड़ा। रमा ने चादर सिर पर बांध ली थी और देवीदीन को डराना चाहता था।

देवीदीन ने सशंक होकर कहा—कौन है?

सहसा पहचान गया और झपटकर उसका हाथ पकड़ता हुआ बोला—तुमने तो भैया खूब भेस बनाया है? कपड़े क्या हुए?

रमानाथ—तार से निकल रहा था। सब उसके कांटों में उलझकर फट गए।

देवीदीन—राम राम ! देह में तो कांटे नहीं चुभे?

रमानाथ—कुछ नहीं, दो-एक खरोंचे लग गए। मैं बहुत बचाकर निकला।

देवीदीन—बहू की चिट्ठी मिल गई न?

रमानाथ—हां, उसी वक्त मिल गई थी। क्या वह भी तुम्हारे साथ थी?

देवीदीन—वह मेरे साथ नहीं थीं, मैं उनके साथ था। जब से तुम्हें मोटर पर आते देखा, तभी से जाने-जाने लगाए हुए थीं।

रमानाथ—तुमने कोई खत लिखा था?

देवीदीन—मैंने कोई खत-पत्तर नहीं लिखा भैया। जब वह आईं तो मुझे आप ही अचंभा हुआ कि बिना जाने-बूझे कैसे आ गईं। पीछे से उन्होंने बताया। वह सतरंज वाला नकसा उन्हीं ने पराग से भेजा था और इनाम भी वहीं से आया था।

रमा की आंखें फैल गईं। जालपा की चतुराई ने उसे विस्मय में डाल दिया। इसके साथ ही पराजय के भाव ने उसे कुछ खिन्न कर दिया। यहां भी उसकी हार हुई ! इस बुरी तरह !

बुढ़िया ऊपर गई हुई थी। देवीदीन ने जीने के पास जाकर कहा—अरे क्या करती है? बहू

से कह दे। एक आदमी उनसे मिलने आया है।

यह कहकर देवीदीन ने फिर रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—चलो, अब सरकार में तुम्हारी पेसी होगी। बहुत भागे थे। बिना वारंट के पकड़े गए। इतनी आसानी से पुलिस भी न पकड़ सकती।

रमा का मनोल्लास द्रवित हो गया था। लज्जा से गड़ा जाता था। जालपा के प्रश्नों का उसके पास क्या जवाब था। जिस भय से वह भागा था, उसने अंत में उसका पीछा करके उसे परास्त ही कर दिया। वह जालपा के सामने सीधी आंखें भी तो न कर सकता था। उसने हाथ छुड़ा लिया और जीने के पास ठिठक गया। देवीदीन ने पूछा—क्यों रुक गए?

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—चलो, मैं आता हूं।

बुढ़िया ने ऊपर ही से कहा—पूछो, कौन आदमी है, कहां से आया है?

देवीदीन ने विनोद किया—कहता है, मैं जो कुछ कहूंगा, बहू से ही कहूंगा।

'कोई चिट्ठी लाया है?'

'नहीं।''

सन्नाटा हो गया। देवीदीन ने एक क्षण के बाद पूछा—कह दूं, लौट जाय?

जालपा जीने पर आकर बोली—कौन आदमी है, पूछती तो हूं।

'कहता है, बड़ी दूर से आया हूं।'

'है कहां?'

'यह क्या खड़ा है।'

'अच्छा, बुला लो।'

रमा चादर ओढ़े, कुछ झिझकता, कुछ झेंपता, कुछ डरता, जीने पर चढ़ा। जालपा ने उसे देखते ही पहचान लिया। तुरंत दो कदम पीछे हट गई। देवीदीन वहां न होता तो वह दो कदम और आगे बढ़ी होती।

उसकी आंखों में कभी इतना नशा न था, अंगों में कभी इतनी चपलता न थी, कपोल कभी इतने न दमके थे, हृदय में कभी इतना मृदु कंपन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।

## उनतालीस

वियोगियों के मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है, जो बातों में कट जाती है। रमा और जालपा, दोनों ही को अपनी छः महीने की कथा कहनी थी। रमा ने अपना गौरव बढ़ाने के लिए अपने कष्टों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया। जालपा ने अपनी कथा में कष्टों की चर्चा तक न आने दी। वह डरती थी इन्हें दुःख होगा, लेकिन रमा को उसे रुलाने में विशेष आनंद आ रहा था। वह क्यों भागा, किसलिए भागा, कैसे भागा, यह सारी गाथा उसने करुण शब्दों में कही और जालपा ने सिसक-सिसककर सुनी। वह अपनी बातों से उसे प्रभावित करना चाहता था।

अब तक सभी बातों में उसे परास्त होना पड़ा था। जो बात उसे असूझ मालूम हुई, उसे जालपा ने चुटकियों में पूरा कर दिखाया। शतरंज वाली बात को वह खूब नमक-मिर्च लगाकर बयान कर सकता था; लेकिन वहां भी जालपा ही ने नीचा दिखाया। फिर उसकी कीर्ति-लालसा को इसके सिवा और क्या उपाय था कि अपने कष्टों की राई को पर्वत बनाकर दिखाए।

जालपा ने सिसककर कहा--तुमने यह सारी आफतें झेंली, पर हमें एक पत्र तक न लिखा। क्यों लिखते, हमसे नाता ही क्या था ! मुंह देखे की प्रीति थी ! आंख ओट पहाड़ ओट।

रमा ने हसरत से कहा--यह बात नहीं थी जालपा, दिल पर जो कुछ गुजरती थी दिल ही जानता है; लेकिन लिखने का मुंह भी तो हो। जब मुंह छिपाकर घर से भागा, तो अपनी विपत्ति-कथा क्या लिखने बैठता ! मैंने तो सोच लिया था, जब तक खूब रुपये न कमा लूंगा, एक शब्द भी न लिखूंगा।

जालपा ने आंसू-भरी आंखों में व्यंग्य भरकर कहा--ठीक ही था, रुपये आदमी से ज्यादा प्यारे होते ही हैं ! हम तो रुपये के यार हैं, तुम चाहे चोरी करो, डाका मारो, जाली नोट बनाओ, झूठी गवाही दो या भीख मांगो, किसी उपाय से रुपये लाओ। तुमने हमारे स्वभाव को कितना ठीक समझा है, वाह वाह ! गोसाईं जी भी तो कह गए हैं--स्वारथ लाइ करहिं सब प्रीति।

रमा ने झेंपते हुए कहा--नहीं-नहीं प्रिये, यह बात न थी। मैं यही सोचता था कि इन फटे-हालों जाऊंगा कैसे। सच कहता हूं, मुझे सबसे ज्यादा डर तुम्हीं से लगता था। सोचता था, तुम मुझे कितना कपटी, झूठा, कायर समझ रही होगी। शायद मेरे मन में यह भाव था कि रुपये की थैली देखकर तुम्हारा हृदय कुछ तो नर्म होगा।

जालपा ने व्यथित कंठ से कहा--मैं शायद उस थैली को हाथ से छूती भी नहीं। आज मालूम हो गया, तुम मुझे कितनी नीच, कितनी स्वार्थिनी, कितनी लोभिन समझते हो ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, सरासर मेरा दोष है। अगर मैं भली होती, तो आज यह दिन ही क्यों आता। जो पुरुष तीस-चालीस रुपये का नौकर हो, उसकी स्त्री अगर दो-चार रुपये रोज खर्च करे, हजार-दो हजार के गहने पहनने की नीयत रक्खे, तो वह अपनी और उसकी तबाही का सामान कर रही है। अगर तुमने मुझे इतना धनलोलुप समझा, तो कोई अन्याय नहीं किया। मगर एक बार जिस आग में जल चुकी, उसमें फिर न कूदूंगी। इन महीनों में मैंने उन पापों का कुछ प्रायश्चित किया है और शेष जीवन के अंत समय तक करूंगी। यह मैं नहीं कहती कि भोग-विलास से मेरा जी भर गया, या गहने-कपड़े से मैं ऊब गई, या सैर-तमाशे से मुझे घृणा हो गई। यह सब अभिलाषाएं ज्यों की त्यों हैं। अगर तुम अपने पुरुषार्थ से, अपने परिश्रम से, अपने सदुद्योग से उन्हें पूरा कर सको तो क्या कहना; लेकिन नीयत खोटी करके, आत्मा को कलुषित करके एक लाख भी लाओ, तो मैं उसे ठुकरा दूंगी। जिस वक्त मुझे मालूम हुआ कि तुम पुलिस के गवाह बन गए हो, मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं उसी वक्त दादा को साथ लेकर तुम्हारे बंगले तक गई; मगर उसी दिन तुम बाहर चले गए थे और आज लौटे हो। मैं इतने आदमियों का खून अपनी गर्दन पर नहीं लेना चाहती। तुम अदालत में साफ-साफ कह दो कि मैंने पुलिस के चकमे में आकर गवाही दी थी. मेरा इस मुआमले से कोई संबंध नहीं है।

रमा ने चिंतित होकर कहा--जब से तुम्हारा खत मिला, तभी से मैं इस प्रश्न पर विचार

कर रहा हूं, लेकिन समझ में नहीं आता क्या करूं। एक बात कहकर मुकर जाने का साहस मुझमें नहीं है।

'बयान तो बदलना ही पड़ेगा।'

'आखिर कैसे?'

'मुश्किल क्या है। जब तुम्हें मालूम हो गया कि म्युनिसिपैलिटी तुम्हारे ऊपर कोई मुकदमा नहीं चला सकती, तो फिर किस बात का डर ?'

'डर न हो, झेंप भी तो कोई चीज है। जिस मुंह से एक बात कही, उसी मुंह से मुकर जाऊं, यह तो मुझसे न होगा। फिर मुझे कोई अच्छी जगह मिल जाएगी। आराम से जिंदगी बसर होगी। मुझमें गली-गली ठोकर खाने का बूता नहीं है।

जालपा ने कोई जवाब न दिया। वह सोच रही थी, आदमी में स्वार्थ की मात्रा कितनी अधिक होती है।

रमा ने फिर धृष्टता से कहा—और कुछ मेरी ही गवाही पर तो सारा फैसला नहीं हुआ जाता। मैं बदल भी जाऊं, तो पुलिस कोई दूसरा आदमी खड़ा कर देगी। अपराधियों की जान तो किसी तरह नहीं बच सकती। हां, मैं मुफ्त में मारा जाऊंगा।

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा—कैसी बेशर्मी की बातें करते हो जी ! क्या तुम इतने गए-बीते हो कि अपनी रोटियों के लिए दूसरों का गला काटो। मैं इसे नहीं सह सकती। मुझे मजदूरी करना, भूखों मर जाना मंजूर है, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति जो संसार में है, वह सिर पर ले सकती हूं, लेकिन किसी का अनभल करके स्वर्ग का राज भी नहीं ले सकती।

रमा इस आदर्शवाद से चिढ़कर बोला—तो क्या तुम चाहती कि मैं यहां कुलीगीरी करूं?

जालपा—नहीं, मैं यह नहीं चाहती, लेकिन अगर कुलीगीरी भी करनी पड़े तो वह खून से तर रोटियां खाने से कहीं बढ़कर है।

रमा ने शांत भाव से कहा—जालपा, तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो, मैं उतना नीच नहीं हूं। बुरी बात सभी को बुरी लगती है। इसका दु:ख मुझे भी है कि मेरे हाथों इतने आदमियो का खून हो रहा है; लेकिन परिस्थिति ने मुझे लाचार कर दिया है। मुझमें अब ठोकरें खाने की शक्ति नहीं है। न मैं पुलिस से रार मोल ले सकता हूं। दुनिया में सभी थोड़े ही आदर्श पर चलते हैं। मुझे क्यों उस ऊंचाई पर चढ़ाना चाहती हो, जहां पहुंचने की शक्ति मुझमें नहीं है।

जालपा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—जिस आदमी में हत्या करने की शक्ति हो, उसमें हत्या न करने की शक्ति का न होना अचंभे की बात है। जिसमें दौड़ने की शक्ति हो, उसमें खड़े रहने की शक्ति न हो इसे कौन मानेगा। जब हम कोई काम करने की इच्छा करते हैं, तो शक्ति आप ही आप आ जाती है। तुम यह निश्चय कर लो कि तुम्हें बयान बदलना है, बस और बातें आप आ जायंगी।

रमा सिर झुकाए हुए सुनता रहा।

जालपा ने और आवेश में आकर कहा—अगर तुम्हें यह पाप की खेती करनी है, तो मुझे आज ही यहां से विदा कर दो। मैं मुंह में कालिख लगाकर यहां से चली जाऊंगी और फिर तुम्हें दिक करने न आऊंगी। तुम आनंद से रहना। मैं अपना पेट मेहनत-मजूरी करके भर लूंगी। अभी

प्रायश्चित पूरा नहीं हुआ है, इसीलिए यह दुर्बलता हमारे पीछे पड़ी हुई है। मैं देख रही हूं, यह हमारा सर्वनाश करके छोड़ेगी।

रमा के दिल पर कुछ चोट लगी। सिर खुजलाकर बोला—चाहता तो मैं भी हूं कि किसी तरह इस मुसीबत से जान बचे।

'तो बचाते क्यों नहीं। अगर तुम्हें कहते शर्म आती हो, तो मैं चलूं। यही अच्छा होगा। मैं भी चली चलूंगी और तुम्हारे सुपरंडंट साहब से सारा वृत्तांत साफ-साफ कह दूंगी।'

रमा का सारा पसोपेश गायब हो गया। अपनी इतनी दुर्गति वह न कराना चाहता था कि उसकी स्त्री जाकर उसकी वकालत करे। बोला—तुम्हारे चलने की जरूरत नहीं है जालपा, मैं उन लोगों को समझा दूंगा।

जालपा ने जोर देकर कहा—साफ बताओ, अपना बयान बदलोगे या नहीं?

रमा ने मानो कोने में दबकर कहा—कहता तो हूं, बदल दूंगा।

'मेरे कहने से या अपने दिल से?'

'तुम्हारे कहने से नहीं, अपने दिल से। मुझे खुद ही ऐसी बातों से घृणा है। सिर्फ जरा हिचक थी, वह तुमने निकाल दी।'

फिर और बातें होने लगीं। कैसे पता चला कि रमा ने रुपये उड़ा दिए हैं? रुपये अदा कैसे हो गए? और लोगों को गबन की खबर हुई या घर ही में दबकर रह गई? रतन पर क्या गुजरी? गोपी क्यों इतनी जल्द चला गया? दोनों कुछ पढ़ रहे हैं या उसी तरह आवारा फिरा करते हैं? आखिर में अम्मां और दादा का जिक्र आया। फिर जीवन के मनसूबे बांधे जाने लगे। जालपा ने कहा—घर चलकर रतन से थोड़ी-जमीन ले लें और आनंद से खेती-बारी करें। रमा ने कहा—कहीं उससे अच्छा है कि यहां चाय की दुकान खोलें। इस पर दोनों में मुबाहसा हुआ। आखिर रमा को हार माननी पड़ी। यहां रहकर वह घर की देखभाल न कर सकता था, भाइयों को शिक्षा न दे सकता था और न माता-पिता का सेवा-सत्कार कर सकता था। आखिर घरवालों के प्रति भी तो उसका कुछ कर्त्तव्य है। रमा निरुत्तर हो गया।

## चालीस

रमा मुंह-अंधेरे अपने बंगले जा पहुंचा। किसी को कानों-कान खबर न हुई।

नाश्ता करके रमा ने खत साफ किया, कपड़े पहने और दारोगा के पास जा पहुंचा। त्योरियां चढ़ी हुई थीं। दारोगा ने पूछा—खैरियत तो है, नौकरों ने कोई शरारत तो नहीं की।

रमा ने खड़े-खड़े कहा—नौकरों ने नहीं, आपने शरारत की है, आपके मातहतों, अफसरों और सब ने मिलकर मुझे उल्लू बनाया है।

दारोगा ने कुछ घबड़ाकर पूछा—आखिर बात क्या है, कहिए तो?

रमानाथ—बात यही है कि इस मुआमले में अब कोई शहादत न दूंगा। उससे मेरा ताल्लुक नहीं। आप लोगों ने मेरे साथ चाल चली और वारंट की धमकी देकर मुझे शहादत देने पर मजबूर

किया। अब मुझे मालूम हो गया कि मेरे ऊपर कोई इल्जाम नहीं। आप लोगों का चकमा था। पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता, मैं आज जज साहब से साफ कह दूंगा। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूंगा।

दारोगा ने तेज होकर कहा—आपने खुद गबन तस्लीम किया था।

रमानाथ—मीजान की गलती थी। गबन न था। म्युनिसिपैलिटी ने मुझ पर कोई मुकदमा नहीं चलाया।

'यह आपको मालूम कैसे हुआ?'

'इससे आपको कोई बहस नहीं। मैं शहादत न दूंगा। साफ-साफ कह दूंगा, पुलिस ने मुझे धोखा देकर शहादत दिलवाई है। जिन तारीखों का वह वाकया है, उन तारीखों में मैं इलाहाबाद में था। म्युनिसिपल आफिस में मेरी हाजिरी मौजूद है।'

दारोगा ने इस आपत्ति को हंसी में उड़ाने की चेष्टा करके कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने धोखा ही दिया; लेकिन उसका खातिरख्वाह इनाम देने को भी तो हाजिर है। कोई अच्छी जगह मिल जाएगी, मोटर पर बैठे हुए सैर करोगे। खुफिया पुलिस में कोई जगह मिल गई, तो चैन ही चैन है। सरकार की नजरों में इज्जत और रुसूख कितना बढ़ गया, यों मारे-मारे फिरते। शायद किसी दफ्तर में क्लर्की मिल जाती, वह भी बड़ी मुश्किल से। यहां तो बैठे-बिठाए तरक्की का दरवाजा खुल गया। अच्छी तरह कारगुजारी होगी, तो एक दिन रायबहादुर मुंशी रमानाथ डिप्टी सुपरिंटेंडेंट हो जाओगे। तुम्हें हमारा एहसान मानना चाहिए और आप उल्टे खफा होते हैं।

रमा पर इस प्रलोभन का कुछ असर न हुआ। बोला—मुझे क्लर्क बनना मंजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे।

इतने में डिप्टी साहब और इंस्पेक्टर भी आ पहुंचे। रमा को देखकर इंस्पेक्टर साहब ने फरमाया—हमारे बाबू साहब तो पहले ही से तैयार बैठे हैं। बस इसी की कारगुजारी पर वारा-न्यारा है।

रमा ने इस भाव से कहा, मानो मैं भी अपना नफा-नुकसान समझता हूं—जी हां, आज वारा-न्यारा कर दूंगा। इतने दिनों तक आप लोगों के इशारे पर चला, अब अपनी आंखों से देखकर चलूंगा।

इंस्पेक्टर ने दारोगा का मुंह देखा, दारोगा ने डिप्टी का मुंह देखा, डिप्टी ने इंस्पेक्टर का मुंह देखा। यह कहता क्या है? इंस्पेक्टर साहब विस्मित होकर बोले—क्या बात है? हलफ से कहता हूं, आप कुछ नाराज मालूम होते हैं।

रमानाथ—मैंने फैसला किया है कि आज अपना बयान बदल दूंगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता।

इंस्पेक्टर ने दया-भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे हैं, अपनी तकदीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। हलफ से कहता हूं, ऐसे मौके बहुत कम आदमियों को मिलते हैं। आज क्या बात हुई कि आप इतने खफा हो गए? आपको कुछ मालूम है, दारोगा साहब? आदमियों ने तो कोई शोखी नहीं की? अगर किसी ने आपके मिजाज के खिलाफ कोई काम किया हो, तो उसे गोली मार दीजिए, हलफ से कहता हूं।

दारोगा—मैं अभी जाकर पता लगाता हूं।

रमानाथ—आप तकलीफ न करें। मुझे किसी से शिकायत नहीं है। मैं थोड़े से फायदे के लिए अपने ईमान का खून नहीं कर सकता।

एक मिनट सन्नाटा रहा। किसी को कोई बात न सूझी। दारोगा कोई दूसरा चकमा सोच रहे थे, इंस्पेक्टर कोई दूसरा प्रलोभन। डिप्टी एक दूसरी ही फिक्र में था। रूखेपन से बोला—रमा बाबू, यह अच्छा बात न होगा।

रमा ने भी गर्म होकर कहा—आपके लिए न होगी। मेरे लिए तो सबसे अच्छी यही बात है।

डिप्टी—नहीं, आपका वास्ते इससे बुरा दोसरा बात नहीं है। हम तुमको छोड़ेगा नहीं, हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय; लेकिन हम तुमको ऐसा लेसन दे देगा कि तुम उमिर भर न भूलेगा। आपको वही गवाही देना होगा जो आप दिया। अगर तुम कुछ गड़बड़ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया तो हम तोमारे साथ दोसरा बर्ताव करेगा। एक रिपोर्ट में तुम यों (कलाइयों को ऊपर-नीचे रखकर) चला जायगा।

यह कहते हुए उसने आंखें निकालकर रमा को देखा, मानो कच्चा ही खा जाएगा। रमा सहम उठा। इन आतंक से भरे शब्दों ने उसे विचलित कर दिया। यह सब कोई झूठा मुकदमा चलाकर उसे फंसा दें, तो उसकी कौन रक्षा करेगा। उसे यह आशा न थी कि डिप्टी साहब जो शील और विनय के पुतले बने हुए थे, एकबारगी यह रुद्र रूप धारणा कर लेंगे; मगर वह इतनी आसानी से दबने वाला न था। तेज होकर बोला—आप मुझस जबरदस्ती शहादत दिलाएंगे?

डिप्टी ने पैर पटकते हुए कहा—हां, जबरदस्ती दिलाएगा!

रमानाथ—यह अच्छी दिल्लगी है!

डिप्टी—तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह की बात कर रहा था। बस चला जायगा सात साल के लिए। चक्की पीसते-पीसते हाथ में घट्टा पड़ जायगा। यह चिकना चिकना गाल नहीं रहेगा।

रमा जेल से डरता था। जेल-जीवन की कल्पना ही से उसके रोएं खड़े होते थे। जेल ही के भय से उसने यह गवाही देनी स्वीकार की थी। वही भय इस वक्त भी उसे कातर करने लगा। डिप्टी भाव-विज्ञान का ज्ञाता था। आसन का पता पा गया। बोला—वहां हलवा पूरी नहीं पायगा। धूल मिला हुआ आटा का रोटी, गोभी के सड़े हुए पत्तों का रसा, और अरहर के दाल का पानी खाने को पावेगा। काल-कोठरी का चार महीना भी हो गया, तो तुम बच नहीं सकता। वहीं मर जायगा। बात-बात पर वार्डर गाली देगा; जूतों से पीटेगा, तुम समझता क्या है!

रमा का चेहरा फीका पड़ने लगा। मालूम होता था, प्रतिक्षण उसका खून सूखता चला जाता है। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह रो पड़ा। कांपती हुई आवाज से बोला—आप लोगों की यह इच्छा है, तो यही सही! भेज दीजिए जेल। मर ही जाऊंगा न, फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। जब आप यहां तक मुझे तबाह करने पर आमादा हैं, तो मैं भी मरने को तैयार हूं। जो कुछ होना होगा, होगा।

उसका मन दुर्बलता की उस दशा को पहुंच गया था, जब जरा-सी सहानुभूति, जरा-सी

सहृदयता सैकड़ों धमकियों से कहीं कारगर हो जाती है। इंस्पेक्टर साहब ने मौका ताड़ लिया। उसका पक्ष लेकर डिप्टी से बोले—हलफ से कहता हूं, आप लोग आदमी को पहचानते तो हैं नहीं, लगते हैं रोब जमाने। इस तरह गवाही देना हर एक समझदार आदमी को बुरा मालूम होगा। यह कुदरती बात है। जिसे जरा भी इज्जत का खयाल है, वह पुलिस के हाथों की कठपुतली बनना पसंद न करेगा। बाबू साहब की जगह मैं होता तो मैं भी ऐसा ही करता; लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह हमारे खिलाफ शहादत देंगे। आप लोग अपना काम कीजिए, बाबू साहब की तरफ से बेफिक्र रहिए, हलफ से कहता हूं।

उसने रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—आप मेरे साथ चलिए, बाबूजी ! आपको अच्छे-अच्छे रिकार्ड सुनाऊं।

रमा ने रूठे हुए बालक की तरह हाथ छुड़ाकर कहा—मुझे दिक न कीजिए इंस्पेक्टर साहब। अब तो मुझे जेलखाने में मरना है।

इंस्पेक्टर ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—आप क्यों ऐसी बातें मुंह से निकालते हैं साहब। जेलखाने में मरें आपके दुश्मन।

डिप्टी ने तसमा भी बाकी न छोड़ना चाहा। बड़े कठोर स्वर में बोला; मानो रमा से कभी का परिचय नहीं है—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार हैं; लेकिन जब वह हमारा खिलाफ गवाही देगा, हमारा जड़ खोदेगा, तो हम भी कार्रवाई करेगा। जरूर से करेगा। कभी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

## इकतालीस

रतन पत्रों में जालपा को तो ढाढ़स देती रहती थी पर अपने विषय में कुछ न लिखती थी। जो आप ही व्यथित हो रही हो, उसे अपनी व्यथाओं की कथा क्या सुनाती ! वही रतन जिसने रुपयों की कभी कोई हकीकत न समझी, इस एक ही महीने में रोटियों को भी मुहताज हो गई थी। उसका वैवाहिक जीवन सुखी न हो; पर उसे किसी बात का अभाव न था। मरियल घोड़े पर सवार होकर भी यात्रा पूरी हो सकती है अगर सड़क अच्छी हो; नौकर-चाकर, रुपये-पैसे और भोजन आदि की सामग्री साथ हो। घोड़ा भी तेज हो, तो पूछना ही क्या ! रतन की दशा उसी सवार की-सी थी। उसी सवार की भांति वह मंदगति से अपनी जीवन-यात्रा कर रही थी। कभी-कभी वह घोड़े पर झुंझलाती होगी, दूसरे सवारों को उड़े जाते देखकर उसकी भी इच्छा होती होगी कि मैं भी इसी तरह उड़ती, लेकिन वह दुखी न थी, अपने नसीबों को रोती न थी। वह उस गाय की तरह थी, जो एक पतली-सी पगहिया के बंधन में पड़कर, अपनी नाद के भूसे-खली में मगन रहती है। सामने हरे-हरे मैदान हैं, उसमें सुगंधमय घासें लहरा रही हैं; पर वह पगहिया तुड़ाकर कभी उधर नहीं जाती। उसके लिए उस पगहिया और लोहे की जंजीर में कोई अंतर नहीं। यौवन को प्रेम की इतनी क्षुधा नहीं होती; जितनी आत्म-प्रदर्शन की। प्रेम की

क्षुधा पीछे आती है। रतन को आत्म-प्रदर्शन के सभी साधन मिले हुए थे। उसकी युवती आत्मा अपने शृगांर और प्रदर्शन में मग्न थी। हंसी-विनोद, सैर-सपाटा, खाना-पीना, यही उसका जीवन था, जैसा प्रायः सभी मनुष्यों का होता है। इससे गहरे जल में जाने की न उसे इच्छा थी, न प्रयोजन। संपन्नता बहुत कुछ मानसिक व्यथाओं को शांत करती है। उसके पास अपने दु:खों को भुलाने के कितने ही ढंग हैं—सिनेमा है, थिएटर है, देश-भ्रमण है, ताश है, पालतू जानवर हैं, संगीत है; लेकिन विपन्नता को भुलाने का मनुष्य के पास कोई साधन नहीं, इसके सिवा कि वह रोए, अपने भाग्य को कोसे या संसार से विरक्त होकर आत्म-हत्या कर ले। रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल अब उसे खड़ा घूर रहा था।

और यह सब हुआ अपने ही हाथों! पंडितजी उन प्राणियों में थे, जिन्हें मौत की फिक्र नहीं होती। उन्हें किसी तरह यह भ्रम हो गया था कि दुर्बल स्वास्थ्य के मनुष्य अगर पथ्य और विचार से रहें, तो बहुत दिनों तक जी सकते हैं। वह पथ्य और विचार की सीमा के बाहर कभी न जाते। फिर मौत को उनसे क्या दुश्मनी थी, जो ख्वामख्वाह उनके पीछे पड़ती। अपनी वसीयत लिख डालने का खयाल उन्हें उस वक्त आया, जब वह मरणासन्न हुए; लेकिन रतन वसीयत का नाम सुनते ही इतनी शोकातुर, इतनी भयभीत हुई कि पंडितजी ने उस वक्त टाल जाना ही उचित समझा। तब से फिर उन्हें इतना होश न आया कि वसीयत लिखवाते।

पंडितजी के देहावसान के बाद रतन का मन इतना विरक्त हो गया कि उसे किसी बात की भी सुध-बुध न रही। यह वह अवसर था, जब उसे विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए था। इस भांति सतर्क रहना चाहिए था, मानो दुश्मनों ने उसे घेर रक्खा हो; पर उसने सब कुछ मणिभूषण पर छोड़ दिया और उसी मणिभूषण ने धीरे-धीरे उसकी सारी संपत्ति अपहरण कर ली। ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचे कि सरला रतन को उसके कपट-व्यवहार का आभास तक न हुआ। फंदा जब खूब कस गया, तो उसने एक दिन आकर कहा—आज बंगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया है।

रतन ने जरा तेज होकर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था कि मैं अभी बंगला न बेचूंगी।

मणिभूषण ने विनय का आवरण उतार फेंका और त्योरी चढ़ाकर बोला—आपमें बातें भूल जाने की बुरी आदत है। इसी कमरे में मैंने आपसे यह जिक्र किया था और आपने हामी भरी थी। जब मैंने बेच दिया, तो आप यह स्वांग खड़ा करती हैं! बंगला आज खाली करना होगा और आपको मेरे साथ चलना होगा।

'मैं अभी यहीं रहना चाहती हूं।'

'मैं आपको यहां न रहने दूंगा।'

'मैं तुम्हारी लौंडी नहीं हूं।'

'आपकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। अपने कुल की मर्यादा-रक्षा के लिए मैं आपको अपने साथ ले जाऊंगा।'

रतन ने होंठ चबाकर कहा—मैं अपनी मर्यादा की रक्षा आप कर सकती हूं। तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहां कोई चीज नहीं बेच सकते।

मणिभूषण ने वज्र-सा मारा—आपका इस घर पर और चाचाजी की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं। वह मेरी संपत्ति है। आप मुझसे केवल गुजारे का सवाल कर सकती हैं।

रतन ने विस्मित होकर कहा—तुम कुछ भंग तो नहीं खा गए हो?

मणिभूषण ने कठोर स्वर में कहा—मैं इतनी भंग नहीं खाता कि बेसिर-पैर की बातें करने लगूं। आप तो पढ़ी-लिखी हैं, एक बड़े वकील की धर्मपत्नी हैं। कानून की बहुत-सी बातें जानती होंगी। सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी और मेरे पिताजी में कभी अलगौझा नहीं हुआ। चाचाजी यहां थे, हम लोग इंदौर में थे, पर इससे यह नहीं सिद्ध होता कि हममें अलगौझा था। अगर चाचा अपनी संपत्ति आपको देना चाहते, तो कोई वसीयत अवश्य लिख जाते और यद्यपि वह वसीयत कानून के अनुसार कोई चीज न होती, पर हम उसका सम्मान करते। उनका कोई वसीयत न करना साबित कर रहा है कि वह कानून के साधारण व्यवहार में कोई बाधा न डालना चाहते थे। आज आपको बंगला खाली करना होगा। मोटर और अन्य वस्तुएं भी नीलाम कर दी जाएंगी। आपकी इच्छा हो, मेरे साथ चलें या रहें। यहां रहने के लिए आपको दस-ग्यारह रुपये का मकान काफी होगा। गुजारे के लिए पचास रुपये महीने का प्रबंध मैंने कर दिया है। लेना-देना चुका लेने के बाद इससे ज्यादा की गुंजाइश ही नहीं।

रतन ने कोई जवाब न दिया। कुछ देर वह हतबुद्धि-सी बैठी रही, फिर मोटर मंगवाई और सारे दिन वकीलों के पास दौड़ती फिरी। पंडितजी के कितने ही वकील मित्र थे। सभी ने उसका वृत्तांत सुनकर खेद प्रकट किया और वकील साहब के वसीयत न लिख जाने पर हैरत करते रहे। अब उसके लिए एक ही उपाय था। वह यह सिद्ध करने की चेष्टा करे कि वकील साहब और उनके भाई में अलहदगी हो गई थी। अगर यह सिद्ध हो गया और सिद्ध हो जाना बिल्कुल आसान था, तो रतन उस संपत्ति की स्वामिनी हो जाएगी। अगर वह यह सिद्ध न कर सकी, तो उसके लिए कोई चारा न था।

अभागिनी रतन लौट आई। उसने निश्चय किया, जो कुछ मेरा नहीं है, उसे लेने के लिए मैं झूठ का आश्रय न लूंगी। किसी तरह नहीं। मगर ऐसा कानून बनाया किसने? क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है? क्यों?

दिन-भर रतन चिंता में डूबी, मौन बैठी रही। इतने दिनों वह अपने को इस घर की स्वामिनी समझती रही। कितनी बड़ी भूल थी। पति के जीवन में जो लोग उसका मुंह ताकते थे, वे आज उसके भाग्य के विधाता हो गए! यह घोर अपमान रतन-जैसी मानिनी स्त्री के लिए असह्य था। माना, कमाई पंडितजी की थी, पर यह गांव तो उसी ने खरीदा था, इनमें से कई मकान तो उसके सामने ही बने। उसने यह एक क्षण के लिए भी न खयाल किया था कि एक दिन यह जायदाद मेरी जीविका का आधार होगी। इतनी भविष्य-चिंता वह कर ही न सकती थी। उसे इस जायदाद के खरीदने में, उसके संवारने और सजाने में वही आनंद आता था, जो माता अपनी संतान को फलते-फूलते देखकर पाती है। उसमें स्वार्थ का भाव न था, केवल अपनेपन का गर्व था, वही ममता थी, पर पति की आंखें बंद होते ही उसके पाले और गोद के खेलाए बालक भी उसकी गोद से छीन लिए गए। उसका उन पर कोई अधिकार नहीं! अगर वह

जानती कि एक दिन यह कठिन समस्या उसके सामने आएगी, तो वह चाहे रुपये को लुटा देती या दान कर देती, पर संपत्ति की कील अपनी छाती पर न गाड़ती। पंडितजी की ऐसी कौन बहुत बड़ी आमदनी थी। क्या गर्मियों में वह शिमले न जा सकती थी? क्या दो-चार और नौकर न रक्खे जा सकते थे? अगर वह गहने ही बनवाती, तो एक-एक मकान के मूल्य का एक-एक गहना बनवा सकती थी, पर उसने इन बातों को कभी उचित सीमा से आगे न बढ़ने दिया। केवल यही स्वप्न देखने के लिए! यही स्वप्न! इसके सिवा और था ही क्या! जो कल उसका था उसकी ओर आज आंखें उठाकर वह देख भी नहीं सकती! कितना महंगा था वह स्वप्न! हां, वह अब अनाथिनी थी। कल तक दूसरों को भीख देती थी, आज उसे खुद भीख मांगनी पड़ेगी। और कोई आश्रय नहीं! पहले भी वह अनाथिनी थी, केवल भ्रम-वश अपने को स्वामिनी समझ रही थी। अब उस भ्रम का सहारा भी नहीं रहा!

सहसा विचारों ने पलटा खाया। मैं क्यों अपने को अनाथिनी समझ रही हूं? क्यों दूसरों के द्वार पर भीख मांगू? संसार में लाखों ही स्त्रियां मेहनत-मजदूरी करके जीवन का निर्वाह करती हैं। क्या मैं कोई काम नहीं कर सकती? मैं कपड़ा क्या नहीं सी सकती? किसी चीज की छोटी-मोटी दुकान नहीं रख सकती? लड़के भी पढ़ा सकती हूं। यही न होगा, लोग हंसेंगे, मगर मुझे उस हंसी की क्या परवा! वह मेरी हंसी नहीं है, अपने समाज की हंसी है।

शाम को द्वार पर कई ठेले वाले आ गए। मणिभूषण ने आकर कहा—चाचीजी, आप जो-जो चीजें कहें लदवाकर भिजवा दूं। मैंने एक मकान ठीक कर लिया है।

रतन ने कहा—मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। न तुम मेरे लिए मकान लो। जिस चीज पर मेरा कोई अधिकार नहीं, वह मैं हाथ से भी नहीं छू सकती। मैं अपने घर से कुछ लेकर नहीं आई थी। उसी तरह लौट जाऊंगी।

मणिभूषण ने लज्जित होकर कहा—आपका सब कुछ है, यह आप कैसे कहती हैं कि आपका कोई अधिकार नहीं। आप वह मकान देख लें। पंद्रह रुपया किराया है। मैं तो समझता हू आपको कोई कष्ट न होगा। जो-जो चीजें आप कहें, मै वहां पहुचा दूं।

रतन ने व्यंग्यमय आंखों से देखकर कहा—तुमने पंद्रह रुपये का मकान मेरे लिए व्यर्थ लिया! इतना बड़ा मकान लेकर मैं क्या करूंगी! मेरे लिए एक कोठरी काफी है, जो दो रुपये में मिल जायगी। सोने के लिए जमीन है ही। दया का बोझ सिर पर जितना कम हो, उतना ही अच्छा!

मणिभूषण ने बड़े विनम्र भाव से कहा—आखिर आप चाहती क्या हैं? उसे कहिए तो!

रतन उत्तेजित होकर बोली—मैं कुछ नहीं चाहती। मैं इस घर का एक तिनका भी अपने साथ न ले जाऊंगी। जिस चीज पर मेरा कोई अधिकार नहीं, वह मेरे लिए वैसी ही है जैसी किसी गैर आदमी की चीज। मैं दया की भिखिरिणी न बनूंगी। तुम इन चीजों के अधिकारी हो, ले जाओ। मैं जरा भी बुरा नहीं मानती! दया की चीज न जबरदस्ती ली जा सकती है, न जबरदस्ती दी जा सकती है। संसार में हजारों विधवाएं हैं, जो मेहनत-मजूरी करके अपना निर्वाह कर रही हैं। मैं भी वैसे ही हूं। मैं भी उसी तरह मजूरी करूंगी और अगर न कर सकूंगी, तो किसी गड्ढे में डूब मरूंगी। जो अपना पेट भी न पाल सके, उसे जीते रहने का,

दूसरों का बोझ बनने का कोई हक नहीं है।

यह कहती हुई रतन घर से निकली और द्वार की ओर चली। मणिभूषण ने उसका रास्ता रोककर कहा—अगर आपकी इच्छा न हो, तो मैं बंगला अभी न बेचूं।

रतन ने जलती हुई आंखों से उसकी ओर देखा। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। आंसुओं के उमड़ते हुए वेग को रोककर बोली—मैंने कह दिया, इस घर की किसी चीज से मेरा नाता नहीं है। मैं किराए की लौंड़ी थी। लौडी का घर से क्या संबंध है ! न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहां कोई न्याय होता है, तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूंगी, क्या तेरे घर में मां-बहनें न थीं? तुझे उनका अपमान करते लज्जा न आई? अगर मेरी जबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुंचती, तो मैं सब स्त्रियों से कहती—बहनो, किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना तो जब तक अपना घर अलग न बना लो, चैन की नींद मत सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा मान के साथ पालन होगा। अगर तुम्हारे पुरुष ने कोई तरका नहीं छोड़ा, तो तुम अकेली रहो चाहे परिवार में, एक ही बात है। तुम अपमान और मजूरी से नहीं बच सकतीं। अगर तुम्हारे पुरुष ने कुछ छोड़ा है तो अकेली रहकर तुम उसे भोग सकती हो, परिवार में रहकर तुम्हें उससे हाथ धोना पड़ेगा। परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, कांटों की शय्या है; तुम्हारा पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला जंतु।

संध्या हो गई थी। गर्द से भरी हुई फागुन की वायु चलने वालों की आंखों में धूल झोंक रही थी। रतन चादर संभालती सड़क पर चली जा रही थी। रास्ते में कई परिचित स्त्रियों ने उसे टोका, कई ने अपनी मोटर रोक ली और उसे बैठने को कहा; पर रतन को उनकी सहृदयता इस समय बाण-सी लग रही थी। वह तेजी से कदम उठाती हुई जालपा के घर चली जा रही थी। आज उसका वास्तविक जीवन आरंभ हुआ था।

## बयालीस

ठीक दस बजे जालपा और देवीदीन कचहरी पहुंच गए। दर्शकों की काफी भीड़ थी। ऊपर की गैलरी दर्शकों से भरी हुई थी। कितने ही आदमी बरामदों में और सामने के मैदान में खड़े थे। जालपा ऊपर गैलरी में जा बैठी। देवीदीन बरामदे में खड़ा हो गया।

इजलास पर जज साहब के एक तरफ अहलमद था और दूसरी तरफ पुलिस के कई कर्मचारी खड़े थे। सामने कठघरे के बाहर दोनों तरफ के वकील खड़े मुकदमा पेश होने का इंतजार कर रहे थे। मुलजिमों की संख्या पंद्रह से कम न थी। सब कठघरे के बगल में जमीन पर बैठे हुए थे। सभी के हाथों में हथकड़ियां थीं, पैरों में बेड़ियां। कोई लेटा था, कोई बैठा था, कोई आपस में बातें कर रहा था। दो पंजे लड़ा रहे थे। दो में किसी विषय पर बहस हो रही थी। सभी प्रसन्न-चित्त थे। घबराहट, निराशा या शोक का किसी के चेहरे पर चिन्ह भी न था।

ग्यारह बजते-बजते अभियोग की पेशी हुई। पहले जाब्ते की कुछ बातें हुईं, फिर दो-

एक पुलिस की शहादतें हुईं। अंत में कोई तीन बजे रमानाथ गवाहों के कठघरे में लाया गया। दर्शकों में सनसनी-सी फैल गई। कोई तंबोली की दुकान से पान खाता हुआ भागा, किसी ने समाचार-पत्र को मरोड़कर जेब में रक्खा और सब इजलास के कमरे में जमा हो गए। जालपा भी संभलकर बारजे में खड़ी हो गई। वह चाहती थी कि एक बार रमा की आंखें उठ जातीं और वह उसे देख लेती; लेकिन रमा सिर झुकाए खड़ा था, मानो वह इधर-उधर देखते डर रहा हो। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। कुछ सहमा हुआ, कुछ घबराया हुआ इस तरह खड़ा था, मानो उसे किसी ने बांध रक्खा है और भागने की कोई राह नहीं है। जालपा का कलेजा धक-धक कर रहा था, मानो उसके भाग्य का निर्णय हो रहा हो।

रमा का बयान शुरू हुआ। पहला ही वाक्य सुनकर जालपा सिहर उठी, दूसरे वाक्य ने उसकी त्योरियों पर बल डाल दिए, तीसरे वाक्य ने उसके चेहरे का रंग फीका कर दिया और चौथा वाक्य सुनते ही वह एक लंबी सांस खींचकर पीछे रखी हुई कुरसी पर टिक गई; मगर फिर दिल न माना। जंगले पर झुककर फिर उधर कान लगा दिए। वही पुलिस की सिखाई हुई शहादत थी जिसका आशय वह देवीदीन के मुंह से सुन चुकी थी। अदालत में सन्नाटा छाया हुआ था। जालपा ने कई बार खांसा कि शायद अब भी रमा की आंखें ऊपर उठ जाएं; लेकिन रमा का सिर और भी झुक गया। मालूम नहीं, उसने जालपा के खांसने की आवाज पहचान ली या आत्म-ग्लानि का भाव उदय हो गया। उसका स्वर भी कुछ धीमा हो गया।

एक महिला ने जो जालपा के साथ ही बैठी थी, नाक सिकोड़कर कहा—जी चाहता है, इस दुष्ट को गोली मार दें। ऐसे-ऐसे स्वार्थी भी इस देश में पड़े हैं जो नौकरी या थोड़े-से धन के लोभ में निरपराधों के गले पर छुरी फेरने से भी नहीं हिचकते!

जालपा ने कोई जवाब न दिया।

एक दूसरी महिला ने जो आंखों पर ऐनक लगाए हुए थी, निराशा के भाव से कहा—इस अभागे देश का ईश्वर ही मालिक है। गवर्नरी तो लाला को कहीं नहीं मिल जानी! अधिक-से-अधिक कहीं क्लर्क हो जाएंगे। उसी के लिए अपनी आत्मा की हत्या कर रहे हैं। मालूम होता है, कोई मरभुखा, नीच आदमी है; पल्ले सिरे का कमीना और छिछोरा।

तीसरी महिला ने ऐनक वाली देवी से मुस्कराकर पूछा—आदमी फैशनेबुल है और पढ़ा-लिखा भी मालूम होता है। भला, तुम, इसे पा जाओ तो क्या करो?

ऐनकबाज देवी ने उदंडता से कहा—नाक काट लूं! बस नकटा बनाकर छोड़ दूं।

'और जानती हो, मैं क्या करूं?'

'नहीं! शायद गोली मार दोगी!'

'ना! गोली न मारूं। सरे बाजार खड़ा करके पांच सौ जूते लगवाऊं। चांद गंजी हो जाय!'

'उस पर तुम्हें जरा भी दया नहीं आयगी?'

'यह कुछ कम दया है? उसकी पूरी सजा तो यह है कि किसी ऊंची पहाड़ी से ढकेल दिया जाय! अगर यह महाशय अमेरीका में होते, तो जिन्दा जला दिये जाते!'

एक वृद्धा ने इन युवतियों का तिरस्कार करके कहा—क्यों व्यर्थ में मुंह खराब करती हो?

वह घृणा के योग्य नहीं, दया के योग्य है। देखती नहीं हो, उसका चेहरा कैसा पीला हो गया है, जैसे कोई उसका गला दबाए हुए हो। अपनी मां या बहन को देख ले, तो जरूर रो पड़े। आदमी दिल का बुरा नहीं है। पुलिस ने धमकाकर उसे सीधा किया है। मालूम होता है, एक-एक शब्द उसके हृदय को चीर-चीरकर निकल रहा हो।

ऐनक वाली महिला ने व्यंग किया—जब अपने पांव कांटा चुभता है, तब आह निकलती

जालपा अब वहां न ठहर सकी। एक-एक बात चिंगारी की तरह उसके दिल पर फफोले डाले देती थी। ऐसा जी चाहता था कि इसी वक्त उठकर कह दे, यह महाशय बिल्कुल झूठ बोल रहे हैं, सरासर झूठ, और इसी वक्त इसका सबूत दे दे। वह इस आवेश को पूरे बल से दबाए हुए थी। उसका मन अपनी कायरता पर उसे धिक्कार रहा था। क्यों वह इसी वक्त सारा वृत्तांत नहीं कह सुनाती। पुलिस उसकी दुश्मन हो जायगी, हो जाय। कुछ तो अदालत को खयाल होगा। कौन जाने, इन गरीबों की जान बच जाय ! जनता को तो मालूम हो जायगा कि यह झूठी शहादत है। उसके मुह से एक बार आवाज निकलते-निकलते रह गई। परिणाम के भय ने उसकी जबान पकड़ ली।

आखिर उसने वहां से उठकर चले आने ही में कुशल समझी।

देवीदीन उसे उतरते देखकर बरामदे में चला आया और दया से सने हुए स्वर मे बोला—क्या घर चलती हो, बहूजी?

जालपा ने आंसुओं के वेग को रोककर कहा—हां, यहां अब नहीं बैठा जाता।

हाते के बाहर निकलकर देवीदीन ने जालपा को सांत्वना देने के इरादे से कहा—पुलिस ने जिसे एक बार बूटी सुंघा दी, उस पर किसी दूसरी चीज का असर नहीं हो सकता।

जालपा ने घृणा-भाव से कहा—यह सब कायरों के लिए है।

कुछ दूर दोनों चुपचाप चलते रहे। सहसा जालपा ने कहा—क्यों दादा, अब और तो कही अपील न होगी? कैदियों का यहीं फैसला हो जायगा।

देवीदीन इस प्रश्न का आशय समझ गया। बोला—नहीं, हाईकोर्ट में अपील हो सकती है।

फिर कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। जालपा एक वृक्ष की छांह में खड़ी हो गई और बोली—दादा, मेरा जी चाहता है, आज जज साहब से मिलकर सारा हाल कह दू। शुरू से जो कुछ हुआ, सब कह सुनाऊं। मैं सबूत दे दूंगी, तब तो मानेंगे?

देवीदीन ने आंखें फाड़कर कहा—जज साहब से !

जालपा ने उसकी आंखों से आंखें मिलाकर कहा—हां !

देवीदीन ने दुविधे में पड़कर कहा—मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता, बहूजी ! हाकिम का वास्ता। न जाने चित पड़े या पट।

जालपा बोली—क्या पुलिस वालों से यह नहीं कह सकता कि तुम्हारा गवाह बनाया हुआ है?

'कह तो सकता है।'

'तो आज मैं उससे मिलूं। मिल ता लेता है?'

'चलो, दरियाफ्त करेंगे; लेकिन मामला जोखिम है।'

'क्या जोखिम है, बताओ?'

'भैया पर कहीं झूठी गवाही का इल्जाम लगाकर सजा कर दे तो?'

'तो कुछ नहीं। जो जैसा करे, वैसा भोगे।'

देवीदीन ने जालपा की इस निर्ममता पर चकित होकर कहा–एक दूसरा खटका है। सबसे बड़ा डर उसी का है।

जालपा ने उद्धत भाव से पूछा–वह क्या?

देवीदीन–पुलिस वाले बड़े काफर होते हैं। किसी का अपमान कर डालना तो इनकी दिल्लगी है। जज साहब पुलिस कमिसनर को बुलाकर यह सब हाल कहेंगे जरूर। कमिसनर सोचेंगे कि यह औरत सारा खेल बिगाड़ रही है। इसी को गिरफ्तार कर लो। जज अंगरेज होता तो निडर होकर पुलिस की तंबीह करता। हमारे भाई तो ऐसे मुकदमों में चूं करते डरते हैं कि कहीं हमारे ही ऊपर न बगावत का इल्जाम लग जाय। यही बात है। जज साहब पुलिस कमिसनर से जरूर कह सुनावेंगे। फिर यह तो न होगा कि मुकदमा उठा लिया जाय। यही होगा कि कलई न खुलने पावे। कौन जाने तुम्हीं को गिरफ्तार कर लें। कभी-कभी जब गवाह बदलने लगता है, या कलई खोलने पर उतारू हो जाता है, तो पुलिस वाले उसके घर वालों को दबाते हैं। इनकी माया अपरंपार है।

जालपा सहम उठी। अपनी गिरफ्तारी का उसे भय न था, लेकिन कहीं पुलिस वाले रमा पर अत्याचार न करें। इस भय ने उसे कातर कर दिया। उसे इस समय ऐसी थकान मालूम हुई मानो सैकड़ों कोस की मंजिल मारकर आई हो। उसका सारा सत्साहस बर्फ के समान पिघल गया।

कुछ दूर आगे चलने के बाद उसने देवीदीन से पूछा–अब तो उनसे मुलाकात न हो सकेगी?

देवीदीन ने पूछा–भैया से?

'हां।'

'किसी तरह नहीं। पहरा और कड़ा कर दिया गया होगा। चाहे उस बंगले को ही छोड़ दिया हो। और अब उनसे मुलाकात हो भी गई तो क्या फायदा। अब किसी तरह अपना बयान नहीं बदल सकते। दरोगहलफी में फंस जाएंगे।'

कुछ दूर और चलकर जालपा ने कहा–मैं सोचती हूं, घर चली जाऊं। यहां रहकर अब क्या करूंगी।

देवीदीन ने करुणा भरी हुई आंखों से उसे देखकर कहा–नही बहू। अभी मैं न जाने दूंगा। तुम्हारे बिना अब हमारा यहां पल-भर भी जी न लगेगा। बुढ़िया तो रो-रोकर परान ही दे देगी। अभी यहां रहो, देखो क्या फैसला होता है। भैया को मैं इतना कच्चे दिल का आदमी नहीं समझता था। तुम लोगों की बिरादरी में सभी सरकारी नौकरी पर जान देते हैं। मुझे तो कोई सौ रुपया भी तलब दे, तो नौकरी न करूं। अपने रोजगार की बात ही दूसरी है। इसमें आदमी कभी थकता ही नहीं। नौकरी में जहां पांच से छः घंटे हुए कि देह टूटने लगी, जम्हाइयां आने लगीं।

रास्ते में और कोई बातचीत न हुई। जालपा का मन अपनी हार मानने के लिए किसी तरह राजी न होता था। वह परास्त होकर भी दर्शक की भांति यह अभिनय देखने से संतुष्ट न हो सकती थी। वह उस अभिनय में सम्मिलित होने और अपना पार्ट खेलने के लिए विवश हो रही थी। क्या एक बार फिर रमा से मुलाकात न होगी? उसके हृदय में उन जलते हुए शब्दों का एक सागर उमड़ रहा था, जो वह उससे कहना चाहती थी। उसे रमा पर जरा भी दया न आती थी, उससे रत्ती भर सहानुभूति न होती थी। वह उससे कहना चाहती थी—तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो, जालपा उसे पैरों से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुए हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड़ जाएंगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो तुम पशु भी नहीं, तुम कायर हो! कायर!

जालपा का मुखमंडल तेजमय हो गया। गर्व से उसकी गर्दन तन गई। यह शायद समझते होंगे, जालपा जिस वक्त मुझे झब्बेदार पगड़ी बांधे घोड़े पर सवार देखेगी, फूली न समाएगी। जालपा इतनी नीच नहीं है। तुम घोड़े पर नहीं, आसमान में उड़ो, मेरी आंखों में हत्यारे हो, पूरे हत्यारे, जिसने अपनी जान बचाने के लिए इतने आदमियों की गर्दन पर छुरी चलाई! मैंने चलते-चलते समझाया था, उसका कुछ असर न हुआ! ओह, तुम इतने धन-लोलुप हो, इतने लोभी! कोई हजर नहीं। जालपा अपने पालन और रक्षा के लिए तुम्हारी मुहताज नहीं। इन्हीं संतप्त भावनाओं में डूबी हुई जालपा घर पहुंची।

## तेंतालीस

एक महीना गुजर गया। जालपा कई दिन तक बहुत विकल रही। कई बार उन्माद-सा हुआ कि अभी सारी कथा किसी पत्र में छपवा दूं, सारी कलई खोल दूं, सारे हवाई किले ढा दूं, पर यह सभी उद्वेग शांत हो गए। आत्मा की गहराइयों में छिपी हुई कोई शक्ति उसकी जबान बंद कर देती थी। रमा को उसने हृदय से निकाल दिया था। उसके प्रति अब उसे क्रोध न था, द्वेष न था, दया भी न थी, केवल उदासीनता थी। उसके मर जाने की सूचना पाकर भी शायद वह न रोती। हां, इसे ईश्वरीय विधान की एक लीला, माया का एक निर्मम हास्य, एक क्रूर क्रीड़ा समझकर थोड़ी देर के लिए वह दुखी हो जाती। प्रणय का वह बंधन जो उसके गले में दो ढाई साल पहले पड़ा था, टूट चुका था। पर उसका निशान बाकी था। रमा को इस बीच में उसने कई बार मोटर पर अपने घर के सामने से जाते देखा। उसकी आंखें किसी को खोजती हुई मालूम होती थीं। उन आंखों में कुछ लज्जा थी, कुछ क्षमा-याचना, पर जालपा ने कभी उसकी तरफ आंखें न उठाईं। वह शायद इस वक्त आकर उसके पैरों पर पड़ता, तो भी वह उसकी ओर न ताकती। रमा की इस घृणित कायरता और महान् स्वार्थपरता ने जालपा के हृदय को मानो चीर डाला था, फिर भी उस प्रणय-बंधन का निशान अभी बना हुआ था। रमा की वह प्रेम-विह्वल मूर्ति, जिसे देखकर एक दिन वह गद्गद हो जाती थी, कभी-कभी उसके हृदय में छाए हुए अंधेरे में क्षीण, मलिन, निरानंद ज्योत्स्ना की भांति प्रवेश करती, और एक क्षण के लिए वह स्मृतियां विलाप कर

उठतीं। फिर उसी अंधकार और नीरवता का परदा पड़ जाता। उसके लिए भविष्य की मृदु स्मृतियां न थीं, केवल कठोर, नीरस वर्तमान विकराल रूप से खड़ा घूर रहा था।

वह जालपा, जो अपने घर बात-बात पर मान किया करती थी, अब सेवा, त्याग और सहिष्णुता की मूर्ति थी। जग्गो मना करती रहती, पर वह मुंह-अंधेरे सारे घर में झाड़ू लगा आती, चौका-बरतन कर डालती, आटा गूंधकर रख देती, चूल्हा जला देती। तब बुढ़िया का काम केवल रोटियां सेंकना था। छूत-विचार को भी उसने ताक पर रख दिया था। बुढ़िया उसे ठेल-ठालकर रसोई में ले जाती और कुछ न कुछ खिला देती। दोनों में मां-बेटी का-सा प्रेम हो गया था।

मुकदमे की सब कार्रवाई समाप्त हो चुकी थी। दोनों पक्ष के वकीलों की बहस हो चुकी थी। केवल फैसला सुनाना बाकी था। आज उसकी तारीख थी। आज बड़े सबेरे घर के काम-धंधों से फुरसत पाकर जालपा दैनिक-पत्र वाले की आवाज पर कान लगाए बैठी थी, मानो आज उसी का भाग्य-निर्णय होने वाला है। इतने में देवीदीन ने पत्र लाकर उसके सामने रख दिया। जालपा पत्र पर टूट पड़ी और फैसला पढ़ने लगी। फैसला क्या था, एक खयाली कहानी थी, जिसका प्रधान नायक रमा था। जज ने बार-बार उसकी प्रशंसा की थी। सारा अभियोग उसी के बयान पर अवलंबित था।

देवीदीन ने पूछा—फैसला छपा है?

जालपा ने पत्र पढ़ते हुए कहा—हां, है तो !

'किसकी सजा हुई?'

'कोई नहीं छूटा। एक को फांसी की सजा मिली। पांच को दस-दस साल और आठ को पांच-पांच साल। उसी दिनेश को फांसी हुई।'

यह कहकर उसने समाचार-पत्र रख दिया और एक लंबी सांस लेकर बोली—इन बेचारों के बाल-बच्चों का न जाने क्या हाल होगा !

देवीदीन ने तत्परता से कहा—तुमने जिस दिन मुझसे कहा था, उसी दिन से मैं इन बातों का पता लगा रहा हूं। आठ आदमियों का तो अभी तक ब्याह ही नहीं हुआ और उनके घर वाले मजे में हैं। किसी बात की तकलीफ नहीं है। पांच आदमियों का विवाह तो हो गया है, पर घर के खुश हैं। किसी के घर रोजगार होता है, कोई जमींदार है, किसी के बाप-चचा नौकर हैं। मैंने कई आदमियों से पूछा। यहां कुछ चंदा भी किया गया है। अगर उनके घर वाले लेना चाहें तो तो दिया जायगा। खाली दिनेस तबाह है। दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, बुढ़िया, मां और औरत। यहां किसी स्कूल में मास्टर था। एक मकान किराए पर लेकर रहता था। उसकी खराबी है।

जालपा ने पूछा—उसके घर का पता लगा सकते हो?

'हां, उसका पता कौन मुसकिल है?'

जालपा ने याचना-भाव से कहा—तो कब चलोगे? मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। अभी तो वक्त है। चलो, जरा देखें।

देवीदीन ने आपत्ति करके कहा—पहले मैं देख तो आऊं। इस तरह उटक्करलैस मेरे साथ कहां-कहां दौड़ती फिरोगी?

जालपा ने मन को दबाकर लाचारी से सिर झुका लिया और कुछ न बोली।

देवीदीन चला गया। जालपा फिर समाचार-पत्र देखने लगी; पर उसका ध्यान दिनेश की

ओर लगा हुआ था। बेचारा फांसी पा जायगा। जिस वक्त उसने फांसी का हुक्म सुना होगा, उसकी क्या दशा हुई होगी। उसकी बूढ़ी मां और स्त्री यह खबर सुनकर छाती पीटने लगी होंगी। बेचारा स्कूल-मास्टर ही तो था, मुश्किल से रोटियां चलती होंगी। और क्या सहारा होगा? उनकी विपत्ति की कल्पना करके उसे रमा के प्रति उत्तेजनापूर्ण घृणा हुई कि वह उदासीन न रह सकी। उसके मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इस वक्त वह आ जायं तो ऐसा धिक्कारूं कि वह भी याद करें। तुम मनुष्य हो ! कभी नहीं। तुम मनुष्य के रूप में राक्षस हो, राक्षस ! तुम इतने नीच हो कि उसको प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। तुम इतने नीच हो कि आज कमीने से कमीना आदमी भी तुम्हारे ऊपर थूक रहा है। तुम्हें किसी ने पहले ही क्यों न मार डाला। इन आदमियों की जान तो जाती ही; पर तुम्हारे मुंह में तो कालिख न लगती। तुम्हारा इतना पतन हुआ कैसे ! जिसका पिता इतना सच्चा, इतना ईमानदार हो; वह इतना लोभी, इतना कायर !

शाम हो गई; पर देवीदीन न आया। जालपा बार-बार खिड़की पर खड़ी हो-होकर इधर-उधर देखती थी; पर देवीदीन का पता न था। धीरे-धीरे आठ बज गए और देवी न लौटा। सहसा एक मोटर द्वार पर आकर रुकी और रमा ने उतरकर जग्गो से पूछा—सब कुशल-मंगल है न दादी ! दादा कहां गए हैं?

जग्गो ने एक बार उसकी ओर देखा और मुंह फेर लिया। केवल इतना बोली—कहीं गए होंगे; मैं नहीं जानती।

रमा ने सोने की चार चूड़ियां जेब से निकालकर जग्गो के पैरों पर रख दीं और बोला—यह तुम्हारे लिए लाया हूं दादी, पहनो, ढीली तो नहीं हैं?

जग्गो ने चूड़ियां उठाकर जमीन पर पटक दीं और आंखें निकालकर बोली—जहां इतना पाप समा सकता है, वहां चार चूड़ियों की जगह नहीं है ! भगवान् की दया से बहुत चूड़ियां पहन चुकी और अब भी सेर-दो सेर सोना पड़ा होगा, लेकिन जो खाया, पहना, अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं दबाया, पाप की गठरी सिर पर नहीं लादी, नीयत नहीं बिगाड़ी। उस कोख में आग लगे जिसने तुम-जैसे कपूत को जन्म दिया। यह पाप की कमाई लेकर तुम बहू को देने आए होगे ! समझते होगे, तुम्हारे रुपयों की थैली देखकर वह लट्टू हो जाएगी। इतने दिन उसके साथ रहकर भी तुम्हारी लोभी आंखें उसे न पहचान सकीं। तुम जैसे राक्षस उस देवी के जोग न थे। अगर अपनी कुसल चाहते हो, तो इन्हीं पैरों जहां से आए हो वहीं लौट जाओ, उसके सामने जाकर क्यों अपना पानी उतरवाओगे। तुम आज पुलिस के हाथों जख्मी होकर, मार खाकर आए होते, तुम्हें सजा हो गई होती, तुम जेहल में डाल दिए गए होते तो बहू तुम्हारी पूजा करती, तुम्हारे चरन धो-धोकर पीती। वह उन औरतों में है जो चाहे मजूरी करें, उपास करें, फटे-चीथड़े पहनें; पर किसी की बुराई नहीं देख सकतीं। अगर तुम मेरे लड़के होते, तो तुम्हें जहर दे देती। क्यों खड़े मुझे जला रहे रहे हो। चले क्यों नहीं जाते। मैंने तुमसे कुछ ले तो नहीं लिया है?

रमा सिर झुकाए चुपचाप सुनता रहा। तब आहत स्वर में बोला—दादी, मैंने बुराई की है और इसके लिए मरते दम तक लज्जित रहूंगा; लेकिन तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो, उतना नीच नहीं हूं। अगर तुम्हें मालूम होता कि पुलिस ने मेरे साथ कैसी-कैसी सख्तियां कीं,

मुझे कैसी-कैसी धमकियां दीं, तो तुम मुझे राक्षस न कहतीं।

जालपा के कानों में इन आवाजों की भनक पड़ी। उसने जीने से झांककर देखा। रमानाथ खड़ा था। सिर पर बनारसी रेशमी साफा था, रेशम का बढ़िया कोट, आंखों पर सुनहली ऐनक। इस एक ही महीने में उसकी देह निखर आई थी। रंग भी अधिक गोरा हो गया था। ऐसी कांति उसके चेहरे पर कभी न दिखाई दी थी। उसके अंतिम शब्द जालपा के कानों में पड़ गए, बाज की तरह टूटकर धम-धम करती हुई नीचे आई और जहर में बुझे हुए नेत्रबाणों का उस पर प्रहार करती हुई बोली-अगर तुम सख्तियों और धमकियों से इतना दब सकते हो, तो तुम कायर हो। तुम्हें अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नहीं। क्या सख्तियां की थीं? जरा सुनूं! लोगों ने तो हंसते-हंसते सिर कटा लिए हैं, अपने बेटों को मरते देखा है, कोल्हू में पेले जाना मंजूर किया है, पर सच्चाई से जौ-भर भी नहीं हटे। तुम भी तो आदमी हो, तुम क्यों धमकी में आ गए? क्यों नहीं छाती खोलकर खड़े हो गए कि इसे गोली का निशाना बना लो, पर मैं झूठ न बोलूंगा। क्यों नहीं सिर झुका दिया? देह के भीतर इसीलिए आत्मा रक्खी गई है कि देह उसकी रक्षा करे। इसलिए नहीं कि उसका सर्वनाश कर दे। इस पाप का क्या पुरस्कार मिला? जरा मालूम तो हो!

रमा ने दबी हुई आवाज से कहा-अभी तो कुछ नहीं।

जालपा ने सर्पिणी की भांति फुंकारकर कहा-यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई! ईश्वर करे, तुम्हें मुंह में कालिख लगाकर भी कुछ न मिले! मेरी यह सच्चे दिल से प्रार्थना है; लेकिन नहीं, तुम-जैसे मोम के पुतलों को पुलिस वाले कभी नाराज न करेंगे। तुम्हें कोई जगह मिलेगी और शायद अच्छी जगह मिले; मगर जिस जाल में तुम फंसे हो, उसमें से निकल नहीं सकते। झूठी गवाही, झूठे मुकदमे बनाना और पाप का व्यापार करना ही तुम्हारे भाग्य में लिख गया। जाओ शौक से जिंदगी के सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूं कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं है। मैंने समझ लिया कि तुम मर गए। तुम भी समझ लो कि मैं मर गई। बस, जाओ। मैं औरत हूं। अगर कोई धमकाकर मुझसे पाप कराना चाहे, तो चाहे उसे न मार सकूं; अपनी गर्दन पर छुरी चला दूंगी। क्या तुममें औरतों के बराबर भी हिम्मत नहीं है?

रमा ने भिक्षुकों की भांति गिड़गिड़ाकर कहा-तुम मेरा कोई उज्र न सुनोगी?

जालपा ने अभिमान से कहा-नहीं!

'तो मैं मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊं?'

'तुम्हारी खुशी!'

'तुम मुझे क्षमा न करोगी?'

'कभी नहीं, किसी तरह नहीं!'

रमा एक क्षण सिर झुकाए खड़ा रहा, तब धीरे-धीरे बरामदे के नीचे जाकर जग्गो से बोला-दादी, दादा आएं तो कह देना, मुझसे जरा देर मिल लें। जहां कहें, आ जाऊं?

जग्गो ने कुछ पिघलकर कहा-कल यहीं चले आना।

रमा ने मोटर पर बैठते हुए कहा-यहां अब न आऊंगा, दादी!

मोटर चली गई तो जालपा ने कुत्सित भाव से कहा-मोटर दिखाने आए थे, जैसे

खरीद ही तो लाए हों !

जग्गो ने भर्त्सना की—तुम्हें इतना बेलगाम न होना चाहिए था, बहू ! दिल पर चोट लगती है, तो आदमी को कुछ नहीं सूझता।

जालपा ने निष्ठुरता से कहा—ऐसे हयादार नहीं हैं, दादी ! इसी सुख के लिए तो आत्मा बेची। उनसे यह सुख भला क्या छोड़ा जायगा। पूछा नहीं, दादा से मिलकर क्या करोगे? वह होते तो ऐसी फटकार सुनाते कि छठी का दूध याद आ जाता।

जग्गो ने तिरस्कार के भाव से कहा—तुम्हारी जगह मैं होती तो मेरे मुंह से ऐसी बातें न निकलतीं। तुम्हारा हिया बड़ा कठोर है। दूसरा मर्द होता तो इस तरह चुपका-चुपका सुनता? मैं तो थर-थर कांप रही थी कि कहीं तुम्हारे ऊपर हाथ न चला दे; मगर है बड़ा गमखोर।

जालपा ने उसी निष्ठुरता से कहा—इसे गमखोरी नहीं कहते दादी, यह बेहयाई है।

देवीदीन ने आकर कहा—क्या यहां भैया आए थे? मुझे मोटर पर रास्ते में दिखाई दिए थे।

जग्गो ने कहा—हां, आए थे। कह गए हैं, दादा मुझसे जरा मिल लें।

देवीदीन ने उदासीन होकर कहा—मिल लूंगा। यहां कोई बातचीत हुई?

जग्गो ने पछताते हुए कहा—बातचीत क्या हुई, पहले मैंने पूजा की, मैं चुप हुई तो बहू ने अच्छी तरह फूल-माला चढ़ाई।

जालपा ने सिर नीचा करके कहा—आदमी जैसा करेगा, वैसा भोगेगा।

जग्गो—अपना ही समझकर तो मिलने आए थे।

जालपा—कोई बुलाने तो न गया था। कुछ दिनेश का पता चला, दादा !

देवीदीन—हां, सब पूछ आया। हाबड़े में घर है। पता-ठिकाना सब मालूम हो गया।

जालपा ने डरते-डरते कहा—इस वक्त चलोगे या कल किसी वक्त?

देवीदीन—तुम्हारी जैसी मरजी। जी जाहे इसी बखत चलो, मैं तैयार हूं।

जालपा—थक गए होगे?

देवीदीन—इन कामों में थकान नहीं होती बेटी।

आठ बज गए थे। सड़क पर मोटरों का तांता बंधा हुआ था। सड़क की दोनों पटरियों पर हजारों स्त्री-पुरुष बने-ठने, हंसते-बोलते चले जाते थे। जालपा ने सोचा, दुनिया कैसी अपने राग-रंग में मस्त है। जिसे उसके लिए मरना हो मरे, वह अपनी टेव न छोड़ेगी। हर एक अपना छोटा-सा मिट्टी का घरौंदा बनाए बैठा है। देश बह जाए, उसे परवा नहीं। उसका घरौंदा बच रहे ! उसके स्वार्थ में बाधा न पड़े। उसका भोला-भाला हृदय बाजार को बंद देखकर खुश होता। सभी आदमी शोक से सिर झुकाए, त्योरियां बदले उन्मत्त-से नजर आते। सभी के चेहरे भीतर की जलन से लाल होते। वह न जानती थी कि इस जन-सागर में ऐसी छोटी-छोटी कंकड़ियों के गिरने से एक हल्कोरा भी नहीं उठता, आवाज तक नहीं आती।

# चवालीस

रमा मोटर पर चला, तो उसे कुछ सूझता न था, कुछ समझ में न आता था, कहां जा रहा है। जाने हुए रास्ते उसके लिए अनजाने हो गए थे। उसे जालपा पर क्रोध न था, जरा भी नहीं। जग्गो पर भी उसे क्रोध न था। क्रोध था अपनी दुर्बलता पर, अपनी स्वार्थलोलुपता पर, अपनी कायरता पर। पुलिस के वातावरण में उसका औचित्य-ज्ञान भ्रष्ट हो गया था। वह कितना बड़ा अन्याय करने जा रहा है, उसका उसे केवल उस दिन खयाल आया था, जब जालपा ने समझाया था। फिर यह शंका मन में उठी ही नहीं। अफसरों ने बड़ी-बड़ी आशाएं बंधाकर उसे बहला रक्खा। वह कहते, अजी बीबी की कुछ फिक्र न करो। जिस वक्त तुम एक जड़ाऊ हार लेकर पहुंचोगे और रुपयों की थैली नजर कर दोगे, बेगम साहब का सारा गुस्सा भाग जायगा। अपने सूबे में किसी अच्छी-सी जगह पर पहुंच जाओगे, आराम से जिंदगी कटेगी। कैसा गुस्सा! इसकी कितनी ही आंखों-देखी मिसालें दी गई। रमा चक्कर में फंस गया। फिर उसे जालपा से मिलने का अवसर ही न मिला। पुलिस का रंग जमता गया। आज वह जड़ाऊ हार जेब में रखे जालपा को अपनी विजय की खुशखबरी देने गया था। वह जानता था जालपा पहले कुछ नाक-भौं सिकोड़ेगी, पर यह भी जानता था कि यह हार देखकर वह जरूर खुश हो जायगी। कल ही संयुक्त प्रांत के होम सेक्रेटरी के नाम कमिश्नर पुलिस का पत्र उसे मिल जाएगा। दो-चार दिन यहां खूब सैर करके घर की राह लेगा। देवीदीन और जग्गो को भी वह अपने साथ ले जाना चाहता था। उनका एहसान वह कैसे भूल सकता था। यही मनसूबे मन में बांधकर वह जालपा के पास गया था, जैसे कोई भक्त फूल और नैवेद्य लेकर देवता की उपासना करने जाय, पर देवता ने वरदान देने के बदले उसके थाल को ठुकरा दिया, उसके नैवेद्य को पैरों से कुचल डाला! उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिला। आज पुलिस के विषैले वातावरण से निकलकर उसने स्वच्छ वायु पाई थी और उसकी सुबुद्धि सचेत हो गई थी। अब उसे अपनी पशुता अपने यथार्थ रूप में दिखाई दी—कितनी विकराल, कितनी दानवी मूर्ति थी। वह स्वय उसकी ओर ताकने का साहस न कर सकता था। उसने सोचा, इसी वक्त जज के पास चलूं और सारी कथा कह सुनाऊं। पुलिस मेरी दुश्मन हो जाय, मुझे जेल में सड़ा डाले, कोई परवा नहीं। सारी कलई खोल दूंगा। क्या जज अपना फैसला नहीं बदल सकता? अभी तो सभी मुल्जिम हवालात में हैं। पुलिस वाले खूब दांत पीसेंगे, खूब नाचे-कूदेंगे, शायद मुझे कच्चा ही खा जायं। खा जायं! इसी दुर्बलता ने तो मेरे मुंह में कालिख लगा दी।

जालपा की वह क्रोधोन्मत्त मूर्ति उसकी आंखों के सामने फिर गई। ओह, कितने गुस्से में थी! मैं जानता कि वह इतना बिगड़ेगी, तो चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाती, अपना बयान बदल देता। बड़ा चकमा दिया इन पुलिस वालों ने। अगर कहीं जज ने कुछ नहीं सुना और मुल्जिमों को बरी न किया, तो जालपा मेरा मुंह न देखेगी। मैं उसके पास कौन मुंह लेकर जाऊंगा। फिर जिंदा रहकर ही क्या करूंगा। किसके लिए?

उसने मोटर रोकी और इधर-उधर देखने लगा। कुछ समझ में न आया, कहां आ गया। सहसा एक चौकीदार नजर आया। उसने उससे जज साहब के बंगले का पता पूछा। चौकीदार

हंसकर बोला—हुजूर तो बहुत दूर निकल आए। यहां से तो छः-सात मील से कम न होगा, वह उधर चौरंगी की ओर रहते हैं।

रमा चौरंगी का रास्ता पूछकर फिर चला। नौ बज गए थे। उसने सोचा, जज साहब से मुलाकात न हुई, तो सारा खेल बिगड़ जाएगा। बिना मिले हटूंगा ही नहीं। अगर उन्होंने सुन लिया तो ठीक ही है, नहीं कल हाईकोर्ट के जजों से कहूंगा। कोई तो सुनेगा। सारा वृत्तांत समाचार-पत्रों में छपवा दूंगा, तब तो सबकी आंखें खुलेंगी।

मोटर तीस मील की चाल से चल रही थी। दस मिनट ही में चौरंगी आ पहुंची। यहां अभी तक वही चहल-पहल थी, मगर रमा उसी जन्नाटे से मोटर लिए जाता था। सहसा एक पुलिसमैन ने लाल बत्ती दिखाई। वह रुक गया और बाहर सिर निकलकर देखा, तो वही दारोगाजी !

दारोगा ने पूछा—क्या अभी तक बंगले पर नहीं गए? इतनी तेज मोटर न चलाया कीजिए। कोई वारदात हो जायगी। कहिए, बेगम साहब से मुलाकात हुई? मैंने तो समझा था, वह भी आपके साथ होंगी। खुश तो खूब हुई होंगी !

रमा को ऐसा क्रोध आया कि मूंछें उखाड़ लूं, पर बात बनाकर बोला—जी हां, बहुत खुश हुई। बेहद !

'मैंने कहा था न, औरतों की नाराजी की वही दवा है। आप कांपे जाते थे।'

'मेरी हिमाकत थी।'

'चलिए, मैं भी आपके साथ चलता हूं। एक बाजी ताश उड़े और जरा सरूर जमे। डिप्टी साहब और इंस्पेक्टर साहब आएंगे। जोहरा को बुलवा लेंगे। दो घड़ी की बहार रहेगी। अब आप मिसेज रमानाथ को बंगले ही पर क्यों नहीं बुला लेते। वहां उस खटिक के घर पडी हुई हैं।'

रमा ने कहा—अभी तो मुझे एक जरूरत से दूसरी तरफ जाना है। आप मोटर ले जाएं। मैं पाव-पांव चला आऊंगा।

दारोगा ने मोटर के अंदर जाकर कहा—नही साहब, मुझे कोई जल्दी नहीं है। आप जहां चलना चाहें, चलिए। मैं जरा भी मुखिल न हूंगा।

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा—लेकिन मैं अभी बंगले पर नहीं जा रहा हूं।

दारोगा ने मुस्कराकर कहा—मैं समझ रहा हूं, लेकिन मैं जरा भी मुखिल न हूंगा। वही बेगम साहब

रमा ने बात काटकर कहा—जी नहीं, वहां मुझे नहीं जाना है।

दारोगा—तो क्या कोई दूसरा शिकार है? बंगले पर भी आज कुछ कम बहार न रहेगी। वहीं आपके दिल-बहलाव का कुछ सामान हाजिर हो जायगा।

रमा ने एकबारगी आंखें लाल करके कहा—क्या आप मुझे शोहदा समझते हैं? मैं इतना जलील नहीं हूं।

दारोगा ने कुछ लज्जित होकर कहा—अच्छा साहब, गुनाह हुआ, माफ कीजिए। अब कभी ऐसी गुस्ताखी न होगी, लेकिन अभी आप अपने को खतरे से बाहर न समझें। मैं आपको किसी ऐसी जगह न जाने दूंगा, जहां मुझे पूरा इत्मीनान न होगा। आपको खबर नहीं, आपके

कितने दुश्मन हैं। मैं आप ही के फायदे के खयाल से कह रहा हूं।

रमा ने होंठ चबाकर कहा—बेहतर हो कि आप मेरे फायदे का इतना खयाल न करें। आप लोगों ने मुझे मलियामेट कर दिया और अब भी मेरा गला नहीं छोड़ते। मुझे अब अपने हाल पर मरने दीजिए। मैं इस गुलामी से तंग आ गया हूं। मैं मां के पीछे-पीछे चलने वाला बच्चा नहीं बनना चाहता। आप अपनी मोटर चाहते हैं; शौक से ले जाइए। मोटर की सवारी और बंगले में रहने के लिए पंद्रह आदमियों को कुर्बान करना पड़ा है। कोई जगह पा जाऊं, तो शायद पंद्रह सौ आदमियों को कुर्बान करना पड़े। मेरी छाती इतनी मजबूत नहीं है। आप अपनी मोटर ले जाइए।

यह कहता हुआ वह मोटर से उतर पड़ा और जल्दी से आगे बढ़ गया। दारोगा ने कई बार पुकारा, जरा सुनिए, बात तो सुनिए; लेकिन उसने पीछे फिरकर देखा तक नहीं। जरा और आगे चलकर वह एक मोड़ से घूम गया। इसी सड़क पर जज का बंगला था। सड़क पर कोई आदमी न मिला। रमा कभी इस पटरी पर और कभी उस पटरी पर जा-जाकर बंगलों के नंबर पढ़ता चला जाता था। सहसा एक नंबर देखकर वह रुक गया। एक मिनट तक खड़ा देखता रहा कि कोई निकले तो उससे पूछूं साहब हैं या नहीं। अंदर जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। खयाल आया, जज ने पूछा, तुमने क्यों झूठी गवाही दी, तो क्या जवाब दूंगा। यह कहना कि पुलिस ने मुझसे जबरदस्ती गवाही दिलवाई, प्रलोभन दिया, मारने की धमकी दी, लज्जास्पद बात है। अगर वह पूछे कि तुमने केवल दो-तीन साल की सजा से बचने के लिए इतना बड़ा कलंक सिर पर ले लिया, इतने आदमियों की जान लेने पर उतारू हो गए; उस वक्त तुम्हारी बुद्धि कहां गई थी, तो उसका मेरे पास क्या जवाब है? ख्वामख्वाह लज्जित होना पड़ेगा। बेवकूफ बनाया जाऊंगा। वह लौट पड़ा। इस लज्जा का सामना करने की उसमें सामर्थ्य न थी। लज्जा ने सदैव वीरों को परास्त किया है। जो काल से भी नहीं डरते, वे भी लज्जा के सामने खड़े होने की हिम्मत नहीं करते। आग में झुंक जाना, तलवार के सामने खड़े हो जाना, इसकी अपेक्षा कहीं सहज है। लाज की रक्षा ही के लिए बड़े-बड़े राज्य मिट गए हैं, रक्त की नदियां बह गई हैं, प्राणों की होली खेल डाली गई है। उसी लाज ने आज रमा के पग भी पीछे हटा दिए। शायद जेल की सजा से वह इतना भयभीत न होता।

## पैंतालीस

रमा आधी रात गए सोया, तो नौ बजे दिन तक नींद न खुली । वह स्वप्न देख रहा था—दिनेश को फांसी हो रही है। सहसा एक स्त्री तलवार लिए हुए फांसी की ओर दौड़ी और फांसी की रस्सी काट दी । चारों ओर हलचल मच गई । वह औरत जालपा थी । जालपा को लोग घेरकर पकड़ना चाहते थे; पर वह पकड़ में न आती थी। कोई उसके सामने जाने का साहस न कर सकता था । तब उसने एक छलांग मारकर रमा के ऊपर तलवार चलाई । रमा घबड़ाकर उठ बैठा। देखा तो दारोगा और इंस्पेक्टर कमरे में खड़े हैं, और डिप्टी साहब आराम-कुर्सी पर लेटे हुए सिगार पी रहे हैं ।

दारोगा ने कहा—आज तो आप खूब सोए बाबू साहब ! कल कब लौटे थे ?

रमा ने एक कुर्सी पर बैठकर कहा—जरा देर बाद लौट आया था। इस मुकदमे की अपील तो हाईकोर्ट में होगी न?

इंस्पेक्टर—अपील क्या होगी, जाब्ते की पाबंदी होगी। आपने मुकदमे को इतना मजबूत कर दिया है कि वह अब किसी के हिलाए हिल नहीं सकता। हलफ से कहता हूं, आपने कमाल कर दिया। अब आप उधर से बेफिक्र हो जाइए ! हां, अभी जब तक फैसला न हो जाय, यह मुनासिब होगा कि आपकी हिफाजत का खयाल रक्खा जाय। इसलिए फिर पहरे का इंतजाम कर दिया गया है । इधर हाईकोर्ट से फैसला हुआ, उधर आपको जगह मिली ।

डिप्टी साहब ने सिगार का धुआं फेंककर कहा—यह डी॰ ओ॰ कमिश्नर साहब ने आपको दिया है, जिसमें आपको कोई तरह की शक न हो । देखिए, यू॰ पी॰ के होम सेक्रेटरी के नाम है । आप वहां ज्योंही यह डी॰ ओ॰ दिखाएंगे, वह आपको कोई बहुत अच्छी जगह दे देगा ।

इंस्पेक्टर—कमिश्नर साहब आपसे बहुत खुश हैं, हलफ से कहता हूं ।

डिप्टी—बहुत खुश हैं। वह यू॰ पी॰ को अलग डायरेक्ट भी चिट्ठी लिखेगा। तुम्हारा भाग्य खुल गया।

यह कहते हुए उसने डी॰ ओ॰ रमा की तरफ बढ़ा दिया। रमा ने लिफाफा खोलकर देखा और एकाएक उसको फाड़कर पुर्जे-पुर्जे कर डाला । तीनों आदमी विस्मय से उसका मुंह ताकने लगे ।

दारोगा ने कहा—रात बहुत पी गए थे क्या? आपके हक में अच्छा न होगा !

इंस्पेक्टर—हलफ से कहता हूं, कमिश्नर साहब को मालूम हो जायगा, तो बहुत नाराज होंगे।

डिप्टी—इसका कुछ मतलब हमारे समझ में नही आया । इसका क्या मतलब है?

रमानाथ—इसका यह मतलब है कि मुझे इस डी॰ ओ॰ की जरूरत नही है और न मै नौकरी चाहता हूं। मैं आज ही यहां से चला जाऊंगा।

डिप्टी—जब तक हाईकोर्ट का फैसला न हो जाय, तब तक आप कही नहीं जा सकता।

रमानाथ—क्यों?

डिप्टी—कमिश्नर साहब का यह हुक्म है।

रमानाथ—मैं किसी का गुलाम नहीं हूं।

इंस्पेक्टर—बाबू रमानाथ, आप क्यों बना-बनाया खेल बिगाड़ रहे हैं? जो कुछ होना था, वह हो गया। दस-पांच दिन में हाईकोर्ट से फैसले की तसदीक हो जायगी आपकी बेहतरी इसी में है कि जो सिला मिल रहा है, उसे खुशी से लीजिए और आराम से जिंदगी के दिन बसर कीजिए। खुदा ने चाहा, तो एक दिन आप भी किसी ऊंचे ओहदे पर पहुंच जाएंगे। इससे क्या फायदा कि अफसरों को नाराज कीजिए और कैद की मुसीबतें झेलिए। हलफ से कहता हूं, अफसरों की जरा-सी निगाह बदल जाय, तो आपका कहीं पता न लगे। हलफ से कहता हूं, एक इशारे में आपको दस साल की सजा हो जाय। आप हैं किस ख्याल में ? हम आपके साथ शरारत

नहीं करना चाहते। हां, अगर आप हमें सख्ती करने पर मजबूर करेंगे, तो हमें सख्ती करनी पड़ेगी। जेल को आसान न समझिएगा। खुदा दोजख में ले जाए; पर जेल की सजा न दे। मार-धाड़, गाली-गुफ्ता, वह तो वहां की मामूली सजा है। चक्की में जोत दिया तो मौत ही आ गई। हलफ से कहता हूं, दोजख से बदतर है जेल ।

दारोगा–यह बेचारे अपनी बेगम से माजूर हैं । वह शायद इनके जान की गाहक हो रही हैं। उनसे इनकी कोर दबती है ।

इंस्पेक्टर–क्या हुआ, कल तो वह हार दिया था न? फिर भी राजी नहीं हुई ?

रमा ने कोट की जेब से हार निकालकर मेज पर रख दिया और बोला–वह हार यह रक्खा हुआ है।

इंस्पेक्टर–अच्छा, इसे उन्होंने नहीं कबूल किया।

डिप्टी–कोई प्राउड लेडी है ।

इंस्पेक्टर–कुछ उनकी भी मिजाज-पुरसी करने की जरूरत होगी ।

दारोगा–यह तो बाबू साहब के रंग-ढंग और सलीके पर मुनहसर है। अगर आप ख्वामख्वाह हमें मजबूर न करेंगे, तो हम आपके पीछे न पड़ेंगे ।

डिप्टी–उस खटिक से भी मुचलका ले लेना चाहिए ।

रमानाथ के सामने एक नई समस्या आ खड़ी हुई, पहली से कहीं जटिल, कहीं भीषण। संभव था, वह अपने को कर्त्तव्य की वेदी पर बलिदान कर देता, दो-चार साल की सजा के लिए अपने को तैयार कर लेता। शायद इस समय उसने अपने आत्म-समर्पण का निश्चय कर लिया था; पर अपने साथ जालपा को भी संकट में डालने का साहस वह किसी तरह न कर सकता था। वह पुलिस के शिकंजे में कुछ इस तरह दब गया था कि अब उसे बेदाग निकल जाने का कोई मार्ग दिखाई न देता था । उसने देखा कि इस लड़ाई में मैं पेश नहीं पा सकता। पुलिस सर्वशक्तिमान् है, वह मुझे जिस तरह चाहे दबा सकती है । उसके मिजाज की तेजी गायब हो गई । विवश होकर बोला–आखिर आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं?

इंस्पेक्टर ने दारोगा की ओर देखकर आंखें मारीं, मानो कह रहें हों, 'आ गया पंजे में', और बोले–बस इतना ही कि आप हमारे मेहमान बने रहें, और मुकदमे के हाईकोर्ट में तय हो जाने के बाद यहां से रुखसत हो जाएं। क्योंकि उसके बाद हम आपकी हिफाजत के जिम्मेदार न होंगे। अगर आप कोई सर्टिफिकेट लेना चाहेंगे, तो वह दे दी जाएगी; लेकिन उसे लेने या न लेने का आपको पूरा अख्तियार है। अगर आप होशियार हैं, तो उसे लेकर फायदा उठाएंगे, नहीं इधर-उधर के धक्के खाएंगे। आपके ऊपर गुनाह बेलज्जत की मसल सादिक आयगी। इसके सिवा हम आपसे और कुछ नहीं चाहते । हलफ से कहता हूं, हर एक चीज जिसकी आपको ख्वाहिश हो, यहां हाजिर कर दी जाएगी; लेकिन जब तक मुकदमा खत्म हो जाए, आप आजाद नहीं हो सकते ।

रमानाथ ने दीनता के साथ पूछा–सैर करने तो जा सकूंगा, या वह भी नहीं?

इंस्पेक्टर ने सूत्र रूप से कहा–जी नहीं !

दारोगा ने उस सूत्र की व्याख्या की–आपको वह आजादी दी गई थी; पर आपने उसका

बेजा इस्तेमाल किया । जब तक इसका इत्मीनान न हो जाय कि आप उसका जायज इस्तेमाल कर सकते हैं या नहीं, आप उस हक से महरूम रहेंगे।

दारोगा ने इंस्पेक्टर की तरफ देखकर मानो इस व्याख्या की दाद देनी चाही, जो उन्हें सहर्ष मिल गई ।

तीनों अफसर रुखसत हो गए और रमा एक सिगार जलाकर इस विकट परिस्थिति पर विचार करने लगा ।

## छियालीस

एक महीना और निकल गया । मुकदमे के हाईकोर्ट में पेश होने की तिथि नियत हो गई है। रमा के स्वभाव में फिर वही पहले की-सी भीरुता और खुशामद आ गई है। अफसरों के इशारे पर नाचता है। शराब की मात्रा पहले से बढ़ गई है, विलासिता ने मानो पंजे में दबा लिया है। कभी कभी उसके कमरे में एक वेश्या जोहरा भी आ जाती है, जिसका गाना वह बड़े शौक से सुनता है ।

एक दिन उसने बड़ी हसरत के साथ जोहरा से कहा—मैं डरता हूं, कहीं तुमसे प्रेम न बढ़ जाय। उसका नतीजा इसके सिवा और क्या होगा कि रो-रोकर जिंदगी काटूं । तुमसे वफा की उम्मीद और क्या हो सकती है !

जोहरा दिल में खुश होकर अपनी बड़ी-बड़ी रतनारी आंखों से उसकी ओर ताकती हुई बोली—हां साहब, हम वफा क्या जानें, आखिर वेश्या ही तो ठहरीं । बेवफा वेश्या भी कहीं वफादार हो सकती है?

रमा ने आपत्ति करके पूछा—क्या इसमें कोई शक है?

जोहरा—नहीं, जरा भी नहीं । आप लोग हमारे पास मुहब्बत से लबालब भरे दिल लेकर आते हैं; पर हम उसकी जरा भी कद्र नहीं करतीं । यही बात है न?

रमानाथ—बेशक।

जोहरा—मुआफ कीजिएगा, आप मरदों की तरफदारी कर रहे हैं। हक यह है कि वहां आप लोग दिल-बहलाव के लिए जाते हैं, महज गम गलत करने के लिए, महज आनंद उठाने के लिए। जब आपको वफा की तलाश ही नहीं होती, तो वह मिले क्यों कर? लेकिन इतना मैं जानती हूं कि हममें जितनी बेचारियां मरदों की बेवफाई से निरास होकर अपना आराम-चैन खो बैठती हैं, उनका पता अगर दुनिया को चले, तो आंखें खुल जायं। यह हमारी भूल है कि तमाशबीनों से वफा चाहते हैं, चील के घोंसले में मांस ढूंढते हैं; पर प्यासा आदमी अंधे कुएं की तरफ दौड़े, तो मेरे खयाल में उसका कोई कसूर नहीं।

उस दिन रात को चलते वक्त जोहरा ने दारोगा को खुशखबरी दी, आज तो हजरत खूब मजे में आए । खुदा ने चाहा, तो दो-चार दिन के बाद बीवी का नाम भी न लें।

दारोगा ने खुश होकर कहा—इसीलिए तो तुम्हें बुलाया था। मजा तो जब है कि बीवी यहां

से चली जाए। फिर हमें कोई गम न रहेगा। मालूम होता है; स्वराज्यवालों ने उस औरत को मिला लिया है। यह सब एक ही शैतान हैं।

जोहरा की आमदोरफ्त बढ़ने लगी, यहां तक कि रमा खुद अपने चकमे में आ गया। उसने जोहरा से प्रेम जताकर अफसरों की नजर में अपनी साख जमानी चाही थी; पर जैसे बच्चे खेल में रो पड़ते हैं, वैसे ही उसका प्रेमाभिनय भी प्रेमोन्माद बन बैठा। जोहरा उसे अब वफा और मुहब्बत की देवी मालूम होती थी। वह जालपा की-सी सुंदरी न सही, बातों में उससे कहीं चतुर, हाव-भाव में कहीं कुशल, सम्मोहन-कला में कहीं पटु थी। रमा के हृदय में नए-नए मनसूबे पैदा होने लगे।

एक दिन उसने जोहरा से कहा—जोहरा, जुदाई का समय आ रहा है । दो-चार दिन में मुझे यहां से चला जाना पड़ेगा । फिर तुम्हें क्यों मेरी याद आने लगी?

जोहरा ने कहा—मैं तुम्हें न जाने दूंगी। यहीं कोई अच्छी-सी नौकरी कर लेना। फिर हम-तुम आराम से रहेंगे ।

रमा ने अनुरक्त होकर कहा—दिल से कहती हो जोहरा? देखो, तुम्हें मेरे सिर की कसम, दगा मत देना।

जोहरा—अगर यह खौफ हो तो निकाह पढ़ा लो। निकाह के नाम से चिढ़ हो, तो ब्याह कर लो। पंडितों को बुलाओ। अब इसके सिवा मैं अपनी मुहब्बत का और क्या सबूत दूं।

रमा निष्कपट प्रेम का यह परिचय पाकर विह्वल हो उठा। जोहरा के मुंह से निकलकर इन शब्दों की सम्मोहक-शक्ति कितनी बढ़ गई थी। यह कामिनी, जिस पर बड़े-बड़े रईस फिदा हैं, मेरे लिए इतना बड़ा त्याग करने को तैयार है ! जिस खान में औरों को बालू ही मिलता है, उसमें जिसे सोने के डले मिल जायं, क्या वह परम भाग्यशाली नहीं है? रमा के मन में कई दिनों तक संग्राम होता रहा। जालपा के साथ उसका जीवन कितना नीरस, कितना कठिन हो जायगा। वह पग-पग पर अपना धर्म और सत्य लेकर खड़ी हो जाएगी और उसका जीवन एक दीर्घ तपस्या, एक स्थायी साधना बनकर रह जाएगा। सात्विक जीवन कभी उसका आदर्श नहीं रहा। साधारण मनुष्यों की भांति वह भी भोग-विलास करना चाहता था। जालपा की ओर से हटकर उसका विलासासक्त मन प्रबल वेग से जोहरा की ओर खिंचा। उसको व्रत-धारिणी वेश्याओं के उदाहरण याद आने लगे। उसके साथ ही चंचल वृत्ति की गृहिणियों की मिसालें भी आ पहुचीं। उसने निश्चय किया, यह सब ढकोसला है। न कोई जन्म से निर्दोष है, न कोई दोषी। यह सब परिस्थिति पर निर्भर है।

जोहरा रोज आती और बंधन में एक गांठ और देकर जाती । ऐसी स्थिति में संयमी युवक का आसन भी डोल जाता। रमा तो विलासी था। अब तक वह केवल इसलिए इधर-उधर न भटक सका था कि ज्योंही, उसके पंख निकले, जालिए ने उसे अपने पिंजरे में बंद कर दिया। कुछ दिन पिंजरे से बाहर रहकर भी उसे उड़ने का साहस न हुआ। अब उसके सामने एक नवीन दृश्य था, वह छोटा सा कुल्हियों वाला पिंजरा नहीं; बल्कि एक फूलों से लहराता हुआ बाग, जहां की कैद में स्वाधीनता का आनंद था। वह इस बाग में क्यों न क्रीड़ा का आनंद उठाए !

# सैंतालीस

रमा ज्यों-ज्यों जोहरा के प्रेम-पाश में फसंता जाता था, पुलिस के अधिकारी वर्ग उसकी ओर से निश्शंक होते जाते थे। उसके ऊपर जो कैद लगाई गई थी, धीरे-धीरे ढीली होने लगी। यहां तक कि एक दिन डिप्टी साहब शाम को सैर करने चले तो रमा को भी मोटर पर बिठा लिया। जब मोटर देवीदीन की दुकान के सामने से होकर निकली, तो रमा ने अपना सिर इस तरह भीतर खींच लिया कि किसी की नजर में पड़ जाय। उसके मन में बड़ी उत्सुकता हुई कि जालपा है या चली गई; लेकिन वह अपना सिर बाहर न निकाल सका। मन में वह अब भी यही समझता था कि मैंने जो रास्ता पकड़ा है, वह कोई बहुत अच्छा रास्ता नहीं है; लेकिन यह जानते हुए भी वह उसे छोड़ना न चाहता था। देवीदीन को देखकर उसका मस्तक आप-ही-आप लज्जा से झुक जाता, वह किसी दलील से अपना पक्ष सिद्ध न कर सकता। उसने सोचा, मेरे लिए सबसे उत्तम मार्ग यही है कि इनसे मिलना-जुलना छोड़ दूं। उस शहर में तीन प्राणियों को छोड़कर किसी चौथे आदमी से उसका परिचय न था, जिसकी आलोचना या तिरस्कार का उसे भय होता।

मोटर इधर-उधर घूमती हुई हाबड़ा-ब्रिज की तरफ चली जा रही थी, कि सहसा रमा ने एक स्त्री को सिर पर गंगा-जल का कलसा रक्खे घाटों के ऊपर आते देखा। उसके कपड़े बहुत मैले हो रहे थे और कृशांगी ऐसी थी कि कलसे के बोझ से उसकी गरदन दबी जाती थी। उसकी चाल कुछ-कुछ जालपा से मिलती हुई जान पड़ी। सोचा, जालपा यहां क्या करने आवेगी; मगर एक ही पल में कार और आगे बढ़ गई और रमा को उस स्त्री का मुंह दिखाई दिया। उसकी छाती धक-से हो गई। यह जालपा ही थी। उसने खिड़की के बगल में सिर छिपाकर गौर से देखा। बेशक जालपा थी; पर कितनी दुर्बल ! मानो कोई वृद्धा, अनाथ हो। न वह कांति थी, न वह लावण्य, न वह चंचलता, न वह गर्व। रमा हृदयहीन न था। उसकी आंखें सजल हो गईं। जालपा इस दशा में और मेरे जीते जी ! अवश्य देवीदीन ने उसे निकाल दिया होगा और वह टहलनी बनकर अपना निर्वाह कर रही होगी । नहीं, देवीदीन इतना बेमुरौवत नहीं है। जालपा ने खुद उसके आश्रय में रहना स्वीकर न किया होगा। मानिनी तो है ही। कैसे मालूम हो, क्या बात है?

मोटर दूर निकल आई थी। रमा की सारी चंचलता, सारी भोगलिप्सा गायब हो गई थी। मलिन वसना, दु:खिनी जालपा की वह मूर्ति आंखों के सामने खड़ी थी । किससे कहे? क्या कहे? यहां कौन अपना है? जालपा का नाम जबान पर आ जाय, तो सब-के-सब चौंक पड़ें और फिर घर से निकलना बंद कर दें। ओह ! जालपा के मुख पर शोक की कितनी गहरी छाया थी, आंखों में कितनी निराशा ! आह, उन सिमटी हुई आंखों में जले हुए हृदय से निकलने वाली कितनी आहें सिर पीटती हुई मालूम होती थीं, मानो उन पर हंसी कभी आई ही नहीं, मानो वह कली बिना खिले ही मुरझा गई ।

कुछ देर के बाद जोहरा आई, इठलाती, मुस्कराती, लचकती; पर रमा आज उससे भी फटा-फटा रहा।

जोहरा ने पूछा—आज किसी की याद आ रही है क्या?

यह कहते हुए उसने अपनी गोल नर्म मक्खन-सी बांह उसकी गरदन में डालकर उसे अपनी ओर खींचा। रमा ने अपनी तरफ जरा भी जोर न किया। उसके हृदय पर अपना मस्तक रख दिया, मानो अब यही उसका आश्रय है।

जोहरा ने कोमलता में डूबे हुए स्वर में पूछा—सच बताओ, आज इतने उदास क्यों हो? क्या मुझसे किसी बात पर नाराज हो?

रमा ने आवेश से कांपते हुए स्वर में कहा—नहीं जोहरा, तुमने मुझ आभागे पर जितनी दया की है, उसके लिए मैं हमेशा तुम्हारा एहसानमंद रहूंगा। तुमने उस वक्त मुझे संभाला, जब मेरे जीवन की टूटी हुई किश्ती गोते खा रही थी । वे दिन मेरी जिंदगी के सबसे मुबारक दिन हैं और उनकी स्मृति को मैं अपने दिल में बराबर पूजता रहूंगा। मगर अभागों को मुसीबत बार-बार अपनी तरफ खींचती है ! प्रेम का बंधन भी उन्हें उस तरफ खिंच जाने से नहीं रोक सकता। मैंने जालपा को जिस सूरत में देखा है, वह मेरे दिल को भालों की तरह छेद रहा है। वह आज फटे-मैले कपड़े पहने, सिर पर गंगा-जल का कलसा लिए जा रही थी। उसे इस हालत में देखकर मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। मुझे अपनी जिंदगी में कभी इतना रंज न हुआ था। जोहरा, कुछ नहीं कह सकता, उस पर क्या बीत रही है।

जोहरा ने पूछा—वह तो उस बुड्ढे मालदार खटिक के घर पर थी?

रमानाथ—हां थी तो, पर नहीं कह सकता, क्यों वहां से चली गई। इंस्पेक्टर साहब मेरे साथ थे। उनके सामने मैं उससे कुछ पूछ तक न सका। मैं जानता हूं, वह मुझे देखकर मुंह फेर लेती और शायद मुझे जलील समझती; मगर कम-से-कम मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह इस वक्त इस दशा में क्यों है। जोहरा, तुम मुझे चाहे दिल में जो कुछ समझ रही हो; लेकिन मैं इस खयाल में मगन हूं कि तुम्हें मुझसे प्रेम है। और प्रेम करने वालों से हम कम-से-कम हमदर्दी की आशा करते हैं । यहां एक भी ऐसा आदमी नहीं, जिससे मैं अपने दिल का कुछ हाल कह सकूं । तुम भी मुझे रास्ते पर लाने ही के लिए भेजी गई थीं; मगर तुम्हें मुझ पर दया आई। शायद तुमने गिरे हुए आदमी पर ठोकर मारना मुनासिब न समझा। अगर आज हम और तुम किसी वजह से रूठ जायं, तो क्या कल तुम मुझे मुसीबत में देखकर मेरे साथ जरा भी हमदर्दी न करोगी? क्या मुझे भूखों मरते देखकर मेरे साथ उससे कुछ भी ज्यादा सलूक न करोगी, जो आदमी कुत्ते के साथ करता है? मुझे तो ऐसी आशा नहीं। जहां एक बार प्रेम ने वास किया हो, वहां उदासीनता और विराग चाहे पैदा हो जाय, हिंसा का भाव नहीं पैदा हो सकता। क्या तुम मेरे साथ जरा भी हमदर्दी न करोगी जोहरा? तुम अगर चाहो, तो जालपा का पूरा पता लगा सकती हो—वह कहां है, क्या करती है, मेरी तरफ से उसके दिल में क्या खयाल है, घर क्यों नहीं जाती, यहां कब तक रहना चाहती है? अगर तुम किसी तरह जालपा को प्रयाग जाने पर राजी कर सको जोहरा, तो मैं उम्र भर तुम्हारी गुलामी करूंगा। इस हालत में मैं उसे नहीं देख सकता। शायद आज ही रात को मैं यहां से भाग जाऊं। मुझ पर क्या गुजरेगी, इसका मुझे जरा भी भय नहीं हैं। मैं बहादुर नहीं हूं, बहुत ही कमजोर आदमी हूं। हमेशा खतरे के सामने मेरा हौसला पस्त हो जाता है; लेकिन मेरी बेगैरती भी यह चोट नहीं सह सकती।

जोहरा वेश्या थी, उसको अच्छे-बुरे सभी तरह के आदमियों से साबिका पड़ चुका था। उसकी आंखों में आदमियों की परख थी। उसको इस परदेशी युवक में और अन्य व्यक्तियों में एक बड़ा फर्क दिखाई देता था। पहले वह यहां भी पैसे की गुलाम बनकर आई थी, लेकिन दो-चार दिन के बाद ही उसका मन रमा की ओर आकर्षित होने लगा। प्रौढ़ा स्त्रियां अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकतीं। रमा में और सब दोष हों, पर अनुराग था। इस जीवन में जोहरा को यह पहला आदमी ऐसा मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया, जिसने उससे कोई परदा न रक्खा। ऐसे अनुराग रत्न को वह खोना नहीं चाहती थी। उसकी बात सुनकर उसे जरा भी ईर्ष्या न हुई, बल्कि उसके मन में एक स्वार्थमय सहानुभूति उत्पन्न हुई। इस युवक को, जो प्रेम के विषय में इतना सरल था, वह प्रसन्न करके हमेशा के लिए अपना गुलाम बना सकती थी। उसे जालपा से कोई शंका न थी। जालपा कितनी ही रूपवती क्यों न हो, जोहरा अपने कला-कौशल से, अपने हाव-भाव से उसका रंग फीका कर सकती थी। इसके पहले उसने कई महान् सुंदरी खत्रानियों को रुलाकर छोड़ दिया था। फिर जालपा किस गिनती में थी।

जोहरा ने उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा--तो इसके लिए तुम क्यो इतना रंज करते हो, प्यारे! जोहरा तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार है। मैं कल ही जालपा का पता लगाऊंगी और वह यहां रहना चाहेगी, तो उसके आराम के सब सामान कर दूंगी। जाना चाहेगी, तो रेल पर भेज दूंगी।

रमा ने बड़ी दीनता से कहा—एक बार मैं उससे मिल लेता, तो मेरे दिल का बोझ उतर जाता।

जोहरा चिंतित होकर बोली—यह तो मुश्किल है प्यारे! तुम्हें यहां से कौन जाने देगा?

रमानाथ--कोई तदबीर बताओ।

जोहरा—मैं उसे पार्क में खड़ी कर आऊंगी। तुम डिप्टी साहब के साथ वहां जाना और किसी बहाने से उससे मिल लेना। इसके सिवा तो मुझे और कुछ नहीं सूझता।

रमा अभी कुछ कहना ही चाहता था कि दारोगाजी ने पुकारा—मुझे भी खिलवत में आने की इजाजत है?

दोनों संभल बैठे और द्वार खोल दिया। दारोगाजी मुस्कराते हुए आए और जोहरा की बगल में बैठकर बोले—यहां आज सन्नाटा कैसा! क्या आज खजाना खाली है? जोहरा, आज अपने दस्ते-हिनाई से एक जाम भर कर दो। रमानाथ भाईजान नाराज न होना।

रमा ने कुछ तुर्श होकर कहा—इस वक्त तो रहने दीजिए, दारोगाजी। आप तो पिए हुए नजर आते हैं।

दारोगा ने जोहरा का हाथ पकड़कर कहा—बस, एक जाम जोहरा, और एक बात और, आज मेरी मेहमानी कबूल करो!

रमा ने तेवर बदलकर कहा—दारोगाजी, आप इस वक्त यहां से जायं। मैं यह गवारा नहीं कर सकता।

दारोगा ने नशीली आंखों से देखकर कहा—क्या आपने पट्टा लिखा लिया है?

रमा ने कड़ककर कहा—जी हां, मैंने पट्टा लिखा लिया है !

दारोगा—तो आपका पट्टा खारिज !

रमानाथ—मैं कहता हूं, यहां से चले जाइए।

दारोगा—अच्छा ! अब तो मेंढकी को भी जुकाम पैदा हुआ ! क्यों न हो । चलो जोहरा, इन्हें यहां बकने दो।

यह कहते हुए उन्होंने जोहरा का हाथ पकड़कर उठाया।

रमा ने उनके हाथ को झटका देकर कहा—मैं कह चुका, आप यहां से चले जाएं। जोहरा इस वक्त नहीं जा सकती। अगर वह गई, तो मैं उसका और आपका-दोनों का खून पी जाऊंगा। जोहरा मेरी है, और जब तक मैं हूं, कोई उसकी तरफ आंख नहीं उठा सकता।

यह कहते हुए उसने दारोगा साहब का हाथ पकड़कर दरवाजे के बाहर निकाल दिया और दरवाजा जोर से बंद करके सिटकनी लगा दी। दारोगाजी बलिष्ठ आदमी थे; लेकिन इस वक्त नशे ने उन्हें दुर्बल बना दिया था । बाहर बरामदे में खड़े होकर वह गालियां बकने और द्वार पर ठोकर मारने लगे।

रमा ने कहा—कहो तो जाकर बचा को बरामदे के नीचे ढकेल दूं। शैतान का बच्चा !

जोहरा—बकने दो, आप ही चला जायगा।

रमानाथ—चला गया।

जोहरा ने मगन होकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया, सुअर को निकाल बाहर किया। मुझे ले जाकर दिक करता। क्या तुम सचमुच उसे मारते?

रमानाथ—मैं उसकी जान लेकर छोड़ता। मैं उस वक्त अपने आपे में न था। न जाने मुझमें उस वक्त कहां से इतनी ताकत आ गई थी।

जोहरा—और जो वह कल से मुझे न आने दे तो?

रमानाथ—कौन, अगर इस बीच में उसने जरा भी भांजी मारी, तो गोली मार दूंगा । वह देखो, ताक पर पिस्तौल रक्खा हुआ है। तुम अब मेरी हो, जोहरा ! मैंने अपना सब कुछ तुम्हारे कदमों पर निसार कर दिया और तुम्हारा सब कुछ पाकर ही मैं संतुष्ट हो सकता हूं। तुम मेरी हो, मैं तुम्हारा हूं। किसी तीसरी औरत या मर्द को हमारे बीच में आने का मजाज नहीं है—जब तक मैं मर न जाऊं।

जोहरा की आंखें चमक रही थीं । उसने रमा की गरदन में हाथ डालकर कहा—ऐसी बात मुंह से न निकालो, प्यारे !

## अड़तालीस

सारे दिन रमा उद्वेग के जंगलों में भटकता रहा। कभी निराशा की अंधकारमय घाटियां सामने आ जातीं, कभी आशा की लहराती हुई हरियाली । जोहरा गई भी होगी ? यहां से तो बड़े लंबे-चौड़े वादे करके गई थी। उसे क्या गरज है? आकर कह देगी, मुलाकात ही नहीं हुई। कहीं

धोखा तो न देगी? जाकर डिप्टी साहब से सारी कथा कह सुनाए। बेचारी जालपा पर बैठे-बिठाए आफत आ जाय। क्या जोहरा इतनी नीच प्रकृति की हो सकती है? कभी नहीं, अगर जोहरा इतनी बेवफा, इतनी दगाबाज है, तो यह दुनिया रहने के लायक ही नहीं। जितनी जल्द आदमी मुंह में कालिख लगाकर डूब मरे, उतना ही अच्छा। नहीं, जोहरा मुझसे दगा न करेगी। उसे वह दिन याद आए, जब उसके दफ्तर से आते ही जालपा लपककर उसकी जेब टटोलती थी और रुपये निकाल लेती थी। वही जालपा आज इतनी सत्यवादिनी हो गई । तब वह प्यार करने की वस्तु थी, अब वह उपासना की वस्तु है। जालपा ! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं। जिस ऊंचाई पर तुम मुझे ले जाना चाहती हो, वहां तक पहुंचने की शक्ति मुझमें नहीं है। वहां पहुंचकर शायद चक्कर खाकर गिर पड़ूं। मैं अब भी तुम्हारे चरणों में सिर झुकाता हूं। मैं जानता हूं, तुमने मुझे अपने हृदय से निकाल दिया है, तुम मुझसे विरक्त हो गई हो, तुम्हें अब मेरे डूबने का दुःख है न तैरने की खुशी; पर शायद अब भी मेरे मरने या किसी घोर संकट में फंस जाने की खबर पाकर तुम्हारी आंखों से आंसू निकल आएंगे। शायद तुम मेरी लाश देखने आओ। हा ! प्राण ही क्यों नहीं निकल जाते कि तुम्हारी निगाह में इतना नीच तो न रहूं।

रमा को अब अपनी उस गलती पर घोर पश्चात्ताप हो रहा था, जो उसने जालपा की बात न मानकर की थी । अगर उसने उसके आदेशानुसार जज के इजलास में अपना बयान बदल दिया होता, धमकियों में न आता, हिम्मत मजबूत रखता, तो उसकी यह दशा क्यों होती? उसे विश्वास था, जालपा के साथ वह सारी कठिनाइयां झेल जाता। उसकी श्रद्धा और प्रेम का कवच पहनकर वह अजेय हो जाता। अगर उसे फांसी भी हो जाती, तो वह हंसते-खेलते उस पर चढ़ जाता।

मगर पहले उससे चाहे जो भूल हुई, इस वक्त तो वह भूल से नहीं, जालपा की खातिर ही यह कष्ट भोग रहा था। कैद जब भोगना ही है, तो उसे रो-रोकर भोगने से तो यह कहीं अच्छा है कि हंस-हंसकर भोगा जाय। आखिर पुलिस-अधिकारियों के दिल में अपना विश्वास जमाने के लिए वह और क्या करता ! यह दुष्ट जालपा को सताते, उसका अपमान करते, उस पर झूठे मुकदमे चलाकर उसे सजा दिलाते। वह दशा तो और भी असह्य होती। वह दुर्बल था, सब अपमान सह सकता था, जालपा तो शायद प्राण ही दे देती।

उसे आज ज्ञात हुआ कि वह जालपा को छोड़ नहीं सकता, और जोहरा को त्याग देना भी उसके लिए असंभव-सा जान पड़ता था। क्या वह दोनों रमणियों को प्रसन्न रख सकता था? क्या इस दशा में जालपा उसके साथ रहना स्वीकार करेगी? कभी नहीं। वह शायद उसे कभी क्षमा न करेगी ! अगर उसे यह मालूम भी हो जाये कि उसी के लिए वह यह यातना भोग रहा है, तो वह उसे क्षमा न करेगी। वह कहेगी, मेरे-लिए तुमने अपनी आत्मा को क्यों कलंकित किया? मैं अपनी रक्षा आप कर सकती थी।

वह दिन-भर इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा। आंखें सड़क की ओर लगी हुई थीं। नहाने का समय टल गया, भोजन का समय टल गया । किसी बात की परवा न थी। अखबार से दिल बहलाना चाहा, उपन्यास लेकर बैठा; मगर किसी काम में भी चित्त न लगा। आज दारोगाजी भी

नहीं आए। या तो रात की घटना से रुष्ट या लज्जित थे। या कहीं बाहर चले गए। रमा ने किसी से इस विषय में कुछ पूछा भी नहीं ।

सभी दुर्बल मनुष्यों की भांति रमा भी अपने पतन से लज्जित था। वह जब एकांत में बैठता, तो उसे अपनी दशा पर दुःख होता–क्यों उसकी विलासवृत्ति इतनी प्रबल है? वह इतना विवेक-शून्य न था कि अधोगति में भी प्रसन्न रहता; लेकिन ज्योंही और लोग आ जाते, शराब की बोतल आ जाती, जोहरा सामने आकर बैठ जाती, उसका सारा विवेक और धर्म-ज्ञान भ्रष्ट हो जाता।

रात के दस बज गए; पर जोहरा का कहीं पता नहीं। फाटक बंद हो गया। रमा को अब उसके आने की आशा न रही ; लेकिन फिर भी उसके कान लगे हुए थे। क्या बात हुई? क्या जालपा उसे मिली ही नहीं या वह गई ही नहीं? उसने इरादा किया अगर कल जोहरा न आई, तो उसके घर पर किसी को भेजूंगा। उसे दो-एक झपकियां आईं और सबेरा हो गया। फिर वही विकलता शुरू हुई। किसी को उसके घर भेजकर बुलवाना चाहिए। कम-से-कम यह तो मालूम हो जाय कि वह घर पर है या नहीं।

दारोगा के पास जाकर बोला–रात तो आप आपे में न थे।

दारोगा ने ईर्ष्या को छिपाते हुए कहा–यह बात न थी। मैं महज आपको छेड़ रहा था।

रमानाथ–जोहरा रात आई नहीं । जरा किसी को भेजकर पता तो लगवाइए, बात क्या है। कहीं नाराज तो नहीं हो गई?

दारोगा ने बेदिली से कहा–उसे गरज होगा खुद आएगी। किसी को भेजने की जरूरत नहीं है।

रमा ने फिर आग्रह न किया। समझ गया, यह हजरत रात बिगड़ गए। चुपके से चला आया। अब किससे कहे? सबसे यह बात कहना लज्जास्पद मालूम होता था। लोग समझेंगे, यह महाशय एक ही रसिया निकले। दारोगा से तो थोड़ी-सी घनिष्ठता हो गई थी।

एक हफ्ते तक उसे जोहरा के दर्शन न हुए। अब उसके आने की कोई आशा न थी। रमा ने सोचा, आखिर बेवफा निकली। उससे कुछ आशा करना मेरी भूल थी। या मुमकिन है, पुलिस-अधिकारियों ने उसके आने की मनाही कर दी हो। कम-से-कम मुझे एक पत्र तो लिख सकता थी। मुझे कितना धोखा हुआ। व्यर्थ उससे अपने दिल की बात कही। कहीं इन लोगों से न कह दे, तो उल्टी आंतें गले पड़ जायं; मगर जोहरा बेवफाई नहीं कर सकती। रमा की अंतरात्मा इसकी गवाही देती थी । इस बात को किसी तरह स्वीकार न करती थी। शुरू के दस-पांच दिन तो जरूर जोहरा ने उसे लुब्ध करने की चेष्टा की थी। फिर अनायास ही उसके व्यवहार में परिवर्तन होने लगा था। वह क्यों बार-बार सजल-नेत्र होकर कहती थी, देखो बाबूजी, मुझे भूल न जाना। उसकी वह हसरत भरी बातें याद आ-आकर कपट की शंका को दिल से निकाल देतीं। जरूर कोई न कोई नई बात हो गई है। वह अक्सर एकांत में बैठकर जोहरा की याद करके बच्चों की तरह रोता। शराब से उसे घृणा हो गई। दारोगाजी आते, इंस्पेक्टर साहब आते पर, रमा को उनके साथ दस-पांच मिनट बैठना भी अखरता। वह चाहता था, मुझे कोई न छेड़े, कोई न बोले। रसोइया खाने को बुलाने आता, तो उसे घुड़क देता। कहीं घूमने या सैर करने

की उसकी इच्छा ही न होती। यहां कोई उसका हमदर्द न था, कोई उसका मित्र न था, एकांत में मन-मारे बैठे रहने में ही उसके चित्त को शांति होती थी। उसकी स्मृतियों में भी अब कोई आनंद न था। नहीं, वह स्मृतियां भी मानो उसके हृदय से मिट गईं थीं। एक प्रकार का विराग उसके दिल पर छाया रहता था।

सातवां दिन था। आठ बज गए थे। आज एक बहुत अच्छा फिल्म होने वाला था। एक प्रेम-कथा थी। दारोगाजी ने आकर रमा से कहा, तो वह चलने को तैयार हो गया। कपड़े पहन रहा था कि जोहरा आ पहुंची। रमा ने उसकी तरफ एक बार आंख उठाकर देखा, फिर आईने में अपने बाल संवारने लगा। न कुछ बोला, न कुछ कहा। हां, जोहरा का वह सादा, आभरणहीन स्वरूप देखकर उसे कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ। वह केवल एक सफेद साड़ी पहने हुए थी। आभूषण का एक तार भी उसकी देह पर न था। होंठ मुरझाए हुए और चेहरे पर क्रीड़ामय चंचलता की जगह तेजमय गंभीरता झलक रही थी।

वह एक मिनट खड़ी रही, तब रमा के पास जाकर बोली—क्या मुझसे नाराज हो? बेकसूर, बिना कुछ पूछे-गछे ?

रमा ने फिर भी कुछ जवाब न दिया। जूते पहनने लगा। जोहरा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—क्या यह खफगी इसलिए है कि मैं इतने दिनों आई क्यों नहीं !

रमा ने रुखाई से जवाब दिया—अगर तुम अब भी न आतीं, तो मेरा क्या अख्तियार था। तुम्हारी दया थी कि चली आई !

यह कहने के साथ उसे खयाल आया कि मैं इसके साथ अन्याय कर रहा हूं। लज्जित नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगा।

जोहरा ने मुस्कराकर कहा—यह अच्छी दिल्लगी है। आपने ही तो एक काम सौंपा और जब वह काम करके लौटी तो आप बिगड़ रहे हैं। क्या तुमने वह काम इतना आसान समझा था कि चुटकी बजाने में पूरा हो जाएगा। तुमने मुझे उस देवी से वरदान लेने भेजा था, जो ऊपर से फूल है, पर भीतर से पत्थर, जो इतनी नाजुक होकर भी इतनी मजबूत है।

रमा ने बेदिली से पूछा—है कहां? क्या करती है?

जोहरा—उसी दिनेश के घर हैं, जिसको फांसी की सजा हो गई है। उसके दो बच्चे हैं, औरत है और मां है। दिन-भर उन्हीं बच्चों को खिलाती है, बुढ़िया के लिए नदी से पानी लाती है। घर का सारा काम-काज करती है और उनके लिए बड़े-बड़े आदमियों से चंदा मांग लाती है। दिनेश के घर में न कोई जायदाद थी, न रुपये थे। लोग बड़ी तकलीफ में थे। कोई मददगार तक न था, जो जाकर उन्हें ढाढ़स तो देता। जितने साथी-सोहबती थे, सब-के-सब मुंह छिपा बैठे। दो-तीन फाके तक हो चुके थे। जालपा ने जाकर उनको जिला लिया।

रमा की सारी बेदिली काफूर हो गई। जूता छोड़ दिया और कुर्सी पर बैठकर बोले—तुम खड़ी क्यों हो, शुरू से बताओ, तुमने तो बीच में से कहना शुरू किया। एक बात भी मत छोड़ना। तुम पहले उसके पास कैसे पहुंची? पता कैसे लगा?

जोहरा—कुछ नहीं, पहले उसी देवीदीन खटिक के पास गई। उसने दिनेश के घर का पता बता दिया। चटपट जा पहुंची।

रमानाथ--तुमने जाकर उसे पुकारा? तुम्हें देखकर कुछ चौंकी नहीं? कुछ झिझकी तो जरूर होगी!

जोहरा मुस्कराकर बोली--मैं इस रूप में न थी। देवीदीन के घर से मैं अपने घर गई और ब्रह्म-समाजी लेडी का स्वांग भरा। न जाने मुझमें ऐसी कौन-सी बात है, जिससे दूसरों को फौरन पता चल जाता है कि मैं कौन हूं, या क्या हूं। और ब्रह्मो लेड़ियों को देखती हूं, कोई उनकी तरफ आंखें तक नहीं उठाता। मेरा पहनावा-ओढ़ावा वही है, मैं भड़कीले कपड़े या फिजूल के गहने बिल्कुल नहीं पहनती। फिर भी सब मेरी तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देखते हैं। मेरी असलियत नहीं छिपती। यही खौफ मुझे था कि कहीं जालपा भांप न जाय; लेकिन मैंने दांत खूब साफ कर लिए थे। पान का निशान तक न था। मालूम होता था किसी कॉलेज की लेडी टीचर होगी। इस शक्ल में मैं वहां पहुंची। ऐसी सूरत बना ली कि वह क्या, कोई भी न भांप सकता था। परदा ढंका रह गया। मैंने दिनेश की मां से कहा--मैं यहां यूनिवर्सिटी में पढ़ती हूं। अपना घर मुंगेर बतलाया। बच्चों के लिए मिठाई ले गई थी। हमदर्द का पार्ट खेलने गई थी, और मेरा खयाल है कि मैंने खूब खेला। दोनों औरतें बेचारी रोने लगीं। मैं भी जब्त न कर सकी। उनसे कभी-कभी मिलते रहने का वादा किया। जालपा इसी बीच में गंगाजल लिए पहुंची। मैंने दिनेश की मां से बंगला में पूछा--क्या यह कहारिन है? उसने कहा, नहीं, यह भी तुम्हारी ही तरह हम लोगों के दु:ख में शरीफ होने आ गई है। यहां इनका शौहर किसी दफ्तर में नौकर है। और तो कुछ नहीं मालूम। रोज सबेरे आ जाती हैं और बच्चों को खेलाने ले जाती हैं। मैं अपने हाथ से गंगाजल लाया करती थी। मुझे रोक दिया और खुद लाती हैं। हमें तो इन्होंने जीवन-दान दिया। कोई आगे-पीछे न था। बच्चे दाने-दाने को तरसते थे। जब से यह आ गई हैं, हमें कोई कष्ट नहीं है। न जाने किस शुभ कर्म का यह वरदान हमें मिला है।

उस घर के सामने ही एक छोटा-सा पार्क है। महल्ले भर के बच्चे वहीं खेला करते हैं। शाम हो गई थी, जालपा देवी ने दोनों बच्चों को साथ लिया और पार्क की तरफ चलीं। मैं जो मिठाई ले गई थी, उसमें से बूढ़ी ने एक-एक मिठाई दोनों बच्चों को दी थी। दोनों कूद-कूदकर नाचने लगे। बच्चों की इस खुशी पर मुझे रोना आ गया। दोनों मिठाइयां खाते हुए जालपा के साथ हो लिए। जब पार्क में दोनों बच्चे खेलने लगे, तब जालपा से मेरी बातें होने लगीं।

रमा ने कुर्सी और करीब खींच ली, और आगे को झुक गया। बोला--तुमने किस तरह बातचीत शुरू की।

जोहरा--कह तो रही हूं। मैंने पूछा--जालपा देवी, तुम कहां रहती हो? घर की दोनों औरतों से तुम्हारी बड़ाई सुनकर तुम्हारे ऊपर आशिक हो गई हूं।

रमानाथ--यही लफ्ज कहा था तुमने?

जोहरा--हां, जरा मजाक करने की सूझी। मेरी तरफ ताज्जुब से देखकर बोली--तुम तो बंगालिन नहीं मालूम होतीं। इतनी साफ हिंदी कोई बंगालिन नहीं बोलती। मैंने कहा--मैं मुंगेर की रहने वाली हूं और वहां मुसलमानी औरतों के साथ बहुत मिलती-जुलती रही हूं। आपसे कभी-कभी मिलने का जी चाहता है। आप कहां रहती हैं। कभी-कभी दो घड़ी के लिए चली आऊंगी। आपके साथ घडी भर बैठकर मैं भी आदमीयत सीख जाऊंगी।

जालपा ने शरमाकर कहा—तुम तो मुझे बनाने लगीं। कहां तुम कॉलेज की पढ़ने वाली, कहां मैं अपढ़ गंवार औरत। तुमसे मिलकर मैं अलबत्ता आदमी बन जाऊंगी। जब जी चाहे, यहीं चले आना। यही मेरा घर समझो।

मैंने कहा—तुम्हारे स्वामीजी ने तुम्हें इतनी आजादी दे रक्खी है। बड़े अच्छे खयालों के आदमी होंगे। किस दफ्तर में नौकर हैं?

जालपा ने अपने नाखूनों को देखते हुए कहा—पुलिस में उम्मेदवार हैं।

मैंने ताज्जुब से पूछा—पुलिस के आदमी होकर वह तुम्हें यहां आने की आजादी देते हैं?

जालपा इस प्रश्न के लिए तैयार न मालूम होती थी। कुछ चौंककर बोली—वह मुझसे कुछ नहीं कहते . मैंने उनसे यहां आने की बात नहीं कही वह घर बहुत कम आते हैं। वहीं पुलिस वालों के साथ रहते हैं।

उन्होंने एक साथ तीन जवाब दिए। फिर भी उन्हें शक हो रहा था कि इनमें से कोई जवाब इत्मीनान के लायक नहीं है। वह कुछ खिसियानी-सी होकर दूसरी तरफ ताकने लगी।

मैंने पूछा—तुम अपने स्वामी से कहकर किसी तरह मेरी मुलाकात उस मुखबिर से करा सकती हो, जिसने इन कैदियों के खिलाफ गवाही दी है?

रमानाथ की आंखें फैल गईं और छाती धक्-धक् करने लगी।

जोहरा बोली—यह सुनकर जालपा ने मुझे चुभती हुई आंखों से देखकर पूछा—तुम उनसे मिलकर क्या करोगी?

मैंने कहा—तुम मुलाकात करा सकती हो या नहीं, मैं उनसे यही पूछना चाहती हूं कि तुमने इतने आदमियों को फंसाकर क्या पाया? देखूंगी वह क्या जवाब देते हैं?

जालपा का चेहरा सख्त पड़ गया। बोली—वह यह कह सकता है, मैंने अपने फायदे के लिए किया। सभी आदमी अपना फायदा सोचते हैं। मैंने भी सोचा। जब पुलिस के सैकड़ों आदमियों से कोई यह प्रश्न नहीं करता, तो उससे यह प्रश्न क्यों किया जाय? इससे कोई फायदा नहीं।

मैंने कहा—अच्छा, मान लो तुम्हारा पति ऐसी मुखबिरी करता, तो तुम क्या करतीं?

जालपा ने मेरी तरफ सहमी हुई आंखों से देखकर कहा—तुम मुझसे यह सवाल क्यों करती हो, तुम खुद अपने दिल में इसका जवाब क्यों नहीं ढूंढतीं?

मैंने कहा—मैं तो उनसे कभी न बोलती, न कभी उनकी सूरत देखती।

जालपा ने गंभीर चिंता के भाव से कहा—शायद मैं भी ऐसा ही समझती—या न समझती—कुछ कह नहीं सकती। आखिर पुलिस के अफसरों के घर में भी तो औरतें हैं, वे क्यों नहीं अपने आदमियों को कुछ कहतीं? जिस तरह उनके हृदय अपने मरदों के-से हो गए हैं, संभव है, मेरा हृदय भी वैसा ही हो जाता।

इतने में अंधेरा हो गया। जालपादेवी ने कहा—मुझे देर हो रही है। बच्चे साथ हैं। कल हो सके तो फिर मिलिएगा। आपकी बातों में बड़ा आनंद आता है।

मैं चलने लगी, तो उन्होंने चलते-चलते मुझसे कहा—जरूर आइएगा। वहीं मैं मिलूंगी। आपका इंतजार करती रहूंगी।

लेकिन दस ही कदम के बाद फिर रुककर बोलीं—मैंने आपका नाम तो पूछा ही नहीं। अभी तुमसे बातें करने से जी नहीं भरा। देर न हो रही हो तो आओ; कुछ देर गप-शप करें।

मैं तो यह चाहती ही थी। अपना नाम जोहरा बतला दिया।

रमा ने पूछा—सच !

जोहरा-हां, हरज क्या था। पहले तो जालपा भी जरा चौंकी, पर कोई बात न थी। समझ गई, बंगाली मुसलमान होगी। हम दोनों उसके घर गईं। उस जरा-से कठघरे में न जाने वह कैसे बैठती हैं। एक तिल भी जगह नहीं। कहीं मटके हैं, कहीं पानी, कहीं खाट, कहीं बिछावन। सील और बदबू से नाक फटी जाती थी। खाना तैयार हो गया था। दिनेश की बहू बरतन धो रही थी। जालपा ने उसे उठा दिया—जाकर बच्चों को खिलाकर सुला दो, मैं बरतन धोए देती हूं। और खुद बरतन मांजने लगीं। उनकी यह खिदमत देखकर मेरे दिल पर इतना असर हुआ कि मैं भी वहीं बैठ गई और मांजे हुए बरतनों को धोने लगी। जालपा ने मुझे वहां से हट जाने के लिए कहा; पर मैं न हटी। बराबर बरतन धोती रही। जालपा ने तब पानी का मटका अलग हटाकर कहा—मैं पानी न दूंगी, तुम उठ जाओ, मुझे बड़ी शर्म आती है, तुम्हें मेरी कसम, हट जाओ, यहां आना तो तुम्हारी सजा हो गई, तुमने ऐसा काम अपनी जिंदगी में क्यों किया होगा ! मैंने कहा—तुमने भी ता कभा नहीं किया होगा, जब तुम करती हो, तो मेरे लिए क्या हरज है।

जालपा ने कहा—मेरी और बात है।

मैंने पूछा—क्यों? जो बात तुम्हारे लिए है, वही मेरे लिए भी है। कोई महरी क्यों नहीं रख लेती हो?

जालपा ने कहा—महरियां आठ-आठ रुपये मांगती हैं।

मैं बोली—मैं आठ रुपये महीना दे दिया करूंगी।

जालपा ने ऐसी निगाहों से मेरी तरफ देखा, जिसमें सच्चे प्रेम के साथ सच्चा उल्लास, सच्चा आशीर्वाद भरा हुआ था। वह चितवन ! आह ! कितनी पाकीजा थी, कितनी पाक करने वाली। उनकी इस बेगरज खिदमत के सामने मुझे अपनी जिंदगी कितनी जलील, कितनी काबिले नफरत मालूम हो रही थी। उन बरतनों के धोने में मुझे जो आनंद मिला, उसे मैं बयान नहीं कर सकती।

बरतन धोकर उठीं, तो बुढ़िया के पांव दबाने बैठ गईं। मैं चुपचाप खड़ी थी। मुझसे बोलीं—तुम्हें देर हो रही हो तो जाओ, कल फिर आना।

मैंने कहा—नहीं, मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचाकर उधर ही से निकल जाऊंगी।

गरज नौ बजे के बाद वह वहां से चलीं। रास्ते में मैंने कहा—जालपा, तुम सचमुच देवी हो।

जालपा ने छूटते ही कहा—जोहरा, ऐसा मत कहो। मैं खिदमत नहीं कर रही हूं, अपने पापों का प्रायश्चित कर रही हूं। मैं बहुत दुःखी हूं। मुझसे बड़ी अभागिनी संसार में न होगी।

मैंने अनजान बनकर कहा—इसका मतलब मैं नहीं समझी।

जालपा ने सामने ताकते हुए कहा—कभी समझ जाओगी। मेरा प्रायश्चित इस जन्म में न पूरा होगा। इसके लिए मुझे कई जन्म लेने पड़ेंगे।

मैंने कहा—तुम तो मुझे चक्कर में डाले देती हो, बहन ! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। जब तक तुम इसे समझा न दोगी, मैं तुम्हारा गला न छोड़ूंगी।

जालपा ने एक लंबी सांस लेकर कहा—जोहरा, किसी बात को खुद छिपाए रहना इससे ज्यादा आसान है कि दूसरों पर वह बोझ रक्खूं।

मैंने आरत्त कंठ से कहा—हां, पहली मुलाकात में अगर आपको मुझ पर इतना एतबार न हो, तो मैं आपको इल्जाम न दूंगी; मगर कभी न कभी आपको मुझ पर एतबार करना पड़ेगा। मैं आपको छोड़ूंगी नहीं।

कुछ दूर तक हम दोनों चुपचाप चलती रहीं। एकाएक जालपा ने कांपती हुई आवाज में कहा—जोहरा, अगर इस वक्त तुम्हें मालूम हो जाय कि मैं कौन हूं, तो शायद तुम नफरत से मुंह फेर लोगी और मेरे साए से भी दूर भागोगी।

इन लफ्जों में न मालूम क्या जादू था कि मेरे सारे रोएं खड़े हो गए। यह एक रंज और शर्म से भरे हुए दिल की आवाज थी और इसने मेरी स्याह जिंदगी की सूरत मेरे सामने खड़ी कर दी। मेरी आंखों में आंसू भर आए। ऐसा जी में आया कि अपना सारा स्वांग खोल दूं। न जाने उनके सामने मेरा दिल क्यों ऐसा हो गया था। मैंने बड़े-बड़े काइएं और छंटे हुए शोहदों और पुलिस-अफसरों को चपर-गट्टू बनाया है; पर उनके सामने मैं जैसे भीगी बिल्ली बनी हुई थी। फिर मैंने जाने कैसे अपने को संभाल लिया।

मैं बोली तो मेरा गला भी भरा हुआ था—यह तुम्हारा खयाल गलत है देवी ! शायद तब मैं तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ूंगी। अपनी या अपनों की बुराइयों पर शर्मिंदा होना सच्चे दिलों का काम है।

जालपा ने कहा—लेकिन तुम मेरा हाल जानकर करोगी क्या। बस, इतना ही समझ लो कि एक गरीब अभागिन औरत हूं, जिसे अपने ही जैसे अभागे और गरीब आदमियों के साथ मिलने-जुलने में आनंद आता है।

'इसी तरह वह बार-बार टालती रही, लेकिन मैंने पीछा न छोड़ा। आखिर उसके मुंह से बात निकाल ही ली।'

रमा ने कहा—यह नहीं, सब कुछ कहना पड़ेगा।

जोहरा—अब आधी रात तक की कथा कहां तक सुनाऊं। घंटों लग जाएंगे। जब मैं बहुत पीछे पड़ी, तो उन्होंने आखिर में कहा—मैं उसी मुखबिर की बदनसीब औरत हूं, जिसने इन कैदियों पर यह आफत ढाई है। यह कहते-कहते वह रो पड़ीं। फिर जरा आवाज को संभालकर बोलीं—हम लोग इलाहाबाद के रहने वाले हैं। एक ऐसी बात हुई कि इन्हें वहां से भागना पड़ा। किसी से कुछ कहा न सुना, भाग आए। कई महीनों में पता चला कि वह यहां हैं।

रमा ने कहा—इसका भी किस्सा है। तुमसे बताऊंगा कभी। जालपा के सिवा और किसी को यह न सूझती।

जोहरा बोली—यह सब मैंने दूसरे दिन जान लिया। अब मैं तुम्हारे रग-रग से वाकिफ हो गई। जालपा मेरी सहेली है। शायद ही अपनी कोई बात उन्होंने मुझसे छिपाई हो।

कहने लगीं—जोहरा, मैं बड़ी मुसीबत में फंसी हुई हूं। एक तरफ तो एक आदमी की

जान और कई खानदानों की तबाही है, दूसरी तरफ अपनी तबाही है। मैं चाहूं, तो आज इन सबों की जान बचा सकती हूं। मैं अदालत को ऐसा सबूत दे सकती हूं कि फिर मुखबिर की शहादत की कोई हकीकत ही न रह जायगी, पर मुखबिर को सजा से नहीं बचा सकती। बहन, इस दुविधे में मैं पड़ी नरक का कष्ट झेल रही हूं। न यही होता है कि इन लोगों को मरने दूं, और न यही हो सकता है कि रमा को आग में झोंक दूं। यह कहकर वह रो पड़ीं और बोलीं—बहन, मैं खुद मर जाऊंगी, पर उनका अनिष्ट मुझसे न होगा। न्याय पर उन्हें भेंट नहीं कर सकती। अभी देखती हूं, क्या फैसला होता है। नहीं कह सकती, उस वक्त मैं क्या कर बैठूं। शायद वहीं हाईकोर्ट में सारा किस्सा कह सुनाऊं, शायद उसी दिन जहर खाकर सो रहूं।

इतने में देवीदीन का घर आ गया। हम दोनों विदा हुईं। जालपा ने मुझसे बहुत इसरार किया कि कल इसी वक्त फिर आना। दिन-भर तो उन्हें बात करने की फुरसत नहीं रहती। बस वही शाम को मौका मिलता था। वह इतने रुपये जमा कर देना चाहती हैं कि कम-से-कम दिनेश के घर वालों को कोई तकलीफ न हो। दो सौ रुपये से ज्यादा जमा कर चुकी हैं। मैंने भी पांच रुपये दिए। मैंने दो-एक बार जिक्र किया कि आप इन झगड़ों में न पड़िए, अपने घर चली जाइए, लेकिन मैं साफ-साफ कहती हूं, मैंने कभी जोर देकर यह बात न कही। जब-जब मैंने इसका इशारा किया उन्होंने ऐसा मुंह बनाया, गोया वह यह बात सुनना भी नहीं चाहतीं। मेरे मुंह से पूरी बात कभी न निकलने पाई। एक बात है, कहो तो कहूं?

रमा ने मानो ऊपरी मन से कहा—क्या बात है?

जोहरा—डिप्टी साहब से कह दूं, वह जालपा को इलाहाबाद पहुंचा दें। उन्हें कोई तकलीफ न होगी। बस दो औरतें उन्हें स्टेशन तक बातों मे लगा ले जाएंगी। वहां गाड़ी तैयार मिलेगी, वह उसमें बैठा दी जाएंगी, या कोई और तदबीर सोचो।

रमा ने जोहरा की आंखों से आंख मिलाकर कहा—क्या यह मुनासिब होगा?

जोहरा ने शरमाकर कहा—मुनासिब तो न होगा।

रमा ने चटपट जूते पहन लिए और जोहरा से पूछा—दवीदीन के हो घर पर रहती है न?

जोहरा उठ खड़ी हुई और उसके सामने आकर बोली—तो क्या इस वक्त जाओगे?

रमानाथ—हां जोहरा, इसी वक्त चला जाऊंगा। बस, उनसे दो बातें करके उस तरफ चला जाऊंगा जहां मुझे अब से बहुत पहले चला जाना चाहिए था।

जोहरा—मगर कुछ सोच तो लो, नतीजा क्या होगा।

रमानाथ—सब सोच चुका, ज्यादा-से ज्यादा तीन-चार साल की कैद दरोगबयानी के जुर्म में। बस अब रुखसत। भूल मत जाना जोहरा, शायद फिर कभी मुलाकात हो!

रमा बरामदे से उतरकर सहन में आया और एक क्षण में फाटक के बाहर था। दरबान ने कहा—हुजूर ने दारोगाजी को इत्तला कर दी है?

रमनाथ—इसकी कोई जरूरत नहीं।

चौकीदार—मैं जरा उनसे पूछ लूं। मेरी रोजी क्यों ले रहे हैं, हुजूर?

रमा ने कोई जवाब न दिया। तेजी से सड़क पर चल खड़ा हुआ। जोहरा निस्पंद खड़ी उसे हसरत-भरी आंखों से देख रही थी। रमा के प्रति ऐसा प्यार, ऐसा विकल करने वाला प्यार

उसे कभी न हुआ था। जैसे कोई वीरबाला अपने प्रियतम को समरभूमि की ओर जाते देखकर गर्व से फूली न समाती हो।

चौकीदार ने लपककर दारोगा से कहा। वह बेचारे खाना खाकर लेटे ही थे। घबराकर निकले, रमा के पीछे दौड़े और पुकारा—बाबू साहब, जरा सुनिए तो, एक मिनट रुक जाइए, इससे क्या फायदा—कुछ मालूम तो हो, आप कहां जा रहे हैं? आखिर बेचारे एक बार ठोकर खाकर गिर पड़े। रमा ने लौटकर उन्हें उठाया और पूछा—कहीं चोट तो नहीं आई?

दारोगा—कोई बात न थी, जरा ठोकर खा गया था। आखिर आप इस वक्त कहां जा रहे हैं? सोचिए तो इसका नतीजा क्या होगा?

रमानाथ—मैं एक घंटे में लौट आऊंगा। जालपा को शायद मुखालिफों ने बहकाया है कि हाईकोर्ट में एक अर्जी दे दे। जरा उसे जाकर समझाऊंगा।

दारोगा—यह आपको कैसे मालूम हुआ?

रमानाथ—जोहरा कहीं सुन आई है।

दारोगा—बड़ी बेवफा औरत है। ऐसी औरत का तो सिर काट लेना चाहिए।

रमानाथ—इसीलिए तो जा रहा हूं। या तो इसी वक्त उसे स्टेशन पर भेजकर आऊंगा, या इस बुरी तरह पेश आऊंगा कि वह भी याद करेगी। ज्यादा बातचीत का मौका नहीं है। रात भर के लिए मुझे इस कैद से आजाद कर दीजिए।

दारोगा—मैं भी चलता हूं, जरा ठहर जाइए।

रमानाथ—जी नहीं, बिल्कुल मामला बिगड़ जाएगा। मैं अभी आता हूं।

दारोगा लाजवाब हो गए। एक मिनट तक खड़े सोचते रहे, फिर लौट पड़े और जोहरा से बातें करते हुए पुलिस स्टेशन की तरफ चले गए। उधर रमा ने आगे बढ़कर एक तांगा किया और देवीदीन के घर जा पहुंचा।

जालपा दिनेश के घर से लौटी थी और बैठी जग्गो और देवीदीन से बातें कर रही थी। वह इन दिनों एक ही वक्त खाना खाया करती थी। इतने में रमा ने नीचे से आवाज दी। देवीदीन उसकी आवाज पहचान गया। बोला—भैया हैं सायत।

जालपा—कह दो, यहां क्या करने आए हैं। वहीं जायं।

देवीदीन—नहीं बेटी, जरा पूछ तो लूं, क्या कहते हैं। इस बखत कैसे उन्हें छुट्टी मिली?

जालपा—मुझे समझाने आए होंगे और क्या! मगर मुंह धो रक्खें।

देवीदीन ने द्वार खोल दिया। रमा ने अंदर आकर कहा—दादा, तुम मुझे यहां देखकर इस वक्त ताज्जुब कर रहे होगे। एक घंटे की छुट्टी लेकर आया हूं। तुम लोगों से अपने बहुत से अपराधों को क्षमा कराना था। जालपा ऊपर हैं?

देवीदीन बोला—हां, हैं तो। अभी आई हैं, बैठो, कुछ खाने को लाऊं!

रमानाथ—नहीं, मैं खाना खा चुका हूं। बस, जालपा से दो बातें करना चाहता हूं।

देवीदीन—वह मानेंगी नहीं, नाहक शर्मिंदा होना पड़ेगा। मानने वाली औरत नहीं है।

रमानाथ—मुझसे दो-दो बातें करेंगी या मेरी सूरत ही नहीं देखना चाहतीं? जरा जाकर पूछ लो।

देवीदीन--इसमें पूछना क्या है, दोनों बैठी तो हैं, जाओ। तुम्हारा घर जैसे तब था वैसे अब भी है।

रमानाथ--नहीं दादा, उनसे पूछ लो। मैं यों न जाऊंगा।

देवीदीन ने ऊपर जाकर कहा--तुमसे कुछ कहना चाहते हैं, बहू !

जालपा मुंह लटकाकर बोली--तो कहते क्यों नहीं, मैंने कुछ जबान बंद कर दी है? जालपा ने यह बात इतने जोर से कही थी कि नीचे रमा ने भी सुन ली। कितनी निर्ममता थी ! उसकी सारी मिलन-लालसा मानो उड़ गई। नीचे ही से खड़े-खड़े बोला--वह अगर मुझसे नहीं बोलना चाहतीं, तो कोई जबरदस्ती नहीं। मैंने जज साहब से सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाने का निश्चय कर लिया है। इसी इरादे से इस वक्त चला हूं। मेरी वजह से इनको इतने कष्ट हुए, इसका मुझे खेद है। मेरी अक्ल पर परदा पड़ा हुआ था। स्वार्थ ने मुझे अंधा कर रक्खा था। प्राणों के मोह ने, कष्टों के भय ने बुद्धि हर ली थी। कोई ग्रह सिर पर सवार था। इनके अनुष्ठानों ने उस ग्रह को शांत कर दिया। शायद दो-चार साल के लिए सरकार की मेहमानी खानी पड़े। इसका भय नहीं। जीता रहा तो फिर भेंट होगी। नहीं मेरी बुराइयों को माफ करना और मुझे भूल जाना। तुम भी देवी दादा और दादी, मेरे अपराध क्षमा करना। तुम लोगों ने मेरे ऊपर जो दया की है, वह मरते दम तक न भूलूंगा। अगर जीता लौटा, तो शायद तुम लोगों की कुछ सेवा कर सकूं। मेरी तो जिंदगी सत्यानाश हो गई। न दीन का हुआ न दुनिया का। यह भी कह देना कि उनके गहने मैंने ही चुराए थे। सराफ को देने के लिए रुपये न थे। गहने लौटाना जरूरी था इसीलिए वह कुकर्म करना पड़ा। उसी का फल आज तक भोग रहा हूं और शायद जब तक प्राण न निकल जाएंगे, भोगता रहूंगा। अगर उसी वक्त सफाई से सारी कथा कह दी होती, तो चाहे उस वक्त इन्हें बुरा लगता, लेकिन यह विपत्ति सिर पर न आती। तुम्हें भी मैंने धोखा दिया था। दादा, मैं ब्राह्मण नहीं हूं, कायस्थ हूं, तुम-जैसे देवता से मैंने कपट किया। न जाने इसका क्या दंड मिलेगा। सब कुछ क्षमा करना। बस, यही कहने आया था।

रमा बरामदे के नीचे उतर पड़ा और तेजी से कदम उठाता हुआ चल दिया। जालपा भी कोठे से उतरी, लेकिन नीचे आई तो रमा का पता न था। बरामदे के नीचे उतरकर देवीदीन से बोली--किधर गए हैं दादा? देवीदीन ने कहा--मैंने कुछ नहीं देखा, बहू ! मेरी आंखें आंसू से भरी हुई थीं। वह अब न मिलेंगे। दौड़ते हुए गए थे।

जालपा कई मिनट तक सड़क पर निस्पंद-सी खड़ी रही। उन्हें कैसे रोक लूं ! इस वक्त वह कितने दुखी हैं, कितने निराश हैं ! मेरे सिर पर न जाने क्या शैतान सवार था कि उन्हें बुला न लिया। भविष्य का हाल कौन जानता है। न जाने कब भेंट होगी। विवाहित जीवन के इन दो-ढाई सालों में कभी उसका हृदय अनुराग से इतना प्रकंपित न हुआ था। विलासिनी रूप में वह केवल प्रेम आवरण के दर्शन कर सकती थी। आज त्यागिनी बनकर उसने उसका असली रूप देखा, कितना मनोहर, कितना विशुद्ध, कितना विशाल, कितना तेजोमय। विलासिनी ने प्रेमोद्यान की दीवारों को देखा था, वह उसी में खुश थी। त्यागिनी बनकर वह उस उद्यान के भीतर पहुंच गई थी--कितना रम्य दृश्य था, कितनी सुगंध, कितना वैचित्र्य, कितना विकास। इसकी सुगंध में, इसकी रम्यता का देवत्व भरा हुआ था। प्रेम अपने उच्चतर स्थान पर पहुंचकर

देवत्व से मिल जाता है। जालपा को अब कोई शंका नहीं है, इस प्रेम को पाकर वह जन्म-जन्मांतरों तक सौभाग्यवती बनी रहेगी। इस प्रेम ने उसे वियोग, परिस्थिति और मृत्यु के भय से मुक्त कर दिया--उसे अभय प्रदान कर दिया। इस प्रेम के सामने अब सारा संसार और उसका अखंड वैभव तुच्छ है।

इतने में जोहरा आ गई। जालपा को पटरी पर खड़े देखकर बोली--वहां कैसे खड़ी हो, बहन। आज तो मैं न आ सकी। चलो, आज मुझे तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं।

दोनों ऊपर चली गईं।

## उनचास

दारोगा को भला कहां चैन? रमा के जाने के बाद एक घंटे तक उसका इंतजार करते रहे, फिर घोड़े पर सवार हुए और देवीदीन के घर जा पहुंचे। वहां मालूम हुआ कि रमा को यहां से गए आधा घंटे से ऊपर हो गया। फिर थाने लौटे। वहां रमा का अब तक पता न था। समझे देवीदीन ने धोखा दिया। कहीं उन्हें छिपा रक्खा होगा। सरपट साइकिल दौड़ाते हुए फिर देवीदीन के घर पहुंचे और धमकाना शुरू किया। देवीदीन ने कहा--विश्वास न हो, घर की खाना-तलाशी ले लीजिए और क्या कीजिएगा। कोई बहुत बड़ा घर भी तो नहीं है। एक कोठरी नीचे है, एक ऊपर।

दारोगा ने साइकिल से उतरकर कहा--तुम बतलाते क्यों नहीं, वह कहां गए?

देवीदीन--मुझे कुछ मालूम हो तब तो बताऊं साहब! यहां आए, अपनी घरवाली से तकरार की और चले गए।

दारोगा--वह कब इलाहाबाद जा रही हैं?

देवीदीन--इलाहाबाद जाने की तो बाबूजी ने कोई बातचीत नहीं की। जब तक हाईकोर्ट का फैसला न हो जायगा, वह यहां से न जाएंगी।

दारोगा--मुझे तुम्हारी बातों का यकीन नहीं आता।

यह कहते हुए दारोगा नीचे की कोठरी में घुस गए और हर एक चीज को गौर से देखा। फिर ऊपर चढ़ गए। वहां तीन औरतों को देखकर चौंके। जोहरा को शरारत सूझी, तो उसने लंबा-सा घूंघट निकाल लिया और अपने हाथ साड़ी में छिपा लिए। दारोगाजी को शक हुआ। शायद हजरत यह भेस बदले तो नहीं बैठे हैं!

देवीदीन से पूछा--यह तीसरी औरत कौन है?

देवीदीन ने कहा--मैं नहीं जानता। कभी-कभी बहू से मिलने आ जाती है।

दारोगा--मुझी से उड़ते हो बचा! साड़ी पहनाकर मुलजिम को छिपाना चाहते हो! इनमें कौन जालपा देवी हैं। उनसे कह दो, नीचे चली जायं। दूसरी औरत को यहीं रहने दो।

जालपा हट गई, तो दारोगाजी ने जोहरा के पास जाकर कहा--क्यों हजरत, मुझसे यह चालें! क्या कहकर वहां से आए थे और यहां आकर मजे में आ गए। सारा गुस्सा हवा हो गया। अब यह भेस उतारिए और मेरे साथ चलिए, देर हो रही है।

यह कहकर उन्होंनें जोहरा का घूंघट उठा दिया। जोहरा ने ठट्टा मारा। दारोगाजी मानो फिसलकर विस्मय-सागर में पड़े । बोले-अरे, तुम हो जोहरा ! तुम यहां कहां ?

जोहरा—अपनी ड्यूटी बजा रही हूं।

'और रमानाथ कहां गए ? तुम्हें तो मालूम ही होगा?'

'वह तो मेरे यहां आने के पहले ही चले गए थे। फिर मैं यहीं बैठ गई और जालपा देवी से बात करने लगी।'

'अच्छा, जरा मेरे साथ आओ। उनका पता लगाना है।'

जोहरा ने बनावटी कौतूहल से कहा—क्या अभी तक बंगले पर नहीं पहुंचे ?

'ना ! न जाने कहां रह गए। '

रास्ते में दारोगा ने पूछा—जालपा कब तक यहां से जाएगी ?

जोहरा—मैंने खूब पट्टी पढ़ाई है। उसके जाने की अब जरूरत नहीं है। शायद रास्ते पर आ जाय। रमानाथ ने बुरी तरह डांटा है। उनकी धमकियों से डर गई है।

दारोगा—तुम्हें यकीन है कि अब यह कोई शरारत न करेगी?

जोहरा—हां, मेरा तो यही खयाल है।

दारोगा—तो फिर वह कहां गया?

जोहरा—कह नहीं सकती।

दारोगा—मुझे इसकी रिपोर्ट करनी होगी। इंस्पेक्टर साहब और डिप्टी साहब को इत्तला देना जरूरी है। ज्यादा पी तो नहीं गया था?

जोहरा—पिए हुए तो थे।

दारोगा—तो कहीं गिर-गिरा पड़ा होगा। इसने बहुत दिक किया ! तो मैं जरा उधर जाता हूं। तुम्हें पहुंचा दूं, तुम्हारे घर तक?

जोहरा—बड़ी इनायत होगी।

दारोगा ने जोहरा को मोटर साइकिल पर बिठा लिया और उसको जरा दर में घर के दरवाजे पर उतार दिया, मगर इतनी देर में मन चंचल हो गया। बोले—अब तो जाने का जी नहीं चाहता, जोहरा ! चलो, आज कुछ गप-शप हो । बहुत दिन हुए, तुम्हारी करम की निगाह नहीं हुई।

जोहरा ने जीने के ऊपर एक कदम रखकर कहा—जाकर पहले इंस्पेक्टर साहब से इत्तला तो कीजिए। यह गप-शप का मौका नहीं है।

दारोगा ने मोटर साइकिल से उतरकर कहा—नहीं, अब न जाऊंगा, जोहरा ! सुबह देखी जायगी। मैं भी आता हूं।

जोहरा—आप मानते नहीं हैं। शायद डिप्टी साहिब आते हों। आज उन्होंने कहला भेजा था।

दारोगा—मुझे चकमा दे रही हो जोहरा। देखो, इतनी बेवफाई अच्छी नहीं।

जोहरा ने ऊपर चढ़कर द्वार बंद कर लिया और ऊपर जाकर खिड़की से सिर निकालकर बोली—आदाब अर्ज।

# पचास

दारोगा घर जाकर लेट रहे। ग्यारह बज रहे थे। नींद खुली, तो आठ बज गए थे। उठकर बैठे ही थे कि टेलीफोन पर पुकार हुई। जाकर सुनने लगे। डिप्टी साहब बोल रहे थे--इस रमानाथ ने बड़ा गोलमाल कर दिया है। उसे किसी दूसरी जगह ठहराया जायगा। उसका सब सामान कमिश्नर साहब के पास भेज देना होगा। रात को वह बंगले पर था या नहीं?

दारोगा ने कहा--जी नहीं, रात मुझसे बहाना करके अपनी बीवी के पास चला गया था?

टेलीफोन--तुमने उसको क्यों जाने दिया? हमको ऐसा डर लगता है, कि उसने जज से सब हाल कह दिया है। मुकदमा का जांच फिर से होगा। आपसे बड़ा भारी ब्लंडर हुआ है। सारा मेहनत पानी में गिर गया। उसको जबरदस्ती रोक लेना चाहिए था।

दारोगा--तो क्या वह जज साहब के पास गया था?

डिप्टी--हां साहब, वहीं गया था, और जज भी कायदा को तोड़ दिया। वह फिर से मुकदमा का पेशी करेगा। रमा अपना बयान बदलेगा। अब इसमें कोई डाउट नहीं है और यह सब आपका बंगलिंग है। हम सब उस बाढ़ में बह जायगा। जोहरा भी दगा दिया।

दारोगा उसी वक्त रमानाथ का सब सामान लेकर पुलिस-कमिश्नर के बंगले की तरफ चले। रमा पर ऐसा गुस्सा आ रहा था कि पावें तो समूचा ही निगल जाएं। कमबख्त को कितना समझाया, कैसी-कैसी खातिर की; पर दगा कर ही गया। इसमें जोहरा की भी सांठ-गांठ है। बीवी को डांट-फटकार करने का महज बहाना था। जोहरा बेगम की तो आज ही खबर लेता हूं। कहां जाती है। देवीदीन से भी समझूंगा।

एक हफ्ते तक पुलिस-कर्मचारियों में जो हलचल रही उसका ज़िक्र करने की कोई जरूरत नहीं। रात की रात और दिन के दिन इसी फिक्र में चक्कर खाते रहते थे। अब मुकदमे से कहीं ज्यादा अपनी फिक्र थी। सबसे ज्यादा घबराहट दारोगा को थी। बचने की कोई उम्मीद नहीं नजर आती थी। इंस्पेक्टर और डिप्टी--दोनों ने सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी और खुद बिल्कुल अलग हो गए।

इस मुकदमे की फिर पेशी होगी, इसकी सारे शहर में चर्चा होने लगी। अंगरेजी न्याय के इतिहास में यह घटना सर्वथा अभूतपूर्व थी। कभी ऐसा नहीं हुआ। वकीलों में इस पर कानूनी बहसें होतीं। जज साहब ऐसा कर भी सकते हैं? मगर जज दृढ़ था। पुलिसवालों ने बड़े-बड़े जोर लगाए, पुलिस कमिश्नर ने यहां तक कहा कि इससे सारा पुलिस-विभाग बदनाम हो जायगा; लेकिन जज ने किसी की न सुनी। झूठे सबूतों पर पंद्रह आदमियों की जिंदगी बरबाद करने की जिम्मेदारी सिर पर लेना उसकी आत्मा के लिए असह्य था। उसने हाईकोर्ट को सूचना दी और गवर्नमेंट को भी।

इधर पुलिस वाले रात-दिन रमा की तलाश में दौड़-धूप करते रहते थे; लेकिन रमा न जाने कहां जा छिपा था कि उसका कुछ पता ही न चलता था।

हफ्तों सरकारी कर्मचारियों में लिखा-पढ़ी होती रही। मनों कागज स्याह कर दिए गए। उधर समाचार-पत्रों में इस मामले पर नित्य आलोचना होती रहती थी। एक पत्रकार ने जालपा से मुलाकात की और उसका बयान छाप दिया। दूसरे ने जोहरा का बयान छाप दिया। इन दोनों

ब  ों ने पुलिस की बखिया उधेड़ दी। जोहरा ने तो लिखा था कि मुझे पचास रुपये रोज इस  र दिए जाते थे कि रमानाथ को बहलाती रहूं और उसे कुछ सोचने या विचार करने का अव  न मिले। पुलिस ने इन बयानों को पढ़ा, तो दांत पीस लिए। जोहरा और जालपा, दोनों कहीं  जा छिपीं, नहीं तो पुलिस ने जरूर उनकी शरारत का मजा चखाया होता।

आ खिर दो महीने के बाद फैसला हुआ। इस मुकदमे पर विचार करने के लिए एक सिविलि  नियुक्त किया गया। शहर के बाहर एक बंगले में विचार हुआ, जिसमें ज्यादा भीड़-भाड़  हो। फिर भी रोज दस-बारह हजार आदमी जमा हो जाते थे। पुलिस ने एड़ी-चोटी का जोर ल  ा कि मुलजिमों में कोई मुखबिर बन जाए; पर उसका उद्योग न सफल हुआ। दारोगाजी च  े तो नई शहादतें बना सकते थे; पर अपने अफसरों की स्वार्थपरता पर वह इतने खिन्न  कि दूर से तमाशा देखने के सिवा और कुछ न किया। जब सारा यश अफसरों को मि  और सारा अपयश मातहतों को, तो दारोगाजी को क्या गरज पड़ी थी कि नई शहादतों की फि  सिर खपाते। इस मुआमले में अफसरों ने सारा दोष दारोगा ही के सिर मढ़ा। उन्हीं की बेपरवा  े रमानाथ हाथ से निकला। अगर ज्यादा सख्ती से निगरानी की जाती, तो जालपा कैसे उसे खत  सकती और वह कैसे रात को उससे मिल सकता थी।

ऐसी दशा में मुकदमा उठा लेने  िवा और क्या किया जा सकता था। तबेले की बला बंदर के सिर गई। दारोगा तनज्जुल हो गए और न  दारोगा का तराई में तबादला कर दिया गया।

जिस दिन मुलजिमों को छोड़ा गया  ाधा शहर उनका स्वागत करने को जमा था। पुलिस ने दस बजे रात को उन्हें छोड़ा, पर दर्शक  मा हो ही गए। लोग जालपा को भी खींच ले गए। पीछे-पीछे देवीदीन भी पहुंचा। जालपा प  ूलों की वर्षा हो रही थी और 'जालपादेवी की जय!' से आकाश गूंज रहा था।

मगर रमानाथ की परीक्षा अभी समाप्त न  ई थी। उस पर दरोग-बयानी का अभियोग चलाने का निश्चय हो गया।

## इक  ावन

उसी बंगले में ठीक दस बजे मुकदमा पेश  ा। सावन की झड़ी लगी हुई थी। कलकत्ता दलदल हो रहा था; लेकिन दर्शकों का एक अपार समूह सामने मैदान में खड़ा था। महिलाओं में दिनेश की पत्नी और माता भी आई हुई थीं। पेशी से दस-पंद्रह मिनट पहले जालपा और जोहरा भी बंद गाड़ियों में आ पहुंचीं। महिलाओं को अदालत के कमरे में जाने की आज्ञा मिल गई।

पुलिस की शहादतें शुरू हुईं। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, इंस्पेक्टर, ारोगा, नायब दारोगा—सभी के बयान हुए। दोनों तरफ के वकीलों ने जिरहें भी कीं; पर इन कार्रवाइयों में उल्लेखनीय कोई बात न थी। जाब्ते की पाबंदी की जा रही थी। रमानाथ का बयान हुआ; पर उसमें भी कोई नई बात न थी। उसने अपने जीवन के गत एक वर्ष का पूरा वृत्तांत कह सुनाया। कोई बात न छिपाई। वकील के पूछने पर उसने कहा—जालपा के त्याग, निष्ठा और सत्य-प्रेम ने मेरी आंखें खोलीं और उससे भी ज्यादा जोहरा के

सौजन्य और निष्कपट व्यवहार ने। मैं इसे अपनो सौभाग्य समझता हूं कि मुझे उस तरफ से प्रकाश मिला जिधर औरों को अंधकार मिलता है। विष में मुझे सुधा प्राप्त हो गई।

इसके बाद सफाई की तरफ से देवीदीन, जालपा और जोहरा के बयान हुए। वकीलों ने इनसे भी सवाल किया; पर सच्चे गवाह क्या उखड़ते। जोहरा का बयान बहुत ही प्रभावोत्पादक था। उसने देखा, जिस प्राणी को जंजीरों से जकड़ने के लिए वह भेजी गई है, वह खुद दर्द से तड़प रहा है, उसे महरम की जरूरत है, जंजीरों की नहीं। वह सहारे का हाथ चाहता है, धक्के का झोंका नहीं। जालपादेवी के प्रति उसकी श्रद्धा, उसका अटल विश्वास देखकर मैं अपने को भूल गई। मुझे अपनी नीचता, अपनी स्वार्थांधता पर लज्जा आई। मेरा जीवन कितना अधम, कितना पतित है, यह मुझ पर उस वक्त खुला, और जब मैं जालपा से मिली, तो उसकी निष्काम सेवा, उसका उज्ज्वल तप देखकर मेरे मन के रहे-सहे संस्कार भी मिट गए। विलास-युक्त जीवन से मुझे घृणा हो गई। मैंने निश्चय कर लिया, इसी अंचल में मैं भी आश्रय लूंगी।

मगर उससे भी ज्यादा मार्के का बयान जालपा का था। उसे सुनकर दर्शकों की आंखों में आंसू आ गए। उसके अंतिम शब्द ये थे—मेरे पति निर्दोष हैं। ईश्वर की दृष्टि में ही नहीं, नीति की दृष्टि में भी वह निर्दोष हैं। उनके भाग्य में मेरी विलासासक्ति का प्रायश्चित करना लिखा था, वह उन्होंने किया। वह बाजार से मुंह छुपाकर भागे। उन्होंने मुझ पर अगर कोई अत्याचार किया, तो वह यही कि मेरी इच्छओं को पूरा करने में उन्होंने सदैव कल्पना से काम लिया। मुझे प्रसन्न करने के लिए, मुझे सुखी रखने के लिए उन्हाने अपने ऊपर बड़े से बड़ा भार लेने में कभी संकोच नहीं किया। वह यह भूल गए कि विलास-वृत्ति संतोष करना नहीं जानती। जहां मुझे रोकना उचित था, वहां उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया, और इस अवसर पर भी मुझे पूरा विश्वास है, मुझ पर अत्याचार करने की धमकी देकर ही उनकी जबान बंद की गई थी। अगर अपराधिनी हूं, तो मैं हूं, जिसके कारण उन्हें इतने कष्ट झेलने पड़े। मैं मानती हूं कि मैंने उन्हें अपना बयान बदलने के लिऐ मजबूर किया। अगर मुझे विश्वास होता कि वह डाकों में शरीक हुए, तो सबसे पहले मैं उनका तिरस्कार करती। मैं यह नहीं सह सकती थी कि वह निरपराधियों की लाश पर अपना भवन खड़ा करें। जिन दिनों यहां डाके पड़े, उन तारीखों में मेरे स्वामी प्रयाग में थे। अदालत चाहे तो टेलीफोन द्वारा इसकी जांच कर सकती है। अगर जरूरत हो, तो म्युनिसिपल बोर्ड के अधिकारियों का बयान लिया जा सकता है। ऐसी दशा में मेरा कर्त्तव्य इसके सिवा कुछ और हो ही नहीं सकता था, जो मैंने किया।

अदालत ने सरकारी वकील से पूछा—क्या प्रयाग से इस मुआमले की कोई रिपोर्ट मांगी गई थी?

वकील ने कहा—जी हां, मगर हमारा उस विषय पर कोई विवाद नहीं है।

सफाई के वकील ने कहा—इससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि मुलजिम डाके में शरीक नहीं था। अब केवल यह बात रह जाती है कि वह मुखबिर क्यों बना?

वादी वकील—स्वार्थ-सिद्धि के सिवा और क्या हो सकता है।

सफाई का वकील—मेरा कथन है, उसे धोखा दिया गया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस भय से उसने पुलिस के हाथों की कठपुतली बनना स्वीकार किया था। वह उसका भ्रम था, तो उसे धमकियां दी गईं।

अब सफाई का कोई गवाह न था। सरकारी वकील ने बहस शुरू की—योर ऑनर, आज आपके सम्मुख एक ऐसा अभियोग उपस्थित हुआ है जैसा सौभाग्य से बहुत कम हुआ करता है। आपको जनकपुर की डकैती का हाल मालूम है। जनकपुर के आसपास कई गांवों में लगातार डाके पड़े और पुलिस डकैतों की खोज करने लगी। महीनों पुलिस कर्मचारी अपनी जान हथेलियों पर लिए, डकैतों को ढूंढ निकालने की कोशिश करते रहे। आखिर उनकी मेहनत सफल हुई और डाकुओं की खबर मिली। यह लोग एक घर के अंदर बैठे पाए गए। पुलिस ने एकबारगी सबों को पकड़ लिया, लेकिन आप जानते हैं, ऐसे मामलों में अदालतों के लिए सबूत पहुंचाना कितना मुश्किल होता है। जनता इन लोगों से कितना डरती है। प्राणों के भय से शहादत देने पर तैयार नहीं होती। यहां तक कि जिनके घरों में डाके पड़े थे, वे भी शहादत देने का अवसर आया तो साफ निकल गए।

महानुभावो, पुलिस इसी उलझन में पड़ी हुई थी कि एक युवक आता है और इन डाकुओं का सरगना होने का दावा करता है। वह उन डकैतियों का ऐसा सजीव, ऐसा प्रमाणपूर्ण वर्णन करता है कि पुलिस धोखे में आ जाती है। पुलिस ऐसे अवसर पर ऐसा आदमी पाकर गैबी मदद समझती है। यह युवक इलाहाबाद से भाग आया था और यहां भूखों मरता था। अपने भाग्य-निर्माण का ऐसा सुअवसर पाकर उसने अपना स्वार्थ-सिद्ध करने का निश्चय कर लिया। मुखबिर बनकर सजा का तो उसे कोई भय था ही नहीं, पुलिस की सिफारिश से कोई अच्छी नौकरी पा जाने का विश्वास था। पुलिस ने उसका खूब आदर-सत्कार किया और उसे अपना मुखबिर बना लिया। बहुत संभव था कि कोई शहादत न पाकर पुलिस इन मुलजिमों को छोड़ देती और उन पर कोई मुकदमा न चलाती; पर इस युवक के चकमे में आकर उसने अभियोग चलाने का निश्चय कर लिया। उसमें चाहे और कोई गुण हो या न हो, उसकी रचना-शक्ति की प्रखरता से इनकार नहीं किया जा सकता। उसने डकैतियों का ऐसा यथार्थ वर्णन किया कि जंजीर की एक कड़ी भी कहीं से गायब न थी। अंकुर से फल निकलने तक की सारी बातों की उसने कल्पना कर ली थी। पुलिस ने मुकदमा चला दिया।

पर ऐसा मालूम होता है कि इस बीच में उसे स्वभाग्य-निर्माण का इससे भी अच्छा अवसर मिल गया। बहुत संभव है, सरकार की विरोधिनी संस्थाओं ने उसे प्रलोभन दिए हों और उन प्रलोभनों ने उसे स्वार्थ-सिद्धि का यह नया रास्ता सुझा दिया हो, जहां धन के साथ यश भी था, वाहवाही भी थी, देश-भक्ति का गौरव भी था। वह अपने स्वार्थ के लिए सब कुछ कर सकता है। वह स्वार्थ के लिए किसी के गले पर छुरी भी चला सकता है और साधु-वेश भी धारण कर सकता है; यही उसके जीवन का लक्ष्य है। हम खुश हैं कि उसकी सद्बुद्धि ने अंत में उस पर विजय पाई, चाहे उनका हेतु कुछ भी क्यों न हो। निरपराधियों को दंड देना पुलिस के लिए उतना ही आपत्तिजनक है, जितना अपराधियों को छोड़ देना। वह अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए ही ऐसे मुकदमे नहीं चलाती। न गवर्नमेंट इतनी न्याय-शून्य है कि वह पुलिस के बहकावे में आकर सारहीन मुकदमे चलाती फिरे; लेकिन इस युवक की चकमेबाजियों से पुलिस की जो बदनामी हुई और सरकार के हजारों रुपये खर्च हो गए, इसका जिम्मेदार कौन है? ऐसे आदमी को आदर्श दंड मिलना चाहिए, ताकि फिर किसी को ऐसी चकमेबाजी का साहस न हो। ऐसे मिथ्या का संसार रचने वाले प्राणी के लिए मुक्त रहकर समाज

को ठगने का मार्ग बंद कर देना चाहिए। उसके लिए इस समय सबसे उपयुक्त स्थान वह है, जहां उसे कुछ दिन आत्म-चिंतन का अवसर मिले। शायद वहां के एकांतवास में उसको अंतरिक जागृति प्राप्त हो जाय। आपको केवल यह विचार करना है कि उसने पुलिस को धोखा दिया या नहीं। इस विषय में अब कोई संदेह नहीं रह जाता कि उसने धोखा दिया। अगर धमकियां दी गई थीं, तो वह पहली अदालत के बाद जज की अदालत में अपना बयान वापस ले सकता था, पर उस वक्त भी उसने ऐसा नहीं किया। इससे यह स्पष्ट है कि धमकियों का आक्षेप मिथ्या है। उसने जो कुछ किया, स्वेच्छा से किया। ऐसे आदमी को यदि दंड न दिया गया, तो उसे अपनी कुटिल नीति से काम लेने का फिर साहस होगा और उसकी हिंसक मनोवृत्तियां और भी बलवान हो जाएंगी।

फिर सफाई के वकील ने जवाब दिया—यह मुकदमा अंगरेजी इतिहास ही में नहीं, शायद सर्वदेशीय न्याय के इतिहास में एक अद्‌भुत घटना है। रमानाथ एक साधारण युवक है। उसकी शिक्षा भी बहुत मामूली हुई है। वह ऊंचे विचारों का आदमी नहीं है। वह इलाहाबाद के म्युनिसिपल आफिस में नौकर है। वहां उसका काम चुंगी के रुपये वसूल करना है। वह व्यापारियों से प्रथानुसार रिश्वत लेता है और अपनी आमदनी की परवा न करता हुआ अनाप-शनाप खर्च करता है। आखिर एक दिन मीजान में गलती हो जाने से उसे शक होता है कि उससे कुछ रुपये उठ गए। वह इतना घबड़ा जाता है कि किसी से कुछ नहीं कहता, बस घर से भाग खड़ा होता है। वहां दफ्तर में उस पर शुबहा होता है और उसके हिसाब की जांच होती है। तब मालूम होता है कि उसने कुछ गबन नहीं किया, सिर्फ हिसाब की भूल थी।

फिर रमानाथ के पुलिस के पंजे में फंसने, फरजी मुखबिर बनने और शहादत देने का जिक्र करते हुए उसने कहा—

अब रमानाथ के जीवन में एक नया परिवर्तन होता है, ऐसा परिवर्तन जो एक विलास-प्रिय, पद-लोलुप युवक को धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यशील बना देता है। उसकी पत्नी जालपा, जिसे देवी कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी, उसकी तलाश में प्रयाग से यहां आती है और यहां जब उसे मालूम होता है कि रमा एक मुकदमे में पुलिस का मुखबिर हो गया है, तो वह उससे छिपकर मिलने आती है। रमा अपने बंगले में आराम से पड़ा हुआ है। फाटक पर संतरी पहरा दे रहा है। जालपा को पति से मिलने में सफलता नहीं होती। तब वह एक पत्र लिखकर उसके सामने फेंक देती है और देवीदीन के घर चली जाती है। रमा यह पत्र पढ़ता है और उसकी आंखों के सामने से परदा हट जाता है। वह छिपकर जालपा के पास जाता है। जालपा उससे सारा वृत्तांत कह सुनाती है और उससे अपना बयान वापस लेने पर जोर देती है। रमा पहले शंकाएं करता है, पर बाद को राजी हो जाता है और अपने बंगले पर लौट जाता है। वहां वह पुलिस-अफसरों से साफ कह देता है, कि मैं अपना बयान बदल दूंगा। अधिकारी उसे तरह-तरह के प्रलोभन देते हैं; पर जब इसका रमा पर कोई असर नहीं होता और उन्हें मालूम हो गया है कि उस पर गबन का कोई मुकदमा नहीं है, तो वे उसे जालपा को गिरफ्तार करने की धमकी देते हैं। रमा की हिम्मत टूट जाती है। वह जानता है, पुलिस जो चाहे कर सकती है, इसलिए वह अपना इरादा तबदील कर देता है और वह जज के इजलास में अपने बयान का समर्थन कर देता है। अदालत में रमा से सफाई ने कोई जिरह नहीं की थी। यहां उससे जिरहें

की गई; लेकिन इस मुकदमे से कोई सरोकार न रखने पर भी उसने जिरहों के ऐसे जवाब दिए कि जज को भी कोई शक न हो सका और मुलजिमों को सजा हो गई। रमानाथ की और भी खातिरदारियां होने लगीं। उसे एक सिफारिशी खत दिया गया और शायद उसकी यू॰पी॰ गवर्नमेंट से सिफारिश भी की गई।

फिर जालपादेवी ने फांसी की सजा पाने वाले मुल्जिम दिनेश के बाल-बच्चों का पालन-पोषण करने का निश्चय किया। इधर-उधर से चंदे मांग-मांगकर वह उनके लिए जिंदगी की जरूरतें पूरी करती थीं। उसके घर का काम-काज अपने हाथों करती थीं। उसके बच्चों को खिलाने को ले जाती थीं।

एक दिन रमानाथ मोटर पर सैर करता हुआ जालपा को सिर पर एक पानी का मटका रक्खे देख लेता है। उसकी आत्म-मर्यादा जाग उठती है। जोहरा को पुलिस-कर्मचारियों ने रमानाथ के मनोरंजन के लिए नियुक्त कर दिया है। जोहरा युवक की मानसिक वेदना देखकर द्रवित हो जाती है और वह जालपा का पूरा समाचार लाने के इरादे से चली जाती है। दिनेश के घर उसकी जालपा से भेंट होती है। जालपा का त्याग, सेवा और साधना देखकर इस वेश्या का हृदय इतना प्रभावित हो जाता है कि वह अपने जीवन पर लज्जित हो जाती है और दोनों में बहनापा हो जाता है। वह एक सप्ताह के बाद जाकर रमा से सारा वृत्तांत कह सुनाती है। रमा उसी वक्त वहां से चल पड़ता है और जालपा से दो-चार बातें करके जज के बंगले पर चला जाता है। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है।

मैं यह नहीं कहता कि उसने झूठी गवाही नहीं दी, लेकिन उस परिस्थिति और उन प्रलोभनों पर ध्यान दीजिए, तो इस अपराध की गहनता बहुत कुछ घट जाती है। उस झूठी गवाही का परिणाम अगर यह होता, कि किसी निरपराध को सजा मिल जाती तो दूसरी बात थी। इस अवसर पर तो पंद्रह युवकों की जान बच गई। क्या अब भी वह झूठी गवाही का अपराधी है? उसने खुद ही तो अपनी झूठी गवाही का इकबाल किया है। क्या इसका उसे दंड मिलना चाहिए? उसकी सरलता और सज्जनता ने एक वेश्या तक को मुग्ध कर दिया और वह उसे बहकाने और बहलाने के बदले उसके मार्ग का दीपक बन गई। जालपादेवी की कर्तव्यपरायणता क्या दंड के योग्य है? जालपा ही इस ड्रामा की नायिका है। उसके सदनुराग, उसके सरल प्रेम, उसकी धर्मपरायणता, उसकी पतिभक्ति, उसके स्वार्थ-त्याग, उसकी सेवा-निष्ठा, किस-किस गुण की प्रशंसा की जाय। आज वह रंगमंच पर न आती, तो पंद्रह परिवारों के चिराग गुल हो जाते। उसने पंद्रह परिवारों को अभयदान दिया है। उसे मालूम था कि पुलिस का साथ देने से सांसारिक भविष्य कितना उज्ज्वल हो जाएगा, वह जीवन की कितनी ही चिंताओं से मुक्त हो जायगी। संभव है, उसके पास भी मोटरकार हो जायगी, नौकर-चाकर हो जायंगे, अच्छा-सा घर हो जायगा, बहुमूल्य आभूषण होंगे। क्या एक युवती रमणी के हृदय में इन सुखों का कुछ भी मूल्य नहीं है? लेकिन वह यह यातना सहने के लिए तैयार हो जाती है। क्या यही उसके धर्मानुराग का उपहार होगा कि वह पति-वंचित होकर जीवन-पथ पर भटकती फिरे? एक साधारण स्त्री में, जिसने उच्चकोटि की शिक्षा नहीं पाई, क्या इतनी निष्ठा, इतना त्याग, इतना विमर्श किसी दैवी प्रेरणा का परिचायक नहीं है? क्या एक पतिता का ऐसे कार्य

में सहायक हो जाना कोई महत्त्व नहीं रखता? मैं तो समझता हूं, रखता है। ऐसे अभियोग रोज नहीं पेश होते। शायद आप लोगों को अपने जीवन में फिर ऐसा अभियोग सुनने का अवसर न मिले। यहां आप एक अभियोग का फैसला करने बैठे हुए हैं; मगर इस कोर्ट के बाहर एक और बहुत बड़ा न्यायालय है, जहां आप लोगों के न्याय पर विचार होगा। जालपा का वही फैसला न्यायानुकूल होगा जिसे बाहर का विशाल न्यायालय स्वीकार करे। वह न्यायालय कानूनों की बारीकियों में नहीं पड़ता जिनमें उलझकर, जिनकी पेचीदगियों में फंसकर, हम अकसर पथ-भ्रष्ट हो जाया करते हैं, अकसर दूध का पानी और पानी का दूध कर बैठते हैं। अगर आप झूठ पर पश्चात्ताप करके सच्ची बात कह देने के लिए, भोग-विलासयुक्त जीवन को ठुकराकर फटेहालों जीवन व्यतीत करने के लिए किसी को अपराधी ठहराते हैं, तो आप संसार के सामने न्याय का काई ऊंचा आदर्श नहीं उपस्थित कर रहे हैं।

सरकारी वकील ने इसका प्रत्युत्तर देते हुए कहा—धर्म और आदर्श अपने स्थान पर बहुत ही आदर की चीजें हैं, लेकिन जिस आदमी ने जान-बूझकर झूठी गवाही दी, उसने अपराध अवश्य किया और इसका उसे दंड मिलना चाहिए। यह सत्य है कि उसने प्रयाग में कोई गबन नहीं किया था और उसे इसका भ्रम-मात्र था, लेकिन ऐसी दशा में एक सच्चे आदमी का यह कर्त्तव्य था कि वह गिरफ्तार हो जाने पर अपनी सफाई देता। उसने सजा के भय से झूठी गवाही देकर पुलिस को क्यों धोखा दिया? यह विचार करने की बात है। अगर आप समझते हैं कि उसने अनुचित काम किया, तो आप उसे अवश्य दंड देंगे।

अब अदालत के फैसला सुनाने की बारी आई। सभी को रमा से सहानुभूति हो गई थी, पर इसके साथ ही यह भी मानी हुई बात थी कि उसे सजा होगी। क्या सजा होगी, यही देखना था। लोग बड़ी उत्सुकता से फैसला सुनने के लिए और सिमट आए, कुर्सियां और आगे खींच ली गईं, और कनबतियां भी बंद हो गईं।

'मुआमला केवल यह है कि एक युवक ने अपनी प्राण-रक्षा के लिए पुलिस का आश्रय लिया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस भय से वह पुलिस का आश्रय ले रहा है, वह सर्वथा निर्मूल है, तो उसने अपना बयान वापस ले लिया। रमानाथ में अगर सत्यनिष्ठा होती; तो वह पुलिस का आश्रय ही क्यों लेता, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि पुलिस ने उसे रक्षा का यह उपाय सुझाया और इस तरह उसे झूठी गवाही देने का प्रलोभन दिया। मैं यह नहीं मान सकता कि इस मुआमले में गवाही देने का प्रस्ताव स्वत: उसके मन में पैदा हो गया। उसे प्रलोभन दिया गया, जिसे उसने दंड-भय से स्वीकार कर लिया। उसे गह भी अवश्य विश्वास दिलाया गया होगा कि जिन लोगों के विरुद्ध उसे गवाही देने के लिए तैयार किया जा रहा था, वे वास्तव में अपराधी थे। क्योंकि रमानाथ में जहां दंड का भय है, वहां न्यायभक्ति भी है। वह उन पेशेवर गवाहों में नहीं है, जो स्वार्थ के लिए निरपराधियों को फंसाने से भी नहीं हिचकते। अगर ऐसी बात न होती, तो वह अपनी पत्नी के आग्रह से बयान बदलने पर कभी राजी न होता। यह ठीक है कि पहली अदालत के बाद ही उसे मालूम हो गया था कि उस पर गबन का कोई मुकदमा नहीं है और जज की अदालत में वह अपने बयान को वापस न ले सकता था। उस वक्त उसने यह इच्छा प्रकट भी अवश्य की; पर पुलिस की धमकियों ने फिर उस पर विजय

पाई। पुलिस को बदनामी से बचने के लिए इस अवसर पर उसे धमकियां देना स्वाभाविक है, क्योंकि पुलिस को मुलजिमों के अपराधी होने के विषय में कोई संदेह न था। रमानाथ धमकियों में आ गया, यह उसकी दुर्बलता अवश्य है; पर परिस्थिति को देखते हुए क्षम्य है। इसलिए मैं रमानाथ को बरी करता हूं।'

## बावन

चैत्र की शीतल, सुहावनी, स्फूर्तिमयी संध्या, गंगा का तट, टेसुओं से लहलहाता हुआ ढाक का मैदान, बरगद का छायादार वृक्ष, उसके नीचे बंधी हुई गाएं, भैंसें; कद्दू और लौकी की बेलों से लहराती हुई झोंपड़ियां, न कहीं गर्द न गुबार, न शोर न गुल, सुख और शांति के लिए क्या इससे भी अच्छी जगह हो सकती है? नीचे स्वर्णमयी गंगा लाल, काले, नीले आवरण से चमकती हुई, मंद स्वरों में गाती, कहीं लपकती, कहीं झिझकती, कहीं चपल, कहीं गंभीर, आनंत अंधकार की ओर चली जा रही है, मानो बहुरंजित बालस्मृति क्रीड़ा और विनोद की गोद में खेलती हुई, चिंतामय, संघर्षमय, अंधकारमय भविष्य की ओर चली जा रही हो। देवी और रमा ने यहीं, प्रयाग के समीप आकर आश्रय लिया है।

तीन साल गुजर गए हैं, देवीदीन ने जमीन ली, बाग लगाया, खेती जमाई, गाय-भैंसें खरीदीं और कर्मयोग में, अविरत उद्योग में सुख, संतोष और शांति का अनुभव कर रहा है। उसके मुख पर अब वह जर्दी, झुर्रियां नहीं हैं, एक नई स्फूर्ति, एक नई कांति झलक रही है।

शाम हो गई है, गाएं-भैंसें हार से लौटीं। जग्गो ने उन्हें खूंटे से बांधा और थोड़ा-थोड़ा भूसा लाकर उनके सामने डाल दिया। इतने में देवी और गोपी भी बैलगाड़ी पर डांठें लादे हुए आ पहुंचे। दयानाथ ने बरगद के नीचे जमीन साफ कर रखी है। वहीं डांठें उतारी गईं। यही इस छोटी-सी बस्ती का खलिहान है। दयानाथ नौकरी से बरखास्त हो गए थे और अब देवी के असिस्टेंट हैं। उनको समाचार-पत्रों से अब भी वही प्रेम है, रोज कई पत्र आते हैं, और शाम को फुर्सत पाने के बाद मुंशीजी पत्रों को पढ़कर सुनाते और समझाते हैं। श्रोताओं में बहुधा आसपास के गांवों के दस-पांच आदमी भी आ जाते हैं और रोज एक छोटी-मोटी सभा हो जाती है।

रमा को तो इस जीवन से इतना अनुराग हो गया है कि अब शायद उसे थानेदारी ही नहीं, चुंगी की इंस्पेक्टरी भी मिल जाय, तो शहर का नाम न ले। प्रातःकाल उठकर गंगा-स्नान करता है, फिर कुछ कसरत करके दूध पीता है और दिन निकलते-निकलते अपनी दवाओं का संदूक लेकर आ बैठता है। उसने वैद्यक की कई किताबें पढ़ ली हैं और छोटी-मोटी बीमारियों की दवा दे देता है। दस-पांच मरीज रोज आ जाते हैं और उसकी कीर्ति दिन-दिन बढ़ती जाती है। इस काम से छुट्टी पाते ही वह अपने बगीचे में चला जाता है। वहां कुछ साग-भाजी भी लगी हुई है, कुछ फल-फूलों के वृक्ष हैं और कुछ जड़ी-बूटियां हैं। अभी तो बाग से केवल तरकारी मिलती है; पर आशा है कि तीन-चार साल में नींबू, अमरूद, बेर, नारंगी, आम, केले, आंवले, कटहल, बेल आदि फलों की अच्छी आमदनी होने लगेगी।

देवी ने बैलों को गाड़ी से खोलकर खूंटे से बांध दिया और दयानाथ से बोला—अभी भैया नहीं लौटे?

दयानाथ ने डांठों को समेटते हुए कहा—अभी तो नहीं लौटे। मुझे तो अब इनके अच्छे होने की आशा नहीं है। जमाने का फेर है। कितने सुख से रहती थीं, गाड़ी थी, बंगला था, दरजनों नौकर थे। अब यह हाल है। सामान सब मौजूद है, वकील साहब ने अच्छी संपत्ति छोड़ी थी; मगर भाई-भतीजों ने हड़प ली।

देवीदीन—भैया कहते थे, अदालत करतीं तो सब मिल जाता; पर कहती हैं, मैं अदालत में झूठ न बोलूंगी। औरत बड़े ऊंचे विचार की है।

सहसा जागेश्वरी एक छोटे-से शिशु को गोद में लिए हुए एक झोंपड़े से निकली और बच्चे को दयानाथ की गोद में देती हुई देवीदीन से बोली—भैया, जरा चलकर रतन को देखो, जाने कैसी हुई जाती है। जोहरा और बहू, दोनों रो रही हैं। बच्चा न जाने कहां रह गए।

देवीदीन ने दयानाथ से कहा—चलो लाला, देखें।

जागेश्वरी बोली—यह जाकर क्या करेंगे, बीमार को देखकर तो इनकी नानी पहले ही मर जाती है।

देवीदीन ने रतन की कोठरी में जाकर देखा। रतन बांस की एक खाट पर पड़ी थी। देह सूख गई थी। व ़ सूर्यमुखी का-सा खिला हुआ चेहरा मुरझाकर पीला हो गया था। वह रंग जिन्होंने चित्र को जीवन और स्पंदन प्रदान कर रक्खा था, उड़ गए थे, केवल आकार शेष रह गया था। वह श्रवण-प्रिय, प्राणप्रद, विकास और आह्लाद में डूबा हुआ संगीत मानो आकाश में विलीन हो गया था, केवल उसकी क्षीण उदास प्रतिध्वनि रह गई थी। जोहरा उसके ऊपर झुकी उसे करुण, विवश, कातर, निराश तथा तृष्णामय नेत्रों से देख रही थी। आज साल-भर से उसने रतन की सेवा-शुश्रूषा में दिन को दिन और रात को रात न समझा था। रतन ने उसके साथ जो स्नेह किया था, उस अविश्वास और बहिष्कार के वातावरण में जिस खुले नि:संकोच भाव से उसके साथ बहनापा निभाया था, उसका एहसान वह और किस तरह मानती। जो सहानुभूति उसे जालपा से भी न मिली, वह रतन ने प्रदान की। दु:ख और परिश्रम ने दोनों को मिला दिया, दोनों की आत्माएं संयुक्त हो गईं। यह घनिष्ठ स्नेह उसके लिए एक नया ही अनुभव था, जिसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। इस मैत्री में उसके वंचित हृदय ने पति-प्रेम और पुत्र-स्नेह दोनों ही पा लिया।

देवीदीन ने रतन के चेहरे की ओर सचिंत नेत्रों से देखा, तब उसकी नाड़ी हाथ में लेकर पूछा—कितनी देर से नहीं बोलीं?

जालपा ने आंखें पोंछकर कहा—अभी तो बोलती थीं। एकाएक आंखें ऊपर चढ़ गईं और बेहोश हो गईं। वैद्यजी को लेकर अभी तक नहीं आए?

देवीदीन ने कहा—इनकी दवा वैद्य के पास नहीं है।

यह कहकर उसने थोड़ी-सी राख ली, रतन के सिर पर हाथ फेरा, कुछ मुंह में बुदबुदाया और एक चुटकी राख उसके माथे पर लगा दी। तब पुकारा—रतन बेटी, आंखें खोलो।

रतन ने आंखें खोल दीं और इधर-उधर सकपकाई हुई आंखों से देखकर बोली—मेरी

मोटर आई थी न? कहां गया वह आदमी? उससे कह दो, थोड़ी देर के बाद लाए। जोहरा, आज मैं तुम्हें अपने बगीचे की सैर कराऊंगी। हम दोनों झूले पर बैठेंगी।

जोहरा फिर रोने लगी। जालपा भी आंसुओं के वेग को न रोक सकी। रतन एक क्षण तक छत की ओर देखती रही। फिर एकाएक जैसे उसकी स्मृति जाग उठी हो, वह लज्जित होकर एक उदास मुस्कराहट के साथ बोली—मैं सपना देख रही थी, दादा !

लोहित आकाश पर कालिमा का परदा पड़ गया था। उसी वक्त रतन के जीवन पर मृत्यु ने परदा डाल दिया।

रमानाथ वैद्यजी को लेकर पहर रात को लौटे, तो यहां मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। रतन की मृत्यु का शोक वह शोक न था, जिसमें आदमी हाय-हाय करता है, बल्कि वह शोक था जिसमें हम मूक रुदन करते हैं, जिसकी याद कभी नहीं भूलती, जिसका बोझ कभी दिल से नहीं उतरता।

रतन के बाद जोहरा अकेली हो गई। दोनों साथ सोती थीं, साथ बैठती थीं, साथ काम करती थीं। अकेले जोहरा का जी किसी काम में न लगता। कभी नदी-तट पर जाकर रतन को याद करती और रोती, कभी उस आम के पौधे के पास जाकर घंटों खड़ी रहती, जिसे उन दोनों ने लगाया था। मानो उसका सुहाग लुट गया हो। जालपा को बच्चे के पालन और भोजन बनाने से इतना अवकाश न मिलता था कि उसके साथ बहुत उठती-बैठती, और बैठती भी तो रतन की चर्चा होने लगती और दोनों रोने लगतीं।

भादों का महीना था। पृथ्वी और जल में रण छिड़ा हुआ था। जल की सेनाएं वायुयान पर चढ़कर आकाश से जल-शरों की वर्षा कर रही थीं। उसकी थल-सेनाओं ने पृथ्वी पर उत्पात मचा रक्खा था। गंगा गांवों और कस्बों को निगल रही थी। गांव के गांव बहते चले जाते थे। जोहरा नदी के तट पर बाढ़ का तमाशा देखने लगी। वह कृशांगी गंगा इतनी विशाल हो सकती है, इसका वह अनुमान भी न कर सकती थी। लहरें उन्मत्त होकर गरजतीं, मुंह से फेन निकालतीं, हाथों उछल रही थीं। चतुर फेकैतों की तरह पैंतरे बदल रही थीं। कभी एक कदम आतीं, फिर पीछे लौट पड़तीं और चक्कर खाकर फिर आगे को लपकतीं। कहीं कोई झोंपड़ा डगमगाता तेजी से बहा जा रहा था, मानो कोई शराबी दौड़ा जाता हो। कहीं कोई वृक्ष डाल-पत्तों समेत डूबता-उतराता किसी पाषाणयुग के जंतु की भांति तैरता चला जाता था। गाएं और भैंसें, खाट और तख्ते मानो तिलस्मी चित्रों की भांति आंखों के सामने से निकले जाते थे।

सहसा एक किश्ती नजर आई। उस पर कई स्त्री-पुरुष बैठे थे। बैठे क्या थे, चिमटे हुए थे। किश्ती कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती। बस यही मालूम होता था कि अब उलटी, अब उलटी, पर वाह रे साहस ! सब अब भी 'गंगा माता की जय !' पुकारते जाते थे। स्त्रियां अब भी गंगा के यश के गीत गाती थीं ! जीवन और मृत्यु का ऐसा संघर्ष किसने देखा होगा। दोनों तरफ के आदमी किनारे पर, एक तनाव की दशा में हृदय को दबाए खड़े थे। जब किश्ती करवट लेती, तो लोगों के दिल उछल-उछलकर ओठों तक आ जाते। रस्सियां फेंकने की कोशिश की जाती, पर रस्सी बीच ही में गिर पड़ती थी। एकाएक एक बार किश्ती उलट ही गई। सभी प्राणी लहरों में समा गए। एक क्षण कई स्त्री-पुरुष डूबते-उतराते दिखाई दिए, फिर निगाहों से

ओझल हो गए। केवल एक उजली-सी चीज किनारे की ओर चली आ रही थी। वह एक रेले में तट से कोई बीस गज तक आ गई। समीप से मालूम हुआ, स्त्री है। जोहरा, जालपा और रमा—तीनों खड़े थे। स्त्री की गोद में एक बच्चा भी नजर आता था। दोनों को निकाल लाने के लिए तीनों विकल हो उठे, पर बीस गज तक तैरकर उस तरफ जाना आसान न था। फिर रमा तैरने में बहुत कुशल न था। कहीं लहरों के जोर में पांव उखड़ जाएं, तो फिर बंगाल की खाड़ी के सिवा और कहीं ठिकाना न लगे।

जोहरा ने कहा—मैं जाती हूं।

रमा ने लजाते हुए कहा—जाने को तो मैं तैयार हूं, लेकिन वहां तक पहुंच भी सकूंगा, इसमें संदेह है। कितना तोड़ है।

जोहरा ने एक कदम पानी में रखकर कहा—नहीं, मैं अभी निकाल लाती हूं।

वह कमर तक पानी में चली गई। रमा ने सशंक होकर कहा—क्यों नाहक जान देने जाती हो। वहां शायद एक गड्ढा है। मैं तो जा ही रहा था।

जोहरा ने हाथों से मना करते हुए कहा—नहीं-नहीं, तुम्हें मेरी कसम, तुम न आना। मैं अभी लिए आती हूं। मुझे तैरना आता है।

जालपा ने कहा—लाश होगी और क्या।

रमानाथ—शायद अभी जान हो।

जालपा—अच्छा, तो जोहरा तो तैर भी लेती है। जभी हिम्मत हुई।

रमा ने जोहरा की ओर चिंतित आंखों से देखते हुए कहा—हां, कुछ-कुछ जानती तो हैं। ईश्वर करे लौट आएं। मुझे अपनी कायरता पर लज्जा आ रही है।

जालपा ने बेहयाई से कहा—इसमें लज्जा की कौन-सी बात है। मरी लाश के लिए जान को जोखिम में डालने से फायदा? जीती होती, तो मैं खुद तुमसे कहती, जाकर निकाल लाओ।

रमा ने आत्म-धिक्कार के भाव से कहा—यहां से कौन जान सकता है, जान है या नहीं। सचमुच बाल-बच्चों वाला आदमी नामर्द हो जाता है। मैं खड़ा रहा और जोहरा चली गई।

सहसा एक जोर की लहर आई और लाश को फिर धारा में बहा ले गई। जोहरा लाश के पास पहुंच चुकी थी। उसे पकड़कर खींचना ही चाहती थी कि इस लहर ने उसे दूर कर दिया। जोहरा खुद उसके जोर में आ गई और प्रवाह की ओर कई हाथ बह गई। वह फिर संभली, पर एक दूसरी लहर ने उसे फिर ढकेल दिया।

रमा व्यग्र होकर पानी में कूद पड़ा और जोर-जोर से पुकारने लगा—जोहरा! जोहरा! मैं आता हूं।

मगर जोहरा में अब लहरों से लड़ने की शक्ति न थी। वह वेग से लाश के साथ ही धारे में बही जा रही थी। उसके हाथ-पांव हिलना बंद हो गए थे।

एकाएक एक ऐसा रेला आया कि दोनों ही उसमें समा गईं। एक मिनट के बाद जोहरा के काले बाल नजर आए। केवल एक क्षण तक! यही अंतिम झलक थी। फिर वह नजर न आई।

रमा कोई सौ गज तक जोरों के साथ हाथ-पांव मारता हुआ गया, लेकिन इतनी ही दूर में लहरों के वेग के कारण उसका दम फूल गया। अब आगे जाय कहां? जोहरा का तो कहीं पता भी न था। वही आखिरी झलक आंखों के सामने थी।

किनारे पर जालपा खड़ी हाय-हाय कर रही थी। यहां तक कि वह भी पानी में कूद पड़ी।

रमा अब आगे न बढ़ सका। एक शक्ति आगे खींचती थी, एक पीछे। आगे की शक्ति में अनुराग था, निराशा थी, बलिदान था। पीछे की शक्ति में कर्त्तव्य था, स्नेह था, बंधन था। बंधन ने रोक ने लिया। वह लौट पड़ा।

कई मिनट तक जालपा और रमा घुटनों तक पानी में खड़े उसी तरफ ताकते रहे। रमा की जबान आत्म -धिक्कार ने बंद कर रक्खी थी, जालपा की, शोक और लज्जा ने।

आखिर रमा ने कहा—पानी में क्यों खड़ी हो? सर्दी हो जाएगी।

जालपा पानी से निकलकर तट पर खड़ी हो गई, पर मुंह से कुछ न बोली—मृत्यु के इस आघात ने उसे पराभूत कर दिया था। जीवन कितना अस्थिर है, यह घटना आज दूसरी बार उसकी आंखों के सामने चरितार्थ हुई। रतन के मरने की पहले से आशंका थी। मालूम था कि वह थोड़े दिनों की मेहमान है; मगर जोहरा की मौत तो वज्राघात के समान थी। अभी आध घड़ी पहले तीनों आदमी प्रसन्नचित्त, जल-क्रीड़ा देखने चले थे। किसे शंका थी कि मृत्यु की ऐसी भीषण क्रीड़ा उनको देखनी पड़ेगी।

इन चार सालों में जोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग और सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। उसके अतीत को मिटाने के लिए, अपने पिछले दागों को धो डालने के लिए, उसके पास इसके सिवा और क्या साधन था। उसकी सारी कामनाएं, सारी वासनाएं सेवा में लीन हो गईं। कलकत्ते में वह विलास और मनोरंजन की वस्तु थी। शायद कोई भला आदमी उसे अपने घर में न घुसने देता। यहां सभी उसके साथ घर के प्राणी का-सा व्यवहार करते थे। दयानाथ और जागेश्वरी को यह कहकर शांत कर दिया गया था कि वह देवीदीन की विधवा बहू है। जोहरा ने कलकत्ते में जालपा से केवल उसके साथ रहने की भिक्षा मांगी थी। अपने जीवन से उसे घृणा हो गई थी। जालपा की विश्वासमय उदारता ने उसे आत्मशुद्धि के पथ पर डाल दिया। रतन का पवित्र, निष्काम जीवन उसे प्रोत्साहित किया करता था।

थोड़ी देर के बाद रमा भी पानी से निकला और शोक में डूबा हुआ घर की ओर चला। मगर अकसर वह और जालपा नदी के किनारे आ बैठते और जहां जोहरा डूबी थी उस तरफ घंटों देखा करते। कई दिनों तक उन्हें यह आशा बनी रही कि शायद जोहरा बच गई हो और किसी तरफ से चली आए; लेकिन धीरे-धीरे यह क्षीण आशा भी शोक से अंधकार में खो गई। मगर अभी तक जोहरा की सूरत उनकी आंखों के सामने फिरा करती है। उसके लगाए हुए पौधे, उसकी पाली हुई बिल्ली, उसके हाथों के सिले हुए कपड़े, उसका कमरा, यह सब उसकी स्मृति के चिह्न हैं और उनके पास जाकर रमा की आंखों के सामने जोहरा की तस्वीर खड़ी हो जाती है।

●●●
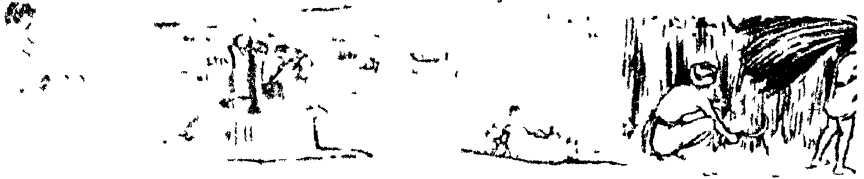
# कर्मभूमि

प्रकाशनकाल : नवम्बर, 1932
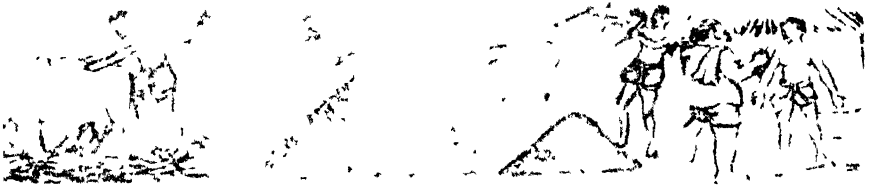
# कर्मभूमि

लेखक

**प्रेमचन्द**

प्रकाशक

**सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी**

| प्रथम | सन् | मूल्य |
|---|---|---|
| संस्करण | १९१२ | तीन रुपये |

(प्रथम संस्करण का मुख पृष्ठ)

# एक

हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीम वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन फीस का दाखिला होना अनिवार्य है। या तो फीस दीजिए, या नाम कटवाइए, या जब तक फीस न दाखिल हो, रोज कुछ जुर्माना दीजिए। कहीं-कहीं ऐसा भी नियम है कि उसी दिन फीस दुगुनी कर दी जाती है, और किसी दूसरी तारीख को दुगुनी फीस न दी तो नाम कट जाता है। काशी के क्वीन्स कॉलेज में यही नियम था। सातवीं तारीख को फीस न दो, तो इक्कीसवीं तारीख को दुगुनी फीस देनी पड़ती थी, या नाम कट जाता था। ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके सिवा और क्या हो सकता था, कि गरीबों के लड़के स्कूल छोड़कर भाग जाएं? वही हृदयहीन दफ्तरी शासन, जो अन्य विभागों में है, हमारे शिक्षालयों में भी है। वह किसी के साथ रियायत नहीं करता। चाहे जहां से लाओ, कर्ज लो, गहने गिरवी रखो, लोटा-थाली बेचो, चोरी करो, मगर फीस जरूर दो, नहीं दूनी फीस देनी पड़ेगी, या नाम कट जाएगा। जमीन और जायदाद के कर वसूल करने में भी कुछ रियायत की जाती है। हमारे शिक्षालयों में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहां स्थायी रूप से मार्शल-लॉ का व्यवहार होता है। कचहरी में पैसे का राज है, हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय। देर में आइए तो जुर्माना; न आइए तो जुर्माना; सबक न याद हो तो जुर्माना; किताबें न खरीद सकिए तो जुर्माना; कोई अपराध हो जाए तो जुर्माना; शिक्षालय क्या है, जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है?

आज वही वसूली की तारीख है। अध्यापकों की मेजों पर रुपयों के ढेर लगे हैं। चारों तरफ खनाखन की आवाजें आ रही हैं। सराफे में भी रुपये की ऐसी झंकार कम सुनाई देती है। हरेक मास्टर तहसील का चपरासी बना बैठा हुआ है। जिस लड़के का नाम पुकारा जाता है, वह अध्यापक के सामने आता है, फीस देता है और अपनी जगह पर आ बैठता है। मार्च का महीना है। इसी महीने में अप्रैल, मई और जून की फीस भी वसूल की जा रही है। इम्तहान की फीस भी ली जा रही है। दसवें दर्जे में तो एक-एक लड़के को चालीस रुपये देने पड़ रहे हैं।

अध्यापक ने बीसवें लड़के का नाम पुकारा—अमरकान्त !

अमरकान्त गैरहाजिर था।

अध्यापक ने पूछा—क्या अमरकान्त नहीं आया?

एक लड़के ने कहा—आए तो थे, शायद बाहर चले गए हों।

"क्या फीस नहीं लाया है?"

किसी लड़के ने जवाब नहीं दिया।

अध्यापक की मुद्रा पर खेद की रेखा झलक पड़ी। अमरकान्त अच्छे लड़कों में था। बोले—शायद फीस लाने गया होगा। इस घंटे में न आया, तो दूनी फीस देनी पड़ेगी। मेरा क्या अख्तियार है? दूसरा लड़का चले—गोवर्धनदास !

सहसा एक लड़के ने पूछा—अगर आपकी इजाजत हो, तो मैं बाहर जाकर देखूं?

अध्यापक ने मुस्कराकर कहा—घर की याद आई होगी। खैर, जाओ, मगर दस मिनट के अंदर आ जाना। लड़कों को बुला-बुलाकर फीस लेना मेरा काम नहीं है।

लड़के ने नम्रता से कहा—अभी आता हूं। कसम ले लीजिए, जो हाते के बाहर जाऊं।

यह इस कक्षा के संपन्न लड़कों में था, बड़ा खिलाड़ी, बड़ा बैठकबाज। हाजिरी देकर गायब हो जाता, तो शाम की खबर लाता। हर महीने फीस की दूनी रकम जुर्माना दिया करता था। गोरे रंग का, लंबा, छरहरा शौकीन युवक था। जिसके प्राण खेल में बसते थे। नाम था मोहम्मद सलीम।

सलीम और अमरकान्त दोनों पास-पास बैठते थे। सलीम को हिसाब लगाने या तर्जुमा करने में अमरकान्त से विशेष सहायता मिलती थी। उसकी कापी से नकल कर लिया करता था। इससे दोनों में दोस्ती हो गई थी। सलीम कवि था। अमरकान्त उसकी गजलें बड़े चाव से सुनता था। मैत्री का यह एक और कारण था।

सलीम ने बाहर जाकर इधर-उधर निगाह दौड़ाई, अमरकान्त का कहीं पता न था। जरा और आगे बढ़े, तो देखा, वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ा है। पुकारा—अमरकान्त ! ओ बुद्धू लाल ! चलो, फीस जमा कर। पंडितजी बिगड़ रहे हैं।

अमरकान्त ने अचकन के दामन से आंखें पोंछ लीं और सलीम की तरफ आता हुआ बोला—क्या मेरा नंबर आ गया?

सलीम ने उसके मुंह की तरफ देखा, तो उसकी आंखें लाल थीं। वह अपने जीवन में शायद ही कभी रोया हो ! चौंककर बोला—अरे , तुम रो रहे हो क्या बात है?

अमरकान्त सांवले रंग का, छोटा-सा, दुबला-पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गई थी, पर अभी मसें भी न भीगी थीं। चौदह-पंद्रह साल का किशोर-सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, अंकित हो रही थी, मानो संसार में उसका कोई नहीं है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी प्रतिभा, कुछ ऐसी मनस्विता थी कि एक बार उसे देखकर फिर भूल जाना कठिन था।

उसने मुस्कराकर कहा—कुछ नहीं जी, रोता कौन है?

"आप रोते हैं, और कौन रोता है। सच बताओ क्या हुआ?"

अमरकान्त की आंखें फिर भर आईं। लाख यत्न करने पर भी आंसू न रुक सके। सलीम समझ गया। उसका हाथ पकड़कर बोला—क्या फीस के लिए रो रहे हो? भले आदमी, मुझसे क्यों न कह दिया? तुम मुझे भी गैर समझते हो। कसम खुदा की, बड़े नालायक आदमी हो तुम। ऐसे आदमी को गोली मार देनी चाहिए ! दोस्तों से भी यह गैरियत ! चलो क्लास में,

मैं फीस दिए देता हूं। जरा-सी बात के लिए घंटे-भर से रो रहे हो। वह तो कहो मैं आ गया, नहीं तो आज जनाब का नाम ही कट गया होता।

अमरकान्त को तसल्ली तो हुई, पर अनुग्रह के बोझ से उसकी गर्दन दब गई। बोला —पंडितजी आज मान न जाएंगे?

सलीम ने खड़े होकर कहा—पंडितजी के बस की बात थोड़े ही है। यही सरकारी कायदा है। मगर हो तुम बड़े शैतान, वह तो खैरियत हो गई, मैं रुपये लेता आया था, नहीं खूब इम्तहान देते। देखो, आज एक ताजा गजल कही है। पीठ सहला देना :

**आपको मेरी वफा याद आई,**
**खैर है आज यह क्या याद आई।**

अमरकान्त का व्यथित चित्त इस समय गजल सुनने को तैयार न था; पर सुने बगैर काम भी तो नहीं चल सकता। बोला—नाजुक चीज है। खूब कहा है। मैं तुम्हारी जबान की सफाई पर जान देता हूं।

सलीम—यही तो खास बात है, भाई साहब ! लफ्जों की झंकार का नाम गजल नहीं है। दूसरा शेर सुनो :

**फिर मेरे सीने में एक हूक उठी,**
**फिर मुझे तेरी अदा याद आई।**

अमरकान्त ने फिर तारीफ की—लाजवाब चीज है। कैसे तुम्हें ऐसे शेर सूझ जाते हैं?

सलीम हंसा—उसी तरह, जैसे तुम्हें हिसाब और मजमून सूझ जाते हैं। जैसे एसोसिएशन में स्पीचें दे लेते हो। आओ, पान खाते चलें।

दोनों दोस्तों ने पान खाए और स्कूल की तरफ चले। अमरकान्त ने कहा—पंडितजी बड़ी डांट बताएंगे।

"फीस ही तो लेंगे !"

"और जो पूछें, अब तक कहां थे?"

"कह देना, फीस लाना भूल गया था।"

"मुझसे न कहते बनेगा। मैं साफ-साफ कह दूंगा।"

"तो तुम पिटोगे भी मेरे हाथ से !"

संध्या समय जब छुट्टी हुई और दोनों मित्र घर चले, अमरकान्त ने कहा—तुमने आज मुझ पर जो एहसान किया है

सलीम ने उसके मुंह पर हाथ रखकर कहा—बस खबरदार, जो मुंह से एक आवाज भी निकाली। कभी भूलकर भी इसका जिक्र न करना।

"आज जलसे में आओगे?"

"मजमून क्या है, मुझे तो याद नहीं?"

"अजी वही पश्चिमी सभ्यता है।"

"तो मुझे दो-चार प्वाइंट बता दो, नहीं तो मैं वहां कहूंगा क्या?"

"बताना क्या है? पश्चिमी सभ्यता की बुराइयां हम सब जानते ही हैं। वही बयान कर देना।"

"तुम जानते होगे, मुझे तो एक भी नहीं मालूम।"

"एक तो यह तालीम ही है। जहां देखो वहीं दूकानदारी। अदालत की दूकान, इल्म की दूकान, सेहत की दूकान। इस एक प्वाइंट पर बहुत कुछ कहा जा सकता है।"

"अच्छी बात है, आऊंगा।"

## दो

अमरकान्त के पिता लाला समरकान्त बड़े उद्योगी पुरुष थे। उनके पिता केवल एक झोंपड़ी छोड़कर मरे थे, मगर समरकान्त ने अपने बाहुबल से लाखों की संपत्ति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी-सी हल्दी की आढ़त थी। हल्दी से गुड़ और चावल की बारी आई। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया। अब आढ़तें बंद कर दी थी। केवल लेन-देन करते थे। जिसे कोई महाजन रुपये न दे, उसे वह बेखटके दे देते और वसूल भी कर लेते। उन्हें आश्चर्य होता था कि किसी के रुपये मारे कैसे जाते हैं? ऐसा मेहनती आदमी भी कम होगा। घड़ी रात रहे गंगा-स्नान करने चले जाते और सूर्योदय के पहले विश्वनाथजी के दर्शन करके दूकान पर पहुच जाते। वहां मुनीम को जरूरी काम समझाकर तगादे पर निकल जाते और तीसरे पहर लौटते। भोजन करके फिर दूकान आ जाते और आधी रात तक डटे रहते। थे भी भीमकाय। भोजन तो एक ही बार करते थे, पर खूब डटकर। दो-ढाई सौ मुग्दर के हाथ अभी तक फेरते थे। अमरकान्त की माता का उसके बचपन ही में देहांत हो गया था। समरकान्त ने मित्रों के कहने-सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था। उस सात साल के बालक ने नई मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नई माता उसकी जिद और शरारतों को उस क्षमा-दृष्टि से नहीं देखती जैसे उसकी मां देखती थीं। वह अपनी मां का अकेला लाड़ला लड़का था, बडा जिद्दी, बडा नटखट। जो बात मुंह से निकल जाती, उसे पूरा करके ही छोड़ता। नई माताजी बात-बात पर डांटती थीं। यहां तक कि उसे माता से द्वेष हो गया। जिस बात को वह मना करती उसे वह अदबदाकर करता। पिता से भी ढीठ हो गया। पिता और पुत्र में स्नेह का बंधन न रहा। लालाजी जो काम करते, बेटे को उससे अरुचि होती। वह मलाई के प्रेमी थे, बेटे को मलाई से अरुचि थी। वह पूजा-पाठ बहुत करते थे, लड़का इसे ढोंग समझता था। वह परले सिरे के लोभी थे, लड़का पैसे को ठीकरा समझता था।

मगर कभी-कभी बुराई से भलाई पैदा हो जाती है। पुत्र सामान्य रीति से पिता का अनुगामी होता है। महाजन का बेटा महाजन, पंडित का पंडित, वकील का वकील, किसान का किसान होता है, मगर यहां इस द्वेष ने महाजन के पुत्र को महाजन का शत्रु बना दिया। जिस बात का पिता ने विरोध किया, वह पुत्र के लिए मान्य हो गई, और जिसको सराहा, वह त्याज्य। महाजनी के हथकंडे और षड्यंत्र उसके सामने रोज ही रचे जाते थे। उसे इस व्यापार से घृणा होती थी। इसे चाहे पूर्व संस्कार कह लो, पर हम तो यही कहेंगे कि अमरकान्त के चरित्र का निर्माण पिता-द्वेष के हाथों हुआ।

खैरियत यह हुई कि उसके कोई सौतेला भाई न हुआ। नहीं शायद वह घर से निकल गया होता। समरकान्त अपनी संपत्ति को पुत्र से ज्यादा मूल्यवान समझते थे। पुत्र के लिए तो संपत्ति की कोई जरूरत न थी, पर संपत्ति के लिए पुत्र की जरूरत थी। विमाता की तो इच्छा यही थी कि उसे वनवास देकर अपनी चहेती नैना के लिए रास्ता साफ कर दे, पर समरकान्त इस विषय में निश्चल रहे। मजा यह था कि नैना स्वयं भाई से प्रेम करती थी, और अमरकान्त के हृदय में अगर घर वालों के लिए कहीं कोमल स्थान था, तो वह नैना के लिए था। नैना की सूरत भाई से इतनी मिलती-जुलती थी, जैसे सगी बहन हो। इस अनुरूपता ने उसे अमरकान्त के और भी समीप कर दिया था। माता-पिता के इस दुर्व्यवहार को वह इस स्नेह के नशे में भुला दिया करता था। घर में कोई बालक न था और नैना के लिए किसी साथी का होना अनिवार्य था। माता चाहती थीं, नैना भाई से दूर-दूर रहे। वह अमरकान्त को इस योग्य न समझती थीं कि वह उनकी बेटी के साथ खेले। नैना की बाल-प्रकृति इस कूटनीति के झुकाए न झुकी। भाई-बहन में यह स्नेह यहां तक बढ़ा कि अंत में विमातृत्व ने मातृत्व को भी परास्त कर दिया। विमाता ने नैना को भी आंखों से गिरा दिया और पुत्र की कामना लिए संसार से विदा हो गईं।

अब नैना घर में अकेली रह गई। समरकान्त बाल-विवाह की बुराइयां समझते थे। अपना विवाह भी न कर सके। वृद्ध-विवाह की बुराइयां भी समझते थे। अमरकान्त का विवाह करना जरूरी हो गया। अब इस प्रस्ताव का विरोध कौन करता?

अमरकान्त की अवस्था उन्नीस साल से कम न थी, पर देह और बुद्धि को देखते हुए, अभी किशोरावस्था ही में था। देह का दुर्बल, बुद्धि का मंद। पौधे को कभी मुक्त प्रकाश न मिला, कैसे बढ़ता, कैसे फैलता? बढ़ने और फैलने के दिन कुसंगति और असंयम में निकल गए। दस साल पढ़ते हो गए थे और अभी ज्यों-त्यों आठवें में पहुंचा था। किंतु विवाह के लिए यह बातें नहीं देखी जातीं। देखा जाता है धन, विशेषकर उस बिरादरी में, जिसका उद्यम ही व्यवसाय हो। लखनऊ के एक धनी परिवार से बातचीत चल पड़ी। समरकान्त की तो लार टपक पड़ी। कन्या के घर में विधवा माता के सिवा निकट का कोई संबंधी न था, और धन की कहीं थाह नहीं। ऐसी कन्या बड़े भागों से मिलती है। उसकी माता ने बेटे की साध बेटी से पूरी की थी। त्याग की जगह भोग, शील की जगह तेज, कोमल की जगह तीव्र का संस्कार किया था। सिकुड़ने और सिमटने का उसे अभ्यास न था। और वह युवक-प्रकृति की युवती ब्याही गई युवती-प्रकृति के युवक से, जिसमें पुरुषार्थ का कोई गुण नहीं। अगर दोनों के कपड़े बदल दिए जाते, तो एक-दूसरे के स्थानापन्न हो जाते। दबा हुआ पुरुषार्थ ही स्त्रीत्व है।

विवाह हुए दो साल हो चुके थे, पर दोनों में कोई सामंजस्य न था। दोनों अपने-अपने मार्ग पर चले जाते थे। दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग। जैसे दो भिन्न जलवायु के जंतु एक पिंजरे में बंद कर दिए गए हों। हां, तभी अमरकान्त के जीवन में संयम और प्रयास की लगन पैदा हो गई थी। उसकी प्रकृति में जो ढीलापन, निर्जीवता और संकोच था वह कोमलता के रूप में बदलता जाता था। विद्याभ्यास में उसे अब रुचि हो गई थी। हालांकि लालाजी अब उसे घर में धंधे के लगाना चाहते थे—वह तार-वार पढ़ लेता था और

इससे अधिक योग्यता की उनकी समझ में जरूरत न थी—पर अमरकान्त उस पथिक की भांति, जिसने दिन विश्राम में काट दिया हो, अब अपने स्थान पर पहुंचने के लिए दूने वेग से कदम बढ़ाए चला जाता था।

# तीन

स्कूल से लौटकर अमरकान्त नियमानुसार अपनी छोटी कोठरी में जाकर चरखे पर बैठ गया। उस विशाल भवन में, जहां बारात ठहर सकती थी, उसने अपने लिए यही छोटी-सी कोठरी पसंद की थी। इधर कई महीने से उसने दो घंटे रोज सूत कातने की प्रतिज्ञा कर ली थी और पिता के विरोध करने पर भी उसे निभाए जाता था।

मकान था तो बहुत बड़ा, मगर निवासियों की रक्षा के लिए उतना उपयुक्त न था, जितना धन की रक्षा के लिए। नीचे के तल्ले में कई बड़े-बड़े कमरे थे, जो गोदाम के लिए बहुत अनुकूल थे। हवा और प्रकाश का कहीं रास्ता नहीं। जिस रास्ते से हवा और प्रकाश आ सकता है, उसी रास्ते से चोर भी तो आ सकता है। चोर की शंका उसकी एक-एक ईंट से टपकती थी। ऊपर के दोनों तल्ले हवादार और खुले हुए थे। भोजन नीचे बनता था। सोना-बैठना ऊपर होता था। सामने सड़क पर दो कमरे थे। एक में लालाजी बैठते थे, दूसरे में मुनीम। कमरों के आगे एक सायबान था, जिसमें गाय बंधती थी। लालाजी पक्के गोभक्त थे।

अमरकान्त सूत कातने में मग्न था कि उसकी छोटी बहन नैना आकर बोली—क्या हुआ भैया, फीस जमा हुई या नहीं? मेरे पास बीस रुपये हैं, यह ले लो। मैं कल और किसी से मांग लाऊंगी।

अमर ने चरखा चलाते हुए कहा—आज ही तो फीस जमा करने की तारीख थी। नाम कट गया। अब रुपये लेकर क्या करूंगा?

नैना रूप-रंग में अपने भाई से इतनी मिलती थी कि अमरकान्त उसकी साड़ी पहन लेता, तो यह बतलाना मुश्किल हो जाता कि कौन यह है कौन वह। हां, इतना अंतर अवश्य था कि भाई की दुर्बलता यहां सुकुमारता बनकर आकर्षक हो गई थी।

अमर ने दिल्लगी की थी, पर नैनाके चेहरे रंग उड़ गया। बोली—तुमने कहा नहीं, नाम न काटो, मैं दो-एक दिन में दे दूंगा?

अमर ने उसकी घबराहट का आनंद उठाते हुए कहा—कहने को तो मैंने सब कुछ कहा, लेकिन सुनता कौन था?

नैना ने रोष के भाव से कहा—मैं तो तुम्हें अपने कड़े दे रही थी, क्यों नहीं लिए?

अमर ने हंसकर पूछा—और जो दादा पूछते, तो क्या होता?

''दादा से बतलाती ही क्यों?''

अमर ने मुंह लंबा करके कहा—मैं चोरी से कोई काम नहीं करना चाहता, नैना! अब खुश हो जाओ, मैंने फीस जमा कर दी।

नैना को विश्वास न आया, बोली—फीस नहीं, वह जमा कर दी। तुम्हारे पास रुपये कहां थे?

"नहीं नैना, सच कहता हूं, जमा कर दी।"

"रुपये कहां थे?"

"एक दोस्त से ले लिए।"

"तुमने मांगे कैसे?"

"उसने आप-ही-आप दे दिए, मुझे मांगने न पड़े।"

"कोई बड़ा सज्जन होगा।"

"हां, है तो सज्जन, नैना ! जब फीस जमा होने लगी तो मैं मारे शर्म के बाहर चला गया। न जाने क्यों उस वक्त मुझे रोना आ गया। सोचता था, मैं ऐसा गया-बीता हूं कि मेरे पास चालीस रुपयें नहीं। वह मित्र जरा देर में मुझे बुलाने आया। मेरी आंखें लाल थीं। समझ गया। तुरंत जाकर फीस जमा कर दी। तुमने कहां पाए ये बीस रुपये?"

"यह न बताऊंगी।"

नैना ने भाग जाना चाहा। बारह बरस की यह लज्जाशील बालिका एक साथ ही सरल भी थी और चतुर भी। उस ठगना सहज न था। उससे अपनी चिताओं को छिपाना कठिन था।

अमर ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—जब तक बताओगी नहीं, मै जाने न दूंगा। किसी से कहूंगा नहीं, सच कहता हू।

नैना झेंपती हुई बोली—दादा से लिए।

अमरकान्त ने बेदिली के साथ कहा—तुमने उनसे नाहक मांगे, नैना ! जब उन्होंने मुझे इतनी निर्दयता से दुत्कार दिया, तो मैं नहीं चाहता कि उनसे एक पैसा भी मांगूं। मैंने तो समझा था, तुम्हारे पास कहीं पड़े होंगे, अगर मैं जानता कि तुम भी दादा से ही मांगोगी तो साफ कह देता, मुझे रुपये की जरूरत नहीं। दादा क्या बोले?

नैना सजल नेत्र होकर बोली—बोले तो नहीं। यही कहते रहे कि करना- ्ररना तो कुछ नहीं, रोज रुपये चाहिए, कभी फीस, कभी किताब, कभी चंदा। फिर मनीमजी से कहा, बीस रुपये दे दो। बीस रुपये फिर देना।

अमर ने उत्तेजित होकर कहा—तुम रुपये लौटा देना, मुझे नहीं चाहिए।

नैना सिसक-सिसककर रोने लगी। अमरकान्त ने रुपये जमीन पर फेंक दिए थे और वह सारी कोठरी में बिखरे पड़े थे। दोनों में से एक भी चुनने का नाम न लेता था। सहसा लाला समरकान्त आकर द्वार पर खड़े हो गए। नैना की सिसकियां बंद हो गई और अमरकान्त मानो तलवार की चोट खाने के लिए अपने मन को तैयार करने लगा। लाला जो दोहरे बदन के दीर्घकाय मनुष्य थे। सिर से पांव तक सेठ—वही खल्वा‍ट मस्तक, वही फूले हुए कपोल, वही निकली हुई तोंद। मुख पर संयम का तेज था, जिसमे स्वार्थ की गहरी झलक मिली हुई थी। कठोर स्वर में बोले—चरखा चला रहा है। इतनी देर में कितना सूत काता? होगा दो-चार रुपये का?

अमरकान्त ने गर्व से कहा—चरखा रुपये के लिए नहीं चलाया जाता।

"और किसलिए चलाया जाता है।"

"यह आत्म-शुद्धि का एक साधन है।"

समरकान्त के घाव पर जैसे नमक पड़ गया। बोले—यह आज नई बात मालूम हुई। तब तो तुम्हारे ऋषि होने में कोई संदेह नहीं रहा, मगर साधना के साथ कुछ घर-गृहस्थी का काम भी देखना होता है। दिन-भर स्कूल में रहो, वहां स लौटो तो चरखे पर बैठो, रात को तुम्हारी स्त्री-पाठशाला खुले, संध्या समय जलसे हों, तो घर का धंधा कौन करे? मैं बैल नहीं हूं। तुम्हीं लोगों के लिए इस जंजाल में फंसा हुआ हूं। अपने ऊपर लाद न ले जाऊंगा। तुम्हें कुछ तो मेरी मदद करनी चाहिए। बड़े नीतिवान बनते हो, क्या यह नीति है कि बूढ़ा बाप मरा करे और जवान बेटा उसकी बात भी न पूछे?

अमरकान्त ने उद्दंडता से कहा—मैं तो आपसे बार-बार कह चुका, आप मेरे लिए कुछ न करें। मुझे धन की जरूरत नहीं। आपकी भी वृद्धावस्था है। शांतचित्त होकर भगवत्-भजन कीजिए।

समरकान्त तीखे शब्दों में बोले—धन न रहेगा लाला, तो भीख मांगोगे। यों चैन से बैठकर चरखा न चलाओगे। यह तो न होगा, मेरी कुछ मदद करो, पुरुषार्थहीन मनुष्यों की तरह कहने लगे, मुझे धन की जरूरत नहीं। कौन है, जिसे धन की जरूरत नहीं? साधु-संन्यासी तक तो पैसों पर प्राण देते हैं। धन बड़े पुरुषार्थ से मिलता है। जिसमें पुरुषार्थ नही, वह क्या धन कमाएगा? बड़े-बड़े तो धन की उपेक्षा कर ही नहीं सकते, तुम किस खेत की मूली हो !

अमर ने उमी वितडा भाव से कहा—संसार धन के लिए प्राण दे, मुझे धन की इच्छा नहीं। एक मजूर भी धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुए जीवन का निर्वाह कर सकता है। कम-से-कम मैं अपने जीवन में इसकी परीक्षा करना चाहना हूं।

लालाजी को वाद-विवाद का अवकाश न था। हारकर बोले—अच्छा बाबा, कर लो खूब जी भरकर परीक्षा, लेकिन रोज-राज रुपये के लिए मेरा सिर न खाया करो। मैं अपनी गाढ़ी कमाई तुम्हारे व्यसन के लिए नहीं लुटाना चाहता।

लालाजी चले गए। नैना कहीं एकांत में जाकर खूब रोना चाहती थी, पर हिल न सकती थी, और अमरकान्त ऐसा विरक्त हो रहा था, मानो जीवन उसे भार हो रहा है।

उसी वक्त महरी ने ऊपर से आकर कहा—भैया, तुम्हें बहूजी बुला रही है।

अमरकान्त ने बिगड़कर कहा—जा कह दे, फुर्सत नहीं है। चली वहां से—बहूजी बुला रही हैं।

लेकिन जब महरी लौटने लगी, तो उसने अपने तीखेपन पर लज्जित होकर कहा—मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा है सिल्लो ! कह दो, अभी आता हूं। तुम्हारी रानीजी क्या कर रही है?

सिल्लो का पूरा नाम था कौशल्या। सीतला में पति, पुत्र और एक आंख जाती रही थी, तब से विक्षिप्त-सी हो गई थी। रोने की बात पर हंसती, हंसने की बात पर रोती। घर के और सभी प्राणी, यहां तक की नौकर-चाकर तक उसे डाटते रहते थे। केवल अमरकान्त उसे मनुष्य समझता था। कुछ स्वस्थ होकर बोली—बैठी कुछ लिख रही हैं। लालाजी चीखते थे इसी से तुम्हें बुला भेजा।

अमर जैसे गिर पड़ने के बाद गर्द झाड़ता हुआ, प्रसन्न मुख ऊपर चला। सुखदा अपने कमरे के द्वार पर खड़ी थी। बोली—तुम्हारे तो दर्शन ही दुर्लभ हो जाते हैं। स्कूल से आकर चरखा ले बैठते हो। क्यों नहीं मुझे घर भेज देते? जब मेरी जरूरत समझना, बुला भेजना। अबकी आए मुझे छः महीने हुए। मीयाद पूरी हो गई। अब तो रिहाई हो जानी चाहिए।

यह कहते हुए उसने एक तश्तरी में कुछ नमकीन और कुछ मिठाई लाकर मेज पर रख दी और अमर का हाथ पकड़ कमरे में ले जाकर कुरसी पर बैठा दिया।

यह कमरा और सब कमरों से बड़ा, हवादार और सुसज्जित था। दरी का फर्श था, उस पर करीने से कई गद्देदार और सादी कुरसियां लगी हुई थीं। बीच में एक छोटी-सी नक्काशीदार गोल मेज थी। शीशे की आल्मारियों में सजिल्द पुस्तकें सजी हुई थीं। आलों पर तरह-तरह के खिलौने रखे हुए थे। एक कोने में मेज पर हारमोनियम रखा हुआ था। दीवारों पर धुरंधर, रवि वर्मा और कई चित्रकारों की तस्वीरें शोभा दे रही थीं। दो-तीन पुराने चित्र भी थे। कमरे की सजावट से सुरुचि और संपन्नता का आभास होता था।

अमरकान्त का सुखदा से विवाह हुए दो साल हो चुके थे। सुखदा दो बार तो एक-एक महीना रहकर चली गई थी। अबकी उसे आए छः महीने हो गए थे; मगर उनका स्नेह अभी तक ऊपर-ही ऊपर था। गहराइयों में दोनों एक-दूसरे से अलग-अलग थे। सुखदा ने कभी अभाव न जाना था, जीवन की कठिनाइयां न सही थीं। वह जान-माने मार्ग को छोड़कर अनजान रास्ते पर पांव रखते डरती थी। भोग और विलास को वह जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु समझती थी और उसे हृदय से लगाए रहना चाहती थी। अमरकान्त को वह घर के कामकाज की ओर खींचने का प्रयास करती रहता थी। कभी समझाती थी, कभी रूठती थी, कभी बिगड़ती थी। सास के न रहने से वह एक प्रकार से घर की स्वामिनी हो गई थी। बाहर के स्वामी लाला समरकान्त थे, पर भीतर का संचालन सुखदा ही के हाथों में था। किंतु अमरकान्त उसकी बातों को हंसी में टाल देता। उस पर अपना प्रभाव डालने की कभी चेष्टा न करता। उसकी विलासप्रियता मानो खेतों में हौवे की भांति उसे डराती रहती थी। खेत में हरियाली थी, दाने थे, लेकिन वह हौवा निश्चल भाव से दोनों हाथ फैलाए खड़ा उसकी ओर घूरता रहता था। अपनी आशा और दुराशा, हार और जीत को वह सुखदा से बुराई की भांति छिपाता था। कभी-कभी उसे घर लौटने में देर हो जाती, तो सुखदा व्यंग्य करने से बाज न आती थी—हां, यहां कौन अपना बैठा हुआ है! बाहर के मजे घर में कहां! और यह तिरस्कार, किसान की कड़े-कड़े की भांति हौवे के भय को और भी उत्तेजित कर देती थी। वह उसकी खुशामद करता, अपने सिद्धांतों को लंबी-से-लंबी रस्सी देता, पर सुखदा इसे उसकी दुर्बलता समझकर ठुकरा देती थी। वह पति को दया-भाव से देखती थी, उसकी त्यागमयी प्रवृत्ति का अनादर न करती थी, पर इसका तथ्य न समझ सकती थी। वह अगर सहानुभूति की भिक्षा मांगता, उसके सहयोग के लिए हाथ फैलाता, तो शायद वह उसकी उपेक्षा न करती। अपनी मुट्ठी बंद करके, अपनी मिठाई आप खाकर, वह उसे रुला देता। वह भी अपनी मुट्ठी बंद कर लेती थी और अपनी मिठाई आप खाती थी। दोनों आपस में हंसते-बोलते थे, साहित्य और इतिहास की चर्चा करते थे, लेकिन जीवन के गूढ़ व्यापारों में पृथक् थे। दूध और पानी का मेल नहीं, रेत और पानी का मेल था, जो एक क्षण के लिए

मिलकर पृथक् हो जाता था।

अमर ने इस शिकायत की कोमलता या तो समझी नहीं, या समझकर उसका रस न ले सका। लालाजी ने जो आघात किया था, अभी उसकी आत्मा उस वेदना से तड़प रही थी। बोला—मैं भी यही उचित समझता हूं। अब मुझे पढ़ना छोड़कर जीविका की फिक्र करनी पड़ेगी।

सुखदा ने खीझकर कहा—हां, ज्यादा पढ़ लेने से सुनती हूं, आदमी पागल हो जाता है।

अमर ने लड़ने के लिए यहां भी आस्तीनें चढ़ा लीं—तुम यह आक्षेप व्यर्थ कर रही हो। पढ़ने से मैं जी नहीं चुराता; लेकिन इस दशा में पढ़ना नहीं हो सकता। आज स्कूल म मुझे जितना लज्जित होना पड़ा, वह मैं ही जानता हूं। अपनी आत्मा की हत्या करके पढ़ने से भूखा रहना कहीं अच्छा है।

सुखदा ने भी अपने शस्त्र संभाले। बोली—मैं तो समझती हूं कि घड़ी-दो घड़ी दूकान पर बैठकर भी आदमी बहुत कुछ पढ़ सकता है। चरखे और जलसों में जो समय देते हो, वह दूकान पर दो, तो कोई बुराई न होगी। फिर जब तुम किसी से कुछ कहोगे नहीं तो कोई तुम्हारे दिल की बातें कैसे समझ लेगा? मेरे पास इस वक्त भी एक हजार रुपये से कम नहीं। वह मेरे रुपये हैं, मैं उन्हें उड़ा सकती हूं। तुमने मुझसे चर्चा तक न की। मैं बुरी सही, तुम्हारी दुश्मन नहीं। आज लालाजी की बातें सुनकर मेरा रक्त खौल रहा था। चालीस रुपये के लिए इतना हंगामा ! तुम्हें जितनी जरूरत हो, मुझसे लो, मुझसे लेते तुम्हारे आत्म-सम्मान को चोट लगती हो, अम्मां से लो। वह अपने को धन्य समझेंगी। उन्हें इसका अरमान ही रह गया कि तुम उनसे कुछ मांगते। मैं तो कहती हूं, मुझे लेकर लखनऊ चले चलो और निश्चिंत होकर पढ़ो। अम्मां तुम्हें इंग्लैंड भेज देंगी। वहां से अच्छी डिग्री ला सकते हो।

सुखदा ने निष्कपट भाव से यह प्रस्ताव किया था। शायद पहली बार उसने पति से अपने दिल की बात कही, अमरकान्त को बुरा लगा। बोला—मुझे डिग्री इतनी प्यारी नहीं है कि उसके लिए ससुराल की रोटियां तोड़ूं, अगर मैं अपने परिश्रम से धनोपार्जन करके पढ़ सकूंगा, तो पढ़ूंगा, नहीं कोई धंधा देखूंगा। मैं अब तक व्यर्थ ही शिक्षा के मोह में पड़ा हुआ था। कॉलेज के बाहर भी अध्ययनशील आदमी बहुत-कुछ सीख सकता है। मैं अभिमान नहीं करता; लेकिन साहित्य और इतिहास की जितनी पुस्तकें इन दो-तीन सालों में मैंने पढ़ी हैं, शायद ही मेरे कॉलेज में किसी ने पढ़ी हों !

सुखदा ने इस अप्रिय विषय का अंत करने के लिए कहा—अच्छा, नाश्ता तो कर लो। आज तो तुम्हारी मीटिंग है। नौ बजे के पहले क्यों लौटने लगे? मैं तो टाकीज में जाऊंगी। अगर तुम ले चलो, तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं।

अमर ने रूखेपन से कहा—मुझे टाकीज जाने की फुरसत नहीं है। तुम जा सकती हो।

"फिल्मों से भी बहुत-कुछ लाभ उठाया जा सकता है।"

"तो मैं तुम्हें मना तो नहीं करता।"

"तुम क्यों नहीं चलते?"

"जो आदमी कुछ उपार्जन न करता हो, उसे सिनेमा देखने का अधिकार नहीं। मैं

उसी संपत्ति को अपना समझता हूं, जिसे मैंने परिश्रम से कमाया है।''

कई मिनट तक दोनों गुम बैठे रहे। जब अमर जलपान करके उठा, तो सुखदा ने सप्रेम आग्रह से कहा—कल से संध्या समय दूकान पर बैठा करो। कठिनाइयों पर विजय पाना पुरुषार्थी मनुष्यों का काम है अवश्य; मगर कठिनाइयों की सृष्टि करना, अनायास पांव में कांटे चुभाना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

अमरकान्त इस आदेश का आशय समझ गया, पर कुछ बोला नहीं। विलासिनी संकटों से कितना डरती है ! यह चाहती है, मैं भी गरीबों का खून चूसूं, उनका गला काटूं, यह मुझसे न होगा।

सुखदा उसके दृष्टिकोण का समर्थन करके कदाचित् उसे जीत सकती थी। उधर से हटाने की चेष्टा करके वह उसके संकल्प को और भी दृढ़ कर रही थी। अमरकान्त उससे सहानुभूति करके अपने अनुकूल बना सकता था, पर शुष्क त्याग का रूप दिखाकर उसे भयभीत कर रहा था।

## चार

अमरकान्त मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में प्रांत में सर्वप्रथम आया, पर अवस्था अधिक होने के कारण छात्रवृत्ति न पा सका। इससे उसे निराशा की जगह एक तरह का संतोष हुआ, क्योंकि वह अपने मनोविकारों को कोई टिकौना न देना चाहता था। उसने कई बड़ी-बड़ी कोठियों में पत्र-व्यवहार करने का काम उठा लिया। धनी पिता का पुत्र था, यह काम उसे आसानी से मिल गया। लाला समरकान्त की व्यवसाय-नीति से प्राय: उनकी बिरादरी वाले जलते थे और पिता-पुत्र के इस वैमनस्य का तमाशा देखना चाहते थे। लालाजी पहले तो बहुत बिगड़े। उनका पुत्र उन्हीं के सहवर्गियों की सेवा करे, यह उन्हें अपमानजनक जान पड़ा, पर अमर ने उन्हें सुझाया कि वह यह काम केवल व्यावसायिक ज्ञानोपार्जन के भाव से कर रहा है। लालाजी ने भी समझा, कुछ-न-कुछ सीख ही जाएगा। विरोध करना छोड़ दिया। सुखदा इतनी आसानी से मानने वाली न थी। एक दिन दोनों में इसी बात पर झड़प हो गई।

सुखदा ने कहा—तुम दस-दस, पांच-पांच रुपये के लिए दूसरों की खुशामद करते फिरते हो, तुम्हें शर्म भी नहीं आती !

अमर ने शांतिपूर्वक कहा—काम करके कुछ उपार्जन करना शर्म की बात नहीं : दूसरों का मुंह ताकना शर्म की बात है।

''तो ये धनियों के जितने लड़के हैं, सभी बेशर्म हैं?''

''हैं ही, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अब तो लालाजी मुझे खुशी से भी रुपये दें, तो न लूं। जब तक अपनी सामर्थ्य का ज्ञान न था, तब तक उन्हें कष्ट देता था। जब मालूम हो गया कि मैं अपने खर्च भर को कमा सकता हूं, तो किसी के सामने हाथ क्यों फैलाऊं?''

सुखदा ने निर्दयता के साथ कहा—तो जब तुम अपने पिता से कुछ लेना अपमान की बात समझते हो, तो मैं क्यों उनकी आश्रित बनकर रहूं? इसका आशय तो यही हो सकता है

कि मैं भी किसी पाठशाला में नौकरी करूं या सीने-पिरोने का धंधा उठाऊं?

अमरकान्त ने संकट में पड़कर कहा—तुम्हारे लिए इसकी जरूरत नहीं।

"क्यों! मैं खाती-पहनती हूं, गहने बनवाती हूं, पुस्तकें लेती हूं, पत्रिकाएं मंगवाती हूं, दूसरों ही की कमाई पर तो? इसका तो यह आशय भी हो सकता है कि मुझे तुम्हारी कमाई पर भी कोई अधिकार नहीं। मुझे खुद परिश्रम करके कमाना चाहिए।"

अमरकान्त को संकट से निकलने की एक युक्ति सूझ गई—अगर दादा, या तुम्हारी अम्मांजी तुमसे चिढ़ें और मैं भी ताने दूं, तब निस्संदेह तुम्हें खुद धन कमाने की जरूरत पड़ेगी।

"कोई मुंह से न कहे; पर मन में तो समझ सकता है। अब तक तो मैं समझती थी, तुम पर मेरा अधिकार है। तुमसे जितना चाहूंगी, लड़कर ले लूंगी, लेकिन अब मालूम हुआ, मेरा कोई अधिकार नहीं। तुम जब चाहो, मुझे जवाब दे सकते हो। यही बात है या कुछ और?"

अमरकान्त ने हारकर कहा—तो तुम मुझे क्या करने को कहती हो? दादा से हर महीने रुपये के लिए लड़ता रहूं?

सुखदा बोली—हां, मैं यही चाहती हूं। यह दूसरों की चाकरी छोड़ दो और घर का धंधा देखो। जितना समय उधर देते हो उतना ही समय घर के कामों में दो।

"मुझे इस लेन-देन, सूद-ब्याज से घृणा है।"

सुखदा मुस्कराकर बोली—यह तो तुम्हारा अच्छा तर्क है। मरीज को छोड़ दो, वह आप-ही-आप अच्छा हो जाएगा। इस तरह मरीज मर जाएगा, अच्छा न होगा। तुम दूकान पर जितनी देर बैठोगे, कम-से-कम उतनी देर तो यह घृणित व्यापार न होने दोगे। यह भी तो संभव है कि तुम्हारा अनुराग देखकर लालाजी सारा काम तुम्हीं को सौंप दें। तब तुम अपनी इच्छानुसार इसे चलाना। अगर अभी इतना भार नहीं लेना चाहते, तो न लो, लेकिन लालाजी की मनोवृत्ति पर तो कुछ-न-कुछ प्रभाव डाल ही सकते हो। वह वही कर रहे हैं जो अपने-अपने ढंग से सारा संसार कर रहा है। तुम विरक्त होकर उनके विचार और नीति को नहीं बदल सकते। और अगर तुम अपना ही राग अलापोगे, तो मैं कहे देती हूं, अपने घर चली जाऊंगी। तुम जिस तरह जीवन व्यतीत करना चाहते हो, वह मेरे मन की बात नहीं। तुम बचपन से ठुकराए गए हो और कष्ट सहने में अभ्यस्त हो। मेरे लिए यह नया अनुभव है।

अमरकान्त परास्त हो गया। इसके कई दिन बाद उसे कई जवाब सूझे, पर इस वक्त वह कुछ जवाब न दे सका। नहीं, उसे सुखदा की बातें न्याय-संगत मालूम हुईं। अभी तक उसकी स्वतंत्र कल्पना का आधार पिता की कृपणता थी। उसका अंकुर विमाता की निर्ममता ने जमाया था। तर्क या सिद्धांत पर उसका आधार न था, और वह दिन तो अभी दूर, बहुत दूर था, जब उसके चित्त की वृत्ति ही बदल जाय। उसने निश्चय किया—पत्र-व्यवहार का काम छोड़ दूंगा। दूकान पर बैठने में भी उसकी आपत्ति उतनी तीव्र न रही। हां, अपनी शिक्षा का खर्च वह पिता से लेने पर किसी तरह अपने मन को न दबा सका। इसके लिए उसे कोई दूसरा ही गुप्त मार्ग खोजना पड़ेगा। सुखदा से कुछ दिनों के लिए उसकी संधि-सी हो गई।

इसी बीच में एक और घटना हो गई, जिसने उसकी स्वतन्त्र कल्पना को भी शिथिल कर दिया।

सुखदा इधर साल भर से मैके न गई थी। विधवा माता बार-बार बुलाती थीं, लाला समरकान्त भी चाहते थे कि दो-एक महीने के लिए हो आए, पर सुखदा जाने का नाम न लेती थी। अमरकान्त की ओर से निश्चिंत न हो सकती थी। वह ऐसे घोड़े पर सवार थी, जिसे नित्य फेरना लाजिमी था, दस-पांच दिन बंधा रहा, तो फिर पुट्ठे पर हाथ ही न रखने देगा। इसीलिए वह अमरकान्त को छोड़कर न जाती थी।

अंत में माता ने स्वयं काशी आने का निश्चय किया। उनकी इच्छा अब काशीवास करने की भी हो गई। एक महीने तक अमरकान्त उनके स्वागत की तैयारियों में लगा रहा। गंगातट पर बड़ी मुश्किल से पसंद का घर मिला, जो न बहुत बड़ा था न बहुत छोटा। उसकी सफाई और सफेदी में कई दिन लगे। गृहस्थी की सैकड़ों ही चीजें जमा करनी थीं। उसके नाम सास ने एक हजार का बीमा भेज दिया था। उसने कतरब्योंत से उसके आधे ही में सारा प्रबंध कर दिया। पाई-पाई का हिसाब लिखा तैयार था। जब सास जी प्र‍याग का स्नान करती हुईं, माघ में काशी पहुंचीं, तो वहां का सुप्रबंध देखकर बहुत प्रसन्न हुईं।

अमरकान्त ने बचत के पांच सौ रुपये उनके सामने रख दिए।

रेणुकादेवी ने चकित होकर कहा--क्या पांच सौ ही में सब कुछ हो गया? मुझे तो विश्वास नहीं आता।

''जी नहीं, पांच सौ ही खर्च हुए।''

''यह तो तुमने इनाम देने का काम किया है। यह बचत के रुपये तुम्हारे हैं।''

अमर ने झेंपते हुए कहा--जब मुझे जरूरत होगी, आपसे मांग लूंगा। अभी तो कोई ऐसी जरूरत नहीं है।

रेणुकादेवी रूप और अवस्था से नहीं, विचार और व्यवहार से वृद्धा थीं। ज्ञान और व्रत में उनकी आस्था न थी, लेकिन लोकमत की अवहेलना न कर सकती थीं। विधवा का जीवन तप का जीवन है। लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता। रेणुका को विवश होकर धर्म का स्वांग भरना पड़ता था, किंतु जीवन बिना किसी आधार के तो नहीं रह सकता। भोग-विलास, सैर-तमाशे से आत्मा उसी भांति संतुष्ट नहीं होती, जैसे कोई चटनी और अचार खाकर अपनी क्षुधा को शांत नहीं कर सकता। जीवन किसी तथ्य पर ही टिक सकता है। रेणुका के जीवन में यह आधार पशु-प्रेम था। वह अपने साथ पशु-पक्षियों का एक चिड़ियाघर लाई थीं। तोते, मैने, बंदर, बिल्ली, गाएं, हिरन, मोर, कुत्ते आदि पाल रखे थे और उन्हीं के सुख-दुख में सम्मिलित होकर जीवन में सार्थकता का अनुभव करती थीं। हरएक का अलग-अलग नाम था, रहने का अलग-अलग स्थान था, खाने-पीने के अलग-अलग बर्तन थे। अन्य रईसों की भांति उनका पशु-प्रेम नुमायशी, फैश्नेबल या मनोरंजक न था। अपने पशु-पक्षियों में उनकी जान बसती थी। वह उनके बच्चों को उसी मातृत्व-भरे स्नेह से खेलाती थीं मानो अपने नाती-पोते हों। ये पशु भी उनकी बातें, उनके इशारे, कुछ इस तरह समझ जाते थे कि आश्चर्य होता था।

दूसरे दिन मां-बेटी में बातें होने लगीं।

रेणुका ने कहा—तुझे ससुराल इतनी प्यारी हो गई?

सुखदा लज्जित होकर बोली—क्या करूं अम्मां, ऐसी उलझन में पड़ी हूं कि कुछ सूझता ही नहीं। बाप-बेटे में बिल्कुल नहीं बनती। दादाजी चाहते हैं, वह घर का धंधा देखें। वह कहते हैं, मुझे इस व्यवसाय से घृणा है। मैं चली जाती, तो न जाने क्या दशा होती। मुझे बराबर खटका लगा रहता है कि वह देश-विदेश की राह न लें। तुमने मुझे कुएं में ढकेल दिया और क्या कहूं?

रेणुका चिंतित होकर बोलीं—मैंने तो अपनी समझ में घर-वर दोनों ही देखभाल कर विवाह किया था, मगर तेरी तकदीर को क्या करती? लड़के से तेरी अब पटती है, या वही हाल है?

सुखदा फिर लज्जित हो गई। उसके दोनों कपोल लाल हो गए। सिर झुकाकर बोली—उन्हें अपनी किताबों और सभाओं से छुट्टी नहीं मिलती।

''तेरी जैसी रूपवती एक सीधे-सादे छोकरे को भी न संभाल सकी? चाल-चलन का कैसा है?''

सुखदा जानती थी, अमरकान्त में इस तरह की कोई दुर्वासना नहीं है, पर इस समय वह इस बात को निश्चयात्मक रूप से न कह सकी। उसके नारीत्व पर धब्बा आता था। बोली—मैं किसी के दिल का हाल क्या जानूं, अम्मां। इतने दिन हो गए, एक दिन भी ऐसा न हुआ होगा कि कोई चीज लाकर देते। जैसे चाहूं रहूं, उनसे कोई मतलब ही नहीं।

रेणुका ने पूछा—तू कभी कुछ पूछती है, कुछ बनाकर खिलाती है, कभी उसके सिर में तेल डालती है?

सुखदा ने गर्व से कहा—जब वह मेरी बात नहीं पूछते, तो मुझे क्या गरज पडी है। वह बोलते हैं, ता मैं बोलती हूं। मुझसे किसी की गुलामी नहीं होगी।

रेणुका ने ताड़ना दी—बेटी, बुरा न मानना, मुझे बहुत-कुछ तेरा ही दोष दीखता है। तुझे अपने रूप का गर्व है। तू समझती है, वह तेरे रूप पर मुग्ध होकर तेरे पैरों पर सिर रगड़ेगा। ऐसे मर्द हाते हैं, यह मैं जानती हूं, पर वह प्रेम टिकाऊ नहीं होना। न जाने तू क्यों उसस तनी रहती है? मुझे तो वह बड़ा गरीब और बहुत ही विचारशील मालूम होता है। सच कहती हूं, मुझे उस पर दया आती है। बचपन में तो बेचारे की मां मर गई। विमाता मिली, वह डाइन। बाप हो गया शत्रु। घर को अपना घर न समझ सका। जो हृदय चिंता भार से इतना दबा हुआ हो, उसे पहले स्नेह और सेवा से पोला करने के बाद तभी प्रेम का बीज बोया जा सकता है।

सुखदा चिढ़कर बोली—वह चाहते हैं, मैं उनके साथ तपस्विनी बनकर रहूं। रूखा-सूखा खाऊं, मोटा-झोटा पहनूं और वह घर से अलग होकर मेहनत और मजूरी करें। मुझसे यह न होगा, चाहे सदैव के लिए उनसे नाता ही टूट जाय। वह अपने मन की करेंगे, मेरे आराम-तकलीफ की बिल्कुल परवाह न करेंगे, तो मैं भी उनका मुंह न जोहूंगी।

रेणुका ने तिरस्कार भरी चितवनों से देखा और बोली—और अगर आज लाला समरकान्त का दीवाला पिट जाय?

सुखदा ने इस संभावना की कभी कल्पना ही न की थी।

विमूढ़ होकर बोली—दीवाला क्यों पिटने लगा?

"ऐसा संभव तो है।"

सुखदा ने मां की संपत्ति का आश्रय न लिया। वह न कह सकी, 'तुम्हारे पास जो कुछ है, वह भी तो मेरा ही है।' आत्म-सम्मान ने उसे ऐसा न कहने दिया। मां के इस निर्दय प्रश्न पर झुंझलाकर बोली -जब मौत आती है तो आदमी मर जाता है। जान-बूझकर आग में नहीं कूदा जाता।

बातों-बातों में रेणुका को ज्ञात हो गया कि उनकी संतान का वारिस आने वाला है। कन्या के भविष्य के विषय में उन्हें बड़ी चिंता हो गई थी। इस संवाद ने उस चिंता का शमन कर दिया।

उन्होंने आनंद विह्वल होकर सुखदा को गले लगा लिया।

## पांच

अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था। जब उसकी माता का स्वर्गवास हुआ, तब वह बहुत छोटा था। उस दूर अतीत की कुछ धुंधली-सी और इसीलिए अत्यंत मनोहर और सुखद स्मृतियां शेष थीं। उसका वेदनामय बाल-रुदन सुनकर जैसे उसकी माता ने रेणुकादेवी के रूप में स्वर्ग से आकर उसे गोद में उठा लिया। बालक अपना रोना-धोना भूल गया और उस ममता-भरी गोद में मुंह छिपाकर दैवी-सुख लूटने लगा। अमरकान्त नहीं-नहीं करता रहता और माता उसे पकड़कर उसके आगे मेवे और मिठाइयां रख देतीं। उसे इंकार न करते बनता। वह देखता माता उसके लिए कभी कुछ पका रही हैं, कभी कुछ, और उसे खिलाकर कितना प्रसन्न होती है तो उसके हृदय में श्रद्धा की एक लहर-सी उठने लगती है। वह कॉलेज से लौटकर सीधे रेणका के पास जाता। वहां उसके लिए जलपान रखे हुए रेणुका उसकी बाट जोहती रहती। प्रात: का नाश्ता भी वह वहीं करता। इस मातृ-स्नेह से उसे तृप्ति ही न होती थी। छुट्टियों के दिन वह प्राय: दिन-भर रणुका ही के यहां रहता। उसके साथ कभी-कभी नैना भी चली जाती। वह खासकर पशु-पक्षियों की क्रीड़ा देखने जाती थी।

अमरकान्त के कोष में स्नेह आया, तो उसकी वह कृपणता जाती रही। सुखदा उसके समीप आने लगी। उसकी विलासिता से अब उसे उतना भय न रहा। रेणुका के साथ उसे लेकर वह सैर-तमाशे के लिए भी जाने लगा। रेणुका दसवें-पांचवें उसे दस-बीस रुपये जरूर दे देतीं। उसके सप्रेम आग्रह के सामने अमरकान्त की एक न चलती। उसके लिए नए-नए सूट बने, नए-नए जूते आए, मोटर साईकिल आई, सजावट के सामान आए। पांच ही छ: महीने में वह विलासिता का द्रोही, वह सरल जीवन का उपासक, अच्छा-खास रईसजादा बन बैठा, रईसजादो के भावों और विचारों से भरा हुआ, उतना ही निर्द्वंद्व और स्वार्थी। उसकी जेब में दस-बीस रुपये हमेशा पड़े रहते। खुद खाता, मित्रों को खिलाता और एक की जगह दो खर्च करता। वह अध्ययनशीलता जाती रही। ताश और चौसर में ज्यादा आनंद आता। हां,

जलसों में उसे अब और अधिक उत्साह हो गया। वहां उसे कीर्ति-लाभ का अवसर मिलता था। बोलने की शक्ति उसमें पहले भी बुरी न थी। अभ्यास से और भी परिमार्जित हो गई। दैनिक समाचार और सामयिक साहित्य से भी उसे रुचि थी, विशेषकर इसलिए कि रेणुका रोज-रोज की खबरें उससे पढ़वाकर सुनती थीं।

दैनिक समाचार-पत्रों के पढ़ने से अमरकान्त के राजनैतिक ज्ञान का विकास होने लगा। देशवासियों के साथ शासक मंडल की कोई अनीति देखकर उसका खून खौल उठता था। जो संस्थाएं राष्ट्रीय उत्थान के लिए उद्योग कर रही थीं, उनसे उसे सहानुभूति हो गई। वह अपने नगर की कांग्रेस-कमेटी का मेम्बर बन गया और उसके कार्यक्रम में भाग लेने लगा।

एक दिन कॉलेज के कुछ छात्र देहातों की आर्थिक-दशा की जांच-पड़ताल करने निकले। सलीम और अमर भी चले। अध्यापक डॉ॰ शान्तिकुमार उनके नेता बनाए गए। कई गांवों की पड़ताल करने के बाद मंडली संध्या समय लौटने लगी, तो अमर ने कहा—मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है।

सलीम बोला—तालाब के किनारे वह जो चार-पांच घर मल्लाहों के थे, उनमें तो लोहे के दो-एक बर्तन के सिवा कुछ था ही नहीं। मैं समझता था, देहातियों के पास अनाज की बखारें भरी होंगी; लेकिन यहां तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे।

शान्तिकुमार बोले—सभी किसान इतने गरीब नहीं होते। बड़े किसानों के घर में बखारें भी होती हैं; लेकिन ऐसे किसान गांव में दो-चार से ज्यादा नहीं होते।

अमरकान्त ने विरोध किया—मुझे तो इन गांवों में एक भी ऐसा किसान न मिला। और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चूसते हैं। मैं चाहता हूं; उन लोगों को इन बेचारों पर दया भी नहीं आती।

शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा—दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा हुई और यह दोनों हल्के पड़े। अब तो न्याय-परीक्षा का युग है।

शान्तिकुमार की अवस्था कोई पैंतीस की थी। गोरे-चिट्टे, रूपवान आदमी थे। वेश-भूषा अंग्रेजी थी, और पहली नजर में अंग्रेज ही मालूम होते थे; क्योंकि उनकी आंखें नीली थीं, और बाल भी भूरे थे। आक्सफोर्ड से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त कर लाए थे। विवाह के कट्टर विरोधी, स्वतंत्रता-प्रेम के कट्टर भक्त, बहुत ही प्रसन्न मुख, सहृदय, सेवाशील व्यक्ति थे। मजाक का कोई अवसर पाकर न चूकते थे। छात्रों से मित्र भाव रखते थे। राजनैतिक आंदोलनों में खूब भाग लेते; पर गुप्त रूप से। खुले मैदान में न आते। हां, सामाजिक क्षेत्र में खूब गरजते थे।

अमरकान्त ने करुण स्वर में कहा—मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं भूलती, जो छः महीने से बीमार पड़ा था और एक पैसे की भी दवा न ली थी। इस दशा में जमींदार ने लगान की डिगरी करा ली और जो कुछ घर में था, नीलाम करा लिया। बैल तक बिकवा लिए। ऐसे अन्यायी संसार की नियंता कोई चेतन शक्ति है, मुझे तो इसमें संदेह हो रहा है। तुमने देखा नहीं सलीम, गरीब के बदन पर चिथड़े तक न थे। उसकी वृद्धा माता कितना फूट-फूटकर रोती थीं।

सलीम की आंखों में आंसू थे। बोला—तुमने रुपये दिए, तो बुढ़िया कैसे तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ी। मैं तो अलग मुंह फेरकर रो रहा था।

मंडली यों ही बातचीत करती चली जाती थी। अब पक्की सड़क मिल गई थी। दोनों तरफ ऊंचे वृक्षों ने मार्ग को अंधेरा कर दिया था। सड़क के दाहिने-बाएं-नीचे ऊख, अरहर आदि के खेत खड़े थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर दो-एक मजूर या राहगीर मिल जाते थे।

सहसा एक वृक्ष के नीचे दस-बारह स्त्री-पुरुष सशंकित भाव से दुबके हुए दिखाई दिए। सब-के-सब सामने वाले अरहर के खेत की ओर ताकते और आपस में कनफुसकियां कर रहे थे। अरहर के खेत की मेड़ पर दो गोरे सैनिक हाथ में बेंत लिए अकड़े खड़े थे। छात्र-मंडली को कौतूहल हुआ। सलीम ने एक आदमी से पूछा—क्या माजरा है, तुम लोग क्यों जमा हो?

अचानक अरहर के खेत की ओर से किसी औरत का चीत्कार सुनाई पड़ा। छात्र वर्ग अपने डंडे संभालकर खेत की तरफ लपका। परिस्थिति उनकी समझ में आ गई थी।

एक गोरे सैनिक ने आंखें निकालकर छड़ी दिखाते हुए कहा—भाग जाओ; नहीं हम ठोकर मारेगा।

इतना उसके मुंह से निकलना था कि डॉ० शान्तिकुमार ने लपककर उसके मुंह पर घूंसा मारा। सैनिक के मुंह पर घूंसा पड़ा, तिलमिला उठा; पर था घूंसेबाजी में मंजा हुआ। घूंसे का जवाब जो दिया, तो डॉक्टर साहब गिर पड़े। उसी वक्त सलीम ने अपनी हाकी-स्टिक उस गोरे के सिर पर जमाई। वह चौंधिया गया, जमीन पर गिर पड़ा और जैसे मूर्छित हो गया। दूसरे सैनिक को अमर और एक दूसरे छात्र ने पीटना शुरू कर दिया था; पर वह इन दोनों युवकों पर भारी था। सलीम इधर से फुर्सत पाकर उस पर लपका। एक के मुकाबले में तीन हो गए। सलीम की स्टिक ने इस सैनिक को भी ज़मीन पर सुला दिया। इतने में अरहर के पौधों को चीरता हुआ तीसरा गोरा आ पहुंचा। डॉक्टर शान्तिकुमार संभलकर उस पर लपके ही थे कि उसने रिवाल्वर निकलकर दाग दिया। डॉक्टर साहब जमीन पर गिर पड़े। अब मामला नाजुक था। तीनों छात्र डॉक्टर साहब को संभालने लगे। यह भय भी लगा हुआ था कि वह दूसरी गोली न चला दे। सबके प्राण नहों में समाए हुए थे।

मजूर लोग अभी तक तो तमाशा देख रहे थे। मगर डॉक्टर साहब को गिरते देख उनके खून में भी जोश आया। भय की भांति साहस भी संक्रामक होता है। सब-के-सब अपनी लकड़ियां संभालकर गोरे पर दौड़े। गोरे ने रिवाल्वर दागी; पर निशाना खाली गया। इसके पहले कि वह तीसरी गोली चलाए, उस पर डंडों की वर्षा होने लगी और एक क्षण में वह भी आहत होकर गिर पड़ा।

खैरियत यह हुई कि जख्म डॉक्टर साहब की जांघ में था। सभी छात्र 'तत्काल धर्म' जानते थे। घाव का खून बंद किया और पट्टी बांध दी।

उसी वक्त एक युवती खेत से निकली और मुंह छिपाए, लंगड़ाती, कपड़े संभालती, एक तरफ चल पड़ी। अबला लज्जावश, किसी से कुछ कहे बिना, सबकी नजरों से दूर निकल जाना चाहती थी। उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था? दुष्टों को मार डालो, इससे तुम्हारी न्याय-बुद्धि को संतोष होगा, उसकी तो जो

चीज गई, वह गई। वह अपना दुख क्यों रोए? क्यों फरियाद करे? सारे संसार की सहानुभूति, उसके किस काम की है!

सलीम एक क्षण तक युवती की ओर ताकता रहा। फिर स्टिक संभालकर उन तीनों को पीटने लगा! ऐसा जान पड़ता था कि उन्मत्त हो गया है।

डॉक्टर साहब ने पुकारा—क्या करते हो सलीम! इससे क्या फायदा? यह इंसानियत के खिलाफ है कि गिरे हुओं पर हाथ उठाया जाय।

सलीम ने दम लेकर कहा—मैं एक शैतान को भी जिंदा न छोड़ूंगा। मुझे फांसी हो जाय, कोई गम नहीं। ऐसा सबक देना चाहिए कि फिर किसी बदमाश को इसकी जुर्रत न हो।

फिर मजूरों की तरफ देखकर बोला—तुम इतने आदमी खड़े ताकते रहे और तुमसे कुछ न हो सका। तुममें इतनी गैरत भी नहीं? अपनी बहू-बेटियों की आबरू की हिफाजत भी नहीं कर सकते? समझते होंगे कौन हमारी बहू-बेटी हैं। इस देश में जितनी बेटियां हैं, जितनी बहुएं हैं, सब तुम्हारी बहुएं हैं, जितनी मांएं हैं, सब तुम्हारी मांएं हैं। तुम्हारी आंखों के सामने यह अनर्थ हुआ और तुम कायरों की तरह खड़े ताकते रहे! क्यों सब-के-सब जाकर मर नहीं गए!

सहसा उसे खयाल आ गया कि मैं आवेश में आकर इन गरीबों को फटकार बताने की अनधिकार चेष्टा कर रहा हूं। वह चुप हो गया और कुछ लज्जित भी हुआ।

समीप के एक गांव से बैलगाड़ी मंगाई गई। शान्तिकुमार को लोगों ने उठाकर उस पर लेटा दिया और गाड़ी चलने को हुई कि डॉक्टर साहब ने चौंककर पूछा—और उन तीनों आदमियों को क्या यहीं छोड़ जाओगे?

सलीम ने मस्तक सिकोड़कर कहा—हम उनको लादकर ले जाने के जिम्मेदार नहीं हैं। मेरा तो जी चाहता है, उन्हें खोदकर दफन कर दूं।

आखिर डॉक्टर के बहुत समझाने के बाद सलीम राजी हुआ। तीनों गोरे भी गाड़ी पर लादे गए और गाड़ी चली। सब-के-सब मजूर अपराधियों की भांति सिर झुकाए कुछ दूर तक गाड़ी के पीछे-पीछे चले। डॉक्टर ने उनको बहुत धन्यवाद देकर विदा किया। नौ बजते-बजते समीप का रेलवे स्टेशन मिला। इन लोगों ने गोरों को तो वहीं पुलिस के चार्ज में छोड़ दिया और आप डॉक्टर साहब के साथ गाड़ी पर बैठकर घर चले।

सलीम और अमर तो जरा देर में हंसने-बोलने लगे। इस संग्राम की चर्चा करते उनकी जबान न थकती थी। स्टेशन-मास्टर से कहा, गाड़ी में मुसाफिरों से कहा, रास्ते में जो मिला उससे कहा। सलीम तो अपने साहस और शौर्य की खूब डींगें मारता था, मानो कोई किला जीत आया है और जनता को चाहिए कि उसे मुकुट पहनाए, उसकी गाड़ी खींचे, उसका जुलूस निकाले, किंतु अमरकान्त चुपचाप डॉक्टर साहब के पास बैठा हुआ था। आज के अनुभव ने उसके हृदय पर ऐसी चोट लगाई थी, जो कभी न भरेगी। वह मन-ही-मन इस घटना की व्याख्या कर रहा था। इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई? यह गोरे सिपाही इंगलैंड के निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका इतना साहस कैसे हुआ? इसीलिए कि भारत पराधीन है। यह लोग जानते हैं कि यहां के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है। वह जो अनर्थ चाहें, करें। कोई चूं नहीं कर सकता। यह आतंक दूर करना होगा। इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा।

इस जंजीर को तोड़ने के लिए वह तरह-तरह के मंसूबे बांधने लगा, जिनमें यौवन का उन्माद था, लड़कपन की उग्रता थी और थी कच्ची बुद्धि की बहक।

## छः

डॉ॰ शान्तिकुमार एक महीने तक अस्पताल में रहकर अच्छे हो गए। तीनों सैनिकों पर क्या बीती, नहीं कहा जा सकता, पर अच्छे होते ही पहला काम जो डॉक्टर साहब ने किया, वह तांगे पर बैठकर छावनी में जाना और उन सैनिकों की कुशल पूछना था। मालूम हुआ कि वह तीनों भी कई-कई दिन अस्पताल में रहे, फिर तबदील कर दिए गए। रेजिमेंट के कप्तान ने डॉक्टर साहब से अपने आदमियों के अपराध की क्षमा मांगी और विश्वास दिलाया कि भविष्य में सैनिकों पर ज्यादा कड़ी निगाह रखी जाएगी। डॉक्टर साहब की इस बीमारी में अमरकान्त ने तन-मन से उनकी सेवा की, केवल भोजन करने और रेणुका से मिलने के लिए घर जाता, बाकी सारा दिन और सारी रात उन्हीं की सेवा में व्यतीत करता। रेणुका भी दो-तीन बार डॉक्टर साहब को देखने गई।

इधर से फुरसत पाते ही अमरकान्त कांग्रेस के कामों में ज्यादा उत्साह से शरीक होने लगा। चंदा देने में तो बस संस्था में कोई उसकी बराबरी न कर सकता था।

एक बार एक आम जलसे में वह ऐसी उद्दंडता से बोला कि पुलिस के सुपरिंटेंडेंट ने लाला समरकान्त को बुलाकर लड़के को संभालने की चेतावनी दे डाली। लालाजी ने वहां से लौटकर खुद तो अमरकान्त से कुछ न कहा, सुखदा और रेणुका दोनों से जड़ दिया। अमरकान्त पर अब किसका शासन है, वह खुद समझते थे। इधर बेटे से वह स्नेह करने लगे थे। हर महीने पढ़ाई का खर्च देना पड़ता था, तब उसका स्कूल जाना उन्हें जहर लगता था, काम में लगाना चाहते थे और उसके काम न करने पर बिगड़ते थे। अब पढ़ाई का कुछ खर्च न देना पड़ता था। इसलिए कुछ न बोलते थे, बल्कि कभी-कभी संदूक की कुंजी न मिलने या उठकर संदूक खोलने के कष्ट से बचने के लिए, बेटे से रुपये उधार ले लिया करते। अमरकान्त न मांगता, न वह देते।

सुखदा का प्रसवकाल समीप आता जाता था। उसका मुख पीला पड़ गया था। भोजन बहुत कम करती थी और हंसती-बोलती भी बहुत कम थी। वह तरह-तरह के दु:स्वप्न देखती रहती थी, इससे चित्त और भी सशंकित रहता था। रेणुका ने जनन-संबंधी कई पुस्तकें उसको मंगा दी थीं। इन्हें पढ़कर वह और भी चिंतित रहती थी। शिशु की कल्पना से चित्त में एक गर्वमय उल्लास होता था; पर इसके साथ ही हृदय में कंपन भी होता था न जाने क्या होगा?

उस दिन संध्या समय अमरकान्त उसके पास आया, तो वह जली बैठी थी। तीक्ष्ण नेत्रों से देखकर बोली—तुम मुझे थोड़ी-सी संखिया क्यों नहीं दे देते? तुम्हारा गला भी छूट जाय, मैं भी जंजाल से मुक्त हो जाऊं।

अमर इन दिनों आदर्श पति बना हुआ था। रूप-ज्योति से चमकती हुई सुखदा आंखों

को उन्मत्त करती थी; पर मातृत्व के भार से लदी हुई यह पीले मुख वाली रोगिणी उसके हृदय को ज्योति से भर देती थी। वह उसके पास बैठा हुआ उसके रूखे केशों और सूखे हाथों से खेला करता। उसे इस दशा में लाने का अपराधी वह है, इसलिए इस भार को सह्य बनाने के लिए वह सुखदा का मुंह जोहता रहता था। सुखदा उससे कुछ फरमाइश करे, यही इन दिनों उसकी सबसे बड़ी कामना थी। वह एक बार स्वर्ग के तारे तोड़ लाने पर भी उतारू हो जाता। बराबर उसे अच्छी-अच्छी किताबें सुनाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता था। शिशु की कल्पना से उसे जितना आनंद होता था; उससे कहीं अधिक सुखदा के विषय में चिंता थी—न जाने क्या होगा? घबराकर भारी स्वर में बोला—ऐसा क्यों कहती हो सुखदा, मुझसे गलती हुई हो तो, बता दो?

सुखदा लेटी हुई थी। तकिए के सहारे टेक लगाकर बोली—तुम आम जलसों में कड़ी-कड़ी स्पीचें देते फिरते हो, इसका इसके सिवा और क्या मतलब है कि तुम पकड़े जाओ और अपने साथ घर को भी ले डूबो। दादा से पुलिस के किसी बड़े अफसर ने कहा है। तुम उनकी कुछ मदद तो करते नहीं, उल्टे और उनके किए-कराए को धूल में मिलाने को तुले बैठे हो। मैं तो आप ही अपनी जान से मर रही हूं, उस पर तुम्हारी यह चाल और भी मारे डालती है। महीने भर डॉक्टर साहब के पीछे हलकान हुए। उधर से छुट्टी मिली तो यह पचड़ा ले बैठे। क्या तुमसे शांतिपूर्वक नहीं बैठा जाता? तुम अपने मालिक नहीं हो, कि जिस राह चाहो, जाओ। तुम्हारे पांव में बेड़ियां हैं। क्या अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं?

अमरकान्त ने अपनी सफाई दी—मैंने तो कोई ऐसी स्पीच नहीं दी, जो कड़ी कही जा सके।

''तो दादा झूठ कहते थे?''

''इसका तो यह अर्थ है कि मैं अपना मुंह सी लूं?''

''हां, तुम्हें अपना मुंह सीना पड़ेगा।''

दोनों एक क्षण भूमि और आकाश की ओर ताकते रहे। तब अमरकान्त ने परास्त होकर कहा—अच्छी बात है। आज से अपना मुंह सी लूंगा। फिर तुम्हारे सामने ऐसी शिकायत आए, तो मेरे कान पकड़ना।

सुखदा नरम होकर बोली—तुम नाराज होकर यह प्रण नहीं कर रहे हो? मैं तुम्हारी अप्रसन्नता से थर-थर कांपती हूं। मैं भी जानती हूं कि हम लोग पराधीन हैं। पराधीनता मुझे भी उतनी ही अखरती है; जितनी तुम्हें। हमारे पांवों में तो दोहरी बेड़ियां हैं—समाज की अलग, सरकार की अलग; लेकिन आगे-पीछे भी तो देखना होता है। देश के साथ हमारा जो धर्म है, वह और प्रबल रूप में पिता के साथ है, और उससे भी प्रबल रूप में अपनी संतान के साथ। पिता को दुखी और संतान को निस्सहाय छोड़कर देश धर्म का पालन ऐसा ही है जैसे कोई अपने घर में आग लगाकर खुले आकाश में रहे। जिस शिशु को मैं अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाल रही हूं, उसे मैं चाहती हूं, तुम भी अपना सर्वस्व समझो। तुम्हारे सारे स्नेह और निष्ठा का मैं एकमात्र उसी को अधिकारी देखना चाहती हूं।

अमरकान्त सिर झुकाए यह उपदेश सुनता रहा। उसकी आत्मा लज्जित थी और उसे धिक्कार रही थी। उसने सुखदा और शिशु दोनों ही के साथ अन्याय किया है। शिशु का

कल्पना-चित्र उसी आंखों में खिंच गया। वह नवनीत-सा कोमल शिशु उसकी गोद में खेल रहा था। उसकी संपूर्ण चेतना इसी कल्पना में मग्न हो गई। दीवार पर शिशु कृष्ण का एक सुंदर चित्र लटक रहा था। उस चित्र में आज उसे जितना मार्मिक आनंद हुआ, उतना और कभी न हुआ था। उसकी आंखें सजल हो गई।

सुखदा ने उसे एक पान का बीड़ा देते हुए कहा—अम्मां कहती हैं, बच्चे को लेकर मैं लखनऊ चली जाऊंगी। मैंने कहा—अम्मां, तुम्हें बुरा लगे या भला, मैं अपना बालक न दूंगी।

अमरकान्त ने उत्सुक होकर पूछा—तो बिगड़ी होंगी?

''नहीं जी, बिगड़ने की क्या बात थी? हां, उन्हें कुछ बुरा जरूर लगा होगा, लेकिन मैं दिल्लगी में भी अपने सर्वस्व को नहीं छोड़ सकती।''

''दादा ने पुलिस कर्मचारी की बात अम्मां से भी कही होगी?''

''हां, मैं जानती हूं कही है। जाओ, आज अम्मां तुम्हारी कैसी खबर लेती हैं।''

''मैं आज जाऊंगा ही नहीं।''

''चलो, मैं तुम्हारी वकालत कर दूंगी।''

''मुआफ कीजिए। वहां मुझे और भी लज्जित करोगी !''

''नहीं, सच कहती हूं। अच्छा बताओ, बालक किसको पड़ेगा, मुझे या तुम्हें। मैं कहती हूं तुम्हें पड़ेगा।''

''मैं चाहता हूं तुम्हें पड़े।''

''यह क्यों? मैं तो चाहती हूं तुम्हें पड़े।''

''तुम्हें पड़ेगा, तो मैं उसे और ज्यादा चाहूंगा।''

''अच्छा, उस स्त्री की कुछ खबर मिली, जिसे गोरों ने सताया था?''

''नहीं, फिर तो कोई खबर न मिली।''

''एक दिन जाकर सब कोई उसका पता क्यों नहीं लगाते, या स्पीच देकर ही अपने कर्त्तव्य से मुक्त हो गए?''

अमरकान्त ने झेंपते हुए कहा—कल जाऊंगा।

''ऐसी होशियारी से पता लगाओ कि किसी को कानों-कान खबर न हो, अगर घर वालों ने उसका बहिष्कार कर दिया हो, तो उसे लाओ। अम्मां को उसे अपने साथ रखने में कोई आपत्ति न होगी, और यदि होगी तो मैं अपने पास रख लूंगी।''

अमरकान्त ने श्रद्धा-पूर्ण नेत्रों से सुखदा को देखा। इसके हृदय में कितनी दया, कितना सेवा-भाव, कितनी निर्भीकता है। इसका आज उसे पहली बार ज्ञान हुआ।

उसने पूछा—तुम्हें उससे जरा भी घृणा न होगी?

सुखदा ने सकुचाते हुए कहा—अगर मैं कहूं, न होगी, तो असत्य होगा। होगी अवश्य, पर संस्कारों को मिटाना होगा। उसने कोई अपराध नहीं किया, फिर सजा क्यों दी जाय?

अमरकान्त ने देखा, सुखदा निर्मल नारीत्व की ज्योति में नहा उठी है। उसका देवीत्व जैसे प्रस्फुटित होकर उससे आलिंगन कर रहा है।

# सात

अमरकान्त ने आम जलसों में बोलना तो दूर रहा, शरीक होना भी छोड़ दिया; पर उसकी आत्मा इस बंधन से छटपटाती रहती थी और वह कभी- कभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में अपने मनोद्‌गारों को प्रकट करके संतोष लाभ करता था। अब वह कभी-कभी दूकान पर भी आ बैठता। विशेषकर छुट्टियों के दिन तो वह अधिकतर दूकान पर रहता था। उसे अनुभव हो रहा था कि मानवी प्रकृति का बहुत-कुछ ज्ञान दूकान पर बैठकर प्राप्त किया जा सकता है। सुखदा और रेणुका दोनों के स्नेह और प्रेम ने उसे जकड़ लिया था। हृदय की जलन जो पहले घर वालों से, और उसके फलस्वरूप, समाज से विद्रोह करने मे अपने को सार्थक समझती थी, अब शांत हो गई थी। रोता हुआ बालक मिठाई पाकर रोना भूल गया।

एक दिन अमरकान्त दूकान पर बैठा था कि एक असामी ने आकर पूछा-- भैया कहां हैं बाबूजी, बड़ा जरूरी काम था?

अमर ने देखा—अधेड़, बलिष्ठ, काला, कठोर आकृति का मनुष्य है। नाम है काले खां। रुखाई से बोला—वह कहीं गए हुए हैं। क्या काम है?

''बड़ा जरूरी काम था। कुछ कह नहीं गए, कब तक आएंगे?''

अमर को शराब की ऐसी दुर्गंध आई कि उसने नाक बंद कर ली और मुंह फेरकर बोला—क्या तुम शराब पीते हो?

काले खां ने हंसकर कहा—शराब किसे मयस्सर होती है लाला, रूखी रोटियां तो मिलती नहीं? आज एक नातेदारी में गया था, उन लोगों ने पिला दी।

वह और समीप आ गया और अमर के कान के पास मुंह लगाकर बोला--एक रकम दिखाने लाया था। कोई दस तोले की होगी। बाजार में ढाई सौ से कम नहीं है, लेकिन मैं तुम्हारा पुराना असामी हूं। जो कुछ दे दोगे, ले लूंगा।

उसने कमर से एक जोड़ा सोने के कड़े निकाले और अमर के सामने रख दिए। अमर ने कडो को बिना उठाए हुए पूछा—यह कड़े तुमने कहां पाए?

काले खां ने बेहयाई से मुस्कराकर कहा—यह न पूछो राजा, अल्लाह देने वाला है।

अमरकान्त ने घृणा का भाव दिखाकर कहा---कहीं से चुरा लाए होंगे?

काले खां फिर हंसा--चोरी किसे कहते हैं राजा, यह तो अपनी खेती है। अल्लाह ने सबके पीछे हीला लगा दिया है। कोई नौकरी करके लाता है, कोई मजूरी करता है, कोई रोजगार करता है, देता सबको वही खुदा है। तो फिर निकलो रुपये, मुझे देर हो रही है। इन लाल पगड़ी वालों की बड़ी खातिर करनी पड़ती है भैया, नहीं एक दिन काम न चले।

अमरकान्त को यह व्यापार इतना जघन्य जान पड़ा कि जी में आया काले खां को दुत्कार दे। लाला समरकान्त ऐसे समाज के शत्रुओं से व्यवहार रखते हैं, यह खयाल करके उसके रोएं खड़े हो गए। उसे उस दूकान से, उस मकान से, उस वातावरण से, यहां तक कि स्वयं अपने आपसे घृणा होने लगी। बोला—मुझे इस चीज की जरूरत नहीं है। इसे ले जाओ, नहीं मैं पुलिस में इत्तिला कर दूंगा। फिर इस दूकान पर ऐसी चीज लेकर न आना, कहे देता हूं।

काले खां जरा भी विचलित न हुआ, बोला—यह तो तुम बिल्कुल नई बात कहते हो भैया! लाला इस नीति पर चलते, तो आज महाजन न होते। हजारों रुपये की चीज तो मैं ही दे गया हूंगा। अंगनू, महाजन, भिखारी, हींगन, सभी से लाला का व्यवहार है। कोई चीज हाथ लगी और आंख बंद करके यहां चले आए, दाम लिया और घर की राह ली। इसी दूकान से बाल-बच्चों का पेट चलता है। कांटा निकलकर तौल लो। दस तोले से कुछ ऊपर ही निकलेगा, मगर यहां पुरानी जजमानी है, लाओ डेढ़ सौ ही दो, अब कहां दौड़ते फिरें?

अमर ने दृढ़ता से कहा—मैंने कह दिया मुझे इसकी जरूरत नहीं।

"पछताओगे लाला, खड़े-खड़े ढ़ाई सौ में बेच लोगे।"

"क्यों सिर खा रहे हो, मैं इसे नहीं लेना चाहता?"

"अच्छा लाओ, सौ ही रुपये दे दो। अल्लाह जानता है, बहुत बल खाना पड़ रहा है, पर एक बार घाटा ही सही।"

"तुम व्यर्थ मुझे दिक रहे हो। मैं चोरी का माल नहीं लूंगा, चाहे लाख की चीज धेले में मिले। तुम्हें चोरी करते शर्म भी नहीं आती! ईश्वर ने हाथ-पांव दिए हैं, खासे मोटे-ताजे आदमी हो, मजदूरी क्यों नहीं करते? दूसरों का माल उड़ाकर अपनी दुनिया और आकबत दोनों खराब कर रहे हो!"

काले खां ने ऐसा मुंह बनाया, मानो ऐसी बकवास बहुत सुन चुका है और बोला—तो तुम्हें नहीं लेना है?

"नहीं!"

"पचास देते हो?"

"एक कौड़ी नहीं।"

काले खां ने कड़े उठाकर कमर में रख लिए और दूकान के नीचे उतर गया। पर एक क्षण में फिर लौटकर बोला—अच्छा तीस रुपये ही दे दो। अल्लाह जानता है, पगड़ी वाले आधा ले लेंगे।

अमरकान्त ने उसे धक्का देकर कहा--निकल जा यहां से सूअर, मुझे क्यों हैरान कर रहा है?

काले खां चला गया, तो अमर ने उस जगह को झाडू से साफ कराया और अगरबत्ती जलाकर रख दी। उसे अभी तक शराब की दुर्गंध आ रही थी। आज उसे अपने पिता से जितनी अभक्ति हुई, उतनी कभी न हुई थी। उस घर की वायु तक उसे दूषित लगने लगी। पिता के हथकंडों से वह कुछ-कुछ परिचित तो था, पर उनका इतना पतन हो गया है, इसका प्रमाण आज ही मिला। उसने मन में निश्चय किया; आज पिता से इस विषय में खूब अच्छी तरह शास्त्रार्थ करेगा। उसने खड़े होकर अधीर नेत्रों से सड़क की ओर देखा। लालाजी का पता न था। उसके मन में आया, दूकान बंद करके चला जाए और जब पिताजी आ जाए तो साफ-साफ कह दे, मुझसे यह व्यापार न होगा। वह दूकान बंद करने ही जा रहा था कि एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आकर सामने खड़ी हो गई और बोली--लाला नहीं हैं क्या, बेटा?

बुढ़िया के बाल सन हो गए थे। देह की हड्डियां तक सूख गई थीं। जीवन-यात्रा के उस

स्थान पर पहुंच गई थी, जहां से उसका आकार मात्र दिखाई देता था, मानो दो-एक क्षण में वह अदृश्य हो जाएगी।

अमरकान्त के जी में पहले तो आया कि कह दे, लाला नहीं हैं, वह आएं तब आना; लेकिन बुढ़िया के पिचके हुए मुख पर ऐसी करुण याचना, ऐसी शून्य निराशा छाई हुई थी कि उसे उस पर दया आ गई। बोला—लालाजी से क्या काम है? वह तो कहीं गए हुए हैं।

बुढ़िया ने निराश होकर कहा—तो कोई हरज नहीं बेटा, मैं फिर आ जाऊंगी।

अमरकान्त ने नम्रता से कहा—अब आते ही होंगे, माता। ऊपर चली जाओ।

दूकान की कुरसी ऊंची थी। तीन सीढ़ियां चढ़नी पड़ती थीं। बुढ़िया ने पहली पट्टी पर पांव रखा, पर दूसरा पांव ऊपर न उठा सकी। पैरों में इतनी शक्ति न थी। अमर ने नीचे आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे सहारा देकर दूकान पर चढ़ा दिया। बुढ़िया ने आशीर्वाद देते हुए कहा—तुम्हारी बड़ी उम्र हो बेटा, मैं यही डरती हूं कि लाला देर में आएं और अंधेरा हो गया, तो मैं घर कैसे पहुंचूंगी? रात को कुछ नहीं सूझता बेटा।

"तुम्हारा घर कहां है; माता ?"

बुढ़िया ने ज्योतिहीन आंखों से उसके मुख की ओर देखकर कहा—गोवर्धन की सराय पर रहती हूं, बेटा।

"तुम्हारे और कोई नहीं है?"

"सब हैं भैया, बेटे हैं, पोते हैं, बहुएं हैं, पोतों की बहुएं हैं, पर जब अपना कोई नहीं, तो किस काम का? नहीं लेते मेरी सुध, न सही। हैं तो अपने। मर जाऊंगी, तो मिट्टी तो ठिकाने लगा देंगे।"

"तो वह लोग तुम्हें कुछ देते नहीं?"

बुढ़िया ने स्नेह मिले हुए गर्व से कहा—मैं किसी के आसरे-भरोसे नहीं हूं बेटा, जीते रहें मेरा लाला समरकान्त, वह मेरी परवरिश करते हैं। तब तो तुम बहुत छोटे थे भैया, जब मेरा सरदार लाला का चपरासी था। इसी कमाई में खुदा ने कुछ ऐसी बरक्कत दी कि घर-द्वार बना, बाल-बच्चों का ब्याह-गौना हुआ, चार पैसे हाथ में हुए। थे तो पांच रुपये के प्यादे, पर कभी किसी से दबे नहीं, किसी के सामने गर्दन नहीं झुकाई। जहां लाला का पसीना गिरे, वहां अपना खून बहाने को तैयार रहते थे। आधी रात, पिछली रात, जब बुलाया, हाजिर हो गए। थे तो अदना-से नौकर, मुदा लाला ने कभी 'तुम' कहकर नहीं पुकारा। बराबर खां साहब कहते थे। बड़े-बड़े सेठिए कहते—खां साहब, हम इससे दूनी तलब देंगे, हमारे पास आ जाओ, पर सबको यही जवाब देते कि जिसके हो गए उसके हो गए। जब तक वह दुत्कार न देगा, उसका दामन न छोड़ेंगे। लाला ने भी ऐसा निभाया कि क्या कोई निभाएगा? उन्हें मरे आज बीसवां साल है, वही तलब मुझे देते जाते हैं। लड़के पराए हो गए, पोते बात नहीं पूछते, पर अल्लाह मेरे लाला को सलामत रखे, मुझे किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आई।

अमरकान्त ने अपने पिता को स्वार्थी, लोभी, भावहीन समझ रखा था। आज उसे मालूम हुआ, उनमें दया और वात्सल्य भी है। गर्व से उसका हृदय पुलकित हो उठा। बोला—तो तुम्हें पांच रुपये मिलते हैं?

"हां बेटा, पांच रुपये महीना देते जाते हैं।"

"तो मैं तुम्हें रुपये दिए देता हूं, लेती जाओ। लाला शायद देर में आएं।"

वृद्धा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—नहीं बेटा, उन्हें आ जाने दो। लठिया टेकती चली जाऊंगी। अब तो यही आंख रह गई है।

"इसमें हर्ज क्या है? मैं उनसे कह दूंगा, पठानिन रुपये ले गई। अंधेरे में कहीं गिर-गिरा पड़ोगी।"

"नहीं बेटा, ऐसा काम नहीं करती, जिसमें पीछे से कोई बात पैदा हो। फिर आ जाऊंगी।"

'नहीं, मैं बिना लिए न जाने दूंगा।"

बुढ़िया ने डरते-डरते कहा--तो लाओ दे दो बेटा, मेरा नाम टांक लेना पठानिन।

अमरकान्त ने रुपये दे दिए। बुढ़िया ने कांपते हाथों से रुपये लेकर गिरह बांधे और दुआएं देती हुई, धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरी, मगर पचास कदम भी न गई होगी कि पीछे से अमरकान्त एक इक्का लिए हुए आया और बोला—बूढ़ी माता, आकर इक्के पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें पहुंचा दूं।

बुढ़िया ने आश्चर्यचकित नेत्रों से देखकर कहा—अरे नहीं, बेटा ! तुम मुझे पहुंचाने कहां जाओगे ! मैं लठिया टेकती हुई चली जाऊंगी। अल्लाह तुम्हें सलामत रखे।

अमरकान्त इक्का ला चुका था। उसने बुढ़िया को गोद में उठाया और इक्के पर बैठाकर पूछा—कहां चलूं?

बुढ़िया ने इक्के के डंडों को मजबूती से पकड़कर कहा—गोवर्धन की सराय चलो बेटा, अल्लाह तुम्हारी उम्र दराज करे। मेरा बच्चा इस बुढ़िया के लिए इतना हैरान हो रहा है। इत्ती दूर से दौड़ा आया। पढ़ने जाते हो न बटा, अल्लाह तुम्हें बड़ा दरजा दे।

पंद्रह-बीस मिनट में इक्का गोवर्धन की सराय पहुंच गया। सड़क के दाहिने हाथ एक गली थी। वहीं बुढ़िया ने इक्का रुकवा दिया, और उतर पड़ी। इक्का आगे न जा सकता था। मालूम पड़ता था, अंधेरे ने मुंह पर तारकोल पोत लिया है।

अमरकान्त ने इक्के को लौटाने के लिए कहा, तो बुढ़िया बोली—नहीं मेरे लाल, इत्ती दूर आए हो, तो पल-भर मेरे घर भी बैठ लो, तुमने मेरा कलेजा ठंडा कर दिया।

गली में बड़ी दुर्गंध थी। गंदे पानी के नाले दोनों तरफ बह रहे थे। घर प्राय: सभी कच्चे थे। गरीबों का मुहल्ला था। शहरों के बाजारों और गलियों में कितना अंतर है ! एक फूल है—सुंदर, स्वच्छ, सुगंधमय; दूसरी जड़ है—कीचड़ और दुर्गंध से भरी, टेढ़ी-मेढ़ी; लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड़ से है?

बुढ़िया ने एक मकान के सामने खड़े होकर धीरे से पुकारा—सकीना ! अंदर से आवाज आई—आती हूं अम्मां; इतनी देर कहां लगाई?

एक क्षण में सामने का द्वार खुला और एक बालिका हाथ में मिट्टी के तेल की कुप्पी लिए द्वार पर खड़ी हो गई। अमरकान्त बुढ़िया के पीछे खड़ा था, उस पर बालिका की निगाह न पड़ी, लेकिन बुढ़िया आगे बढ़ी, तो सकीना ने अमर को देखा। तुरंत ओढ़नी में मुंह छिपाती हुई पीछे हट गई और धीरे से पूछा—यह कौन हैं, अम्मां?

बुढ़िया ने कोने में अपनी लकड़ी रख दी और बोली—लाला का लड़का है, मुझे पहुंचाने आया है। ऐसा नेक-शरीफ लड़का तो मैंने देखा ही नहीं।

उसने अब तक का सारा वृत्तांत अपने आशीर्वादों से भरी भाषा में कह सुनाया और बोली -आंगन में खाट डाल दे बेटी, जरा बुला लूं। थक गया होगा।

सकीना ने एक टूटी-सी खाट आंगन में डाल दी और उस पर एक सड़ी-सी चादर बिछाती हुई बोली—इस खटोले पर क्या बिठाओगी अम्मां, मुझे तो शर्म आती है?

बुढ़िया ने जरा कड़ी आंखों से देखकर कहा—शर्म की क्या बात है इसमें? हमारा हाल क्या इनसे छिपा है?

उसने बाहर जाकर अमरकान्त को बुलाया। द्वार एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का फटा-पुराना परदा पड़ा हुआ था। द्वार के अंदर कदम रखते ही एक आंगन था, जिसमें मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अंधेरी पड़ी हुई थी। सायबान मे एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो- चार बर्तन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे। चूल्हे में आग जल रही थी और तवा रखा हुआ था।

अमर ने खाट पर बैठते हुए कहा—यह घर तो बहुत छोटा है। इसमें गुजर कैसे होती है?

बुढ़िया खाट के पास जमीन पर बैठ गई और बोली—बेटा, अब तो दो ही आदमी हैं, नहीं, इसी घर में एक पूरा कुनबा रहता था। मेरे दो बेटे, दो बहुए, उनके बच्चे, सब इसी घर में रहते थे। इसी में सबों के शादी-ब्याह हुए और इसी में सब मर भी गए। उस वक्त यह ऐसा गुलजार लगता था कि तुमसे क्या कहूं? अब मैं हूं और मेरी यह पोती है। और सबको अल्लाह ने बुला लिया। पकाते हैं और पड़े रहते हैं। तुम्हारे पठान के मरते ही घर में जैसे झाड़ू फिर गई। अब तो अल्लाह से यही दुआ है कि मेरे जीते-जी यह किसी भले आदमी के पाले पड़ जाए, तब अल्लाह से कहूंगी कि अब मुझे उठा लो। तुम्हारे यार-दोस्त तो बहुत होंगे बेटा, अगर शर्म की बात न समझो, तो किसी से जिक्र करना। कौन जाने तुम्हारे ही हीले से कहीं बातचीत ठीक हो जाए।

सकीना कुरता-पाजामा पहने, ओढ़नी से माथा छिपाए सायबान में खड़ी थी। बुढ़िया ने ज्योंही उसकी शादी की चर्चा छेड़ी, वह चूल्हे के पास जा बैठी और आटे को अंगुलियों से गोदने लगी। वह दिल में झुंझला रही थी कि अम्मां क्यों इनसे मेरा दुखड़ा ले बैठी? किससे कौन बात कहनी चाहिए, कौन बात नहीं, इसका इन्हें जरा भी लिहाज नहीं? जो ऐरा-गैरा आ गया, उसी से शादी का पचड़ा गाने लगीं। और सब बातें गई, बस एक शादी रह गई।

उसे क्या मालूम कि अपनी संतान को विवाहित देखना बुढ़ापे की सबसे बड़ी अभिलाषा है।

अमरकान्त ने मन में मुसलमान मित्रों का सिंहावलोकन करते हुए कहा—मेरे मुसलमान दोस्त ज्यादा तो नहीं हैं, लेकिन जो दो-एक हैं, उनसे मैं जिक्र करूंगा।

वृद्धा ने चिंतित भाव से कहा—वह लोग धनी होंगे?

''हां, सभी खुशहाल हैं।''

''तो भला धनी लोग गरीबों की बात क्यों पूछेंगे? हालांकि हमारे नबी का हुक्म है कि शादी-ब्याह में अमीर-गरीब का विचार न होना चाहिए, पर उनके हुक्म को कौन मानता है! नाम के मुसलमान, नाम के हिन्दू रह गए हैं। न कहीं सच्चा मुसलमान नजर आता है, न सच्चा हिन्दू। मेरे घर का तो तुम पानी भी न पियोगे बेटा, तुम्हारी क्या खातिर करूं! (सकीना से) बेटी, तुमने जो रूमाल काढ़ा है वह लाकर भैया को दिखाओ। शायद इन्हें पसंद आ जाए। और हमें अल्लाह ने किस लायक बनाया है?

सकीना रसोई से निकली और एक ताक पर से सिगरेट का एक बड़ा-सा बक्स उठा लाई और उसमें से वह रूमाल निकालकर सिर झुकाए, झिझकती हुई, बुढ़िया के पास आ, रूमाल रख, तेजी से चली गई।

अमरकान्त आंखें झुकाए हुए था, पर सकीना को सामने देखकर आंखें नीची न रह सकीं। एक रमणी सामने खड़ी हो, तो उसकी ओर से मुंह फेर लेना कितनी भद्दी बात है। सकीना का रंग सांवला था और रूप-रेखा देखते हुए वह सुंदरी न कही जा सकती थी, अंग प्रत्यंग का गठन भी कवि- वर्णित उपमाओं से मेल न खाता था; पर रंग-रूप, चाल-ढाल, शील संकोच, इन सबने मिल- जुलकर उसे आकर्षक शोभा प्रदान कर दी थी। वह बड़ी-बड़ी पलकों से आंखें छिपाए, देह चुराए, शोभा की सुगंध और ज्योति फैलाती हुई इस तरह निकल गई, जैसे स्वप्न-चित्र एक झलक दिखाकर मिट गया हो।

अमरकान्त ने रूमाल उठा लिया और दीपक के प्रकाश में उसे देखने लगा। कितनी सफाई से बेल-बूटे बनाए गए थे। बीच में एक मोर का चित्र था। इस झोंपड़े में इतनी सुरुचि?

चकित होकर बोला- यह तो खूबसूरत रूमाल है, माताजी! सकीना काढ़ने के काम में बहुत होशियार मालूम होती है।

बुढ़िया ने गर्व से कहा--यह सभी काम जानती है भैया, न जाने कैसे सीख लिया? मुहल्ले की दो-चार लड़कियां मदरसे पढ़ने जाती हैं। उन्हीं को काढ़ते देखकर इसने सब कुछ सीख लिया। कोई मर्द घर में होता, तो हमें कुछ काम मिल जाया करता। गरीबों के मुहल्ले में इन कामों की कौन कदर कर सकता है? तुम यह रूमाल लेते जाओ बेटा, एक बेकस की नजर है।

अमर ने रूमाल को जेब में रखा तो उसकी आंखें भर आई। उसका बस होता तो इसी वक्त सौ-दो सौ रूमालों की फरमाइश कर देता। फिर भी यह बात उसके दिल में जम गई। उसने खड़े होकर कहा—मैं इस रूमाल को हमेशा तुम्हारी दुआ समझूंगा। वादा तो नहीं करता लेकिन मुझे यकीन है कि मैं अपने दोस्तों से आपको कुछ काम दिला सकूंगा।

अमरकान्त ने पहले पठानिन के लिए 'तुम' का प्रयोग किया था। चलते समय तक वह तुम आप में बदल गया था। सुरुचि, सुविचार, सद्भाव उसे यहां सब कुछ मिला। हां, उस पर विपन्नता का आवरण पड़ा हुआ था। शायद सकीना ने यह 'आप' और 'तुम' का विवेक उत्पन्न कर दिया था।

अमर उठ खड़ा हुआ। बुढ़िया आंचल फैलाकर उसे दुआएं देती रही।

# आठ

अमरकान्त नौ बजते-बजते लौटा तो लाला समरकान्त ने पूछा—तुम दूकान बंद करके कहां चले गए थे? इसी तरह दूकान पर बैठा जाता है?

अमर ने सफाई दी—बुढ़िया पठानिन रुपये लेने आई थी। बहुत अंधेरा हो गया था। मैंने समझा कहीं गिर-गिरा पड़े इसलिए उसे घर तक पहुंचाने चला गया था। वह तो रुपये लेती ही न थी; पर जब बहुत देर हो गई तो मैंने रोकना उचित न समझा।

''कितने रुपये दिए?''

''पांच।''

लालाजी को कुछ धैर्य हुआ।

''और कोई असामी आया था? किसी से कुछ रुपये वसूल हुए?''

''जी नहीं।''

''आश्चर्य है।''

''और तो कोई नहीं आया, हां, वही बदमाश काले खां सोने की एक चीज बेचने लाया था। मैंने लौटा दिया।''

समरकान्त की त्योरियां बदलीं—क्या चीज थी?

''सोने के कड़े थे। दस तोले बताता था।''

''तुमने तौला नहीं?''

''मैंने हाथ से छुआ तक नहीं।''

''हां, क्यों छूते, उसमें पाप लिपटा हुआ था न ! कितना मांगता था?''

''दो सौ।''

''झूठ बोलते हो।''

''शुरू दो सौ से किए थे, पर उतरते-उतरते तीस रुपये तक आया था।''

लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई—फिर भी तुमने लौटा दिए?

''और क्या करता? मैं तो उसे सेंत में भी न लेता। ऐसा रोजगार करना मैं पाप समझता हूं।''

समरकान्त क्रोध से विकृत होकर बोले—चुप रहो, शरमाते तो नहीं, ऊपर से बातें बनाते हो। डेढ़ सौ रुपये बैठे-बैठाए मिलते थे, वह तुमने धर्म के घमंड में खो दिए, उस पर से अकड़ते हो। जानते भी हो, धर्म है क्या चीज? साल में एक बार भी गंगा-स्नान करते हो? एक बार भी देवताओं को जल चढ़ाते हो? कभी राम का नाम लिया है जिंदगी में? कभी एकादशी या कोई दूसरा व्रत रखा है? कभी कथा-पुराण पढ़ते या सुनते हो? तुम क्या जानो धर्म किसे कहते हैं? धर्म और चीज है, रोजगार और चीज। छि: साफ डेढ़ सौ फेंक दिए।

अमरकान्त धर्म की इस व्याख्या पर मन-ही-मन हंसकर बोला—आप गंगा-स्नान, पूजा-पाठ को मुख्य धर्म समझते हैं; मैं सच्चाई, सेवा और परोपकार को मुख्य धर्म समझता हूं। स्नान-ध्यान, पूजा-व्रत धर्म के साधन मात्र हैं, धर्म नहीं।

समरकान्त ने मुंह चिढ़ाकर कहा—ठीक कहते हो, बहुत ठीक; अब संसार तुम्हीं को

धर्म का आचार्य मानेगा। अगर तुम्हारे धर्म-मार्ग पर चलता, तो आज मैं भी लंगोटी लगाए घूमता होता, तुम भी यों महल में बैठकर मौज न करते होते। चार अक्षर अंग्रेजी पढ़ ली न, यह उसी की विभूति है; लेकिन मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं, जो अंग्रेजी के विद्वान् होकर अपना धर्म--कर्म निभाए जाते हैं। साफ डेढ़ सौ पानी में डाल दिए।

अमरकान्त ने अधीर होकर कहा—आप बार-बार, उसकी चर्चा क्यों करते हैं? मैं चोरी और डाके के माल का रोजगार न करूंगा, चाहे आप खुश हों या नाराज। मुझे ऐसे रोजगार से घृणा होती है।

''तो मेरे काम में वैसी आत्मा की जरूरत नहीं। मैं ऐसी आत्मा चाहता हूं, जो अवसर देखकर, हानि-लाभ का विचार करके काम करे।''

''धर्म को मैं हानि--लाभ की तराजू पर नहीं तौल सकता।''

इस वज्र-मूर्खता की दवा, चांटे के सिवा और कुछ न थी। लालाजी खून का घूंट पीकर रह गए। अमर हृष्ट-पुष्ट न होता, तो आज उसे धर्म की निंदा करने का मजा मिल जाता। बोले— बस, तुम्हीं तो संसार में एक धर्म के ठेकेदार रह गए हो, और सब तो अधर्मी हैं। वही माल जो तुमने अपने घमंड में लौटा दिया, तुम्हार किसी दूसरे भाई ने दो-चार रुपये कम-बेश देकर ले लिया होगा। उसने तो रुपये कमाए, तुम नींबू-नोन चाटकर रह गए। डेढ़-सौ रुपये तब मिलते हैं, जब डेढ़ सौ थान कपड़ा या डेढ़ सौ बोरे चीनी बिक जाय। मुंह का कौर नहीं है। अभी कमाना नहीं पड़ा है, दूसरों की कमाई से चैन उड़ा रहे हो तभी ऐसी बातें सूझती हैं। जब अपने सिर पड़ेगी, तब आंखें खुलेंगी।

अमर अब भी कायल न हुआ। बोला—मैं कभी यह रोजगार न करूंगा।

लालाजी को लड़के की मूर्खता पर क्रोध की जगह क्रोध मिश्रित दया आ गई। बोले--तो फिर कौन रोजगार करोगे? कौन रोजगार है, जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो, लेन-देन, सूद-बट्टा, अनाज-कपड़ा, तेल घी, सभी रोजगारों में दांव-घात है। जो दांव-घात समझता है, वह नफा उठाता है, जो नहीं समझता, उसका दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोजगार बता दो, जिसमे झूठ न बोलना पड़े, बेईमानी न करनी पड़े। इतने बड़े-बड़े हाकिम हैं, बताओ कौन घूस नहीं लेता? एक सीधी-सी नकल लेने जाओ, तो एक रुपया लग जाता है। बिना तहरीर लिए थानेदार रपट तक नहीं लिखता। कौन वकील है, जो झूठे गवाह नहीं बनाता? लीडरों ही में कौन है, जो चंदे के रुपये में नोच-खसोट न करता हो? माया पर तो संसार की रचना हुई है, इससे कोई कैसे बच सकता है?

अमर ने उदासीन भाव से सिर हिलाकर कहा—अगर रोजगार का यह हाल है, तो मैं रोजगार करूंगा ही नहीं।

''तो घर-गिरस्ती कैसे चलेगी? कुएं में पानी की आमद न हो, तो कै दिन पानी निकले?''

अमरकान्त ने इस विवाद का अंत करने के इरादे से कहा—मैं भूखों मर जाऊंगा, पर आत्मा का गला न घोंटूंगा।

''तो क्या मजूरी करोगे?''

''मजूरी करने में कोई शर्म नहीं है।''

समरकान्त ने हथौड़े से काम चलते न देखकर घन चलाया—शर्म चाहे न हो; पर तुम कर न सकोगे, कहो लिख दूं? मुंह से बक देना सरल है, कर दिखाना कठिन होता है। चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब चार गंडे पैसे मिलते हैं। मजूरी करेंगे ! एक घड़ा पानी तो अपने हाथों खींचा नहीं जाता, चार पैसे की भाजी लेनी होती है, तो नौकर लेकर चलते हैं, यह मजूरी करेंगे। अपने भाग्य को सराहो कि मैंने कमाकर रख दिया है। तुम्हारा किया कुछ न होगा। तुम्हारी इन बातों से ऐसा जी जलता है कि सारी जायदाद कृष्णार्पण कर दूं फिर देखूं तुम्हारी आत्मा किधर जाती है?

अमरकान्त पर उनकी इस चोट का भी कोई असर न हुआ—आप खुशी से अपनी जायदाद कृष्णार्पण कर दें। मेरे लिए रत्ती भर भी चिंता न करें। जिस दिन आप यह पुनीत कार्य करेंगे, उस दिन मेरा सौभाग्य-सूर्य उदय होगा। मैं इस मोह से मुक्त होकर स्वाधीन हो जाऊंगा। जब तक मैं इस बंधन में पड़ा रहूंगा, मेरी आत्मा का विकास होगा।

समरकान्त के पास अब कोई शस्त्र न था। एक क्षण के लिए क्रोध ने उनकी व्यवहार-बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। बोले—तो क्यों इस बंधन में पड़े हो? क्यों अपनी आत्मा का विकास नहीं करते? महात्मा ही हो जाओ। कुछ करके दिखाओ तो ! जिस चीज की तुम कदर नहीं कर सकते, वह मैं तुम्हारे गले नहीं मढ़ना चाहता।

यह कहते हुए वह ठाकुरद्वारे में चले गए, जहां इस समय आरती का घंटा बज रहा था। अमर इस चुनौती का जवाब न दे सका। वे शब्द जो बाहर न निकल सके, उसके हृदय में फोड़े की तरह टीसने लगे—मुझ पर अपनी संपत्ति की धौंस जमाने चले हैं? चोरी का माल बेचकर, जुआरियों को चार आने रुपये ब्याज पर रुपये देकर, गरीब मजूरों और किसानों को ठगकर तो रुपये जोड़े हैं, उस पर आपको इतना अभिमान है ! ईश्वर न करे कि मैं उस धन का गुलाम बनूं।

वह इन्हीं उत्तेजना से भरे हुए विचारों में डूबा बैठा था कि नैना ने आकर कहा- दादा बिगड़ रहे थे, भैयाजी।

अमरकान्त के एकांत जीवन में नैना ही स्नेह और सांत्वना की वस्तु थी। अपना सुख-दुख अपनी विजय और पराजय, अपने मंसूबे और इरादे वह उसी से कहा करता था। यद्यपि सुखदा से अब उसे उतना विराग न था, अब उससे प्रेम भी हो गया था, पर नैना अब भी उसमें निकटतर थी। सुखदा और नैना दोनों उसके अंतस्थल के दो कूल थे। सुखदा ऊंची, दुर्गम और विशाल थी। लहरें उसके चरणों ही तक पहुंचकर रह जाती थीं। नैना समतल, सुलभ और समीप। वायु का थोड़ा वेग पाकर भी लहरें उसके मर्मस्थल तक पहुंचती थीं।

अमर अपनी मनोव्यथा मंद मुस्कान की आड़ में छिपाता हुआ बोला—कोई नई बात नहीं थी नैना। वही पुराना पचड़ा था। तुम्हारी भाभी तो नीचे नहीं थीं?

''अभी तक तो यहीं थीं। जरा देर हुई ऊपर चली गईं।''

''तो आज उधर से भी शस्त्र-प्रहार होंगे। दादा ने तो आज मुझसे साफ कह दिया, तुम अपने लिए कोई राह निकालो, और मैं भी सोचता हूं, मुझे अब कुछ-न-कुछ करना चाहिए। यह रोज-रोज की फटकार नहीं सही जाती। मैं कोई बुराई करूं, तो वह मुझे दस जूते भी जमा दें, चूं न करूंगा, लेकिन अधर्म पर मुझसे न चला जाएगा।''

नैना ने इस वक्त मीठी पकौड़ियां, नमकीन पकौड़ियां और न जाने क्या-क्या पका रखे थे। उसका मन उन पदार्थों को खिलाने और खाने के आनंद में बसा हुआ था। यह धर्म-अधर्म के झगड़े उसे व्यर्थ-से जान पड़े। बोली—पहले चलकर पकौड़ियां खा लो, फिर इस विषय पर सलाह होगी।

अमर ने वितृष्णा के भाव से कहा—ब्यालू करने की मेरी इच्छा नहीं है। लात की मारी रोटियां कंठ के नीचे न उतरेंगी। दादा ने आज फैसला कर दिया।

''अब तुम्हारी यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती। आज की-सी मजेदार पकौड़ियां तुमने कभी न खाई होंगी। तुम न खाओगे, तो मैं न खाऊंगी।''

नैना की इस दलील ने उसके इंकार को कई कदम पीछे धकेल दिया—तू मुझे बहुत दिक करती है नैना, सच कहता हूं, मुझे बिल्कुल इच्छा नहीं है।

''चलकर थाल पर बैठो तो, पकौड़ियां देखते ही टूट न पड़ो, तो कहना।''

''तू जाकर खा क्यों नहीं लेती? मैं एक दिन न खाने से मर तो न जाऊंगा।''

''तो क्या मैं एक दिन न खाने से मर जाऊंगी? मैं निर्जला शिवरात्रि रखती हूं, तुमने तो कभी व्रत नहीं रखा।''

नैना के आग्रह को टालने की शक्ति अमरकान्त में न थी।

लाला समरकान्त रात को भोजन न करते थे। इसलिए भाई, भावज, बहन साथ ही खा लिया करते थे। अमर आंगन में पहुंचा, तो नैना ने भाभी को बुलाया। सुखदा ने ऊपर ही से कहा—मुझे भूख नहीं है।

मनावन का भार अमरकान्त के सिर पड़ा। वह दबे पांव ऊपर गया। जी में डर रहा था कि आज मुआमला तूल खींचेगा; पर इसके साथ ही दृढ़ भी था। इस प्रश्न पर दबेगा नहीं। यह ऐसा मार्मिक विषय था, जिस पर किसी प्रकार का समझौता हो ही न सकता था।

अमरकान्त की आहट पाते ही सुखदा संभल बैठी। उसके पीले मुख पर ऐसी करुण वेदना झलक रही थी कि एक क्षण के लिए अमरकान्त चंचल हो गया।

अमरकान्त ने उसका हाथ पकड़कर कहा—चलो, भोजन कर लो। आज बहुत देर हो गई।

''भोजन पीछे करूंगी, पहले मुझे तुमसे एक बात का फैसला करना है। तुम आज फिर दादाजी से लड़ पड़े?''

''दादाजी से मैं लड़ पड़ा, या उन्हीं ने मुझे अकारण डांटना शुरू किया?''

सुखदा ने दार्शनिक निरपेक्षता के स्वर में कहा—तो उन्हें डांटने का अवसर ही क्यों देते हो? मैं मानती हूं कि उनकी नीति तुम्हें अच्छी नहीं लगती। मैं भी उसका समर्थन नहीं करती; लेकिन अब इस उम्र में तुम उन्हें नए रास्ते पर नहीं चला सकते। वह भी तो उसी रास्ते पर चल रहे हैं, जिस पर सारी दुनिया चल रही है। तुमसे जो कुछ हो सके, उनकी मदद करो। जब वह न रहेंगे उस वक्त अपने आदर्शों का पालन करना। तब कोई तुम्हारा हाथ न पकड़ेगा। इस वक्त तुम्हें अपने सिद्धांतों के विरुद्ध भी कोई बात करनी पड़े, तो बुरा न मानना चाहिए। उन्हें कम-से-कम इतना संतोष तो दिला दो कि उनके पीछे तुम उनकी कमाई लुटा न दोगे। मै आज तुम दोनों की बातें सुन रही थी। मुझे तो तुम्हारी ही ज्यादती मालूम होती थी।

अमरकान्त उसके प्रसव-भार पर चिंता-भार न लादना चाहता था; पर प्रसंग ऐसा आ पड़ा था कि वह अपने को निर्दोष सिद्ध करना आवश्यक समझता था। बोला—उन्होंने मुझसे साफ-साफ कह दिया, तम अपनी फिक्र करो। उन्हें अपना धन मुझसे ज्यादा प्यारा है।

यही कांटा था, जो अमरकान्त के हृदय में चुभ रहा था।

सुखदा के पास जवाब तैयार था—तुम्हें भी तो अपना सिद्धांत अपने बाप से ज्यादा प्यारा है? उन्हें तो मैं कुछ नहीं कहती। अब साठ बरस की उम्र में उन्हें उपदेश नहीं दिया जा सकता। कम-से-कम तुमको यह अधिकार नहीं है। तुम्हें धन काटता हो; लेकिन मनस्वी, वीर पुरुषों ने सदैव लक्ष्मी की उपासना की है। संसार को पुरुषार्थियों ने ही भोगा है और हमेशा भोगेंगे। त्याग गृहस्थों के लिए नहीं है, संन्यासियों के लिए है। अगर तुम्हें त्यागव्रत लेना था तो विवाह करने की जरूरत न थी, सिर मुड़ाकर किसी साधु-संत के चेले बन जाते। फिर मैं तुमसे झगड़ने न आती। अब ओखली में सिर डाल कर तुम मूसलों से नहीं बच सकते। गृहस्थी के चरखे में पड़कर बड़े-बड़ों की नीति भी स्खलित हो जाती है। कृष्ण और अर्जुन तक को एक नए तर्क की शरण लेनी पड़ी।

अमरकान्त ने इस ज्ञानोपदेश का जवाब देने की जरूरत न समझी। ऐसी दलीलों पर गंभीर विचार किया ही नहीं जा सकता था। बोला—तो तुम्हारी सलाह है कि संन्यासी हो जाऊं?

सुखदा चिढ़ गई। अपनी दलीलों का यह अनादर न सह सकी। बोली—कायरों को इसके सिवाय और सूझ ही क्या सकता है? धन कमाना आसान नहीं है। व्यवसायियों को जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वह अगर संन्यासियों को झेलनी पड़ें, तो सारा संन्यास भूल जाय। किसी भले आदमी के द्वार पर जाकर पड़े रहने के लिए बल, बुद्धि, विद्या, साहस किसी की भी जरूरत नहीं। धनोपार्जन के लिए खून जलाना पड़ता है; मांस सुखाना पड़ता है। सहज काम नहीं है। धन कहीं पड़ा नहीं है कि जो चाहे बटोर लाए।

अमरकान्त ने उसी विनोदी भाव से कहा—मैं तो दादा को गद्दी पर बैठे रहने के सिवाय और कुछ करते नहीं देखता। और भी जो बड़े-बड़े सेठ-साहूकार हैं उन्हें भी फूलकर कुप्पा होते ही देखा है। रक्त और मांस तो मजदूर ही जलाते हैं। जिसे देखो कंकाल बना हुआ है।

सुखदा ने कुछ जवाब न दिया। ऐसी मोटी अक्ल के आदमी से ज्यादा बकवास करना व्यर्थ था।

नैना ने पुकारा—तुम क्या करने लगे, भैया ! आते क्यों नहीं? पकौड़ियां ठंडी हुई जाती हैं।

सुखदा ने कहा—तुम जाकर खा क्यों नहीं लेते? बेचारी ने दिन-भर तैयारियां की हैं।

"मैं तो तभी जाऊंगा, जब तुम भी चलोगी।"

"वादा करो कि फिर दादाजी से लड़ाई न करोगे।"

अमरकान्त ने गंभीर होकर कहा—सुखदा, मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मैंने इस लड़ाई से बचने के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। इन दो सालों में मुझमें कितना परिवर्तन हो गया है, कभी-कभी मुझे इस पर स्वयं आश्चर्य होता है। मुझे जिन बातों से घृणा थी, वह सब मैंने अंगीकार कर लीं; लेकिन अब उस सीमा पर आ गया हूं कि जौ भर भी आगे बढ़ा,

तो ऐसे गर्त में जा गिरूंगा, जिसकी थाह नहीं है। उस सर्वनाश की ओर मुझे मत ढकेलो।

सुखदा को इस कथन में अपने ऊपर लांछन का आभास हुआ। इसे वह कैसे स्वीकार करती? बोली—इसका तो यही आशय है कि मैं तुम्हारा सर्वनाश करना चाहती हूं। अगर अब तक मेरे व्यवहार का यही तत्त्व तुमने निकाला है, तो तुम्हें इससे बहुत पहले मुझे विष दे देना चाहिए था। अगर तुम समझते हो कि मैं भोग-विलास की दासी हूं और केवल स्वार्थवश तुम्हें समझाती हूं तो तुम मेरे साथ घोरतम अन्याय कर रहे हो। मैं तुमको बता देना चाहती हूं, कि विलासिनी सुखदा अवसर पड़ने पर जितने कष्ट झेलने की सामर्थ्य रखती है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ईश्वर वह दिन न लाए कि मैं तुम्हारे पतन का साधन बनूं। हां, जलने के लिए स्वयं चिता बनाना मुझे स्वीकार नहीं। मैं जानती हूं कि तुम थोड़ी बुद्धि से काम लेकर अपने सिद्धांत और धर्म की रक्षा भी कर सकते हो और घर की तबाही को भी रोक सकते हो। दादाजी पढ़े-लिखे आदमी हैं, दुनिया देख चुके हैं। अगर तुम्हारे जीवन में कुछ सत्य है, तो उसका उन पर प्रभाव पड़े बगैर नहीं रह सकता। आए दिन की झौड़ से तुम उन्हें और भी कठोर बनाए देते हो। बच्चे भी मार से जिद्दी हो जाते हैं। बूढ़ों की प्रकृति कुछ बच्चों की-सी होती है। बच्चों की भांति उन्हें भी तुम सेवा और भक्ति से ही अपना सकते हो।

अमर ने पूछा—चोरी का माल खरीदा करूं?

"कभी नहीं।"

"लड़ाई तो इसी बात पर हुई।"

"तुम उस आदमी से कह सकते थे—दादा आ जाएं तब लाना।"

"और अगर वह न मानता? उसे तत्काल रुपये की जरूरत थी।"

"आपद्धर्म भी तो कोई चीज है?"

"वह पाखंडियों का पाखंड है।"

"तो मैं तुम्हारे निर्जीव आदर्शवाद को भी पाखडियों का पाखंड समझती हूं।"

एक मिनट तक दोनों थके हुए योद्धाओं की भांति दम लेते रहे। तब अमरकान्त ने कहा—नैना पुकार रही है।

"मैं तो तभी चलूंगी, जब तुम वह वादा करोगे।"

अमरकान्त ने अविचल भाव से कहा—तुम्हारी खातिर से कहो वादा कर लूं, पर मैं उसे पूरा नहीं कर सकता। यही हो सकता है कि मैं घर की किसी बात से सरोकार न रखूं।

सुखदा निश्चयात्मक रूप से बोली—यह इससे कहीं अच्छा है कि रोज घर में लड़ाई होती रहे। जब तक इस घर में हो, इस घर की हानि-लाभ का तुम्हें विचार करना पड़ेगा।

अमर ने अकड़कर कहा—मैं आज इस घर को छोड़ सकता हूं।

सुखदा ने बम-सा फेंका—और मैं?

अमर विस्मय से सुखदा का मुंह देखने लगा।

सुखदा ने उसी स्वर में कहा—इस घर से मेरा नाता तुम्हारे आधार पर है जब तुम इस घर में न रहोगे, तो मेरे लिए यहां क्या रखा है? जहां तुम रहोगे, वहीं मैं भी रहूंगी।

अमर ने संशयात्मक स्वर में कहा—तुम अपनी माता के साथ रह सकती हो।

"माता के साथ क्यों रहूं? मैं किसी की आश्रित नहीं रह सकती। मेरा दुःख-सुख

तुम्हारे साथ है। जिस तरह रखोगे, उसी तरह रहूंगी। मैं भी देखूंगी, तुम अपने सिद्धांतों के कितने पक्के हो? मैं प्रण करती हूं कि तुमसे कुछ न मांगूंगी। तुम्हें मेरे कारण जरा भी कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं खुद भी कुछ पैदा कर सकती हूं, थोड़ा मिलेगा, थोड़े में गुजर कर लेंगे, बहुत मिलेगा तो पूछना ही क्या। जब एक दिन हमें अपनी झोंपड़ी बनानी ही है तो क्यों न अभी से हाथ लगा दें। तुम कुएं से पानी लाना, मैं चौका-बर्तन कर लूंगी। जो आदमी एक महल में रहता है, वह एक कोठरी में भी रह सकता है। फिर कोई धौंस तो न जमा सकेगा।

अमरकान्त पराभूत हो गया। उसे अपने विषय में तो कोई चिंता नहीं लेकिन सुखदा के साथ वह यह अत्याचार कैसे कर सकता था?

खिसियाकर बोला—वह समय अभी नहीं आया है, सुखदा !

''क्यों झूठ बोलते हो ! तुम्हारे मन में यही भाव है और इससे बड़ा अन्याय तुम मेरे साथ नहीं कर सकते ! कष्ट सहने में, या सिद्धांत की रक्षा के लिए स्त्रियां कभी पुरुषों से पीछे नहीं रहीं। तुम मुझे मजबूर कर रहे हो कि और कुछ नहीं तो लांछन से बचने के लिए मैं दादाजी से अलग रहने की आज्ञा मांगू। बोलो?''

अमर लज्जित होकर बोला—मुझे क्षमा करो सुखदा ! मैं वादा करता हूं कि दादाजी जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा।

''इसलिए कि तुम्हें मेरे विषय में संदेह है?''

''नहीं, केवल इसलिए कि मुझमें अभी उतना बल नहीं है।''

इसी समय नैना आकर दोनों को पकौड़ियां खिलाने के लिए घसीट ले गई। सुखदा प्रसन्न थी। उसने आज बहुत बड़ी विजय पाई थी। अमरकान्त झेंपा हुआ था। उसके आदर्श और धर्म की आज परीक्षा हो गई थी और उसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान हो गया था। ऊंट पहाड़ के नीचे आकर अपनी ऊंचाई देख चुका था।

## नौ

जीवन में कुछ सार है, अमरकान्त को इसका अनुभव हो रहा है। वह एक शब्द भी मुंह से ऐसा नहीं निकालना चाहता, जिससे सुखदा को दुख हो; क्योंकि वह गर्भवती है। उसकी इच्छा के विरुद्ध वह छोटी-से-छोटी बात भी नहीं कहना चाहता। वह गर्भवती है। उसे अच्छी-अच्छी किताबें पढ़कर सुनाई जाती हैं; रामायण, महाभारत और गीता से अब अमर को विशेष प्रेम है; क्योंकि सुखदा गर्भवती है। बालक के संस्कारों का सदैव ध्यान बना रहता है। सुखदा को प्रसन्न रखने की निरंतर चेष्टा की जाती है। उसे थिएटर, सिनेमा दिखाने में अब अमर को संकोच नहीं होता। कभी फूलों के गजरे आते हैं, कभी कोई मनोरंजन की वस्तु। सुबह-शाम वह दूकान पर भी बैठता है। सभाओं की ओर उसकी रुचि नहीं है। वह पुत्र का पिता बनने जा रहा है। इसकी कल्पना से उसमें ऐसा उत्साह भर जाता है कि कभी-कभी एकांत में नतमस्तक होकर कृष्ण के चित्र के सामने सिर झुका लेता है। सुखदा तप कर रही है। अमर अपने को नई जिम्मेदारियों के लिए तैयार कर रहा है। अब तक वह समतल भूमि पर था, बहुत

संभलकर चलने की उतनी जरूरत न थी। अब वह ऊंचाई पर जा पहुंचा है। वहां बहुत संभलकर पांव रखना पड़ता है।

लाला समरकान्त भी आजकल बहुत खुश नजर आते हैं। बीसों ही बार अंदर आकर सुखदा से पूछते हैं, किसी चीज की जरूरत तो नहीं है? अमर पर उनकी विशेष कृपा-दृष्टि हो गई है। उसके आदर्शवाद को वह उतना बुरा नहीं समझते। एक दिन काले खां को उन्होंने दूकान से खड़े-खड़े निकाल दिया। असामियों पर वह उतना नहीं बिगड़ते, उतनी नालिशें नहीं करते। उनका भविष्य उज्ज्वल हो गया है। एक दिन उनकी रेणुका से बातें हो रही थीं। अमरकान्त की निष्ठा की उन्होंने दिल खोलकर प्रशंसा की।

रेणुका उतनी प्रसन्न न थीं। प्रसव के कष्टों को याद करके वह भयभीत हो जाती थीं। बोलीं—लालाजी, मैं तो भगवान् से यही मनाती हूं कि जब हंसाया है, तो बीच में रुलाना मत। पहलौंठी में बड़ा संकट रहता है। स्त्री का दूसरा जन्म होता है।

समरकान्त को ऐसी कोई शंका न थी। बोले—मैंने तो बालक का नाम सोच लिया है। उसका नाम होगा—रेणुकान्त।

रेणुका आशंकित होकर बोली—अभी नाम-वाम न रखिए, लालाजी ! इस संकट से उद्धार हो जाए, तो नाम सोच लिया जाएगा। मैं सोचती हूं, दुर्गा-पाठ बैठा दीजिए। इस मुहल्ले में एक दाई रहती है, उसे अभी से रख लिया जाए, तो अच्छा हो। बिटिया अभी बहुत-सी बातें नहीं समझती। दाई उसे संभालती रहेगी।

लालाजी ने इस प्रस्ताव को हर्ष से स्वीकार कर लिया। यहां से जब वह घर लौटे तो देखा—दूकान पर दो गोरे और एक मेम बैठे हुए हैं और अमरकान्त उनसे बातें कर रहा है। कभी-कभी नीचे दर्जे के गोरे यहां अपनी घड़ियां या और कोई चीज बेचने के लिए आ जाते थे। लालाजी उन्हें खूब ठगते थे। वह जानते थे कि ये लोग बदनामी के भय से किसी दूसरी दुकान पर न जाएंगे। उन्होंने जाते-ही-जाते अमरकान्त को हटा दिया और खुद सौदा पटाने लगे। अमरकान्त स्पष्टवादी था और यह स्पष्टवादिता का अवसर न था। मेम साहब को सलाम करके पूछा—कहिए मेम साहब, क्या हुक्म है?

तीनों शराब के नशे में चूर थे। मेम साहब ने सोने की एक जंजीर निकालकर कहा —सेठजी, हम इसको बेचना चाहता है। बाबा बहुत बीमार है। उसका दवाई में बहुत खर्च हो गया।

समरकान्त ने जंजीर लेकर देखा और हाथ में तौलते हुए बोले—इसका सोना तो अच्छा नहीं है, मेम साहब ! आपने कहां बनवाया था?

मेम हंसकर बोली—ओ ! तुम बराबर यही बात कहता है। सोना बहुत अच्छा है। अंग्रेजी दूकान का बना हुआ है। आप इसको ले लें।

समरकान्त ने अनिच्छा का भाव दिखाते हुए कहा—बड़ी-बड़ी दूकानें ही तो ग्राहकों को उलटे छुरे से मूंड़ती हैं। जो कपड़ा यहां बाजार में छह आने गज मिलेगा, वही अंग्रेजी दूकानों पर बारह आने गज से नीचे न मिलेगा। मैं तो दस रुपये तोले से बेशी नहीं दे सकता।

"और कुछ नहीं देगा?"

"कुछ और नहीं। यह भी आपकी खातिर है।"

यह गोरे उस श्रेणी के थे, जो अपनी आत्मा को शराब और जुए के हाथों बेच देते हैं, बे-टिकट फर्स्ट क्लास में सफर करते हैं, होटल वालों को धोखा देकर उड़ जाते हैं और जब कुछ बस नहीं चलता, तो बिगड़े हुए शरीफ बनकर भीख मांगते हैं। तीनों ने आपस में सलाह की और जंजीर बेच डाली। रुपये लेकर दूकान से उतरे और तांगे पर बैठे ही थे कि एक भिखारिन तांगे के पास आकर खड़ी हो गई। वे तीनों रुपये पाने की खुशी में भूले हुए थे कि सहसा उस भिखारिन ने छुरी निकालकर एक गोरे पर वार किया। छुरी उसके मुंह पर आ रही थी। उसने घबराकर मुंह पीछे हटाया तो छाती में चुभ गई। वह तो तांगे पर ही हाय-हाय करने लगा। शेष दोनों गोरे तांगे से उतर पड़े और दूकान पर आकर प्राणरक्षा मांगना चाहते थे कि भिखारिन ने दूसरे गोरे पर वार कर दिया। छुरी उसकी पसली में पहुंच गई। दूकान पर चढ़ने न पाया था, धड़ाम से गिर पड़ा। भिखारिन लपककर दूकान पर चढ़ गई और मेम पर झपटी कि अमरकान्त हां-हां करके उसकी छुरी छीन लेने को बढ़ा। भिखारिन ने उसे देखकर छुरी फेंक दी और दूकान के नीचे कूदकर खड़ी हो गई। सारे बाजार में हलचल मच गई—एक गोरे ने कई आदमियों को मार डाला है, लाला समरकान्त मार डाले गए, अमरकान्त को भी चोट आई है। ऐसी दशा में किसे अपनी जान भारी थी, जो वहां आता। लोग दूकानें बंद करके भागने लगे।

दोनों गोरे जमीन पर पड़े तड़प रहे थे, ऊपर मेम सहमी हुई खड़ी थी और लाला समरकान्त अमरकान्त का हाथ पकड़कर अंदर घसीट ले जाने की चेष्टा कर रहे थे। भिखारिन भी सिर झुकाए जड़वत् खड़ी थी—ऐसी भोली-भाली जैसे कुछ किया नहीं है !

वह भाग सकती थी, कोई उसका पीछा करने का साहस न करता, पर भागी नहीं। वह आत्मघात कर सकती थी। उसकी छुरी अब भी जमीन पर पड़ी हुई थी, पर उसने आत्मघात भी न किया। वह तो इस तरह खड़ी थी, मानो उसे यह सारा दृश्य देखकर विस्मय हो रहा हो।

सामने के कई दूकानदार जमा हो गए। पुलिस के दो जवान भी आ पहुंचे। चारों तरफ से आवाज आने लगी—यही औरत है ! यही औरत है ! पुलिस वालों ने उसे पकड़ लिया।

दस मिनट में सारा शहर और सारे अधिकारी वहां आकर जमा हो गए। सब तरफ लाल पगड़ियां दीख पड़ती थीं। सिविल सर्जन ने आकर आहतों को उठवाया और अस्पताल ले चले। इधर तहकीकात होने लगी। भिखारिन ने अपना अपराध स्वीकार किया।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने पूछा—तेरी इन आदमियों से कोई अदावत थी?

भिखारिन ने कोई जवाब न दिया।

सैकड़ों आवाजें आईं—बोलती क्यों नहीं हत्यारिन !

भिखारिन ने दृढ़ता से कहा—मैं हत्यारिन नहीं हूं।

"इन साहबों को तूने नहीं मारा?"

"हां, मैंने मारा है।"

"तो तू हत्यारिन कैसे नहीं है?"

"मैं हत्यारिन नहीं हूं। आज से छः महीने पहले ऐसे ही तीन आदमियों ने मेरी आबरू बिगाड़ी थी। मैं फिर घर नहीं गई। किसी को अपना मुंह नहीं दिखाया। मुझे होश नहीं कि

मैं कहां-कहां फिरी, कैसे रही, क्या-क्या किया? इस वक्त भी मुझे होश तब आया, जब मैं इन दोनों गोरों को घायल कर चुकी थी। तब मुझे मालूम हुआ कि मैंने क्या किया? मैं बहुत गरीब हूं। मैं नहीं कह सकती, मुझे छुरी किसने दी, कहां से मिली और मुझमें इतनी हिम्मत कहां से आई? मैं यह इसलिए नहीं कह रही हूं कि मैं फांसी से डरती हूं। मैं तो भगवान् से मनाती हूं कि जितनी जल्द हो सके, मुझे संसार से उठा लो। जब आबरू लुट गई, तो जीकर क्या करूंगी?''

इस कथन ने जनता की मनोवृत्ति बदल दी। पुलिस ने जिन-जिन लोगों के बयान लिए, सबने यही कहा—यह पगली है। इधर-उधर मारी-मारी फिरती थी। खाने को दिया जाता था, तो कुत्तों के आगे डाल देती थी। पैसे दिए जाते थे, तो फेंक देती थी।

एक तांगे वाले ने कहा—यह बीच सड़क पर बैठी हुई थी। कितनी ही घंटी बजाई, पर रास्ते से हटी नहीं। मजबूर होकर पटरी से तांगा निकाल लाया।

एक पान वाले ने कहा—एक दिन मेरी दूकान पर आकर खड़ी हो गई। मैंने एक बीड़ा दिया। उसे जमीन पर डालकर पैरों से कुचलने लगी, फिर गाती हुई चली गई।

अमरकान्त का बयान भी हुआ। लालाजी तो चाहते थे कि वह इस झंझट में न पड़े, पर अमरकान्त ऐसा उत्तेजित हो रहा था कि उन्हें दुबारा कुछ कहने का हौसला न हुआ। अमर ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। रंग को चोखा करने के लिए दो-चार बातें अपनी तरफ से जोड़ दी।

पुलिस के अफसर ने पूछा—तुम कह सकते हो, यह औरत पागल है?

अमरकान्त बोला—जी हां, बिल्कुल पागल। बीसियों ही बार उसे अकेले हंसते या रोते देखा है। कोई कुछ पूछता, तो भाग जाती थी।

यह सब झूठ था। उस दिन के बाद आज यह औरत यहां पहली बार उसे नजर आई थी। सभव है, उसने कभी, इधर-उधर भी दखा हो, पर वह उसे पहचान न सका था।

जब पुलिस पगली को लेकर चली, तो दो हजार आदमी थाने तक उसके साथ गए। अब वह जनता की दृष्टि में साधारण स्त्री न थी। देवी के पद पर पहुंच गई थी। किसी दैवी शक्ति के बगैर उसमें इतना साहस कहां से आ जाता! रात-भर शहर के अन्य भागों में आ-आकर लोग घटना-स्थल का मुआयना करते रहे। दो-एक आदमी उस कांड की व्याख्या करने में हार्दिक आनंद प्राप्त कर रहे थे। यों आकर तांगे के पास खडी हो गई, यों छुरी निकाली, यों झपटी, यों दोनों दूकान पर चढ़े, यों दूसरे गोरे पर टूटी। भैया अमरकान्त सामने न जाएं, तो मेम का काम भी तमाम कर देती। उस समय उसकी आंखों से लाल अंगारे निकल रहे थे। मुख पर ऐसा तेज था, मानो दीपक हो।

अमरकान्त अंदर गया तो देखा, नैना भावज का हाथ पकड़े सहमी खड़ी है और सुखदा राजसी करुणा से आंदोलित सजल नेत्र चारपाई पर बैठी हुई है। अमर को देखते ही वह खड़ी हो गई और बोली—यह वही औरत थी न?

''हां, वही तो मालूम होती है।''

''तो अब यह फांसी पा जाएगी?''

''शायद बच जाए, पर आशा कम है।''

''अगर इसको फांसी हो गई तो मैं समझूंगी, संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने उस पर ऐसा अत्याचार किया, उन्हें यही दंड मिलना चाहिए था। मैं अगर न्याय के पद पर होती, तो उसे बेदाग छोड़ देती। ऐसी देवी की तो प्रतिमा बनाकर पूजना चाहिए। उसने अपनी सारी बहनों का मुख उज्ज्वल कर दिया।''

अमरकान्त ने कहा—लेकिन यह तो कोई न्याय नहीं कि काम कोई करे सजा कोई पाए।

सुखदा ने उग्र भाव से कहा—वे सब एक हैं। जिस जाति में ऐसे दुष्ट हों उस जाति का पतन हो गया है। समाज में एक आदमी कोई बुराई करता है, तो सारा समाज बदनाम हो जाता है और उसका दंड सारे समाज को मिलना चाहिए। एक गोरी औरत को सरहद का कोई आदमी उठा ले गया था। सरकार ने उसका बदला लेने के लिए सरहद पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी थी। अपराधी कौन है, इसे पूछा भी नहीं। उसकी निगाह में सारा सूबा अपराधी था। इस भिखारिन का कोई रक्षक न था। उसने अपनी आबरू का बदला खुद लिया। तुम जाकर वकीलों से सलाह लो, फांसी न होने पाए, चाहे कितने ही रुपये खर्च हो जाएं। मैं तो कहती हूं, वकीलों को इस मुकदमे की पैरवी मुफ्त करनी चाहिए। ऐसे मुआमले में भी कोई वकील मेहनताना मांगे, तो मैं समझूंगी वह मनुष्य नहीं। तुम अपनी सभा में आज जलसा करके चंदा लेना शुरू कर दो। मैं इस दशा में भी इसी शहर से हजारों रुपये जमा कर सकती हूं। ऐसी कौन नारी है, जो उसके लिए नाहीं कर दे।

अमरकान्त ने उसे शांत करने के इरादे से कहा—जो कुछ तुम चाहती हो वह सब होगा। नतीजा कुछ भी हो, पर हम अपनी तरफ से कोई बात उठा न रखेंगे। मैं जरा प्रो० शान्तिकुमार के पास जाता हूं। तुम जाकर आराम से लेटो।

''मैं भी अम्मां के पास जाऊंगी। तुम मुझे उधर छोड़कर चले जाना।''

अमर ने आग्रहपूर्वक कहा—तुम चलकर शांति से लेटो, मैं अम्मां से मिलता चला जाऊंगा।

सुखदा ने चिढ़कर कहा—ऐसी दशा में जो शांति से लेटे वह मृतक है। इस देवी के लिए तो मुझे प्राण भी देने पड़ें, तो खुशी से दूं। अम्मां से मैं जो कहूंगी, वह तुम नहीं कह सकते। नारी के लिए नारी के हृदय में जो तड़प होगी, वह पुरुषों के हृदय में नहीं हो सकती। मैं अम्मा से इस मुकदमे के लिए पांच हजार से कम न लूंगी। मुझे उनका धन न चाहिए। चंदा मिले तो वाह-वाह, नहीं तो उन्हें खुद निकल आना चाहिए। तांगा बुलवा लो।

अमरकान्त को आज ज्ञात हुआ, विलासिनी के हृदय में कितनी वेदना, कितना स्वजाति-प्रेम, कितना उत्सर्ग है।

तांगा आया और दोनों रेणुकादेवी से मिलने चले।

## दस

तीन महीने तक सारे शहर में हलचल रही। रोज आदमी सब काम-धंधे छोड़कर कचहरी जाते। भिखारिन को एक नजर देख लेने की अभिलाषा सभी को खींच ले जाती। महिलाओं की भी

खासी संख्या हो जाती थी। भिखारिन ज्योंही लारी से उतरती, 'जय-जय' की गगन-भेदी ध्वनि और पुष्प-वर्षा होने लगती। रेणुका और सुखदा तो कचहरी के उठने तक वहीं रहतीं।

जिला मैजिस्ट्रेट ने मुकदमे को जजी में भेज दिया और रोज पेशियां होने लगीं। पंच नियुक्त हुए। इधर सफाई के वकीलों की एक फौज तैयार की गई। मुकदमे को सबूत की जरूरत न थी। अपराधिनी ने अपराध स्वीकार ही कर लिया था। बस, यही निश्चय करना था कि जिस वक्त उसने हत्या की उस वक्त होश में थी या नहीं। शहादतें कहती थीं, वह होश में न थी। डॉक्टर कहता था, उसमें अस्थिरचित्त होने के कोई चिह्न नहीं मिलते। डॉक्टर साहब बंगाली थे। जिस दिन वह बयान देकर निकले, उन्हें इतनी धिक्कारें मिलीं कि बेचारे को घर पहुंचना मुश्किल हो गया। ऐसे अवसरों पर जनता की इच्छा के विरुद्ध किसी ने चूं किया और उसे धिक्कार मिली। जनता आत्म-निश्चय के लिए कोई अवसर नहीं देती। उसका शासन किसी तरह की नर्मी नहीं करता।

रेणुका नगर की रानी बनी हुई थीं। मुकदमे की पैरवी का सारा भार उनके ऊपर था। शान्तिकुमार और अमरकान्त उनकी दाहिनी और बाईं भुजाएं थे। लोग आ-आकर खुद चंदा दे जाते। यहां तक कि लाला समरकान्त भी गुप्त रूप से सहायता कर रहे थे।

एक दिन अमरकान्त ने पठानिन को कचहरी में देखा। सकीना भी चादर ओढ़े उसके साथ थी।

अमरकान्त ने पूछा—बैठने को कुछ लाऊं, माताजी? आज आपसे भी न रहा गया?

पठानिन बोली—मैं तो रोज आती हूं बेटा, तुमने मुझे न देखा होगा। यह लड़की मानती ही नहीं।

अमरकान्त को रूमाल की याद आ गई, और वह अनुरोध भी याद आया, जो बुढ़िया ने उससे किया था, पर इस हलचल में वह कॉलेज तक तो जा न पाता था, उन बातों का कहां से खयाल रखता।

बुढ़िया ने पूछा—मुकदमे में क्या होगा बेटा? वह औरत छूटेगी कि सजा हो जायगी?

सकीना उसके और समीप आ गई।

अमर ने कहा—कुछ कह नहीं सकता, माता। छूटने की कोई उम्मीद नहीं मालूम होती; मगर हम प्रीवी-कौंसिल तक जाएंगे।

पठानिन बोली—ऐसे मामले में भी जज सजा कर दे, तो अंधेर है।

अमरकान्त ने आवेश में कहा—उसे सजा मिले चाहे रिहाई हो, पर उसने दिखा दिया कि भारत की दरिद्र औरतें भी अपनी आबरू की कैसे रक्षा कर सकती हैं।

सकीना ने पूछा तो अमर से, पर दादी की तरफ मुंह करके—हम दर्शन कर सकेंगे अम्मां?

अमर ने तत्परता से कहा—हां, दर्शन करने में क्या है? चलो पठानिन, मैं तुम्हें अपने घर की स्त्रियों के साथ बैठा दूं। वहां तुम उन लोगों से बातें भी कर सकोगी।

पठानिन बोली—हां, बेटा, पहले ही दिन से यह लड़की मेरी जान खा रही है। तुमसे मुलाकात ही न होती थी कि पूछूं। कुछ रूमाल बनाए थे। उनसे दो रुपये मिले। वह दोनों रुपये तभी से संचित कर रखे हुए हैं। चंदा देगी। न हो तो तुम्हीं ले लो बेटा, औरतों को

दो रुपये देते हुए शर्म आएगी।

अमरकान्त गरीबों का त्याग देखकर भीतर-ही-भीतर लज्जित हो गया। वह अपने को कुछ समझने लगा था। जिधर निकल जाता, जनता उसका सम्मान करती, लेकिन इन फाकेमस्तों का यह उत्साह देखकर उसकी आंखें खुल गईं। बोला—चंदे की तो अब कोई जरूरत नहीं है, अम्मां ! रुपये की कमी नहीं है। तुम इसे खर्च कर डालना। हां, चलो मैं उन लोगों से तुम्हारी मुलाकात करा दूं।

सकीना का उत्साह ठंडा पड़ गया। सिर झुकाकर बोली—जहां गरीबों के रुपये नहीं पूछे जाते, वहां गरीबों को कौन पूछेगा? वहां जाकर क्या करोगी, अम्मां ! आएगी तो यहीं से देख लेना।

अमरकान्त झेंपता हुआ बोला—नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है अम्मां, वहा तो एक पैसा भी हाथ फैलाकर लिया जाता है। गरीब-अमीर की कोई बात नहीं है। मैं खुद गरीब हूं। मैंने तो सिर्फ इस खयाल से कहा था कि तुम्हें तकलीफ होगी।

दोनों अमरकान्त के साथ चलीं, तो रास्ते में पठानिन ने धीरे से कहा—मैंने उस दिन तुमसे एक बात कही थी, बेटा ! शायद तुम भूल गए।

अमरकान्त ने शरमाते हुए कहा—नहीं-नहीं, मुझे याद है। जरा आजकल इसी झझट में पड़ा रहा। ज्योंही इधर से फुरसत मिली, मैं अपने दोस्तों से जिक्र करूंगा।

अमरकान्त दोनों स्त्रियो का रेणुका से परिचय कराके बाहर निकला, तो प्रो॰ शान्ति कुमार से मुठभेड़ हुई। प्रोफेसर ने पूछा—तुम कहां इधर-उधर घूम रहे हो जी? किसी वकील का पता नहीं। मुकदमा पेश होने वाला है। आज मुलजिमा का बयान होगा, इन वकीलों से खुदा समझे। जरा-सा इजलास पर खड़े क्या हो जाते हैं, गोया सारे संसार को उनकी उपासना करनी चाहिए। इससे कहीं अच्छा था कि दो-एक वकीलों को मेहनताने पर रख लिया जाता। मुफ्त का काम बेगार समझा जाता है। इतनी बेदिली से पैरवी की जा रही है कि मेरा खून खौलने लगता है। नाम सब चाहते हैं, काम कोई नहीं करना चाहता।अगर अच्छी जिरह होती, तो पुलिस के सारे गवाह उखड़ जाते। पर यह कौन करता? जानते हैं कि आज मुलजिमा का बयान होगा, फिर भी किसी को फिक्र नहीं।

अमरकान्त ने कहा—मैं एक-एक को इत्तिला दे चुका । कोई न आए तो मैं क्या करू?

शान्तिकुमार—मुकदमा खतम हो जाए, तो एक-एक की खबर लूगा।

इतने मे लारी आती दिखाई दी। अमरकान्त वकीलों को इत्तला करने दौड़ा। दर्शक चारो ओर से दौड़-दौड़कर अदालत के कमरे में आ पहुंचे। भिखारिन लारी से उतरी और कटघरे के सामने आकर खड़ी हो गई। उसके आते ही हजारों की आंखें उसकी ओर उठ गईं, पर उन आंखों में एक भी ऐसी न थी, जिसमें श्रद्धा न भरी हो। उसके पीले, मुरझाए हुए मुख पर आत्मगौरव की ऐसी कांति थी, जो कुत्सित दृष्टि के उठने के पहले ही निराश और पराभूत करके उसमें श्रद्धा को आरोपित कर देती थी।

जज साहब सांवले रंग के नाटे, चकले, वृहदाकार मनुष्य थे। उनकी लंबी नाक और छोटी-छोटी आंखें अनायास ही मुस्कराती मालूम देती थीं। पहले यह महाशय राष्ट्र के उत्साही सेवक थे और कांग्रेस के किसी प्रांतीय जलसे के सभापति हो चुके थे, पर इधर तीन साल

से वह जज हो गए थे। अतएव अब राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक् रहते थे, पर जानने वाले जानते थे कि वह अब भी पत्रों में नाम बदलकर अपने राष्ट्रीय विचारों का प्रतिपादन करते रहते हैं। उनके विषय में कोई शत्रु भी यह कहने का साहस नहीं कर सकता था कि वह किसी दबाव या भय से न्याय-पथ से जौ-भर विचलित हो सकते हैं। उनकी यही न्यायपरता इस समय भिखारिन की रिहाई में बाधक हो रही थी।

जज साहब ने पूछा—तुम्हारा नाम?

भिखारिन ने कहा—भिखारिन।

''तुम्हारे पिता का नाम?''

''पिता का नाम बताकर उन्हें कलंकित नहीं करना चाहती।''

''घर कहां है?''

भिखारिन ने दुःखी कंठ से कहा—पूछकर क्या कीजिएगा? आपको इससे क्या काम है?

''तुम्हारे ऊपर यह अभियोग है कि तुमने तीन तारीख को दो अंग्रेजों को छुरी से ऐसा जख्मी किया कि दोनों उसी दिन मर गए। तुम्हें यह अपराध स्वीकार है?''

भिखारिन ने निश्शंक भाव से कहा—आप उसे अपराध कहते हैं; मैं अपराध नहीं समझती।

''तुम मारना स्वीकार करती हो?''

''गवाहों ने झूठी गवाही थोड़े ही दी होगी।''

''तुम्हें अपने विषय में कुछ कहना है?''

भिखारिन ने स्पष्ट स्वर में कहा—मुझे कुछ नहीं कहना है। अपने प्राणों को बचाने के लिए मैं कोई सफाई नहीं देना चाहती। मैं तो यह सोचकर प्रसन्न हूं कि जल्द जीवन का अंत हो जाएगा। मैं दीन, अबला हूं। मुझे इतना ही याद है कि कई महीने पहले मेरा सर्वस्व लूट लिया गया और उसके लुट जाने के बाद मेरा जीना वृथा है। मैं उसी दिन मर चुकी। मैं आपके सामने खड़ी बोल रही हूं, पर इस देह में आत्मा नहीं है। उसे मैं जिंदा नहीं कहती, जो किसी को अपना मुंह न दिखा सके। मेरे इतने भाई-बहन व्यर्थ मेरे लिए इतनी दौड़-धूप और खर्च-वर्च कर रहे हैं। कलंकित होकर जीने से मर जाना कहीं अच्छा है। मैं न्याय नहीं मांगती, दया नहीं मांगती, मैं केवल प्राण-दंड मांगती हूं। हां, अपने भाई-बहनों से इतनी विनती करूंगी कि मेरे मरने के बाद मेरी काया का निरादर न करना, उसे छूने से घिन मत करना, भूल जाना कि वह किसी अभागिन पतिता की लाश है। जीते-जी मुझे जो चीज नहीं मिल सकती, वह मुझे मरने के पीछे दे देना। मैं साफ कहती हूं कि मुझे अपने किए पर रंज नहीं है, पछतावा नहीं है। ईश्वर न करे कि मेरी किसी बहन की ऐसी गति हो; लेकिन हो जाए तो उसके लिए इसके सिवाय कोई राह नहीं है। आप सोचते होंगे, अब यह मरने के लिए इतनी उतावली है, तो अब तक जीती क्यों रही? इसका कारण मैं आपसे क्या बताऊं? जब मुझे होश आया और अपने सामने दो आदमियों को तड़पते देखा, तो मैं डर गई। मुझे कुछ सूझ ही न पड़ा कि मुझे क्या करना चाहिए। उसके बाद भाइयों-बहनों की सज्जनता ने मुझे मोह के बंधन में जकड़ दिया, और अब तक मैं अपने को इस धोखे में डाले हुए हूं कि शायद मेरे मुख से कालिख

छूट गई और अब मुझे भी और बहनों की तरह विश्वास और सम्मान मिलेगा; लेकिन मन की मिठाई से किसी का पेट भरा है? आज अगर सरकार मुझे छोड़ भी दे, मेरे भाई-बहनें मेरे गले में फूलों की माला भी डाल दें, मुझ पर अशर्फियों की बरखा भी की जाए, तो क्या यहां से मैं अपने घर जाऊंगी? मैं विवाहिता हूं। मेरा एक छोटा-सा बच्चा है। क्या मैं उस बच्चे को अपना कह सकती हूं? क्या अपने पति को अपना कह सकती हूं? कभी नहीं। बच्चा मुझे देखकर मेरी गोद के लिए हाथ फैलाएगा; पर मैं उसके हाथों को नीचा कर दूंगी और आंखों में आंसू भरे मुंह फेरकर चली जाऊंगी। पति मुझे क्षमा भी कर दे। मैंने उसके साथ कोई विश्वासघात नहीं किया है। मेरा मन अब भी उसके चरणों से लिपट जाना चाहता है; लेकिन मैं उसके सामने ताक नहीं सकती। वह मुझे खींच भी ले जाए, तब भी मैं उस घर में पांव न रखूंगी। इस विचार से मैं अपने मन को संतोष नहीं दे सकती कि मेरे मन में पाप न था। इस तरह तो अपने मंन को वह समझाए, जिसे जीने की लालसा हो। मेरे हृदय से यह बात नहीं जा सकती कि तू अपवित्र है, अछूत है। कोई कुछ कहे, कोई कुछ सुने। आदमी को जीवन क्यों प्यारा होता है? इसलिए नहीं कि वह सुख भोगता है। जो सदा दुख भोगा करते हैं और रोटियों को तरसते हैं, उन्हें जीवन कुछ कम प्यारा नहीं होता। हमें जीवन इसलिए प्यारा होता है कि हमें अपनों का प्रेम और दूसरों का आदर मिलता है। जब इन दो में से एक के मिलने की भी आशा नहीं तो जीना वृथा है। अपने मुझसे अब भी प्रेम करें, लेकिन वह दया होगी, प्रेम नहीं। दूसरे अब भी मेरा आदर करें; लेकिन वह भी दया होगी, आदर नहीं। वह आदर और प्रेम अब मुझे मरकर ही मिल सकता है। जीवन में तो मेरे लिए निंदा, और बहिष्कार के सिवा कुछ नहीं है। यहां मेरी जितनी बहनें और भाई हैं, उन सबसे मैं यही भिक्षा मांगती हूं कि उस समाज के उद्धार के लिए भगवान् से प्रार्थना करें, जिसमें ऐसे नर-पिशाच उत्पन्न होते हैं।

भिखारिन का बयान समाप्त हो गया। अदालत के उस बड़े कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल दो-चार महिलाओं की सिसकियों की आवाज सुनाई देती थी। महिलाओं के मुख गर्व से चमक रहे थे। पुरुषों के मुख लज्जा से मलिन थे। अमरकान्त सोच रहा था, गोरों को ऐसा दुस्साहस इसीलिए तो हुआ कि वह अपने को इस देश का राजा समझते हैं। शान्तिकुमार ने मन-ही-मन एक व्याख्यान की रचना कर डाली थी, जिसका विषय था—स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार। सुखदा सोच रही थी—यह छूट जाती, तो मैं इसे अपने घर में रखती और इसकी सेवा करती। रेणुका उसके नाम पर एक स्त्री-औषधालय बनवाने की कल्पना कर रही थी।

सुखदा के समीप ही जज साहब की धर्मपत्नी बैठी हुई थीं। वह बड़ी देर से इस मुकदमे के संबंध में कुछ बातचीत करने को उत्सुक हो रही थीं, पर अपने समीप बैठी हुई स्त्रियों की अविश्वास-पूर्ण दृष्टि देखकर—जिससे वे उन्हें देख रही थीं, उन्हें मुंह खोलने का साहस न होता था।

अंत में उनसे न रहा गया। सुखदा से बोलीं—यह स्त्री बिल्कुल निरपराध है।

सुखदा ने कटाक्ष किया—जब जज साहब भी ऐसा समझें।

''मैं तो आज उनसे साफ-साफ कह दूंगी कि अगर तुमने इस औरत को सजा दी, तो मैं समझूंगी, तुमने अपने प्रभुओं का मुंह देखा।''

सहसा जज साहब ने खड़े होकर पंचों को थोड़े शब्दों में इस मुकदमे में अपनी सम्मति देने का आदेश दिया और खुद कुछ कागजों को उलटने-पलटने लगे। पंच लोग पीछे वाले कमरे में जाकर थोड़ी देर बातें करते रहे और लौटकर अपनी सम्मति दे दी। उनके विचार में अभियुक्त निरपराध थी। जज साहब जरा-सा मुस्कराए और कल फैसला सुनाने का वादा करके उठ खड़े हुए।

## ग्यारह

सारे शहर में कल के लिए दोनों तरह की तैयारियां होने लगीं—हाय-हाय की भी और वाह-वाह की भी। काली झंडियां भी बनीं और फलों की डालियां भी जमा की गईं, पर आशावादी कम थे, निराशावादी ज्यादा। गोरों का खून हुआ है। जज ऐसे मामले में भला क्या इंसाफ करेगा, क्या बचा हुआ है? शान्तिकुमार और सलीम तो खुल्लमखुल्ला कहते फिरते थे कि जज ने फांसी की सजा दे दी। कोई खबर लाता था—फौज की एक पूरी रेजीमेंट कल अदालत में तलब की गई है। कोई फौज तक न जाकर, सशस्त्र पुलिस तक ही रह जाता था। अमरकान्त को फौज के बुलाए जाने का विश्वास था।

दस बजे रात को अमरकान्त सलीम के घर पहुंचा। अभी यहां घंटे ही भर पहले आया था। सलीम ने चिंतित होकर पूछा—कैसे लौट पड़े भाई, क्या कोई नई बात हो गई?

अमर ने कहा—एक बात सूझ गई। मैंने कहा, तुम्हारी राय भी ले लूं। फांसी की सजा पर खामोश रह जाना, तो बुजदिली है। किचलू साहब ( जज ) को सबक देने की जरूरत होगी; ताकि उन्हें भी मालूम हो जाय कि नौजवान भारत इंसाफ का खून देखकर खामोश नहीं रह सकता। सोशल बायकाट कर दिया जाय। उनके महाराज को मैं रख लूंगा, कोचमैन को तुम रख लेना। बच्चा को पानी भी न मिले। जिधर से निकलें, उधर तालियां बजें।

सलीम ने मुस्कराकर कहा—सोचते-सोचते सोची भी तो वही बनियों की बात।

''मगर और कर ही क्या सकते हो?''

''इस बायकाट से क्या होगा? कोतवाली को लिख देगा, बीस महाराज और कोचवान हाजिर कर दिए जाएंगे।''

''दो-चार दिन परेशान तो होंगे हजरत !''

''बिल्कुल फजूल-सी बात है। अगर सबक ही देना है, तो ऐसा सबक दो, जो कुछ दिन हजरत को याद रहे। एक आदमी ठीक कर लिया जाए तो ऐन उस वक्त, जब हजरत फैसला सुनाकर बैठने लगें, एक जूता ऐसे निशाने से चलाए कि उनके मुंह पर लगे।''

अमरकान्त ने कहकहा मारकर कहा—बड़े मसखरे हो यार !

''इसमें मसखरेपन की क्या बात है?''

''तो क्या सचमुच तुम जूते लगवाना चाहते हो?''

''जी हां, और क्या मजाक कर रहा हूं? ऐसा सबक देना चाहता हूं कि फिर हजरत यहां मुंह न दिखा सकें।''

अमरकान्त ने सोचा—कुछ भद्दा काम तो है ही, पर बुराई क्या है? लातों के देवता कहीं बातों से मानते हैं? बोला—अच्छी बात है, देखी जायेगी; पर ऐसा आदमी कहां मिलेगा?

सलीम ने उसकी सरलता पर मुस्कराकर कहा—आदमी तो ऐसे मिल सकते हैं; जो राह चलते गरदन काट लें। यह कौन-सी बड़ी बात है? किसी बदमाश को दो सौ रुपये दे दो, बस। मैंने तो काले खां को सोचा है।

''अच्छा वह ! उसे तो मैं एक बार अपनी दूकान पर फटकार चुका हूं।''

''तुम्हारी हिमाकत थी। ऐसे दो-चार आदमियों को मिलाए रहना चाहिए। वक्त पर उनसे बड़ा काम निकलता है। मैं और सब बातें तय कर लूंगा, पर रुपये की फिक्र तुम करना। मैं तो अपना बजट पूरा कर चुका।''

''अभी तो महीना शुरू हुआ है, भाई !''

''जी हां, यहां शुरू ही में खत्म हो जाते हैं। फिर नोच-खसोट पर चलती है। कहीं अम्मां से दस रुपये उड़ा लाए, कहीं अब्बाजान से किताब के बहाने से दस-पांच ऐंठ लिए। पर दो सौ की थैली जरा मुश्किल से मिलेगी। हां, तुम इंकार कर दोगे, तो मजबूर होकर अम्मां का गला दबाऊंगा।''

अमर ने कहा—रुपये का गम नहीं। मैं जाकर लिए आता हूं।

सलीम ने इतनी रात गए रुपये लाना मुनासिब ना समझा। बात कल के लिए उठा रखी गई। प्रातःकाल अमर रुपये लाएगा और कालेखां से बातचीत पक्की कर ली जाएगी।

अमर घर पहुंचा तो साढ़े दस बज रहे थे। द्वार पर बिजली जल रही थी। बैठक मे लालाजी दो-तीन पंडितों के साथ बैठे बातें कर रहे थे। अमरकान्त को शंका हुई, इतनी रात गए यह जग-जग किस बात के लिए है। कोई नया शिगूफा तो नहीं खिला !

लालाजी ने उसे देखते ही डांटकर कहा—तुम कहां घूम रहे हो जी ? दस बजे के निकले-निकले आधी रात को लौटे हो। जरा जाकर लेडी डॉक्टर को बुला लो, वही जो बड़े अस्पताल में रहती है। अपने साथ लिए हुए आना।

अमरकान्त ने डरते-डरते पूछा—क्या किसी की तबीयत

समरकान्त ने बात काटकर कड़े स्वर में कहा—क्या बक-बक करते हो, मैं जो कहता हूं, वह करो। तुम लोगों ने तो व्यर्थ ही संसार में जन्म लिया। यह मुकदमा क्या हो गया, सारे घर के सिर जैसे भूत सवार हो गया। चटपट जाओ।

अमर को फिर कुछ पूछने का साहस न हुआ। घर में भी न जा सका, धीरे से सड़क पर आया और बाइसिकल पर बैठ ही रहा था कि भीतर से सिल्लो निकल आई। अमर को देखते ही बोली—अरे भैया, सुनो, कहां जाते हो? बहूजी बहुत बेहाल हैं, कब से तुम्हें बुला रही हैं? सारी देह पसीने से तर हो रही है। देखो भैया, मैं सोने की कंठी लूंगी। पीछे से हीला-हवाला न करना।

अमरकान्त समझ गया। बाइसिकल से उतर पड़ा और हवा की भांति झपटता हुआ अंदर जा पहुंचा। वहां रेणुका, एक दाई, पड़ोस की एक ब्राह्मणी और नैना आंगन में बैठी हुई थीं। बीच में एक ढोलक रखी हुई थी। कमरे में सुखदा प्रसव-वेदना से हाय-हाय कर रही थी।

नैना ने दौड़कर अमर का हाथ पकड़ लिया और रोती हुई बोली—तुम कहां थे भैया, भाभी बड़ी देर से बेचैन हैं।

अमर के हृदय में आंसुओं की ऐसी लहर उठी कि वह रो पड़ा। सुखदा के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया; पर अंदर पांव न रख सका। उसका हृदय फटा जाता था।

सुखदा ने वेदना-भरी आंखों से उसकी ओर देखकर कहा—अब नहीं बचूंगी! हाय! पेट में जैसे कोई बर्छी चुभो रहा है। मेरा कहा-सुना माफ करना।

रेणुका ने दौड़कर अमरकान्त से कहा—तुम यहां से जाओ, भैया! तुम्हें देखकर वह और भी बेचैन होगी। किसी को भेज दो, लेडी डॉक्टर को बुला लाए। जी कड़ा करो, समझदार होकर रोते हो?

सुखदा बोली—नहीं अम्मां, उनसे कह दो जरा यहां बैठ जाएं। मैं अब न बचूंगी। हाय भगवान्!

रेणुका ने अमर को डांटकर कहा—मैं तुमसे कहती हूं, यहां से चले जाओ, और तुम खड़े रो रहे हो। जाकर लेडी डॉक्टर को बुलवाओ।

अमरकान्त रोता हुआ बाहर निकला और जनाने अस्पताल की ओर चला; पर रास्ते में भी रह-रहकर उसके कलेजे में हूक-सी उठती रही। सुखदा की वह वेदनामयी मूर्ति आंखों के सामने फिरती रही।

लेडी डॉक्टर मिस हूपर को अक्सर कुसमय बुलावे आते रहते थे। रात की उसकी फीस दुगुनी थी। अमरकान्त डर रहा था कि कहीं बिगड़े न कि इतनी रात गए क्यों आए; लेकिन मिस हूपर ने सहर्ष उसका स्वागत किया और मोटर लाने की आज्ञा देकर उससे बातें करने लगी।

''यह पहला ही बच्चा है?''

''जी हां।''

''आप रोएं नहीं। घबराने की कोई बात नहीं। पहली बार ज्यादा दर्द होता है। औरत बहुत दुर्बल तो नहीं है?''

''आजकल तो बहुत दुबली हो गई है।''

''आपको और पहले आना चाहिए था।''

अमर के प्राण सूख गए। वह क्या जानता था, आज ही यह आफत आने वाली है, नहीं तो कचहरी से सीधे घर आता।

मेम साहब ने फिर कहा—आप लोग अपनी लेडियों को कोई एक्सरसाइज नहीं करवाते। इसलिए दर्द ज्यादा होता है। अंदर के स्नायु बंधे रह जाते हैं न!

अमरकान्त ने सिसककर कहा—मैडम, अब तो आप ही की दया का भरोसा है।

''मैं तो चलती हूं; लेकिन शायद सिविल सर्जन को बुलाना पड़े।''

अमर ने भयातुर होकर कहा—कहिए तो उनको लेता चलूं।

मेम ने उसकी ओर दयाभाव से देखा—नहीं, अभी नहीं। पहले मुझे चलकर देख लेने दो।

अमरकान्त को आश्वासन न हुआ। उसने भय-कातर स्वर में कहा—मैडम, अगर सुखदा को कुछ हो गया, तो मैं भी मर जाऊंगा।

मेम ने चिंतित होकर पूछा—तो क्या हालत अच्छी नहीं है?

"दर्द बहुत हो रहा है।"

"हालत तो अच्छी है?"

"चेहरा पीला पड़ गया है, पसीना....."

"हम पूछते हैं हालत कैसी है? उसका जी तो नहीं डूब रहा है? हाथ-पांव तो ठंडे नहीं हो गए हैं?"

मोटर तैयार हो गई। मेम साहब ने कहा—तुम भी आकर बैठ जाओ। साइकिल कल हमारा आदमी दे आएगा।

अमर ने दीन आग्रह के साथ कहा—आप चलें, मैं जरा सिविल सर्जन के पास होता आऊं। बुलानाले पर लाला समरकान्त का मकान

"हम जानते हैं।"

मेम साहब तो उधर चली, अमरकान्त सिविल सर्जन को बुलाने चला। ग्यारह बज गए थे। सड़कों पर भी सन्नाटा था। और पूरे तीन मील की मंजिल थी। सिविल सर्जन छावनी में रहता था। वहां पहुंचते-पहुंचते बारह का अमल हो आया। सदर फाटक खुलवाने, फिर साहब को इत्तला कराने में एक घंटे से ज्यादा लग गया। साहब उठे तो, पर जामे से बाहर। गरजते हुए बोले—हम इस वक्त नहीं जा सकता।

अमर ने निश्शंक होकर कहा—आप अपनी फीस ही तो लेंगे?

"हमारा रात का फीस सौ रुपये है।"

"कोई हरज नहीं है।"

"तुम फीस लाया है?"

अमर ने डांट बताई—आप हरेक से पेशगी फीस नहीं लेते। लाला समरकान्त उन आदमियों में नहीं हैं जिन पर सौ रुपये का भी विश्वास न किया जा सके। वह इस शहर के सबसे बड़े साहूकार हैं। मैं उनका लड़का हूं।

साहब कुछ ठंडे पड़े। अमर ने उनको सारी कैफियत सुनाई तो चलने पर तैयार हो गए, अमर ने साइकिल वहीं छोड़ी और साहब के साथ मोटर में जा बैठा। आध घंटे में मोटर बुलानाले जा पहुंची। अमरकान्त को कुछ दूर से ही शहनाई की आवाज सुनाई दी। बंदूकें छूट रही थीं। उसका हृदय आनंद से फूल उठा।

द्वार पर मोटर रुकी, तो लाला समरकान्त ने आकर डॉक्टर को सलाम किया और बोले—हुजूर के इकबाल से सब चैन-चान है। पोते ने जन्म लिया है।

उनके जाने के बाद लालाजी ने अमरकान्त को आड़े हाथों लिया—मुफ्त में सौ रुपये की चपत पड़ी। अमरकान्त ने झल्लाकर कहा—मुझसे रुपये ले लीजिएगा। आदमी से भूल हो ही जाती है। ऐसे अवसर पर मैं रुपये का मुंह नहीं देखता।

किसी दूसरे अवसर पर अमरकान्त इस फटकार पर घंटों बिसूरा करता, पर इस वक्त उसका मन उत्साह और आनंद में भरा हुआ था। भरे हुए गेंद पर ठोकरों का क्या असर? उसके जी में तो आ रहा था, इस वक्त क्या लुटा दूं। वह अब एक पुत्र का पिता है। अब कौन उससे हेकड़ी जता सकता है ! वह नवजात शिशु जैसे स्वर्ग से उसके लिए आशा और

अमरता का आशीर्वाद लेकर आया है। उसे देखकर अपनी आंखें शीतल करने के लिए वह विकल हो रहा था। ओहो ! इन्हीं आंखों से वह उस देवता के दर्शन करेगा !

लेडी हूपर ने उसे प्रतीक्षा भरी आंखों से ताकते देखकर कहा—बाबूजी, आप यों बालक को नहीं देख सकेंगे। आपको बड़ा-सा इनाम देना पड़ेगा।

अमर ने संपन्न नम्रता के साथ कहा—बालक तो आपका है। मैं तो केवल आपका सेवक हूं। जच्चा की तबीयत कैसी है?

''बहुत अच्छी। अभी सो गई है।''

''बालक खूब स्वस्थ है?''

''हां, अच्छा है। बहुत सुंदर। गुलाब का पुतला-सा।''

यह कहकर सौरगृह में चली गई। महिलाएं तो गाने-बजाने में मग्न थीं। मुहल्ले की पचासों स्त्रियां जमा हो गई थीं और उनका संयुक्त स्वर, जैसे एक रस्सी की भांति स्थूल होकर अमर के गले को बांधे लेता था। उसी वक्त लेडी हूपर ने बालक को गोद में लेकर उसे सौरगृह की तरफ आने का इशारा किया। अमर उमंग से भरा हुआ चला, पर सहसा उसका मन एक विचित्र भय से कातर हो उठा। वह आगे न बढ़ सका। वह पापी मन लिए हुए इस वरदान को कैसे ग्रहण कर सकेगा। वह इस वरदान के योग्य है ही कब? उसने इसके लिए कौन सी तपस्या की है? यह ईश्वर की अपार दया है—जो उन्होंने यह विभूति उसे प्रदान की। तुम कैसे दयालु हो, भगवान् !

श्यामल क्षितिज के गर्भ से निकलने वाली बाल-ज्योति की भांति अमरकान्त को अपने अंत:करण की सारी क्षुद्रता, सारी कलुषता के भीतर से एक प्रकाश-सा निकलता हुआ जान पड़ा, जिसने उसके जीवन की रजत-शोभा प्रदान कर दी। दीपकों के प्रकाश में, संगीत के स्वरों में, गगन की तारिकाओं में उसी शिशु की छवि थी। उसी का माधुर्य था, उसी का नृत्य था।

सिल्लो आकर रोने लगी। अमर ने पूछा—तुझे क्या हुआ है? क्यों रोती है?

सिल्लो बोली—मेम साहब ने मुझे भैया को नहीं देखने दिया, दुत्कार दिया। क्या मैं बच्चे को नजर लगा देती? मेरे बच्चे थे, मैंने भी बच्चे पाले हैं। मैं जरा देख लेती तो क्या होता?

अमर ने हंसकर कहा—तू कितनी पागल है, सिल्लो ! उसने इसलिए मना किया होगा कि कहीं बच्चे को हवा न लग जाए। इन अंग्रेज डॉक्टरनियों के नखरे भी तो निराले होते हैं। समझती-समझाती नहीं, तरह-तरह के नखरे बघारती हैं, लेकिन उनका राज तो आज ही के दिन है न। फिर तो अकेली दाई रह जाएगी। तू ही तो बच्चे को पालेगी, दूसरा कौन पालने वाला बैठा हुआ है?

सिल्लो की आंसू-भरी आंखें मुस्करा पड़ीं। बोली—मैंने दूर से देख लिया। बिल्कुल तुमको पड़ा है। रंग बहूजी का है ! मैं कंठी ले लूंगी, कहे देती हूं !

दो बज रहे थे। उसी वक्त लाला समरकान्त ने अमर को बुलाया और बोले—नींद तो अब क्या आएगी? बैठकर कल के उत्सव का एक तखमीना बना लो। तुम्हारे जन्म में तो कारबार फैला न था, नैना कन्या थी। पच्चीस वर्ष के बाद भगवान् ने यह दिन दिखाया है। कुछ लोग नाच-मुज़रे का विरोध करते हैं। मुझे तो इसमें कोई हानि नहीं दीखती। खुशी

के यही अवसर हैं, चार भाई-बंद, यार-दोस्त आते हैं, गाना-बजाना सुनते हैं, प्रीति-भोज में शरीक होते हैं। यही जीवन के सुख हैं। और इस संसार में क्या रखा है।

अमर ने आपत्ति की—लेकिन रंडियों का नाच तो ऐसे शुभ अवसर पर कुछ शोभा नहीं देता।

लालाजी ने प्रतिवाद किया—तुम अपना विज्ञान यहां न घुसेड़ो। मैं तुमसे सलाह नहीं पूछ रहा हूं। कोई प्रथा चलती है, तो उसका आधार भी होता है। श्रीरामचन्द्र के जन्मोत्सव में अप्सराओं का नाच हुआ था। हमारे समाज में इसे शुभ माना गया है।

अमर ने कहा—अंग्रेजों के समाज में तो इस तरह के जलसे नहीं होते।

लालाजी ने बिल्ली की तरह चूहे पर झपटकर कहा—अंग्रेजों के यहां रंडियां नहीं, घर की बहू-बेटियां नाचती हैं, जैसे हमारे चमारों में होता है। बहू-बेटियों को नचाने से तो यह कहीं अच्छा है कि रंडियां नाचें। कम-से-कम मैं और मेरी तरह के और बुड्ढे अपनी बहू-बेटियों को नचाना कभी पसंद न करेंगे।

अमरकान्त को कोई जवाब न सूझा। सलीम और दूसरे यार-दोस्त आएंगे। खासी चहल-पहल रहेगी। उसने जिद भी की तो क्या नतीजा। लालाजी मानने के नहीं। फिर एक उसके करने से तो नाच का बहिष्कार हो नहीं जाता।

वह बैठकर तखमीना लिखने लगा।

सलीम ने मामूल से कुछ पहले उठकर काले खां को बुलाया और रात का प्रस्ताव उसके सामने रखा। दो सौ रुपये की रकम कुछ कम नहीं होती। काले खां ने छाती ठोंककर कहा—भैया, एक-दो जूते की क्या बात है, कहो तो इजलास पर पचास गिनकर लगाऊं। छः महीने से बेसी तो होती नहीं। दो सौ रुपये बाल-बच्चों के खाने-पीने के लिए बहुत हैं।

## बारह

सलीम ने सोचा अमरकान्त रुपये लिए आता होगा, पर आठ बजे, नौ का अमल हुआ और अमर का कहीं पता नहीं। आया क्यों नहीं? कहीं बीमार तो नहीं पड़ गया। ठीक है, रुपये का इंतजाम कर रहा होगा। बाप तो टका न देंगे। सास से जाकर कहेगा, तब मिलेंगे। आखिर दस बज गए। अमरकान्त के पास चलने को तैयार हुआ कि प्रो॰ शान्तिकुमार आ पहुंचे। सलीम ने द्वार तक जाकर उनका स्वागत किया। डॉ॰ शान्तिकुमार ने कुर्सी पर लेटते हुए पंखा चलाने का इशारा करके कहा—तुमने कुछ सुना, अमर के घर लड़का हुआ है। वह आज कचहरी न जा सकेगा। उसकी सास भी वहीं हैं। समझ में नहीं आता आज का इंतजाम कैसे होगा? उसके बगैर हम किसी तरह का डिमांस्ट्रेशन (प्रदर्शन) न कर सकेंगे। रेणुकादेवी आ जातीं, तो बहुत-कुछ हो जाता, पर उन्हें भी फुर्सत नहीं है।

सलीम ने काले खां की तरफ देखकर कहा—यह तो आपने बुरी खबर सुनाई। उसके घर में आज ही लड़का भी होना था। बोलो काले खां, अब?

काले खां ने अविचलित भाव से कहा—तो कोई हर्ज नहीं, भैया। तुम्हारा काम मैं

कर दूंगा। रुपये फिर मिल जाएंगे। अब जाता हूं, दो-चार रुपये का सामान लेकर घर में रख दूं। मैं उधर ही से कचहरी चला जाऊंगा। ज्योंही तुम इशारा करोगे, बस।

वह चला गया, तो शान्तिकुमार ने संदेहात्मक स्वर में पूछा—यह क्या कह रहा था, मैं न समझा?

सलीम ने इस अंदाज से कहा मानो यह विषय गंभीर विचार के योग्य नहीं है—कुछ नहीं, जरा काले खां की जवांमर्दी का तमाशा देखना है। अमरकान्त की यह सलाह है कि जज साहब आज फैसला सुना चुकें, तो उन्हें थोड़ा-सा सबक दे दिया जाए।

डॉक्टर साहब ने लंबी सांस खींचकर कहा—तो कहो, तुम लोग बदमाशी पर उतर आए। अमरकान्त की यह सलाह है, यह और भी अफसोस की बात है। वह तो यहां है ही नहीं; मगर तुम्हारी सलाह से यह तजवीज हुई है, इसीलिए तुम्हारे ऊपर भी इसकी उतनी ही जिम्मेदारी है। मैं इसे कमीनापन कहता हूं तुम्हें यह समझने का कोई हक नहीं है कि जज साहब अपने अफसरों को खुश करने के लिए इंसाफ का खून कर देंगे। जो आदमी इल्म में, अक्ल में, तजुर्बे में, इज्जत में तुमसे कोसों आगे है, वह इंसाफ में तुमसे पीछे नहीं रह सकता। मुझे इसलिए और भी ज्यादा रंज है कि मैं तुम दोनों को शरीफ और बेलौस मसझता था।

सलीम का मुंह जरा-सा निकल आया। ऐसी लताड़ उसने उम्र में कभी न पाई थी। उसके पास अपनी सफ्फाई देने के लिए एक भी तर्क, एक भी शब्द न था। अमरकान्त के सिर इसका भार डालने की नीयत से बोला—मैंने तो अमरकान्त को मना किया था; पर जब वह न माने तो मैं क्या करता?

डॉक्टर साहब ने डांटकर कहा—तुम झूठ बोलते हो। मैं यह नहीं मान सकता। यह तुम्हारी शरारत है।

''आपको मेरा यकीन ही न आए, तो क्या इलाज?''

''अमरकान्त के दिल में ऐसी बात हर्गिज नहीं पैदा हो सकती।''

सलीम चुप हो गया। डॉक्टर साहब कह सकते—थे मान लें, अमरकान्त ही ने यह प्रस्ताव पास किया तो तुमने इसे क्यों मान लिया? इसका उसके पास कोई जवाब न था।

एक क्षण के बाद डॉक्टर साहब घड़ी देखते हुए बोले—आज इस लौंडे पर ऐसी गुस्सा आ रही है कि गिनकर पचास हंटर जमाऊं। इतने दिनों तक इस मुकदमे के पीछे सिर पटकता फिरा, और आज जब फैसले का दिन आया तो लड़के का जन्मोत्सव मनाने बैठ रहा। न जाने हम लोगों में अपनी जिम्मेदारी का खयाल कब पैदा होगा? पूछो, इस जन्मोत्सव में क्या रखा है? मर्द का काम है संग्राम में डटे रहना; खुशियां मनाना तो विलासियों का काम है। मैंने फटकारा तो हंसने लगा। आदमी वह है जो जीवन का एक लक्ष्य बना ले और जिंदगी-भर उसके पीछे पड़ा रहे। कभी कर्त्तव्य से मुंह न मोड़े। यह क्या कि कटे हुए पतंग की तरह जिधर हवा उड़ा ले जाए, उधर चला जाए। तुम तो कचहरी चलने को तैयार हो? हमें और कुछ नहीं कहना है। अगर फैसला अनुकूल है, तो भिखारिन को जुलूस के साथ गंगा-तट तक लाना होगा। वहां सब लोग स्नान करेंगे और अपने घर चले जाएंगे। सजा हो गई तो उसे बधाई देकर विदा करना होगा। आज ही शाम को 'तालीमी इसलाह' पर मेरी स्पीच होगी। उसकी भी फिक्र करनी है। तुम भी कुछ बोलोगे?

सलीम ने सकुचाते हुए कहा—मैं ऐसे मसले पर क्या बोलूंगा?

"क्यों, हर्ज क्या है? मेरे खयालात तुम्हें मालूम हैं। यह किराए की तालीम हमारे कैरेक्टर को तबाह किए डालती है। हमने तालीम को भी एक व्यापार बना लिया है। व्यापार में ज्यादा पूंजी लगाओ, ज्यादा नफा होगा। तालीम में भी खर्च ज्यादा करो, ज्यादा ऊंचा ओहदा पाओगे। मैं चाहता हूं, ऊंची-से-ऊंची तालीम सबके लिए मुआफ हो, ताकि गरीब-से-गरीब आदमी भी ऊंची-से-ऊंची लियाकत हासिल कर सके और ऊंचे-से-ऊंचा ओहदा पा सके। यूनिवर्सिटी के दरवाजे मैं सबके लिए खुले रखना चाहता हूं। सारा खर्च गवर्नमेंट पर पड़ना चाहिए। मुल्क को तालीम की उससे कहीं ज्यादा जरूरत है, जितनी फौज की।"

सलीम ने शंका की—फौज न हो, तो मुल्क की हिफाजत कौन करे?

डॉक्टर साहब ने गंभीरता के साथ कहा—मुल्क की हिफाजत करेंगे हम और तुम और मुल्क के दस करोड़ जवान जो अब बहादुरी और हिम्मत में दुनिया की किसी कौम से पीछे नहीं हैं। उसी तरह, जैसे हम और तुम रात को चोरों के आ जाने पर पुलिस को नहीं पुकारते, बल्कि अपनी-अपनी लकड़ियां लेकर घरों से निकल पड़ते हैं।

सलीम ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा—मैं बोल तो न सकूंगा, लेकिन आऊंगा जरूर।

सलीम ने मोटर मंगवाई और दोनों आदमी कचहरी चले। आज वहां और दिनों से कहीं ज्यादा भीड़ थी,पर जैसे बिन दूल्हा की बारात हो। कहीं कोई शृखला न थी। सौ सौ, पचास-पचास की टोलियां जगह-जगह खड़ी या बैठी शून्य-दृष्टि से ताक रही थीं। कोई बोलने लगता था, तो सौ-दो सौ आदमी इधर-उधर से आकर उसे घर लेते थे। डॉक्टर साहब को देखते ही हजारों आदमी उनकी तरफ दौड़े। डॉक्टर साहब मुख्य कार्यकर्त्ताओं को आवश्यक बाते समझाकर वकालतखाने की तरफ चले, तो देखा लाला समरकान्त सबको निमंत्रण-पत्र बांट रहे हैं। वह उत्सव उस समय वहां सबसे आकर्षक विषय था। लोग बड़ी उत्सुकता से पूछ रहे थे, कौन-कौन सी तवायफें बुलाई गई हैं? भांड़ भी हैं या नहीं? मांसाहारियों के लिए भी कुछ प्रबंध है? एक जगह दस-बारह सज्जन नाच पर वाद-विवाद कर रहे थे। डॉक्टर साहब को देखते ही एक महाशय ने पूछा—कहिए आप उत्सव में आएंगे, या आपको कोई आपत्ति है?

डॉ॰ शान्तिकुमार ने उपेक्षा-भाव से कहा—मेरे पास इससे ज्यादा जरूरी काम है।

एक साहब ने पूछा—आखिर आपको नाच से क्यों एतराज है?

डॉक्टर ने अनिच्छा से कहा—इसलिए कि आप और हम नाचना ऐब समझते हैं। नाचना विलास की वस्तु नहीं, भक्ति और आध्यात्मिक आनंद की वस्तु है, पर हमने इसे लज्जास्पद बना रखा है। देवियों को विलास और भोग की वस्तु बनाना अपनी माताओं और बहनों का अपमान करना है। हम सत्य से इतनी दूर हो गए हैं कि उसका यथार्थ रूप भी हमें नहीं दिखाई देता। नृत्य जैसे पवित्र

सहसा एक युवक ने समीप आकर डॉक्टर साहब को प्रणाम किया। लंबा, दुबला-पतला आदमी था, मुख सूखा हुआ, उदास, कपड़े मैले और जीर्ण, बालों पर गर्द पड़ी हुई। उसकी गोद में एक साल भर का हृष्ट-पुष्ट बालक था, बड़ा चंचल, लेकिन कुछ डरा हुआ।

डॉक्टर ने पूछा—तुम कौन हो? मुझसे कुछ काम है?

युवक ने इधर-उधर संशय-भरी आंखों से देखा, मानो इन आदमियों के सामने वह अपने विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, और बोला—मैं तो ठाकुर हूं। यहां से छ: सात कोस पर एक गांव है महुली, वहीं रहता हू।

डॉक्टर साहब ने उसे तीव्र नेत्रों से देखा, और समझ गए। बोले—अच्छा, वही गांव, जो सड़क के पश्चिम तरफ है। आओ मेरे साथ।

डॉक्टर साहब उसे लिए पास वाले बगीचे में चले गए और एक बेंच पर बैठकर उसकी ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखा कि अब वह उसकी कथा सुनने को तैयार है।

युवक ने सकुचाते हुए कहा—इस मुकदमे में जो औरत है, वह इसी बालक की मां है। घर में हम दो प्राणियों के सिवा कोई और नहीं है। मैं खेती-बाड़ी करता हूं। वह बाजार में कभी-कभी सौदा-सुलुफ लाने चली जाती थी। उस दिन गांव वालों के साथ अपने लिए एक साडी लेने गई थी। लौटती बार वह वारदात हो गई, गांव के सब आदमी छोड़कर भाग गए। उस दिन से वह घर नहीं गई। मैं कुछ नहीं जानता, कहां घूमती रही । मैंने भी उसकी खोज नहीं की। अच्छा ही हुआ कि वह उस समय घर नहीं गई, नहीं हम दोनों में एक की या दोनों की जान जाती। इस बच्चे के लिए मुझे विशेष चिंता थी। बार-बार मां को खोजता, पर मैं इसे बहलाता रहता। इसी की नींद सोता और इसी की नींद जागता। पहले तो मालूम होता था, बचेगा नहीं, लेकिन भगवान् की दया थी। धीरे-धीरे मां को भूल गया। पहले मैं इसका बाप था, अब तो मां-बाप दोनों मैं ही हूं। बाप कम, मां ज्यादा। मैंने मन में समझा था, वह कहीं डूब मरी होगी। गांव के लोग कभी कभी कहते—उसकी तरह की एक औरत छावनी की ओर है, पर मैं कभी उन पर विश्वास न करता।

जिस दिन मुझे खबर मिली कि लाला समरकान्त की दूकान पर एक औरत ने दो गोरों को मार डाला और उस पर मुकदमा चल रहा है, तब मैं समझ गया कि वही है। उस दिन से हर पेशी पर आता हूं और सबके पीछे खड़ा रहता हूं। किसी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। आज मैंने समझा, अब उससे सदा के लिए नाता टूट रहा है, इसलिए बच्चे को लेता आया कि इसके देखने की उसे लालसा न रह जाए। आप लोगों ने तो बहुत खरच-बरच किया, पर भाग्य में जो लिखा था, वह कैसे टलता? आपसे यही कहना है कि जज साहब फैसला सुना चुकें तो एक छिन के लिए उससे मेरी भेंट करा दीजिएगा। मैं आपसे सत्य कहता हूं बाबूजी, वह अगर बरी हो जाये तो मैं उसके चरण धो-धोकर पीऊं और घर ले जाकर उसकी पूजा करूं। मेरे भाई-बंद अब भी नाक-भौं सिकोड़ेंगे, पर जब आप लोग जैसे बड़े-बड़े आदमी मेरे पक्ष में हैं, तो मुझे बिरादरी की परवाह नहीं।

शान्तिकुमार ने पूछा—जिस दिन उसका बयान हुआ, उस दिन तुम थे?

युवक ने सजल नेत्र होकर कहा—हां बाबूजी, था। सबके पीछे द्वार पर खड़ा रो रहा था। यही जी में आता था कि दौड़कर चरणों से लिपट जाऊं और कहूं—मुन्नी, मैं तेरा सेवक हूं, तू अब तक मेरी स्त्री थी आज से मेरी देवी है। मुन्नी ने मेरे पुरखों को तार दिया बाबूजी, और क्या कहूं?

शान्तिकुमार ने फिर पूछा—मान लो, आज वह छूट जाए, तो तुम उसे घर ले जाओगे?

युवक ने पुलकित कंठ से कहा—यह पूछने की बात नहीं है, बाबूजी । मैं उसे आंखों

पर बैठाकर ले जाऊंगा और जब तक जिऊंगा, उसका दास बना रहकर अपना जनम सफल करूंगा।

एक क्षण के बाद उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा—क्या छूटने की कुछ आशा है, बाबूजी?

"औरों को तो नहीं है; पर मुझे है।"

युवक डॉक्टर साहब के चरणों पर गिरकर रोने लगा। चारों ओर निराशा की बातें सुनने के बाद आज उसने आशा का शब्द सुना है और वह निधि पाकर उसके हृदय की समस्त भावनाएं मानो मंगलगान कर रही हैं। और हर्ष के अतिरेक में मनुष्य क्या आंसुओं को संयत रख सकता है?

मोटर का हार्न सुनते ही दोनों ने कचहरी की तरफ देखा। जज साहब आ गए। जनता का वह अपार सागर चारों ओर से उमड़कर अदालत के कमरे के सामने जा पहुंचा। फिर भिखारिन लाई गई। जनता ने उसे देखकर जय-घोष किया। किसी-किसी ने पुष्प-वर्षा भी की। वकील, बैरिस्टर, पुलिस-कर्मचारी, अफसर सभी आ-आकर यथास्थान बैठ गए।

सहसा जज साहब ने एक उड़ती हुई निगाह से जनता को देखा। चारों तरफ सन्नाटा हो गया। असंख्य आंखें जज साहब की ओर ताकने लगीं, मानो कह रही थीं—आप ही हमारे भाग्य विधाता हैं।

जज साहब ने संदूक से टाइप किया हुआ फैसला निकाला और एक बार खांसकर उसे पढ़ने लगे। जनता सिमटकर और समीप आ गई। अधिकांश लोग फैसले का एक शब्द भी समझते न थे, पर कान सभी लगाए हुए थे। चावल और बताशों के साथ न जाने कब रुपये भी लूट में मिल जाएं।

कोई पंद्रह मिनट तक जज साहब फैसला पढ़ते रहे, और जनता चिंतामय प्रतीक्षा से तन्मय होकर सुनती रही।

अंत में जज साहब के मुख से निकला—यह सिद्ध है कि मुन्नी ने हत्या की

कितनों ही के दिल बैठ गए। एक-दूसरे की ओर पराधीन नेत्रों से देखने लगे?

जज ने वाक्य की पूर्ति की—लेकिन यह भी सिद्ध है कि उसने यह हत्या मानसिक अस्थिरता की दशा में की—इसलिए मैं उसे मुक्त करता हूं।

वाक्य का अंतिम शब्द आनंद की उस तूफानी उमंग में डूब गया। आनंद, महीनों चिंता के बंधनों में पड़े रहने के बाद आज जो छूटा, तो छूटे हुए बछड़े की भांति कुलांचें मारने लगा। लोग मतवाले हो-होकर एक-दूसरे के गले मिलने लगे। घनिष्ठ मित्रों में धौल-धप्पा होने लगा। कुछ लोगों ने अपनी-अपनी टोपियां उछालीं। जो मसखरे थे, उन्हें जूते उछालने की सूझी। सहसा मुन्नी, डॉक्टर शान्तिकुमार के साथ गंभीर हास्य से अलंकृत, बाहर निकली, मानो कोई रानी अपने मंत्री के साथ आ रही है। जनता की वह सारी उद्दंडता शांत हो गई। रानी के सम्मुख बेअदबी कौन कर सकता है !

प्रोग्राम पहले ही निश्चित था। पुष्प-वर्षा के पश्चात् मुन्नी के गले में जयमाल डालना था। यह गौरव जज साहब की धर्मपत्नी को प्राप्त हुआ, जो इस फैसले के बाद जनता की श्रद्धा-पात्री हो चुकी थीं। फिर बैंड बजने लगा। सेवा-समिति के दो सौ युवक केसरिए बाने पहने जुलूस के साथ चलने के लिए तैयार थे। राष्ट्रीय सभा के सेवक भी खाकी वर्दियां

पहने झंडियां लिए जमा हो गए। महिलाओं की संख्या एक हजार से कम न थी। निश्चित किया गया था कि जुलूस गंगा-तट तक जाए, वहां एक विराट् सभा हो, मुन्नी को एक थैली भेंट की जाए और सभा भंग हो जाए।

मुन्नी कुछ देर तक तो शांत भाव से यह समारोह देखती रही, फिर शान्तिकुमार से बोली —बाबूजी, आप लोगों ने मेरा जितना सम्मान किया, मैं उसके योग्य नहीं थी; अब मेरी आपसे यही विनती है कि मुझे हरिद्वार या किसी दूसरे तीर्थ-स्थान में भेज दीजिए। वहीं भिक्षा मांगकर, यात्रियों की सेवा करके दिन काटूंगी। यह जुलूस और यह धूम-धाम मुझ-जैसी अभागिन के लिए शोभा नहीं देता। इन सभी भाई-बहनों से कह दीजिए, अपने-अपने घर जाएं। मैं धूल में पड़ी हुई थी। आप लोगों ने मुझे आकाश पर चढ़ा दिया। अब उससे ऊपर जाने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है, सिर में चक्कर आ जाएगा। मुझे यहीं से स्टेशन भेज दीजिए। आपके पैरों पड़ती हूं।

शान्तिकुमार इस आत्म-दमन पर चकित होकर बोले—यह कैसे हो सकता है, बहन! इतने स्त्री-पुरुष जमा हैं; इनकी भक्ति और प्रेम का तो विचार कीजिए। आप जुलूस में न जाएंगी, तो इन्हें कितनी निराशा होगी। मैं तो समझता हूं कि यह लोग आपको छोड़कर कभी न जाएंगे।

"आप लोग मेरा स्वांग बना रहे हैं।"

"ऐसा न कहो बहन! तुम्हारा सम्मान करके हम अपना सम्मान कर रहे हैं। और तुम्हें हरिद्वार जाने की जरूरत क्या है? तुम्हारा पति तुम्हें अपने साथ ले जाने के लिए आया हुआ है।"

मुन्नी ने आश्चर्य से डॉक्टर की ओर देखा—मेरा पति! मुझे अपने साथ ले जाने के लिए आया हुआ है? आपने कैसे जाना?

"मुझसे थोड़ी देर पहले मिला था।"

"क्या कहता था?"

"यही कि मैं उसे अपने साथ ले जाऊंगा और उसे अपने घर की देवी समझूंगा।"

"उसके साथ कोई बालक भी था?"

"हां, तुम्हारा छोटा बच्चा उसकी गोद में था।"

"बालक बहुत दुबला हो गया होगा?"

"नहीं, मुझे वह हृष्ट-पुष्ट दीखता था।"

"प्रसन्न भी था?"

"हां, खूब हंस रहा था।"

"अम्मां-अम्मां तो न करता होगा?"

"मेरे सामने तो नहीं रोया।"

"अब तो चाहे चलने लगा हो?"

"गोद में था पर ऐसा मालूम होता था कि चलता होगा।"

"अच्छा, उसके बाप की क्या हालत थी? बहुत दुबले हो गए हैं?"

"मैंने उन्हें पहले कब देखा था? हां, दु:खी जरूर थे। यहीं कहीं होंगे, कहो तो तलाश करूं। शायद खुद आते हों।"

मुन्नी ने एक क्षण के बाद सजल नेत्र होकर कहा—उन दोनों को मेरे पास न आने दीजिएगा, बाबूजी ! मैं आपके पैरों पड़ती हूं। इन आदमियों से कह दीजिए अपने-अपने घर जाएं। मुझे आप स्टेशन पहुंचा दीजिए। मैं आज ही यहां से चली जाऊंगी। पति और पुत्र के मोह में पड़कर उनका सर्वनाश न करूंगी। मेरा यह सम्मान देखकर पतिदेव मुझे ले जाने पर तैयार हो गए होंगे; पर उनके मन में क्या है, यह मैं जानती हूं। वह मेरे साथ रहकर संतुष्ट नहीं रह सकते। मैं अब इसी योग्य हूं कि किसी ऐसी जगह चली जाऊं, जहां मुझे कोई न जानता हो ! वहीं मजूरी करके या भिक्षा मांगकर अपना पेट पालूंगी।

वह एक क्षण चुप रही। शायद देखती कि डॉक्टर साहब क्या जवाब देते हैं। जब डॉक्टर साहब कुछ न बोले तो उसने ऊंचे, कांपते स्वर में लोगों से कहा—बहनो और भाइयो ! आपने मेरा जो सत्कार किया है, उसके लिए आपकी कहां तक बड़ाई करूं? आपने एक अभागिनी को तार दिया। अब मुझे जाने दीजिए। मेरा जुलूस निकालने के लिए हठ न कीजिए। मैं इसी योग्य हूं कि अपना काला मुंह छिपाए किसी कोने में पड़ी रहूं। इस योग्य नहीं हूं कि मेरी दुर्गति का माहात्म्य किया जाए।

जनता ने बहुत शोर-गुल मचाया, लीडरों ने समझाया, देवियों ने आग्रह किया; पर मुन्नी जुलूस पर राजी न हुई और बराबर यही कहती रही कि मुझे स्टेशन पर पहुंचा दो। आखिर मजबूर होकर डॉक्टर साहब ने जनता को विदा किया और मुन्नी को मोटर पर बैठाया।

मुन्नी ने कहा—अब यहां से चलिए और किसी दूर के स्टेशन पर ले चलिए, जहां यह लोग एक भी न हों।

शान्तिकुमार ने इधर-उधर प्रतीक्षा की आंखों से देखकर कहा—इतनी जल्दी न करो बहन, तुम्हारा पति आता ही होगा। जब यह लोग चले जाएंगे, तब वह जरूर आएगा।

मुन्नी ने अशांत भाव से कहा—मैं उनसे नहीं मिलना चाहती बाबूजी, कभी नहीं। उनके मेरे सामने आते ही मारे लज्जा के मेरे प्राण निकल जाएंगे। मैं कह सकती हूं, मैं मर जाऊंगी। आप मुझे जल्दी से ले चलिए। अपने बालक को देखकर मेरे हृदय में मोह की ऐसी आंधी उठेगी कि मेरा सारा विवेक और विचार उसमें तृण के समान उड़ जाएगा। उस मोह में मैं भूल जाऊंगी कि मेरा कलंक उनके जीवन का सर्वनाश कर देगा। मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है? आप मुझे जल्दी यहां से ले चलिए। मैं उस बालक को देखना नहीं चाहती, मेरा देखना उसका विनाश है।

शान्तिकुमार ने मोटर चला दी; पर दस ही बीस गज गए होंगे कि पीछे से मुन्नी का पति बालक को गोद में लिए दौड़ता और 'मोटर रोको ! मोटर रोको !' पुकारता चला आता था। मुन्नी की उस पर नजर पड़ी। उसने मोटर की खिड़की से सिर निकालकर हाथ से मना करते हुए चिल्लाकर कहा—नहीं-नहीं, तुम जाओ, मेरे पीछे मत आओ ! ईश्वर के लिए मत आओ !

फिर उसने दोनों बांहें फैला दीं, मानों बालक को गोद में ले रही हो और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

मोटर तेजी से चली जा रही थी, युवक ठाकुर बालक को लिए खड़ा रो रहा था। कई हजार स्त्री-पुरुष मोटर की तरफ ताक रहे थे।

# तेरह

मुन्नी के बरी होने का समाचार आनन-फानन सारे शहर में फैल गया। इस फैसले की आशा बहुत कम आदमियों को थी। कोई कहता था—जज साहब की स्त्री ने पति से लड़कर फैसला लिखाया। रूठकर मैके चली जा रही थीं। स्त्री जब किसी बात पर अड़ जाय, तो पुरुष कैसे नहीं कर दे? कुछ लोगों का कहना था —सरकार ने जज साहब को हुक्म देकर फैसला कराया है, क्योंकि भिखारिन को सजा देने मे शहर में दंगा हो जाने का भय था। अमरकान्त उस समय भोज के सरंजाम करने में व्यस्त था, पर यह खबर पा जरा देर के लिए सब कुछ भूल गया और इस फैसले का सारा श्रेय खुद लेने लगा। भीतर जाकर रेणुकादेवी से बोला—आपने देखा अम्मांजी, मैं कहता न था, उसे बरी कराके दम लूगा, वही हुआ। वकीलों और गवाहों के साथ कितनी माथा- पच्ची करनी पड़ी है कि मेरा दिल ही जानता है। बाहर आकर मित्रों से और सामने के दूकानदारों से भी उसने यही डींग मारी।

एक मित्र ने कहा—औरत है बड़ी धुन की पक्की। शौहर के साथ न गई न गई ! बेचारा पैरों पड़ता रह गया।

अमरकान्त ने दार्शनिक विवेचना के भाव मे कहा—जो काम खुद न देखो, वही चौपट हो जाता है' मैं इधर फंस गया। उधर किसी से इतना भी न हो सका कि उस औरत को समझाता: मैं होता, तो मजाल थी कि वह यों चली जाती। मैं जानता कि यह हाल होगा, तो सब काम छोड़कर जाता और उसे समझाता। मैने तो समझा डॉक्टर साहब और बीसों आदमी हैं, मेरे न रहने से ऐसा क्या घी का घड़ा लुढ़का जाता है, लेकिन वहा किसी को क्या परवाह ! नाम तो हो गया। काम हो या जहन्नुम में जाय !

लाला समरकान्त ने नाच- तमाशे और दावत में खूब दिल खोलकर खर्च किया। वही अमरकान्त जो इन मिथ्या व्यवहारों की आलोचना करते कभी न थकता था, अब मुंह तक न खोलता था, बल्कि उलटे और बढ़ावा देता था-- जो संपन्न हैं, वह ऐसे शुभ अवसर पर न खर्च करेंगे, तो कब करेंगे? धन की यही शोभा है। हां, घर फूंककर तमाशा न देखना चाहिए।

अमरकान्त को अब घर से विशेष घनिष्ठता होती जाती थी। अब वह विद्यालय तो जाने लगा था, पर जलसों और सभाओं से जी चुराता रहता था। अब उसे लेन-देन से उतनी घृणा न थी। शाम- सबेरे बराबर दूकान पर आ बैठता और बड़ी तंदही से काम करता। स्वभाव में कुछ कृपणता भी आ चली थी। दु:खी जनों पर अब भी दया आती थी, पर वह दूकान की बंधी हुई कौड़ियों का अतिक्रमण न करने पाती। इस अल्पकाय शिशु ने ऊंट के नन्हे-से नकेल की भांति उसके जीवन का संचालन अपने हाथ में ले लिया था। मानो दीपक के सामने एक भुनगे ने आकर उसकी ज्योति को संकुचित कर दिया था।

तीन महीने बीत गए थे। संध्या का समय था। बच्चा पालने में सो रहा था। सुखदा हाथ में पंखिया लिए एक मोढ़े पर बैठी हुई थी। कृशांगी गर्भिणी मातृत्व के तेज और शक्ति से जैसे खिल उठी थी। उसके माधुर्य में किशोरी की चपलता न थी, गर्भिणी की आलस्यमय कातरता न थी, माता का शांत तृप्त मंगलमय विलास था।

अमरकान्त कॉलेज से सीधे घर आया और बालक को संचित नेत्रों से देखकर

बोला—अब तो ज्वर नहीं है !

सुखदा ने धीरे से शिशु के माथे पर हाथ रखकर कहा—नहीं, इस समय तो नहीं जान पड़ता। अभी गोद में सो गया था, तो मैंने लिटा दिया।

अमर ने कुर्ते के बटन खोलते हुए कहा—मेरा तो आज वहां बिल्कुल जी न लगा। मैं तो ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि मुझे संसार की और कोई वस्तु न चाहिए, यह बालक कुशल से रहे। देखो कैसे मुस्करा रहा है।

सुखदा ने मीठे तिरस्कार से कहा—तुम्हीं ने देख-देखकर नजर लगा दी है।

''मेरा जी तो चाहता है, उसका चुंबन ले लूं।''

''नहीं-नहीं, सोते हुए बच्चों का चुंबन न लेना चाहिए।''

सहसा किसी ने ड्योढी में आकर पुकारा। अमर ने जाकर देखा, तो बुढ़िया पठानिन लठिया के सहारे खड़ी है। बोला—आओ पठानिन, तुमने तो सुना होगा, घर में बच्चा हुआ है?

पठानिन ने भीतर आकर कहा—अल्लाह करे जुग-जुग जिए और मेरी उम्र पाए। क्यों बेटा ! सारे शहर को नेवता हुआ और हम पूछे तक न गए। क्या हमीं सबसे गैर थे? अल्लाह जानता है, जिस दिन यह खुशखबरी सुनी, दिल से दुआ निकली कि अल्लाह इसे सलामत रखे।

अमर ने लज्जित होकर कहा—हां, यह गलती मुझसे हुई पठानिन, मुआफ करो। आओ, बच्चे को देखा। आज इसे न जाने क्यों बुखार हो आया है?

बुढ़िया दबे पांव आंगन में होती हुई सामने के बरामदे में पहुंची और बहू को दुआएं देती हुई बच्चे को देखकर बोली—कुछ नहीं बेटा, नजर का फसाद है। मैं एक ताबीज दिए देती हूं, अल्लाह चाहेगा, अभी हंसने-खेलने लगेगा।

सुखदा ने मातृत्व-जनित नम्रता से बुढ़िया के पैरों को आंचल से स्पर्श किया और बोली—चार दिन भी अच्छी तरह नहीं रहता, माता ! घर में कोई बड़ी-बूढ़ी तो है नहीं। मै क्या जानूं, कैसे क्या होता है? मेरी अम्मां हैं, पर वह रोज तो यहां नहीं आ सकतीं, न मैं ही रोज उनके पास जा सकती हूं।

बुढ़िया ने फिर आशीर्वाद दिया और बोली—जब काम पड़े, मुझे बुला लिया करो बेटा, मैं और किस दिन के लिए जीती हूं? जरा तुम मेरे साथ चले चलो भैया, मैं ताबीज दे दूं।

बुढ़िया ने अपने सलूके की जेब से एक रेशमी कुर्ता और टोपी निकाली और शिशु के सिराहने रखते हुए बोली—यह मेरे लाल की नजर है बेटा, इसे मंजूर करो। मैं और किस लायक हूं? सकीना कई दिन से सीकर रखे हुए थी, चला नहीं जाता बेटा, आज बड़ी हिम्मत करके आई हूं।

सुखदा के पास संबंधियों से मिले हुए कितने अच्छे-से-अच्छे कपड़े रखे हुए थे, पर इस सरल उपहार से उसे जो हार्दिक आनंद प्राप्त हुआ, वह और किसी उपहार से न हुआ था, क्योंकि इसमें अमीरी का गर्व, दिखावे की इच्छा या प्रथा की शुष्कता न थी। इसमें एक शुभचिंतक की आत्मा थी, प्रेम था और आशीर्वाद था।

बुढ़िया चलने लगी, तो सुखदा ने उसे एक पोटली में थोड़ी-सी मिठाई दी, पान खिलाए और बरौठे तक उसे विदा करने आई। अमरकान्त ने बाहर आकर एक इक्का किया और बुढ़िया

के साथ बैठकर ताबीज लेने चला। गंडे-ताबीज पर उसे विश्वास न था; पर वृद्धजनों के आशीर्वाद पर था, और उस ताबीज को वह केवल आशीर्वाद समझ रहा था।

रास्ते में बुढ़िया ने कहा—मैंने तुमसे कहा था; वह तुम भूल गए, बेटा?

अमर सचमुच भूल गया था। शरमाता हुआ बोला—हां, पठानिन, मुझे याद नहीं आया। मुआफ करो।

''वही सकीना के बारे में।''

अमर ने माथा ठोककर कहा—हां माता, मुझे बिल्कुल खयाल न रहा।

''तो अब खयाल रखो, बेटा! मेरे और कौन बैठा हुआ है जिससे कहूं? इधर सकीना ने कई रूमाल बनाए हैं। कई टोपियों के पल्ले भी काढ़े हैं, पर जब चीज बिकती नहीं, तो दिल नहीं बढ़ता।''

''मुझे वह सब चीजें दे दो। मैं बेचवा दूंगा।''

''तुम्हें तकलीफ न होगी?''

''कोई तकलीफ नहीं। भला इसमें क्या तकलीफ?''

अमरकान्त को बुढ़िया घर में न ले गई। इधर उसकी दशा और भी हीन हो गई थी। रोटियों के भी लाले थे। घर की एक-एक अंगुल जमीन पर उसकी दरिद्रता अंकित हो रही थी। उस घर में अमर को क्या ले जाती? बुढ़ापा निस्संकोच होने पर भी कुछ परदा रखना ही चाहता है। यह उसे इक्के ही पर छोड़कर अंदर गई, और थोड़ी देर में ताबीज और रूमालों की बकची लेकर आ पहुंची।

''ताबीज उसके गले में बांध देना। फिर कल मुझसे हाल कहना।''

''कल मेरी तातील है। दो-चार दोस्तों से बात करूंगा। शाम तक बन पड़ा तो आऊंगा, नहीं फिर किसी दिन आ जाऊंगा।''

घर आकर अमर ने ताबीज बच्चे के गले में बांधी और दूकान पर जा बैठा। लालाजी ने पूछा—कहां गए थे? दूकान के वक्त कहीं मत जाया करो।

अमर ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—आज पठानिन आ गई। बच्चे के लिए ताबीज देने को कहा था, वही लेने चला गया था।

''मैंने अभी देखा। अब तो अच्छा मालूम होता है। दुष्ट ने मेरी मूंछें पकड़कर खींच लीं। मैंने भी कसकर एक घूंसा जमाया बच्चा को। हां, खूब याद आई, तुम बैठो, मैं जरा शास्त्रीजी के पास से जन्म-पत्री लेता आऊं। आज उन्होंने देने का वादा किया था।''

लालाजी चले गए, तो अमर फिर घर में जा पहुंचा और बच्चे को गोद में लेकर बोला—क्यों जी; तुम हमारे बापू की मूंछें उखाड़ते हो! खबरदार, जो फिर उनकी मूंछें छुईं, नहीं दांत तोड़ दूंगा।

बालक ने उसकी नाक पकड़ ली और उसे निगल जाने की चेष्टा करने लगा, जैसे हनुमान सूर्य को निगल रहे हों।

सुखदा हंसकर बोली—पहले अपनी नाक बचाओ, फिर बाप की मूंछें बचाना।

सलीम ने इतने जोर से पुकारा कि सारा घर हिल उठा।

अमरकान्त ने बाहर आकर कहा—तुम बड़े शैतान हो यार, ऐसा चिल्लाए कि मैं घबरा

गया। किधर से आ रहे हो? आओ, कमरे में चलो।

दोनों आदमी बगल वाले कमरे में गए। सलीम ने रात को एक गजल कही थी। वही सुनाने आया था। गजल कह लेने के बाद जब तक वह अमर को सुना न ले, उसे चैन न आता था।

अमर ने कहा—मगर मैं तारीफ न करूंगा, यह समझ लो !

शर्त तो जब है कि तुम तारीफ न करना चाहो, फिर भी करो :

**यही दुनियाए उलफत में, हुआ करता है होने दो।**
**तुम्हें हंसना मुबारक हो, कोई रोता है रोने दो।**

अमर ने झूमकर कहा—लाजवाब शेर है, भई ! बनावट नहीं, दिल से कहता हूं। कितनी मजबूरी है—वाह !

सलीम ने दूसरा शेर पढ़ा :

**कसम ले लो जो शिकवा हो तुम्हारी बेवफाई का**
**किए को अपने रोता हूं मुझे जी भर के रोने दो।**

अमर—बड़ा दर्दनाक शेर है, रोंगटे खड़े हो गए। जैसे कोई अपनी बीती गा रहा हो। इस तरह सलीम ने पूरी गजल सुनाई और अमर ने झूम-झूमकर सुनी ! फिर बातें होने लगीं। अमर ने पठानिन के रूमाल दिखाने शुरू किए।

''एक बुढ़िया रख गई है। गरीब औरत है। जी चाहे दो-चार ले लो।''

सलीम ने रूमालों को देखकर कहा—चीज तो अच्छी है यार, लाओ एक दर्जन लेता जाऊं। किसने बनाए हैं?

''उसी बुढ़िया की एक पोती है।''

''अच्छा, वही तो नहीं, जो एक बार कचहरी में पगली के मुकदमे में गई थी? माशूक तो यार तुमने अच्छा छांटा।''

अमरकान्त ने अपनी सफाई दी—कसम ले लो, जो मैंने उसकी तरफ देखा भी हो !

''मुझे कसम लेने की जरूरत नहीं ! तुम्हें वह मुबारक हो, मैं तुम्हारा रकीब नहीं बनना चाहता। दर्जन रूमाल कितने के हैं?

''जो मुनासिब समझो दे दो।''

''इसकी कीमत बनाने वाले के ऊपर मुनहसर है। अगर उस हसीना ने बनाए हैं, तो फी रूमाल पांच रुपये। बुढ़िया या किसी और ने बनाए हैं, तो फी रूमाल चार आने।''

''तुम मजाक करते हो। तुम्हें लेना मंजूर नहीं।''

''पहले यह बताओ किसने बनाए हैं?''

''बनाए हैं सकीना ही ने।''

''अच्छा उसका नाम सकीना है। तो मैं फी रूमाल पांच रुपये दे दूंगा। शर्त यह कि तुम मुझे उसका घर दिखा दो।''

''हां शौक से; लेकिन तुमने कोई शरारत की तो मैं तुम्हारा जानी दुश्मन हो जाऊंगा। अगर हमदर्द बनकर चलना चाहो तो चलो। मैं तो चाहता हूं, उसकी किसी भले आदमी से शादी हो जाए। है कोई तुम्हारी निगाह में ऐसा आदमी? बस, यही समझ लो कि उसकी

तकदीर खुल जाएगी। मैंने ऐसी हयादार और सलीकेमंद लड़की नहीं देखी। मर्द को लुभाने के लिए औरत में जितनी बातें हो सकती हैं, वह सब उसमें मौजूद हैं।''

सलीम ने मुस्कराकर कहा—मालूम होता है, तुम खुद उस पर रीझ चुके। हुस्न में ता वह तुम्हारी बीवी के तलवों के बराबर भी नहीं।

अमरकान्त ने आलोचक के भाव से कहा—औरत में रूप ही सबसे प्यारी चीज नहीं है। मैं तुमसे सच कहता हूं, अगर मेरी शादी न हुई होती और मजहब की रुकावट न होती तो मैं उससे शादी करके अपने को भाग्यवान समझता।

''आखिर उसमें ऐसी क्या बात है, जिस पर तुम इतने लट्टू हो?''

''यह तो मैं खुद नहीं समझ रहा हूं। शायद उसका भोलापन हो। तुम खुद क्यों नहीं कर लेते? मैं यह कह सकता हूं कि उसके साथ तुम्हारी जिंदगी जन्नत बन जाएगी।''

सलीम ने संदिग्ध भाव से कहा—मैंने अपने दिल में जिस औरत का नक्शा खींच रखा है वह कुछ और ही है। शायद वैसी औरत मेरी खयाली दुनिया के बाहर कहीं होगी भी नहीं। मेरी निगाह में कोई आदमी आएगा, तो बताऊंगा। इस वक्त तो मैं ये रूमाल लिए लेता हूं। पांच रुपये से कम क्या दूं? सकीना कपड़े भी सी लेती होगी? मुझे उम्मीद है कि मेरे घर से उसे काफी काम मिल जाएगा। तुम्हें भी एक दोस्ताना सलाह देता हूं। मैं तुमसे बदगुमानी नहीं करता, लेकिन वहां बहु : आमदोरफ्त न रखना, नहीं बदनाम हो जाओगे। तुम चाहे कम बदनाम हो, उस गरीब की तो जिंदगी ही खराब हो जाएगी। ऐसे भले आदमियों की कमी भी नहीं है, जो इस मुआमले को मजहबी रंग देकर तुम्हारे पीछे पड जाएंगे। उसकी मदद तो कोई न करेगा, तुम्हारे ऊपर उंगली उठाने वाले बहुतेरे निकल आएंगे।

अमरकान्त में उद्दंडता न थी, पर इस समय वह झल्लाकर बोला—मुझे ऐसे कमीने आदमियों की परवाह नहीं है। अपना दिल साफ रहे, तो किसी बात का गम नहीं।

सलीम ने जरा भी बुरा न मानकर कहा—तुम जरूरत से ज्यादा सीधे हो यार, खौफ है, किसी आफत में न फंस जाओ।

दूसरे दिन अमरकान्त ने दूकान बढ़ाकर जेब में पांच रुपये रखे, पठा िन के घर पहुंचा और आवाज दी। वह सोच रहा था—सकीना रुपये पाकर कितनी खुश होगी।

अंदर से आवाज आई—कौन है?

अमरकान्त ने अपना नाम बताया।

द्वार तुरंत खुल गए और अमरकान्त ने अंदर कदम रखा, पर देखा तो चारों तरफ अंधेरा। पूछा—आज दिया नहीं जलाया, अम्मां?

सकीना बोली—अम्मां तो एक जगह सिलाई का काम लेने गई हैं।

अंधेरा क्यों हैं? चिराग में तेल नहीं है?

सकीना धीरे से बोली—तेल तो है।

''फिर दिया क्यों नहीं जलाती, दियासलाई नहीं है?''

''दियासलाई भी है।''

''तो फिर चिराग जलाओ। कल जो रूमाल मैं ले गया था, वह पांच रुपये पर बिक गए हैं, ये रुपये ले लो। चटपट चिराग जलाओ।''

सकीना ने कोई जवाब न दिया। उसकी सिसकियों की आवाज सुनाई दी। अमर ने चौंककर पूछा—क्या बात है सकीना? तुम रो क्यों रही हो?

सकीना ने सिसकते हुए कहा—कुछ नहीं, आप जाइए। मैं अम्मां को रुपये दे दूंगी।

अमर ने व्याकुलता से कहा—जब तक तुम बता न दोगी, मैं न जाऊंगा। तेल न हो तो मैं ला दूं, दियासलाई न हो तो मैं ला दूं, कल एक लैंप लेता आऊंगा। कुप्पी के सामने बैठकर काम करने से आंखें खराब हो जाती हैं। घर के आदमी से क्या परदा? मैं अगर तुम्हें गैर समझता, तो इस तरह बार-बार क्यों आता?

सकीना सामने के सायबान में जाकर बोली—मेरे कपड़े गीले हैं। आपकी आवाज सुनकर मैंने चिराग बुझा दिया।

''तो गीले कपड़े क्यों पहन रखे हैं?''

''कपड़े मैले हो गए थे। साबुन लगाकर रख दिए थे। अब और कुछ न पूछिए। कोई दूसरा होता, तो मैं किवाड़ न खोलती।''

अमरकान्त का कलेजा मसोस उठा। उफ ! इतनी घोर दरिद्रता ! पहनने को कपड़े तक नहीं। अब उसे ज्ञात हुआ कि कल पठानिन ने रेशमी कुर्ता और टोपी उपहार में दी थी, उसके लिए कितना त्याग किया था। दो रुपये से कम क्या खर्च हुए होंगे? दो रुपये में दो पाजामे बन सकते थे। इन गरीब प्राणियों में कितनी उदारता है। जिसे ये अपना धर्म समझते हैं, उसके लिए कितना कष्ट झेलने को तैयार रहते हैं।

उसने सकीना से कांपते स्वर में कहा—तुम चिराग जला लो। मैं अभी आता हूं।

गोवरधन सराय से चौक तक वह हवा के वेग से गया; पर बाजार बंद हो चुका था। अब क्या करे? सकीना अभी तक गीले कपड़े पहने बैठी होगी। आज इन सबों ने इतनी जल्द क्यों दूकान बंद कर दी? वह यहां से उसी वेग के साथ घर पहुंचा। सुखदा के पास पचासों साड़ियां हैं। कई मामूली भी हैं। क्या वह उनमें से साड़ियां न दे देगी? मगर वह पूछेगी —क्या करोगे, तो क्या जवाब देगा? साफ-साफ कहने से तो वह शायद संदेह करने लगे। नहीं, इस वक्त सफाई देने का अवसर न था। सकीना गीले कपड़े पहने उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। सुखदा नीचे थी। वह चुपके से ऊपर चला गया, गठरी खोली और उसमें से चार साड़ियां निकालकर दबे पांव चल दिया।

सुखदा ने पूछा—अब कहां जा रहे हो? भोजन क्यों नहीं कर लेते?

अमर ने बरोठे से जवाब दिया—अभी आता हूं।

कुछ दूर जाने पर उसने सोचा—कल कहीं सुखदा ने अपनी गठरी खोली और साड़ियां न मिलीं तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी। नौकरों के सिर जाएगी। क्या वह उस वक्त यह कहने का साहस रखता था कि वे साड़ियां मैंने एक गरीब औरत को दे दी हैं? नहीं, वह यह नहीं कह सकता, तो साड़ियां ले जाकर रख दे? मगर वहां सकीना गीले कपड़े पहन बैठी होगी। फिर खयाल आया—सकीना इन साड़ियों को पाकर कितनी प्रसन्न होगी ! इस खयाल ने उसे उन्मत्त कर दिया। जल्द-जल्द कदम बढ़ाता हुआ सकीना के घर जा पहुंचा।

सकीना ने उसकी आवाज सुनते ही द्वार खोल दिया। चिराग जल रहा था। सकीना ने इतनी देर में आग जलाकर कपड़े सुखा लिए थे और कुरता-पाजामा पहने, ओढ़नी ओढ़े

खड़ी थी। अमर ने साड़ियां खाट पर रख दीं और बोला—बाजार में तो न मिलीं, घर जाना पड़ा। हमदर्दों से परदा न रखना चाहिए।

सकीना ने साड़ियों को लेकर देखा और सकुचाती हुई बोली—बाबूजी, आप नाहक साड़ियां लाए। अम्मां देखेंगी, तो जल उठेंगी। फिर शायद आपका यहां आना मुश्किल हो जाए। आपकी शराफत और हमदर्दी की जितनी तारीफ अम्मां करती थीं, उससे कहीं ज्यादा पाया। आप यहां ज्यादा आया भी न करें, नहीं ख्वामख्वाह लोगों को शुबहा होगा। मेरी वजह से आपके ऊपर कोई शुबहा करे, यह मैं नहीं चाहती।

आवाज कितनी मीठी थी। भाव में कितनी नम्रता, कितना विश्वास। पर उसमें वह हर्ष न था, जिसकी अमर ने कल्पना की थी। अगर बुढ़िया इस सरल स्नेह को संदेह की दृष्टि से देखे, तो निश्चय ही उसका आना-जाना बंद हो जाएगा। उसने अपने मन को टटोलकर देखा, उस प्रकार के संदेह का कोई कारण नहीं है। उसका मन स्वच्छ था। वहां किसी प्रकार की कुत्सित भावना न थी। फिर भी सकीना से मिलना बंद हो जाने की संभावना उसके लिए असह्य थी। उसका शासित, दलित पुरुषत्व यहां अपने प्राकृतिक रूप में प्रकट हो सकता था। सुखदा की प्रतिभा, प्रगल्भता और स्वतंत्रता, जैसे उसके सिर पर सवार रहती थी। वह उसके सामने अपने को दबाए रखने पर मजबूर था। आत्मा में जो एक प्रकार के विकार और व्यक्तीकरण की आकांक्षा होती है, वह अपूर्ण रहती थी। सुखदा उसे पराभूत कर देती थी, सकीना उसे गौरवान्वित करती थी। सुखदा उसका दफ्तर थी, सकीना घर। वहां वह दास था, यहां स्वामी।

उसने साड़ियां उठा लीं और व्यथित कंठ से बोला—अगर यह बात है, तो मैं इन साड़ियों को लिए जाता हूं सकीना, लेकिन मैं कह नहीं सकता, मुझे इसमें कितना रंज होगा। रहा मेरा आना-जाना, अगर तुम्हारी इच्छा है कि मैं न आऊं, तो मैं भूलकर भी न आऊंगा, लेकिन पड़ोसियों की मुझे परवाह नहीं है।

सकीना ने करुण स्वर में कहा—बाबूजी, मैं आपसे हाथ जोडती हूं, ऐसी बात मुंह से न निकालिए। जब से आप आने-जाने लगे हैं, मेरे लिए दुनिया कुछ और हो गई है। मैं अपने दिल में एक ऐसी ताकत, ऐसी उमंग पाती हूं, जिसे एक तरह का नशा कह सकती हूं, लेकिन बदगोई से तो डरना ही पड़ता है।

अमर ने उन्मत्त होकर कहा—मैं बदगोई से नहीं डरता, सकीना रत्ती भर भी नहीं।

लेकिन एक ही पल में वह समझ गया—मैं बहका जाता हूं। बोला—मगर तुम ठीक कहती हो। दुनिया और चाहे कुछ न करे, बदनाम तो कर ही सकती है।

दोनों एक मिनट शांत बैठे रहे, तब अमर ने कहा—और रूमाल बना लेना। कपड़ों का प्रबंध भी हो रहा है। अच्छा अब चलूंगा। लाओ, साड़ियां लेता जाऊं।

सकीना ने अमर की मुद्रा देखी। मालूम होता था, रोना ही चाहता है। उसके जी में आया, साड़ियां उठाकर छाती से लगा ले, पर संयम ने हाथ न उठाने दिया। अमर ने साड़ियां उठा लीं और लड़खड़ाता हुआ द्वार से निकल गया, मानो अब गिरा, अब गिरा।

# चौदह

अमरकान्त का मन फिर से उचाट होने लगा। सकीना उसकी आंखों में बसी हुई थी। सकीना के ये शब्द उनके कानों में गूंज रहे थे मेरे लिए दुनिया कुछ और हो गई है। मैं अपने दिल में ऐसी ताकत, ऐसी उमंग पाती हूं इन शब्दों में उसकी पुरुष कल्पना को ऐसी आनंदप्रद उत्तेजना मिलती थी कि वह अपने को भूल जाता था। फिर दूकान से उसकी रुचि घटने लगी। रमणी की नम्रता और सलज्ज अनुरोध का स्वाद पा जाने के बाद अब सुखदा की प्रतिभा और गरिमा उसे बोझ-सी लगती थी। वहां हरे-भरे पत्तों में रूखी-सूखी सामग्री थी; यहां सोने-चांदी के थालों में नाना व्यंजन सजे हुए थे। वहां सरल स्नेह था, यहां गर्व का दिखावा था। वह सरल स्नेह का प्रसाद उसे अपनी ओर खींचता था, यह अमीरी ठाट अपनी ओर से हटाता था। बचपन में ही वह माता के स्नेह से वंचित हो गया था। जीवन के पंद्रह साल उसने शुष्क शासन में काटे। कभी मां डांटती, कभी बाप बिगड़ता, केवल नैना की कोमलता उसके भग्न हृदय पर फाहा रखती रहती थी। सुखदा भी आई, तो वही शासन और गरिमा लेकर, स्नेह का प्रसाद उसे यहां भी न मिला। वह चिरकाल की स्नेह-तृष्णा किसी प्यासे पक्षी की भांति, जो कई सरोवरों के सूखे तट से निराश लौट आया हो, स्नेह की यह शीतल छाया देखकर विश्राम और तृप्ति के लोभ से उसकी शरण में आई। यहां शीतल छाया ही न थी, जल भी था, पक्षी यहीं रम जाए तो कोई आश्चर्य है !

उस दिन सकीना की घोर दरिद्रता देखकर वह आहत हो उठा था। वह विद्रोह जो कुछ दिनों उसके मन में शांत हो गया था फिर दूने वेग से उठा। वह धर्म के पीछे लाठी लेकर दौड़ने लगा। धन के इस बंधन का उसे बचपन से ही अनुभव होता आया था। धर्म का बंधन उससे कहीं कठोर, कहीं असहाय, कहीं निरर्थक था। धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए। यहां धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है। क्यों खान-पान में, रस्म-रिवाज में धर्म अपनी टांगें अड़ाता है? मैं चोरी करूं, खून करूं, धोखा दूं, धर्म मुझे अलग नहीं कर सकता। अछूत के हाथ से पानी पी लूं, धर्म छूमंतर हो गया। अच्छा धर्म है ! हम धर्म के बाहर किसी से आत्मा का संबंध भी नहीं कर सकते? आत्मा को भी धर्म ने बांध रखा है, प्रेम को भी जकड़ रखा है। यह धर्म नहीं, धर्म का कलंक है।

अमरकान्त इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहता। बुढ़िया हर महीने, और कभी-कभी महीने में दो-तीन बार, रूमालों की पोटलियां बनाकर लाती और अमर उसे मुंह मांगे दाम देकर ले लेता। रेणुका, उसको जेब खर्च के लिए जो रुपये देतीं, वह सब-के-सब रूमालों में जाते। सलीम का भी इस व्यवसाय में साझा था। उसके मित्रों में ऐसा कोई न था, जिसने एक-आध दर्जन रूमाल न लिए हों। सलीम के घर से सिलाई का काम भी मिल जाता। बुढ़िया का सुखदा और रेणुका से भी परिचय हो गया था। चिकन की साड़ियां और चादरें बनाने का काम भी मिलने लगा; उस दिन से अमर बुढ़िया के घर न गया। कई बार वह मजबूत इरादा करके चला; पर आधे रास्ते से लौट आया।

विद्यालय में एक बार 'धर्म' पर विवाद हुआ। अमर ने उस अवसर पर जो भाषण किया, उसने सारे शहर में धूम मचा दी। वह अब क्रांति ही में देश का उद्धार समझता

था—ऐसी क्रांति में, जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धांतों का, परिपाटियों का अंत कर दे, जो एक नए युग की प्रवर्त्तक हो, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर दे, जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकने वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे। उसके एक-एक अणु से क्रान्ति ! क्रान्ति !'' की आवाज सदा निकलती रहती थी, लेकिन उदार हिन्दू-समाज उस वक्त तक किसी से नहीं बोलता, जब तक उसके लोकाचार पर खुल्लम-खुल्ला आघात न हो। कोई क्रांति नहीं, क्रांति के बाबा का ही उपदेश क्यों न करे, उसे परवाह नहीं होती, लेकिन उपदेश की सीमा के बाहर व्यवहार क्षेत्र में किसी ने पांव निकाला और समाज ने उसकी गर्दन पकड़ी। अमर की क्रांति अभी तक व्याख्यानों और लेखों तक सीमित थी। डिग्री की परीक्षा समाप्त होते ही वह व्यवहार-क्षेत्र में उतरना चाहता था। पर अभी परीक्षा को एक महीना बाकी ही था कि एक ऐसी घटना हो गई, जिसने उसे मैदान में आने को मजबूर कर दिया। यह सकीना की शादी थी।

एक दिन संध्या समय अमरकान्त दूकान पर बैठा हुआ था कि बुढ़िया सुखदा की चिकनी की साड़ी लेकर आई और अमर से बोली—बेटा, अल्ला के फजल से सकीना की शादी ठीक हो गई है ! आठवीं को निकाह हो जाएगा। और तो मैंने सब सामान जमा कर लिया है, पर कुछ रुपयों से मदद करना।

अमर की नाड़ियों में जैसे रक्त न था। हकलाकर बोला—सकीना की शादी ! ऐसी क्या जल्दी थी?

''क्या करती बेटा, गुजर तो नहीं होता, फिर जवान लड़की ! बदनामी भी तो है।''

''सकीना भी राजी है?''

बुढ़िया ने सरल भाव से कहा—लड़कियां कहीं अपने मुंह से कुछ कहती हैं; बेटा? वह तो नहीं-नहीं किए जाती है।

अमर ने गरजकर कहा—फिर भी तुम शादी किए देती हो? फिर संभलकर बोला—रुपये के लिए दादा से कहो।

''तुम मेरी तरफ से सिफारिश कर देना बेटा, कह तो मैं आप लूंगी।''

''मैं सिफारिश करने वाला कौन होता हूं? दादा तुम्हें जितना जानते हैं, उतना मैं नहीं जानता।''

बुढ़िया को वहीं खड़ी छोड़कर, अमर बदहवास सलीम के पास पहुंचा। सलीम ने उसकी बौखलाई हुई सूरत देखकर पूछा—खैर तो है? बदहवास क्यों हो?

अमर ने संयत होकर कहा—बदहवास तो नहीं हूं। तुम खुद बदहवास होगे।

''अच्छा तो आओ, तुम्हें अपनी ताजी गजल सुनाऊं। ऐसे-ऐसे शैर निकाले हैं कि फड़क न जाओ तो मेरा जिम्मा।''

अमरकान्त की गर्दन में जैसे फांसी पड़ गई, पर कैस कहे—मेरी इच्छा नहीं है। सलीम ने मतला पढ़ा :

**बहला के सवेरा करते हैं इस दिल को उन्हीं की बातों में,**
**दिल जलता है अपना जिनकी तरह, बरसात की भीगी रातों में।**

अमर ने ऊपरी दिल से कहा—अच्छा शेर है।

सलीम हतोत्साह न हुआ। दूसरा शेर पढ़ा :

**कुछ मेरी नजर ने उठ के कहा कुछ उनकी नजर ने झुक के कहा,**
**झगड़ा जो न बरसों में चुकता, तय हो गया बातों-बातों में।**

अमर झूम उठा—खूब कहा है भई ! वाह ! वाह ! लाओ कलम चूम लूं। सलीम ने तीसरा शेर सुनाया :

**यह यास का सन्नाटा तो न था, जब आस लगाए सुनते थे,**
**माना कि था धोखा ही धोखा, उन मीठी-मीठी बातों में।**

अमर ने कलेजा थाम लिया—गजब का दर्द है भई ! दिल मसोस उठा।

एक क्षण के बाद सलीम ने छेड़ा—इधर एक महीने से सकीना ने कोई रूमाल नहीं भेजा क्या?

अमर ने गंभीर होकर कहा—तुम तो यार, मजाक करते हो। उसकी शादी हो रही है। एक ही हफ्ता और है।

''तो तुम दुल्हिन की तरफ से बारात में जाना। मैं दूल्हे की तरफ से जाऊंगा।''

अमर ने आंखें निकलाकर कहा—मेरे जीते-जी यह शादी नहीं हो सकती। मैं तुमसे कहता हूं सलीम, मैं सकीना के दरवाजे पर जान दे दूंगा, सिर पटक-पटककर मर जाऊंगा।

सलीम ने घबराकर पूछा—यह तुम कैसी बातें कर रहे हो, भाईजान? सकीना पर आशिक तो नहीं हो गए? क्या सचमुच मेरा गुमान सही था?

अमर ने आंखों में आंसू भरकर कहा—मैं कुछ नहीं कह सकता, मेरी क्यों ऐसी हालत हो रही है सलीम; पर जब से मैंने यह खबर सुनी है; मेरे जिगर में जैसे आरा-सा चल रहा है।

''आखिर तुम चाहते क्या हो? तुम उससे शादी तो नहीं कर सकते।''

''क्यों नहीं कर सकता?''

''बिल्कुल बच्चे न बन जाओ। जरा अक्ल से काम लो।''

''तुम्हारी यही तो मंशा है कि वह मुसलमान है, मैं हिन्दू हूं। मैं प्रेम के समने मजहब की हकीकत नहीं समझता, कुछ भी नहीं।''

सलीम ने अविश्वास के भाव से कहा—तुम्हारे खयालात तकरीरों में सुन चुका हूं, अखबारों में पढ़ चुका हूं। ऐसे खयालात बहुत ऊंचे, बहुत पाकीजा, दुनिया में इंकलाब पैदा करने वाले हैं और कितनों ने ही इन्हें जाहिर करके नामवरी हासिल की है, लेकिन इल्मी बहस दूसरी चीज है, उस पर अमल करना दूसरी चीज है। बगावत पर इल्मी बहस कीजिए, लोग शौक से सुनेंगे। बगावत करने के लिए तलवार उठाइए और आप सारी सोसाइटी के दुश्मन हो जाएंगे। इल्मी बहस से किसी को चोट नहीं लगती। बगावत से गरदनें कटती हैं। मगर तुमने सकीना से भी पूछा, वह तुमसे शादी करने पर राजी है?

अमर कुछ झिझका। इस तरफ उसने ध्यान ही न दिया था। उसने शायद दिल में समझ लिया था, मेरे कहने की देर है, वह तो राजी ही है। उन शब्दों के बाद अब उसे कुछ पूछने की जरूरत न मालूम हुई।

''मुझे यकीन है कि वह राजी है।''

"यकीन कैसे हुआ?"

"उसने ऐसी बातें की हैं, जिनका मतलब इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।"

"तुमने उससे कहा—मैं तुमसे शादी करना चाहता हूं?"

"उससे पूछने की मैं जरूरत नहीं समझता।"

"तो एक ऐसी बात को, जो तुमसे एक हमदर्द के नाते कही थी, तुमने शादी का वादा समझ लिया। वाह री आपकी अक्ल! मैं कहता हूं, तुम भंग तो नहीं खा गए हो, या बहुत पढ़ने से तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया है? परी से ज्यादा हसीन बीबी, चांद-सा बच्चा और दुनिया की सारी नेमतों को आप तिलांजलि देने पर तैयार हैं, उस जुलाहे की नमकीन और शायद सलीकेदार छोकरी के लिए! तुमने इसे भी कोई तकरीर या मजमून समझ रखा है? सारे शहर में तहलका पड़ जाएगा जनाब, भूचाल आ जाएगा, शहर ही में नहीं, सूबे भर में, बल्कि शुमाली हिन्दोस्तान भर में। आप हैं किस फेर में? जान से हाथ धोना पड़े, तो ताज्जुब नहीं।"

अमरकान्त इन सारी बाधाओं को सोच चुका था। इनसे वह जरा भी विचलित न हुआ था। और अगर इसके लिए समाज उसे दंड देता है, तो उसे परवाह नही। वह अपने हक के लिए मर जाना इससे कहीं अच्छा समझता है कि उसे छोड़कर कायरों की जिंदगी काटे। समाज उसकी जिंदगी के तबाह करने का कोई हक नहीं रखता। बोला—मैं यह सब जानता हूं सलीम, लेकिन मैं अपनी आत्मा को समाज का गुलाम नहीं बनाना चाहता। नतीजा जो कुछ भी हो उसके लिए मैं तैयार हूं। यह मुआमला मेरे और सकीना के दरमियान है। सोसाइटी को हमारे बीच में दखल देने का कोई हक नहीं।

सलीम ने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—सकीना कभी मंजूर न करेगी, अगर उसे तुमसे मुहब्बत है। हां, अगर वह तुम्हारी मुहब्बत का तमाशा देखना चाहती है, तो शायद मंजूर कर ले, मगर मैं पूछता हूं, उसमें क्या खूबी है, जिसके लिए तुम खुद इतनी बड़ी कुर्बानी करने और कई जिंदगियों को खाक में मिलाने पर आमादा हो?

अमर को यह बात अप्रिय लगी। मुंह सिकोड़कर बोला—मैं कोई कुर्बानी नहीं कर रहा हूं और न किसी की जिंदगी को खाक में मिला रहा हूं। मैं सिर्फ उस रास्ते पर जा रहा हूं, जिधर मेरी आत्मा मुझे ले जा रही है। मैं किसी रिश्ते या दौलत को अपनी आत्मा के गले की जंजीर नहीं बना सकता। मैं उन आदमियों में नहीं हूं, जो जिंदगी की जंजीरों को ही जिंदगी समझते हैं। मैं जिंदगी की आरजुओं को जिंदगी समझता हूं। मुझे जिंदा रहने के लिए एक ऐसे दिल की जरूरत है, जिसमें आरजुएं हों, दर्द हो, त्याग हो, सौदा हो। जो मेरे साथ रो सकता हो, मेरे साथ जल सकता हो। महसूस करता हूं कि मेरी जिंदगी पर रोज-ब-रोज जंग लगता जा रहा है। इन चंद सालों में मेरा कितना रूहानी जवाल हुआ, इसे मैं ही समझता हूं। मैं जंजीरों में जकड़ा जा रहा हूं। सकीना ही मुझे आजाद कर सकती है, उसी के साथ मैं रूहानी बुलंदियों पर उड़ सकता हूं, उसी के साथ मैं अपने को पा सकता हूं। तुम कहते हो—पहले उससे पूछ लो। तुम्हारा खयाल है—वह कभी मंजूर न करेगी। मुझे यकीन है—मुहब्बत जैसी अनमोल चीज पाकर कोई उसे रद्द नहीं कर सकता।

सलीम ने पूछा—अगर वह कहे तुम मुसलमान हो जाओ?

"वह यह नहीं कह सकती।"

"मान लो, कहे।"

"तो मैं उसी वक्त एक मौलवी को बुलाकर कलमा पढ़ लूंगा। मुझे इस्लाम में ऐसी कोई बात नहीं नजर आती, जिसे मेरी आत्मा स्वीकार न करती हो। धर्म-तत्त्व सब एक हैं। हजरत मुहम्मद को खुदा का रसूल मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। जिस सेवा, त्याग, दया, आत्म-शुद्धि पर हिन्दू-धर्म की बुनियाद कायम है, उसी पर इस्लाम की बुनियाद भी कायम है। इस्लाम मुझे बुद्ध और कृष्ण और राम की ताजीम करने से नहीं रोकता। मैं इस वक्त अपनी इच्छा से हिन्दू नहीं हूं; बल्कि इसलिए कि हिन्दू घर में पैदा हुआ हूं। तब भी मैं अपनी इच्छा से मुसलमान न हूंगा; बल्कि इसलिए कि सकीना की मरजी है। मेरा अपना ईमान यह है कि मजहब आत्मा के लिए बंधन है। मेरी अक्ल जिसे कबूल करे, वही मेरा मजहब है। बाकी खुराफात !"

सलीम इस जवाब के लिए तैयार न था। इस जवाब ने उसे निश्शस्त्र कर दिया। ऐसे मनोद्‌गारों ने उसके अंत:करण को कभी स्पर्श न किया था। प्रेम को वह वासना मात्र समझता था। जरा-से उद्‌गार को इतना वृहद् रूप देना, उसके लिए इतनी कुर्बानियां करना, सारी दुनिया में बदनाम होना और चारों ओर एक तहलका मचा देना, उसे पागलपन मालूम होता था।

उसने सिर हिलाकर कहा—सकीना कभी मंजूर न करेगी।

अमर ने शांत भाव से कहा—तुम ऐसा क्यों समझते हो?

"इसलिए कि अगर उसे जरा भी अक्ल है, तो वह एक खानदान को कभी तबाह न करेगी।"

"इसके यह माने हैं कि उसे मेरे खानदान की मुहब्बत मुझसे ज्यादा है। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि मेरा खानदान क्या तबाह हो जाएगा? दादा को और सुखदा को दौलत मुझसे ज्यादा प्यारी है। बच्चे को तब भी मैं इसी तरह प्यार कर सकता हूं। ज्यादा-से-ज्यादा इतना होगा कि मैं घर में न जाऊंगा और उनके घड़े-मटके न छूऊंगा।"

सलीम ने पूछा—डॉक्टर शान्तिकुमार से भी इसका जिक्र किया है?

अमर ने जैसे मित्र की मोटी अक्ल से हताश होकर कहा—नहीं, मैंने उनसे जिक्र करने की जरूरत नहीं समझी। तुमसे भी सलाह लेने नहीं आया हूं; सिर्फ दिल का बोझ हल्का करने के लिए। मेरा इरादा पक्का हो चुका है। अगर सकीना ने मायूस कर दिया, तो जिंदगी का खात्मा कर दूंगा। राजी हुई, तो हम दोनों चुपके से कहीं चले जाएंगे। किसी को खबर भी न होगी। दो-चार महीने बाद घर वालों को सूचना दे दूंगा। न कोई तहलका मचेगा, न कोई तूफान आएगा। यह है मेरा प्रोग्राम। मैं इसी वक्त उसके पास जाता हूं, अगर उसने मंजूर कर लिया, तो लौटकर फिर यहीं आऊंगा, और मायूस किया तो तुम मेरी सूरत न देखोगे।

यह कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ और तेजी से गोवर्धन सराय की तरफ चला। सलीम उसे रोकने का इरादा करके भी न रोक सका। शायद वह समझ गया था कि इस वक्त इसके सिर पर भूत सवार है, किसी की न सुनेगा।

माघ की रात। कड़ाके की सर्दी। आकाश पर धुआं छाया हुआ था। अमरकान्त अपनी धुन में मस्त चला जाता था। सकीना पर क्रोध आने लगा। मुझे पत्र तक न लिखा। एक कार्ड

भी न डाला। फिर उसे एक विचित्र भय उत्पन्न हुआ। सकीना कहीं बुरा न मान जाए। उसके शब्दों का आशय यह तो नहीं था कि वह उसके साथ कहीं जाने पर तैयार है। संभव है उसकी रजामंदी से बुढ़िया ने विवाह ठीक किया हो। संभव है, उस आदमी की उसके यहां आमदरफ्त भी हो। वह इस समय वहां बैठा हो। अगर ऐसा हुआ, तो अमर वहां से चुपचाप चला आएगा। बुढ़िया आ गई होगी तो उसके सामने उसे और भी संकोच होगा। वह सकीना से एकांत में वार्तालाप का अवसर चाहता था।

सकीना के द्वार पर पहुंचा, तो उसका दिल धड़क रहा था। उसने एक क्षण कान लगाकर सुना। किसी की आवाज न सुनाई दी। आंगन में प्रकाश था। शायद सकीना अकेली है। मुंह मांगी मुराद मिली। आहिस्ता से जंजीर खटखटाई। सकीना ने पूछकर तुरंत द्वार खोल दिया और बोली—अम्मां तो आप ही के यहां गई हुई हैं।

अमर ने खड़े-खड़े जवाब दिया—हां, मुझसे मिली थीं, और उन्होंने जो खबर सुनाई, उसने मुझे दीवाना बना रखा है। अभी तक मैंने अपने दिल का राज तुमसे छिपाया था सकीना, और सोचा था कि उसे कुछ दिन और छिपाए रहूंगा; लेकिन इस खबर ने मुझे मजबूर कर दिया है कि तुमसे वह राज कहूं। तुम सुनकर जो फैसला करोगी, उसी पर मेरी जिंदगी का दारोमदार है। तुम्हारे पैरों पर पड़ा हुआ हूं, चाहे ठुकरा दो, या उठाकर सीने से लगा लो। कह नहीं सकता यह आग मेरे दिल में क्योंकर लगी; लेकिन जिस दिन तुम्हें पहली बार देखा, उसी दिन से एक चिंगारी-सी अंदर बैठ गई और अब वह एक शोला बन गई है। और अगर उसे जल्द बुझाया न गया, तो मुझे जलाकर खाक कर देगी। मैंने बहुत जब्त किया है सकीना, घुट-घुटकर रह गया हूं; मगर तुमने मना कर दिया था, आने का हौसला न हुआ। तुम्हारे कदमों पर मैं अपना सब कुछ कुर्बान कर चुका हूं। वह घर मेरे लिए जेलखाने से बदतर है। मेरी हसीन बीवी मुझे संगमरमर की मूरत-सी लगती है, जिसमें दिल नहीं दर्द नहीं। तुम्हें पाकर मैं सब कुछ पा जाऊंगा।

सकीना जैसे घबरा गई। जहां उसने एक चुटकी आटे का सवाल किया था, वहां दाता ने ज्योनार का एक भरा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटे-से पात्र में इतनी जगह कहां है? उसकी समझ में नहीं आता कि उस विभूति को कैसे समेटे? आंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी। आंखें सजल हो गईं, हृदय उछलने लगा। सिर झुकाकर संकोच-भरे स्वर में बोली—बाबूजी, खुदा जानता है, मेरे दिल में तुम्हारी कितनी इज्जत और कितनी मुहब्बत है। मैं तो तुम्हारी एक निगाह पर कुर्बान हो जाती। तुमने तो भिखारिन को जैसे तीनों लोक का राज्य दे दिया; लेकिन भिखारिन राज लेकर क्या करेगी? उसे तो एक टुकड़ा चाहिए। मुझे तुमने इस लायक समझा, यही मेरे लिए बहुत है। मैं अपने को इस लायक नहीं समझती। सोचो, मैं कौन हूं? एक गरीब मुसलमान औरत, जो मजदूरी करके अपनी जिंदगी बसर करती है। मुझमें न वह नफासत है, न वह सलीका, न वह इल्म। मैं सुखदादेवी के कदमों की बराबरी भी नहीं कर सकती। मेढ़की उड़कर ऊंचे दरख्त पर तो नहीं जा सकती। मेरे कारण आपकी रुसवाई हो, उसके पहले मैं जान दे दूंगी। मैं आपकी जिंदगी में दाग न लगाऊंगी।

ऐसे अवसरों पर हमारे विचार कुछ कवितामय हो जाते हैं। प्रेम की गहराई कविता की

वस्तु है और साधारण बोल-चाल में व्यक्त नहीं हो सकती। सकीना जरा दम लेकर बोली—तुमने एक यतीम, गरीब लड़की को खाक से उठाकर आसमान पर पहुंचाया—अपने दिल में जगह दी—तो मैं भी जब तक जिऊंगी इस मुहब्बत के चिराग को अपने दिल के खून से रोशन रखूंगी।

अमर ने ठंडी सांस खींचकर कहा—इस खयाल से मुझे तस्कीन न होगा, सकीना ! यह चिराग हवा के झोंके से बुझ जाएगा और वहां दूसरा चिराग रोशन होगा। फिर तुम मुझे कब याद करोगी? यह मैं नहीं देख सकता। तुम इस खयाल को दिल से निकाल डालो कि मैं कोई बड़ा आदमी हूं और तुम बिल्कुल नाचीज हो। मैं अपना सब कुछ तुम्हारे कदमों पर निसार कर चुका और मैं तुम्हारे पुजारी के सिवा और कुछ नहीं। बेशक सुखदा तुमसे ज्यादा हसीन है; लेकिन तुममें कुछ बात तो है, जिसने मुझे उधर से हटाकर तुम्हारे कदमों पर गिरा दिया। तुम किसी गैर की हो जाओ, यह मैं नहीं सह सकता। जिस दिन यह नौबत आएगी, तुम सुन लोगी कि अमर इस दुनिया में नहीं है; अगर तुम्हें मेरी वफा के सबूत की जरूरत हो तो उसके लिए खून की यह बूंदें हाजिर हैं।

यह कहते हुए उसने जेब से छुरी निकाल ली। सकीना ने झपटकर छुरी उसके हाथ से छीन ली और मीठी झिड़की के साथ बोली—सबूत की जरूरत उन्हें होती है, जिन्हें यकीन न हो, जो कुछ बदले में चाहते हों। मैं तो सिर्फ तुम्हारी पूजा करना चाहती हूं। देवता मुंह से कुछ नहीं बोलता; तो क्या पुजारी के दिल में उसकी भक्ति कुछ कम होती है? मुहब्बत खुद अपना इनाम है। नहीं जानती जिंदगी किस तरफ जाएगी; लेकिन जो कुछ भी हो, जिस्म चाहे किसी का हो जाए, यह दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा। इस मुहब्बत की गरज से पाक रखना चाहती हूं। सिर्फ यह यकीन कि मैं तुम्हारी हूं, मेरे लिए काफी है। मैं तुमसे सच कहती हूं प्यारे, इस यकीन ने मेरे दिल को इतना मजबूत कर दिया है कि वह बड़ी-से-बड़ी मुसीबत भी हंसकर झेल सकता है। मैंने तुम्हें यहां आने से रोका था। तुम्हारी बदनामी के सिवा, मुझे अपनी बदनामी का भी खौफ था; पर अब मुझे जरा भी खौफ नहीं है। मैं अपनी ही तरफ से बेफिक्र नहीं हूं, तुम्हारी तरफ से भी बेफिक्र हूं। मेरी जान रहते कोई तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।

अमर की इच्छा हुई कि सकीना को गले लगाकर प्रेम से छक जाए; पर सकीना के ऊंचे प्रेमादर्श ने उसे शांत कर दिया। बोला—लेकिन तुम्हारी शादी तो होने जा रही है?

"मैं अब इंकार कर दूंगी।"

"बुढ़िया मान जाएगी?"

"मैं कह दूंगी—अगर तुमने मेरी शादी का नाम भी लिया तो मैं जहर खा लूंगी।"

"क्यों न इसी वक्त हम और तुम कहीं चले जाएं?"

"नहीं, वह जाहिरी मुहब्बत है। असली मुहब्बत वह है, जिसकी जुदाई में भी विसाल है, जहां जुदाई है ही नहीं, जो अपने प्यारे से एक हजार कोस पर होकर भी अपने को उसके गले से मिला हुआ देखती है।"

सहसा पठानिन ने द्वार खोला। अमर ने बात बनाई—मैं तो समझा था, तुम कबकी आ गई होगी। बीच में कहां रह गईं?

बुढ़िया ने खट्टे मन से कहा—तुमने तो आज ऐसा रूखा जवाब दिया भैया, कि मैं रो

पड़ी। तुम्हारा ही तो मुझे भरोसा था और तुम्हीं ने मुझे ऐसा जवाब दिया; पर अल्लाह का फजल है, बहूजी ने मुझसे वादा किया—जितने रुपये चाहना ले जाना। वहीं देर हो गई। तुम मुझसे किसी बात पर नाराज तो नहीं हो, बेटा?

अमर ने उसकी दिलजोई की—नहीं अम्मां, आपसे भला क्या नाराज होता। उस वक्त दादा से एक बात पर झक-झक हो गई थी; उसी का खुमार था। मैं बाद को खुद शर्मिंदा हुआ और तुमसे मुआफी मांगने दौड़ा। सारी खता मुआफ करती हो?

बुढ़िया रोकर बोली—बेटा, तुम्हारे टुकड़ों पर तो जिंदगी कटी, तुमसे नाराज होकर खुदा को क्या मुंह दिखाऊंगी? इस खाल से तुम्हारे पांव की जूतियों बनें, तो भी दरेग न करूं।

''बस, मुझे तस्कीन हो गई अम्मां। इसीलिए आया था।''

अमर द्वार पर पहुंचा, तो सकीना ने द्वार बंद करते हुए कहा—कल जरूर आना।

अमर पर एक गैलन का नशा चढ़ गया—जरूर आऊंगा।

''मैं तुम्हारी राह देखती रहूंगी।''

''कोई चीज तुम्हारी नजर करूं, तो नाराज तो न होगी?''

''दिल से बढ़कर भी कोई नजर हो सकती है?''

''नजर के साथ कुछ शीरीनी होनी जरूरी है।''

''तुम जो कुछ दो, वह सिर-आंखों पर।''

अमर इस तरह अकड़ता हुआ जा रहा था, गोया दुनिया की बादशाही पा गया है।

सकीना ने द्वार बंद करके दादी से कहा—तुम नाहक दौड़-धूप कर रही हो अम्मां। मैं शादी न करूंगी।

''तो क्या यों ही बैठी रहेगी?''

''हां, जब मेरी मर्जी होगी, तब कर लूंगी।''

''तो क्या मैं हमेशा बैठी रहूंगी?''

''हां, जब तक मेरी शादी न हो जाएगी, आप बैठी रहेंगी।''

''हंसी मत कर। मैं सब इंतजाम कर चुकी हूं।''

''नहीं अम्मां, मैं शादी न करूंगी और मुझे दिक करोगी तो जहर खा लूंगी। शादी के खयाल से मेरी रूह फना हो जाती है।''

''तुम्हें क्या हो गया सकीना?''

''मैं शादी नहीं करना चाहती, बस। जब तक कोई ऐसा आदमी न हो, जिसके साथ मुझे आराम से जिंदगी बसर होने का इत्मीनान हो, मैं यह दर्द सर नहीं लेना चाहती। तुम मुझे ऐसे घर में डालने जा रही हो, जहां मेरी जिंदगी तल्ख हो जाएगी। शादी की मंशा यह नहीं है कि आदमी रो-रोकर दिन काटे।''

पठानिन ने अंगीठी के सामने बैठकर सिर पर हाथ रख लिया और सोचने लगी—लड़की कितनी बेशर्म है!

सकीना बाजरे की रोटियां मसूर की दाल के साथ खाकर, टूटी खाट पर लेटी और पुराने फटे हुए लिहाफ में सर्दी के मारे पांव सिकोड़ लिए, पर उसका हृदय आनंद से परिपूर्ण था। आज उसे जो विभूति मिली थी, उसके सामने संसार की संपदा तुच्छ थी, नगण्य थी।

# पंद्रह

अमरकान्त के जीवन में एक नई स्फूर्ति का संचार होने लगा। अब तक घरवालों ने उसके हरेक काम की अवहेलना ही की थी। सभी उसकी लगाम खींचते रहते थे। घोड़े में न वह दम रहा, न वह उत्साह; लेकिन अब एक प्राणी बढ़ावा देता था; उसकी गर्दन पर हाथ फेरता था। जहां उपेक्षा, या अधिक-से-अधिक शुष्क उदासीनता थी, वहां अब एक रमणी का प्रोत्साहन था, जो पर्वतों को हिला सकता है, मुर्दों को जिला सकता है। उसकी साधना, जो बंधनों में पड़कर संकुचित हो गई थी, प्रेम का आश्रय पाकर प्रबल और उग्र हो गई है ! अपने अंदर ऐसी आत्मशक्ति उसने कभी न पाई थी। सकीना अपने प्रेमस्रोत से उसकी साधना को सींचती रहती है ! यह स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती; पर उसका प्रेम उस ऋषि का वरदान है जो आप भिक्षा मांगकर भी दूसरों पर विभूतियों की वर्षा करता है। अमर बिना किसी प्रयोजन के सकीना के पास नहीं जाता। उसमें वह उद्दण्डता भी नहीं रही। समय और अवसर देखकर काम करता है। जिन वृक्षों की जड़ें गहरी होती हैं, उन्हें बार-बार सींचने की जरूरत नहीं होती। वह जमीन से ही आर्द्रता खींचकर बढ़ते और फलते-फूलते हैं। सकीना और अमर का प्रेम वही वृक्ष है। उसे सजग रखने के लिए बार-बार मिलने की जरूरत नहीं।

डिग्री की परीक्षा हुई पर अमरकान्त उसमें बैठा नहीं। अध्यापकों को विश्वास था, उसे छात्रवृत्ति मिलेगी। यहां तक कि डॉ० शान्तिकुमार ने भी उसे बहुत समझाया; पर वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की जरूरत है, डिग्री की नहीं। हमारी डिग्री है—हमारा सेवा-भाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागृत नहीं हुई, तो कागज की डिग्री व्यर्थ है। उसे इस शिक्षा ही से घृणा हो गई थी। जब वह अपने अध्यापकों को फैशन की गुलामी करते, स्वार्थ के लिए नाक रगड़ते, कम-से-कम करके अधिक-से-अधिक लाभ के लिए हाथ पसारते देखता, तो उसे घोर मानसिक वेदना होती थी, और इन्हीं महानुभावों के हाथ में राष्ट्र की बागडोर है। यही कौम के विधाता हैं। इन्हें इसकी परवाह नहीं कि भारत की जनता दो आने पैसों पर गुजर करती है। एक साधारण आदमी को साल-भर में पचास से ज्यादा नहीं मिलते। हमारे अध्यापकों को पचास रुपये रोज चाहिए। तब अमर को उस अतीत की याद आती, जब हमारे गुरुजन झोंपड़ों में रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्विक जीवन के आदर्श, निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम-से-कम लेकर अधिक-से-अधिक देते थे। वह वास्तव में देवता थे और एक यह अध्यापक हैं, जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य-कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी वही दंभ है, वही धन-मद है, वही अधिकार-मद है। हमारे विद्यालय क्या हैं, राज्य के विभाग हैं, और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंश हैं। ये खुद अंधकार में पड़े हुए हैं, प्रकाश क्या फैलाएंगे? वे आप अपने मनोविकारों के कैदी हैं, आप अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं, और अपने शिष्यों को भी उसी कैद और गुलामी में डालते हैं। अमर की युवक-कल्पना फिर अतीत का स्वप्न देखने लगती। परिस्थितियों को वह बिल्कुल भूल जाता। उसके कल्पित राष्ट्र के कर्मचारी सेवा के पुतले होते, अध्यापक झोंपड़ी में रहने वाले बल्कलधारी, कंदमूल-फल-भोगी संन्यासी, जनता द्वेष और लोभ से रहित, न यह आए दिन के टंटे, न बखेड़े। इतनी

अदालतों की जरूरत क्या? यह बड़े-बड़े महकमे किसलिए? ऐसा मालूम होता है, गरीबों की लाश नोचने वाले गिद्धों का समूह है। जिसके पास जितनी ही बड़ी डिग्री है, उसका स्वार्थ भी उतना ही बढ़ा हुआ है। मानो लोभ और स्वार्थ ही विद्वता का लक्षण है ! गरीबों को रोटियां मयस्सर न हों, कपड़ों को तरसते हों, पर हमारे शिक्षित भाइयों को मोटर चाहिए, बंगला चाहिए, नौकरों की एक पलटन चाहिए। इस संसार को अगर मनुष्य ने रचा है तो अन्यायी है, ईश्वर ने रचा है तो उसे क्या कहें !

यही भावनाएं अमर के अंतस्थल में लहरों की भांति उठती रहती थीं।

वह प्रात:काल उठकर शान्तिकुमार के सेवाश्रम में पहुंच जाता और दोपहर तक वहां लड़कों को पढ़ाता रहता। पाठशाला डॉक्टर साहब के बंगले में थी। नौ बजे तक डॉक्टर साहब भी पढ़ाते थे। फीस बिल्कुल न ली जाती थी, फिर भी लड़के बहुत कम आते थे। सरकारी स्कूलों में जहां फीस और जुर्माने और चंदों की भरमार रहती थी, लड़कों को बैठने की जगह न मिलती थी। यहां कोई झांकता भी न था। मुश्किल से दो-ढाई सौ लड़के आते थे। छोटे-छोटे भोले-भाले निष्कपट बालकों का कैसे स्वाभाविक विकास हो, कैसे वे साहसी, संतोषी, सेवाशील नागरिक बन सकें, यही मुख्य उद्देश्य था। सौंदर्य-बोध जो मानव-प्रकृति का प्रधान अंग है, कैसे दूषित वातावरण से अलग रहकर अपनी पूर्णता पाए, संघर्ष की जगह सहानुभूति का विकास कैसे हो, दोनों मित्र यही सोचत रहते थे। उनके पास शिक्षा की कोई बनी-बनाई प्रणाली न थी। उद्देश्य को सामने रखकर ही वह साधनों की व्यवस्था करते थे। आदर्श महापुरुषों के चरित्र, सेवा और त्याग की कथाएं, भक्ति और प्रेम के पद, यही शिक्षा के आधार थे। उनके दो सहयोगी और थे। एक आत्मानन्द संन्यासी थे, जो संसार से विरक्त होकर सेवा में जीवन सार्थक करना चाहते थे, दूसरे एक संगीत के आचार्य थे, जिनका नाम था ब्रजनाथ। इन दोनों सहयोगियों के आ जाने से शाला की उपयोगिता बहुत बढ़ गई थी।

एक दिन अमर ने शान्तिकुमार से कहा—आप आखिर कब तक प्रोफेसरी करते चले जाएंगे? जिस संस्था को हम जड़ से काटना चाहते हैं, उसी से चिमटे रहना तो आपको शोभा नहीं देता !

शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा— मैं खुद यही सोच रहा हूं भई पर सोचता हूं, रुपये कहां से आएंगे? कुछ खर्च नहीं है, तो भी पांच सौ में तो संदेह है ही नहीं।

''आप इसकी चिंता न कीजिए। कहीं-न-कहीं से रुपये आ ही जाएंगे। फिर रुपये की जरूरत क्या है?''

''मकान का किराया है, लड़कों के लिए किताबें हैं, और बीसों ही खर्च हैं। क्या-क्या गिनाऊं?''

''हम किसी वृक्ष के नीचे तो लड़कों को पढ़ा सकते हैं।''

''तुम आदर्श की धुन में व्यावहारिकता का बिल्कुल विचार नहीं करते। कोरा आदर्शवाद खयाली पुलाव है।''

अमर ने चकित होकर कहा –मैं तो समझता था, आप भी आदर्शवादी हैं।

शान्तिकुमार ने मानो इस चोट को ढाल पर रोककर कहा—मेरे आदर्शवाद में व्यावहारिकता का भी स्थान है।

''इसका अर्थ यह है कि आप गुड़ खाते हैं, गुलगुले से परहेज करते हैं।''

''जब तक मुझे रुपये कहीं से मिलने न लगें, तुम्हीं सोचो, मैं किस आधार पर नौकरी का परित्याग कर दूं? पाठशाला मैंने खोली है। इसके संचालने का दायित्व मुझ पर है। इसके बंद हो जाने पर मेरी बदनामी होगी। अगर तुम इसके संचालन का कोई स्थायी प्रबंध कर सकते हो, तो मैं आज इस्तीफा दे सकता हूं; लेकिन बिना किसी आधार के मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं इतना पक्का आदर्शवादी नहीं हूं।''

अमरकान्त ने अभी सिद्धांत से समझौता करना न सीखा था। कार्यक्षेत्र में कुछ दिन रह जाने और संसार के कडुवे अनुभव हो जाने के बाद हमारी प्रकृति में जो ढीलापन आ जाता है, उस परिस्थिति में वह न पड़ा था। नवदीक्षितों को सिद्धांत में जो अटल भक्ति होती है वह उसमें भी थी। डॉक्टर साहब में उसे जो श्रद्धा थी, उसे जोर का धक्का लगा। उसे मालूम हुआ कि यह केवल बातों के वीर हैं, कहते कुछ हैं करते कुछ हैं। जिसका खुले शब्दों में यह आशय है कि यह संसार को धोखा देते हैं। ऐसे मनुष्य के साथ वह कैसे सहयोग कर सकता है?

उसने जैसे धमकी दी—तो आप इस्तीफा नहीं दे सकते?

''उस वक्त तक नहीं, जब तक धन का कोई प्रबंध न हो।''

''तो ऐसी दशा में मैं यहां काम नहीं कर सकता।''

डॉक्टर साहब ने नम्रता से कहा—देखो अमरकान्त, मुझे संसार का तुमसे ज्यादा तजुर्बा है, मेरा इतना जीवन नए-नए परीक्षणों में ही गुजरा है। मैंने जो तत्त्व निकाला है, यह है कि हमारा जीवन समझौते पर टिका हुआ है। अभी तुम मुझे जो चाहे समझो; पर एक समय आएगा, जब तुम्हारी आंखें खुलेंगी और तुम्हें मालूम होगा कि जीवन में यथार्थ का महत्त्व आदर्श से जौ-भर भी कम नहीं।

अमर ने जैसे आकाश में उड़ते हुए कहा—मैदान में मर जाना मैदान छोड़ देने से कहीं अच्छा है। और उसी वक्त वहां से चल दिया।

पहले सलीम से मुठभेड़ हुई। सलीम इस शाला को मदारी का तमाशा कहा करता था, जहां जादू की लकड़ी छुआ देने ही से मिट्टी सोना बन जाती है। वह एम० ए० की तैयारी कर रहा था। उसकी अभिलाषा थी कोई अच्छा सरकारी पद पा जाए और चैन से रहे। सुधार और संगठन और राष्ट्रीय आंदोलन से उसे विशेष प्रेम न था। उसने यह खबर सुनी तो खुश होकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया, निकल आए। मैं डॉक्टर साहब को खूब जानता हूं, वह उन लोगों में हैं, जो दूसरों के घर में आग लगाकर अपना हाथ सेंकते हैं। कौम के नाम पर जान देते हैं, मगर जबान से।

सुखदा भी खुश हुई। अमर का शाला के पीछे पागल हो जाना उसे न सोहाता था। डॉक्टर साहब से उसे चिढ़ थी। वही अमर को उंगलियों पर नचा रहे हैं। उन्हीं के फेर में पड़कर अमर घर से उदासीन हो गया है।

पर जब संध्या समय अमर ने सकीना से जिक्र किया, तो उसने डॉक्टर का पक्ष लिया —मैं समझती हूं, डॉक्टर साहब का खयाल ठीक है। भूखे पेट खुदा की याद भी नहीं हो सकता। जिसके सिर रोजी की फिक्र सवार है, वह कौम की क्या खिदमत करेगा, और करेगा तो अमानत में खयानत करेगा। आदमी भूखा नहीं रह सकता। फिर मदरसे का खर्च भी तो है।

माना कि दरख्तों के नीचे ही मदरसा लगे, लेकिन वह बाग कहां है? कोई ऐसी जगह तो चाहिए ही जहां लड़के बैठकर पढ़ सकें। लड़कों को किताबें, कागज चाहिए, बैठने को फर्श चाहिए, डोल-रस्सी चाहिए। या तो चंदे से आए, या कोई कमाकर दे। सोचो, जो आदमी अपने उसूल के खिलाफ नौकरी करके एक काम की बुनियाद डालता है, वह उसके लिए कितनी कुरबानी कर रहा है ! तुम अपने वक्त की कुरबानी करते हो। वह अपने जमीर तक की कुरबानी कर देता है। मैं तो ऐसे आदमी को कहीं ज्यादा इज्जत के लायक समझती हूं।

पठानिन ने कहा--तुम इस छोकरी की बातों में न आ जाना बेटा, जाकर घर का धंधा देखो, जिससे गृहस्थी का निर्वाह हो। यह सैलानीपन उन लोगों को चाहिए, जो घर के निखट्टू हैं। तुम्हें अल्लाह ने इज्जत दी है, मर्तबा दिया है, बाल-बच्चे दिए हैं। तुम इन खुराफातों में न पड़ो।

अमर को अब टोपियां बेचने से फुर्सत मिल गई थी। बुढ़िया को रेणुकादेवी के द्वारा चिकन का काम इतना ज्यादा मिल जाता था कि टोपियां कौन काढ़ता? सलीम के घर से कोई-न-कोई काम आता ही रहता था। उसके जरिए से और घरों से भी काफी काम मिल जाता था। सकीना के घर में कुछ खुशहाली नजर आती थी। घर की पुताई हो गई थी, द्वार पर नया परदा पड़ गया था, दो खाटें नई आ गई थीं, खाटों पर दरियां भी नई थीं, कई बरतन नए आ गए थे। कपड़े-लत्ते की भी कोई शिकायत न थी। उर्दू का एक अखबार भी खाट पर रखा हुआ था। पठानिन को अपने अच्छे दिनों में भी इससे ज्यादा समृद्धि न हुई थी। बस, उसे अगर कोई गम था, तो यह कि सकीना शादी करने पर राजी न होती थी।

अमर यहां से चला, तो अपनी भूल पर लज्जित था। सकीना के एक ही वाक्य ने उसके मन की सारी शंका शांत कर दी थी। डॉक्टर साहब से उसकी श्रद्धा फिर उतनी ही गहरी हो गई थी। सकीना की बुद्धिमत्ता, विचार-सौष्ठव, सूझ और निर्भीकता ने तो चकित और मुग्ध कर दिया था। सकीना उसका परिचय जितना ही गहरा होता था, उतना ही उसका असर भी गहरा होता था। सुखदा अपनी प्रतिभा और गरिमा से उस पर शासन करती थी। वह शासन उसे अप्रिय था। सकीना अपनी नम्रता और मधुरता से उस पर शासन करती थी। वह शासन उसे प्रिय था। सुखदा में अधिकार का गर्व था। सकीना में समर्पण की दीनता थी। सुखदा अपने को पति से बुद्धिमान् और कुशल समझती थी। सकीना समझती थी, मैं इनके आगे क्या हूं?

डॉक्टर साहब ने मुस्कराकर पूछा--तो तुम्हारा यही निश्चय है कि मैं इस्तीफा दे दूं? वास्तव में मैंने इस्तीफा लिख रखा है और कल दे दूंगा। तुम्हारा सहयोग मैं नहीं खो सकता। मैं अकेला कुछ भी न कर सकूंगा। तुम्हारे जाने के बाद मैंने ठंडे दिल से सोचा तो मालूम हुआ, मैं व्यर्थ के मोह में पड़ा हुआ हूं। स्वामी दयानन्द के पास क्या था जब उन्होंने आर्यसमाज की बुनियाद डाली?

अमरकान्त भी मुस्कराया--नहीं, मैंने ठंडे दिल से सोचा तो मालूम हुआ कि मैं गलती पर था। जब तक रुपये का कोई माकूल इंतजाम न हो जाए, आपको इस्तीफा देने की जरूरत नहीं।

डॉक्टर साहब ने विस्मय से कहा--तुम व्यंग्य कर रहे हो?

''नहीं, मैंने आपसे बेअदबी की थी उसे क्षमा कीजिए।''

# सोलह

इधर कुछ दिनों से अमरकान्त म्युनिसिपल बोर्ड का मेंबर हो गया था। लाला समरकान्त का नगर में इतना प्रभाव था और जनता अमरकान्त को इतना चाहती थी कि उसे धेला भी नहीं खर्च करना पड़ा और वह चुन लिया गया। उसके मुकाबले में एक नामी वकील साहब खड़े थे। उन्हें उसके चौथाई वोट भी न मिले। सुखदा और लाला समरकान्त दोनों ही ने उसे मना किया था। दोनों ही उसे घर के कामों में फंसाना चाहते थे। अब वह पढ़ना छोड़ चुका था और लालाजी उसके माथे सारे भार डालकर खुद अलग हो जाना चाहते थे। इधर-उधर के कामों में पड़कर वह घर का काम क्या कर सकेगा। एक दिन घर में छोटा-मोटा तूफान आ गया। लालाजी और सुखदा एक तरफ थे, अमर दूसरी तरफ और नैना मध्यस्थ थी।

लालाजी ने तोंद पर हाथ फेरकर कहा--धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का। भोर से पाठशाला जाओ, सांझ हो तो कांग्रेस में बैठो, अब यह नया रोग और बेसाहने को तैयार हो। घर में लगा दो आग!

सुखदा ने समर्थन किया -हां, अब तुम्हें घर का काम-धंधा देखना चाहिए या व्यर्थ के कामों में फंसना? अब तक तो यह था कि पढ़ रहे हैं। अब तो पढ़-लिख चुके हो। अब तुम्हें अपना घर संभालना चाहिए। इस तरह के काम तो वे उठावें, जिनके घर दो-चार आदमी हों। अकेले आदमी को घर से ही फुर्सत नहीं मिल सकती। ऊपर के काम कहां से करे?

अमर ने कहा--जिसे आप लोग रोग और ऊपर का काम और व्यर्थ का झंझट कह रहे हैं, मैं उसे घर के काम से कम जरूरी नहीं समझता। फिर जब तक आप हैं, मुझे क्या चिंता? और सच तो यह है कि मैं इस काम के लिए बनाया ही नहीं गया। आदमी उसी काम में सफल होता है, जिसमें उसका जी लगता हो। लेन-देन, बनिज-व्यापार में मेरा जी बिल्कुल नहीं लगता। मुझे डर लगता है कि कहीं बना-बनाया काम बिगाड़ न बैठूं।

लालाजी को यह कथन सारहीन जान पड़ा। उनका पुत्र बनिज- व्यवसाय के काम में कच्चा हो, यह असंभव था। पोपले मुंह में पान चबाते हुए बोले--यह सब तुम्हारी मुटमरदी है। और कुछ नहीं, मैं न होता, तो तुम क्या अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण न करते? तुम मुझी को पीसना चाहते हो। एक लड़के वह होते हैं, जो घर संभालकर बाप को छुट्टी देते हैं। एक तुम हो कि बाप की हड्डियां तक नहीं छोड़ना चाहते।

बात बढ़ने लगी। सुखदा ने मामला गर्म होते देखा, तो चुप हो गई। नैना उंगलियों से दोनों कान बंद करके घर में आ बैठी। यहां दोनों पहलवानों में मल्लयुद्ध होता रहा। युवक में चुस्ती थी, फुर्ती थी, लचक थी, बूढ़े में पेंच था, दम था, गंब था। पुराना फिकैत बार-बार उसे दबाना चाहता था, पर जवान पट्ठा नीचे से सरक जाता था। कोई हाथ, कोई घात न चलता था।

अंत में लालाजी ने जामे से बाहर होकर कहा--तो बाबा, तुम अपने बाल-बच्चे लेकर अलग हो जाओ, मैं तुम्हारा बोझ नहीं संभाल सकता। इस घर में रहोगे, तो किराया और घर में जो कुछ खर्च पड़ेगा उसका आधा चुपके से निकालकर रख देना पड़ेगा। मैंने तुम्हारी जिंदगी भर का ठेका नहीं लिया है। घर को अपना समझो, तो तुम्हारा सब कुछ है। ऐसा नहीं समझते,

तो यहां तुम्हारा कुछ नहीं है। जब मैं मर जाऊं, तो जो कुछ हो आकर ले लेना।

अमरकान्त पर बिजली-सी गिर पड़ी। जब तक बालक न हुआ था और वह घर से फटा-फटा रहता था, तब उसे आघात की शंका दो-एक बार हुई थी, पर बालक के जन्म के बाद से लालाजी के व्यवहार और स्वभाव में वात्सल्य की स्निग्धता आ गई थी। अमर को अब इस कठोर आघात की बिल्कुल शंका न रही थी। लालाजी को जिस खिलौने की अभिलाषा थी, उन्हें वह खिलौना देकर अमर निश्चिंत हो गया था, पर आज उसे मालूम हुआ वह खिलौना माया की जंजीरों को तोड़ न सका।

पिता पुत्र की टालमटोल पर नाराज हो घुड़के-झिड़के, मुंह फुलाए, यह तो उसकी समझ में आता था, लेकिन पिता पुत्र से घर का किराया और रोटियों का खर्च मांगे, यह तो माया-लिप्सा की—निर्मम माया-लिप्सा की—पराकाष्ठा थी। इसका एक ही जवाब था कि वह आज ही सुखदा और उसके बालक को लेकर कहीं और जा टिके। और फिर पिता से कोई सरोकार न रखे। और अगर सुखदा आपत्ति करे तो उसे भी तिलांजलि दे दे।

उसने स्थिर भाव से कहा—अगर आपकी यही इच्छा है तो यही सही।

लालाजी ने कुछ खिसियाकर पूछा—सास के बल पर कूद रहे होगे ?

अमर ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा—दादा, आप घाव पर नमक न छिड़कें। जिस पिता ने जन्म दिया, जब उसके घर में मेरे लिए स्थान नहीं है, तो क्या आप समझते हैं मैं सास और ससुर की रोटियां तोडूंगा ? आपकी दया से इतना नीच नहीं हूं। मैं मजदूरी कर सकता हूं और पसीने की कमाई खा सकता हूं। मैं किसी प्राणी से दया की भिक्षा मांगना अपने आत्म-सम्मान के लिए घातक समझता हूं। ईश्वर ने चाहा तो मैं आपको दिखा दूंगा कि मैं मजदूरी करके भी जनता की सेवा कर सकता हूं।

समरकान्त ने समझा, अभी इसका नशा नहीं उतरा। महीना गृहस्थी के चरखे में पड़ेगा तो आंखें खुल जाएंगी। चुपचाप बाहर चले गए। और अमर उसी वक्त एक मकान की तलाश करने चला।

उसके चले जाने के बाद लालाजी फिर अंदर गए। उन्हें आशा थी कि सुखदा उनके घाव पर मरहम रखेगी; पर सुखदा उन्हें अपने द्वार के सामने देखकर भी बाहर न निकली। कोई पिता इतना कठोर हो सकता है, इसकी वह कल्पना भी न कर सकती थी। आखिर यह लाखों की संपत्ति किस काम आएगी ? अमर घर के काम-काज से अलग रहता है, यह सुखदा को खुद बुरा मालूम होता था। लालाजी इसके लिए पुत्र को ताड़ना देते हैं, यह भी उचित ही था; लेकिन घर का और भोजन का खर्च मांगना यह तो नाता ही तोड़ना था। तो जब वह नाता तोड़ते हैं तो वह रोटियों के लिए उनकी खुशामद न करेगी। घर में आग लग जाए, उससे कोई मतलब नहीं। उसने अपने सारे गहने उतार डाले। आखिर यह गहने भी तो लालाजी ही ने दिए हैं। मां की दी हुई चीजें भी उतार फेंकी। मां ने भी जो कुछ दिया था, दहेज की पुरौती ही में तो दिया था। उसे भी लालाजी ने अपनी बही में टाक लिया होगा। वह इस घर से केवल एक साड़ी पहनकर जाएगी। भगवान् उसके मुन्ने को कुशल से रखें, उसे किसी की क्या परवाह ! यह अमूल्य रत्न तो कोई उससे छीन नहीं सकता।

अमर के प्रति इस समय उसके मन में सच्ची सहानुभूति उत्पन्न हुई। आखिर

म्युनिसिपैलिटी के लिए खड़े होने में क्या बुराई थी? मान और प्रतिष्ठा किसे प्यारी नहीं होती ? इसी मेंबरी के लिए लोग लाखों खर्च करते हैं। क्या वहां जितने मेंबर हैं, वह सब घर के निखट्टू ही हैं ? कुछ नाम करने की, कुछ काम करने की लालसा प्राणी मात्र को होती है। अगर वह स्वार्थ साधन पर अपना समर्पण नहीं करते, तो कोई ऐसा काम नहीं करते, जिसका यह दंड दिया जाए। कोई दूसरा आदमी पुत्र के इस अनुराग पर अपने को धन्य मानता, अपने भाग्य को सराहता।

सहसा अमर ने आकर कहा—तुमने आज दादा की बातें सुन लीं ? अब क्या सलाह है ?

''सलाह क्या है, आज ही यहां से विदा हो जाना चाहिए। यह फटकार पाने के बाद तो मैं इस घर में पानी पीना हराम समझती हूं। कोई घर ठीक कर लो।''

''वह तो ठीक कर आया। छोटा-सा मकान है, साफ-सुथरा, नीचीबाग में। दस रुपये किराया है।''

''मैं भी तैयार हूं।''

''तो एक तांगा लाऊं ?''

''कोई जरूरत नहीं। पांव-पांव चलेंगे।''

''संदूक, बिछावन यह सब तो ले चलना ही पड़ेगा ?''

''इस घर में हमारा कुछ नहीं है। मैंने तो सब गहने भी उतार दिए। मजदूरों की स्त्रियां गहने पहनकर नहीं बैठा करतीं।''

स्त्री कितनी अभिमानिनी है, यह देखकर अमरकान्त चकित हो गया। बोला—लेकिन गहने तो तुम्हारे हैं। उन पर किसी का दावा नहीं है। फिर आधे से ज्यादा तो तुम अपने साथ लाई थीं।

''अम्मां ने जो कुछ दिया, दहेज की पुरौती में दिया। लालाजी ने जो कुछ दिया, वह यह समझकर दिया कि घर ही में तो है। एक-एक चीज उनकी बही में दर्ज है। मैं गहनों को भी दया की भिक्षा समझती हूं। अब तो हमारा उसी चीज पर दावा होगा, जो हम अपनी कमाई से बनवाएंगे।''

अमर गहरी चिंता में डूब गया। यह तो इस तरह नाता तोड़ रही है कि एक तार भी बाकी न रहे। गहने औरतों को कितने प्रिय होते हैं, यह वह जानता था। पुत्र और पति के बाद अगर उन्हें किसी वस्तु से प्रेम होता है, तो वह गहने हैं। कभी-कभी तो गहनों के लिए वह पुत्र और पति से भी तन बैठती हैं। अभी घाव ताजा है, कसक नहीं है। दो-चार दिन के बाद यह वितृष्णा जलन और असंतोष के रूप में प्रकट होगी। फिर तो बात-बात पर ताने मिलेंगे, बात-बात पर भाग्य का रोना होगा। घर में रहना मुश्किल हो जाएगा।

बोला—मैं तो यह सलाह दूंगा सुखदा, जो चीज अपनी है, उसे अपने साथ ले चलने में मैं कोई बुराई नहीं समझता।

सुखदा ने पति को सगर्व दृष्टि से देखकर कहा—तुम समझते होगे, मैं गहनों के लिए कोने में बैठकर रोऊंगी और अपने भाग्य को कोसूंगी। स्त्रियां अवसर पड़ने पर कितना त्याग कर सकती हैं, यह तुम नहीं जानते। मैं इस फटकार के बाद इन गहनों की ओर ताकना भी

पाप समझती हूं, इन्हें पहनना तो दूसरी बात है। अगर तुम डरते हो कि मैं कल ही से तुम्हारा सिर खाने लगूंगी, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि अगर गहनों का नाम मेरी जबान पर आए, तो जबान काट लेना। मैं यह भी कहे देती हूं कि मैं तुम्हारे भरोसे पर नहीं जा रही हूं। अपनी गुजर भर को आप कमा लूंगी। रोटियों में ज्यादा खर्च नहीं होता। खर्च होता है आडंबर में। एक बार अमीरी की शान छोड़ दो, फिर चार आने पैसे में काम चलता है।

नैना भाभी को गहने उतारकर रखते देख चुकी थी। उसके प्राण निकले जा रहे थे कि अकेली इस घर में कैसे रहेगी? बच्चे के बिना तो वह घड़ी भर भी नहीं रह सकती। उसे पिता, भाई, भावज सभी पर क्रोध आ रहा था। दादा को क्या सूझी? इतना धन तो घर में भरा हुआ है, वह क्या होगा? भैया ही घड़ी भर दूकान पर बैठ जाते, तो क्या बिगड़ जाता था? भाभी को भी न जाने क्या सनक सवार हो गई। वह न जातीं, तो भैया दो-चार दिन में फिर लौट ही आते। भाभी के साथ वह भी चली जाए, तो दादा को भोजन कौन देगा? किसी और के हाथ का बनाया खाते भी तो नहीं। वह भाभी को समझाना चाहती थी, पर कैसे समझाए? यह दोनों तो उसकी तरफ आंखें उठाकर देखते भी नहीं। भैया ने अभी से आंखें फेर लीं। बच्चा भी कैसा खुश है? नैना के दु:ख का पारावार नहीं है।

उसने जाकर बाप से कहा—दादा, भाभी तो सब गहने उतारकर रखे देती हैं।

लालाजी चिंतित थे। कुछ बोले नहीं। शायद सुना ही नहीं।

नैना ने जरा और जोर से कहा—भाभी अपने सब गहने उतारकर रखे देती हैं।

लालाजी ने अनमने भाव से सिर उठाकर कहा--गहने क्या कर रही हैं?

'उतार-उतारकर रखे देती हैं।''

''तो मैं क्या करूं?''

''तुम जाकर उनसे कहते क्यों नहीं?''

''वह नहीं पहनना चाहती. तो मैं क्या करूं !''

''तुम्हीं ने उनसे कहा होगा, गहने मत ले जाना। क्या तुम उनके ब्याह के गहने भी ले लोगे?''

''हां, मैं सब ले लूंगा। इस घर में उसका कुछ भी नहीं है।''

''यह तुम्हारा अन्याय है।''

''जा अंदर बैठ, बक-बक मत कर !''

''तुम जाकर उन्हें समझाते क्यों नहीं?''

''तुझे बड़ा दर्द आ रहा है, तू ही क्यों नहीं समझाती?''

''मैं कौन होती हूं समझाने वाली? तुम अपने गहने ले रहे हो, तो वह मेरे कहने से क्यों पहनने लगीं?''

दोनों कुछ देर तक चुपचाप रहे। फिर नैना ने कहा मुझसे यह अन्याय नहीं देखा जाता। गहने उनके हैं। ब्याह के गहने तुम उनसे नहीं ले सकते।

''तू यह कानून कब से जान गई।''

''न्याय क्या है और अन्याय क्या है, यह सिखाना नहीं पड़ता। बच्चे को भी बेकसूर सजा दो तो वह चुपचाप न सहेगा।''

''मालूम होता है, भाई से यही विद्या सीखती है।''

''भाई से अगर न्याय-अन्याय का ज्ञान सीखती हूं, तो कोई बुराई नहीं।''

''अच्छा भाई, सिर मत खा, कह दिया अंदर जा। मैं किसी को मनाने-समझाने नहीं जाता। मेरा घर है, इसकी सारी संपदा मेरी है। मैंने इसके लिए जान खपाई है। किसी को क्यों ले जाने दूं?''

नैना ने सहसा सिर झुका लिया और जैसे दिल पर जोर डालकर कहा—तो फिर मैं भी भाभी के साथ चली जाऊंगी।

लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई—चली जा, मैं नहीं रोकता। ऐसी संतान से बेसंतान रहना ही अच्छा। खाली कर दो मेरा घर, आज ही खाली कर दो। खूब टांगें फैलाकर सोऊंगा। कोई चिंता तो न होगी। आज यह नहीं है, आज वह नहीं है, यह तो न सुनना पड़ेगा। तुम्हारे रहने से कौन सुख था मुझे?

नैना लाल आंखें किए सुखदा से जाकर बोली—भाभी, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

सुखदा ने अविश्वास के स्वर में कहा—हमारे साथ ! हमारा तो अभी कहीं घर-द्वार नहीं है। न पास पैसे हैं, न बरतन-भांडे, न नौकर-चाकर। हमारे साथ कैसे चलोगी? इस महल में कौन रहेगा?

नैना की आंखें भर आईं—जब तुम्हीं जा रही हो, तो मेरा यहां क्या है?

पगली सिल्लो आई और ठट्ठा मारकर बोली—तुम सब जने चले जाओ, अब मैं इस घर की रानी बनूंगी। इस कमरे में इसी पलंग पर मजे से सोऊंगी। कोई भिखारी द्वार पर आएगा तो झाड़ू लेकर दौड़ूंगी।

अमर पगली के दिल की बात समझ रहा था, पर इतना बड़ा खटला लेकर कैसे जाए, घर में एक ही तो रहने लायक कोठरी है। वहां नैना कहां रहेगी और यह पगली तो जीना मुहाल कर देगी। नैना से बोला—तुम हमारे साथ चलोगी, तो दादा का खाना कौन बनाएगा, नैना? फिर हम कहीं दूर तो नहीं जाते। मैं वादा करता हूं, एक बार रोज तुमसे मिलने आया करूंगा। तुम और सिल्लो दोनों रहो। हमें जाने दो।

नैना रो पड़ी—तुम्हारे बिना मैं इस घर में कैसे रहूंगी भैया, सोचो ! दिन-भर पड़े-पड़े क्या करूंगी? मुझसे तो छिन भर भी न रहा जाएगा। मुन्ने की याद कर-करके रोया करूंगी। देखते हो भाभी, मेरी ओर ताकता भी नहीं।

अमर ने कहा—तो मुन्ने को छोड़ जाऊं? तेरे ही पास रहेगा।

सुखदा ने विरोध किया—वाह ! कैसी बात कर रहे हो? रो-रोकर जान दे देगा। फिर मेरा जी भी तो न मानेगा।

शाम को तीनों आदमी घर से निकले। पीछे-पीछे सिल्लो भी हंसती हुई चली जाती थी। सामने के दूकानदार ने समझा, कहीं नेवते जाती हैं; पर क्या बात है, किसी के देह पर छल्ला भी नहीं ! न चादर, न धराऊ कपड़े !

लाला समरकान्त अपने कमरे में बैठे हुक्का पी रहे थे। आंखें उठाकर भी न देखा। एक घंटे के बाद वह उठे, घर में ताला डाल दिया और फिर कमरे में आकर लेट रहे।

एक दूकानदार ने आकर पूछा—भैया और बीवी कहां गए, लालाजी?

लालाजी ने मुंह फेरकर जवाब दिया—मुझे नहीं मालूम—मैंने सबको घर से निकाल दिया। मैंने धन इसलिए नहीं कमाया है कि लोग मौज उड़ाएं। जो धन को मिट्टी समझे, उसे धन का मूल्य सीखना होगा। मैं आज भी अट्ठारह घंटे रोज काम करता हूं। इसलिए नहीं कि लड़के धन को मिट्टी समझें। मेरी ही गोद के लड़के मुझे ही आंखें दिखाएं। धन का धन दूं, ऊपर से धौंस भी सुनूं। बस, जबान न खोलूं, चाहे कोई घर में आग लगा दे। घर का काम चूल्हे में जाए, तुम्हें सभाओं में, जलसों में आनंद आता है, तो जाओ, जलसों से अपना निबाह भी करो। ऐसों के लिए मेरा घर नहीं। लड़का वही है, जो कहना सुने। जब लड़का अपने मन का हो गया तो कैसा लड़का !

रेणुका को ज्योंही सल्लो ने खबर दी, वह बदहवास दौड़ी आई, मानो बेटी और दामाद पर कोई बड़ा संकट आ गया है। वह क्या गैर थीं, उनसे क्या कोई नाता ही नहीं? उनको खबर तक न दी और अलग मकान ले लिया। वाह ! यह भी कोई लड़कों का खेल है। दोनों बिलल्ले। छोकरी तो ऐसी न थी, पर लौंडे के साथ उसका भी सिर फिर गया।

रात के आठ बज गए थे। हवा अभी तक गर्म थी। आकाश के तारे गर्द से धुंधले हो रहे थे। रेणुका पहुंचीं, तो तीनों निकलुए कोठे की एक चारपाई पर बराबर छत पर मन मारे बैठे थे। सारे घर में अंधकार छाया हुआ था। बेचारों पर गृहस्थी की नई विपत्ति पड़ी थी। पास एक पैसा नहीं। कुछ न सूझता था, क्या करें।

अमर ने उन्हें देखते ही कहा—अरे ! तुम्हें कैसे खबर मिल गई अम्मांजी ! अच्छा, इस चुड़ैल सिल्लो ने जाकर कहा होगा। कहां है अभी खबर लेता हूं !

रेणुका अंधेरे में जीने पर चढ़ने से हांफ गई थीं। चादर उतारती हुई बोलीं—मैं क्या दुश्मन थी कि मुझसे उसने कह दिया तो बुराई की? क्या मेरा घर न था, या मेरे घर रोटियां न थीं? मैं यहां एक क्षण-भर तो रहने न दूंगी। वहां पहाड़-सा घर पड़ा हुआ है, यहां तुम सब-के-सब एक बिल में घुसे बैठे हो। उठो अभी। बच्चा मारे गर्मी के कुम्हला गया होगा। यहां खाटें भी तो नहीं हैं और इतनी-सी जगह में सोओगे कैसे? तू तो ऐसी न थी सुखदा, तुझे क्या हो गया? बड़े-बूढ़े दो बात कहें, तो गम खाना होता है कि घर से निकल खड़े होते हैं? क्या इनके साथ तेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई?

सुखदा ने सारा वृतांत कह सुनाया और इस ढंग से कि रेणुका को भी लाला समरकान्त की ही ज्यादती मालूम हुई। उन्हें अपने धन का घमंड है तो उसे लिए बैठे रहें। मरने लगें, तो साथ लेते जाएं !

अमर ने कहा—दादा को यह खयाल न होगा कि ये सब घर से चले जाएंगे।

सुखदा का क्रोध इतनी जल्द शांत होने वाला न था। बोली—चलो, उन्होंने साफ कहा, यहां तुम्हारा कुछ नहीं है। क्या वह एक दफे भी आकर न कह सकते थे, तुम लोग कहां जा रहे हो? हम घर से निकले। वह कमरे में बैठे टुकुर-टुकुर देखा किए। बच्चे पर भी उन्हें दया न आई। जब इतना घमंड है, तो यहां क्या आदमी ही नहीं हैं? वह अपना महल लेकर रहें, हम अपनी मेहनत-मजूरी कर लेंगे। ऐसा लोभी आदमी तुमने कभी देखा था अम्मां, बीवी गई, तो इन्हें भी डांट बतलाई। बेचारी रोती चली आई।

रेणुका ने नैना का हाथ पकड़कर कहा—अच्छा, जो हुआ अच्छा ही हुआ, चलो देर हो

रही है। मैं महराजिन से भोजन को कह आई हूं। खाटें भी निकलवा आई हूं। लाला का घर न उजड़ता, तो मेरा कैसे बसता?

नीचे प्रकाश हुआ। सिल्लो ने कड़वे तेल का चिराग जला दिया था। रेणुका को यहां पहुंचाकर बाजार दौड़ी गई। चिराग, तेल और एक झाडू लाई। चिराग जलाकर घर में झाडू लगा रही थी।

सुखदा ने बच्चे को रेणुका की गोद में देकर कहा—आज तो क्षमा करो अम्मां, फिर आगे देखा जाएगा। लालाजी को यह कहने का मौका क्यों दें कि आखिर ससुराल भागा। उन्होंने पहले ही तुम्हारे घर का द्वार बंद कर दिया है। हमें दो-चार दिन यहां रहने दो, फिर तुम्हारे पास चले जाएंगे। जरा हम देख तो लें, अपने बूते पर रह सकते हैं या नहीं?

अमर की नानी मर रही थी। अपने लिए तो उसे चिंता न थी। सलीम या डॉक्टर के यहां चला जाएगा। यहां सुखदा और नैना दोनों बे-खाट के कैसे सोएंगी? कल ही कहां से धन बरस जाएगा? मगर सुखदा की बात की बात कैसे काटे।

रेणुका ने बच्चे की मुच्छियां लेकर कहा—भला, देख लेना जब मैं मर जाऊं। अभी तो मैं जीती ही हूं। वह घर भी तो तेरा ही है। चल जल्दी कर।

सुखदा ने दृढ़ता से कहा—अम्मां, जब तक हम अपनी कमाई से अपना निबाह न करने लगेंगे, तब तक तुम्हारे यहां न जाएंगे, जाएंगे पर मेहमान की तरह। घंटे दो घंटे बैठे और चले आए।

रेणुका ने अमर से अपील की—देखते हो बेटा, इसकी बातें। यह मुझे भी गैर समझती है।

सुखदा ने व्यथित कंठ से कहा—अम्मां, बुरा न मानना, आज दादाजी का बर्ताव देखकर मुझे मालूम हो गया कि धनियों को अपना धन कितना प्यारा होता है? कौन जाने कभी तुम्हारे मन में भी ऐसे ही भाव पैदा हों तो ऐसा अवसर आने ही क्यों दिया जाए? जब हम मेहमान की तरह

अमर ने बात काटी। रेणुका के कोमल हृदय पर कितना कठोर आघात था।

''तुम्हारे जाने में तो ऐसा कोई हर्ज नहीं है सुखदा ! तुम्हें बड़ा कष्ट होगा।''

सुखदा ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या तुम्हीं कष्ट सह सकते हो? मैं नहीं सह सकती? तुम अगर कष्ट से डरते हो, तो जाओ। मैं तो अभी कहीं नहीं जाने की।

नतीजा यह हुआ कि रेणुका ने सिल्लो को घर भेजकर अपने बिस्तर मंगवाए। भोजन पक चुका था; इसलिए भोजन भी मंगवा लिया गया। छत पर झाडू दी गई और जैसे धर्मशाला में यात्री ठहरते हैं, उसी तरह इन लोगों ने भोजन करके रात काटी। बीच-बीच में मजाक भी हो जाता था। विपत्ति में जो चारों ओर अंधकार दीखता है, वह हाल न था। अंधकार था, पर ऊषाकाल का। विपत्ति थी; पर सिर पर नहीं, पैरों के नीचे।

दूसरे दिन सवेरे रेणुका घर चली गईं। उन्होंने फिर सबको साथ ले चलने के लिए जोर लगाया, पर सुखदा राजी न हुई। कपड़े-लत्ते, बरतन-भांडे, खाट-खटोली कोई चीज लेने पर राजी न हुई। यहां तक रेणुका नाराज हो गईं। और अमरकान्त को भी बुरा मालूम हुआ। वह इस अभाव में भी उस पर शासन कर रही थी।

रेणुका के जाने के बाद अमरकान्त सोचने लगा—रुपये-पैसे का कैसे प्रबंध हो? यह समय फ्री पाठशाला का था। वहां जाना लाजमी था। सुखदा अभी सवेरे की नींद में मग्न थी, और नैना चिंतातुर बैठी सोच रही थी—कैसे घर का काम चलेगा? उस वक्त अमर पाठशाला चला गया, पर आज वहां उसका जी बिल्कुल न लगा। कभी पिता पर क्रोध आता, कभी सुखदा पर, कभी अपने आप पर। उसने अपने निर्वासन के विषय में डॉक्टर साहब से कुछ न कहा। वह किसी की सहानुभूति न चाहता था। आज अपने मित्रों में से वह किसी के पास न गया। उसे भय हुआ, लोग उसका हाल-सुनकर दिल में यही समझेंगे। मैं उनसे कुछ मदद चाहता हूं।

दस बजे घर लौटा, तो देखा सिल्लो आटा गूंथ रही है और नैना चौके में बैठी तरकारी पका रही है। पूछने की हिम्मत न पड़ी, पैसे कहां स आए? नैना ने आप ही कहा—सुनते हो भैया, आज सिल्लो ने हमारी दावत की है। लकड़ी, घी, आटा, दाल सब बाजार से लाई है। बर्तन भी किसी अपने जान-पहचान के घर से मांग लाई है।

सिल्लो बोल उठी—मैं दावत नहीं करती हूं। मैं अपने पैसे जोड़कर ले लूंगी।

नैना हंसती हुई बोली—यह बड़ी देर से मुझसे लड़ रही है। यह कहती है—मैं पैसे ले लूगी, मैं कहती हूं—तू तो दावत कर रही है। बताओ भैया, दावन ही तो कर रही है?

"हां और क्या! दावत तो है ही।"

अमरकान्त पगली सिल्लो के मन का भाव ताड़ गया। वह समझती है, अगर यह न कहूगी, तो शायद यह लोग उसके रुपयों की लाई हुई चीज लने से इंकार कर देंगे।

सिल्लो का पोपला मुंह खिल गया। जैसे वह अपनी दृष्टि में कुछ ऊंची हो गई है, जैसे उसका जीवन सार्थक हो गया है। उसकी रूपहीनता और शुष्कता मानो माधुर्य में नहा उठी। उसने हाथ धोकर अमरकान्त के लिए लोटे का पानी रख दिया, तो पांव जमीन पर न पड़ते थे।

अमर को अभी तक आशा थी कि दादा शायद सुखदा और नैना को बुला लेंगे, पर जब अब कोई बुलाने न आया और न वह खुद आए तो उसका मन खट्टा हो गया।

उसने जल्दी से स्नान किया, पर याद आया, धोती तो है ही नहीं। गले की चादर पहन ली, भोजन किया और कुछ कमाने की टोह में निकला।

सुखदा ने मुंह लटकाकर पूछा—तुम तो ऐसे निश्चिंत होकर बैठ रहे, जैसे यहां सारा इतजाम किए जा रहे हो। यहां लाकर बिठाना ही जानते हो। सुबह से गायब हुए तो दोपहर को लौटे। किसी से कुछ काम-धन्धे के लिए कहा, या खुदा छप्पर फाड़कर देगा? यों काम न चलेगा, समझ गए?

चौबीस घंटे के अंदर सुखदा के मनोभावों में यह परिवर्तन देखकर अमर का मन उदास हो गया। कल कितने बढ़-बढ़कर बातें कर रही थी आज शायद पछता रही है कि क्यों घर से निकले!

रूखे स्वर में बोला—अभी तो किसी से कुछ नहीं कहा। अब जाता हूं किसी काम की तलाश में।

"मैं जरा जज साहब की स्त्री के पास जाऊंगी। उनसे किसी काम को कहूंगी। उन दिनों

तो मेरा बड़ा आदर करती थीं। अब का हाल नहीं जानती।''

अमर कुछ नहीं बोला—यह मालूम हो गया कि उसकी कठिन परीक्षा के दिन आ गए।

अमरकान्त को बाजार के सभी लोग जानते थे। उसने एक खद्दर की दूकान से कमीशन पर बेचने के लिए कई थान खद्दर की साड़ियां, जंफर, कुर्ते, चादरें आदि ले लीं और उन्हें खुद अपनी पीठ पर लादकर बेचने चला।

दूकानदार ने कहा—यह क्या करते हो बाबू, एक मजूर ले लो। लोग क्या कहेंगे? भद्दा लगता है।

अमर के अंत:करण में क्रांति का तूफान उठ रहा था। उसका बस चलता तो आज धनवानों का अंत कर देता, जो संसार को नरक बनाए हुए हैं। वह बोझ उठाकर दिखाना चाहता था, मैं मजूरी करके निबाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हूं कि हराम की कमाई खाऊं। तुम सब मोटी तोंद वाले हरामखोर हो, पक्के हरामखोर हो। तुम मुझे नीच समझते हो! इसलिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हूं। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज्यादा लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो और शरमाते जरा भी नहीं? उलटे और घमंड करते हो?

इस वक्त अगर कोई धनी अमरकान्त को छेड़ देता, तो उसकी शामत ही आ जाती। वह सिर से पांव तक बारूद बना हुआ था, बिजली का जिंदा तार।

## सत्रह

अमरकान्त खादी बेच रहा है। तीन बजे होंगे, लू चल रही है, बगूले उठ रहे हैं। दूकानदार दूकानों पर सो रहे हैं, रईस महलों में सो रहे हैं; मजूर पेड़ों के नीचे सो रहे हैं, और अमर खादी का गट्ठा लादे, पसीने में तर, चेहरा सुर्ख, आंखें लाल, गली-गली घूमता फिरता है।

एक वकील साहब ने खस का परदा उठाकर देखा और बोले--अरे यार, यह क्या गजब करते हो, म्युनिसिपल कमिश्नरी की तो लाज रखते, सारा भद्द कर दिया। क्या कोई मजूर नहीं मिलता था?

अमर ने गट्ठा लिए-लिए कहा—मजूरी करने मे म्युनिसिपल कमिश्नरी की शान मे बट्टा नहीं लगता। बट्टा लगता है—धोखे-धड़ी की कमाई खाने से।

''वहां धोखे-धड़ी की कमाई खाने वाला कौन है, भाई? क्या वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर, सेठ-साहूकार धोखे-धड़ी की कमाई खाते हैं?''

''यह उनके दिल से पूछिए। मैं किसी को क्यों बुरा कहूं?''

''आखिर आपने कुछ समझकर ही तो फिकरा चुस्त किया?''

''अगर आप मुझसे पूछना ही चाहते हैं तो मैं कह सकता हूं, हां, खाते हैं। एक आदमी दस रुपये में गुजर करता है, दूसरे को दस हजार क्यों चाहिए? यह धांधली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक जनता की आंखें बंद हैं। क्षमा कीजिएगा, एक आदमी पंखे की हवा खाए

और खसखाने में बैठे, और दूसरा आदमी दोपहर की धूप में तपे, यह न न्याय है, न धर्म–यह धांधली है।''

''छोटे-बड़े तो भाई साहब हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे। सबको आप बराबर नहीं कर सकते।''

''मैं दुनिया का ठेका नहीं लेता, अगर न्याय अच्छी चीज है तो वह इसलिए खराब नहीं हो सकती कि लोग उसका व्यवहार नहीं करते।''

''इसका आशय यह है कि आप व्यक्तिवाद को नहीं मानते, समष्टिवाद के कायल हैं।''

''मैं किसी वादे का कायल नहीं। केवल न्यायवाद का पुजारी हूं।''

''तो अपने पिताजी से बिल्कुल अलग हो गए?''

''पिताजी ने मेरी जिंदगी भर का ठेका नहीं लिया।''

''अच्छा लाइए, देखें आपके पास क्या-क्या चीजें हैं?''

अमरकान्त ने इन महाशय के हाथ दस रुपये के कपड़े बेचे।

अमर आजकल बड़ा क्रोधी, बड़ा कटुभाषी, बड़ा उद्दंड हो गया है। हरदम उसकी तलवार म्यान से बाहर रहती है। बात-बात पर उलझता है। फिर भी उसकी बिक्री अच्छी होती है। रुपया [illegible] रुपया रोज मिल जाता है।

त्यागी दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो त्याग में आनंद मानते हैं, जिनकी आत्मा को त्याग में संतोष और पूर्णता का अनुभव होता है, जिनके त्याग में उदारता और सौजन्य है। दूसरे वह, जो दिलजले त्यागी होते हैं, जिनका त्याग अपनी परिस्थितियों से विद्रोह-मात्र है, जो अपने न्यायपथ पर चलने का तावान संसार से लेते हैं, जो खुद जलते हैं इसलिए दूसरों को भी जलाते हैं। अमर इसी तरह का त्यागी था।

स्वस्थ आदमी अगर नीम की पत्ती चबाता है, तो अपने स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए, वह शौक से पत्तियां तोड़ लाता है, शौक से पीसता और शौक से पीता है, पर रोगी वही पत्तियां पीता है तो नाक सिकोड़कर, मुंह बनाकर, झुंझलाकर और अपनी तकदीर को रोकर।

सुखदा जज साहब की पत्नी की सिफारिश से बालिका-विद्यालय में पचास रुपये पर नौकर हो गई है। अमर दिल खोलकर तो कुछ कह नहीं सकता, पर मन में जलता रहता है। घर का सारा काम, बच्चे को संभालना, रसोई पकाना, जरूरी चीज बाजार से मंगाना–यह सब उसके मत्थे है। सुखदा घर के कामों के नगीच नहीं जाती। अमर आम कहता है, तो सुखदा इमली कहती है। दोनों में हमेशा खट-पट होती रहती है। सुखदा इस दरिद्रावस्था में भी उस पर शासन कर रही है। अमर कहता है, आधा सेर दूध काफी है, सुखदा कहती है, सेर भर आएगा, और सेर भर ही मंगाती है। वह खुद दूध नहीं पीता, इस पर भी रोज लड़ाई होती है। वह कहता है, गरीब हैं, मजूर हैं, हमें मजूरों की तरह रहना चाहिए। वह कहती है, हम मजूर नहीं हैं, न मजूरों की तरह रहेंगे। अमर उसको अपने आत्मविकास में बाधक समझता है और उस बाधा को हटा न सकने के कारण भीतर-ही-भीतर कुढ़ता है।

एक दिन बच्चे को खांसी आने लगी। अमर बच्चे को लेकर एक होमियोपैथ के पास जाने को तैयार हुआ। सुखदा ने कहा–बच्चे को मत ले जाओ, हवा लगेगी। डॉक्टर को बुला

लाओ। फीस ही तो लेगा !

अमर को मजबूर होकर डॉक्टर बुलाना पड़ा। तीसरे दिन बच्चा अच्छा हो गया।

एक दिन खबर मिली, लाला समरकान्त को ज्वर आ गया है। अमरकान्त इस महीने भर में एक बार भी घर नहीं गया था। यह खबर सुनकर भी न गया। वह मरें या जिएं, उसे क्या करना है? उन्हें अपना धन प्यारा है, उसे छाती से लगाए रखें। और उन्हें किसी की जरूरत ही क्या?

पर सुखदा से न रहा गया। वह उसी वक्त नैना को साथ लेकर चल दी। अमर मन में जल-भुनकर रह गया।

समरकान्त घर वालों के सिवा और किसी के हाथ का भोजन न ग्रहण करते थे। कई दिनों तो उन्होंने दूध पर काटे, फिर कई दिन फल खाकर रहे, लेकिन रोटी-दाल के लिए जी तरसता रहता था। नाना पदार्थ बाजार में भरे थे, पर रोटियां कहां? एक दिन उनसे न रहा गया। रोटियां पकाईं और हौके में आकर कुछ ज्यादा खा गए। अजीर्ण हो गया। एक दिन दस्त आए। दूसरे दिन ज्वर हो आया। फलाहार से कुछ तो पहले गल चुके थे, दो दिन की बीमारी ने लस्त कर दिया।

सुखदा को देखकर बोले—अभी क्या आने की जल्दी थी बहू, दो-चार दिन और देख लेतीं? तब तक यह धन का सांप उड़ गया होता। वह लौंडा समझता है, मुझे अपने बाल बच्चों से धन प्यारा है। किसके लिए इसका संचय किया था? अपने लिए? तो बाल बच्चा को क्यों जन्म दिया? उसी लौंडे को, जो आज मेरा शत्रु बना हुआ है, छाती से लगाए क्या ओझे-सयानों, वैद्यों-हकीमों के पास दौड़ा फिरा? खुद कभी अच्छा नहीं खाया, अच्छा नहीं पहना, किसके लिए? कृपण बना, बेईमानी की, दूसरों की खुशामद की, अपनी आत्मा की हत्या की, किसके लिए? जिसके लिए चोरी की, वही आज मुझे चोर कहता है।

सुखदा सिर झुकाए खड़ी रोती रही।

लालाजी ने फिर कहा—मैं जानता हूं, जिसे ईश्वर ने हाथ दिए हैं, वह दूसरों का मुहताज नहीं रह सकता। इतना मूर्ख नहीं हूं, लेकिन मां-बाप की कामना तो यही होती है कि उनकी संतान को कोई कष्ट न हो। जिस तरह उन्हें मरना पड़ा, उसी तरह उनकी संतान को मरना न पड़े। जिस तरह उन्हें धक्के खाने पड़े, कर्म-अकर्म सब करने पड़े वे कठिनाइयां उनकी संतान को न झेलनी पड़ें। दुनिया उन्हें लोभी, स्वार्थी कहती है, उनको परवाह नहीं होती, लेकिन जब अपनी ही संतान अपना अनादर करे, तब सोचो अभागे बाप के दिल पर क्या बीतती है? उससे मालूम होता है, सारा जीवन निष्फल हो गया। जो विशाल भवन एक-एक ईंट जोड़कर खड़ा किया था, जिसके लिए क्वार की धूप और माघ की वर्षा सब झेली, वह ढह गया, और उसके ईंट-पत्थर सामने बिखरे पड़े हैं। वह घर नहीं ढह गया वह जीवन ढह गया, संपूर्ण जीवन की कामना ढह गई।

सुखदा ने बालक को नैना की गोद से लेकर ससुर की चारपाई पर सुला दिया और पंखा झलने लगी। बालक ने बड़ी-बड़ी सजग आंखों से बूढ़े दादा की मूंछें देखीं, और उनके यहां रहने का कोई विशेष प्रयोजन न देखकर उन्हें उखाड़कर फेंक देने के लिए उद्यत हो गया। दोनों हाथों से मूंछ पकड़कर खींची। लालाजी ने 'सी-सी' तो की पर बालक के हाथों

को हटाया नहीं। हनुमान ने भी इतनी निर्दयता से लंका के उद्यानों का विध्वंस न किया होगा। फिर भी लालाजी ने बालक के हाथों से मूंछें नहीं छुड़ाईं। उनकी कामनाएं जो पड़ी एड़ियां रगड़ रही थीं, इस स्पर्श से जैसे संजीवनी पा गईं। उस स्पर्श में कोई ऐसा प्रसाद, कोई ऐसी विभूति थी। उनके रोम-रोम में समाया हुआ बालक जैसे मथित होकर नवनीत की भांति प्रत्यक्ष हो गया हो।

दो दिन सुखदा अपने नए घर न गई, पर अमरकान्त पिता को देखने एक बार भी न आया। सिल्लो भी सुखदा के साथ चली गई थी। शाम को आता, रोटियां पकाता, खाता और कांग्रेस-दफ्तर या नौजवान-सभा के कार्यालय में चला जाता। कभी किसी आम जलसे में बोलता, कभी चंदा उगाहता।

तीसरे दिन लालाजी उठ बैठे। सुखदा दिन भर तो उनके पास रही। संध्या समय उनसे विदा मांगी। लालाजी स्नेह-भरी आंखों से देखकर बोले—मैं जानता कि तुम मेरी तीमारदारी ही के लिए आई हो, तो दस-पांच दिन और पड़ा रहता, बहू ! मैंने तो जान-बूझकर कोई अपराध नहीं किया, लेकिन कुछ अनुचित हुआ हो तो उसे क्षमा करो।

सुखदा का जी हुआ मान त्याग दे; पर इतना कष्ट उठाने के बाद जब अपनी गृहस्थी कुछ-कुछ जम चली थी, यहां आना कुछ अच्छा न लगता था। फिर, वहां वह स्वामिनी थी। घर का संचालन उसके अधीन था। वहां की एक-एक वस्तु में अपनापन भरा हुआ था। एक-एक तृण में उसका स्वाभिमान झलक रहा था। एक-एक वस्तु में उसका अनुराग अंकित था। एक-एक वस्तु पर उसकी आत्मा की छाप थी, मानो उसकी आत्मा ही प्रत्यक्ष हो गई हो। यहां की कोई वस्तु उसके अभिमान की वस्तु न थी, उसकी स्वाभिमानी कल्पना सब कुछ होने पर भी तुष्टि का आनंद न पाती थी। पर लालाजी को समझाने के लिए किसी युक्ति की जरूरत थी। बोली--यह आप क्या कहते हैं दादा, हम लोग आपके बालक हैं। आप जो कुछ उपदेश या ताड़ना देंगे, वह हमारे ही भले के लिए देंगे। मेरा जी तो जाने को नहीं चाहता, लेकिन अकेले मेरे चले आने से क्या होगा? मुझे खुद शर्म आती है कि दुनिया क्या कह रही होगी। मैं जितनी जल्दी हो सकेगी सबको घसीट लाऊंगी। जब तक आदमी कुछ दिन ठोकरें नहीं खा लेता, उसकी आंखें नहीं खुलतीं। मैं एक बार रोज आकर आपका भोजन बना जाया करूंगी। कभी बीबी चली आएंगी, कभी मैं चली आऊंगी।

उस दिन से सुखदा का यही नियम हो गया। वह सबेरे यहां चली आती और लालाजी को भोजन कराके लौट जाती। फिर खुद भोजन करके बालिका विद्यालय चली जाती। तीसरे पहर जब अमरकान्त खादी बेचने चला जाता, तो वह नैना को लेकर फिर आ जाती, और दो-तीन घंटे रहकर चली जाती। कभी-कभी खुद रेणुका के पास जाती तो नैना को यहां भेज देती। उसके स्वाभिमान में कोमलता थी, अगर कुछ जलन थी तो वह कब की शीतल हो चुकी थी। वृद्ध पिता को कोई कष्ट हो, यह उससे न देखा जाता था।

इन दिनों उसे जो बात सबसे ज्यादा खटकती थी, वह अमरकान्त का सिर पर खादी लादकर चलना था। वह कई बार इस विषय पर उससे झगड़ा कर चुकी थी; पर उसके कहने से वह और जिद पकड़ लेता था। इसलिए उसने कहना-सुनना छोड़ दिया था पर एक दिन घर जाते समय उसने अमरकान्त को खादी का गट्ठर लिए देख लिया। उस मुहल्ले की

एक महिला भी उसके साथ थी। सुखदा मानो धरती में गड़ गई।

अमर ज्योंही घर आया, उसने यही विषय छेड़ दिया—मालूम तो हो गया, कि तुम बड़े सत्यवादी हो। दूसरों के लिए भी कुछ रहने दोगे, या सब तुम्हीं ले लोगे। अब तो संसार में परिश्रम का महत्त्व सिद्ध हो गया। अब तो बकचा लादना छोड़ो। तुम्हें शर्म न आती हो, लेकिन तुम्हारी इज्जत के साथ मेरी इज्जत भी तो बंधी हुई है। तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि तुम यों मुझे अपमानित करते फिरो।

अमर तो कमर कसे तैयार था ही। बोला—यह तो मैं जानता हूं कि मेरा अधिकार कहीं कुछ नहीं है। लेकिन क्या पूछ सकता हूं कि तुम्हारे अधिकारों की भी कहीं सीमा है, या वह असीम है ?

''मैं ऐसा कोई काम नहीं करती, जिसमें तुम्हारा अपमान हो।''

''अगर मैं कहूं कि जिस तरह मेरे मजदूरी करने से तुम्हारा अपमान होता है, उसी तरह तुम्हारे नौकरी करने से मेरा अपमान होता है, शायद तुम्हें विश्वास न आएगा।''

''तुम्हारे मान-अपमान का कांटा संसार भर से निराला हो, तो मैं लाचार हूं।''

''मैं संसार का गुलाम नहीं हूं। अगर तुम्हें यह गुलामी पसंद है, तो शौक से करो। तुम मुझे मजबूर नहीं कर सकतीं।''

''नौकरी न करूं, तो तुम्हारे रुपये बीस आने रोज में घर-खर्च निभेगा?''

''मेरा खयाल है कि इस मुल्क में नब्बे फीसदी आदमियों को इससे भी कम में गुजर करना पड़ता है।''

''मैं उन नब्बे फीसदी वालों में नहीं, शेष दस फीसदी वालों में हूं। मैंने अंतिम बार कह दिया कि तुम्हारा बकचा ढोना मुझे असह्य है और अगर तुमने न माना, तो मैं अपने हाथों वह बकचा जमीन पर गिरा दूंगी। इससे ज्यादा मैं कुछ कहना या सुनना नहीं चाहती।''

इधर डेढ़ महीने से अमरकान्त सकीना के घर न गया था। याद उसकी रोज आती पर जाने का अवसर न मिलता। पंद्रह दिन गुजर जाने के बाद उसे शर्म आने लगी कि वह पूछेगी—इतने दिन क्यों नहीं आए, तो क्या जवाब दूंगा? इस शरमा-शरमी में वह एक महीना और न गया। यहां तक कि आज सकीना ने उसे एक कार्ड लिखकर खैरियत पूछी थी और फुरसत हो, तो दस मिनट के लिए बुलाया था। आज अम्मीजान बिरादरी में जाने वाली थीं। बातचीत करने का अच्छा मौका था। इधर अमरकान्त भी इस जीवन से ऊब उठा था। सुखदा के साथ जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता, इधर इन डेढ़-दो महीनों में उसे काफी परिचय मिल गया था। वह जो कुछ है, वही रहेगा ज्यादा तबदील नहीं हो सकता। सुखदा भी जो कुछ है, वही रहेगी। फिर सुखी जीवन की आशा कहां? दोनों की जीवन-धारा अलग, आदर्श अलग, मनोभाव अलग। केवल विवाह-प्रथा की मर्यादा निभाने के लिए वह अपना जीवन धूल में नहीं मिला सकता; अपनी आत्मा के विकास को नहीं रोक सकता। मानव-जीवन का उद्देश्य कुछ और भी है, खाना, कमाना और मर जाना नहीं।

वह भोजन करके आज कांग्रेस-दफ्तर न गया। आज उसे अपनी जिंदगी की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या को हल करना था। इसे अब वह और नहीं टाल सकता। बदनामी की क्या चिंता? दुनिया अंधी है और दूसरों को अंधा बनाए रखना चाहती है। जो खुद अपने

लिए नई राह निकालेगा, उस पर संकीर्ण विचार वाले हंसें तो क्या आश्चर्य? उसने खद्दर की दो साड़ियां उसे भेंट देने के लिए ले लीं और लपका हुआ जा पहुंचा।

सकीना उसकी राह देख रही थी। कुंडी खनकते ही द्वार खोल दिया और हाथ पकड़कर बोली—तुम तो मुझे भूल ही गए। इसी का नाम मुहब्बत है?

अमर ने लज्जित होकर कहा—यह बात नहीं है, सकीना! एक लमहे के लिए भी तुम्हारी याद दिल से नहीं उतरती, पर इधर बड़ी परेशानियों में फंसा रहा।

"मैंने सुना था। अम्मां कहती थीं। मुझे यकीन न आता था कि तुम अपने अब्बाजान से अलग हो गए। फिर यह भी सुना कि तुम सिर पर खद्दर लादकर बेचते हो। मैं तो तुम्हें कभी सिर पर बोझ न लादने देती। मैं वह गठरी अपने सिर पर रखती और तुम्हारे पीछे-पीछे चलती। मैं यहां आराम से पड़ी थी और तुम इस धूप में कपड़ लादे फिरते थे। मेरा दिल तड़प- तड़पकर रह जाता था।"

कितने प्यारे, मीठे शब्द थे! कितने कोमल, स्नेह में डूबे हुए! सुखदा के मुख से भी कभी यह शब्द निकले? वह तो केवल शासन करना जानती है! उसको अपने अंदर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ कि वह उसका चौगुना बोझ लेकर चल सकता है, लेकिन वह सकीना के कोमल हृदय को आघात नहीं पहुंचाएगा। आज से वह गट्ठर लादकर नहीं चलेगा। बोला—दादा की खुदगरजी पर दिल जल रहा था, सकीना! वह समझते होंगे, मैं उनकी दौलत का भूखा हूं। मैं उन्हें और उनके दूसरे भाइयों को दिखा देना चाहता था कि मैं कड़ी-से-कड़ी मेहनत कर सकता हूं। दौलत की मुझे परवाह नहीं है। सुखदा उस दिन मेरे साथ आई थी, लेकिन एक दिन दादा ने झूठ-मूठ कहला दिया, मुझे बुखार हो गया है। बस वहां पहुंच गई। तब से दोनों वक्त उनका खाना पकाने जाती है।

सकीना ने सरलता से पूछा—तो क्या यह भी तुम्हें बुरा लगता है? बूढ़े आदमी अकेले घर में पड़े रहते हैं। अगर वह चली जाती हैं, तो क्या बुराई करती हैं? उनकी इस बात से तो मेरे दिल में उनकी इज्जत हो गई।

अमर ने खिसियाकर कहा—यह शराफत नहीं है सकीना, उनकी [illegible]नत है. मैं तुमसे सच कहता हूं, जिसने कभी झूठों मुझसे नहीं पूछा, तुम्हारा जी कैसा है, वह उनकी बीमारी की खबर पाते ही बेकरार हो जाए, यह बात समझ में नहीं आती। उनकी दौलत उसे खींच ले जाती है, और कुछ नहीं। मैं अब इस नुमायश की जिंदगी से तंग आ गया हूं, सकीना! मैं सच कहता हूं, पागल हो जाऊंगा। कभी-कभी जी में आता है, सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊं, ऐसी जगह भाग जाऊं, जहां लोगों में आदमियत हो। आज तुझे फैसला करना पड़ेगा सकीना, चलो कहीं छोटी-सी कुटी बना लें और खुदगरजी की दुनिया से अलग मेहनत-मजदूरी करके जिंदगी बसर करें। तुम्हारे साथ रहकर फिर मुझे किसी चीज की आरजू नहीं रहेगी। मेरी जान मुहब्बत के लिए तड़प रही है, उस मुहब्बत के लिए नहीं, जिसकी जुदाई में भी विसाल है, बल्कि जिसकी विसाल में भी जुदाई है। मैं वह मुहब्बत चाहता हूं, जिसमें ख्वाहिश है, लज्जत है। मैं बोतल की सुर्ख शराब पीना चाहता हूं, शायरों की खयाली शराब नहीं।

उसने सकीना को छाती से लगा लेने के लिए अपनी तरफ खींचा। उसी वक्त द्वार खुला और पठानिन अंदर आई। सकीना एक कदम पीछे हट गई। अमर भी जरा पीछे खसक गया।

सहसा उसने बात बनाई—आज कहां चली गई थीं, अम्मां ? मैं यह साड़ियां देने आया था। तुम्हें मालूम तो होगा ही, मैं अब खद्दर बेचता हूं।

पठानिन ने साडियों का जोड़ा लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। उसका सूखा, पिचका हुआ मुंह तमतमा उठा ! सारी झुर्रियां, सारी सिकुड़नें जैसे भीतर की गर्मी से तन उठीं ! गली-बुझी हुई आंखें जैसे जल उठीं। आंखें निकालकर बोली—होश में आ, छोकरे ! यह साड़ियां ले जा, अपनी बीवी-बहन को पहना, यहां तेरी साड़ियों के भूखे नहीं हैं। तुझे शरीफजादा और साफ-दिल समझकर तुझसे अपनी गरीबी का दुखड़ा कहती थी। यह न जानती थी कि तू ऐसे शरीफ बाप का बेटा होकर शोहदापन करेगा। बस, अब मुंह न खोलना, चुपचाप चला जा, नहीं आंखें निकलवा लूंगी। तू है किस घमंड में? अभी एक इशारा कर दूं, तो सारा मुहल्ला जमा हो जाए। हम गरीब हैं, मुसीबत के मारे हैं, रोटियों के मुहताज हैं। जानता है क्यों? इसलिए कि हमें आबरू प्यारी है, खबरदार जो कभी इधर का रुख किया। मुंह में कालिख लगाकर चला जा।

अमर पर फालिज गिर गया, पहाड़ टूट पड़ा, वज्रपात हो गया। इन वाक्यों से उसके मनोभावों का अनुमान हम नहीं कर सकते। जिनके पास कल्पना है, वह कुछ अनुमान कर सकते हैं। जैसे संज्ञा-शून्य हो गया, मानो पाषाण प्रतिमा हो। एक मिनट तक वह इसी दशा में खड़ा रहा। फिर दोनों साड़ियां उठा लीं और गोली खाए जानवर की भांति सिर लटकाए, लड़खड़ाता हुआ द्वार की ओर चला।

सहसा सकीना ने उसका हाथ पकड़कर रोते हुए कहा—बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलती हूं। जिन्हें अपनी आबरू प्यारी है, वह अपनी आबरू लेकर चाटें। मैं बेआबरू ही रहूंगी।

अमरकान्त ने हाथ छुड़ा लिया और आहिस्ता से बोला—जिंदा रहेंगे, तो फिर मिलेंगे, सकीना ! इस वक्त जाने दो। मैं अपने होश में नहीं हूं।

यह कहते हुए उसने कुछ समझकर दोनों साड़ियां सकीना के हाथ मे रख दीं और बाहर चला गया।

सकीना ने सिसकियां लेते हुए पूछा—तो आओगे कब ?

अमर ने पीछे फिरकर कहा—जब यहां मुझे लोग शोहदा और कमीना न समझेंगे !

अमर चला गया और सकीना हाथों में साड़ियां लिए द्वार पर खड़ी अंधकार में ताकती रही।

सहसा बुढ़िया ने पुकारा—अब आकर बैठेगी कि वहीं दरवाजे पर खड़ी रहेगी? मुंह में कालिख तो लगा दी। अब और क्या करने पर लगी हुई है?

सकीना ने क्रोध भरी आंखों से देखकर कहा—अम्मां, आकबत से डरो, क्यों किसी भले आदमी पर तोहमत लगाती हो। तुम्हें ऐसी बात मुंह से निकालते शर्म भी नहीं आती। उनकी नेकियों का यह बदला दिया है तुमने ! तुम दुनिया में चिराग लेकर ढूंढ़ आओ, ऐसा शरीफ तुम्हें न मिलेगा।

पठानिन ने डांट बताई—चुप रह, बेहया कहीं की ! शरमाती नहीं, ऊपर से जबान चलाती है। आज घर में कोई मर्द होता, तो सिर काट लेता। मैं जाकर लाला से कहती हूं। जब तक इस पाजी को शहर से न निकाल दूंगी, मेरा कलेजा न ठंडा होगा। मैं उसकी जिंदगी गारत कर दूंगी।

सकीना ने निश्शंक भाव से कहा—अगर उनकी जिंदगी गारत हुई, तो मेरी भी गारत होगी। इतना समझ लो।

बुढ़िया ने सकीना का हाथ पकड़कर इतने जोर से अपनी तरफ घसीटा कि वह गिरते-गिरते बची और उसी दम घर से बाहर निकलकर द्वार की जंजीर बंद कर दी।

सकीना बार-बार पुकारती रही, पर बुढ़िया ने पीछे फिरकर भी न देखा। वह बेजान बुढ़िया जिसे एक-एक पग रखना दूभर था, इस वक्त आवेश में दौड़ी लाला समरकान्त के पास चली जा रही थी।

## अठारह

अमरकान्त गली के बाहर निकलकर सड़क पर आया। कहां जाए? पठानिन इसी वक्त दादा के पास जाएगी। जरूर जाएगी। कितनी भंयकर स्थिति होगी ! कैसा कुहराम मचेगा? कोई धर्म के नाम को रोएगा, कोई मर्यादा के नाम को रोएगा। दगा, फरेब, जाल, विश्वासघात, हराम की कमाई सब मुआफ हो सकती है। नहीं, उसकी सराहना होती है। ऐसे महानुभाव समाज के मुखिया बन हुए हैं। वेश्यागामियों और व्यभिचारियों के आगे लोग माथा टेकते हैं, लेकिन शुद्ध हृदय और निष्कपट भाव से प्रेम करना निंद्य है, अक्षम्य है। नहीं, अमर घर नहीं जा सकता। घर का द्वार उसके लिए बंद है। और वह घर था ही कब? केवल भोजन और विश्राम का स्थान था। उसमे किसे प्रेम है?

वह एक क्षण के लिए ठिठक गया। सकीना उसके साथ चलने को तैयार है, तो क्यों न उसे साथ ले ले। फिर लोग जी भरकर रोएं और पीटें और कोसें। आखिर यही तो वह चाहता था, लेकिन पहले दूर से जो पहाड़ टीला-सा नजर आता था, अब सामने देखकर उस पर चढ़ने की हिम्मत न होती थी। देश भर में कैसा हाहाकर मचेगा। एक म्युनिस्पिल कमिश्नर एक मुसलमान लड़की को लेकर भाग गया। हरेक जबान पर यही चर्चा होगा। दादा शायद जहर खा लें। विरोधियों को तालिया पीटने का अवसर मिल जाएगा। उसे टालस्टाय की एक कहानी याद आई, जिसमें एक पुरुष अपनी प्रेमिका को लेकर भाग जाता है, पर उसका कितना भीषण अंत होता है। अमर खुद किसी के विषय में ऐसी खबर सुनता, तो उससे घृणा करता। मांस और रक्त से ढका हुआ कंकाल कितना सुंदर होता है। रक्त और मांस का आवरण हट जाने पर वही कंकाल कितना भयंकर हो जाता है। ऐसी अफवाहें सुंदर और सरस को मिटाकर बीभत्स को मूर्तिमान कर देती हैं। नहीं, अमर अब घर नहीं जा सकता।

अकस्मात् बच्चे की याद आ गई। उसके जीवन के अंधकार में वही एक प्रकाश था ! उसका मन उसी प्रकाश की ओर लपका। बच्चे की मोहिनी मूर्ति सामने आकर खड़ी हो गई।

किसी ने पुकारा—अमरकान्त, यहां कैसे खड़े हो?

अमर ने पीछे फिरकर देखा तो सलीम था। बोला—तुम किधर से?

''जरा चौक की तरफ गया था।''

"यहां कैसे खड़े हो? शायद माशूक से मिलने जा रहे हो?"

'वहीं से आ रहा हूं यार, आज गजब हो गया। वह शैतान की खाला बुढ़िया आ गई। उसने ऐसी-ऐसी सलावतें सुनाईं कि बस कुछ न पूछो।"

दोनों साथ-साथ चलने लगे। अमर ने सारी कथा कह सुनाई।

सलीम ने पूछा—तो अब घर जाओगे ही नहीं। यह हिमाकत है। बुढ़िया को बकने दो। हम सब तुम्हारी पाकदामनी की गवाही देंगे। मगर यार हो तुम अहमक। और क्या कहूं? बिच्छू का मंत्र न जाने, सांप के मुंह में उंगली डाले। वही हाल तुम्हारा है। कहता था, उधर ज्यादा न आओ-जाओ। आखिर हुई वही बात। खैरियत हुई कि बुढ़िया ने मुहल्ले वालों को नहीं बुलाया, नहीं तो खून हो जाता।

अमर ने दार्शनिक भाव से कहा—खैर, जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। अब तो यही जी चाहता है कि सारी दुनिया से अलग किसी गोशे में पड़ा रहूं। और कुछ खेती-बारी करके गुजर करूं। देख ली दुनिया, जी तंग आ गया।

"तो आखिर कहां जाओगे?"

"कह नहीं सकता। जिधर तकदीर ले जाए।"

"मैं चलकर बुढ़िया को समझा दूं?"

"फिजूल है। शायद मेरी तकदीर में यही लिखा था। कभी खुशी न नसीब हुई। और न शायद होगी। जब रो-रोकर ही मरना है, तो कहीं भी रो सकता हूं।"

"चलो मेरे घर, वहां डॉक्टर साहब को भी बुला लें, फिर सलाह करें। यह क्या कि एक बुढ़िया ने फटकार बताई और आप घर से भाग खड़े हुए। यहां तो ऐसी कितनी ही फटकारें सुन चुका, पर कभी परवाह नहीं की।"

"मुझे तो सकीना का खयाल आता है कि बुढ़िया उसे कोस-कोसकर मार डालेगी।"

"आखिर तुमने उसमें ऐसी क्या बात देखी, जो लट्टू हो गए ?"

अमर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—तुम्हें क्या बताऊं, भाईजान? सकीना असमत और वफा की देवी है। गूदड़ में यह रत्न कहां से आ गया, यह तो खुदा ही जाने, पर मेरी गमनसीब जिंदगी में वही चंद लम्हे यादगार हैं, जो उसके साथ गुजरे। तुमसे इतनी ही अर्ज है कि जरा उसकी खबर लेते रहना। इस वक्त दिल की जो कैफियत है, वह बयान नहीं कर सकता। नहीं जानता जिंदा रहूंगा, या मरूंगा। नाव पर बैठा हूं। कहां जा रहा हूं, खबर नहीं। कब, कहां नाव किनारे लगेगी, मुझे कुछ खबर नहीं। बहुत मुमकिन है मझधार ही में डूब जाए। अगर जिंदगी के तजरबे से कोई बात समझ में आई, तो यह कि संसार में किसी न्यायी ईश्वर का राज्य नहीं है। जो चीज जिसे मिलनी चाहिए उसे नहीं मिलती। इसका उल्टा ही होता है। हम जंजीरों में जकड़े हुए हैं। खुद हाथ-पांव नहीं हिला सकते। हमें एक चीज दे दी जाती है और कहा जाता है, इसके साथ तुम्हें जिंदगी भर निर्वाह करना होगा। हमारा धर्म है कि उस चीज पर कनाअत करें। चाहे हमें उससे नफरत ही क्यों न हो। अगर हम अपनी जिंदगी के लिए कोई दूसरी राह निकालते हैं तो हमारी गरदन पकड़ ली जाती है, हमें कुचल दिया जाता है। इसी को दुनिया इंसाफ कहती है। कम-से-कम मैं इस दुनिया में रहने के काबिल नहीं हूं।

सलीम बोला—तुम लोग बैठे-बैठाए अपनी जान जहमत में डालने की फिक्रें किया करते

हो, गोया जिंदगी हजार-दो हजार साल की है। घर में रुपये भरे हुए हैं, बाप तुम्हारे ऊपर जान देता है, बीवी परी जैसी बैठी है, और आप एक जुलाहे की लड़की के पीछे घर-बार छोड़े भागे जा रहे हैं। मैं तो इसे पागलपन कहता हूं। ज्यादा-से-ज्यादा यही तो होगा कि तुम कुछ कर जाओगे, यहां पड़े सोते रहेंगे। पर अंजाम दोनों का एक है। तुम गमनाम सत्त हो जाओगे, मैं इन्नल्लाह राजेऊन।

अमर ने विषाद भरे स्वर में कहा–जिस तरह तुम्हारी जिंदगी गुजरी है, उस तरह मेरी जिंदगी भी गुजरती, तो शायद मेरे भी यही खयाल होते। मैं वह दरख्त हूं, जिसे कभी पानी नहीं मिला। जिंदगी की वह उम्र, जब इंसान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाए तो जिंदगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। उस वक्त खुराक न पाकर उसकी जिंदगी खुश्क हो जाती है। मेरी माता का उसी जमाने में देहांत हुआ और तब से मेरी रूह को खुराक नहीं मिली। वही भूख मेरी जिंदगी है। मुझे जहां मुहब्बत का एक रेजा भी मिलेगा, मैं बेअख्तियार उसी तरफ जाऊंगा। कुदरत का अटल कानून मुझे उस तरफ ले जाता है। इसके लिए अगर मुझे कोई खतावार कहे, तो कहे। मैं तो खुदा ही को जिम्मेदार कहूंगा।

बातें करते-करते सलीम का मकान आ गया।

सलीम ने कहा–आओ, खाना तो खा लो। आखिर कितने दिनों तक जलावतन रहने का इरादा है?

दोनों आकर कमरे में बैठे। अमर ने जवाब दिया–यहां अपना कौन बैठा हुआ है, जिसे मेरा दर्द हो? बाप को मेरी परवाह नहीं, शायद और खुश हों कि अच्छा हुआ बला टली। सुखदा मेरी सूरत से बेजार है। दोस्तों में ले-दे के एक तुम हो। तुमसे कभी-कभी मुलाकात होती रहेगी। मां होती तो शायद उसकी मुहब्बत खींच लाती। तब जिंदगी की यह रफ्तार ही क्यों होती! दुनिया में सबसे बदनसीब वह है, जिसकी मां मर गई हो।

अमरकान्त मां की याद करके रो पड़ा। मां का वह स्मृति-चित्र आंखों के सामने आया, जब वह उसे रोते देखकर गोद में उठा लेती थीं, और माता के आंचल में सिर रखते ही वह निहाल हो जाता था।

सलीम ने अंदर जाकर चुपके से अपने नौकर को लाला समरकान्त के पास भेजा कि जाकर कहना, अमरकान्त भागे जा रहे हैं। जल्दी चलिए। साथ लेकर फौरन आना। एक मिनट की देर हुई, तो गोली मार दूंगा।

फिर बाहर आकर उसने अमरकान्त को बातों में लगाया–लेकिन तुमने यह भी सोचा है, सुखदादेवी का क्या हाल होगा? मान लो, वह भी अपनी दिलबस्तगी का कोई इंतजाम कर लें, बुरा न मानना।

अमर ने अनहोनी बात समझते हुए कहा–हिन्दू औरत इतनी बेहया नहीं होती।

सलीम ने हंसकर कहा–बस, आ गया हिन्दूपन। अरे भाईजान, इस मुआमले में हिन्दू और मुसलमान की कैद नहीं। अपनी-अपनी तबियत है। हिन्दुओं में भी देवियां हैं, मुसलमानों में भी देवियां हैं। हरजाइयां भी दोनों ही में हैं। फिर तुम्हारी बीवी तो नई औरत है, पढ़ी-लिखी, आजाद खयाल, सैर-सपाटे करने वाली, सिनेमा देखने वाली, अखबार और नावल पढ़ने

वाली। ऐसी औरतों से खुदा की पनाह। यह यूराप की बरकत है। आजकल की देवियां जो कुछ न कर गुजरें वह थोड़ा है। पहले लौंडे पेशकदमी किया करते थे। मरदों की तरफ से छेड़छाड़ होती थी, अब जमाना पलट गया है। अब स्त्रियों की तरफ से छेड़छाड़ शुरू होती है !

अमरकान्त बेशर्मी से बोला–इसकी चिंता उसे हो जिसे जीवन में कुछ सुख हो। जो जिंदगी से बेजार है, उसके लिए क्या? जिसकी खुशी हो रहे, जिसकी खुशी हो जाए। मैं न किसी का गुलाम हूं, न किसी को गुलाम बनाना चाहता हूं।

सलीम ने परास्त होकर कहा–तो फिर हद हो गई। फिर क्यों न औरतों का मिजाज आसमान पर चढ़ जाए। मेरा खून तो इस खयाल ही से उबल आता है।

''औरतों को भी तो बेवफा मरदों पर इतना ही क्रोध आता है।''

''औरतों-मरदों के मिजाज में, जिस्म की बनावट में, दिल के जज्बात में फर्क है। औरत एक ही की होकर रहने के लिए बनाई गई है। मरद आजाद रहने के लिए बनाया है।''

''यह मरदों की खुदगरजी है।''

''जी नहीं, यह हैवानी जिंदगी का उसूल है।''

बहस में शाखें निकलती गईं। विवाह का प्रश्न आया, फिर बेकारी की समस्या पर विचार होने लगा। फिर भोजन आ गया। दोनों खाने लगे।

अभी दो-चार कौर ही खाए होंगे कि दरबान ने लाला समरकान्त के आने की खबर दी। अमरकान्त झट मेज पर से उठ खड़ा हुआ, कुल्ला किया, अपने प्लेट मेज के नीचे छिपाकर रख दिए और बोला–इन्हें कैसे मेरी खबर मिल गई? अभी तो इतनी देर भी नहीं हुई। जरूर बुढ़िया ने आग लगा दी।

सलीम मुस्करा रहा था।

अमर ने त्यौरियां चढ़ाकर कहा–यह तुम्हारी शरारत मालूम होती है। इसीलिए तुम मुझे यहां लाए थे? आखिर क्या नतीजा होगा? मुफ्त की जिल्लत होगी मेरी। मुझे जलील कराने से तुम्हें कुछ मिल जाएगा? मैं इसे दोस्ती नहीं, दुश्मनी कहता हूं।

तांगा द्वार पर रुका और लाला समरकान्त ने कमरे में कदम रखा।

सलीम इस तरह लालाजी की ओर देख रहा था, जैसे पूछ रहा हो, मैं यहां रहूं या जाऊं? लालाजी ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा–तुम क्यों खड़े हो बेटा, बैठ जाओ। हमारी और हाफिजजी की पुरानी दोस्ती है। उसी तरह तुम और अमर भाई-भाई हो। तुमसे क्या परदा है? मैं सब सुन चुका हूं लल्लू ! बुढ़िया रोती हुई आई थी। मैंने बुरी तरह फटकारा। मैंने कह दिया, मुझे तेरी बात का विश्वास नहीं है। जिसकी स्त्री लक्ष्मी का रूप हो, वह क्यों चुड़ैलों के पीछे प्राण देता फिरेगा, लेकिन अगर कोई बात ही है, तो उसमें घबराने की कोई बात नहीं, बेटा! भूल-चूक सभी से होती है। बुढ़िया को दो-चार सौ रुपये दे दिए जाएंगे। लड़की की किसी भर ले घर में शादी हो जाएगी। चलो झगड़ा पाक हुआ। तुम्हें घर से भागने और शहर में ढिंढोरा पीटने की क्या जरूरत है? मेरी परवाह मत करो; लेकिन तुम्हें ईश्वर ने बाल-बच्चे दिए हैं। सोचो, तुम्हारे चले जाने से कितने प्राणी अनाथ हो जाएंगे? स्त्री तो स्त्री ही है, बहन है वह रो-रोकर मर जाएगी। रेणुकादेवी हैं, वह भी तुम्हीं लोगों के प्रेम से यहां पड़ी हुई हैं। जब तुम्हीं

न होगे, तो वह सुखदा को लेकर चली जाएंगी, मेरा घर चौपट हो जाएगा। मै घर में अकेला भूत की तरह पड़ा रहूंगा। बेटा सलीम, मैं कुछ बेजा तो नहीं कह रहा हूं? जो कुछ हो गया, सो हो गया। आगे के लिए एहतियात रखो। तुम खुद समझदार हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊं? मन को कर्त्तव्य की डोरी से बांधना पड़ता है, नहीं तो उसकी चंचलता आदमी को न जाने कहां लिए-लिए फिरे? तुम्हें भगवान् ने सब कुछ दिया है। कुछ घर का काम देखो, कुछ बाहर का काम देखो। चार दिन की जिंदगी है, इसे हंस-खेलकर काट देना चाहिए। मारे-मारे फिरने से क्या फायदा?

अमर इस तरह बैठा रहा, मानो कोई पागल बक रहा है। आज तुम यहां चिकनी-चुपड़ी बातें कहके मुझे फंसाना चाहत हो। मेरी जिंदगी तुम्ही ने खराब की। तुम्हारे ही कारण मेरी यह दशा हुई। तुमने मुझे कभी अपने घर को घर न समझने दिया। तुम मुझे चक्की का बैल बनाना चाहते हो। वह अपने बाप का अदब उतना न करता था, जितना दबता था, फिर भी उसकी कई बार बीच में टोकने की इच्छा हुई। ज्योंही लालाजी चुप हुए, उसने दृढ़ता के साथ कहा– दादा, आपके घर में मेरा इतना जीवन नष्ट हो गया, अब में उसे और नष्ट नहीं करना चाहता। आदमी का जीवन खाने और मर जाने के लिए नहीं होता, न धन-संचय उसका उद्देश्य है। जिस दशा में मैं हूं, वह मेरे लिए असहनीय हो गई है। मैं एक नए जीवन का सूत्रपात करने जा रहा हूं, जहां मजदूरी लज्जा की वस्तु नहीं, जहां स्त्री पति का केवल नीचे नहीं घसीटती, उस पतन की ओर नहीं ले जाती, बल्कि उसके जीवन में आनंद और प्रकाश का सचार करती है। मै रूढ़ियों और मर्यादाओं का दास बनकर नही रहना चाहता। आपके घर में मुझे नित्य बाधाओं का सामना करना पड़ेगा और उसी सघर्ष म मेरा जीवन समाप्त हो जाएगा। आप ठंडे दिल मे कह सकते हैं, आपके घर म सकीना क लिए स्थान है?

लालाजी ने भीत नेत्रों म देखकर पूछा–किस रूप मे?

''मेरी पत्नी के रूप में।''

''नहीं, एक बार नहीं, सौ बार नही।''

''तो फिर मेरे लिए भी आपके घर में स्थान नहीं है।''

''और तो तुम्हें कुछ नही कहना है?''

''जी नहीं।''

लालाजी कुर्सी स उठकर द्वार की ओर बढ़े। फिर पलटकर बोले–बता सकते हो, कहां जा रहे हो?

''अभी तो कुछ ठीक नहीं है।''

''जाओ, ईश्वर तुम्हें सुखी रखे। अगर कभी किसी चीज की जरूरत हो, तो मुझे लिखने में संकोच न करना।''

''मुझे आशा है, मैं आपको कोई कष्ट न दूंगा।''

लालाजी ने सजल नेत्र होकर कहा–चलते-चलते घाव पर नमक न छिड़को, लल्लू! बाप का हृदय नहीं मानता। कम-से-कम इतना तो करना कि कभी-कभी पत्र लिखते रहना। तुम मेरा मुंह न देखना चाहो, लेकिन मुझे कभी-कभी आने-जाने से न रोकना। जहां रहो, सुखी रहो, यही मेरा आशीर्वाद है।

# दूसरा खड

## एक

उत्तर की पर्वत-श्रेणियों के बीच एक छोटा-सा रमणीक गांव है। सामने गंगा किसी बालिका की भांति हंसती, उछलती, नाचती, गाती, दौड़ती चली जाती है। पीछे ऊंचा पहाड़ किसी वृद्ध योगी की भांति जटा बढ़ाए; शांत, गंभीर, विचारमग्न खड़ा है। यह गांव मानो उसकी बाल-स्मृति है, आमोद-विनोद से रंजित, या कोई युवावस्था का सुनहरा मधुर स्वप्न। अब भी उन स्मृतियों को हृदय में सुलाए हुए, उस स्वप्न को छाती से चिपकाए हुए है।

इस गांव में मुश्किल से बीस-पच्चीस झोंपड़े होंगे। पत्थर के रोड़ों को तले-ऊपर रखकर दीवारें बना ली गई हैं। उन पर छप्पर डाल दिया गया है। द्वारों पर बनकट की टट्टियां हैं। इन्हीं काबुकों में इस गांव की जनता अपने गाय-बैलों, भेड़-बकरियों को लिए अनंत काल से विश्राम करती चली आती है।

एक दिन संध्या समय एक सांवला-सा, दुबला-पतला युवक मोटा कुर्ता, ऊंची धोती और चमरौंधे जूते पहने, कंधे पर लुटिया-डोर रखे बगल में एक पोटली दबाए इस गांव में आया और एक बुढ़िया से पूछा—क्यों माता, यहां परदेशी को रात भर रहने का ठिकाना मिल जाएगा?

बुढ़िया सिर पर लकड़ी का गट्ठा रखे, एक बूढ़ी गाय को हार की ओर से हांकती चली आती थी। युवक को सिर से पांव तक देखा, पसीने में तर, सिर और मुंह पर गर्द जमी हुई, आंखें भूखी, मानो जीवन में कोई आश्रय ढूंढ़ता फिरता हो। दयार्द्र होकर बोली—यहां तो सब रैदास रहते हैं, भैया!

अमरकान्त इसी भांति महीनों से देहातों का चक्कर लगाता चला आ रहा है। लगभग पचास छोटे-बड़े गांवों को वह देख चुका है, कितने ही आदमियों से उसकी जान-पहचान हो गई है, कितने ही उसके सहायक हो गए हैं, कितने ही भक्त बन गए हैं। नगर का वह सुकुमार युवक दुबला तो हो गया है; पर धूप और लू, आंधी और वर्षा, भूख और प्यास सहने की शक्ति उसमें प्रखर हो गई है। भावी जीवन की यही उसकी तैयारी है, यही तपस्या है। वह ग्रामवासियों की सरलता और सहृदयता, प्रेम और संतोष से मुग्ध हो गया है। ऐसे सीधे-सादे, निष्कपट मनुष्यों पर आए दिन जो अत्याचार होते रहते हैं उन्हें देखकर उसका खून खौल उठता है। जिस शांति की आशा उसे देहाती जीवन की ओर खींच लाई थी, उसका यहां नाम भी न था। घोर अन्याय का राज्य था और अमर की आत्मा इस राज्य के विरुद्ध झंडा उठाए फिरती थी।

अमर ने नम्रता से कहा—मैं जात-पांत नहीं मानता, माताजी! जो सच्चा है, वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है; जो दगाबाज, झूठा, लंपट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं। लाओ, लकड़ियां का गट्ठा मैं लेता चलूं।

उसने बुढ़िया के सिर से गट्ठा उतारकर अपने सिर पर रख लिया।

बुढ़िया ने आशीर्वाद देकर पूछा—कहां जाना है, बेटा?

''यों ही मांगता-खाता हूं माता, आना-जाना कहीं नहीं है। रात को सोने की जगह तो मिल जाएगी?''

''जगह की कौन कमी है भैया, मंदिर के चौतरे पर सो रहना। किसी साधु-संत के फेरे में तो नहीं पड़ गए हो? मेरा भी एक लड़का उनके जाल में फंस गया। फिर कुछ पता न चला। अब तक कई लड़कों का बाप होता।''

दोनों गांव में पहुंच गए। बुढ़िया ने अपनी झोंपड़ी की टट्टी खोलते हुए कहा—लाओ, लकड़ी रख दो यहां। थक गए हो, थोड़ा-सा दूध रखा है, पी लो। और सब गोरू तो मर गए, बेटा! यही गाय रह गई है। एक पाव भर दूध दे देती है। खाने को तो पाती नहां, दूध कहां से दे!

अमर ऐसे सरल स्नेह के प्रसाद को अस्वीकार न कर सका। झोंपड़ी में गया तो उसका हृदय कांप उठा। मानो दरिद्रता छाती पीट-पीटकर रो रही है। और हमारा उन्नत समाज विलास में मग्न है। उसे रहने को बंगला चाहिए, सवारी को मोटर। इस संसार का विध्वंस क्यों नहीं हो जाता।

बुढ़िया ने दूध एक पीतल के कटोरे मे उंड़ेल दिया और आप घड़ा उठाकर पानी लाने चली। अमर ने कहा—मैं खींचे लाता हूं माता, रस्सी तो कुएं पर होगी?

''नहीं बेटा, तुम कहां जाओगे पानी भरने? एक रात के लिए आ गए, तो मैं तुमसे पानी भराऊं?''

बुढ़िया हां, हां, करती रह गई। अमरकान्त घड़ा लिए कुएं पर पहुच गया। बुढ़िया से न रहा गया। वह भी उसके पीछे-पीछे गई।

कुएं पर कई औरतें पानी खीच रही थीं। अमरकान्त को देखकर एक युवती ने पूछा—कोई पाहुने हैं क्या, सलोनी काकी?

बुढ़िया हंसकर बोली—पाहुने होते, तो पानी भरने कैसे आते! तेरे घर भी ऐसे पाहुने आते हैं?

युवती ने तिरछी आंखों से अमर को देखकर कहा—हमारे पाहुने तो अपने हाथ से पानी भी नहीं पीते, काकी! ऐसे भोले-भाले पाहुने को मैं अपने घर ले जाऊंगी।

अमरकान्त का कलेजा धक-से हो गया। वह युवती वही मुन्नी थी, जो खून के मुकदमे से बरी हो गई थी। वह अब उतनी दुर्बल, उतनी चिंतित नहीं है। रूप माधुर्य है, अंगो में विकास, मुख पर हास्य की मधुर छवि। आनंद जीवन का तत्त्व है। वह अतीत की परवाह नहीं करता, पर शायद मुन्नी ने अमरकान्त को नहीं पहचाना। उसकी सूरत इतनी बदल गई है। शहर का सुकुमार युवक देहात का मजूर हो गया है।

अमर झेंपते हुए कहा—मैं पाहुना नहीं हूं देवी, परदेशी हूं। आज इस गांव में आ निकला। इस नाते सारे गांव का अतिथि हूं।

युवती ने मुस्कराकर कहा—तब एक-दो घड़ों से पिंड न छूटेगा। दो सौ घड़े भरने पड़ेंगे, नहीं तो घड़ा इधर बढ़ा दो। झूठ तो नहीं कहती, काकी!

उसने अमरकान्त के हाथ से घड़ा ले लिया और चट फंदा लगा, कुंए में डाल, बात-की-बात में घड़ा खींच लिया।

अमरकान्त घड़ा लेकर चला गया, तो मुन्नी ने सलोनी से कहा–किसी भले घर का आदमी है, काकी ! देखा कितना शरमाता था। मेरे यहां से अचार मंगवा लीजियो, आटा–वाटा तो है?

सलोनी ने कहा–बाजरे का है, गेहूं कहां से लाती?

''तो मैं आटा लिए आती हूं। नहीं, चलो दे दूं। वहां काम–धंधे में लग जाऊंगी, तो सुरति न रहेगी।''

मुन्नी को तीन साल हुए मुखिया का लड़का हरिद्वार से लाया था। एक सप्ताह से एक धर्मशाले के द्वार पर जीर्ण दशा में पड़ी थी। बड़े–बड़े आदमी धर्मशाले में आते थे, सैकड़ों–हजारों दान करते थे; पर इस दुखिया पर किसी को दया न आती थी। वह चमार युवक जूते बेचने आता था। इस पर उसे दया आ गई। गाड़ी पर लाद कर घर लाया। दवा–दारू होने लगी। चौधरी बिगड़े, यह मुर्दा क्यों लाया; पर युवक बराबर दौड़–धूप करता रहा। वहां डॉक्टर–वैद्य कहां थे? भभूत और आशीर्वाद का भरोसा था। एक ओझे की तारीफ सुनी, मुर्दों को जिला देता है। रात को उसे बुलाने चला, चौधरी ने कहा–दिन होने दो तब जाना। युवक न माना, रात को ही चल दिया। गंगा चढ़ी हुई थी ! उसे पार जाना था। सोचा, तैरकर निकल जाऊंगा, कौन बहुत चौड़ा पाट है। सैकड़ों ही बार इस तरह आ–जा चुका था। निश्शंक पानी में घुस पड़ा; पर लहरें तेज थीं, पांव उखड़ गए, बहुत संभलना चाहा; पर न संभल सका। दूसरे दिन दो कोस पर उसकी लाश मिली ! एक चट्टान से चिमटी पड़ी थी। उसके मरते ही मुन्नी जी उठी और तब से यहीं है। यही घर उसका घर है। यहां उसका आदर है, मान है। वह अपनी जात–पांत भूल गई, आचार–विचार भूल गई, और ऊंच जाति ठकुराइन अछूतों के साथ अछूत बनकर आनंदपूर्वक रहने लगी। वह घर की मालकिन थी। बाहर का सारा काम वह करती, भीतर की रसोई–पानी, कूटना–पीसना दोनों देवरानियां करती थीं। वह बाहरी न थी। चौधरी की बड़ी बहू हो गई थी।

सलोनी को ले जाकर मुन्नी ने थाल में आटा, अचार और दही रखकर दिया; पर सलोनी को यह थाल लेकर घर जाते लाज आती थी। पाहुना द्वार पर बैठा हुआ है। सोचेगा, इसके घर में आटा भी नहीं है? जरा और अंधेरा हो जाय, तो जाऊं।

मुन्नी ने पूछा–क्या सोचती हो काकी?

''सोचती हूं, जरा और अंधेरा हो जाय तो जाऊं। अपने मन में क्या कहेगा?''

''चलो, मैं पहुंचा देती हूं। कहेगा क्या, क्या समझता है यहां धन्नासेठ बसते हैं? मैं तो कहती हूं, देख लेना, वह बाजरे की ही रोटियां खाएगा। गेहूं को छुएगा भी नहीं।''

दोनों पहुंचीं तो देखा अमरकान्त द्वार पर झाड़ू लगा रहा है। महीनों से झाड़ू न लगी थी। मालूम होता था, उलझे–बिखरे बालों पर कंघी कर दी गई है।

सलोनी थाली लेकर जल्दी से भीतर चली गई। मुन्नी ने कहा–अगर ऐसी मेहमानी करोगे, तो यहां से कभी न जाने पाओगे।

उसने अमर के पास जाकर उसके हाथ से झाड़ू छीन ली। अमर ने कूड़े को पैरों से एक जगह बटोर कर कहा–सफाई हो गई, तो द्वार कैसा अच्छा लगने लगा?

''कल चले जाओगे, तो यह बातें याद आएंगी। परदेसियों का क्या विश्वास? फिर इधर क्यों आओगे?''

मुन्नी के मुख पर उदासी छा गई।

''जब कभी इधर आना होगा, तो तुम्हारे दर्शन करने अवश्य आऊंगा। ऐसा सुंदर गांव मैंने नहीं देखा। नदी, पहाड़, जंगल, इसकी भी छटा निराली है। जी चाहता है, यहीं रह जाऊं और कहीं जाने का नाम न लूं।''

मुन्नी ने उत्सुकता से कहा–तो यहीं रह क्यों नहीं जाते? मगर फिर कुछ सोचकर बोली–तुम्हारे घर में और लोग भी तो होंगे, वह तुम्हें यहां क्यों रहने देंगे?

''मेरे घर में ऐसा कोई नहीं है, जिसे मेरे मरने-जीने की चिंता हो। मैं संसार में अकेला हूं।''

मुन्नी आग्रह करके बोली–तो यहीं रह जाओ, कौन भाई हो तुम?

''यह तो मैं बिल्कुल भूल गया, भाभी! जो बुलाकर प्रेम स एक रोटी खिला दे वही मेरा भाई है।''

''तो कल मुझे आ लेने देना। ऐसा न हो, चुपके से भाग जाओ।''

अमरकान्त ने झोंपड़ी में आकर देखा, तो बुढ़िया चूल्हा जला रही थी। गीली लकड़ी, आग न जलती थी। पोपले मुंह में फूंक भी न थी। अमर को देखकर बोली–तुम यहां धुएं मे कहां आ गए, बेटा? जाकर बाहर बैठो, यह चटाई उठा ले जाओ।

अमर ने चूल्हे के पास जाकर कहा–तू हट जा, मैं आग जलाए देता हूं।

सलोनी ने स्नेहमय कठोरता से कहा–तू बाहर क्यो नहीं जाता? मरदों का इस तरह रसोई मे घुसना अच्छा नहीं लगता।

बुढ़िया डर रही थी कि कहीं अमरकान्त दो प्रकार के आटे न देख ले। शायद वह उसे दिखाना चाहती थी कि मैं भी गेहूं का आटा खाती हूं। अमर यह रहस्य क्या जाने? बोला–अच्छा तो आटा निकाल दे, मैं गूंथ दूं।

सलोनी ने हैरान होकर कहा–तू कैसा लड़का है, भाई! बाहर जाकर क्यों नहीं बैठता?

उसे वह दिन याद आए, जब उसके बच्चे उसे अम्मा-अम्मां कहकर घेर लेते थे और वह उन्हें डांटती थी। उस उजड़े हुए घर में आज एक दिया जल रहा था, पर कल फिर वही अधेरा हो जाएगा। वही सन्नाटा। इस युवक की ओर क्यों उसकी इतनी ममता हो रही थी? कौन जाने कहां से आया है, कहां जाएगा, पर यह जानते हुए भी अमर का सरल बालकों का-सा निष्कपट व्यवहार, उसका बार-बार घर में आना और हरेक काम करने को तैयार हो जाना, उसकी भूखी मातृ-भावना को सींचता हुआ-सा जान पड़ता था, मानो अपने ही सिधारे हुए बालकों की प्रतिध्वनि कहीं दूर से उसके कानों में आ रही है।

एक बालक लालटेन लिए कंधे पर एक दरी रखे आया और दोनों चीजें उसके पास रखकर बैठ गया। अमर ने पूछा–दरी कहां से लाए?

''काकी ने तुम्हारे लिए भेजी है। वही काकी, जो अभी आई थीं।''

अमर ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा–अच्छा, तुम उनके भतीजे हो! तुम्हारी काकी कभी तुम्हें मारती तो नहीं?

बालक सिर हिलाकर बोला–कभी नहीं। वह तो हमें खेलाती है। दुरजन को नहीं

खेलाती; वह बड़ा बदमाश है।

अमर ने मुस्कराकर पूछा—कहां पढ़ने जाते हो?

बालक ने नीचे का होंठ सिकोड़कर कहा—कहां जाएं, हमें कौन पढ़ाए? मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा दोनों को लेकर गए थे। पंडितजी ने नाम लिख लिया; पर हमें सबसे अलग बैठाते थे; सब लड़के हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।

अमर की इच्छा हुई, चौधरी से जाकर मिले। कोई स्वाभिमानी आदमी मालूम होता है। पूछा—तुम्हारे दादा क्या कर रहे हैं?

बालक ने लालटेन से खेलते हुए कहा—बोतल लिए बैठे हैं। भुने चने धरे हैं, बस अभी बक-झक करेंगे, खूब चिल्लाएंगे, किसी को मारेंगे, किसी को गालियां देंगे। दिन भर कुछ नहीं बोलते। जहां बोतल चढ़ाई कि बक चले।

अमर ने इस वक्त उनसे मिलना उचित न समझा।

सलोनी ने पुकारा—भैया, रोटी तैयार है, आओ गरम-गरम खा लो।

अमरकान्त ने हाथ-मुंह धोया और अंदर पहुंचा। पीतल की थाली में रोटियां थीं, पथरी में दही, पत्ते पर आचार, लोटे में पानी रखा हुआ था। थाली पर बैठकर बोला—तुम भी क्यो नहीं खातीं?

"तुम खा लो बेटा, मैं फिर खा लूंगी।"

"नहीं, मैं यह न मानूंगा। मेरे साथ खाओ !"

"रसोई जूठी हो जाएगी कि नहीं?"

"हो जाने दो। मैं ही तो खाने वाला हूं।"

"रसोई में भगवान् रहते हैं। उसे जूठी न करनी चाहिए।"

"तो मैं भी बैठा रहूंगा।"

"भाई, तू बड़ा खराब लड़का है।"

रसोई में दूसरी थाली कहां थी? सलोनी ने हथेली पर बाजरे की रोटियां ले लीं और रसोई के बाहर निकल आई। अमर ने बाजरे की रोटियां देख लीं। बोला—यह न होगा, काकी! मुझे तो यह फुलके दे दिए, आप मजेदार रोटियां उड़ा रही हैं।

"तू क्या बाजरे की रोटियां खाएगा बेटा? एक दिन के लिए आ पड़ा, तो बाजरे की रोटियां खिलाऊं?"

"मैं तो मेहमान नहीं हूं। यही समझ लो कि तुम्हारा खोया हुआ बालक आ गया है।"

"पहले दिन उस लड़के की भी मेहमानी की जाती है। मैं तुम्हारी क्या मेहमानी करूंगी, बेटा ! रूखी रोटियां भी कोई मेहमानी है? न दारू, न सिकार।"

"मैं तो दारू-शिकार छूता भी नहीं, काकी।"

अमरकान्त ने बाजरे की रोटियों के लिए ज्यादा आग्रह न किया। बुढ़िया को और दुःख होता। दोनों खाने लगे। बुढ़िया यह बात सुनकर बोली—इस उमिर में तो भगतई नहीं अच्छी लगती, बेटा ! यही तो खाने-पीने के दिन हैं। भगतई के लिए तो बुढ़ापा है ही।"

"भगत नहीं हूं, काकी ! मेरा मन नहीं चाहता।"

"मां-बाप भगत रहे होंगे।"

"हां, वह दोनों जने भगत थे।"

"अभी दोनों हैं न?"

"अम्मां तो मर गईं, दादा हैं। उनसे मेरी नहीं पटती।"

"तो घर से रूठकर आए हो?"

"एक बात पर दादा से कहा-सुनी हो गई। मैं चला आया।"

"घरवाली तो है न?"

"हां, वह भी है।"

"बेचारी रो-रोकर मरी जाती होगी। कभी चिट्ठी पत्तर लिखते हो?"

"उसे भी मेरी परवाह नहीं है, काकी ! बड़े घर की लड़की है, अपने भोग-विलास में मग्न है। मैं कहता हूं, चल किसी गांव में खेती-बारी करें। उसे शहर अच्छा लगता है।"

अमरकान्त भोजन कर चुका, तो अपनी थाली उठा ली और बाहर आकर मांजने लगा। सलोनी भी पीछे-पीछे आकर बोली—तुम्हारी थाली मैं मांज देती, तो छोटी हो जाती?

अमर ने हंसकर कहा—तो क्या मैं अपनी थाली मांजकर छोटा हो जाऊंगा?

"यह तो अच्छा नहीं लगता कि एक दिन के लिए कोई आया तो थाली मांजने लगे। अपने मन में सोचते होगे, कहां इस भिखारिन के यहां ठहरा?"

अमरकान्त के दिल पर चोट न लगे, इसलिए वह मुस्कराई।

अमर ने मुग्ध होकर कहा—भिखारिन के सरल, पवित्र स्नेह में जो सुख मिला, वह माता की गोद के सिवा और कहीं नहीं मिल सकता था, काकी !

उसने थाली धो-धाकर रख दी और दरी बिछाकर जमीन पर लेटने ही जा रहा था कि पंद्रह-बीस लड़कों का एक दल आकर खड़ा हो गया। दो-तीन लड़कों के सिवाय और किसी की देह पर साबुत कपड़े न थे। अमरकान्त कौतूहल से उठ बैठा, मानो कोई तमाशा होने वाला है।

जो बालक अभी दरी लेकर आया था, आगे बढ़कर बोला—इतने लड़के हैं हमारे गांव में। दो-तीन लड़के नहीं आए, कहते थे वह कान काट लेंगे।

अमरकान्त ने उठकर उन सभी को कतार में खड़ा किया और एक-एक का नाम पूछा। फिर बोले—तुममें से जो-जो रोज हाथ-मुंह धोता है, अपना हाथ उठाए।

किसी लड़के ने हाथ न उठाया। यह प्रश्न किसी की समझ में न आया।

अमर ने आश्चर्य से कहा—ऐं ! तुममें से कोई रोज हाथ-मुंह नहीं धोता?

सभी ने एक-दूसरे की ओर देखा। दरी वाले लड़के ने हाथ उठा दिया। उसे देखते ही दूसरों ने भी हाथ उठा दिए।

अमर ने फिर पूछा—तुम में से कौन-कौन लड़के रोज नहाते हैं, हाथ उठाएं।

पहले किसी ने हाथ न उठाया। फिर एक-एक करके सबने हाथ उठा दिए। इसलिए नहीं कि सभी रोज नहाते थे, बल्कि इसलिए कि वे दूसरों से पीछे न रहें।

सलोनी खड़ी थी। बोली—तू तो महीने भर में भी नहीं नहाता रे, जंगलिया ! तू क्यों हाथ उठाए हुए है?

जंगलिया ने अपमानित होकर कहा—तो गूदड़ ही कौन रोज नहाता है। भुलई, पुन्नू,

घसीटे, कोई भी तो नहीं नहाता।

सभी एक-दूसरे की कलई खोलने लगे।

अमर ने डांटा—अच्छा, आपस में लड़ो मत। मैं एक बात पूछता हूं, उसका जवाब दो। रोज मुंह-हाथ धोना अच्छी बात है या नहीं?

सभी ने कहा—अच्छी बात है।

''और नहाना?''

सभी ने कहा—अच्छी बात है।

''मुंह से कहते हो या दिल से?''

''दिल से।''

''बस जाओ। मैं दस-पांच दिन में फिर आऊंगा और देखूंगा कि किन लड़कों ने झूठा वादा किया था, किसने सच्चा।''

लड़के चले गए, तो अमर लेटा। तीन महीने लगातार घूमते-घूमते उसका जी ऊब उठा था। कुछ विश्राम करने का जी चाहता था। क्यों न वह इसी गांव में टिक जाय? यहां उसे कौन जानता है? यहीं उसका छोटा-सा घर बन गया। सकीना उस घर में आ गई, गाय-बैल और अंत में नींद भी आ गई।

## दो

अमरकान्त सवेरे उठा, मुंह-हाथ धोकर गंगा-स्नान किया और चौधरी से मिलने चला। चौधरी का नाम गूदड़ था। इस गांव में कोई-जमींदार न रहता था। गूदड़ का द्वार ही चौपाल का काम देता था। अमर ने देखा, नीम के पेड़ के नीचे एक तख्त पड़ा हुआ है। दो-तीन बांस की खाटें, दो-तीन पुआल के गद्दे। गूदड़ की उम्र साठ के लगभग थी; मगर अभी टांठा था। उसके सामने उसका बड़ा लड़का पयाग बैठा एक जूता सी रहा था। दूसरा लड़का काशी बैलों को सानी-पानी कर रहा था। मुन्नी गोबर निकाल रही थी। तेजा और दुरजन दौड़-दौड़कर कुएं से पानी ला रहे थे। जरा पूरब की ओर हटकर दो औरतें बरतन मांज रही थीं। यह दोनों गूदड़ की बहुएं थीं।

अमर ने चौधरी को राम-राम किया और एक पुआल की गद्दी पर बैठ गया। चौधरी ने पितृभाव से उसका स्वागत किया—मजे में खाट पर बैठो, भैया! मुन्नी ने रात ही कहा था। अभी आज तो नहीं जा रहे हो? दो-चार दिन रहो, फिर चले जाना। मुन्नी तो कहती थी, तुमको कोई काम मिल जाय तो यहीं टिक जाओगे।

अमर ने सकुचाते हुए कहा—हां, कुछ विचार तो ऐसा मन में आया था।

गूदड़ ने नारियल से धुआं निकालकर कहा—काम की कौन कमी है? घास भी कर लो, तो रुपये रोज की मजूरी हो जाए। नहीं जूते का काम है। तलियां बनाओ, चरसे बनाओ, मेहनत करने वाला आदमी भूखों नहीं मरता। धेली की मजूरी कहीं नहीं गई।

यह देखकर कि अमर को इन दोनों में कोई तजबीज पसंद नहीं आई, उसने एक तीसरी

तजबीज पेश की—खेती-बारी की इच्छा हो तो कर लो। सलोनी भाभी के खेत हैं। तब तक वही जोतो।

पयाग ने सूआ चलाते हुए कहा—खेती की झंझट में न पड़ना, भैया ! चाहे खेत में कुछ हो या न हो, लगान जरूर दो। कभी ओला-पाला, कभी सूखा-बूड़ा। एक-न-एक बला सिर पर सवार रहती है। उस पर कहीं बैल मर गया या खलिहान में आग लग गई तो सब कुछ स्वाहा। घास सबसे अच्छी। न किसी के नौकर न चाकर, न किसी का लेना न देना। सबेरे खुरपी उठाई और दोपहर तक लौट आए।

काशी बोला—मजूरी, मजूरी है, किसानी, किसानी है, मजूर लाख हो, तो मजूर कहलाएगा। सिर पर घास लिए चले जा रहे हैं। कोई इधर से पुकारता है—ओ घास वाले ! कोई उधर से। किसी की मेंड़ पर घास कर लो, तो गालियां मिलें। किसानी में मरजाद है।

पयाग का सूआ चलना बंद हो गया—मरजाद ले के चाटो। इधर-उधर से कमा के लाओ; वह भी खेती में झोंक दो।

चौधरी ने फैसला किया—घाटा-नफा तो हर एक रोजगार में है, भैया ! बड़े-बड़े सेठों का दिवाला निकल जाता है। खेती बराबर कोई रोजगार नहीं जो कमाई और तकदीर अच्छी हो। तुम्हारे यहां भी नजर-नजराने का यही हाल है, भैया?

अमर बोला—हां, दादा सभी जगह यही हाल है, कहीं ज्यादा कहीं कम। सभी गरीबों का लहू चूसते हैं।

चौधरी ने स्नेह का सहारा लिया—भगवान् ने छोटे-बड़े का भेद क्यों लगा दिया, इसका मरम समझ में नहीं आता? उनके तो सभी लड़के हैं। फिर सबको एक आंख से क्यों नहीं देखते?

पयाग ने शंका-समाधान की—पूरब जनम का संसकार है। जिसने जैसे करम किए, वैसे फल पा रहा है।

चौधरी ने खंडन किया—यह सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जिसमें गरीबों को अपनी दसा पर संतोष रहे और अमीरों के राग-रंग में किसी तरह की बाधा न पड़े। लोग समझते रहें कि भगवान् ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोस; पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल-बच्चे तक काम में लगे रहें और पेट भर भोजन न मिले और एक-एक अफसर को दस-दस हजार की तलब मिले। दस तोड़े रुपये हुए। गधे से भी न उठे।

अमर ने मुस्कराकर कहा—तुम तो दादा नास्तिक हो।

चौधरी ने दीनता से कहा—बेटा, चाहे नास्तिक कहो, चाहे मूरख कहो, पर दिल पर चोट लगती है, तो मुंह से आह निकलती ही है। तुम तो पढ़े-लिखे हो जी?

''हां, कुछ पढ़ा तो है।''

''अंगरेजी तो न पढ़ी होगी?''

''नहीं, कुछ अंग्रेजी भी पढ़ी है।''

चौधरी प्रसन्न होकर बोले—तब तो भैया, हम तुम्हें न जाने देंगे। बाल-बच्चों को बुला लो और यहीं रहो। हमारे बाल-बच्चे भी कुछ पढ़ जाएंगे। फिर सहर भेज देंगे। वहां जात-पांत-बिरादरी कौन पूछता है। लिखा दिया हम छत्तरी हैं।

अमर मुस्कराया—और जो पीछे से भेद खुल गया?

चौधरी का जवाब तैयार था—तो हम कह देंगे, हमारे पुरबज छत्तरी थे, हालांकि अपने को छत्तरी-बंस कहते लाज आती है। सुनते हैं, छत्तरी लोगों ने मुसलमान बादशाहों को अपनी बेटियां ब्याही थीं। अभी कुछ जलपान तो न किया होगा, भैया? कहां गया तेजा! जा, बहू से कुछ जलपान करने को ले आ। भैया, भगवान् का नाम लेकर यहीं टिक जाओ। तीन-चार बीघे सलोनी के पास है। दो बीघे हमारे साझे कर लेना। इतना बहुत है। भगवान् दें तो खाए न चुके।

लेकिन जब सलोनी बुलाई गई और उससे चौधरी ने यह प्रस्ताव किया, तो वह बिचक उठी। कठोर मुद्रा से बोली—तुम्हारी मंसा है, अपनी जमीन इनके नाम करा दूं और मैं हवा खाऊं, यही तो?

चौधरी ने हंसकर कहा—नहीं-नहीं, जमीन तेरे ही नाम रहेगी, पगली! यह तो खाली जोतेंगे। यही समझ ले कि तू इन्हें बटाई पर दे रही है।

सलोनी ने कानों पर हाथ रखकर कहा—भैया, अपनी जगह-जमीन मैं किसी के नाम नहीं लिखती। यों हमारे पाहुने हैं, दो-चार- दस दिन रहें। मुझसे जो कुछ होगा, सेवा-सत्कार करूंगी। तुम बटाई पर लेते हो, तो ले लो। जिसको कभी देखा न सुना, न जान न पहचान, उसे कैसे बटाई पर दे दूं?

पयाग ने चौधरी की ओर तिरस्कार-भाव से देखकर कहा—भर गया मन, या अभी नहीं। कहते हो औरतें मूरख होती हैं। यह चाहें हमको-तुमको खड़े-खड़े बेच लावें। सलोनी काकी मुंह की ही मीठी हैं।

सलोनी तिनक उठी-हां जी, तुम्हारे कहने से अपने पुरखों की जमीन छोड़ दूं। मेरे ही पेट का लड़का, मुझी को चराने चला है!

काशी ने सलोनी का पक्ष लिया—ठीक तो कहती हैं, बेजाने-सुने आदमी को अपनी जमीन कैसे सौंप दें?

अमरकान्त को इस विवाद में दार्शनिक आनंद आ रहा था। मुस्कराकर बोला—हां, काकी, तुम ठीक कहती हो। परदेसी आदमी का क्या भरोसा?

मुन्नी भी द्वार पर खड़ी यह बातें सुन रही थी, बोली—पगला गई हो क्या, काकी? तुम्हारे खेत कोई सिर पर उठा ले जाएगा? फिर हम लोग तो हैं ही। जब तुम्हारे साथ कोई कपट करेगा, तो हम पूछेंगे नहीं?

किसी भड़के हुए जानवर को बहुत से आदमी घेरने लगते हैं, तो वह और भी भड़क जाता है। सलोनी समझ रही थी, यह सब-के-सब मिलकर मुझे लुटवाना चाहते हैं। एक बार नाहीं करके, फिर हां न की। वेग से चल खड़ी हुई।

पयाग बोला—चुड़ैल है, चुड़ैल!

अमर ने खिसियाकर कहा—तुमने नाहक उससे कहा, दादा! मुझे क्या, यह गांव न सही और गांव सही।

मुन्नी का चेहरा फक हो गया।

गूदड़ बोले—नहीं भैया, कैसी बातें करते हो तुम। मेरे साझीदार बनकर रहो। महन्तजी से कहकर दो-चार बीघे का और बंदोबस्त करा दूंगा। तुम्हारी झोंपड़ी अलग बन जाएगी। खाने-

पीने की कोई बात नहीं। एक भला आदमी तो गांव में हो जायगा। नहीं, कभी एक चपरासी गांव में आ गया, तो सबकी सांस नीचे-ऊपर होने लगती है।

आध घंटे में सलोनी फिर लौटी और चौधरी से बोली--तुम्हीं मेरे खेत क्यों बटाई पर नहीं ले लेते?

चौधरी ने घुड़ककर कहा—मुझे नहीं चाहिए। धरे रह अपने खेत।

सलोनी ने अमर से अपील की—भैया, तुम्हीं सोचो, मैंने कुछ बेजा कहा? बेजाने-सुने किसी को कोई अपनी चीज दे देता है?

अमर ने सांत्वना दी—नहीं काकी, तुमने बहुत ठीक किया। इस तरह विश्वास कर लेने से धोखा हो जाता है।

सलोनी को कुछ ढाढ़स हुआ—तुमसे तो बेटा, मेरी रात ही भर की जान-पहचान है न? जिसके पास मेरे खेत हैं, वह तो मेरा ही भाई-बंद है। उससे छीनकर तुम्हें दे दूं, तो वह अपने मन में क्या कहेगा? सोचो, अगर मैं अनुचित कहती हूं, तो मेरे मुंह पर थप्पड़ मारो। वह मेरे साथ बेईमानी करता है, यह जानती हूं, पर है तो अपना ही हाड़-मास उसके मुंह की रोटी छीनकर तुम्हें दे दूं तो तुम मुझे भला कहोगे, बोलो?

सलोनी ने यह दलील खुद सोच निकाली थी या किसी ने सुझा दी थी, पर इसने गूदड़ को लाजवाब कर दिया।

## तीन

दो महीने बीत गए।

पूस की ठंडी रात काली कमली ओढ़े पड़ी हुई थी। ऊंचा पर्वत किसी विशाल महत्त्वाकांक्षी की भांति, तारिकाओं का मुकुट पहने खड़ा था। झोंपड़ियां जैसे उसकी वह छोटी-छोटी अभिलाषाएं थीं, जिन्हें वह ठुकरा चुका था।

अमरकान्त की झोंपड़ी में एक लालटेन जल रही है। पाठशाला खुली हुई है। पंद्रह-बीस लड़के खड़े अभिमन्यु की कथा सुन रहे हैं। अमर खड़ा कथा कह रहा है। सभी लड़के कितने प्रसन्न हैं। उनके पीले कपड़े चमक रहे हैं, आंखें जगमगा रही हैं। शायद वे भी अभिमन्यु जैसे वीर, वैसे ही कर्त्तव्यपरायण होने का स्वप्न देख रहे हैं। उन्हें क्या मालूम, एक दिन उन्हें दुर्योधनों और जरासन्धों के सामने घुटने टेकने पड़ेंगे, कितनी बार वे चक्रव्यूहों से भागने की चेष्टा करेंगे, और भाग न सकेंगे।

गूदड़ चौधरी चौपाल में बोतल और कुंजी लिए कुछ देर तक विचार में डूबे बैठे रहे। फिर कुंजी फेंक दी। बोतल उठाकर आले पर रख दी और मुन्नी को पुकारकर कहा—अमर भैया से कह, आकर खाना खा ले। इस भले आदमी को जैसे भूख ही नहीं लगती, पहर रात गई, अभी तक खाने-पीने की सुधि नहीं।

मुन्नी ने बोतल की ओर देखकर कहा—तुम जब तक पी लो। मैंने तो इसीलिए नहीं बुलाया।

गूदड़ ने अरुचि से कहा—आज तो पीने को जी नहीं चाहता, बेटी! कौन बड़ी अच्छी चीज है?

मुन्नी आश्चर्य से चौधरी की ओर ताकने लगी। उसे आए यहां तीन साल से अधिक हुए। कभी चौधरी को नागा करते नहीं देखा, कभी उनके मुंह से ऐसी विराग की बात नहीं सुनी। सशंक होकर बोली—आज तुम्हारा जी अच्छी नहीं है क्या, दादा?

चौधरी ने हंसकर कहा—जी क्यों नहीं अच्छा है? मंगाई तो थी पीने ही के लिए, पर अब जी नहीं चाहता। अमर भैया की बात मेरे मन में बैठ गई। कहते हैं—जहां सौ में अस्सी आदमी भूखों मरते हों, वहां दारू पीना गरीब का रकत पीने के बराबर है। कोई दूसरा कहता, तो न मानता; पर उनकी बात न जाने क्यों दिल में बैठ जाती है?

मुन्नी चिंतित हो गई—तुम उनके कहने में न आओ, दादा! अब छोड़ना तुम्हें अवगुन करेगा। कहीं देह में दरद न होने लगे।

चौधरी ने इन विचारों को जैसे तुच्छ समझकर कहा—चाहे दरद हो, चाहे बाई हो, अब पीऊंगा नहीं। जिंदगी में हजारों रुपये की दारू पी गया। सारी कमाई नसे में उड़ा दी। उतने रुपये से कोई उपकार का काम करता, तो गांव का भला होता और जस भी मिलता। मूरख को इसी से बुरा कहा है। साहब लोग सुना है, बहुत पीते हैं, पर उनकी बात निराली है। यहां राज करते हैं। लूट का धन मिलता है, वह न पिएं, तो कौन पीए? देखती है, अब कासी और पयाग को भी कुछ लिखने-पढ़ने का चस्का लगने लगा है।

पाठशाला बद हुई। अमर तेजा और दुरजन की उंगली पकड़े हुए आकर चौधरी से बोला—मुझे तो आज देर हो गई है दादा, तुमने खा-पी लिया न?

चौधरी स्नेह में डूब गए—हां, और क्या, मैं ही तो पहर रात से जुता हुआ हूं, मैं ही तो जूते लेकर रिसीकेस गया था। इस तरह जान दोगे, तो मुझे तुम्हारी पाठँसाला बंद करनी पड़ेगी।

अमर की पाठशाला में अब लड़कियां भी पढ़ने लगी थीं। उसके आनंद का पारावार न था।

भोजन करके चौधरी सोए। अमर चलने लगा, तो मुन्नी ने कहा—आज तो लाला तुमने बड़ा भारी पाला मारा। दादा ने आज एक घूंट भी नहीं पी।

अमर उछलकर बोला—कुछ कहते थे?

"तुम्हारा जस गाते थे, और क्या कहते? में तो समझती थी, मरकर ही छोड़ेंगे, पर तुम्हारा उपदेस काम कर गया!"

अमर के मन में कई दिन से मुन्नी का वृत्तांत पूछने की इच्छा हो रही थी, पर अवसर न पाता था। आज मौका पाकर उसने पूछा—तुम मुझे नहीं पहचानती हो, लेकिन मैं तुम्हें पहचानता हूं।

मुन्नी के मुख का रंग उड़ गया। उसने चुभती हुई आंखों से अमर को देखकर कहा—तुमने कह दिया, तो मुझे याद आ रहा है। तुम्हें कहीं देखा है।

"काशी के मुकदमे की बात याद करो।"

"अच्छा, हां, याद आ गया। तुम्हीं डॉक्टर साहब के साथ रुपये जमा करते फिरते थे, मगर तुम यहां कैसे आ गए?"

''पिताजी से लड़ाई हो गई। तुम यहां कैसे पहुंचीं और इन लोगों के बीच में कैसे आ पड़ीं?''

मुन्नी घर में जाती हुई बोली–फिर कभी बताऊंगी; पर तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, यहां किसी से कुछ न कहना।

अमर ने अपनी कोठरी में जाकर बिछावन के नीचे से धोतियों का एक जोड़ा निकाला और सलोनी के घर पहुंचा। सलोनी भीतर पड़ी नींद को बुलाने के लिए गा रही थी। अमर की आवाज सुनकर टट्टी खोल दी और बोली–क्या है बेटा? आज तो बड़ा अंधेरा है। खाना खा चुके? मैं तो अभी चरखा कात रही थी। पीठ दुखने लगी, तो आकर पड़ रही।

अमर ने धोतियों का जोड़ा निकालकर कहा–मैं यह जोड़ा लाया हूं। इसे ले लो। तुम्हारा सूत पूरा हो जाएगा, तो मैं ले लूंगा।

सलोनी उस दिन अमर पर अविश्वास करने के कारण उससे सकुचाती थी। ऐसे भले आदमी पर उसने क्यों अविश्वास किया। लजाती हुई बोली–अभी तुम क्यों लाए भैया, सूत कत जाता, तो ले आते।

अमर के हाथ में लालटेन थी। बुढ़िया ने जोड़ा ले लिया और उसकी तहों को खोलकर ललचाई हुई आंखों से देखने लगी। सहसा वह बोल उठी–यह तो दो हैं बेटा, मैं दो लेकर क्या करूंगी। एक तुम ले जाओ।

अमरकान्त ने कहा–तुम दोनों रख लो, काकी। एक से कैसे काम चलेगा?

सलोनी को अपने जीवन के सुनहरे दिनों में भी दो धोतियां मयस्सर न हुई थीं। पति और पुत्र के राज में भी एक धोती से ज्यादा कभी न मिली। और आज ऐसी सुंदर दो-दो साड़ियां मिल रही हैं, जबरदस्ती दी जा रही हैं। उसके अंत:करण से मानो दूध की धारा बहने लगी। उसका सारा वैधव्य, सारा मातृत्व आशीर्वाद बनकर उसके एक-एक रोम को स्पंदित करने लगा।

अमरकान्त कोठरी से बाहर निकल आया। सलोनी रोती रही।

अपनी झोंपड़ी में आकर अमर कुछ अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। फिर अपनी डायरी लिखने बैठ गया। उसी वक्त चौधरी के घर का द्वार खुला और मुन्नी कलसा लिए पानी भरने निकली। इधर लालटेन जलती देखकर वह इधर चली आई, और द्वार पर खड़ी होकर बोली–अभी सोए नहीं लाला, रात तो बहुत हो गई।

अमर बाहर निकलकर बोला–हां, अभी नींद नहीं आई। क्या पानी नहीं था?

''हां, आज सब पानी उठ गया। अब जो प्यास लगी, तो कहीं एक बूंद नहीं।''

''लाओ, मैं खींच ला दूं। तुम इस अंधेरी रात में कहां जाओगी?''

''अंधेरी रात में शहर वालों को डर लगता है। हम तो गांव के हैं।''

''नहीं मुन्नी, मैं तुम्हें न जाने दूंगा।''

''तो क्या मेरी जान तुम्हारी जान से प्यारी है?''

''मेरी जैसी एक लाख जानें तुम्हारी जान पर न्यौछावर हैं।''

मुन्नी ने उसकी ओर अनुरक्त नेत्रों से देखा–तुम्हें भगवान् ने मेहरिया क्यों नहीं बनाया, लाला? इतना कोमल हृदय तो किसी मर्द का नहीं देखा। मैं तो कभी-कभी सोचती हूं, तुम

यहां न आते, तो अच्छा होता।

अमर मुस्कराकर बोला—मैंने तुम्हारे साथ बुराई की है, मुन्नी?

मुन्नी कांपते हुए स्वर में बोली—बुराई नहीं की? जिस अनाथ बालक का कोई पूछने वाला न हो, उसे गोद और खिलौने और मिठाइयों का चस्का डाल देना क्या बुराई नहीं है? यह सुख पाकर क्या वह बिना लाड़-प्यार के रह सकता है?

अमर ने करुण स्वर में कहा—अनाथ तो मैं था, मुन्नी! तुमने मुझे गोद और प्यार का चस्का डाल दिया। मैंने तो रो-रोकर तुम्हें दिक ही किया है।

मुन्नी ने कलसा जमीन पर रख दिया और बोली—मैं तुमसे बातों में न जीतूंगी लाला, लेकिन तुम न थे, तब मैं बड़े आनंद से थी। घर का धंधा करती थी, रूखा-सूखा खाती थी और सो रहती थी। तुमने मेरा वह सुख छीन लिया। अपने मन में कहते होंगे, बड़ी निर्लज्ज नार है। कहो, जब मर्द औरत हो जाए, तो औरत को मर्द बनना ही पड़ेगा। जानती हूं, तुम मुझसे भागे-भागे फिरते हो, मुझसे गला छुड़ाते हो। यह भी जानती हूं, तुम्हें पा नहीं सकती। मेरे ऐसे भाग्य कहां? पर छोड़ूंगी नहीं। मैं तुमसे और कुछ नहीं मांगती। बस, इतना ही चाहती हूं कि तुम मुझे अपनी समझो। मुझे मालूम हो कि मैं भी स्त्री हूं, मेरे सिर पर भी कोई है, मेरी जिंदगी भी किसी के काम आ सकती है।

अमर ने अब तक मुन्नी को उसी तरह देखा था, जैसे हरेक युवक किसी सुंदरी युवती को देखता है—प्रेम से नहीं, केवल रसिक भाव से, पर आत्म-समर्पण ने उसे विचलित कर दिया। दुधार गाय के भरे हुए थनों को देखकर हम प्रसन्न होते हैं—इनमें कितना दूध होगा! केवल उसकी मात्रा का भाव हमारे मन में आ जाता है। हम गाय को पकड़कर दुहने के लिए तैयार नहीं हो जाते, लेकिन कटोरे में दूध का सामने आ जाना दूसरी बात है। अमर ने दूध के कटोरे की ओर हाथ बढ़ा दिया—आओ, हम-तुम कहीं चलें, मुन्नी! वहां मैं कहूंगा यह मेरी

मुन्नी ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया और बोली—बस, और कुछ न कहना। मर्द सब एक-से होते हैं। मैं क्या कहती थी, तुम क्या समझ गए? मैं तुमसे सगाई नहीं करूंगी, तुम्हारी रखेली भी नहीं बनूंगी। तुम मुझे अपनी चेरी समझते रहो, यही मेरे लिए बहुत है।

मुन्नी ने कलसा उठा लिया और कुएं की ओर चल दी। अमर रमणी-हृदय का यह अद्भुत रहस्य देखकर स्तंभित हो गया था।

सहसा मुन्नी ने पुकारा—लाला, ताजा पानी लाई हूं। एक लोटा लाऊं?

पीने की इच्छा होने पर भी अमर ने कहा—अभी तो प्यास नहीं है, मुन्नी!

## चार

तीन महीने तक अमर ने किसी को खत न लिखा। कहीं बैठने की मुहलत ही न मिली। सकीना का हाल जानने के लिए हृदय तड़प-तड़पकर रह जाता था। नैना की भी याद आ जाती थी। बेचारी रो-रोकर मरी जाती होगी। बच्चे का हंसता हुआ फूल-सा मुखड़ा याद आता रहता था,

पर कहीं अपना पता-ठिकाना हो तब तो खत लिखे। एक जगह तो रहना नहीं होता था। यहां आने के कई दिन बाद उसने तीन खत लिखे—सकीना, सलीम और नैना के नाम। सकीना का पत्र सलीम के लिफाफे में बंद कर दिया था। आज जवाब आ गए हैं। डाकिया अभी दे गया है। अमर गंगा-तट पर एकांत में जाकर इन पत्रों को पढ़ रहा है। वह नहीं चाहता, बीच में कोई बाधा हो, लड़के आ-आकर पूछें—किसका खत है।

नैना लिखती है—"भला, आपको इतने दिनों के बाद मेरी याद तो आई। मैं आपको इतना कठोर न समझती थी। आपके बिना इस घर में कैसे रहती हूं, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि आप, आप हैं, और मैं, मैं! साढ़े चार महीने! और आपका एक पत्र नहीं! कुछ खबर नहीं! आंखों से कितना आंसू निकल गया, कह नहीं सकती। रोने के सिवा आपने और काम ही क्या छोड़ा! आपके बिना मेरा जीवन इतना सूना हो जाएगा, मुझे यह न मालूम था।

"आपके इतने दिनों की चुप्पी का कारण मैं समझती हूं, पर वह आपका भ्रम है भैया! आप मेरे भाई हैं। मेरे वीरन हैं। राजा हों तो मेरे भाई हैं, रंक हों तो मेरे भाई हैं! संसार आप पर हंसे, सारे देश में आपकी निंदा हो, पर आप मेरे भाई हैं। आज आप मुसलमान या ईसाई हो जाएं, तो क्या आप मेरे भाई न रहेंगे? जो नाता भगवान् ने जोड़ दिया है, क्या उसे आप तोड़ सकते हैं? इतना बलवान् मैं आपको नही समझती। इससे भी प्यारा और कोई नाता संसार में है, मैं नहीं समझती। मां में केवल वात्सल्य है। बहन में क्या है, नहीं कह सकती, पर वह वात्सल्य से कोमल अवश्य है। मां अपराध का दंड भी देती है। बहन क्षमा का रूप है। भाई न्याय करे, अन्याय करे, डांटे या प्यार करे, मान करे, अपमान करे, बहन के पास क्षमा के सिवा और कुछ नहीं है। वह केवल उसके स्नेह की भूखी है।

"जब से आप गए हैं, किताबों की ओर ताकने की इच्छा नहीं होती। रोना आता है। किसी काम में जी नहीं लगता। चरखा भी पड़ा मेरे नाम को रो रहा है। बस, अगर कोई आनंद की वस्तु है, तो वह मुन्नू है। वह मेरे गले का हार हो गया है: क्षण-भर को भी नहीं छोड़ता। इस वक्त सो गया है, तब यह पत्र लिख सकी हूं, नहीं उसने चित्रलिपि में वह पत्र लिखा होता, जिसको बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं समझ सकते। भाभी को उससे अब उतना स्नेह नहीं रहा। आपकी चर्चा वह कभी भूलकर भी नहीं करतीं। धर्म-चर्चा और भक्ति से उन्हें विशेष प्रेम हो गया है। मुझसे भी बहुत कम बोलती हैं। रेणुकादेवी उन्हें लेकर लखनऊ जाना चाहती थीं, पर वहां नहीं गई। एक दिन उनकी गऊ का विवाह था। शहर के हजारों देवताओं का भोज हुआ। हम लोग भी गए थे। यहां के गऊशाले के लिए उन्होंने दस हजार रुपये दान किए हैं।

"अब दादाजी का हाल सुनिए वह आजकल एक ठाकुरद्वारा बनवा रहे हैं। जमीन तो पहले ही ले चुके थे। पत्थर जमा हो रहा है। ठाकुरद्वारे की बुनियाद रखने के लिए राजा साहब को निमंत्रण दिया जाएगा। न जाने क्यों दादा अब किसी पर क्रोध नहीं करते। यहां तक कि जोर से बोलते भी नहीं। दाल में नमक तेज हो जाने पर जो थाली पटक देते थे, अब चाहे कितना ही नमक पड़ जाय, बोलते भी नहीं। सुनती हूं, असामियों पर भी उतनी सख्ती नहीं करते। जिस दिन बुनियाद पड़ेगी, बहुत से असामियों का बकाया मुआफ भी करेंगे। पठानिन को अब पांच की जगह पच्चीस रुपये

मिलने लगे हैं। लिखने को तो बहुत-सी बातें हैं; पर लिखूंगी नहीं। आप अगर यहां आएं तो छिपकर आइएगा; क्योंकि लोग झल्लाए हुए हैं। हमारे घर कोई नहीं आता-जाता।''

दूसरा खत सलीम का है : '' मैंने तो समझा था, तुम गंगाजी में डूब मरे और तुम्हारे नाम को, प्याज की मदद से, दो-तीन कतरे आंसू बहा दिए थे और तुम्हारी रूह की नजात के लिए एक बरहमन को एक कौड़ी खैरात भी कर दी थी; मगर यह मालूम करके रंज हुआ कि आप जिंदा हैं और मेरा मातम बेकार हुआ। आंसुओं का तो गम नहीं, आंखों को कुछ फायदा ही हुआ, मगर उस कौड़ी का जरूर गम है। भले आदमी, कोई पांच-पांच महीने तक यों खामोशी अख्तियार करता है ! खैरियत यही है कि तुम मौजूद नहीं हो। बड़े कौमी खादिम की दुम बने हो। जो आदमी अपने प्यारे दोस्तों से इतनी बेवफाई करे, वह कौम की खिदमत क्या खाक करेगा?

''खुदा की कसम रोज तुम्हारी याद आती थी। कॉलेज जाता हूं, जी नहीं लगता। तुम्हारे साथ कॉलेज की रौनक चली गई। उधर अब्बाजान सिविल सर्विस की रट लगा-लगाकर और भी जान लिए लेते हैं। आखिर कभी आओगे भी, या काले पानी की सजा भोगते रहोगे?

''कॉलेज के हाल साबिक दस्तूर हैं—वही ताश हैं, वही लेक्चरों से भागना है, वही मैच हैं। हां, कांवोकेशन का ऐड्रेस अच्छा रहा। वाइस चांलसर ने सादा जिंदगी पर जोर दिया। तुम होते, तो उस ऐड्रेस का मजा उठाते। मुझे फीका मालूम होता था। सादा जिंदगी का सबक तो सब देते हैं; पर कोई नमूना बनकर दिखाता नहीं। यह जो अनगिनती लेक्चरार और प्रोफेसर हैं, क्या सब-के-सब सादा जिंदगी के नमूने हैं? वह तो लिविंग का स्टैंडर्ड ऊंचा कर रहे हैं, तो फिर लड़के भी क्यों न ऊंचा करें, क्यों न बहती गंगा में हाथ धोवें? वाइस चांसलर साहब, मालूम नहीं सादगी का सबक अपने स्टाफ को क्यों नहीं देते? प्रोफेसर भाटिया के पास तीस जोड़े जूते हैं और बाज-बाज पचास रुपये के हैं। खैर, उनकी बात छोड़ो। प्रोफेसर चक्रवर्ती तो बड़े किफायतशार मशहूर हैं। जोरू न जांता, अल्ला मियां से नाता। फिर भी जानते हो कितने नौकर हैं उनके पास? कुल बारह ! तो भाई, हम लोग तो नौजवान हैं, हमारे दिलों में नया शौक है, नए अरमान हैं। वर वालों से मागेंगे; न देंगे, तो लड़ेंगे, दोस्तों से कर्ज लेंगे, दूकानदारों की खुशामद करेंगे, मगर शान से रहेंगे जरूर। वह जहन्नुम में जा रहे हैं, तो हम भी जहन्नुम जाएंगे, मगर उनके पीछे-पीछे।

''सकीना का हाल भी कुछ सुनना चाहते हो? मामा को बीसों ही बार भेजा, कपड़े भेजे, रुपये भेजे; पर कोई चीज न ली। मामा कहती हैं, दिन-भर एकाध चपाती खा ली, तो खा ली, नहीं चुपचाप पड़ी रहती है। दादी से बोलचाल बंद है। कल तुम्हारा खत पाते ही उसके पास भेज दिया था। उसका जवाब जो आया, उसकी हू-ब-हू नकल यह है। असली खत उस वक्त देखने को पाओगे, जब यहां आओगे :

''बाबूजी, आपको मुझ बदनसीब के कारण यह सजा मिली, इसका मुझे बड़ा रंज है। और क्या कहूं? जीती हूं और आपको याद करती हूं। इतना अरमान है कि मरने के पहले एक बार आपको देख लेती; लेकिन इसमें भी आपकी बदनामी ही है, और मैं तो बदनाम हो ही चुकी। कल आपका खत मिला, तब से कितनी बार सौदा उठ चुका है कि आपके पास चली जाऊं। क्या आप नाराज होंगे? मुझे तो यह खौफ नहीं है। मगर दिल को समझाऊंगी और

शायद कभी मरूंगी भी नहीं। कुछ देर तो गुस्से के मारे तुम्हारा खत न खोला। पर कब तक? खत खोला, पढ़ा, रोई, फिर पढ़ा, फिर रोई। रोने में इतना मजा है कि जी नहीं भरता। अब इंतजार की तकलीफ नहीं झेली जाती। खुदा आपको सलामत रखे।

''देखा, यह खत कितना दर्दनाक है! मेरी आंखों में बहुत कम आंसू आते हैं; लेकिन यह खत देखकर जब्त न कर सका। कितने खुशनसीब हो तुम!''

अमर ने सिर उठाया तो उसकी आंखों में नशा था, वह नशा जिसमें आलस्य नहीं, स्फूर्ति है, लालिमा नहीं, दीप्ति है; उन्माद नहीं, विस्मृति नहीं, जागृति है। उसके मनोजगत में ऐसा भूकंप कभी न आया था। उसकी आत्मा कभी इतनी उदार, इतनी विशाल, इतनी प्रफुल्ल न थी। आंखों के सामने दो मूर्तियां खड़ी हो गईं, एक विलास में डूबी हुई, रत्नों से अलंकृत, गर्व में चूर; दूसरी सरल माधुर्य से भूषित, लज्जा और विनय से सिर झुकाए हुए। उसका प्यासा हृदय उस खुशबूदार मीठे शरबत से हटकर इस शीतल जल की ओर लपका। उसने पत्र के उस अंश को फिर पढ़ा, फिर आवेश में जाकर गंगा-तट पर टहलने लगा। सकीना से कैसे मिले? यह ग्रामीण जीवन उसे पसंद आएगा? कितनी सुकुमार है कितनी कोमल! वह और कठोर जीवन? कैसे आकर उसकी दिलजोई करे। उसकी वह सूरत याद आई, जब उसने कहा था--बाबूजी, मैं भी चलती हूं। ओह! कितना अनुराग था। किसी मजूर को गढ़ा खोदते--खोदते जैसे कोई रत्न मिल जाए और वह अपने अज्ञान में उसे कांच का टुकड़ा ही समझ रहा हो!

'इतना अरमान है कि मरने के पहले आपको देख लेती'--यह वाक्य जैसे उसके हृदय में चिमट गया था। उसका मन जैसे गंगा की लहरों पर तैरता हुआ सकीना को खोज रहा था। लहरों की ओर तन्मयता से ताकते-ताकते उसे मालूम हुआ मैं बहा जा रहा हूं। वह चौंककर घर की तरफ चला। दोनों आंखें तर, नाक पर लाली और गालों पर आर्द्रता।

## पांच

गांव में एक आदमी सगाई लाया है। उस उत्सव में नाच, गाना, भोज हो रहा है। उसके द्वार पर नगड़ियां बज रही है, गांव भर के स्त्री, पुरुष, बालक जमा हैं और नाच शुरू हो गया है। अमरकान्त की पाठशाला आज बंद है। लोग उसे भी खींच लाए हैं।

पयाग ने कहा--चलो भैया, तुम भी कुछ करतब दिखाओ। सुना है, तुम्हारे देस में लोग खूब नाचते हैं।

अमर ने जैसे क्षमा-सी मांगी--भाई, मुझे तो नाचना नहीं आता।

उसकी इच्छा हो रही है कि नाचना आता, तो इस समय सबको चकित कर देता।

युवकों और युवतियों के जोड़ बंधे हुए हैं। हरेक जोड़ दस-पंद्रह मिनट तक थिरककर चला जाता है। नाचने में कितना उन्माद, कितना आनंद है, अमर ने न समझा था।

एक युवती घूंघट बढ़ाए हुए रंगभूमि में आती है इधर से पयाग निकलता है। दोनों नाचने लगते हैं। युवती के अंगों में इतनी लचक है, उसके अंग-विलास में भावों की ऐसी व्यंजना

है कि लोग मुग्ध हुए जाते हैं।

इस जोड़ के बाद दूसरा जोड़ आता है। युवक गठीला जवान है, चौड़ी छाती, उस पर सोने की मुहर, कछनी काछे हुए। युवती को देखकर अमर चौंक उठा। मुन्नी है। उसने घेरदार लहंगा पहना है, गुलाबी ओढ़नी ओढ़ी है, और पांव में पैजनियां बांध ली हैं। गुलाबी घूंघट में दोनों कपोल फूलों की भांति खिले हुए हैं। दोनों कभी हाथ–में–हाथ मिलाकर, कभी कमर पर हाथ रखकर, कभी कूल्हों को ताल से मटकाकर नाचने में उन्मत्त हो रहे हैं। सभी मुग्ध नेत्रों से इन कलाविदों की कला देख रहे हैं। क्या फुरती है, क्या लचक है ! और उनकी एक-एक लचक में, एक-एक गति में कितनी मार्मिकता, कितनी मादकता ! दोनों हाथ–में–हाथ मिलाए, थिरकते हुए रंगभूमि के उस सिरे तक चले जाते हैं और क्या मजाल कि एक गति भी बेताल हो।

पयाग ने कहा–देखते हो भैया, भाभी कैसा नाच रही है? अपना जोड़ नहीं रखती।

अमर ने विरक्त मन से कहा–हां, देख तो रहा हूं।

''मन हो, तो उठो, मैं उस लौंडे को बुला लूं।''

''नहीं, मुझे नहीं नाचना है।''

मुन्नी नाच रही थी कि अमर उठकर घर चला आया। यह बेशर्मी अब उससे नहीं सही जाती।

एक क्षण के बाद मुन्नी ने आकर कहा–तुम चले क्यों आए, लाला? क्या मेरा नाचना अच्छा न लगा?

अमर ने मुंह फेरकर कहा–क्या मैं आदमी नहीं हूं कि अच्छी चीज को बुरा समझूं?

मुन्नी और समीप आकर बोली–तो फिर चले क्यों आए?

अमर ने उदासीन भाव से कहा–मुझे एक पंचायत में जाना है। लोग बैठे मेरी राह देख रहे होंगे। तुमने क्यों नाचना बंद कर दिया?

मुन्नी ने भोलेपन से कहा–तुम चले आए, तो नाचकर क्या करती?

अमर ने उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा–सच्चे मन से कह रही हो मुन्नी?

मुन्नी उससे आंखें मिलाकर बोली–मैं तो तुमसे कभी झूठ नहीं बोली।

''मेरी एक बात मानो। अब फिर कभी मत नाचना।''

मुन्नी उदास होकर बोली–तो तुम इतनी जरा-सी बात पर रूठ गए? जरा किसी से पूछो, मैं आज कितने दिनों के बाद नाची हूं। दो साल से मैं नगाड़े के पास नहीं गई। लोग कह-कहकर हार गए। आज तुम्हीं ले गए, और अब उलटे तुम्हीं नाराज होते हो !

मुन्नी घर में चली गई। थोड़ी देर बाद काशी ने आकर कहा–भाभी, तुम यहां क्या कर रही हो? वहां सब लोग तुम्हें बुला रहे हैं।

मुन्नी ने सिरदर्द का बहाना किया।

काशी आकर अमर से बोला–तुम क्यों चले आए, भैया? क्या गंवारों का नाच-गाना अच्छा न लगा।

अमर ने कहा–नहीं जी, यह बात नहीं। एक पंचायत में जाना है देर हो रही है।

काशी बोला–भाभी नहीं जा रही है। इसका नाच देखने के बाद अब दूसरों का रंग नहीं

जम रहा है। तुम चलकर कह दो, तो साइत चला जाए। कौन रोज-राज यह दिन आता है। बिरादरी वाली बात है। लोग कहेंगे, हमारे यहां काम आ पड़ा, तो मुंह छिपाने लगे।

अमर ने धर्म-संकट में पड़कर कहा—तुमने समझाया नहीं?

फिर अंदर जाकर कहा—मुझसे नाराज हो गई, मुन्नी?

मुन्नी आंगन में आकर बोली—तुम मुझसे नाराज हो गए हो कि मैं तुमसे नाराज हो गई?

''अच्छा, मेरे कहने से चलो।''

''जैसे बच्चे मछलियों को खेलाते हैं, उसी तरह तुम मुझे खेला रहे हो, लाला ! जब चाहा रुला दिया; जब चाहा हंसा दिया।''

''मेरी भूल थी, मुन्नी ! क्षमा करो।''

''लाला, अब तो मुन्नी तभी नाचेगी, जब तुम उसका हाथ पकड़कर कहोगे—चलो हम-तुम नाचें। वह अब और किसी के साथ न नाचेगी।''

''तो अब नाचना सीखूं?''

मुन्नी ने अपनी विजय का अनुभव करके कहा—मेरे साथ नाचना चाहोगे, तो आप सीखोगे।

''तुम सिखा दोगी?''

''तुम मुझे रोना सिखा रहे हो, मैं तुम्हें नाचना सिखा दूंगी।''

''अच्छा चलो।''

कॉलेज के सम्मेलनों में अमर कई बार ड्रामा खेल चुका था। स्टेज पर नाचा भी था, गाया भी था, पर उस नाच और इस नाच में बड़ा अंतर था। वह विलासियों की कर्म-क्रीड़ा थी, यह श्रमिकों की स्वच्छंद केलि। उसका दिल सहमा जाता था।

उसने कहा—मुन्नी, तुमसे एक वरदान मांगता हूं।

मुन्नी ने ठिठककर कहा—तो तुम नाचोगे नहीं?

''यही तो तुमसे वरदान मांग रहा हूं।''

अमर 'ठहरो-ठहरो' कहता रहा पर मुन्नी लौट पड़ी।

अमर भी अपनी कोठरी मे चला आया, और कपड़े पहनकर पंचायत में चला गया। उसका सम्मान बढ़ रहा है। आस-पास के गांवों में भी जब कोई पंचायत होती है, तो उसे अवश्य बुलाया जाता है।

## छः

सलोनी काकी ने अपने घर की जगह पाठशाले के लिए दे दी है। लड़के बहुत आने लगे हैं। उस छोटी-सी कोठरी में जगह नहीं है। सलोनी से किसी ने जगह मांगी नहीं, कोई दबाव भी नहीं डाला गया। बस, एक दिन अमर और चौधरी बैठे बातें कर रहे थे कि नई शाला कहां बनाई जाए, गांव में तो बैलों के बांधने की जगह नहीं। सलोनी उनकी बातें सुनती रही। फिर एकाएक बोल उठी—मेरा घर क्यों नहीं ले लेते? बीस हाथ पीछे खाली जगह पड़ी है। क्या

इतनी जमीन में तुम्हारा काम नहीं चलेगा?

दोनों आदमी चकित होकर सलोनी का मुंह ताकने लगे।

अमर ने पूछा—और तू रहेगी कहां, काकी?

सलोनी ने कहा—उंह ! मुझे घर-द्वार लेकर क्या करना है बेटा? तुम्हारी ही कोठरी में आकर एक कोने में पड़ी रहूंगी।

गूदड़ ने मन में हिसाब लगाकर कहा—जगह तो बहुत निकल आएगी।

अमर ने सिर हिलाकर कहा—मैं काकी का घर नहीं लेना चाहता। महन्तजी से मिलकर गांव के बाहर पाठशाला बनवाऊंगा।

काकी ने दु:खित होकर कहा—क्या मेरी जगह में कोई छूत लगी है, भैया?

गूदड़ ने फैसला कर दिया। काकी का घर मदरसे के लिए ले लिया जाए। उसी में एक कोठरी अमर के लिए भी बना दी जाय। काकी अमर की झोंपड़ी में रहेगी। एक किनारे गाय-बैल बांध लेगी। एक किनारे पड़े रहेंगी।

आज सलोनी जितनी खुश है, उतनी शायद और कभी न हुई हो। वही बुढ़िया, जिसके द्वार पर कोई बैल बांध देता, तो लड़ने को तैयार हो जाती, जो बच्चों को अपने द्वार पर गोलियां न खेलने देती, आज अपने पुरखों का घर देकर अपना जीवन सफल समझ रही है। यह कुछ असंगत-सी बात है; पर दान कृपण ही दे सकता है । हां, दान का हेतु ऐसा होना चाहिए जो उसकी नजर में उसके मर-मर संचे हुए धन के योग्य हो।

चटपट काम शुरू हो जाता है। घरों से लकड़ियां निकल आईं, रस्सी निकल आई, मजूर निकल आए, पैसे निकल आए। न किसी से कहना पड़ा, न सुनना। वह उनकी अपनी शाला थी। उन्हीं के लड़के-लड़कियां तो पढ़ती थीं। और इन छ:-सात महीने में ही उन पर शिक्षा का कुछ असर भी दिखाई देने लगा था। वह अब साफ रहते हैं, झूठ कम बोलते हैं, झूठे बहाने कम करते हैं, गालियां कम बकते हैं, और घर से कोई चीज चुरा कर नहीं ले जाते। न उतनी जिद ही करते हैं। घर का जो कुछ काम होता है, उसे शौक से करते हैं। ऐसी शाला की कौन मदद न करेगा?

फागुन का शीतल प्रभात सुनहरे वस्त्र पहने पहाड़ पर खेल रहा था। अमर कई लड़कों के साथ गंगा-स्नान करके लौटा; पर आज अभी तक कोई आदमी काम करने नहीं आया। यह बात क्या है? और दिन तो उसके स्नान करके लौटने के पहले ही कारीगर आ जाते थे। आज इतनी देर हो गई और किसी का पता नहीं।

सहसा मुन्नी सिर पर कलसा रखे आकर खड़ी हो गई। वही शीतल, सुनहरा प्रभात उसके गेहुएं मुखड़े पर मचल रहा था।

अमर ने मुस्कराकर कहा—यह देखो, सूरज देवता तुम्हें घूर रहे हैं।

मुन्नी ने कलसा उतारकर हाथ में ले लिया और बोली—और तुम बैठे देख रहे हो?

फिर एक क्षण के बाद उसने कहा—तुम तो जैसे आजकल गांव में रहते ही नहीं हो। मदरसा क्या बनने लगा, तुम्हारे दर्शन ही दुर्लभ हो गए। मैं डरती हूं, कहीं तुम सनक न जाओ।

''मैं तो दिन-भर यहीं रहता हूं, तुम अलबत्ता जाने कहां रहती हो? आज यह सब

आदमी कहां चले गए? एक भी नहीं आया।''

''गांव में है ही कौन?''

''कहां चले गए सब?''

''वाह ! तुम्हें खबर ही नहीं? पहर रात सिरोमनपुर के ठाकुर की गाय मर गई, सब लोग वहीं गए हैं। आज घर-घर सिकार बनेगा।''

''अमर ने घृणा-सूचक भाव से कहा—मरी गाय?''

''हमारे यहां भी तो खाते हैं, यह लोग।''

''क्या जाने? मैने कभी नहीं देखा। तुम तो ''

मुन्नी ने घृणा से मुंह बनाकर कहा—मैं तो उधर ताकती भी नहीं।

''समझाती नहीं इन लोगों को?''

''उंह ! समझाने से माने जाते हैं, और मेरे समझाने से।''

अमरकान्त की वंशगत वैष्णव वृत्ति इस घृणित, पिशाच कर्म से जैसे मतलाने लगी। उसे सचमुच मतली हो आई। उसने छूत-छात और भेदभाव को मन मे निकाल डाला था, पर अखाद्य से वही पुरानी घृणा बनी हुई थी। और वह दस-ग्यारह महीने से इन्हीं मुरदाखोरों के घर भोजन कर रहा है।

''आज न खाना नहीं खाऊंगा, मुन्नी !''

''मैं तुम्हारा भोजन अलग पका दूंगी।''

''नहीं मुन्नी ! जिस घर में वह चीज पकेगी, उस घर में मुझसे न खाया जायगा।''

सहसा शोर सुनकर अमर ने आंखें उठाई, तो देखा कि पंद्रह-बीस आदमी बांस की बल्लियों पर उस मृतक गाय को लादे चले आ रहे है। सामने कई लड़के उछलते-कूदते तालियां बजाते चले आते थे।

कितना बीभत्स दृश्य था। अमर वहां खड़ा न रह सका। गंगा-तट की ओर भागा।

मुन्नी ने कहा—तो भाग जाने से क्या होगा? अगर बुरा लगता है तो जाकर समझाओ।

''मेरी बात कौन सुनेगा, मुन्नी?''

''तुम्हारी बात न सुनेंगे, तो और किसकी बात सुनेंगे, लाला?''

''और जो किसी ने न माना?''

''और जो मान गए ! आओ, कुछ-कुछ बद लो।''

''अच्छा क्या बदती हो?''

''मान जायें तो मुझे एक अच्छी-सी साड़ी ला देना।''

''और न माने, तो तुम मुझे क्या दोगी?''

''एक कौड़ी।''

इतनी देर में वह लोग और समीप आ गए। चौधरी सेनापति की भांति आगे आगे लपके चले आते थे।

मुन्नी ने आगे बढ़कर कहा—ला तो रहे हो, लेकिन लाला भागे जा रहे हैं।

गूदड़ ने कौतूहल से पूछा—क्यों ! क्या हुआ है?

''यही गाय की बात है। कहते हैं, मैं तुम लोगों के हाथ का पानी न पिऊंगा।''

पयाग ने अकड़कर कहा—बकने दो। न पिएंगे हमारे हाथ का पानी, तो हम छोटे न हो जाएंगे।

काशी बोला—आज बहुत दिनों के बाद सिकार मिला ! उसमें भी यह बाधा !

गूदड़ ने समझौते के भाव से कहा—आखिर कहते क्या हैं?

मुन्नी झुंझलाकर बोली—अब उन्हीं से जाकर पूछो। जो चीज और किसी ऊंची जात वाले नहीं खाते, उसे हम क्यों खाएं, इसी से तो लोग हमें नीच समझते हैं।

पयाग ने आवेश में कहा—तो हम कौन किसी बाम्हन-ठाकुर के घर बेटी ब्याहने जाते हैं? बाम्हनों की तरह किसी के द्वार पर भीख मांगने तो नहीं जाते ! यह तो अपना-अपना रिवाज है।

मुन्नी ने डांट बताई—यह कोई अच्छी बात है कि सब लोग हमें नीच समझें, जीभ के सवाद के लिए?

गाय वहीं रख दी गई। दो-तीन आदमी गंडासे लेने दौड़े। अमर खड़ा देख रहा था कि मुन्नी मना कर रही है; पर कोई उसकी सुन नहीं रहा। उसने उधर से मुंह फेर लिया जैसे उसे कै हो जाएगी। मुंह फेर लेने पर भी वही दृश्य उसकी आंखों में फिरने लगा। इस सत्य को वह कैसे भूल जाय कि उससे पचास कदम पर मुरदा गाय की बोटियां की जा रही हैं। वह उठकर गंगा की ओर भागा।

गूदड़ ने उसे गंगा की ओर जाते देखकर चिंतित भाव से कहा—वह तो सचमुच गंगा की ओर भागे जा रहे हैं। बड़ा सनकी आदमी है। कहीं डूब-डाब न जाय।

पयाग बोला—तुम अपना काम करो, कोई नहीं डूबे-डाबेगा। किसी को जान इतनी भारी नहीं होती।

मुन्नी ने उसकी ओर कोप-दृष्टि से देखा—जान उन्हें प्यारी होती है, जो नीच हैं और नीच बने रहना चाहते हैं। जिसमें लाज है, जो किसी के सामने सिर नहीं नीचा करना चाहता, वह ऐसी बात पर जान भी दे सकता है।

पयाग ने ताना मारा—उनका बड़ा पच्छ कर रही हो भाभी, क्या सगाई की ठहर गई है?

मुन्नी ने आहत कंठ से कहा—दादा, तुम सुन रहे हो इनकी बातें, और मुंह नहीं खोलते। उनसे सगाई ही कर लूंगी, तो क्या तुम्हारी हंसी हो जाएगी? और जब मेरे मन में वह बात आ जाएगी, तो कोई रोक भी न सकेगा। अब इसी बात पर मैं देखती हूं कि कैसे घर में सिकार जाता है। पहले मेरी गर्दन पर गंडासा चलेगा।

मुन्नी बीच में घुसकर गाय के पास बैठ गई और ललकार बोली—अब जिसे गंडासा चलाना हो चलाए, बैठी हूं।

पयाग ने कातर भाव से कहा—हत्या के बल खेलती-खाती हो और क्या !

मुन्नी बोली—तुम्हीं जैसों ने बिरादरी को इतना बदनाम कर दिया है उस पर कोई समझाता है, तो लड़ने को तैयार होते हो।

गूदड़ चौधरी गहरे विचार में डूबे खड़े थे। दुनिया में हवा किस तरफ चल रही है, इसकी भी उन्हें कुछ खबर थी। कई बार इस विषय पर अमरकान्त से बातचीत कर चुके

थे। गंभीर भाव से बोले—भाइयो, यहां गांव के सब आदमी जमा हैं। बताओ, अब क्या सलाह है?

एक चौड़ी छाती वाला युवक बोला—सलाह जो तुम्हारी है, वही सबकी है। चौधरी तो तुम हो।

पयाग ने अपने बाप को विचलित होते देख, दूसरों को ललकारकर कहा—खड़े मुंह क्या ताकते हो, इतने जने तो हो। क्यों नहीं मुन्नी का हाथ पकड़कर हटा देते? मैं गंडासा लिए खड़ा हूं।

मुन्नी ने क्रोध से कहा—मेरा ही मांस खा जाओगे, तो कौन हर्ज है? वह भी तो मांस ही है।

और किसी को आगे बढ़ते न देखकर पयाग ने खुद आगे बढ़कर मुन्नी का हाथ पकड़ लिया और उसे वहां से घसीटना चाहता था कि काशी ने उसे जोर से धक्का दिया और लाल आंखें करके बोला—भैया, अगर उसकी देह पर हाथ रखा, तो खून हो जाएगा—कहे देता हूं। हमारे घर में इस गऊ मांस की गंध तक न जाने पाएगी। आए वहां से बड़े वीर बनकर!

चौड़ी छाती वाला युवक मध्यस्थ बनकर बोला—मरी गाय के मांस में ऐसा कौन-सा मजा रखा है, जिसके लिए सब जने मरे जा रहे हो। गड्ढा खोदकर मांस गाड़ दो, खाल निकाल लो। वह भी जब अमर भैया की सलाह हो तो। सारी दुनिया हमें इसीलिए तो अछूत समझती है कि हम दारू-सराब पीते हैं, मुरदा मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं। और हममें क्या बुराई है? दारू-सराब हमने छोड़ दी है? रहा चमड़े का काम, उसे कोई बुरा नहीं कह सकता, और अगर कहे भी तो हमें उसकी परवाह नहीं। चमड़ा बनाना-बेचना कोई बुरा काम नहीं है।

गूदड़ ने युवक की ओर आदर की दृष्टि से देखा—तुम लोगों ने भूरे की बात सुन ली। तो यही सबकी सलाह है?

भूरे बोला—अगर किसी को उजर करना हो तो करे।

एक बूढ़े ने कहा—एक तुम्हारे या हमारे छोड़ देने से क्या होता है? सारी बिरादरी तो खाती है।

भूरे ने जवाब दिया—बिरादरी खाती है, बिरादरी नीच बनी रहे। अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है।

गूदड़ ने भूरे को संबोधित किया—तुम ठीक कहते हो, भूरे! लड़कों का पढ़ना ही ले लो। पहले कोई भेजता था अपने लड़कों को? मगर जब हमारे लड़के पढ़ने लगे, तो दूसरे गांवों के लड़के भी आ गए।

काशी बोला—मुरदा मांस न खाने के अपराध का दंड बिरादरी हमें न देगी। इसका मैं जुम्मा लेता हूं। देख लेना; आज की बात सांझ तक चारों ओर फैल जाएगी, और वह लोग भी यही करेंगे। अमर भैया का कितना मान है। किसकी मजाल है कि उनकी बात को काट दे।

पयाग ने देखा, अब दाल न गलेगी, तो सबको धिक्कारकर बोला—अब मेहरियों का राज है, मेहरियां जो कुछ न करें वह थोड़ा।

यह कहता हुआ वह गंडासा लिए घर चला गया।

गूदड़ लपके हुए गंगा की ओर चले और एक गोली के टप्पे से पुकारकर बोले—यहां क्यों खड़े हो भैया, चलो घर, सब झगड़ा तय हो गया।

अमर विचार-मग्न था। आवाज उसके कानों तक न पहुंची।

चौधरी ने और समीप जाकर कहा—यहां कब तक खड़े रहोगे भैया?

"नहीं दादा, मुझे यहीं रहने दो। तुम लोग वहां काट-कूट करोगे, मुझसे देखा न जाएगा। जब तुम फुर्सत पा जाओगे, तो मैं आ जाऊंगा।"

"बहू कहती थी, तुम हमारे घर खाने को भी नाहीं कहते हो?"

"हां दादा, आज तो न खाऊंगा, मुझे कै हो जाएगी।"

"लेकिन हमारे यहां तो आए दिन यही धंधा लगा रहता है।"

"दो-चार दिन के बाद मेरी भी आदत पड़ जाएगी।"

"तुम हमें मन में राक्षस समझ रहे होगे?"

अमर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—नहीं दादा, मैं तो तुम लोगों से कुछ सीखने, तुम्हारी कुछ सेवा करके अपना उद्धार करने आया हूं। यह तो अपनी-अपनी प्रथा है। चीन एक बहुत बड़ा देश है। वहां बहुत से आदमी बुद्ध भगवान् को मानते हैं। उनके धर्म में किसी जानवर को मारना पाप है। इसलिए वह लोग मरे हुए जानवर ही खाते हैं। कुत्ते, बिल्ली, गीदड़ किसी को भी नहीं छोड़ते। तो क्या वह हमसे नीच हैं? कभी नहीं। हमारे ही देश में कितने ही ब्राह्मण क्षत्री मांस खाते हैं? वह जीभ के स्वाद के लिए जीव-हत्या करते हैं। तुम उनसे तो कहीं अच्छे हो।

गूदड़ ने हंसकर कहा—भैया, तुम बड़े बुद्धिमान हो, तुमसे कोई न जीतेगा। चलो, अब कोई मुरदा नहीं खाएगा। हम लोगों ने तय कर लिया। हमने क्या तय किया, बहू ने तय किया। मगर खाल तो न फेंकनी होगी?

अमर ने प्रसन्न होकर कहा—नहीं दादा, खाल क्यों फेंकोगे? जूते बनाना तो सबसे बड़ी सेवा है। मगर क्या भाभी बहुत बिगड़ी थीं?

गूदड़ बोला—बिगड़ी ही नहीं थी भैया, वह तो जान देने को तैयार थी। गाय के पास बैठ गई और बोली—अब चलाओ गंडासा, पहला गंडासा मेरी गर्दन पर होगा। फिर किसकी हिम्मत थी कि गंडासा चलाता।

अमर का हृदय जैसे एक छलांग मारकर मुन्नी के चरणों पर लोटने लगा।

## सात

कई महीने गुजर गए। गांव में फिर मुरदा मांस न आया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि दूसरे गांव के चमारों ने भी मुरदा मांस खाना छोड़ दिया। शुभ उद्योग कुछ संक्रामक होता है।

अमर की शाला अब नई इमारत में आ गई थी। शिक्षा का लोगों को कुछ ऐसा चस्का पड़ गया था कि जवान तो जवान, बूढ़े भी आ बैठते और कुछ न कुछ सीख जाते। अमर की शिक्षा-शैली आलोचनात्मक थी। अन्य देशों की सामाजिक और राजनैतिक प्रगति, नए-

नए आविष्कार, नए-नए विचार, उसके मुख्य विषय थे। देख-देशांतरों के रस्मो-रिवाज, आचार-विचार की कथा सभी चाव से सुनते थे। उसे यह देखकर कभी-कभी विस्मय होता था कि ये निरक्षर लोग जटिल सामाजिक सिद्धांतों को कितनी आसानी से समझ जाते हैं। सारे गांव में एक नया जीवन प्रवाहित होता हुआ जान पड़ता। छूत-छात का जैसे लोप हो गया था। दूसरे गांवों की ऊंची जातियों के लोग भी अक्सर आ जाते थे।

दिन-भर के परिश्रम के बाद अमर लेटा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था कि मुन्नी आकर खड़ी हो गई। अमर पढ़ने में इतना लिप्त था कि मुन्नी के आने की उसको खबर न हुई। राजस्थान की वीर नारियों के बलिदान की कथा थी, उस उज्ज्वल बलिदान की जिसकी संसार के इतिहास में कहीं मिसाल नहीं है, जिसे पढ़कर आज भी हमारी गर्दन गर्व से उठ जाती है। जीवन को किसने इतना तुच्छ समझा होगा ! कुल-मर्यादा की रक्षा का ऐसा अलौकिक आदर्श और कहां मिलेगा? आज का बुद्धिवाद उन वीर माताओं पर चाहे जितना कीचड़ फेंक ले, हमारी श्रद्धा उनके चरणों पर सदैव सिर झुकाती रहेगी।

मुन्नी चुपचाप खड़ी अमर के मुख की ओर ताकती रही। मेघ का वह अल्पांश जो आज एक साल हुए उसके हृदय-आकाश में पंक्षी की भांति उड़ता हुआ आ गया था, धीरे-धीरे संपूर्ण आकाश पर छा गया था। अतीत की ज्वाला में झुलसी हुई कामनाएं इस शीतल छाया में फिर हरी होती जाती थीं। वह शुष्क जीवन उद्यान की भांति सौरभ और विकास से लहराने लगा है। औरों के लिए तो उसकी देवरानियां भोजन पकातीं, अमर के लिए वह खुद पकाती। बेचारे दो तो रोटियां खाते हैं, और यह गंवारिनें मोटे-मोटे लिट्ट बनाकर रख देती हैं। अमर उससे कोई काम करने को कहता, तो उसके मुख पर आनंद की ज्योति-सी झलक उठती। वह एक नए स्वर्ग की कल्पना करने लगती—एक नए आनंद का स्वप्न देखने लगती।

एक दिन सलोनी ने उससे मुस्कराकर कहा—अमर भैया तेरे ही भाग से यहां आ गए, मुन्नी ! अब तेरे दिन फिरेंगे।

मुन्नी ने हर्ष को जैसे मुट्ठी मे दबाकर कहा—क्या कहती हो काको, कहां मैं, कहां वह। मुझसे कई साल छोटे होंगे। फिर ऐसे विद्वान्, ऐसे चतुर ! मैं तो उनकी जूतियों के बराबर भी नहीं।

काकी ने कहा था—यह सब ठीक है मुन्नी, पर तेरा जादू उन पर चल गया है, यह मैं देख रही हूं। संकोची आदमी मालूम होते हैं, इससे तुझसे कुछ कहते नहीं, पर तू उनके मन में समा गई है, विश्वास मान। क्या तुझे इतना भी नहीं सूझता? तुझे उनकी शर्म दूर करनी पड़ेगी।

मुन्नी ने पुलकित होकर कहा था-तुम्हारी असीस है काकी तो मेरा मनोरथ भी पूरा हो जाएगा।

मुन्नी एक क्षण अमर को देखती रही, तब झोंपड़े में जाकर उसकी खाट निकाल लाई। अमर का ध्यान टूटा। बोला—रहने दो, मैं अभी बिछाए लेता हूं। तुम मेरा इतना दुलार करोगी मुन्नी, तो मैं आलसी हो जाऊंगा। आओ, तुम्हें हिन्दू-देवियों की कथा सुनाऊं।

"कोई कहानी है क्या?"

"नहीं, कहानी नहीं, सच्ची बात है।"

अमर ने मुसलमानों के हमले, क्षत्राणियों के जुहार और राजपूत वीरों के शौर्य की चर्चा करते हुए कहा—उन देवियों को आग में जल मरना मंजूर था; पर यह मंजूर न था कि परपुरुष की निगाह भी उन पर पड़े। अपनी आन पर मर मिटती थीं। हमारी देवियों का यह आदर्श था। आज यूरोप का क्या आदर्श है? जर्मन सिपाही फ्रांस पर चढ़ आए और पुरुषों से गांव खाली हो गए, तो फ्रांस की नारियां जर्मन सैनिकों ही से प्रेम क्रीड़ा करने लगीं।

मुन्नी नाक सिकोड़कर बोली—बड़ी चंचल हैं सब; लेकिन उन स्त्रियों से जीते जी कैसे जला जाता था?

अमर ने पुस्तक बंद कर दी—बड़ा कठिन है, मुन्नी ! यहां तो जरा-सी चिंगारी लग जाती है, तो बिलबिला उठते हैं। तभी तो आज सारा संसार उनके नाम के आगे सिर झुकाता है। मैं तो जब यह कथा पढ़ता हूं तो रोएं खड़े हो जाते हैं। यही जी चाहता है कि जिस पवित्र-भूमि पर उन देवियों की चिताएं बनीं, उसकी राख सिर पर चढ़ाऊं, आंखों में लगाऊं और वहीं मर जाऊं।

मुन्नी किसी विचार में डूबी भूमि की ओर ताक रही थी।

अमर ने फिर कहा—कभी-कभी तो ऐसा हो जाता था कि पुरुषों को घर के माया-मोह से मुक्त करने के लिए स्त्रियां लड़ाई के पहले ही जुहार कर लेती थीं। आदमी की जान इतनी प्यारी होती है कि बूढ़े भी मरना नहीं चाहते। हम नाना कष्ट झेलकर भी जीते हैं, बड़े-बड़े ऋषि-महात्मा भी जीवन का मोह नहीं छोड़ सकते; पर उन देवियों के लिए जीवन खेल था।

मुन्नी अब भी मौन खड़ी थी। उसके मुख का रंग उड़ा हुआ था, मानो कोई दुस्सह अंतर्वेदना हो रही है।

अमर ने घबराकर पूछा—कैसा जी है, मुन्नी? चेहरा क्यों उतरा हुआ है?

मुन्नी ने क्षीण मुस्कान के साथ कहा—मुझसे पूछते हो? क्या हुआ है?

"कुछ बात तो है ! मुझसे छिपाती हो?"

"नहीं जी, कोई बात नहीं।"

एक मिनट के बाद उसने फिर कहा—तुमसे आज अपनी कथा कहूं, सुनोगे?

"बड़े हर्ष से ! मैं तो तुमसे कई बार कह चुका। तुमने सुनाई ही नहीं।"

"मैं तुमसे डरती हूं। तुम मुझे नीच और क्या-क्या समझने लगोगे।"

अमर ने मानो क्षुब्ध होकर कहा—अच्छी बात है, मत कहो। मैं तो जो कुछ हूं वही रहूंगा, तुम्हारे बनाने से तो नहीं बन सकता।

मुन्नी ने हारकर कहा—तुम तो लाला, जरा-सी बात पर चिढ़ जाते हो, जभी स्त्री से तुम्हारी नहीं पटती। अच्छा लो, सुनो। जो जी में आए समझना—मैं जब काशी से चली, तो थोड़ी देर तक तो मुझे होश ही न रहा—कहां जाती हूं, क्यों जाती हूं, कहां से आती हूं? फिर मैं रोने लगी। अपने प्यारों का मोह सागर की भांति मन में उमड़ पड़ा। और मैं उसमें डूबने-उतराने लगी। अब मालूम हुआ, क्या कुछ खोकर चली जा रही हूं। ऐसा जान पड़ता था कि मेरा बालक मेरी गोद में आने के लिए हुमक रहा है। ऐसा मोह मेरे मन में कभी न जागा था। मैं उसकी याद करने लगी। उसका हंसना और रोना उसकी तोतली बातें, उसका लटपटाते

हुए चलना। उसे चुप कराने के लिए चंदा मामू को दिखाना, सुलाने के लिए लोरियां सुनाना, एक-एक बात याद आने लगी। मेरा वह छोटा-सा संसार कितना सुखमय था ! उस रत्न को गोद में लेकर मैं कितनी निहाल हो जाती थी, मानो संसार की संपत्ति मेरे पैरों के नीचे है। उस सुख के बदले में स्वर्ग का सुख भी न लेती। जैसे मन की सारी अभिलाषाएं उसी बालक में आकर जमा हो गई हों। अपना टूटा-फूटा झोंपड़ा, अपने मैले-कुचैले कपड़े, अपना नंगा-बूचापन, कर्ज-दाम की चिंता, अपनी दरिद्रता, अपना दुर्भाग्य, ये सभी पैने कांटे जैसे फूल बन गए। अगर कोई कामना थी, तो यह कि मेरे लाल को कुछ न होने पाए। और आज उसी को छोड़कर मैं न जाने कहां चली जा रही थी? मेरा चित्त चंचल हो गया। मन की सारी स्मृतियां सामने दौड़ने वाले वृक्षों की तरह, जैसे मेरे साथ दौड़ी चली आ रही थीं, और उन्हीं के साथ मेरा बालक भी जैसे मुझे दौड़ता चला आता था। आखिर मैं आगे न जा सकी। दुनिया हंसती है, हंसे। बिरादरी निकालती है, निकाल दे, मैं अपने लाल को छोड़कर न जाऊंगी। मेहनत-मजदूरी करके भी तो अपना निबाह कर सकती हूं। अपने लाल को आंखों से देखती तो रहूंगी। उसे मेरी गोद से कौन छीन सकता है ! मैं उसके लिए मरी हूं, मैंने उसे अपने रक्त से सिरजा है। वह मेरा है। उस पर किसी का अधिकार नहीं।

ज्योंही लखनऊ आया, मैं गाड़ी से उतर पड़ी। मैंने निश्चय कर लिया, लौटती गाड़ी से काशी चली जाऊंगी। जो कुछ होना होगा, होगा।

मैं कितनी देर प्लेटफार्म पर खड़ी रही, मालूम नहीं। बिजली की बत्तियों से सारा स्टेशन जगमगा रहा था। मैं बार-बार कुलियों से पूछती थी काशी की गाड़ी कब आएगी? कोई दस बजे मालूम हुआ, गाड़ी आ रही है। मैंने अपना सामान संभाला। दिल धड़कने लगा। गाड़ी आ गई। मुसाफिर चढ़ने-उतरने लगे। कुली ने आकर कहा—असबाब जनाने डिब्बे में रखें कि मर्दाने में?

मेरे मुंह से आवाज न निकली।

कुली ने मेरे मुंह की ओर ताकते हुए फिर पूछा—जनाने डिब्बे में रख दूं असबाब?

मैंने कातर होकर कहा—मैं इस गाड़ी से न जाऊंगी।

"अब दूसरी गाड़ी दस बजे दिन को मिलेगी।"

"मैं उसी गाड़ी से जाऊंगी।"

"तो असबाब बाहर ले चलूं या मुसाफिरखाने में?"

"मुसाफिरखाने में।"

अमर ने पूछा—तुम उस गाड़ी से चली क्यों न गई?

मुन्नी कांपते हुए स्वर में बोली—न जाने कैसा मन होने लगा? जैसे कोई मेरे हाथ-पांव बांधे लेता हो। जैसे मैं गऊ-हत्या करने जा रही हूं। इन कोढ़ भरे हाथों से मैं अपने लाल को कैसे उठाऊंगी। मुझे अपने पति पर क्रोध आ रहा था। वह मेरे साथ आया क्यों नहीं? अगर उसे मेरी परवाह होती, तो मुझे अकेली आने देता? इस गाड़ी से वह भी आ सकता था। जब उसकी इच्छा नहीं है, तो मैं भी न जाऊंगी। और न जाने कौन-कौन-सी बातें मन में आकर मुझे जैसे बलपूर्वक रोकने लगीं। मैं मुसाफिरखाने में मन मारे बैठी थी कि एक मर्द अपनी

औरत के साथ आकर मेरे ही समीप दरी बिछाकर बैठ गया। औरत की गोद में लगभग एक साल का बालक था। ऐसा सुंदर बालक! ऐसा गुलाबी रंग, ऐसी कटोरे-सी आंखें, ऐसी मक्खन-सी देह! मैं तन्मय होकर देखने लगी और अपने-पराए की सुधि भूल गई। ऐसा मालूम हुआ यह मेरा बालक है। बालक मां की गोद से उतरकर धीरे-धीरे रेंगता हुआ मेरी ओर आया। मैं पीछे हट गई। बालक फिर मेरी तरफ चला। मैं दूसरी ओर चली गई। बालक ने समझा, मैं उसका अनादर कर रही हूं। रोने लगा। फिर भी मैं उसके पास न आई। उसकी माता ने मेरी ओर रोष-भरी आंखों से देखकर बालक को दौड़कर उठा लिया; पर बालक मचलने लगा और बार-बार मेरी ओर हाथ बढ़ाने लगा। पर मैं दूर खड़ी रही। ऐसा जान पड़ता था, मेरे हाथ कट गए हैं। जैसे मेरे हाथ लगाते ही वह सोने-सा बालक कुछ और हो जाएगा, उसमें से कुछ निकल जाएगा।

स्त्री ने कहा—लड़के को जरा उठा लो देवी, तुम तो ऐसे भाग रही हो जैसे वह अछूत है। जो दुलार करते हैं, उनके पास तो अभागा जाता नहीं, जो मुंह फेर लेते हैं, उनकी ओर दौड़ता है।

बाबूजी, मैं तुमसे नहीं कह सकती कि इन शब्दों ने मेरे मन को कितनी चोट पहुंचाई। कैसे समझा दूं कि मैं कलंकिनी हूं, पापिष्ठा हूं, मेरे छूने से अनिष्ट होगा, अमंगल होगा। और यह जानने पर क्या वह मुझसे फिर अपना बालक उठा लेने को कहेगी!

मैंने समीप आकर बालक की ओर स्नेह-भरी आंखों से देखा और डरते-डरते उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। सहसा बालक चिल्लाकर मां की तरफ भागा, मानो उसने कोई भयानक रूप देख लिया हो। अब सोचती हूं, तो समझ में आता है—बालकों का यही स्वभाव है, पर उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ कि सचमुच मेरा रूप पिशाचिनी का-सा होगा। मैं लज्जित हो गई।

माता ने बालक से कहा—अब जाता क्यों नहीं रे, बुला तो रही हैं। कहां जाओगी बहन? मैंने हरिद्वार बता दिया। वह स्त्री-पुरुष भी हरिद्वार ही जा रहे थे। गाड़ी छूट जाने के कारण ठहर गए थे। घर दूर था। लौटकर न जा सकते थे। मैं बड़ी खुश हुई कि हरिद्वार तक साथ तो रहेगा, लेकिन फिर वह बालक मेरी ओर न आया।

थोड़ी देर में स्त्री-पुरुष तो सो गए! पर मैं बैठी ही रही। मां से चिमटा हुआ बालक भी सो रहा था। मेरे मन में बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि बालक को उठाकर प्यार करूं, पर दिल कांप रहा था कि कहीं बालक रोने लगे, या माता जाग जाए, तो दिल में क्या समझे? मैं बालक का फूल-सा मुखड़ा देख रही थी। वह शायद कोई स्वप्न देखकर मुस्करा रहा था। मेरा दिल काबू से बाहर हो गया। मैंने सोते हुए बालक को उठाकर छाती से लगा लिया। पर दूसरे ही क्षण मैं सचेत हो गई और बालक को लिटा दिया। उस क्षणिक प्यार में कितना आनंद था! जान पड़ता था, मेरा ही बालक यह रूप धरकर मेरे पास आ गया है।

देवीजी का हृदय बड़ा कठोर था। बात-बात पर उस नन्हें-से बालक को झिड़क देतीं, कभी-कभी मार बैठती थीं। मुझे उस वक्त ऐसा क्रोध आता था कि उसे खूब डांटूं। अपने बालक पर माता इतना क्रोध कर सकती है, यह मैंने आज ही देखा।

जब दूसरे दिन हम लोग हरिद्वार की गाड़ी में बैठे, तो बालक मेरा हो चुका था। मैं

तुमसे क्या कहूं बाबूजी, मेरे स्तनों में दूध भी उतर आया और माता को मैंने इस भार से भी मुक्त कर दिया।

हरिद्वार में हम लोग एक धर्मशाले में ठहरे। मैं बालक के मोह-पाश में बंधी हुई उस दंपत्ति के पीछे-पीछे फिरा करती। मैं अब उसकी लौंडी थी। बच्चे का मल-मूत्र धोना मेरा काम था, उसे दूध पिलाती, खिलाती। माता का जैसे गला छूट गया, लेकिन मैं इस सेवा में मगन थी। देवीजी जितनी अलसिन और घमंडिन थीं, लालाजी उतने ही शीलवान् और दयालु थे। वह मेरी तरफ कभी आंख उठाकर भी न देखते। अगर मैं कमरे में अकेली होती, तो कभी अंदर न जाते। कुछ-कुछ तुम्हारे ही जैसा स्वभाव था। मुझे उन पर दया आती थी। उस कर्कशा के साथ उनका जीवन इस तरह कट रहा था, मानो बिल्ली के पंजे में चूहा हो। वह उन्हें बात-बात पर झिड़कती। बेचारे खिसियाकर रह जाते।

पंद्रह दिन बीत गए थे। देवजी ने घर लौटने के लिए कहा। बाबूजी अभी वहां कुछ दिन और रहना चाहते थे। इस बात पर तकरार हो गई। मैं बरामदे में बालक को लिए खड़ी थी। देवीजी ने गरम होकर कहा--तुम्हें रहना हो तो रहो, मैं तो आज जाऊंगी। तुम्हारी आंखों रास्ता नहीं देखा है।

पति ने डरते-डरते कहा--यहां दस-पांच दिन रहने में हरज ही क्या है? मुझे तो तुम्हारे स्वास्थ्य में अभी कोई तबदीली नहीं दिखती।

''आप मेरे स्वास्थ्य की चिंता छोड़िए। मैं इतनी जल्द नहीं मरी जा रही हूं। सच कहते हो, तुम मेरे स्वास्थ्य के लिए यहां ठहरना चाहते हो?''

''और किसलिए आया था।''

''आए चाहे जिस काम के लिए हो, पर तुम मेरे स्वास्थ्य के लिए नहीं ठहर रहे हो। यह पट्टियां उन स्त्रियों को पढ़ाओ, जो तुम्हारे हथकंडे न जानती हों। मैं तुम्हारी नस-नस पहचानती हूं। तुम ठहरना चाहते हो विहार के लिए, क्रीड़ा के लिए ''

बाबूजी ने हाथ जोड़कर कहा--अच्छा, अब रहने दो बिन्नी, कलंकित न करो। मैं आज ही चला जाऊंगा।

देवीजी इतनी सस्ती विजय पाकर प्रसन्न न हुई। अभी उनके मन का गुबार तो निकलने ही नहीं पाया था। बोली--हां, चले क्यों न चलोगे, यही तो तुम चाहते थे। यहां पैसे खर्च होते हैं न! ले जाकर उसी काल-कोठरी में डाल दो। कोई मरे या जिए, तुम्हारी बला से। एक मर जाएगी, तो दूसरी फिर आ जाएगी, बल्कि और नई-नवेली। तुम्हारी चांदी ही चांदी है। सोचा था, यहां कुछ दिन रहूंगी, पर तुम्हारे मारे कहीं रहने पाऊं। भगवान् भी नहीं उठा लेते कि गला छूट जाए।

अमर ने पूछा--उन बाबूजी ने सचमुच कोई शरारत की थी, या मिथ्या आरोप था?

मुन्नी ने मुंह फेरकर मुस्कराते हुए कहा--लला, तुम्हारी समझ बड़ी मोटी है। वह डायन मुझ पर आरोप कर रही थी। बेचारे बाबूजी दबे जाते थे कि कहीं वह चुड़ैल बात खोलकर न कह दे, हाथ जोड़ते थे, मिन्नतें करते थे, पर वह किसी तरह रास न होती थी।

आंखें मटकाकर बोली--भगवान् ने मुझे भी आंखें दी हैं, अंधी नहीं हूं। मैं तो कमरे में

पड़ी-पड़ी कराहूं और तुम बाहर गुलछर्रे उड़ाओ ! दिल बहलाने को कोई शगल चाहिए।

धीरे-धीरे मुझ पर रहस्य खुलने लगा। मन में ऐसी ज्वाला उठी कि अभी इसका मुंह नोच लूं। मैं तुमसे कोई परदा नहीं रखती लाला, मैंने बाबूजी की ओर कभी आंख उठाकर देखा भी न था; पर यह चुड़ैल मुझे कलंक लगा रही थी। बाबूजी का लिहाज न होता, तो मैं उस चुड़ैल का मिजाज ठीक कर देती, जहां सुई न चुभे, वहां फाल चुभाए देती।

आखिर बाबूजी को भी क्रोध आया !

''तुम बिल्कुल झूठ बोलती हो। सरासर झूठ।''

''मैं सरासर झूठ बोलती हूं?''

''हां, सरासर झूठ बोलती हो।''

''खा जाओ अपने बेटे की कसम।''

मुझे चुपचाप वहां से टल जाना चाहिए था; लेकिन अपने इस मन को क्या करूं, जिसमे अन्याय नहीं देखा जाता। मेरा चेहरा मारे क्रोध के तमतमा उठा। मैंने उसके सामने जाकर कहा—बहूजी, बस अब जबान बंद करो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैं तरह देती जाती हूं और तुम सिर चढ़ती जाती हो। मैं तुम्हें शरीफ समझकर तुम्हारे साथ ठहर गई थी। अगर जानती कि तुम्हारा स्वभाव इतना नीच है, तो तुम्हारी परछाईं से भागती। मैं हरजाई नहीं हूं, न अनाथ हूं ,भगवान् की दया से मेरे भी पति हैं, पुत्र है। किस्मत का खेल है कि यहां अकेली पड़ी हूं। मैं तुम्हारे पति को पैर धोने के जोग भी नहीं समझती। मैं उसे बुलाए देती हूं, तुम भी देख लो, बस आज और कल रह जाओ।

अभी मेरे मुंह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि मेरे स्वामी मेरे लाल को गोद में लिए आकर आंगन में खड़े हो गए और मुझे देखते ही लपककर मेरी तरफ चले। मैं उन्हे देखते ही ऐसी घबरा गई, मानो कोई सिंह आ गया हो, तुरंत अपनी कोठरी में जाकर भीतर से द्वार बंद कर लिए। छाती धड़-धड़ कर रही थी; पर किवाड़ की दरार में आंख लगाए देख रही थी। स्वामी का चेहरा संवलाया हुआ था, बालों पर धूल जमी हुई थी, पीठ पर कंबल और लुटिया-डोर रखे हाथ में लंबा लट्ठ लिए भौचक्के से खड़े थे।

बाबूजी ने बाहर आकर स्वामी से पूछा—अच्छा, आप ही इनके पति हैं। आप खूब आए। अभी तो वह आप ही की चर्चा कर रही थीं। आइए, कपड़े उतारिए। मगर बहन भीतर क्यों भाग गईं। यहां परदेश में कौन परदा?

मेरे स्वामी को तो तुमने देखा ही है। उनके सामने बाबूजी बिल्कुल ऐसे लगते थे, जैसे सांड के सामने नाटा बैल।

स्वामी ने बाबूजी को जवाब न दिया, मेरे द्वार पर आकर बोले—मुन्नी, यह क्या अंधेर करती हो? मैं तीन दिन से तुम्हें खोज रहा हूं। आज मिली भी, तो भीतर जा बैठी ! ईश्वर के लिए किवाड़ खोल दो और मेरी दु:ख कथा सुन लो, फिर तुम्हारी जो इच्छा हो करना।

मेरी आंखों से आंसू बह रहे थे। जी चाहता था, किवाड़ खोलकर बच्चे को गोद में ले लूं।

पर न जाने मन के किसी कोने में कोई बैठा हुआ कह रहा था—खबरदार, जो बच्चे को गोद में लिया ! जैसे कोई प्यास से तड़पता हुआ आदमी पानी का बरतन देखकर टूटे; पर

कोई उससे कह दे, पानी जूठा है। एक मन कहता था, स्वामी का अनादर मत कर, ईश्वर ने जो पत्नी और माता का नाता जोड़ दिया है, वह क्या किसी के तोड़े टू- सकता है; दूसरा मन कहता था, तू अब अपने पति को पति और पुत्र को पुत्र नहीं कह सकती। क्षणिक मोह के आवेश में पड़कर तू क्या उन दोनों को कलंकित कर देगी।

मैं किवाड़ छोड़कर खड़ी हो गई।

बच्चे ने किवाड़ को अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों से पीछे ढकेलने के लिए जोर लगाकर कहा—तेयाल थोलो।

यह तोतले बोल कितने मीठे थे। जैसे सन्नाटे में किसी शंका से भयभीत होकर हम गाने लगते हैं, अपने शब्दों से दुकेले होने की कल्पना कर लेते हैं। मैं भी इस समय अपने उमड़ते हुए प्यार को रोकने के लिए बोल उठी—तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो? क्यों नहीं समझ लेते कि मैं मर गई? तुम ठाकुर होकर भी इतने दिल के कच्चे हो? एक तुच्छ नारी के लिए अपना कुल-मरजाद डुबाए देते हो। जाकर अपना ब्याह कर लो और बच्चे को पालो। इस जीवन में मेरा तुमसे कोई नाता नहीं है। हां, भगवान् से यही मांगती हूं कि दूसरे जन्म में तुम फिर मुझे मिलो। क्यों मेरी टेक तोड़ रहे हो, मेरे मन को क्यों मोह में डाल रहे हो? पतिता के साथ तुम सुख से न रहोगी। मुझ पर दया करो, आज ही चले जाओ, नहीं मैं सच कहती हूं, जहर खा लूंगी।

स्वामी ने करुण आग्रह से कहा—मैं तुम्हारे लिए अपनी कुल-मर्यादा, भाई-बंद सब कुछ छोड़ दूंगा। मुझे किसी की परवाह नहीं। घर में आग लग जाए, मुझे चिंता नहीं। मैं या तो तुम्हें लेकर जाऊंगा, या यहीं गंगा में डूब मरूंगा। अगर मेरे मन में तुमसे रत्ती भर मैल हो, तो भगवान् मुझे सौ बार नरक दें। अगर तुम्हें नहीं चलना है तो तुम्हारा बालक तुम्हें सौंपकर मैं जाता हूं। इसे मारो या जिलाओ, मैं फिर तुम्हारे पास न आऊंगा। अगर कभी सुधि आए, तो चुल्लू भर पानी दे देना।

लाला, सोचो, मैं कितने बड़े संकट में पड़ी हुई थी। स्वामी बात के धनी हैं, यह मैं जानती थी। प्राण को वह कितना तुच्छ समझते हैं, यह भी मुझसे छिपा न था। फिर भी मैं अपना हृदय कठोर किए रही। जरा भी नर्म पड़ी और सर्वनाश हुआ। मैंने पत्थर का कलेजा बनाकर कहा—अगर तुम बालक को मेरे पास छोड़कर गए, तो उसकी हत्या तुम्हारे ऊपर होगी, क्योंकि मैं उसकी दुर्गति देखने के लिए जीना नहीं चाहती। उसके पालने का भार तुम्हारे ऊपर है, तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मेरे लिए जीवन में अगर कोई सुख था, तो यही कि मेरा पुत्र और स्वामी कुशल से हैं। तुम मुझसे यह सुख छीन लेना चाहते हो, छीन लो, मगर याद रखो वह मेरे जीवन का आधार है।

मैंने देखा स्वामी ने बच्चे को उठा लिया, जिसे एक क्षण पहले गोद से उतार दिया था और उलटे पांव लौट पड़े। उनकी आंखों से आंसू जारी थे और होंठ कांप रहे थे।

देवीजी ने भलमनसी से काम लेकर स्वामी को बैठाना चाहा, पूछने लगीं—क्या बात है, क्यों रूठी हुई हैं; पर स्वामी ने कोई जवाब न दिया। बाबू साहब फाटक तक उन्हें पहुंचाने गए। कह नहीं सकती, दोनों जनों में क्या बातें हुईं; पर अनुमान करती हूं कि बाबूजी ने मेरी प्रशंसा की होगी। मेरा दिल अब भी कांप रहा था कि कहीं स्वामी सचमुच आत्मघात न कर

लें। देवियों और देवताओं की मनौतियां कर रही थी कि मेरे प्यारों की रक्षा करना।

ज्योंही बाबूजी लौटे, मैंने धीरे से किवाड़ खोलकर पूछा–किधर गए? कुछ और कहते थे?

बाबूजी ने तिरस्कार-भरी आंखों से देखकर कहा–कहते क्या, मुंह से आवाज भी तो निकले। हिचकी बंधी हुई थी। अब भी कुशल है, जाकर रोक लो। वह गंगाजी की ओर ही गए हैं। तुम इतनी दयावान होकर भी इतनी कठोर हो, यह आज ही मालूम हुआ। गरीब, बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था।

मैं संकट की उस दशा को पहुंच चुकी थी, जब आदमी परायों को अपना समझने लगता है। डांटकर बोली–तब भी तुम दौड़े यहां चले आए। उनके साथ कुछ देर रह जाते, तो छोटे न हो जाते, और न यहां देवीजी को कोई उठा ले जाता। इस समय वह आपे में नहीं हैं, फिर भी तुम उन्हें छोड़कर भागे चले आए।

देवीजी बोलीं–यहां न दौड़े आते, तो क्या जाने मैं कहीं निकल भागती? लो, आकर घर में बैठो। मैं जाती हूं। पकड़कर घसीट न लाऊं, तो अपने बाप की नहीं!

धर्मशाला में बीसों ही यात्री टिके हुए थे। सब अपने-अपने द्वार पर खड़े यह तमाशा देख रहे थे। देवीजी ज्योंही निकलीं, चार-पांच आदमी उनके साथ हो लिए। आध घंटे में सभी लौट आए। मालूम हुआ कि वह स्टेशन की तरफ चले गए।

पर मैं जब तक उन्हें गाड़ी पर सवार होते न देख लूं चैन कहां? गाड़ी प्रातःकाल जाएगी। रात-भर वह स्टेशन पर रहेंगे। ज्योंही अंधेरा हो गया, मैं स्टेशन जा पहुंची। वह एक वृक्ष के नीचे कंबल बिछाए बैठे हुए थे। मेरा बच्चा लोटे को गाड़ी बनाकर डोर से खींच रहा था। बार-बार गिरता था और उठकर खींचने लगता था। मैं एक वृक्ष की आड़ में बैठकर यह तमाशा देखने लगी। तरह-तरह की बातें मन में आने लगीं। बिरादरी का ही तो डर है। मैं अपने पति के साथ किसी दूसरी जगह रहने लगूं, तो बिरादरी क्या कर लेगी; लेकिन क्या अब मैं वह हो सकती हूं, जो पहले थी?

एक क्षण के बाद फिर वही कल्पना। स्वामी ने साफ कहा है, उनका दिल साफ है। बातें बनाने की उनकी आदत नहीं। तो वह कोई बात कहेंगे ही क्यों, जो मुझे लगे। गड़े मुरदे उखाड़ने की उनकी आदत नहीं। वह मुझसे कितना प्रेम करते थे। अब भी उनका हृदय वही है। मैं व्यर्थ के संकोच में पड़कर उनका और अपना जीवन चौपट कर रही हूं! लेकिन लेकिन मैं अब क्या वह हो सकती हूं, जो पहले थी? नहीं, अब मैं वह नहीं हो सकती।

पतिदेव अब मेरा पहले से अधिक आदर करेंगे। मैं जानती हूं। मैं घी का घड़ा भी लुढ़का दूंगी, तो कुछ न कहेंगे। वह उतना ही प्रेम करेंगे; लेकिन वह बात कहां, जो पहले थी। अब तो मेरी दशा उस रोगिणी की-सी होगी, जिसे कोई भोजन रुचिकर नहीं होता।

तो फिर मैं जिंदा ही क्यों रहूं? जब जीवन में कोई सुख नहीं, कोई अभिलाषा नहीं, तो वह व्यर्थ है। कुछ दिन और रो लिया, तो इससे क्या? कौन जानता है, क्या-क्या कलंक सहने पड़ें; क्या-क्या दुर्दशा हो? मर जाना कहीं अच्छा।

यह निश्चय करके मैं उठी। सामने ही पतिदेव सो रहे थे। बालक भी पड़ा सोता था। ओह! कितना प्रबल बंधन था! जैसे सूम का धन हो। वह उसे खाता नहीं, देता नहीं, इसके

सिवा उसे और क्या संतोष है कि उसके पास धन है। इस बात से ही उसके मन में कितना बल आ जाता है ! मैं उसी मोह को तोड़ने जा रही थी।

मैं डरते-डरते, जैसे प्राणों को आंखों में लिए, पतिदेव के समीप गई, पर वहां एक क्षण भी खड़ी न रह सकी। जैसे लोहा खिंचकर चुंबक से जा चिपटता है, उसी तरह मैं उनके मुख की ओर खिंची जा रही थी। मैंने अपने मन का सारा बल लगाकर उसका मोह तोड़ दिया और उसी आवेश में दौड़ी हुई गंगा के तट पर आई। मोह अब भी मन मे चिपटा हुआ था। मैं गंगा में कूद पड़ी।

अमर ने कातर होकर कहा--अब नहीं सुना जाता, मुन्नी ! फिर कभी कहना।

मुन्नी मुस्कराकर बोली--वाह, अब रह क्या गया? मैं कितनी देर पानी में रही, कह नहीं सकती, जब होश आया, तो इसी घर में पडी हुई थी। मैं बहती चली जाती थी। प्रातःकाल चौधरी का बड़ा लड़का सुमेर गंगा नहाने गया और मुझे उठा लाया। तब मे मैं यहीं हूं। अछूतों की इस झोंपड़ी में मुझे जो सुख और शाति मिली उसका बखान क्या करूं। काशी और पयाग मुझे भाभी कहते हैं, पर सुमेर मुझे बहन कहता था। मे अभी अच्छी .रह उठने-बैठने न पाई थी कि वह परलोक सिधार गया।

अमर के मन में एक कांटा बराबर खटक रहा था। वह कुछ तो निकला, पर अभी कुछ बाकी था।

''सुमेर को तुमसे प्रेम तो हागा ही?''

मुन्नी के तेवर बदल गए--हा था, और थाडा नहीं, बहुत था, तो फिर उसमें मेरा क्या बस? जब मै स्वस्थ हो गई, तो एक दिन उसने मुझसे अपना प्रेम प्रकट किया। मैंने क्रोध को हसी में लपेटकर कहा--क्या तुम इस रूप मे मुझसे नेकी का बदला चाहते हो? अगर यह नीयत है, तो मुझे फिर ले जाकर गंगा में डुबा दो। अगर इस नीयत से तुमने मेरी प्राण-रक्षा की, तो तुमने मेरे साथ बडा अन्याय किया। तुम जानते हो, मैं कौन हू? राजपूतनी हूं। फिर कभी भूलकर भी मुझसे ऐसी बात न कहना, नहीं गगा यहां से दूर नही है। सुमेर ऐसा लज्जित हुआ कि फिर मुझसे बात तक नही की, पर मेरे शब्दो ने उसका दिल तोड़ दिया। एक दिन मेरी पसलियों में दर्द होने लगा। उसने समझा भूत का फेर है। ओझा को बुलाने गया। नदी चढ़ी हुई थी। डूब गया। मुझे उसकी मौत का जितना दुख हुआ उतना हीह अपने सगे भाई के मरने का हुआ था। नीचों में भी ऐसे देवता होते हैं, इसका मुझे यही आकर पता लगा। वह कुछ दिन और जी जाता, तो इस घर के भाग जाग जाते। सारे गाव का गुलाम था। कोई गाली दे, डाटे, कभी जवाब न देता।

अमर ने पूछा--तब से तुम्हें पति और बच्चे की खबर न मिली होगी?

मुन्नी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। रोते-रोते हिचकी बंध गई। फिर सिसक-सिसककर बोली--स्वामी प्रातःकाल फिर धर्मशाला में गए। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं रात को वहां नहीं गई, तो मुझे खोजने लगे। जिधर कोई मेरा पता बता देता उधर ही चले जाते। एक महीने तक वह सारे इलाके में मारे-मारे फिरे। इसी निराशा और चिंता में वह कुछ सनक गए। फिर हरिद्वार आए, अब की बालक उनके साथ न था। कोई पूछता तुम्हारा लड़का क्या हुआ, तो हसंने लगते। जब मैं अच्छी हो गई और चलने-फिरने लगी, तो एक दिन जी

में आया, हरिद्वार जाकर देखूं, मेरी चीजें कहां गईं। तीन महीने से ज्यादा हो गए थे। मिलने की आशा तो न थी; पर इसी बहाने स्वामी का कुछ पता लगाना चाहती थी। विचार था—एक चिट्ठी लिखकर छोड़ दूं। उस धर्मशाला के सामने पहुंची, तो देखा, बहुत से आदमी द्वार पर जमा हैं। मैं भी चली गई। एक आदमी की लाश थी। लोग कह रहे थे, वही पागल है, वही जो अपनी बीबी को खोजता फिरता था। मैं पहचान गई। वह मेरे स्वामी थे। यह सब बातें मुहल्ले वालों से मालूम हुईं। छाती पीटकर रह गई। जिस सर्वनाश से डरती थी, वह हो ही गया। जानती कि यह होने वाला है, तो पति के साथ ही न चली जाती। ईश्वर ने मुझे दोहरी सजा दी; लेकिन आदमी बड़ा बेहया है। अब मरते भी न बना। किसके लिए मरती? खाती-पीती भी हूं, हंसती-बोलती भी हूं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। बस, यही मेरी राम-कहानी है।

# तीसरा खंड

## एक

लाला समरकान्त की जिंदगी के सारे मंसूबे धूल में मिल गए। उन्होंने कल्पना की थी कि जीवन-संध्या में अपना सर्वस्व बेटे को सौंपकर और बेटी का विवाह करके किसी एकांत में बैठकर भगवत्-भजन में विश्राम लेंगे, लेकिन मन की मन में ही रह गई। यह तो मानी हुई बात थी कि वह अंतिम सांस तक विश्राम लेने वाले प्राणी न थे। लड़के को बढ़ता देखकर उनका हौसला और बढ़ता, लेकिन कहने को हो गया। बीच में अमर कुछ ढर्रे पर आता हुआ जान पड़ता था, लेकिन जब उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई, तो अब उससे में क्या आशा की जा सकती थी, अमर में और चाहे जितनी बुराइयां हों, उसके चरित्र के विषय में कोई संदेह न था, पर कुसंगति में पड़कर उसने धर्म भी खोया, चरित्र भी खोया और कुल-मर्यादा भी खोई। लालाजी कुत्सित संबंध को बहुत बुरा न समझते थे। रईसों में यह प्रथा प्राचीनकाल से चली आती है। वह रईस ही क्या, जो इस तरह का खेल न खेले, लेकिन धर्म को छोड़ने को तैयार हो जाना, खुले खजाने समाज की मर्यादाओं को तोड़ डालना, यह तो पागलपन है, बल्कि गधापन।

समरकान्त का व्यावहारिक जीवन उनके धार्मिक जीवन से बिल्कुल अलग था। व्यवहार और व्यापार में वह धोखा-धड़ी, छल-प्रपंच, सब कुछ क्षम्य समझते थे। व्यापार-नीति में सन या कपास में कचरा भर देना, घी में आलू या घुइयां मिला देना, औचित्य से बाहर न था, पर बिना स्नान किए वह मुंह में पानी न डालते थे। चालीस वर्षो में ऐसा शायद ही कोई दिन हुआ हो कि उन्होंने संध्या समय की आरती न ली हो और तुलसी-दल माथे पर न चढ़ाया हो। एकादशी को बराबर निर्जल व्रत रखते थे। सारांश यह कि उनका धर्म आडंबर मात्र था, जिसका उनके जीवन में कोई प्रयोजन न था।

सलीम के घर से लौटकर पहला काम जो लालाजी ने किया, वह सुखदा को फटकारना था। इसके बाद नैना की बारी आई। दोनों को रुलाकर वह अपने कमरे में गए और खुद रोने लगे।

रातों-रात यह खबर सारे शहर में फैल गई? तरह-तरह की मिस्कौट होने लगीं। समरकान्त दिन-भर घर से नहीं निकले। यहां तक कि आज गंगा-स्नान करने भी न गए। कई असामी रुपये लेकर आए। मुनीम तिजोरी की कुंजी मांगने गए। लालाजी ने ऐसा डांटा कि वह चुपके से बाहर निकल गया। असामी रुपये लेकर लौट गए।

खिदमतगार ने चांदी का गड़गड़ा लाकर सामने रख दिया। तंबाकू जल गया। लालाजी ने निगाली भी मुंह में न ली।

दस बजे सुखदा ने आकर कहा—आप क्या भोजन कीजिएगा?

लालाजी ने उसे कठोर आंखों से देखकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

सुखदा चली गई। दिन-भर किसी ने कुछ न खाया।

नौ बजे रात को नैना ने आकर कहा—दादा, आरती में न जाइएगा?

लालाजी चौंके—हां-हां, जाऊंगा क्यों नहीं? तुम लोगों ने कुछ खाया कि नहीं?

नैना बोली—किसी की इच्छा ही न थी। कौन खाता?

"तो क्या उसके पीछे सारा घर प्राण देगा?"

सुखदा इसी समय तैयार होकर आ गई। बोली—जब आप ही प्राण दे रहे हैं, तो दूसरों पर बिगड़ने का आपको क्या अधिकार है?

लालाजी चादर ओढ़कर जाते हुए बोले—मेरा क्या बिगड़ा है कि मैं प्राण दूं? यहां था, तो मुझे कौन-सा सुख देता था? मैंने तो बेटे का सुख ही नहीं जाना। तब भी जलाता था, अब भी जला रहा है। चलो, भोजन बनाओ, मैं आकर खाऊंगा। जो गया, उसे जाने दो। जो हैं उन्हीं को उस जाने वाले की कमी पूरी करनी है। मैं क्या प्राण देने लगा? मैंने पुत्र को जन्म दिया। उसका विवाह भी मैंने किया। सारी गृहस्थी मैंने बनाई। इसके चलाने का भार मुझ पर है। मुझे अब बहुत दिन जीना है। मगर मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि इस लौंडे को यह क्या सूझी? पठानिन की पोती अप्सरा नहीं हो सकती। फिर उसके पीछे यह क्यों इतना लट्टू हो गया? उसका तो ऐसा स्वभाव न था। इसी को भगवान् की लीला कहते हैं।

ठाकुरद्वारे में लोग जमा हो गए। लाला समरकान्त को देखते कई सज्जनों ने पूछा—अमर कहीं चले गए क्या सेठजी ! क्या बात हुई?

लालाजी ने जैसे इस वार को काटते हुए कहा—कुछ नहीं, उसकी बहुत दिनों से घूमने-घामने की इच्छा थी, पूर्वजन्म का तपस्वी है कोई, उसका बस चले, तो मेरी सारी गृहस्थी एक दिन में लुटा दे। मुझसे यह नहीं देखा जाता। बस, यही झगड़ा है। मैंने गरीबी का मजा भी चखा है; अमीरी का मजा भी चखा है। उसने अभी गरीबी का मजा नहीं चखा। साल-छः महीने उसका मजा चख लेगा, तो आंखें खुल जाएंगी। तब उसे मालूम होगा कि जनता की सेवा भी वही लोग कर सकते हैं, जिनके पास धन है। घर में भोजन का आधार न होता, तो मेंबरी भी न मिलती।

किसी को और कुछ पूछने का साहस न हुआ। मगर मूर्ख पूजारी पूछ ही बैठा—सुना, किसी जुलाहे की लड़की से फंस गए थे?

यह अक्खड़ प्रश्न सुनकर लोगों ने जीभ काटकर मुंह फेर लिए। लालाजी ने पुजारी को रक्त-भरी आंखों से देखा और ऊंचे स्वर में बोले—हां फंस गए थे, तो फिर? कृष्ण भगवान् ने एक हजार रानियों के साथ नहीं भोग किया था? राजा शान्तनु ने मछुए की कन्या से नहीं भोग किया था? कौन राजा है, जिसके महल में सौ दो-सौ रानियां न हों। अगर उसने किया तो कोई नई बात नहीं की। तुम जैसों के लिए यही जवाब है। समझदारों के लिए यह जवाब है कि जिसके घर में अप्सरा-सी स्त्री हो, वह क्यों जूठी पत्तल चाटने लगा? मोहन भोग खाने वाले आदमी चबैने पर नहीं गिरते।

यह कहते हुए लालाजी प्रतिमा के सम्मुख गए; पर आज उनके मन में वह श्रद्धा न थी। दुःखी आशा से ईश्वर में भक्ति रखता है, सुखी भय से। दुःखी पर जितना ही अधिक दुःख पड़े, उसकी भक्ति बढ़ती जाती है। सुखी पर दुःख पड़ता है, तो वह विद्रोह करने लगता

है। वह ईश्वर को भी अपने धन के आगे झुकाना चाहता है। लालाजी का व्यथित हृदय आज सोने और रेशम से जगमगती हुई प्रतिमा में धैर्य और संतोष का संदेश न पा सका। कल तक यही प्रतिमा उन्हें बल और उत्साह प्रदान करती थी। उसी प्रतिमा से आज उनका विपद्ग्रस्त नन विद्रोह कर रहा था। उनकी भक्ति का यही पुरस्कार है? उनके स्नान और व्रत और निष्ठा का यही फल है !

वह चलने लगे तो ब्रह्मचारी बोले—लालाजी, अबकी यहां श्री बाल्मीकीय कथा का विचार है।

लालाजी ने पीछे फिरकर कहा—हां-हां, होने दो।

एक बाबू साहब ने कहा—यहां किसी में इतना सामर्थ्य नहीं है। आप ही हिम्मत करें, तो हो सकती है।

समरकान्त ने उत्साह से कहा—हां-हां, मैं उसका सारा भार लेने को तैयार हूं। भगवद् भजन से बढ़कर धन का सदुपयोग और क्या होगा?

उनका यह उत्साह देखकर लोग चकित हो गए। वह कृपण थे और किसी धर्मकार्य में अग्रसर न होते थे। लोगों ने समझा था, इससे दस-बीस रुपये ही मिल जायं, तो बहुत है। उन्हें यों बाजी मारते देखकर और लोग भी गरमाए। सेठ धनीराम ने कहा—आपसे सारा भार लेने को नहीं कहा जाता, लालाजी ! आप लक्ष्मी-पात्र हैं सही, पर औरों को भी तो श्रद्धा है। चंदे से होने दीजिए।

समरकान्त बोले—तो और लोग आपस में चंदा कर लें। जितनी कमी रह जाएगी, वह मैं पूरी कर दूंगा।

धनीराम को भय हुआ, कहीं यह महाशय सस्ते न छूट जाएं। बोले—यह नहीं, आपको जितना लिखना हो लिख दें।

समरकान्त ने होड़ के भाव से कहा—पहले आप लिखिए।

कागज, कलम, दावात लाया गया, धनीराम ने लिखा एक सौ एक रुपये।

समरकान्त ने ब्रह्मचारीजी से पूछा—आपके अनुमान से कुल कितना खर्च होगा?

ब्रह्मचारीजी का तखमीना एक हजार का था।

समरकान्त ने आठ सौ निन्यानवे लिख दिए। और वहां से चल दिए। सच्ची श्रद्धा की कमी को वह धन से पूरा करना चाहते थे। धर्म की क्षति जिस अनुपात से होती है, उसी अनुपात से आडंबर की वृद्धि होती है।

## दो

अमरकान्त का पत्र लिए हुए नैना अंदर आई, तो सुखदा ने पूछा—किसका पत्र है?

नैना ने खत पाते ही पढ़ डाला था। बोली—भैया का।

सुखदा ने पूछा—अच्छा उनका खत है? कहां हैं?

''हरिद्वार के पास किसी गांव में हैं।''

आज पांच महीनों से दोनों में अमरकान्त की कभी चर्चा न हुई थी। मानो वह कोई घाव था, जिसको छूते दोनों ही के दिल कांपते थे। सुखदा ने फिर कुछ न पूछा। बच्चे के लिए फ्राक सी रही थी। फिर सीने लगी।

नैना पत्र का जवाब लिखने लगी। इसी वक्त वह जवाब भेज देगी। आज पांच महीने में आपको मेरी सुधि आई है। जाने क्या-क्या लिखना चाहती थी? कई घंटों के बाद वह खत तैयार हुआ, जो हम पहले ही देख चुके हैं। खत लेकर वह भाभी को दिखाने गई। सुखदा ने देखने की जरूरत न समझी।

नैना ने हताश होकर पूछा—तुम्हारी तरफ से भी कुछ लिख दूं?

''नहीं, कुछ नहीं।''

''तुम्हीं अपने हाथ से लिख दो।''

''मुझे कुछ नहीं लिखना है।''

नैना रुआंसी होकर चली गई। खत डाक में भेज दिया गया।

सुखदा को अमर के नाम से भी चिढ़ है। उसके कमरे में अमर की तस्वीर थी, उसे उसने तोड़कर फेंक दिया था। अब उसके पास अमर की याद दिलाने वाली कोई चीज न थी। यहां तक की बालक से भी उसका जी हट गया था। वह अब अधिकतर नैना के पास रहता था। स्नेह के बदले वह उस पर दया करती थी; पर इस पराजय ने उसे हताश नहीं किया, उसका आत्माभिमान कई गुना बढ़ गया है। आत्मनिर्भर भी अब वह कहीं ज्यादा हो गई है। वह अब किसी की उपेक्षा नहीं करना चाहती। स्नेह के दबाव के सिवा और किसी दबाव से उसका मन विद्रोह करने लगता है। उसकी विलासिता मानो मान के वन में खो गई है।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सकीना से उसे लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। वह उसे भी अपनी ही तरह, बल्कि अपने से अधिक दु:खी समझती है। उसकी कितनी बदनामी हुई और अब बेचारी उस निर्दयी के नाम को रो रही है। वह सारा उन्माद जाता रहा। ऐसे छिछोरों का एतबार ही क्या? वहां कोई दूसरा शिकार फांस लिया होगा। उससे मिलने की उसे बड़ी इच्छा थी; पर सोच-सोचकर रह जाती थी।

एक दिन पठानिन से मालूम हुआ कि सकीना बहुत बीमार है। उस दिन सुखदा ने उससे मिलने का निश्चय कर लिया। नैना को भी साथ ले लिया। पठानिन ने रास्ते में कहा—मेरे सामने तो उसका मुंह ही बंद हो जाएगा। मुझसे तो तभी से बोल-चाल नहीं है। मैं तुम्हें घर दिखाकर कहीं चली जाऊंगी। ऐसी अच्छी शादी हो रही थी; उसने मंजूर ही न किया। मैं भी चुप हूं, देखूं कब तक उसके नाम को बैठी रहती है। मेरे जीतेजी तो लाला घर में कदम रखने न पाएंगे। हां, पीछे को नहीं कह सकती।

सुखदा ने छेड़ा—किसी दिन उनका खत आ जाय और सकीना चली जाय तो क्या करोगी?

बुढ़िया आंखें निकालकर बोली—मजाल है कि इस तरह चली जाए! खून पी जाऊं!

सुखदा ने फिर छेड़ा—जब वह मुसलमान होने को कहते हैं, तब तुम्हें क्या इंकार है?

पठानिन ने कानों पर हाथ रखकर कहा—अरे बेटा! जिसका जिंदगी भर नमक खाया, उसका घर उजाड़कर अपना घर बनाऊं? यह शरीफों का काम नहीं है। मेरी तो समझ ही में

नहीं आता, छोकरी में क्या देखकर भैया रीझ पड़े।

अपना घर दिखाकर पठानिन तो पड़ोस के घर में चली गई, दोनों युवतियों ने सकीना के द्वार की कुंडी खटखटाई। सकीना ने उठकर द्वार खोल दिया। दोनों को देखकर वह घबरा-सी गई। जैसे कहीं भागना चाहती है। कहां बैठाए, क्या सत्कार करे !

सुखदा ने कहा—तुम परेशान न हो बहन, हम इस खाट पर बैठ जाते हैं। तुम तो जैसे घुलती जाती हो। एक बेवफा मरद के चकमे में पड़कर क्या जान दे दोगी?

सकीना का पीला चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसे ऐसा जान पड़ा कि सुखदा मुझसे जवाब तलब कर रही है—तुमने मेरा बना-बनाया घर क्यों उजाड़ दिया? इसका सकीना के पास कोई जवाब न था। वह कांड कुछ इस आकस्मिक रूप से हुआ कि वह स्वयं कुछ न समझ सकी। पहले बादल का एक टुकड़ा आकाश के एक कोने में दिखाई दिया। देखते-देखते सारा आकाश मेघाच्छन्न हो गया और ऐसे जोर की आंधी चली कि वह खुद उसमें उड़ गई। वह क्या बताए कैसे क्या हुआ? बादल के उस टुकड़े को देखकर कौन कह सकता था, आंधी आ रही है?

उसने सिर झुकाकर कहा—औरत की जिंदगी और है ही किसलिए बहनजी ! वह अपने दिल से लाचार है, जिसमें वफा की उम्मीद करती है, वही दगा करता है। उसका क्या अख्तियार? जो प न बेवफाओं से मुहब्बत न हो, तो मुहब्बत में मजा ही क्या रहे? शिकवा-शिकायत, रोना-धोना, बेताबी और बेकरारी यही तो मुहब्बत के मजे हैं, फिर मैं तो वफा की उम्मीद भी नहीं करती थी। मैं उस वक्त भी इतना जानती थी कि यह आंधी दो-चार घड़ी की मेहमान है, लेकिन तम्कीन के लिए तो इतना ही काफी था कि जिस आदमी की मैं दिल में सबसे ज्यादा इज्जत करने लगी थी, उसने मुझे इस लायक तो समझा। मैं इस कागज की नाव पर बैठकर भी सागर को पार कर दूंगी।

सुखदा ने देखा, इस युवती का हृदय कितना निष्कपट है ! कुछ निराश होकर बोली—यही तो मरदों के हथकंडे हैं। पहले तो देवता बन जाएंगे, जैसे सारी शराफत इन्हीं पर खतम है, फिर तोतों की तरह आंखें फेर लेंगे।

सकीना ने ढिठाई के साथ कहा—बहन, बनने से कोई देवता नहीं हो जाता। आपकी उम्र चाहे साल-दो साल मुझसे ज्यादा हो, लेकिन मैं इस मुआमले में आपसे ज्यादा तजुर्बा रखती हूं। यह घमंड से नहीं कहती, शर्म से कहती हूं। खुदा न करे, गरीब की लड़की हसीन हो। गरीबी में हुस्न बला है। वहां बड़ों का तो कहना ही क्या, छोटों की रसाई भी आसानी से हो जाती है। अम्मां बड़ी पारसा हैं, मुझे देवी समझती होंगी, किसी जवान को दरवाजे पर खड़ा नहीं होने देतीं, लेकिन इस वक्त बात आ पड़ी है, तो कहना पड़ता है कि मुझे मरदों को देखने और परखने के काफी मौके मिले हैं। सभी ने मुझे दिल-बहलाव की चीज समझा, और मेरी गरीबी से अपना मतलब निकालना चाहा। अगर किसी ने मुझे इज्जत की निगाह से देखा, तो वह बाबूजी थे। मैं खुदा को गवाह करके कहती हूं कि उन्होंने मुझे एक बार भी ऐसी निगाहों से नहीं देखा और न एक कलाम भी ऐसा मुंह से निकाला, जिससे छिछोरेपन की बू आई हो। उन्होंने मुझे निकाह की दावत दी। मैंने मंजूर कर लिया। जब तक वह खुद उस दावत को रद्द न कर दें, मैं उसकी पाबंद हूं, चाहे मुझे उम्र भर यों ही क्यों न रहना पड़े।

चार-पांच बार की मुख्तसर मुलाकातों से मुझे उन पर इतना एतबार हो गया है कि मैं उम्र भर उनके नाम पर बैठी रह सकती हूं। मैं अब पछताती हूं कि क्यों न उनके साथ चली गई। मेरे रहने से उन्हें कुछ तो आराम होता। कुछ तो उनकी खिदमत कर सकती। इसका तो मुझे यकीन है कि उन पर रंग-रूप का जादू नहीं चल सकता। हूर भी आ जाय, तो उसकी तरफ आंखें उठाकर न देखेंगे, लेकिन खिदमत और मोहब्बत का जादू उन पर बड़ी आसानी से चल सकता है। यही खौफ है। मैं आपसे सच्चे दिल से कहती हूं बहन, मेरे लिए इससे बड़ी खुशी की बात नहीं हो सकती कि आप और वह फिर मिल जायं, आपस का मनमुटाव दूर हो जाय। मैं उस हालत में और भी खुश रहूंगी। मैं उनके साथ न गई, इसका यही सबब था, लेकिन बुरा न मानो तो एक बात कहूं?

वह चुप होकर सुखदा के उत्तर का इंतजार करने लगी। सुखदा ने आश्वासन दिया—तुम जितनी साफ दिली से बातें कर रही हो, उससे अब मुझे तुम्हारी कोई बात भी बुरी न मालूम होगी। शौक से कहो।

सकीना ने धन्यवाद देते हुए कहा—अब तो उनका पता मालूम हो गया है, आप एक बार उनके पास चली जायं। वह खिदमत के गुलाम हैं और खिदमत से ही आप उन्हें अपना सकती हैं।

सुखदा ने पूछा—बस, या और कुछ?

''बस, और मैं आपको क्या समझाऊंगी, आप मुझसे कहीं ज्यादा समझदार हैं।''

''उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं ऐसे कमीने आदमी की खुशामद नहीं कर सकती। अगर आज मैं किसी मरद के साथ चली जाऊं, तो तुम समझती हो, वह मुझे मनाने जाएंगे? वह शायद मेरी गर्दन काटने जायं। मैं औरत हूं, और औरत का दिल इतना कड़ा नहीं होता; लेकिन उनकी खुशामद तो मैं मरते दम तक नहीं कर सकती।''

यह कहती हुई सुखदा उठ खड़ी हुई। सकीना दिल में पछताई कि क्यों जरूरत से ज्यादा बहनापा जताकर उसने सुखदा को नाराज कर दिया। द्वार तक माफी मांगती हुई आई।

दोनों तांगे पर बैठीं, तो नैना ने कहा—तुम्हें क्रोध बहुत जल्द आ जाता है, भाभी !

सुखदा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—तुम तो ऐसा कहोगी ही, अपने भाई की बहन हो न ! संसार में ऐसी कौन औरत है, जो ऐसे पति को मनाने जाएगी? हां, शायद सकीना चली जाती, इसलिए कि उसे आशातीत वस्तु मिल गई है।

एक क्षण के बाद फिर बोली—मैं इससे सहानुभूति करने आई थी; पर यहां से परास्त होकर जा रही हूं। इसके विश्वास ने मुझे परास्त कर दिया। इस छोकरी में वह सभी गुण हैं, जो पुरुषों को आकृष्ट करते हैं। ऐसी ही स्त्रियां पुरुषों के हृदय पर राज करती हैं। मेरे हृदय में कभी इतनी श्रद्धा न हुई। मैंने उनसे हंसकर बोलने, हास-परिहास करने और अपने रूप और यौवन के प्रदर्शन में ही अपने कर्त्तव्य का अंत समझ लिया। न कभी प्रेम किया, न प्रेम पाया। मैंने बरसों में जो कुछ न पाया, वह इसने घंटों में पा लिया। आज मुझे कुछ-कुछ ज्ञात हुआ कि मुझमें क्या त्रुटियां हैं? इस छोकरी ने मेरी आंखें खोल दीं।

# तीन

एक महीने से ठाकुरद्वारे में कथा हो रही है। पं० मधुसुदनजी इस कला में प्रवीण हैं। उनकी कथा में श्रव्य और दृश्य, दोनों ही काव्यों का आनंद आता है। जितनी आसानी से वह जनता को हंसा सकते हैं, उतनी ही आसानी से रुला भी सकते हैं। दृष्टांतों के तो मानो वह सागर हैं, और नाट्य में इतने कुशल हैं कि जो चरित्र दर्शाते हैं, उनकी तस्वीरें खींच देते हैं। सारा शहर उमड़ पड़ता है। रेणुकादेवी तो सांझ ही से ठाकुरद्वारे में पहुंच जाती हैं। व्यासजी और उनके भजनीक सब उन्हीं के मेहमान हैं। नैना भी मुन्ने को गोद में लेकर पहुंच जाती है। केवल सुखदा को कथा में रुचि नहीं है। वह नैना के बार-बार आग्रह करने पर भी नहीं जाती। उसका विद्रोही मन सारे संसार से प्रतिकार करने के लिए जैसे नंगी तलवार लिए खड़ा रहता है। कभी-कभी उसका मन इतना उद्विग्न हो जाता है कि समाज और धर्म के सारे बंधनों को तोड़कर फेंक दे। ऐसे आदमियों की सजा यही है कि उनकी स्त्रियां भी उन्हीं के मार्ग पर चलें। तब उनकी आंखें खुलेंगी और उन्हें ज्ञात होगा कि जलना किसे कहते हैं। एक मैं कुल-मर्यादा के नाम को रोया करूं, लेकिन यह अत्याचार बहुत दिनों न चलेगा। अब कोई इस भ्रम में न रहे कि पति जो करे, उसकी स्त्री उसके पांव धो-धोकर पिएगी, उसे अपना देवता समझेगी, उसके पांव दबाएगी और वह उससे हंसकर बोलेगा, तो अपने भाग्य को धन्य मानेगी। वह दिन लद गए। इस विषय पर उसने पत्रों में कई लेख भी लिखे हैं।

आज नैना बहस कर बैठी—तुम कहती हो, पुरुष के आचार-विचार की परीक्षा कर लेनी चाहिए। क्या परीक्षा कर लेने पर धोखा नहीं होता? आए दिन तलाक क्यों होते रहते हैं?

सुखदा बोली—तो इसमें क्या बुराई है? यह तो नहीं होता कि पुरुष तो गुलछर्रे उड़ावे और स्त्री उसके नाम को रोती रहे?

नैना ने जैसे रटे हुए वाक्य को दुहराया—प्रेम के अभाव में सुख कभी नहीं मिल सकता। बाहरी रोकथाम से कुछ न होगा।

सुखदा ने छेड़ा—मालूम होता है, आजकल यह विद्या सीख रही हो। अगर देख-भालकर विवाह करने में कभी-कभी धोखा हो सकता है, तो बिना देखे-भाले करने में बराबर धोखा होता है। तलाक की प्रथा यहां हो जाने दो, फिर मालूम होगा कि हमारा जीवन कितना सुखी है।

नैना इसका कोई जवाब न दे सकी। कल व्यासजी ने पश्चिमी विवाह-प्रथा की तुलना भारतीय पद्धति से की। वही बातें कुछ उखड़ी-सी उसे याद थीं।

बोली—तुम्हें कथा में चलना है कि नहीं, यह बताओ।

''तुम जाओ, मैं नहीं जाती।''

नैना ठाकुरद्वारे में पहुंची तो कथा आरंभ हो गई थी। आज और दिनों से ज्यादा हुजूम था। नौजवान-सभा और सेवा-पाठशाला के विद्यार्थी और अध्यापक भी आए हुए थे। मधुसूदनजी कह रहे थे—राम-रावण की कथा तो इस जीवन की, इस संसार की कथा है, इसको चाहो तो सुनना पड़ेगा, न चाहो तो सुनना पड़ेगा। इससे हम-तुम बच नहीं सकते। हमारे ही अंदर राम भी हैं, रावण भी हैं, सीता भी हैं, आदि ।

सहसा पिछली सफों में कुछ हलचल मची। ब्रह्मचारीजी कई आदमियों को हाथ पकड़-पकड़कर उठा रहे थे और जोर-जोर से गालियां दे रहे थे। हंगामा हो गया। लोग इधर-उधर से उठकर वहां जमा हो गए। कथा बंद हो गई?

समरकान्त ने पूछा—क्या बात है ब्रह्मचारीजी?

ब्रह्मचारीजी ने ब्रह्मतेज से लाल-लाल आंखें निकालकर कहा—बात क्या है, यहां लोग भगवान् की कथा सुनने आते हैं कि अपना धर्म भ्रष्ट करने आते हैं! भंगी, चमार जिसे देखो घुसा चला आता है—ठाकुरजी का मंदिर न हुआ सराय हुई!

समरकान्त ने कड़ककर कहा—निकाल दो सभी को मारकर!

एक बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा—हम तो यहां दरवाजे पर बैठे थे सेठजी, जहां जूते रखे हैं। हम क्या ऐसे नादान हैं कि आप लोगों के बीच में जाकर बैठ जाते?

ब्रह्मचारी ने उसे एक जूता जमाते हुए कहा—तू यहां आया क्यों? यहां से वहां तक एक दरी बिछी हुई है। सब-का-सब भरभंड हुआ कि नहीं? प्रसाद है, चरणामृत है, गंगाजल है। सब मिट्टी हुआ कि नहीं? अब जाड़े-पाले में लोगों को नहाना-धोना पड़ेगा कि नहीं? हम कहते हैं तू बूढ़ा हो गया मिठुआ, मरने के दिन आ गए, पर तुझे अकल भी नहीं आई। चला है वहां से बड़ा भगत की पूंछ बनकर!

समरकान्त ने बिगड़कर कहा—और भी कभी आया था कि आज ही आया है?

मिठुआ बोला—रोज आते हैं महाराज, यहीं दरवाजे पर बैठकर भगवान् की कथा सुनते हैं।

ब्रह्मचारीजी ने माथा पीट लिया। ये दुष्ट रोज यहां आते थे! रोज सबको छूते थे। इनका छुआ हुआ प्रसाद लोग रोज खाते थे! इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है? धर्म पर इससे बड़ा आघात और क्या हो सकता है? धर्मात्माओं के क्रोध का पारावार न रहा। कई आदमी जूते ले-लेकर उन गरीबों पर पिल पड़े। भगवान् के मंदिर में, भगवान् के भक्तों के हाथों भगवान् के भक्तों पर पादुका-प्रहार होने लगा!

डॉक्टर शान्तिकुमार और उनके अध्यापक खड़े जरा देर तक यह तमाशा देखते रहे। जब जूते चलने लगे तो स्वामी आत्मानन्द अपना मोटा सोंटा लेकर ब्रह्मचारी की तरफ लपके।

डॉक्टर साहब ने देखा, घोर अनर्थ हुआ चाहता है। झपटकर आत्मानन्द के हाथों से सोंटा छीन लिया।

आत्मानन्द ने खून-भरी आंखों से देखकर कहा—आप यह दृश्य देख सकते हैं, मैं नहीं देख सकता।

शान्तिकुमार ने उन्हें शांत किया और ऊंची आवाज से बोले—वाह रे ईश्वर-भक्तो! वाह! क्या कहना है तुम्हारी भक्ति का! जो जितने जूते मारेगा, भगवान् उस पर उतने प्रसन्न होंगे। उसे चारों पदार्थ मिल जाएंगे। सीधे स्वर्ग से विमान आ जाएगा। मगर अब चाहे जितना मारो, धर्म तो नष्ट हो गया।

ब्रह्मचारी, लाला समरकान्त, सेठ धनीराम और अन्य धर्म के ठेकेदारों ने चकित होकर शान्तिकुमार की ओर देखा। जूते चलने बंद हो गए।

शान्तिकुमार इस समय कुर्ता और धोती पहने, माथे पर चंदन लगाए, गले में चादर डाले

व्यास के छोटे भाई से लग रहे थे। यहां उनका वह फैशन न था, जिस पर विधर्मी होने का आक्षेप किया जा सकता था।

डॉक्टर साहब ने फिर ललकार कहा—आप लोगों ने हाथ क्यों बंद कर लिए? लगाइए कस-कसकर ! और जूतों से क्या होता है? बंदूकें मंगाइए और धर्म-द्रोहियों का अंत कर डालिए। सरकार कुछ नहीं कर सकती। और तुम धर्म-द्रोहियो, तुम सब-के-सब बैठ जाओ और जितने जूते खा सको, खाओ। तुम्हें इतनी खबर नहीं कि यहां सेठ महाजनों के भगवान् रहते हैं ! तुम्हारी इतनी मजाल कि इनके भगवान् के मंदिर में कदम रखो ! तुम्हारे भगवान् किसी झोंपड़े में या पेड़ तले होंगे। यह भगवान् रत्नों के आभूषण पहनते हैं। मोहनभोग-मलाई खाते हैं। चीथड़े पहनने वालों और चबैना खान वालों की सूरत वह नहीं देखना चाहते।

ब्रह्मचारीजी परशुराम की भांति विकराल रूप दिखाकर बोले—तुम तो बाबूजी, अंधेर करते हो। सास्तर में कहां लिखा है कि अत्यजों को मंदिर में आने दिया जाए?

शान्तिकुमार ने आवेश से कहा—कहीं नहीं। शास्त्र मे यह लिखा है कि घी में चर्बी मिलाकर बेचो, टेनी मारो, रिश्वतें खाओ। आंखों में धूल झोंको और जो तुमसे बलवान् हैं, उनके चरण धो-धोकर पीयो, चाहे वह शास्त्र को पैरो से ठुकराते हों। तुम्हारे शास्त्र में यह लिखा है, तो यह करो। हमारे शास्त्र में तो यह लिखा है कि भगवान् की दृष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा, न कोई शुद्ध और न कोई अशुद्ध। उसकी गोद सबके लिए खुली हुई है।

समरकान्त ने कई आदमियों को अंत्यजों का पक्ष लेने के लिए तैयार देखकर उन्हें शांत करने की चेष्टा करत हुए कहा—डॉक्टर साहब, तुम व्यर्थ इतना क्रोध कर रहे हो। शास्त्र में क्या लिखा है, क्या नहीं लिखा है, यह तो पंडित ही जानते हैं। हम तो जैसी प्रथा देखते हैं, वह करते हैं। इन पाजियों को सोचना चाहिए था या नहीं? इन्हे तो यहां का हाल मालूम है, कहीं बाहर से तो नही आए है?

शान्तिकुमार का खून खौल रहा था- आप लोगो ने जूते क्यों मारे?

ब्रह्मचारी ने उजड्डपन से कहा—और क्या पान-फल लेकर पूजते?

शान्तिकुमार उत्तेजित होकर बोले—अंधे भक्तों की आखों में धूल झोंककर यह हलवे बहुत दिन खाने को न मिलेंगे महाराज, समझ गए? अब वह समय आ रहा है, जब भगवान् भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं।

सब लोग हां-हां करते ही रहे, पर शान्ति कुमार, आत्मानन्द और सेवा- पाठशाला के छात्र उठकर चल दिए। भजन-मंडली का मुखिया सेवाश्रम का ब्रजनाथ था। वह भी उनके साथ ही चला गया।

## चार

उस दिन फिर कथा न हुई। कुछ लोगों ने ब्रह्मचारी ही पर आक्षेप करना शुरू किया। बैठे तो थ बेचारे एक कोने में, उन्हें उठाने की जरूरत ही क्या थी? और उठाया भी, तो नम्रता से उठाते। मार-पीट से क्या फायदा?

दूसरे दिन नियत समय पर कथा शुरू हुई; पर श्रोताओं की संख्या बहुत कम हो गई थी। मधुसूदनजी ने बहुत चाहा कि रंग जमा दें; पर लोग जम्हाइयां ले रहे थे और पिछली सफों में तो लोग धड़ल्ले से सो रहे थे। मालूम होता था, मंदिर का आंगन कुछ छोटा हो गया है, दरवाजे कुछ नीचे हो गए हैं, भजन-मंडली के न होने से और भी सन्नाटा है। उधर नौजवान सभा के सामने खुले मैदान में शान्तिकुमार की कथा हो रही थी। ब्रजनाथ, सलीम, आत्मानन्द आदि आने वालों का स्वागत करते थे। थोड़ी देर में दरियां छोटी पड़ गई और थोड़ी देर और गुजरने पर मैदान भी छोटा पड़ गया। अधिकांश लोग नंगे बदन थे, कुछ लोग चीथड़े पहने हुए। उनकी देह से तंबाकू और मैलेपन की दुर्गंध आ रही थी। स्त्रियां आभूषणहीन, मैली-कुचैली धोतियां या लहंगे पहने हुए थीं। रेशम और सुगंध और चमकीले आभूषणों का कहीं नाम न था, पर हृदयों में दया थी, धर्म था, सेवा-भाव था, त्याग था। नए आने वालों को देखते ही लोग जगह घेरने को पांव न फैला लेते थे, यों न ताकते थे, जैसे कोई शत्रु आ गया हो; बल्कि और सिमट जाते थे और खुशी से जगह दे देते थे।

नौ बजे कथा आरंभ हुई। यह देवी-देवताओं और अवतारों की कथा न थी। ब्रह्मऋषियों के तप और तेज का वृत्तांत न था, क्षत्रियों के शौर्य और दान की गाथा न थी। यह उस पुरुष का पावन चरित्र था, जिसके यहां मन और कर्म की शुद्धता ही धर्म का मूल तत्त्व है। वही ऊंचा है, जिसका मन शुद्ध है, वही नीच है, जिसका मन अशुद्ध है—जिसने वर्ण का स्वांग रचकर समाज के एक अंग को मदांध और दूसरे को म्लेच्छ नहीं बनाया। किसी के लिए उन्नति या उद्धार का द्वार नहीं बंद किया—एक के माथे पर बड़प्पन का तिलक और दूसरे के माथे पर नीचता का कलंक नहीं लगाया। इस चरित्र में आत्मोन्नति का एक सजीव संदेश था, जिसे सुनकर दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनकी आत्मा के बंधन खुल गए हैं, संसार पवित्र और सुंदर हो गया है।

नैना को भी धर्म के पाखंड से चिढ़ थी। अमरकान्त उससे इस विषय पर अक्सर बात किया करता था। अछूतों पर यह अत्याचार देखकर उसका खून भी खौल उठा था। समरकान्त का भय न होता, तो उसने ब्रह्मचारीजी को फटकार बताई होती; इसीलिए जब शान्तिकुमार ने तिलकधारियों को आड़े हाथ लिया, तो उसकी आत्मा जैसे मुग्ध होकर उनके चरणों पर लोटने लगी। अमरकान्त से उनका बखान कितनी ही बार सुन चुकी थी। इस समय उनके प्रति उसके मन में ऐसी श्रद्धा उठी कि जाकर उनसे कहे—तुम धर्म के सच्चे देवता हो, तुम्हें नमस्कार करती हूं। अपने आसपास के आदमियों को क्रोधित देख-देखकर उसे भय हो रहा था कि कहीं यह लोग उन पर टूट न पड़ें। उसके जी में आता था, जाकर डॉक्टर के पास खड़ी हो जाए और उनकी रक्षा करे। जब वह बहुत-से आदमियों के साथ चले गए, तो उसका चित्त शांत हो गया। वह भी सुखदा के साथ घर चली आई।

सुखदा ने रास्ते में कहा—ये दुष्ट न जाने कहां से फट पड़े? उस पर डॉक्टर साहब उल्टे उन्हीं का पक्ष लेकर लड़ने को तैयार हो गए।

नैना ने कहा—भगवान् ने तो किसी को ऊंचा और किसी को नीचा नहीं बनाया?

"भगवान् ने नहीं बनाया, तो किसने बनाया?"

"अन्याय ने।"

''छोटे-बड़े संसार में सदा रहे हैं और रहेंगे।''

नैना ने वाद-विवाद करना उचित न समझा।

दूसरे दिन संध्या समय उसे खबर मिली कि आज नौजवान-सभा में अछूतों के लिए अलग कथा होगी, तो उसका मन वहां जाने के लिए लालायित हो उठा। वह मंदिर में सुखदा के साथ तो गई, पर उसका जी उचाट हो रहा था। जब सुखदा झपकियां लेने लगीं—आज यह कृत्य शीघ्र ही होने लगा—तो वह चुपके से बाहर आई और एक तांगे पर बैठकर नौजवान-सभा चली। वह दूर से जमाव देखकर लौट आना चाहती थी, जिसमें सुखदा को उसके आने की खबर न हो। उसे दूर से गैस की रोशनी दिखाई दी। जरा और आगे बढ़ी, तो ब्रजनाथ की स्वर लहरियां कानों में आई। तांगा उस स्थान पर पहुंचा, तो शान्तिकुमार मंच पर आ गए थे। आदमियों का एक समुद्र उमड़ा हुआ था और डॉक्टर साहब की प्रतिभा उस समुद्र के ऊपर किसी विशाल व्यापक आत्मा की भांति छाई हुई थी। नैना कुछ देर तो तांगे पर मंत्र-मुग्ध-सी बैठी सुनती रही, फिर उतरकर पिछली कतार में सबके पीछे खड़ी हो गई।

एक बुढ़िया बोली—कब तक खड़ी रहोगी बिटिया, भीतर जाकर बैठ जाओ।

नैना ने कहा—बड़े आराम से हूं। सुनाई दे रहा है।

बुढ़िया आगे थी। उसने नैना का हाथ पकड़कर अपनी जगह पर खींच लिया और आप उसकी जगह पर पीछे हट आई। नैना ने अब शान्तिकुमार को सामने देखा। उनके मुख पर देवोपम तेज छाया हुआ था। जान पड़ता था, इस समय वह किसी दिव्य जगत् में है। मानो वहां की वायु सुधामयी हो गई है। जिन दरिद्र चेहरों पर वह फटकार बरसते देखा करती थी, उन पर आज कितना गर्व था, मानो वे किसी नवीन सम्पत्ति के स्वामी हो गए हैं। इतनी नम्रता, इतनी भद्रता, इन लोगों में उसने कभी न देखी थी।

शान्तिकुमार कह रहे थे—क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीडा लेकर आए हो? तुम तन-मन से दूसरों की सेवा करते हो, पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं। तुम समाज की बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है पर तुम अछूत हो। तुम मंदिरो में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभाग देश के सिवा और कहां हो सकती है? क्या तुम सदैव इसी भांति पतित और दलित बने रहना चाहते हो?

एक आवाज आई—हमारा क्या बस है?

शान्तिकुमार ने उत्तेजना-पूर्ण स्वर में कहा—तुम्हारा बस उस समय तक कुछ नहीं है जब तक समझते हो तुम्हारा बस नहीं है। मंदिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नहीं। वह हिन्दू-मात्र की चीज है। यदि तुम्हें कोई रोकता है, तो यह उसकी जबर्दस्ती है। मत टलो उस मंदिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गालियों की वर्षा ही क्यों न हो! तुम जरा-जरा-सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गंवा देते हो, जान दे देते हो, यह तो धर्म की बात है, और धर्म हमें जान से भी प्यारा होता है। धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और प्राणों से होगी।

कल की मारधाड़ ने सभी को उत्तेजित कर दिया था। दिन-भर उसी विषय की चर्चा होती रही। बारूद तैयार होती रही। उसमें चिंगारी की कसर थी। ये शब्द चिंगारी का काम कर गए। संघ-शक्ति ने हिम्मत भी बढ़ा दी। लोगों ने पगड़ियां संभालीं, आसन बदले और एक-दूसरे की ओर देखा, मानो पूछ रहे हो? चलते हो, या अभी कुछ सोचना बाकी है? और फिर

शांत हो गए। साहस ने चूहे की भांति बिल से सिर निकालकर फिर अंदर खींच लिया।

नैना के पास वाली बुढ़िया ने कहा—अपना मंदिर लिए रहें, हमें क्या करना है?

नैना ने जैसे गिरती हुई दीवार को संभाला—मंदिर किसी एक आदमी का नहीं है।

शान्तिकुमार ने गूंजती हुई आवाज में कहा—कौन चलता है मेरे साथ अपने ठाकुरजी के दर्शन करने?

बुढ़िया ने सशंक होकर कहा—क्या अंदर कोई जाने देगा?

शान्तिकुमार ने मुट्ठी बांधकर कहा—मैं देखूंगा कौन नहीं जाने देता? हमारा ईश्वर किसी की संपत्ति नहीं है, जो संदूक में बंद करके रखा जाय। आज इस मुआमले को तय करना है, सदा के लिए।

कई सौ स्त्री-पुरुष शान्ति कुमार के साथ मंदिर की ओर चले। नैना का हृदय धड़कने लगा; पर उसने अपने मन को धिक्कारा और जत्थे के पीछे-पीछे चली। वह यह सोच-सोचकर पुलकित हो रही थी कि भैया इस समय यहां होते तो कितने प्रसन्न होते। इसके साथ भांति-भांति की शंकाएं भी बुलबुलों की तरह उठ रही थीं।

ज्यों-ज्यों जत्था आगे बढ़ता था और लोग आ-आकर मिलते जाते थे; पर ज्यों-ज्यों मंदिर समीप आता था, लोगों की हिम्मत कम होती जाती थी। जिस अधिकार से ये सदैव वंचित रहे, उसके लिए उनके मन में कोई तीव्र इच्छा न थी। केवल दु:ख था मार का। वह विश्वास, जो न्याय-ज्ञान से पैदा होता है, वहां न था। फिर भी मनुष्यों की संख्या बढ़ती जाती थी। प्राण देने वाले तो बिरले ही थे। समूह की धौंस जमाकर विजय पाने की आशा ही उन्हें बढ़ा रही थी।

जत्था मंदिर के सामने पहुंचा तो दस बज गए थे। ब्रह्मचारीजी कई पुजारियों और पंडों के साथ लाठियां लिए द्वार पर खड़े थे। लाला समरकान्त भी पैंतरे बदल रहे थे।

नैना को ब्रह्मचारी पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि जाकर फटकारे, तुम बड़े धर्मात्मा बने हो! आधी रात तक इसीं मंदिर में जुआ खेलते हो, पैसे-पैसे पर ईमान बेचते हो, झूठी गवाहियां देते हो, द्वार-द्वार भीख मांगते हो। फिर भी तुम धर्म के ठेकेदार हो। तुम्हारे तो स्पर्श से ही देवताओं को कलंक लगता है।

वह मन के इस आग्रह को रोक न सकी। पीछे से भीड़ को चीरती हुई मंदिर के द्वार को चली आ रही थी कि शान्तिकुमार की निगाह उस पर पड़ गई। चौंककर बोले—तुम यहां कहां नैना? मैंने तो समझा था, तुम अंदर कथा सुन रही होगी।

नैना ने बनावटी रोष से कहा—आपने तो रास्ता रोक रखा है। कैसे जाऊं?

शान्ति कुमार ने भीड़ को सामने से हटाते हुए कहा—मुझे मालूम न था कि तुम रुकी खड़ी हो।

नैना ने जरा ठिठककर कहा—आप हमारे ठाकुरजी को भ्रष्ट करना चाहते हैं?

शान्तिकुमार उसका विनोद न समझ सके। उदास होकर बोले—क्या तुम्हारा भी यही विचार है, नैना?

नैना ने और रद्दा जमाया—आप अछूतों को मंदिर में भर देंगे, तो देवता भ्रष्ट न होंगे?

शान्तिकुमार ने गंभीर भाव से कहा—मैंने तो समझा था, देवता भ्रष्टों को पवित्र करते

हैं, खुद भ्रष्ट नहीं होते।

सहसा ब्रह्मचारी ने गरजकर कहा—तुम लोग क्या यहां बलवा करने आए हो ठाकुरजी के मंदिर के द्वार पर?

एक आदमी ने आगे बढ़कर कहा—हम फौजदारी करने नहीं आए हैं। ठाकुरजी के दर्शन करने आए हैं।

समरकान्त ने उस आदमी को धक्का देकर कहा—तुम्हारे बाप-दादा भी कभी दर्शन करने आए थे कि तुम्हीं सबसे वीर हो।

शान्तिकुमार ने उस आदमी को संभालकर कहा—बाप-दादों ने जो काम नहीं किया, क्या पोतों-परपोतों के लिए भी वर्जित है, लालाजी? बाप-दादे तो बिजली और तार का नाम तक नहीं जानते थे, फिर आज इन चीजों का क्यों व्यवहार होता है? विचारों में विकास होता ही रहता है, उसे आप नहीं रोक सकते।

समरकान्त ने व्यंग्य से कहा—इसीलिए तुम्हारे विचार में यह विकास हुआ है कि ठाकुरजी की भक्ति छोड़कर उनके द्रोही बन बैठे?

शान्तिकुमार ने प्रतिवाद किया—ठाकुरजी का द्रोही मैं नहीं हूं, द्रोही वह है जो उनके भक्तों को उनकी पूजा नहीं करने देते। क्या यह लोग हिन्दू-संस्कारों को नहीं मानते? फिर आपने मंदिर का द्वार क्यों बंद कर रखा है?

ब्रह्मचारी ने आंखें निकालकर कहा—जो लोग मांस-मदिरा खाते हैं, निखिद कर्म करते हैं, उन्हें मंदिर में नहीं आने दिया जा सकता।

शान्तिकुमार ने शांतभाव से जवाब दिया—मांस-मदिरा तो बहुत-से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य भी खाते हैं। आप उन्हें क्यों नहीं रोकते? भंग तो प्राय: सभी पीते हैं। फिर वे क्यों यहां आचार्य और पुजारी बने हुए हैं?

समरकान्त ने डंडा संभालकर कहा—यह सब यों न मानेंगे। इन्हें डंडों से भगाना पड़ेगा। जरा जाकर थाने में इत्तिला कर दो कि यह लोग फौजदारी करने आए हैं।

इस वक्त तक बहुत-से पंडे-पुजारी जमा हो गए थे। सब-के-सब लाठियों के कुंदों से भीड़ को हटाने लगे। लोगों में भगदड़ मच गई। कोई पूरब भागा, कोई पश्चिम। शान्तिकुमार के सिर पर भी एक डंडा पड़ा पर खड़े आदमियों को समझाते रहे—भागो मत, भागो मत, सब-के-सब वहीं बैठ जाओ, ठाकुर के नाम पर अपने को बलिदान कर दो, धर्म के लिए

पर दूसरी लाठी सिर पर इतने जोर से पड़ी कि पूरी बात भी मुंह से न निकलने पाई और वह गिर पड़े। संभलकर फिर उठना चाहते थे कि ताबड़-तोड़ कई लाठियां पड़ गईं। यहां तक कि वह बेहोश हो गए।

## पांच

नैना बार-बार द्वार पर आती है और समरकान्त को बैठे देखकर लौट जाती है। आठ बज गए और लालाजी अभी तक गंगा-स्नान करने नहीं गए। नैना रात-भर करवटें बदलती रही। उस

भीषण घटना के बाद क्या वह सो सकती थी? उसने शान्तिकुमार को चोट खाकर गिरते देखा, पर निर्जीव-सी खड़ी रही थी। अमर ने उसे प्रारंभिक चिकित्सा की मोटी-मोटी बातें सिखा दी थीं; पर वह उस अवसर पर कुछ भी तो न कर सकी। वह देख रही थी कि आदमियों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया है। फिर उसने देखा कि डॉक्टर आया और शान्तिकुमार को एक डोली पर लेटाकर ले गया; पर वह अपनी जगह से नहीं हिली। उसका मन किसी बंधुए पशु की भांति बार-बार भागना चाहता था; पर वह रस्सी को दोनों हाथ से पकड़े हुए पूरे बल के साथ उसे रोक रही थी। कारण क्या था? संकोच! आखिर उसने कलेजा मजबूत किया और द्वार से निकलकर बरामदे में आ गई। समरकान्त ने पूछा-कहां जाती है?

"जरा मंदिर तक जाती हूं।"

"वहां का रास्ता ही बंद है। जाने कहां के चमार-सियार आकर द्वार पर बैठे हैं। किसी को जाने ही नहीं देते। पुलिस खड़ी उन्हें हटाने का यत्न कर रही है; पर अभागे कुछ सुनते ही नहीं। यह सब उसी शान्तिकुमार का पाजीपन है। आज वही इन लोगों का नेता बना हुआ है। विलायत जाकर धर्म तो खो ही आया था, अब यहां हिन्दू-धर्म की जड़ खोद रहा है। न कोई आचार न विचार, उसी शोहदे सलीम के साथ खाता-पीता है। ऐसे धर्मद्रोहियों को और क्या सूझेगी? इन्हीं सभी की सोहब्बत ने अमर को चौपट किया; इसे न जाने किसने अध्यापक बना दिया?"

नैना ने दूर से ही यह दृश्य देखकर लौट आने का बहाना किया, और मंदिर की ओर चली। फिर कुछ दूर के बाद एक गली में होकर अस्पताल की ओर चल पड़ी। दाहिने-बाएं चौकन्नी आंखों से ताकती हुई, वह तेजी से चली जा रही थी, मानो चोरी करने जा रही हो।

अस्पताल में पहुंची तो देखा, हजारों आदमियों की भीड़ लगी हुई है, और यूनिवर्सिटी के लड़के इधर-उधर दौड़ रहे हैं। सलीम भी नजर आया। वह उसे देखकर पीछे लौटना चाहती थी कि ब्रजनाथ मिल गया-अरे नैनादेवी! तुम यहां कहां? डॉक्टर साहब को रात-भर होश नहीं रहा। सलीम और मैं उनके पास बैठे रहे। इस वक्त जाकर आंखें खोली हैं।

इतने परिचित आदमियों के सामने नैना कैसे ठहरती? वह तुरंत लौट पड़ी, पर यहां आना निष्फल न हुआ। डॉक्टर साहब को होश आ गया है।

वह मार्ग में ही थी उसने सैकड़ों आदमियों को दौड़ते हुए आते देखा। वह एक गली में छिप गई। शायद फौजदारी हो गई। अब वह घर कैसे पहुंचेगी? संयोग से आत्मानन्दजी मिल गए। नैना को पहचानकर बोले-यहां तो गोलियां चल रही हैं। पुलिस कप्तान ने आकर फैर करा दिया।

नैना के चेहरे का रंग उड़ गया। जैसे नसों में रक्त का प्रवाह बंद हो गया हो। बोली-क्या आप उधर ही से आ रहे हैं?

"हां, मरते-मरते बचा। गली-गली निकल आया। हम लोग केवल खड़े थे। बस, कप्तान ने फैर कराने का हुक्म दे दिया। तुम कहां गई थीं?"

"मैं गंगा-स्नान करके लौटी जा रही थी। लोगों को भागते देखकर इधर चली आई। कैसे घर पहुंचूंगी?"

"इस समय तो उधर जाने में जोखिम है।"

फिर एक क्षण के बाद कदाचित अपनी कायरता पर लज्जित होकर कहा—किंतु गलियों में कोई डर नहीं है। चलो, मैं तुम्हें पहुंचा दूं। कोई पूछे, तो कह देना, मैं लाला समरकान्त की कन्या हूं।

नैना ने मन में कहा—यह महाशय संन्यासी बनते हैं, फिर भी इतने डरपोक ! पहले तो गरीबों को भड़काया और जब मार पड़ी, तो सबसे आगे भाग खड़े हुए। मौका न था, नहीं उन्हें ऐसा फटकारती कि याद करते। उनके साथ कई गलियों का चक्कर लगाती कोई दस बजे घर पहुंची। आत्मानन्द फिर उसी रास्ते से लौट गए। नैना ने उन्हें धन्यवाद भी न दिया। उनके प्रति अब उसे लेशमात्र भी श्रद्धा न थी।

वह अंदर गई, तो देखा—सुखदा सदर द्वार पर खड़ी है और सामने सड़क से लोग भागते चले जा रहे हैं।

सुखदा ने पूछा—तुम कहां चली गई थीं बीबी? पुलिस ने फैर कर दिया ! बेचारे, आदमी भागे जा रहे हैं।

''मुझे तो रास्ते ही में पता लगा। गलियों में छिपती हुई आई हूं।''

''लोग कितने कायर हैं ! घरों के किवाड़ तक बंद कर लिए।''

''लालाजी जाकर पुलिस वालों को मना क्यों नहीं करते?''

''इन्हीं के आदेश से तो गोली चली है। मना कैसे करेंगे?''

''अच्छा ! दादा ही ने गोली चलवाई है?''

''हां, इन्हीं ने जाकर कप्तान से कहा है। और अब घर में छिपे बैठे हैं। मैं अछूतों का मंदिर जाना उचित नहीं समझती, लेकिन गोलियां चलते देखकर मेरा खून खौल रहा है। जिस धर्म की रक्षा गोलियों से हो, उस धर्म में सत्य का लोप समझो। देखो, देखो उस आदमी बेचारे को गोली लग गई ! छाती से खून बह रहा है !''

यह कहती हुई वह समरकान्त के सामने जाकर बोली—क्यों लालाजी, रक्त की नदी बह जाय, पर मंदिर का द्वार न खुलेगा !

समरकान्त ने अविचलित भाव से उत्तर दिया—क्या बकती है बहू, इन डोम-चमारों को मंदिर में घुसने दें? तू तो अमर से भी दो-दो हाथ आगे बढ़ी जाती है। जिसके हाथ का पानी नहीं पी सकते, उसे मंदिर में कैसे जाने दें?

सुखदा ने और वाद-विवाद न किया। वह मनस्वी महिला थी। यही तेजस्विता, जो अभिमान बनकर उसे विलासिनी बनाए हुए थी, जो उसे छोटों से मिलने न देती थी, जो उसे किसी से दबने न देती थी, उत्सर्ग के रूप में उबल पड़ी। वह उन्माद की दशा में घर से निकली और पुलिस वालों के सामने खड़ी होकर, भागने वालों को ललकारती हुई बोली—भाइयो ! क्यों भाग रहे हो ? यह भागने का समय नहीं, छाती खोलकर सामने आने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों को होम करते हो। धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।

भागने वालों के पांव संभल गए। एक महिला को गोलियों के सामने खड़ी देखकर कायरता भी लज्जित हो गई। एक बुढ़िया ने पास आकर कहा—बेटी, ऐसा न हो, तुम्हें गोली लग जाय !

सुखदा ने निश्चल भाव से कहा--जहा इतने आदमी मर गए वहां मेरे जाने से कोई हानि न होगी। भाइयो, बहनो भागो मत ! तुम्हारे प्राणों का बलिदान पाकर ही ठाकुरजी तुमसे प्रसन्न होंगे !

कायरता की भांति वीरता भी संक्रामक होती है। एक क्षण में उड़ते हुए पत्तों की तरह भागने वाले आदमियों की एक दीवार-सी खड़ी हो गई। अब डंडे पड़ें, या गोलियों की वर्षा हो, उन्हें भय नहीं।

बंदूकों से धांय ! धांय ! की आवाजें निकलीं। एक गोली सुखदा के कानों के पास से सन से निकल गई। तीन-चार आदमी गिर पड़े ! पर दीवार ज्यों-की-त्यों अचल खड़ी थी।

फिर बंदूकें छूटीं। चार-पांच आदमी फिर गिरे; लेकिन दीवार न हिली। सुखदा उसे थामे हुए थी। एक ज्योति सारे घर को प्रकाश से भर देती है। बलवान् हृदय उसे दीपक की भांति समूह में साहस भर देता है।

भीषण दृश्य था। लोग अपने प्यारों को आंखों के सामने तड़पते देखते थे; पर किसी की आंखों में आंसू की बूंद न थी। उनमें इतना साहस कहां से आ गया था? फौजें क्या हमेशा मैदान में डटी ही रहती हैं? वही सेना जो एक दिन प्राणों की बाजी खेलती है, दूसरे दिन बंदूक की पहली आवाज पर मैदान से भाग खड़ी होती है; पर यह किराए के सिपाहियों का हाल है, जिनमें सत्य और न्याय का बल नहीं होता। जो केवल पेट के लिए या लूट के लिए लड़ते हैं। इस समूह में सत्य और धर्म का बल आ गया था। हरेक स्त्री और पुरुष, चाहे वह कितना मूर्ख क्यों न हो, समझने लगा था कि हम अपने धर्म और हक के लिए लड़ रहे हैं, और धर्म के लिए प्राण देना अछूत-नीति में भी उतनी ही गौरव की बात है जितनी द्विज-नीति में।

मगर यह क्या? पुलिस के जवान क्यों संगीनें उतार रहे हैं? बंदूकें क्यों कंधों पर रख लीं? अरे ! सब-के-सब तो पीछे की तरफ घूम गए। उनकी चार-चार की कतारें बन रही हैं। मार्च का हुक्म मिलता है। सब-के-सब मंदिर की तरफ लौटे जा रहे हैं। एक कांस्टेबल भी नहीं रहा। केवल लाला समरकान्त पुलिस सुपरिंटेंडेंट से कुछ बातें कर रहे हैं, और जन-समूह उसी भांति सुखदा के पीछे निश्चल खड़ा है। एक क्षण में सुपरिंटेंडेंट भी चला जाता है। फिर लाला समरकान्त सुखदा के समीप आकर ऊंचे स्वर में बोलते हैं--

मंदिर खुल गया है। जिसका जी चाहे दर्शन करने जा सकता है। किसी के लिए रोक-टोक नहीं है।

जन-समूह में हलचल पड़ जाती है। लोग उन्मत्त हो-होकर सुखदा के पैरों पर गिरते हैं, और तब मंदिर की तरफ दौड़ते हैं।

मगर दस मिनट के बाद ही समूह उसी स्थान पर लौट आता है, और लोग अपने प्यारों की लाशों से गले मिलकर रोने लगते हैं। सेवाश्रम के छात्र डोलियां ले-लेकर आ जाते हैं, और आहतों को उठा ले जाते हैं। वीरगति पाने वालों के क्रिया-कर्म का आयोजन होने लगता है। बजाजों की दूकानों से कपड़े के थान आ जाते हैं, कहीं से बांस, कहीं से रस्सियां, कहीं से घी, कहीं से लकड़ी। विजेताओं ने धर्म ही पर विजय नहीं पाई है, हृदयों पर भी विजय पाई है। सारा नगर उनका सम्मान करने के लिए उतावला हो उठा है।

संध्या समय इन धर्म-विजेताओं की अर्थियां निकलीं। शहर फट पड़ा। जनाजे पहले

मंदिर-द्वार पर गए। मंदिर के दोनों द्वार खुले हुए थे। पुजारी और ब्रह्मचारी किसी का पता न था। सुखदा ने मंदिर से तुलसीदल लाकर अर्थियों पर रखा और मरने वालों के मुख में चरणामृत डाला। इन्हीं द्वारों को खुलवाने के लिए यह भीषण संग्राम हुआ। अब वह द्वार खुला हुआ वीरों का स्वागत करने के लिए हाथ फैलाए हुए है, पर ये रूठने वाले अब द्वार की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। कैसे विचित्र विजेता हैं! जिस वस्तु के लिए प्राण दिए, उसी से इतना विराग।

जरा देर के बाद अर्थियां नदी की ओर चलीं। वही हिन्दू-समाज जो एक घंटा पहले इन अछूतों से घृणा करता था, इस समय उन अर्थियों पर फूलों की वर्षा कर रहा था। बलिदान में कितनी शक्ति है?

और सुखदा? वह तो विजय की देवी थी। पग-पग पर उसके नाम की जय-जयकार होती थी। कहीं फूलों की वर्षा होती थी, कहीं मेव की, कहीं रुपयों की। घड़ी भर पहले वह नगर में नगण्य थी। इस समय वह नगर की रानी थी। इतना यश बिरले ही पाते हैं। उसे इस समय वास्तव में दोनों तरफ के ऊंचे मकान कुछ नीचे, और सड़क के दोनों ओर खड़े होने वाले मनुष्य कुछ छोटे मालूम होते थे, पर इतनी नम्रता, इतनी विनय उसमें कभी न थी। मानो इस यश और ऐश्वर्य के भार से उसका सिर झुका जाता हो।

इधर गंगा के तट पर चिताएं जल रही थीं, उधर मंदिर इस उत्सव के आनंद में दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा था, मानो वीरों की आत्माएं चमक रही हों!

## छः

दूसरे दिन मंदिर में कितना समारोह हुआ, शहर में कितनी हलचल मची, कितने उत्सव मनाए गए, इसकी चर्चा करने की जरूरत नहीं। सारे दिन मंदिर में भक्तों का तांता लगा रहा। ब्रह्मचारी आज फिर विराजमान हो गए थे और जितनी दक्षिणा उन्हें आज मिली, उतनी, शायद उम्र भर में न मिली होगी। इससे उनके मन का विद्रोह बहुत कुछ शात हो गया, किंतु ऊंची जाति वाले सज्जन अब भी मंदिर में देह बचाकर आते और नाक सिकोड़े हुए कतराकर निकल जाते थे। सुखदा मंदिर के द्वार पर खड़ी लोगों का स्वागत कर रही थी। स्त्रियों से गले मिलती थी, बालकों को प्यार करती थी और पुरुषों को प्रणाम करती थी।

कल की सुखदा और आज की सुखदा में कितना अंतर हो गया? भोग-विलास पर प्राण देने वाली रमणी आज सेवा और दया की मूर्ति बनी हुई है। इन दुखियों की भक्ति, श्रद्धा और उत्साह देख-देखकर उसका हृदय पुलकित हो रहा है। किसी की देह पर साबुत कपड़े नहीं हैं, आंखों से सूझता नहीं, दुर्बलता के मारे सीधे पांव नहीं पड़ते, पर भक्ति में मस्त दौड़े चले आ रहे हैं, मानो संसार का राज्य मिल गया हो, जैसे संसार से दुख-दरिद्रता का लोप हो गया हो। ऐसी सरल, निष्कपट भक्ति के प्रवाह में सुखदा भी बही जा रही थी। प्राय: मनस्वी, कर्मशील, महत्त्वाकांक्षी प्राणियों की यही प्रकृति है। भोग करने वाले ही वीर होते हैं।

छोटे-बड़े सभी सुखदा को पूज्य समझ रहे थे, और उनकी यह भावना सुखदा में एक गर्वमय सेवा का भाव प्रदीप्त कर रही थी। कल उसने जो कुछ किया, वह एक प्रबल आवेश

में किया। उसका फल क्या होगा, इसकी उसे जरा भी चिंता न थी। ऐसे अवसरों पर हानि-लाभ का विचार मन को दुर्बल बना देता है। आज वह जो कुछ कर रही थी, उसमें उसके मन का अनुराग था, सद्भाव था। उसे अब अपनी शक्ति और क्षमता का ज्ञान हो गया है, वह नशा हो गया है, जो अपनी सुध-बुध भूलकर सेवा-रत हो जाता है; जैसे अपनी आत्मा को पा गई है।

अब सुखदा नगर की नेत्री है। नगर में जाति-हित के लिए जो काम होता है, सुखदा के हाथों उसका श्रीगणेश होता है। कोई उत्सव हो, कोई परमार्थ का काम हो, कोई राष्ट्र का आंदोलन हो, सुखदा का उसमें प्रमुख भाग होता है। उसका जी चाहे या न चाहे, भक्त लोग उसे खींच ले जाते हैं। उसकी उपस्थिति किसी जलसे की सफलता की कुंजी है। आश्चर्य यह है कि वह बोलने भी लगी है, और उसके भाषण में चाहे भाषा चातुर्य न हो, पर सच्चे उद्गार अवश्य होते हैं। शहर में कई सार्वजनिक संस्थाएं हैं, कुछ सामाजिक, कुछ राजनैतिक, कुछ धार्मिक। सभी निर्जीव-सी पड़ी थीं। सुखदा के आते ही उनमें स्फूर्ति-सी आ गई है। मादक वस्तु-वहिष्कार-सभा बरसों से बेजान पड़ी थी। न कुछ प्रचार होता था न कोई संगठन। उसका मंत्री एक दिन सुखदा को खींच ले गया। दूसरे ही दिन उस सभा की एक भजन-मंडली बन गई, कई उपदेशक निकल आए, कई महिलाएं घर-घर प्रचार करने के लिए तैयार हो गई और मुहल्ले-मुहल्ले पंचायतें बनने लगीं। एक नए जीवन की सृष्टि हो गई।

अब सुखदा को गरीबों की दुर्दशा के यथार्थ रूप देखने के अवसर मिलने लगे। अब तक इस विषय में उसे जो कुछ ज्ञान था, वह सुनी-सुनाई बातों पर आधारित था। आंखों से देखकर उसे ज्ञात हुआ, देखने और सुनने में बड़ा अंतर है। शहर की उन अंधेरी तंग गलियों में, जहां वायु और प्रकाश का कभी गुजर ही न होता था, जहां की जमीन ही नहीं, दीवार भी सीली रहती थीं, जहां दुर्गंध के मारे नाक फटती थी, भारत की कमाऊ संतान रोग और दरिद्रता के पैरों तले-दबी हुई अपने क्षीण जीवन को मृत्यु के हाथों से छीनने में प्राण दे रही थीं। उसे अब मालूम हुआ कि अमरकान्त को धन और विलास से जो विरोध था, यह कितना यथार्थ था। उसे खुद अब उस मकान में रहते, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनते, अच्छे- अच्छे पदार्थ खाते ग्लानि होती थी। नौकरों से काम लेना उसने छोड़ दिया। अपनी धोती खुद छांटती थी घर में झाड़ू खुद लगाती। वह जो आठ बजे सोकर उठती थी, अब मुंह-अंधेरे उठती, और घर के काम-काज में लग जाती। नैना तो अब उसकी पूजा-सी करती थी। लालाजी अपने घर की यह दशा देख-देख कुढ़ते थे, पर करते क्या? सुखदा के यहां तो अब नित्य दरबार-सा लगा रहता था। बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े विद्वान् आते रहते थे। इसलिए वह अब बहू से कुछ दबते थे। गृहस्थी के जंजाल से अब उनका मन ऊबने लगा था। जिस घर में उनसे किसी को सहानुभूति न हो, उस घर में कैसे अनुराग होता। जहां अपने विचारों का राज हो, वही अपना घर है। जो अपने विचारों को मानते हों, वही अपने सगे हैं। यह घर अब उनके लिए सराय-मात्र था। सुखदा या नैना, दोनों ही से कुछ कहते उन्हें डर लगता था।

एक दिन सुखदा ने नैना से कहा—बीबी, अब तो इस घर में रहने को जी नहीं चाहता। लोग कहते होंगे, आप तो महल में रहती हैं, और हमें उपदेश करती हैं। महीनों दौड़ते हो गए, सब कुछ करके हार गई, पर नशेबाजों पर कुछ भी असर न हुआ। हमारी बातों पर कोई कान

ही नहीं देता। अधिकतर तो लोग अपनी मुसीबतों को भूल जाने ही के लिए नशे करते हैं। वह हमारी क्यों सुनने लगे? हमारा असर तभी होगा, जब हम भी उन्हीं की तरह रहें।

कई दिनों से सर्दी चमक रही थी, कुछ वर्षा हो गई थी और पूस की ठंडी हवा आर्द्र होकर आकाश को कुहरे से आच्छन्न कर रही थी। कहीं-कहीं पाला भी पड़ गया था—मुन्ना बाहर जाकर खेलना चाहता था—वह अब लटपटाता हुआ चलने लगा था—पर नैना उसे ठंड के भय से रोके हुए थी। उसके सिर पर ऊनी कनटोप बांधती हुई बोली—यह तो ठीक है, पर उनकी तरह रहना हमारे लिए साध्य भी है, यह देखना है। मैं तो शायद एक ही महीने में मर जाऊं।

सुखदा ने जैसे मन-ही-मन निश्चय करके कहा—मैं तो सोच रही हूं, किसी गली में छोटा-सा घर लेकर रहूं। इसका कनटोप उतारकर छोड़ क्यों नहीं देतीं? बच्चों को गमलों के पौधे बनाने की जरूरत नहीं, जिन्हें लू का एक झांका भी सुखा सकता है। इन्हें तो जंगल के वृक्ष बनाना चाहिए, जो धूप और वर्षा, ओले और पाले किसी की परवाह नहीं करते।

नैना ने मुस्कराकर कहा—शुरू से तो इस तरह रखा नहीं, अब बेचारे की सासत करने चली हो। कहीं ठंड-वंड लग जाए, तो लेने के देने पड़ें।

"अच्छा भई, जैसे चाहो रखो, मुझे क्या करना है?"

"क्या, इसे अपने साथ उस छोटे-से घर में न रखोगी?"

"जिसका लड़का है, वह जैसे चाहे रखे। मैं कौन होती हूं!"

"अगर भैया के सामने तुम इस तरह रहतीं, तो तुम्हारे चरण धो-धोकर पीते!"

सुखदा ने अभिमान के स्वर में कहा—मैं तो जो तब थी, वही अब भी हूं। जब दादाजी से बिगड़कर उन्होंने अलग घर लिया था, तो क्या मैंने उनका साथ न दिया था? वह मुझे विलासिनी समझते थे, पर मैं कभी विलास की लौंडी नहीं रही। हां, मैं दादाजी को रुष्ट नहीं करना चाहती थी। यही बुराई मुझमें थी। मैं अब अलग रहूंगी, तो उनकी आज्ञा से। तुम देख लेना, मैं इस ढंग से प्रश्न उठाऊंगी कि वह बिल्कुल आपत्ति न करेंगे चलो, जरा डॉक्टर शान्तिकुमार को देख आवें। मुझे तो उधर जाने का अवकाश ही नहीं मिला।

नैना प्राय: एक बार रोज शान्तिकुमार को देख आती थी। हां, सुखदा से कुछ कहती न थी। वह अब उठने-बैठने लगे थे, पर अभी इतने दुर्बल थे कि लाठी के सहारे बगैर एक पग भी न चल सकते थे। चोटें उन्होंने खाई—छ: महीने से शय्या-सेवन कर रहे थे—और यश सुखदा ने लूटा। वह दु:ख उन्हें और भी घुलाए डालता था। यद्यपि उन्होंने अंतरंग मित्रों से भी अपनी मनोव्यथा नहीं कहीं, पर यह कांटा खटकता अवश्य था। अगर सुखदा स्त्री न होती, और वह भी प्रिय शिष्य और मित्र की, तो कदाचित वह शहर छोड़कर भाग जाते। सबसे बड़ा अनर्थ यह था कि इन छ: महीनों में सुखदा दो-तीन बार से ज्यादा उन्हें देखने न गई थी। वह भी अमरकान्त के मित्र थे और इस नाते से सुखदा को उन पर विशेष श्रद्धा न थी।

नैना को सुखदा के साथ जाने में कोई आपत्ति न हुई। रेणुका देवी ने कुछ दिनों से मोटर रख ली थी, पर वह रहती थी सुखदा ही की सवारी में। दोनों उस पर बैठकर चलीं। मुन्ना भला क्यों अकेले रहने लगा था? नैना ने उसे भी ले लिया।

सुखदा ने कुछ दूर जाने के बाद कहा—यह सब अमीरों के चोंचले हैं। मैं चाहूं तो दो-

तीन आने में अपना निबाह कर सकती हूं।

नैना ने विनोद-भाव से कहा—पहले करके दिखा दो, तो मुझे विश्वास आए। मैं तो नहीं कर सकती।

"जब तक इस घर में रहूंगी, मैं भी न कर सकूंगी। इसलिए तो मैं अलग रहना चाहती हूं।"

"लेकिन साथ तो किसी को रखना ही पड़ेगा?"

"मैं कोई जरूरत नहीं समझती। इसी शहर में हजारों औरतें अकेली रहती हैं। फिर मेरे लिए क्या मुश्किल है? मेरी रक्षा करने वाले बहुत हैं। मैं खुद अपनी रक्षा कर सकती हूं। (मुस्कराकर) हां, खुद किसी पर मरने लगूं, तो दूसरी बात है।"

शान्तिकुमार सिर से पांव तक कंबल लपेटे, अंगठी जलाए, कुर्सी पर बैठे एक स्वास्थ्य-संबंधी पुस्तक पढ़ रहे थे। वह कैसे जल्द-से-जल्द भले-चंगे हो जायं, आजकल उन्हें यही चिंता रहती थी। दोनों रमणियों के आने का समाचार पाते ही किताब रख दी और कंबल उतारकर रख दिया। अंगीठी भी हटाना चाहते थे; पर इसका अवसर न मिला। दोनों ज्योंही कमरे में आईं, उन्हें प्रणाम करके कुर्सियों पर बैठने का इशारा करते हुए बोले—मुझे आप लोगों पर ईर्ष्या हो रही है। आप इस शीत में घूम-फिर रही हैं और मैं अंगीठी जलाए पड़ा हूं। करूं क्या, उठा ही नहीं जाता। जिंदगी के छः महीने मानो कट गए, बल्कि आधी उम्र कहिए। मैं अच्छा होकर भी आधा ही रहूंगा। कितनी लज्जा आती है कि देवियां बाहर निकलकर काम करें और मैं कोठरी में बंद पड़ा रहूं।

सुखदा ने जैसे आंसू पोंछते हुए कहा—आपने इस नगर में जितनी जागृति फैला दी, उस हिसाब से तो आपकी उम्र चौगुनी हो गई। मुझे तो बैठे-बैठाए यश मिल गया।

शान्तिकुमार के पीले मुख पर आत्मगौरव की आभा झलक पड़ी। सुखदा के मुंह से यह सनद पाकर, मानो उनका जीवन सफल हो गया। बोले—यह आपकी उदारता है। आपने जो कुछ कर दिखाया और कर रही हैं, वह आप ही कर सकती हैं। अमरकान्त आएंगे तो उन्हें मालूम होगा कि अब उनके लिए यहां स्थान नहीं है। यह साल भर में जो कुछ हो गया इसकी वह स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे। यहां सेवाश्रम में लड़कों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। अगर यही हाल रहा, तो कोई दूसरी जगह लेनी पड़ेगी। अध्यापक कहां से आएंगे, कह नहीं सकता। सभ्य समाज की यह उदासीनता देखकर मुझे तो कभी-कभी बड़ी चिंता होने लगती है। जिसे देखिए स्वार्थ में मगन है। जो जितना ही महान है उसका स्वार्थ भी उतना ही महान है। यूरोप की डेढ़ सौ साल तक उपासना करके हमें यही वरदान मिला है। लेकिन यह सब होने पर भी हमारा भविष्य उज्ज्वल है। मुझे इसमें संदेह नहीं। भारत की आत्मा अभी जीवित है और मुझे विश्वास है कि वह समय आने में देर नहीं है, जब हम सेवा और त्याग के पुराने आदर्श पर लौट आएंगे। तब धन हमारे जीवन का ध्येय न होगा। तब हमारा मूल्य धन के कांटे पर न तौला जाएगा।

मुन्ने ने कुर्सी पर चढ़कर मेज पर से दवात उठा ली थी और अपने मुंह में कालिमा पोत-पोतकर खुश हो रहा था। नैना ने दौड़कर उसके हाथ से दवात छीन ली और एक धौल जमा दिया। शान्तिकुमार ने उठने की असफल चेष्टा करके कहा—क्यों मारती हो नैना,

देखो तो कितना महान् पुरुष है, जो अपने मुंह में कालिमा पोतकर भी प्रसन्न होता है, नहीं तो हम अपनी कालिमाओं को सात परद अन्दर छिपाते है ।

नैना ने बालक को उनकी गोद में देते हुए कहा—तो लीजिए, इस महान् पुरुष को आप ही। इसके मारे चैन से बैठना मुश्किल है।

शान्तिकुमार ने बालक को छाती से लगा लिया। उस गर्म और गुदगुदे स्पर्श में उनकी आत्मा ने जिस परितृप्ति और माधुर्य का अनुभव किया, वह उनके जीवन में बिल्कुल नया था। अमरकान्त से उन्हें जितना स्नेह था, वह जैसे इस छोटे से रूप में सिमटकर और ठोस और भारी हो गया था। अमर की याद करके उनकी आंखें सजल हो गईं। अमर ने अपने को कितने अतुल आनंद से वंचित कर रखा है, इसका अनुमान करके वह जैसे दब गए। आज उन्हें स्वयं अपने जीवन में एक अभाव का, एक रिक्तता का आभास हुआ। जिन कामनाओं का वह अपने विचार में संपूर्णतः दमन कर चुके थे वह राख में छिपी हुई चिंगारियों की भाँति सजीव हो गई।

मुन्ने ने हाथों की स्याही शान्तिकुमार के मुख में पोतकर नीचे उतरने का आग्रह किया, मानो इसीलिए यह उनकी गोद में गया था। नैना ने हंसकर कहा—जरा अपना मुंह तो देखिए, डॉक्टर साहब ! इस महान् पुरुष ने आपके साथ होली खेल डाली ! बदमाश है।

सुखदा भी हंसी को न रोक सकी। शान्तिकुमार ने शीशे में मुंह देखा, तो वह भी जोर से हंसे। यह कालिमा का टीका उन्हें इस समय यश के तिलक से भी कहीं उल्लासमय जान पड़ा।

सहसा सुखदा ने पूछा—आपने शादी क्यों नहीं की, डॉक्टर साहब?

शान्तिकुमार सेवा और व्रत का जो आधार बनाकर अपने जीवन का निर्माण कर रहे थे, वह इस शय्या सेवन के दिनों में कुछ नीचे खिसकता हुआ नजर जान पड़ रहा था। जिसे उन्होंने जीवन का मूल सत्य समझा था, वह अब उतना दृढ़ न रह गया था। इस आपत्काल में ऐसे कितने अवसर आए, जब उन्हें अपना जीवन भार सा मालूम हुआ। तीमारदारों की कमी न थी। आठों पहर दो-चार आदमी घेरे ही रहते थे। नगर के बड़े-बड़े नेताओं का आना-जाना भी बराबर होता रहता था, पर शान्तिकुमार को ऐसा जान पड़ता था कि वह दूसरों की दया या शिष्टता पर बोझ हो रहे हैं। इन सेवाओं में वह माधुर्य, वह कोमलता न थी, जिससे आत्मा की तृप्ति होती। भिक्षुक को क्या अधिकार है कि वह किसी के दान का निरादर करे। दान-स्वरूप उसे जो कुछ मिल जाय, वह सभी स्वीकार करना होगा। इन दिनों उन्हें कितनी ही बार अपनी माता की याद आई थीं। वह स्नेह कितना दुर्लभ था। नैना जो एक क्षण के लिए उनका हाल पूछने आ जाती थी, इसमें उन्हें न जाने क्यों एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव होता था। वह जब तक रहती थी, उनकी व्यथा जाने कहां छिप जाती थी? उसके जाते ही फिर वही कराहना, वही बेचैनी ! उनकी समझ में कदाचित् यह नैना का सरल अनुराग ही था, जिसने उन्हें मौत के मुंह से निकाल लिया, लेकिन वह स्वर्ग की देवी ! कुछ नहीं !

सुखदा का यह प्रश्न सुनकर मुस्कराते हुए बोले—इसीलिए कि विवाह करके किसी को सुखी नहीं देखा।

सुखदा ने समझा यह उस पर चोट है। बोली—दोष भी बराबर स्त्रियों का ही देखा होगा,

क्यों?

शान्तिकुमार ने जैसे अपना सिर पत्थर से बचाया–यह तो मैंने नहीं कहा। शायद इसकी उल्टी बात हो। शायद नहीं, बल्कि उल्टी है।

"खैर, इतना तो आपने स्वीकार किया। धन्यवाद। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि पुरुष चाहे तो विवाह करके सुखी हो सकता है।"

"लेकिन पुरुष में थोड़ी-सी पशुता होती है, जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता। वही पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम से वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुंचेगा, वह भी स्त्री हो जाएगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया, इन्ही आधारों पर यह सृष्टि थमी हुई है और यह स्त्रियों के गुण हैं। अगर स्त्री इतना समझ ले, तो फिर दोनों का जीवन सुखी हो जाय। स्त्री पशु के साथ पशु हो जाती है, तभी दोनों सुखी होते हैं।"

सुखदा ने उपहास के स्वर में कहा–इस समय तो आपने सचमुच एक आविष्कार कर डाला। मैं तो हमेशा यह सुनती आती हूं कि स्त्री मूर्ख है, ताड़ना के योग्य है, पुरुषों के गले का बंधन है और जाने क्या-क्या? बस, इधर से भी मरदों की जीत, उधर से भी मरदो की जीत। अगर पुरुष नीचा है, तो उसे स्त्रियों का शासन क्यों अप्रिय लगे? परीक्षा करके देखा तो होता, आप तो दूर से ही डर गए !

शान्तिकुमार ने कुछ झेंपते हुए कहा–अब अगर चाहूं भी, तो बूढ़ों को कौन पूछता है?

"अच्छा, आप बूढ़े भी हो गए? तो किसी अपनी-जैसी बुढ़िया से कर लीजिए न?"

"जब तुम जैसी विचारशील और अमर-जैसे गंभीर स्त्री-पुरुष में न बनी, तो फिर मुझे किसी तरह की परीक्षा करने की जरूरत नहीं रही। अमर-जैसा विनय और त्याग मुझमे नही है, और तुम जैसी उदार और  "

सुखदा ने बात काटी–मैं उदार नहीं हूं, न विचारशील हूं। हां, पुरुष के प्रति अपना धर्म समझती हूं। आप मुझसे बड़े हैं, और मुझसे कहीं बुद्धिमान हैं। मैं आपको अपने बड़े भाई के तुल्य समझती हूं। आज आपका स्नेह और सौजन्य देखकर मेरे चित्त को बड़ी शांति मिली। मैं आपसे बेशर्म होकर पूछती हूं, ऐसा पुरुष जो, स्त्री के प्रति अपना धर्म न समझे, क्या अधिकार है कि वह स्त्री से व्रत-धारिणी रहने की आशा रखे? आप सत्यवादी हैं। मैं आपसे पूछती हूं, यदि मैं उस व्यवहार का बदला उसी व्यवहार से दूं, तो आप मुझे क्षम्य समझेंगे?

शान्तिकुमार ने निश्शंक भाव से कहा–नहीं।

"उन्हें आपने क्षम्य समझ लिया?"

"नहीं ।"

"और यह समझकर भी आपने उनसे कुछ नहीं कहा? कभी एक पत्र भी नहीं लिखा? मैं पूछती हूं, इस उदासीनता का क्या कारण है? यही न कि इस अवसर पर एक नारी का अपमान हुआ है। यदि वही कृत्य मुझसे हुआ होता, तब भी आप इतने ही उदासीन रह सकते? बोलिए।"

शान्तिकुमार रो पड़े। नारी-हृदय की संचित व्यथा आज इस भीषण विद्रोह के रूप में प्रकट होकर कितनी करुण हो गई थी।

सुखदा उसी आवेश में बोली—कहते हैं, आदमी की पहचान उसकी संगत से होती है। जिसकी संगत आप, मुहम्मद सलीम और स्वामी आत्मानन्द जैसे महानुभावों की हो, वह अपने धर्म को इतना भूल जाय यह बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं यह नहीं कहती कि मैं निर्दोष हूं। कोई स्त्री यह दावा नहीं कर सकती, और न कोई पुरुष ही यह दावा कर सकता है। मैंने सकीना से मुलाकात की है। संभव है उसमें वह गुण हो, जो मुझमें नहीं है। वह ज्यादा मधुर है, उसके स्वभाव में कोमलता है। हो सकता है, वह प्रेम भी अधिक कर मकती हो, लेकिन यदि इसी तरह सभी पुरुष और स्त्रियां तुलना करके बैठ जायं, तो संसार की क्या गति होगी? फिर तो यहां रक्त और आंसुओं की नदियों के सिवा और कुछ न दिखाई देगा।

शान्तिकुमार ने परास्त होकर कहा—मैं अपनी गलती को मानता हूं, सुखदादेवी। मैं तुम्हें न जानता था और इस भय में था कि तुम्हारी ज्यादती है। मैं आज ही अमर को पत्र

सुखदा ने फिर बात काटी—नहीं, मैं आपसे यह प्रेरणा करने नहीं आई हूं, और न यह चाहती हूं कि आप उनसे मेरी ओर से दया की भिक्षा मांगें। यदि वह मुझसे दूर भागना चाहते हैं, तो मैं भी उनको बांधकर नहीं रखना चाहती। पुरुष को जो आजादा मिली है, वह उसे मुबारक रहे, वह अपना तन-मन गली-गली बेचता फिरे। मैं अपने बंधन में प्रसन्न हूं। और ईश्वर से यही विनती करती हूं कि वह इस बंधन में मुझे डाले रखे। मैं जलन या ईर्ष्या से विचलित हो जाऊं, उस दिन के पहले वह मेरा अंत कर दे। मुझे आपसे मिलकर आज जो तृप्ति हुई, उसका प्रमाण यही है कि मैं आपसे वह बातें कह गई, जो मैंने कभी अपनी माता से भी नहीं कहीं। बीबी आपका बखान करती थी उससे ज्यादा सज्जनता आपमें पाई, मगर आपको मैं अकेला न रहने दूंगी। ईश्वर वह दिन लाए कि मैं इस घर में भाभी के दर्शन करूं।

जब दोनों रमणियां यहां से चलीं, तो डॉक्टर साहब लाठी टेकते हुए फाटक तक उन्हें पहुंचाने आए और फिर कमरे में आकर लेटे, तो ऐसा जान पड़ा कि उनका यौवन जाग उठा है। सुखदा के वेदना से भरे हुए शब्द उनके कानों में गूंज रहे थे और नैना मुन्ने को गोद में लिए जैसे उनके सम्मुख खड़ी थी।

## सात

उसी रात को शान्तिकुमार ने अमर के नाम खत लिखा। वह उन आदमियों में थे जिन्हें और सभी कामों के लिए समय मिलता है, खत लिखने के लिए नहीं मिलता। जितनी अधिक घनिष्ठता, उतनी ही बेफिक्री। उनकी मैत्री खतों से कहीं गहरी होती है। शान्तिकुमार को अमर के विषय में सलीम से सारी बातें मालूम होती रहती थीं। खत लिखने की क्या जरूरत थी? सकीना से उसे प्रेम हुआ इसकी जिम्मेदारी उन्होंने सुखदा पर रखी थी, पर आज सुखदा से मिलकर उन्होंने चित्र का दूसरा रुख भी देखा, और सुखदा को उस जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया। खत जो लिखा, वह इतना लंबा-चौड़ा कि एक ही पत्र में साल भर की कसर निकल गई। अमरकान्त के जाने के बाद शहर में जो कुछ हुआ, उसकी पूरी-पूरी कैफियत बयान की,

और अपने भविष्य के संबंध में उसकी सलाह भी पूछी। अभी तक उन्होंने नौकरी से इस्तीफा नहीं दिया था। पर इस आंदोलन के बाद से उन्हें अपने पद पर रहना कुछ जंचता न था। उनके मन में बार-बार शंका होती, जब तुम गरीबों के वकील बनते हो, तो तुम्हें क्या हक है कि तुम पांच सौ रुपये माहवार सरकार से वसूल करो। अगर तुम गरीबों की तरह नहीं रह सकते, तो गरीबों की वकालत करना छोड़ दो। जैसे और लोग आराम करते हैं, वैसे तुम भी मजे से खाते-पीते रहो। लेकिन इस निर्द्वंद्विता को उनकी आत्मा स्वीकार न करती थी। प्रश्न था, फिर गुजर कैसे हो? किसी देहात में जाकर खेती करें, या क्या? यों रोटियां तो बिना काम किए भी चल सकती थीं; क्योंकि सेवाश्रम को काफी चंदा मिलता था; लेकिन दान-वृत्ति की कल्पना ही से उनके आत्माभिमान को चोट लगती थी।

लेकिन पत्र लिखे चार दिन हो गए, कोई जवाब नहीं। अब डॉक्टर साहब के सिर पर एक बोझ-सा सवार हो गया। दिन-भर डाकिए की राह देखा करते; पर कोई खबर नहीं। यह बात क्या है? क्या अमर कहीं दूसरी जगह तो नहीं चला गया? सलीम ने पता तो गलत नहीं बता दिया? हरिद्वार से तीसरे दिन जवाब आना चाहिए। उसके आठ दिन हो गए। कितनी ताकीद कर दी थी कि तुरंत जवाब लिखना। कहीं बीमार तो नहीं हो गया? दूसरा पत्र लिखने का साहस न होता था। पूरे दस पन्ने कौन लिखे? वह पत्र भी कुछ ऐसा-वैसा पत्र न था। शहर का साल-भर का इतिहास था। वैसा पत्र फिर न बनेगा। पूरे तीन घंटे लगे थे। इधर आठ दिन से सलीम नहीं आया। वह तो अब दूसरी दुनिया में है। अपने आई० सी० एस० की धुन में है। यहां क्यों आने लगा? मुझे देखकर शायद आंखें चुराने लगे। स्वार्थ भी ईश्वर ने क्या चीज पैदा की है? कहां तो नौकरी के नाम से घृणा थी। नौजवान सभा के भी मेंबर, कांग्रेस के भी मेंबर। जहां देखिए, मौजूद। और मामूली मेंबर नहीं, प्रमुख भाग लेने वाला। कहां अब आई० सी० एस० की पड़ी हुई है? बच्चा पास तो क्या होंगे, वहां धोखा-धड़ी नहीं चलने की, मगर नामिनेशन तो हो ही जाएगा। हाफिजजी पूरा जोर लगाएंगे! एक इम्तिहान में भी तो पास न हो सकता था। कहीं परचे उड़ाए, कहीं नकल की, कहीं रिश्वत दी, पक्का शोहदा है। और ऐसे लोग आई० सी० एस० होंगे!

सहसा सलीम की मोटर आई, और सलीम ने उतरकर हाथ मिलाते हुए कहा—अब तो आप अच्छे मालूम होते हैं। चलने-फिरने में दिक्कत तो नहीं होती?

शान्तिकुमार ने शिकवे के अंदाज से कहा—मुझे दिक्कत होती है या नहीं होती, तुम्हें इससे मतलब; महीने भर के बाद तुम्हारी सूरत नजर आई है। तुम्हें क्या फिक्र कि मैं मरा या जीता हूं? मुसीबत में कौन साथ देता है! तुमने कोई नई बात नहीं की!

''नहीं डॉक्टर साहब, आजकल इम्तिहान के झंझट में पड़ा हुआ हूं, मुझे तो इससे नफरत है। खुदा जानता है, नौकरी से मेरी रूह कांपती है; लेकिन करूं क्या, अब्बाजान हाथ धोकर पीछे पड़े हुए हैं। वह तो आप जानते ही हैं, मैं एक सीधा जुमला ठीक नहीं लिख सकता, मगर लियाकत कौन देखता है? यहां तो सनद देखी जाती है। जो अफसरों का रुख देखकर काम कर सकता है, उसके लायक होने में शुबहा नहीं। आजकल यही फन सीख रहा हूं।''

शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा—मुबारक हो; लेकिन आई० सी० एस० की सनद आसान नहीं है।

सलीम ने कुछ इस भाव से कहा, जिससे टपक रहा था, आप इन बातों को क्या जानें– जी हां, लेकिन सलीम भी इस फन में उस्ताद है। बी॰ ए॰ तक तो बच्चों का खेल था। आई॰ सी॰ एस॰ में ही मेरे कमाल का इम्तिहान होगा। सबसे नीचे मेरा नाम गजट में न निकले, तो मुंह न दिखाऊं। चाहूं तो सबसे ऊपर भी आ सकता हूं, मगर फायदा क्या? रुपये तो बराबर ही मिलेंगे।

शान्तिकुमार ने पूछा–तो तुम भी गरीबों का खून चूसोगे क्या?

सलीम ने निर्लज्जता से कहा–गरीबों के खून पर तो अपनी परवरिश हुई। अब और क्या कर सकता हूं? यहां तो जिस दिन पढ़ने बैठे, उसी दिन से मुफ्तखोरी की धुन समाई, लेकिन आपसे सच कहता हूं डॉक्टर साहब, मेरी तबीयत उस तरफ नहीं है। कुछ दिनों मुलाजमत करने के बाद मैं भी देहात की तरफ चलूंगा। गाएं-भैंसे पालूंगा, कुछ फल-वल पैदा करूंगा, पसीने की कमाई खाऊंगा। मालूम होगा, मैं भी आदमी हूं। अभी तो खटमलों की तरह दूसरों के खून पर ही जिंदगी कटेगी, लेकिन मैं कितना ही गिर जाऊं, मेरी हमदर्दी गरीबों के साथ रहेगी। मैं दिखा दूंगा कि अफसरी करके भी पब्लिक की खिदमत की जा सकती है। हम लोग खानदानी किसान हैं। अब्बाजान ने अपने ही बूते से यह दौलत पैदा की। मुझे जितनी महब्बत रिआया से हो सकती है, उतनी उन लोगों को नहीं हो सकती, जो खानदानी रईस हैं। मैं तो कभी अपने गांवों में जाता हूं, तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह लोग मेरे अपने हैं। उनकी सादगी और मशक्कत देखकर दिल में उनकी इज्जत होती है। न जाने कैसे लोग उन्हें गालियां देते हैं, उन पर जुल्म करते हैं? मेरा बस चले, तो बदमाश अफसरों को कालेपानी भेज दूं।

शान्तिकुमार को ऐसा जान पड़ा कि अफसरी का जहर अभी इस युवक के खून में नहीं पहुंचा। इसका हृदय अभी तक स्वस्थ है। बोले–जब तक रिआया के हाथ में अख्तियार न होगा, अफसरों की यही हालत रहेगी। तुम्हारी जबान से यह खयालात सुनकर मुझे सच्ची खुशी हो रही है। मुझे तो एक भी भला आदमी कहीं नजर नहीं आता। गरीबों की लाश पर सब-के-सब गिद्धों की तरह जमा होकर उसकी बोटियां नोच रहे हैं, मगर अपने वश की बात नहीं। इसी खयाल से दिल को तस्कीन देना पड़ता है कि जब खुदा की मरजी होगी, तो आप ही वैसे सामान हो जाएंगे। इस हाहाकार को बुझाने के लिए दो-चार घड़े पानी डालने से तो आग और भी बढ़ेगी। इंकलाब की जरूरत है, पूरे इंकलाब की। इसलिए तो जले जितना जी चाहे, साफ हो जाय। जब कुछ जलने को बाकी न रहेगा, तो आग आप ठंडी हो जायगी। तब तक हम भी हाथ सेंकते हैं। कुछ अमर की भी खबर है? मैंने एक खत भेजा था, कोई जवाब नहीं आया।

सलीम ने चौंककर जेब में हाथ-डाला और एक खत निकालता हुआ बोला–लाहौल बिलाकूवत! इस खत की याद ही न रही। आज चार दिन से आया हुआ है, जेब ही में पड़ा रह गया। रोज सोचता था और रोज भूल जाता था।

शान्तिकुमार ने जल्दी से हाथ बढ़ाकर खत ले लिया, और मीठे क्रोध के दो-चार शब्द कहकर पत्र पढ़ने लगे–

"भाई साहब, मैं जिंदा हूं और आपका मिशन यथाशक्ति पूरा कर रहा हूं। वहां के

समाचार कुछ तो नैना के पत्रों से मुझे मिलते ही रहते थे; किंतु आपका पत्र पढ़कर तो मैं चकित रह गया। इन थोड़े से दिनों में तो वहां क्रांति-सी हो गई! मैं तो इस सारी जागृति का श्रेय आपको देता हूं। और सुखदा तो अब मेरे लिए पूज्य हो गई है। मैंने उसे समझने में कितनी भयंकर भूल की, यह याद करके मैं विकल हो जाता हूं। मैंने उसे क्या समझा था और वह क्या निकली? मैं अपने सारे दर्शन और विवेक और उत्सर्ग से वह कुछ न कर सका, जो उसने एक क्षण में कर दिखाया। कभी गर्व से सिर उठा लेता हूं, कभी लज्जा से सिर झुका लेता हूं। हम अपने निकटतम प्राणियों के विषय में कितने अज्ञ हैं, इसका अनुभव करके मैं रो उठता हूं। कितना महान् अज्ञान है? मैं क्या स्वप्न में भी सोच सकता था कि विलासिनी सुखदा का जीवन इतना त्यागमय हो जायगा? मुझे इस अज्ञान ने कहीं का न रखा। जी में आता है, आकर सुखदा से अपने अपराध की क्षमा मांगूं, पर कौन-सा मुंह लेकर आऊं? मेरे सामने अंधकार है। अभेद्य अंधकार है। कुछ नहीं सूझता। मेरा सारा आत्मविश्वास नष्ट हो गया है। ऐसा ज्ञात होता है, कोई अदेखी शक्ति मुझे खिला-खिलाकर कुचल डालना चाहती है। मैं मछली की भांति कांटे में फंसा हुआ हूं। कांटा मेरे कंठ में चुभ गया है। कोई हाथ मुझे खींच लेता है। खिंचा चला जाता हूं। फिर डोर ढीली हो जाती है और मैं भागता हूं। अब जान पड़ा कि मनुष्य विधि के हाथ का खिलौना है। इसलिए अब उसकी निर्दय क्रीड़ा की शिकायत नहीं करूंगा। कहां हूं, कुछ नहीं जानता, किधर जा रहा हूं, कुछ नहीं जानता। अब जीवन में कोई भविष्य नहीं है। भविष्य पर विश्वास नहीं रहा। इरादे झूठे साबित हुए, कल्पनाएं मिथ्या निकलीं। मैं आपसे सत्य कहता हूं, सुखदा मुझे नचा रही है। उस मायाविनी के हाथों मैं कठपुतली बना हुआ हूं। पहले एक रूप दिखाकर उसने मुझे भयभीत कर दिया और अब दूसरा रूप दिखाकर मुझे परास्त कर रही है। कौन उसका वास्तविक रूप है, नहीं जानता। सकीना का जो रूप देखा था, वह भी उसका सच्चा रूप था, नहीं कह सकता। मैं अपने ही विषय में कुछ नहीं जानता। आज क्या हूं कल क्या हो जाऊंगा, कुछ नहीं जानता। अतीत दु:खदायी है भविष्य स्वप्न है। मेरे लिए केवल वर्तमान है।

"आपने अपने विषय में मुझसे जो सलाह पूछी है, उसका मैं क्या जवाब दूं? आप मुझसे कहीं बुद्धिमान हैं। मेरा विचार तो है कि सेवा-व्रतधारियों को जाति से गुजारा—केवल गुजारा लेने का अधिकार है। यदि वह स्वार्थ को मिटा सकें तो और भी अच्छा।"

शान्तिकुमार ने असंतोष के भाव से पत्र को मेज पर रख दिया। जिस विषय पर उन्होंने विशेष रूप से राय पूछी थी, उसे केवल दो शब्दों में उड़ा दिया।

सहसा उन्होंने सलीम से पूछा—तुम्हारे पास भी कोई खत आया है?

"जी हां, इसके साथ ही आया था।"

"कुछ मेरे बारे में लिखा था?"

"कोई खास बात तो न थी, बस यही कि मुल्क को सच्चे मिशनरियों की जरूरत है और खुदा जाने क्या-क्या? मैंने खत को आखिर तक पढ़ा भी नहीं। इस किस्म की बातों को मैं पागलपन समझता हूं। मिशनरी होने का मतलब तो मैं यही समझता हूं कि हमारी जिंदगी खैरात पर बसर हो।"

डॉक्टर साहब ने गंभीर स्वर में कहा—जिंदगी का खैरात पर बसर होना इससे कहीं

अच्छा है कि जब्र पर बसर हो। गवर्नमेंट तो कोई जरूरी चीज नहीं। पढ़े-लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाए रखने के लिए एक संगठन बना लिया है। उसी का नाम गवर्नमेंट है। गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो और गवर्नमेंट का खातमा हो जाता है।

"आप तो खयाली बातें कर रहे है। गवर्नमेंट की जरूरत उस वक्त न रहेगी, जब दुनिया में फरिश्ते आबाद होंगे।"

'आइडियल (आदर्श) को हमेशा सामने रखने की जरूरत है।"

"लेकिन तालीम का सीगा विभाग तो जब्र करने का सीगा नहीं है। फिर जब आप अपनी आमदनी का बड़ा हिस्सा सेवाश्रम में खर्च करते हैं, तो कोई वजह नहीं कि आप मुलाजिमत छोड़कर संन्यासी बन जायं।"

यह दलील डॉक्टर के मन में बैठ गई। उन्हें अपने मन को समझाने का एक साधन मिल गया। बेशक शिक्षा-विभाग का शासन मे संबंध नही। गवर्नमेंट जितनी ही अच्छी होगी, उसका शिक्षाकार्य और भी विस्तृत होगा। तब इस सेवाश्रम की भी क्या जरूरत होगी? सगठित रूप से सेवा धर्म का पालन करते हुए, शिक्षा का प्रचार करना किसी दशा में भी आपत्ति की बात नहीं हो सकती। महीनों से जो प्रश्न डॉक्टर साहब को बेचैन कर रहा था, आज हल हो गया।

सलीम को बिदा करके वह लाला समरकान्त के घर चले। समरकान्त को अमर का पत्र दिखाकर सुर्खरू बनना चाहते थे। जो समस्या अभी वह हल कर चुके थे, उसके विषय मे फिर कुछ संदेह उत्पन्न हो रहे थे। उन सदेहों को शांत करना भी आवश्यक था। समरकान्त तो कुछ खुलकर उनसे न मिले। सुखदा ने उनको खबर पाते ही बुला लिया। रेणुका बाई भी आई हुई थीं।

शान्तिकुमार ने जाते-ही-जात अमरकान्त का पत्र निकालकर सुखदा के सामन रख दिया और बोले—सलीम ने चार दिनों से अपनी जेब मे डाल रखा था और मैं घबरा रहा था कि बात क्या है?

सुखदा ने पत्र को उड़ती हुई आंखों से देखकर कहा—तो मैं इसे [illegible]कर क्या करूं?

शान्तिकुमार ने विस्मित होकर कहा—जरा एक बार इसे पढ़ तो जाइए। इससे आपके मन की बहुत-सी शंकाए मिट जाएंगी।

सुखदा ने रूखेपन के साथ जवाब दिया—मेरे मन में किसी की तरफ से कोई शंका नहीं है। इस पत्र में भी जो कुछ लिखा होगा, वह मैं जानती हूं। मेरी खूब तारीफें की गई होंगी। मुझे तारीफ की जरूरत नहीं। जैसे किसी को क्रोध आ जाता है, उसी तरह मुझे वह आवेश आ गया। यह भी क्रोध के सिवा और कुछ न था। क्रोध की कोई तारीफ नहीं करता।

"यह आपने कैसे समझ लिया कि इसमें आपकी तारीफ की है?"

"हो सकता है, खेद भी प्रकट किया हो।"

"तो फिर आप और चाहती क्या हैं?"

"अगर आप इतना भी नहीं समझ सकते, तो मेरा कहना व्यर्थ है।"

रेणुका बाई अब तक चुप बैठी थी। सुखदा का संकोच देखकर बोलीं—जब वह अब तक घर लौटकर नही आए, तो कैसे मालूम हो कि उनके मन के भाव बदल गए हैं। अगर सुखदा

उनकी स्त्री न होती, तब भी तो उसकी तारीफ करते। नतीजा क्या हुआ। जब स्त्री-पुरुष सुख से रहें, तभी तो मालूम हो कि उनमें प्रेम है। प्रेम को छोड़िए। प्रेम तो बिरले ही दिलों में होता है। धर्म का निबाह तो करना ही चाहिए। पति हजार कोस पर बैठा हुआ स्त्री की बड़ाई करे। स्त्री हजार कोस पर बैठी हुई मियां की तारीफ करे, इससे क्या होता है?

सुखदा खीझकर बोली—आप तो अम्मां बेबात की बात करती हैं। जीवन तब सुखी हो सकता है, जब मन का आदमी मिले। उन्हें मुझसे अच्छी एक वस्तु मिल गई। वह उसके वियोग में भी मगन हैं। मुझे उनसे अच्छा अभी कोई नहीं मिला, और न इस जीवन में मिलेगा, यह मेरा दुर्भाग्य है। इसमें किसी का दोष नहीं।

रेणुका ने डॉक्टर साहब की ओर देखकर कहा—सुना आपने, बाबूजी? यह मुझे इसी तरह रोज जलाया करती है। कितनी बार कहा है कि चल हम दोनों उसे वहां से पकड़ लाएं। देखें, कैसे नहीं आता? जवानी की उम्र में थोड़ी-बहुत नादानी सभी करते हैं, मगर यह न खुद मेरे साथ चलती है, न मुझे अकेले जाने देती है। भैया, एक दिन भी ऐसा नहीं जाता कि बगैर रोए मुंह में अन्न जाता हो। तुम क्यों नहीं चले जाते, भैया? तुम उसके गुरु हो, तुम्हारा अदब करता है। तुम्हारा कहना वह नहीं टाल सकता।

सुखदा ने मुस्कराकर कहा—हां, यह तो तुम्हारे कहने से आज ही चले जाएंगे। यह तो और खुश होते होंगे कि शिष्यों में एक तो ऐसा निकला, जो इनके आदर्श का पालन कर रहा है। विवाह को यह लोग समाज का कलंक समझते हैं। इनके पंथ में पहले किसी को विवाह करना ही न चाहिए, और अगर दिल न माने तो किसी को रख लेना चाहिए। इनके दूसरे शिष्य मियां सलीम हैं। हमारे बाबू साहब तो न जाने किस दबाव में पड़कर विवाह कर बैठे। अब उसका प्रायश्चित कर रहे हैं।

शान्तिकुमार ने झेंपते हुए कहा—देवीजी, आप मुझ पर मिथ्या आरोप कर रही हैं। अपन विषय में मैंने अवश्य यही निश्चय किया है कि एकांत जीवन व्यतीत करूंगा इसलिए कि आदि से ही सेवा का आदर्श मेरे सामने था।

सुखदा ने पूछा—क्या विवाहित जीवन में सेवा-धर्म का पालन असंभव है? या स्त्री इतनी स्वार्थांध होती है कि आपके कामों में बाधा डाले बिना रह ही नहीं सकती? गृहस्थ जितनी सेवा कर सकता है, उतनी एकांत जीवी कभी नहीं कर सकता, क्योंकि वह जीवन के कष्टों का अनुभव नहीं कर सकता।

शान्तिकुमार ने विवाद से बचने की चेष्टा करके कहा—यह तो झगड़े का विषय है देवीजी, और तय नहीं हो सकता। मुझे आपसे एक विषय में सलाह लेनी है। आपकी माताजी भी हैं, यह और भी शुभ है। मैं सोच रहा हूं, क्यों न नौकरी से इस्तीफा देकर सेवाश्रम का काम करूं?

सुखदा ने इस भाव से कहा, मानो यह प्रश्न करने की बात ही नहीं—अगर आप सोचते हैं, आप बिना किसी के सामने हाथ फैलाए अपना निर्वाह कर सकते हैं, तो जरूर इस्तीफा दे दीजिए, यों तो काम करने वाले का भार संस्था पर होता है, लेकिन इससे भी अच्छी बात यह है कि उसकी सेवा में स्वार्थ का लेश भी न हो।

शान्तिकुमार ने जिस तर्क से अपना चित्त शांत किया था, वह यहां फिर जवाब दे गया।

फिर उसी उधेड़बुन में पड़ गए।

सहसा रेणुका ने कहा—आपके आश्रम में कोई कोष भी है?

आश्रम में अब तक कोई कोष न था। चंदा इतना न मिलता था कि कुछ बचत हो सकती। शान्तिकुमार ने इस अभाव को मानो अपने ऊपर लांछन समझकर कहा—जी नहीं, अभी तक तो कोष नहीं बना सका, पर मैं यूनिवर्सिटी से छुट्टी पा जाऊं, तो इसके लिए उद्योग करूं।

रेणुका ने पूछा—कितने रुपये हों, तो आपका आश्रम चलने लगे?

शान्तिकुमार ने आशा की स्फूर्ति का अनुभव करके कहा—आश्रम तो एक यूनिवर्सिटी भी बन सकता है, लेकिन मुझे तीन-चार लाख रुपये मिल जाएं, तो मैं उतना ही काम कर सकता हूं, जितना यूनिवर्सिटी में बीस लाख में भी नहीं हो सकता।

रेणुका ने मुस्कराकर कहा—अगर आप कोई ट्रस्ट बना सकें, तो मैं आपकी कुछ सहायता कर सकती हूं। बात यह है कि जिस संपत्ति को अब तक संचती आती थी, उसका अब कोई भोगने वाला नहीं है। अमर का हाल आप देख ही चुके। सुखदा भी उसी रास्ते पर जा रही है। तो फिर मैं भी अपने लिए कोई रास्ता निकालना चाहती हूं। मुझे आप गुजारे के लिए सौ रुपये महीने ट्रस्ट से दिला दीजिएगा। मेरे जानवरों के खिलाने-पिलाने का भार ट्रस्ट पर होगा।

शान्तिकुमार ने डरते-डरते कहा—मैं तो आपकी आज्ञा तभी स्वीकार कर सकता हूं, जब अमर और सुखदा मुझे सहर्ष अनुमति दें। फिर बच्चे का हक भी तो है?

सुखदा ने कहा—मेरी तरफ से इस्तीफा है। और बच्चे के दादा का धन क्या थोड़ा है? औरों की मैं नहीं कह सकती।

रेणुका खिन्न होकर बोलीं– अमर को धन की परवाह अगर है, तो औरों से भी कम। दौलत कोई दीपक तो है नहीं, जिसमे प्रकाश फैलता रहे। जिन्हें उसकी जरूरत नहीं, उनके गले क्यों लगाई जाए? रुपये का भार कुछ कम नहीं होता। मैं खुद नहीं संभाल सकती। किसी शुभ कार्य में लग जाय, वह कहीं अच्छा। लाला समरकान्त तो मंदिर और शिवाले की राय देते हैं, पर मेरा जी उधर नहीं जाता, मंदिर तो यों ही इतने हो रहे हैं कि पूजा करने वाले नहीं मिलते। शिक्षादान महादान है और वह भी उन लोगों में, जिनका समाज ने हमेशा बहिष्कार किया हो। मैं कई दिन से सोच रही हूं, और आपसे मिलने वाली थी। अभी मैं दो-चार महीने और दुविधा में पड़ी रहती, पर आपके आ जाने से मेरी दुविधाएं मिट गई। धन देने वालों की कमी नहीं है, लेने वालों की कमी है। आदमी यही चाहता है कि धन सुपात्रों को दे, जो दाता के इच्छानुसार खर्च करें, यह नहीं कि मुफ्त का धन पाकर उड़ाना शुरू कर दें। दिखाने को दाता की इच्छानुसार थोड़ा-बहुत खर्च कर दिया, बाकी किसी-न-किसी बहाने से घर में रख लिया।

यह कहते हुए उसने मुस्कराकर शान्तिकुमार से पूछा—आप तो धोखा न देंगे?

शान्तिकुमार को यह प्रश्न, हंसकर पूछे जाने पर भी बुरा मालूम हुआ—मेरी नीयत क्या होगी, यह मैं खुद नहीं जानता? आपको मुझ पर इतना विश्वास कर लेने का कोई कारण भी नहीं है।

सुखदा ने बात संभाली—यह बात नहीं है, डॉक्टर साहब! अम्मां ने हंसी की थी।

"विष मधु के साथ भी अपना असर करता है।"

"यह तो बुरा मानने की बात न थी?"

"मैं बुरा नहीं मानता। अभी दस-पांच वर्ष मेरी परीक्षा होने दीजिए। अभी मैं इतने बड़े विश्वास के योग्य नहीं हुआ।"

रेणुका ने परास्त होकर कहा—अच्छा साहब, मैं अपना प्रश्न वापस लेती हूं। आप कल मेरे घर आइएगा। मैं मोटर भेज दूंगी। ट्रस्ट बनाना पहला काम है। मुझे अब कुछ नहीं पूछना है ! आपके ऊपर मुझे पूरा विश्वास है।

डॉक्टर साहब ने धन्यवाद देते हुए कहा—मैं आपके विश्वास को बनाए रखने की चेष्टा करूंगा।

रेणुका बोलीं—मैं चाहती हूं जल्दी ही इस काम को कर डालूं। फिर नैना का विवाह आ पड़ेगा, तो महीनों फुर्सत न मिलेगी।

शान्तिकुमार ने जैसे सिहरकर कहा—अच्छा, नैना देवी का विवाह होने वाला है? यह तो बड़ी शुभ सूचना है। मैं कल ही आपसे मिलकर सारी बातें तय कर लूंगा। अमर को भी सूचना दे दूं?

सुखदा ने कठोर स्वर में कहा—कोई जरूरत नहीं?

रेणुका बोलीं—नहीं, आप उनको सूचना दे दीजिएगा। शायद आएं। मुझे तो आशा है जरूर आएंगे।

डॉक्टर साहब यहां से चले, तो नैना बालक को लिए मोटर से उतर रही थी।

शान्तिकुमार ने आहत कंठ से कहा—तुम अब चली जाओगी, नैना?

नैना ने सिर झुका लिया; पर उसकी आंखें सजल थीं।

## आठ

छः महीने गुजर गए।

सेवाश्रम का ट्रस्ट बन गया। केवल स्वामी आत्मानन्दजी ने, जो आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ता और एक-एक पोर समष्टिवादी थे, इस प्रबंध से असंतुष्ट होकर इस्तीफा दे दिया। वह आश्रम में धनिकों को नहीं घुसने देना चाहते थे। उन्होंने बहुत जोर मारा कि ट्रस्ट न बनने पाए। उनकी राय में धन पर आश्रम की आत्मा को बेचना, आश्रम के लिए घातक होगा। धन ही की प्रभुता से तो हिन्दू-समाज ने नीचों को अपना गुलाम बना रखा है, धन ही के कारण तो नीच-ऊंच का भेद आ गया है; उसी धन पर आश्रम की स्वाधीनता क्यों बेची जाए; लेकिन स्वामीजी की कुछ न चली और ट्रस्ट की स्थापना हो गई। उसका शिलान्यास रखा सुखदा ने। जलसा हुआ, दावत हुई, गाना-बजाना हुआ। दूसरे दिन शान्तिकुमार ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

सलीम की परीक्षा भी समाप्त हो गई। और उसने पेशीनगोई की थी, वह अक्षरशः पूरी हुई। गजट में उसका नाम सबसे नीचे था। शान्तिकुमार के विस्मय की सीमा न रही। अब उसे

कायदे के मुताबिक दो साल के लिए इंग्लैंड जाना चाहिए था; पर सलीम इंग्लैंड न जाना चाहता था। दो-चार महीने के लिए सैर करने तो वह शौक से जा सकता था, पर दो साल तक वहां पड़े रहना उसे मंजूर न था। उसे जगह न मिलनी चाहिए थी, मगर यहां भी उसने कुछ ऐसी दौड़-धूप की, कुछ ऐसे हथकंडे खेले कि वह इस कायदे से मुस्तसना कर दिया गया। जब सूबे का सबसे बड़ा डॉक्टर कह रहा है कि इंग्लैंड की ठंडी हवा में इस युवक का दो साल रहना खतरे से खाली नहीं, तो फिर कौन इतनी बड़ी जिम्मेदारी लेता? हाफिज हलीम लड़के को भेजने को तैयार थे, रुपये खर्च को करने तैयार थे, लेकिन लड़के का स्वास्थ्य बिगड़ गया, तो वह किसका दामन पकड़ेंगे? आखिर यहां भी सलीम की विजय रही। उसे उसी हलके का चार्ज भी मिला, जहां उसका दोस्त अमरकान्त पहले ही से मौजूद था। उस जिले को उसने खुद पसंद किया।

इधर सलीम के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हो गया। हंसोड़ तो उतना ही था, पर उतना शौकीन, उतना रसिक न था। शायरी से भी अब उतना प्रेम न था। विवाह से उसे जो पुरानी अरुचि थी, वह अब बिल्कुल जाती रही थी। यह परिवर्तन एकाएक कैसे हो गया, हम नहीं जानते, लेकिन इधर वह कई बार सकीना के घर गया था और दोनों में गुप्त रूप से पत्र व्यवहार भी हो रहा था। अमर के उदासीन हो जाने पर भी सकीना उसके अतीत प्रेम को कितनी एकाग्रता से हृदय में पाले हुए थी, इस अनुराग ने सलीम का परास्त कर दिया था। इस ज्योति मे अब वह अपने जीवन को आलोकित करने के लिए विकल हो रहा था। अपनी मामा से सकीना के उस अपार प्रेम का वृत्तांत सुन-सुनकर वह बहुधा रो दिया करता। उसका कवि-हृदय जो भ्रमर की भांति नए-नए पुष्पों के रस लिया करता था, अब संयमित अनुराग से परिपूर्ण होकर उसके जीवन में एक विशाल साधना की सृष्टि कर रहा था।

नैना का विवाह भी हो गया। लाला धनीराम नगर के सबसे धनी आदमी थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र मनीराम बड़े होनहार नौजवान थे। समरकान्त को तो आशा न थी कि यहां संबंध हो सकेगा, क्योंकि धनीराम मंदिर वाली घटना के दिन से ही इस परिवार को हेय समझने लगे थे, पर समरकान्त की थैलियों ने अंत में विजय पाई। बड़ी-बड़ी तैयारियां हुई, लेकिन अमरकान्त न आया, और न समरकान्त ने उसे बुलाया। धनीराम ने कहला दिया था कि अमरकान्त विवाह में सम्मिलित हुआ तो बारात लौट आएगी। यह बात अमरकान्त के कानों तक पहुंच गई थी। नैना न प्रसन्न थी, न दु:खी थी। वह न कुछ कह सकती थी, न बोल सकती थी। पिता की इच्छा के सामने वह क्या कहती। मनीराम के विषय में तरह-तरह की बातें सुनती थी—शराबी है, व्यभिचारी है, मूर्ख है, घमंडी है, लेकिन पिता की इच्छा के सामने सिर झुकाना उसका कर्त्तव्य था। अगर समरकान्त उसे किसी देवता की बलिवेदी पर चढ़ा देते, तब भी वह मुंह न खोलती। केवल विदाई के समय वह रोई पर उस समय भी उसे यह ध्यान रहा कि पिताजी को दु:ख न हो। समरकान्त की आंखों में धन ही सबसे मूल्यवान वस्तु थी। नैना को जीवन का क्या अनुभव था? ऐसे महत्त्व के विषय में पिता का निश्चय ही उसके लिए मान्य था। उसका चित्त सशंक था; पर उसने जो कुछ अपना कर्त्तव्य समझ रखा था उसका पालन करते हुए उसके प्राण भी चले जाएं तो उसे दु:ख न होगा।

इधर सुखदा और शान्तिकुमार का सहयोग दिन-दिन घनिष्ठ होता जाता था। धन का

अभाव तो था नहीं, हरेक मुहल्ले में सेवाश्रम की शाखाएं खुल रही थीं और मादक वस्तुओं का बहिष्कार भी जोरों से हो रहा था। सुखदा के जीवन में अब एक कठोर तप का संचार होता जाता था। वह अब प्रात:काल और संध्या व्यायाम करती। भोजन में स्वाद से अधिक पोषकता का विचार रखती। संयम और निग्रह ही अब उसकी जीवनचर्या के प्रधान अंग थे। उपन्यासों की अपेक्षा अब उसे इतिहास और दार्शनिक विषयों में अधिक आनंद आता था, और उसकी बोलने की शक्ति तो इतनी बढ़ गई थी कि सुनने वालों को आश्चर्य होता था। देश और समाज की दशा देखकर उसमें सच्ची वेदना होती थी और यही वाणी में प्रभाव का मुख्य रहस्य है। इस सुधार के प्रोग्राम में एक बात और आ गई थी। वह थी गरीबों के लिए मकानों की समस्या। अब यह अनुभव हो रहा था कि जब तक जनता के लिए मकानों की समस्या हल न होगी, सुधार का कोई प्रस्ताव सफल न होगा, मगर यह काम चंदे का नहीं, इसे तो म्युनिसिपैलिटी ही हाथ में ले सकती थी। पर यह संस्था इतना बड़ा काम हाथ में लेते हुए भी घबराती थी। हाफिज हलीम प्रधान थे, लाला धनीराम उप-प्रधान; ऐसे दकिया-नूसी महानुभावों के मस्तिष्क में इस समस्या की आवश्यकता और महत्त्व को जमा देना कठिन था। दो-चार ऐसे सज्जन तो निकल आए थे, जो जमीन मिल जाने पर दो-चार लाख रुपये लगाने को तैयार थे। उनमें लाला समरकान्त भी थे। अगर चार आने सैकड़े का सूद भी निकलता आए, तो वह संतुष्ट थे, मगर प्रश्न था जमीन कहां से आए? सुखदा का कहना था कि जब मिलों के लिए, स्कूलों और कॉलेजों के लिए जमीन का प्रबंध हो सकता है, तो इस काम के लिए क्यों न म्युनिसिपैलिटी मुफ्त जमीन दे?

संध्या का समय था। शान्तिकुमार नक्शों का एक पुलिंदा लिए हुए सुखदा के पास आए और एक-एक नक्शा खोलकर दिखाने लगे। यह उन मकानों के नक्शे थे, जो बनवाए जाएंगे। एक नक्शा आठ आने महीने के मकान का था, दूसरा एक रुपये के किराए का और तीसरा दो रुपये का। आठ आने वालों में एक कमरा था, एक रसोई, एक बरामदा, सामने एक बैठक और छोटा-सा सहन। एक रुपया वालों में भीतर दो कमरे थे और दो रुपये वालों में तीन कमरे।

कमरों में खिड़कियां थीं, फर्श और दो फीट ऊंचाई तक दीवारें पक्की। ठाठ खपरैल का था।

दो रुपये वालों में शौच-गृह भी थे। बाकी दस-दस घरों के बीच में एक शौच-गृह बनाया गया था।

सुखदा ने पूछा—आपने लागत का तखमीना भी किया है?

''और क्या यों ही नक्शे बनवा लिए हैं! आठ आने वाले घरों की लागत दो सौ होगी, एक रुपये वालों की तीन सौ और दो रुपये वालों की चार सौ। चार आने का सूद पड़ता है।''

''पहले कितने मकानों का प्रोग्राम है?''

''कम-से-कम तीन हजार। दक्षिण तरफ लगभग इतने ही मकानों की जरूरत होगी। मैं हिसाब लगा लिया है। कुछ लोग तो जमीन मिलने पर रुपये लगाएंगे, मगर कम-से-कम दस लाख की जरूरत और होगी।''

''मार डाला! दस लाख! एक तरफ के लिए।''

''अगर पांच लाख के हिस्सेदार मिल जाएं, तो बाकी रुपये जनता खुद लगा देगी.

मजदूरी में बड़ी किफायत होगी। राज, बेलदार, बढ़ई, लोहार आधी मजूरी पर काम करने को तैयार हैं। ठेके वाले, गधे वाले, गाड़ी वाले, यहां तक कि इक्के और तांगे वाले भी बेगार काम करने पर राजी हैं।''

''देखिए, शायद चल जाए। दो-तीन लाख शायद दादाजी लगा दें, अम्मां के पास भी अभी कुछ-न-कुछ होगा ही, बाकी रुपये की फिक्र करनी है। सबसे बड़ी जमीन की मुश्किल है।''

''मुश्किल क्या है? दस बंगले गिरा दिए जाएं, तो जमीन-ही-जमीन निकल आएगी।''

''बंगलों का गिराना आप आसान समझते हैं?''

''आसान तो नहीं समझता, लेकिन उपाय क्या है? शहर के बाहर तो कोई रहेगा नहीं। इसलिए शहर के अंदर ही जमीन निकालनी पड़ेगी। बाज मकान इतने लंबे-चौड़े हैं कि उनमें एक हजार आदमी फैलकर रह सकते हैं। आप ही का मकान क्या छोटा है? इसमें दस गरीब परिवार बड़े मजे में रह सकते हैं।''

सुखदा मुस्काई—आप तो हम लोगों पर ही हाथ साफ करना चाहते हैं!

''जो राह बताए उसे आगे चलना पड़ेगा।''

''मैं तैयार हूं, लेकिन म्युनिसिपैलिटी के पास कुछ प्लाट तो खाली होंगे?''

''हां, हैं क्यों नहीं? मैंने उन सबों का पता लगा लिया है, मगर हाफिजजी फरमाते हैं, उन प्लाटों की बातचीत तय हो चुकी है।''

सलीम ने मोटर से उतरकर शान्तिकुमार को पुकारा। उन्होंने उसे अंदर बुला लिया और पूछा--किधर से आ रहे हो?

सलीम ने प्रसन्न मुख से कहा—कल रात को चला जाऊंगा। सोचा, आपसे रुखसत होता चलूं। इसी बहाने देवीजी से भी नियाज हासिल हो गया।

शान्तिकुमार ने पूछा—अरे तो यों ही चल जाओगे, भाई? कोई जलसा, दावत, कुछ नहीं? वाह!

''जलसा तो कल शाम को है। कार्ड तो आपके यहां भेज दिया था, मगर आपसे तो जलसे की मुलाकात काफी नहीं।''

''तो चलते-चलते हमारी थोड़ी सी मदद करो! दक्षिण तरफ म्युनिसिपैलिटी के जो प्लाट हैं, वह हमें दिला दो मुफ्त में!''

सलीम का मुख गंभीर हो गया। बोला--उन प्लाटों की तो शायद बातचीत हो चुकी है। कई मेम्बर खुद बेटों और बीवियों के नाम खरीदने को मुंह खोले बैठे हैं।

सुखदा विस्मित हो गई—अच्छा! भीतर-ही-भीतर यह कपट-लीला भी होती है। तब तो आपकी मदद की और जरूरत है। इस मायाजाल को तोड़ना आपका कर्तव्य है।

सलीम ने आंखें चुराकर कहा—अब्बाजान इस मुआमले में मेरी एक न सुनेंगे, और हक यह है कि जो मुआमला तय हो चुका, उसके बारे में कुछ जोर देना भी तो मुनासिब नहीं।

यह कहते हुए उसने सुखदा और शान्तिकुमार से हाथ मिलाया और दोनों से कल शाम के जलसे में आने का आग्रह करके चला गया। वहां बैठने में अब उसकी खैरियत न थी।

शान्तिकुमार ने कहा—देखा आपने! अभी जगह पर गए नहीं, पर मिजाज में अफसरी

की बू आ गई। कुछ अजब तिलिस्म है कि जो उसमें कदम रखता है, उस पर जैसे नशा हो जाता है। इस तजवीज के यह पक्के समर्थक थे; पर आज कैसा निकल गए? हाफिजजी से अगर जोर देकर कहें, तो मुमकिन नहीं कि वह राजी हो जाएं।

सुखदा ने मुख पर आत्मगौरव की झलक आ गई- हमें न्याय की लड़ाई लड़नी है। न्याय हमारी मदद करेगा। हम और किसी की मदद के मुहताज नहीं।

इसी समय लाला समरकान्त आ गए। शान्ति कुमार को बैठे देखकर जरा झिझके। फिर पूछा—कहिए डॉक्टर साहब, हाफिजजी से क्या बातचीत हुई?

शान्तिकुमार ने अब तक जो कुछ किया था, वह सब कह सुनाया।

समरकान्त ने असंतोष का भाव प्रकट करते हुए कहा—आप लोग विलायत के पढ़े हुए साहब, मैं भला आपके सामने क्या मुंह खोल सकता हूं, लेकिन आप जो चाहें कि न्याय और सत्य के नाम पर आपको जमीन मिल जाए, तो चुपके हो रहिए। इस काम के लिए दस-बीस हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे—हरेक मेंबर से अलग-अलग मिलिए। देखिए। किस मिजाज का, किस विचार का, किस रंग-ढंग का आदमी है। उसी तरह उसे काबू में लाइए—खुशामद से राजी हो तो खुशामद से, चांदी से राजी हो चांदी से, दुआ-तावीज, जंतर-मंतर जिस तरह काम निकले, उस तरह निकालिए। हाफिजजी से मेरी पुरानी मुलाकात है। पच्चीस हजार की थैली उनके मामा के हाथ घर में भेज दो, फिर देखें कैसे जमीन नहीं मिलती? सरदार कल्याणसिंह को नये मकानों का ठेका देने का वादा कर लो, वह काबू में आ जाएंगे। दुबेजी को पांच तोले चन्द्रोदय भेंट करके पटा सकते हो। खन्ना से योगाभ्यास की बातें करो और किसी संत से मिला दो, ऐसा संत हो, जो उन्हें दो-चार आसन सिखा दे। राय साहब धनीराम के नाम पर अपने नए मुहल्ले का नाम रख दो, उनसे कुछ रुपये भी मिल जाएंगे। यह हैं काम करने का ढंग। रुपये की तरफ से निश्चिंत रहो। बनियों को चाहे बदनाम कर लो; पर परमार्थ के काम में बनिये ही आगे आते हैं। दस लाख तक का बीमा तो मैं लेता हूं। कई भाइयों के तो वोट ले आया। मुझे तो रात को नींद नहीं आती। यही सोचा करता हूं कि कैसे यह काम सिद्ध हो। जब तक काम सिद्ध न हो जाएगा, मुझे ज्वर-सा चढ़ा रहेगा।

शान्तिकुमार ने दबी आवाज से कहा—यह फन तो मुझे अभी सीखना पड़ेगा, सेठजी! मुझे न रकम खाने का तजरबा है, न खिलाने का। मुझे तो किसी भले आदमी से यह प्रस्ताव करते शर्म आती है। यह खयाल भी आता है कि वह मुझे कितना खुदगरज समझ रहा होगा। डरता हूं, कहीं घुड़क न बैठे।

समरकान्त ने जैसे कुत्ते को दुत्कार कर कहा—तो फिर तुम्हें जमीन मिल चुकी। सेवाश्रम के लड़के पढ़ाना दूसरी बात है, मामले पटाना दूसरी बात है। मैं खुद पटाऊंगा।

सुखदा ने जैसे आहत होकर कहा—नहीं, हमें रिश्वत देना मंजूर नहीं। हम न्याय के लिए खड़े हैं, हमारे पास न्याय का बल है। हम उसी बल से विजय पाएंगे।

समरकान्त ने निराश होकर कहा—तो तुम्हारी स्कीम चल चुकी।

सुखदा ने कहा—स्कीम तो चलेगी; हां, शायद देर में चले, या धीमी चाल से चले, पर रुक नहीं सकती। अन्याय के दिन पूरे हो गए।

''अच्छी बात है। मैं भी देखूंगा।''

समरकान्त झल्लाए हुए बाहर चले गए। उनकी सर्वज्ञता को जो स्वीकार न करे, उससे वह दूर भागते थे।

शान्तिकुमार ने खुश होकर कहा–सेठजी भी विचित्र जीव हैं ! इनकी निगाह में जो कुछ है, वह रुपया। मानवता भी कोई वस्तु है, इसे शायद यह मानें ही नहीं।

सुखदा की आंखें सगर्व हो गईं–इनकी बातों पर न जाइए, डॉक्टर साहब? इनके हृदय में जितनी दया, जितनी सेवा है, वह हम दोनों में मिलाकर भी न होगी। इनके स्वभाव में कितना अंतर हो गया है, इसे आप नहीं देखते? डेढ़ साल पहले बेटे ने इनसे यह प्रस्ताव किया होता, तो आग हो जाते। अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हो जाना साधारण बात नहीं है। और विशेषकर उस आदमी के लिए, जिसने एक-एक कौड़ी को दांतों से पकड़ा हो। पुत्र-स्नेह ही ने यह काया-पलट किया है। मैं इसी को सच्चा वैराग्य कहती हूं। आप पहले मेंबरों से मिलिए और जरूरत समझिए तो मुझे भी ले लीजिए। मुझे तो आशा है, हमें बहुमत मिलेगा। नहीं, आप अकेले न जाएं। कल सवेरे आइए तो हम दोनों चलें। दस बजे रात तक लौट आएंगे, इस वक्त मुझे जरा सकीना से मिलना है। सुना है महीनों से बीमार है। मुझे तो उस पर श्रद्धा-सी हो गई है। समय मिला, तो उधर से ही नैना से मिलती आऊंगी।

डॉक्टर साहब ने कुर्सी से उठते हुए कहा–उसे गए तो दो महीने हो गए, आएगी कब तक?

''यहां से तो कई बार बुलाया गया, सेठ धनीराम बिदा ही नहीं करते।''

''नैना खुश तो है?''

''मैं तो कई बार मिली, पर अपने विषय में उसने कुछ न कहा। पूछा, तो यही बोली–मैं बहुत अच्छी तरह हूं। पर मुझे तो वह प्रसन्न नहीं दिखी। वह शिकायत करने वाली लड़की नहीं है। अगर वह लोग लातों से मारकर निकालना भी चाहें, तो घर से न निकलेगी, और न किसी से कुछ कहेगी।''

शान्तिकुमार की आंखें सजल हो गईं–उससे कोई अप्रसन्न हो सकता है, मैं तो इसकी कल्पना ही नहीं कर सकता।

सुखदा मुस्कराकर बोली–उसका भाई कुमार्गी है, क्या यह उन लोगों की अप्रसन्नता के लिए काफी नहीं है?

''मैंने तो सुना, मनीराम पक्का शोहदा है।''

''नैना के सामने आपने वह शब्द कहा होता, तो आपसे लड़ बैठती।''

''मैं एक बार मनीराम से मिलूंगा जरूर।''

''नहीं आपके हाथ जोड़ती हूं। आपने उनसे कुछ कहा, तो नैना के सिर जाएगी।''

''मैं उससे लड़ने नहीं जाऊंगा। मैं उसकी खुशामद करने जाऊंगा। यह कला जानता नहीं; पर नैना के लिए अपनी आत्मा की हत्या करने में भी मुझे संकोच नहीं है। मैं उसे दुःखी नहीं देख सकता। निःस्वार्थ सेवा की देवी अगर मेरे सामने दुःख सहे, तो मेरे जीने को धिक्कार है।

शान्तिकुमार जल्दी से बाहर निकल आए। आंसुओं का वेग अब रोके न रुकता था।

# नौ

सुखदा सड़क पर मोटर से उतरकर सकीना का घर खोजने लगी, पर इधर से उधर तक दो तीन चक्कर लगा आई, कहीं वह घर न मिला। जहां वह मकान होना चाहिए था, वहां अब एक नया कमरा था, जिस पर कलई पुती हुई थी। वह कच्ची दीवार और सड़ा हुआ टाट का परदा कहीं न था। आखिर उसने एक आदमी से पूछा, तब मालूम हुआ कि जिसे वह नया कमरा समझ रही थी, सकीना के मकान का दरवाजा है। उसने आवाज दी और एक क्षण में द्वार खुल गया। सुखदा ने देखा, वह एक साफ सुथरा छोटा-सा कमरा है, जिसमें दो-तीन मोढ़े रखे हुए हैं। सकीना ने एक मोढ़े को बढ़ाकर पूछा—आपको मकान तलाश करना पड़ा होगा। यह नया कमरा बन जाने से पता नहीं चलता।

सुखदा ने उसके पीले, सूखे मुंह की ओर देखते हुए कहा—हां, मैंने दो-तीन चक्कर लगाए। अब यह घर कहलाने लायक हो गया, मगर तुम्हारी यह क्या हालत है? बिल्कुल पहचानी ही नहीं जाती।

सकीना ने हंसने की चेष्टा करके कहा—मैं तो मोटी-ताजी कभी न थी।

''इस वक्त तो पहले से भी उतरी हुई हो।''

सहसा पठानिन आ गई और यह प्रश्न सुनकर बोली—महीनों से बुखार आ रहा है बेटी लेकिन दवा नहीं खाती। कौन कहे, मुझसे बोलचाल बंद है। अल्लाह जानता है, तुम्हारी बड़ी याद आती थी बहूजी, पर आऊं कौन मुंह लेकर? अभी थोड़ी ही देर हुई, लालाजी भी गए हैं। जुग-जुग जिएं। सकीना ने मना कर दिया था, इसलिए तलब लेने न गई थी। वही देने आए थे। दुनिया में ऐसे-ऐसे खुदा के बंदे पड़े हुए हैं। दूसरा होता, तो मेरी सूरत न देखता। उनका बसा-बसाया घर मुझ नसीबाजली के कारण उजड़ गया। मगर लाला का दिल वही है, वही खयाल है, वही परवरिश की निगाह है। मेरी आंखों पर न जाने क्यों परदा पड़ गया था कि मैंने भोले-भाले लड़के पर वह इल्जाम लगा दिया। खुदा करे, मुझे मरने के बाद कफन भी न नसीब हो! मैंने इतने दिनों बड़ी छानबीन की बेटी! सभी ने मेरी लानत मलामत की। इस लड़की ने तो मुझसे बोलना छोड़ दिया। खड़ी तो है, पूछो। ऐसी-ऐसी बातें कहती है कि कलेजे में चुभ जाती हैं। खुदा सुनवाता है, तभी तो सुनती हूं। वैसा काम न किया होता तो क्या सुनना पड़ता? उसे अंधेरे घर में इसके साथ देखकर मुझे शुबहा हो गया और जब उस गरीब ने देखा कि बेचारी औरत बदनाम हो रही है, तो उसकी खातिर अपना धरम देने को भी राजी हो गया। मुझ निगोड़ी को उस गुस्से में यह खयाल भी न रहा कि अपने ही मुंह तो कालिख लगा रही हूं।

सकीना ने तीव्र कंठ से कहा—अरे, हो तो चुका, अब कब तक दुखड़ा रोए जाओगी। कुछ और बातचीत करने दोगी या नहीं?

पठानिन ने फरियाद की—इसी तरह मुझे झिड़कती रहती है बेटी, बोलने नहीं देती। पूछो, तुमसे दुखड़ा न रोऊं, तो किसके पास रोने जाऊं?

सुखदा ने सकीना से पूछा—अच्छा, तुमने अपना वसीका लेने से क्यों इंकार कर दिया था? वह तो बहुत पहले से मिल रहा है।

सकीना कुछ बोलना ही चाहती थी कि पठानिन फिर बोली—इसके पीछे मुझसे लड़ा करती है, बहू! कहती है, क्यों किसी की खैरात लें? यह नहीं सोचती कि उसी से तो हमारी परवरिश हुई है। बस, आजकल सिलाई की धुन है। बारह-बारह बजे रात तक बैठी आंखें फोड़ती रहती है। जरा सूरत देखो, इसी से बुखार भी आने लगा है, पर दवा के नाम से भागती है। कहती हूं, जान रखकर काम कर, कौन लाव-लश्कर खाने वाला है, लेकिन यहां तो धुन है, घर भी अच्छा हो जाए, सामान भी अच्छा बन जाए। इधर काम अच्छा मिला है, और मजूरी भी अच्छी मिल रही है, मगर सब इसी टीम-टाम में उड़ जाती है। यहां से थोड़ी दूर पर एक ईसाइन रहती है, वह रोज सुबह पढ़ाने आती है। हमारे जमाने में तो बेटा सिपारा और रोजा-नमाज का रिवाज था। कई जगह से शादी के पैगाम आए

सकीना ने कठोर होकर कहा—अरे, तो अब चुप भी रहोगी। हो तो चुका। आपकी क्या खातिर करूं, बहन? आपने इतने दिनों बाद मुझ बदनसीब को याद तो किया!

सुखदा ने उदार मन से कहा—याद तो तुम्हारी बराबर आती रहती थी और आने को जी भी चाहता था, पर डरती थी, तुम अपने दिल में न जाने क्या समझो? यह तो आज मियां सलीम से मालूम हुआ कि तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है। जब हम लोग तुम्हारी खिदमत करने को हर तरह हाजिर हैं, तो तुम नाहक क्यों जान देती हो?

सकीना जैसे शर्म को निगलकर बोली—बहन, मैं चाहे मर जाऊं, पर इस गरीबी को मिटाकर छोड़ूंगी। मैं इस हालत में न होती, तो बाबूजी को क्यों मुझ पर रहम आता, क्यों वह मेरे घर आते, क्यों उन्हें बदनाम होकर घर से भागना पड़ता? सारी मुसीबत की जड़ गरीबी है। इसका खात्मा करके छोड़ूंगी।

एक क्षण के बाद उसने पठानिन से कहा—जरा जाकर किसी तंबोलिन से पान ही लगवा लाओ। अब और क्या खातिर करें आपकी?

बुढ़िया को इस बहाने से टालकर सकीना धीरे स्वर में बोली—यह मुहम्मद सलीम का खत है। आप जब मुझ पर इतना रहम करती हैं, तो आपसे क्या परदा करूं? जो होना था, वह तो हो ही गया। बाबूजी यहां कई बार आए। खुदा जानता है जो उन्होंने कभी मेरी तरफ आंख उठाई हो। मैं भी उनका अदब करती थी। हां, उनकी शराफत का असर जरूर मेरे दिल पर होता था। एकाएक मेरी शादी का जिक्र सुनकर बाबूजी एक नशे की-सी हालत में आए और मुझसे महब्बत जाहिर की। खुदा गवाह है बहन, मैं एक हर्फ भी गलत नहीं कह रही हूं। उनकी प्यार की बातें सुनकर मुझे भी सुध-बुध भूल गई। मेरी जैसी औरत के साथ ऐसा शरीफ आदमी यों मुहब्बत करे, यह मुझे ले उड़ा। मैं वह नेमत पाकर दीवानी हो गई। जब वह अपना तन-मन सब मुझ पर निसार कर रहे थे, तो मैं काठ की पुतली तो न थी। मुझमें ऐसी क्या खूबी उन्होंने देखी, यह मैं नहीं जानती। उनकी बातों से यही मालूम होता था कि वह आपसे खुश नहीं हैं। बहन, मैं इस वक्त आपसे साफ-साफ बातें कर रही हूं, मुआफ कीजिएगा। आपकी तरफ से उन्हें कुछ मलाल जरूर था और जैसे फाका करने के बाद अमीर आदमी भी जरदा, पुलाव भूलकर सत्तू पर टूट पड़ता है, उसी तरह उनका दिल आपकी तरफ से मायूस होकर मेरी तरफ लपका। वह मुहब्बत के भूखे थे। मुहब्बत के लिए उनकी रूह तड़पती रही थी। शायद यह नेमत उन्हें कभी मयस्सर ही न हुई। वह नुमाइश से खुश होने

वाले आदमी नहीं हैं। वह दिल और जान से किसी के हो जाना चाहते हैं और उसे भी दिल और जान से अपना कर लेना चाहते हैं। मुझे अब अफसोस हो रहा है कि मैं उनके साथ चली क्यों न गई? बेचारे सत्तू पर गिरे तो वह भी सामने से खींच लिया गया। आप अब भी उनके दिल पर कब्जा कर सकती हैं। बस, एक मुहब्बत में डूबा हुआ खत लिख दीजिए। वह दूसरे ही दिन दौड़े हुए आएंगे। मैंने एक हीरा पाया है और जब तक कोई उसे मेरे हाथों से छीन न ले, उसे छोड़ नहीं सकती। महज यह खयाल कि मेरे पास हीरा है, मेरे दिल को हमेशा मजबूत और खुश बनाए रहेगा।

वह लपककर घर में गई और एक इत्र में बसा हुआ लिफाफा लाकर सुखदा के हाथ पर रखती हुई बोली—यह मियां मुहम्मद सलीम का खत है। आप पढ़ सकती हैं। कोई ऐसी बात नहीं है; वह भी मुझ पर आशिक हो गए हैं, पहले अपने खिदमतगार के साथ मेरा निकाह करा देना चाहते थे। अब खुद निकाह करना चाहते हैं। पहले चाहे जो कुछ रहे हों, पर अब उनमें वह छिछोरापन नहीं है। उनकी मामा उनका हाल बयान किया करती हैं। मेरी निस्बत भी उन्हें जो मालूम हुआ होगा, मामा से ही मालूम हुआ होगा। मैंने उन्हें दो-चार बार अपने दरवाजे पर भी ताकते-झांकते देखा है। सुनती हूं, किसी ऊंचे ओहदे पर आ गए हैं। मेरी तो जैसे तकदीर खुल गई, लेकिन मुहब्बत की जिस नाजुक जंजीर में बंधी हुई हूं, उसे बड़ी-से-बड़ी ताकत भी नहीं तोड़ सकती। अब तो जब तक मुझे मालूम न हो जाएगा कि बाबूजी ने मुझे दिल से निकाल दिया, तब तक उन्हीं की हूं, और उनके दिल से निकाली जाने पर भी इस मुहब्बत को हमेशा याद रखूंगी। ऐसी पाक मुहब्बत का एक लमहा इंसान को उम्र-भर मतवाला रखने के लिए काफी है। मैंने इसी मजमून का जवाब लिख दिया है। कल ही तो उनके जाने की तारीख है। मेरा खत पढ़कर रोने लगे। अब यह ठान ली है कि या तो मुझसे शादी करेंगे या बिना-ब्याहे रहेंगे। उसी जिले में तो बाबूजी भी हैं। दोनों दोस्तों में वहीं फैसला होगा। इसीलिए इतनी जल्द भागे जा रहे हैं।

बुढ़िया एक पत्ते की गिलौरी में पान लेकर आ गई। सुखदा ने निष्क्रिय भाव से पान लेकर खा लिया और फिर विचारों में डूब गई। इस दरिद्र ने उसे आज पूर्ण रूप से परास्त कर दिया था। आज वह अपनी विशाल संपत्ति और महती कुलीनता के साथ उसके सामने भिखारिन-सी बैठी हुई थी। आज उसका मन अपना अपराध स्वीकार करता हुआ जान पड़ा। अब तक उसने तर्क से मन को समझाया था कि पुरुष छिछोरे और हरजाई होते ही हैं, इस युवती के हाव-भाव, हास-विलास ने उन्हें मुग्ध कर लिया। आज उसे ज्ञात हुआ कि यहां न हाव-भाव है, न हास-विलास है, न वह जादू भरी चितवन है। यह तो एक शांत, करुण संगीत है, जिसका रस वही ले सकते हैं, जिनके पास हृदय है। लंपटों और विलासियों को जिस प्रकार चटपटे, उत्तेजक खाने में आनंद आता है, वह यहां नहीं है। उस उदारता के साथ, जो द्वेष की आग से निकलकर खरी हो गई थी, उसने सकीना की गरदन में बांहें डाल दीं और बोली—बहन, आज तुम्हारी बातों ने मेरे दिल का बोझ हल्का कर दिया। संभव है, तुमने मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया है, वह ठीक हो। तुम्हारी तरफ से मेरा दिल आज साफ हो गया। मेरा यही कहना है कि बाबूजी को अगर मुझसे शिकायत हुई थी, तो उन्हें मुझसे कहना चाहिए था। मैं भी ईश्वर से कहती हूं कि अपनी जान में मैंने उन्हें कभी असंतुष्ट नहीं किया। हां, अब मुझे कुछ ऐसी

बातें याद आ रही हैं, जिन्हें उन्होंने मेरी निष्ठुरता समझी होगी, पर उन्होंने मेरा जो अपमान किया, उसे मैं अब भी क्षमा नहीं कर सकती। अगर उन्हें प्रेम की भूख थी, तो मुझे भी प्रेम की भूख कुछ कम न थी। मुझसे वह जो चाहते थे, वही मैं उनसे चाहती थी। जो चीज वह मुझे न दे सके, वह मुझसे न पाकर वह क्यों उद्दंड हो गए? क्या इसीलिए कि वह पुरुष हैं, और पुरुष चाहे स्त्री को पांव की जूती समझ, पर स्त्री का धर्म है कि वह उनके पांव से लिपटी रहे? बहन, जिस तरह तुमने मुझसे कोई परदा नहीं रखा, उसी तरह मैं भी तुमसे निष्कपट बातें कर रही हूं। मेरी जगह पर एक क्षण के लिए अपने को रख लो। तब तुम मेरे भावों को पहचान सकोगी। अगर मेरी खता है तो उतनी ही उनकी भी खता है। जिस तरह मैं अपनी तकदीर को ठोककर बैठ गई थी, क्या वह भी न बैठ सकते थे? तब शायद सफाई हो जाती, लेकिन अब तो जब तक उनकी तरफ से हाथ न बढ़ाया जाएगा, मैं अपना हाथ नहीं बढ़ा सकती, चाहे सारी जिंदगी इसी दशा में पड़ी रहूं। औरत निर्बल है और इसीलिए उसे मान-सम्मान का दुःख भी ज्यादा होता है। अब मुझे आज्ञा दो बहन, जरा नैना से मिलना है। मैं तुम्हारे लिए सवारी भेजूंगी, कृपा करके कभी-कभी हमारे यहां आ जाया करोगे।

वह कमरे से बाहर निकली, तो सकीना रो रही थी, न जाने क्यों?

## दस

सुखदा सेठ धनीराम के घर पहुंची, तो नौ बज रहे थे। बड़ा विशाल, आसमान से बातें करने वाला भवन था, जिसके द्वार पर एक तेज बिजली की बत्ती जल रही थी और दो दरबान खड़े थे। सुखदा को देखते ही भीतर-बाहर हलचल मच गई। लाला मनीराम घर में से निकल आए और उसे अंदर ले गए। दूसरी मंजिल पर सजा हुआ मुलाकाती कमरा था। सुखदा वहां बैठाई गई। घर की स्त्रियां इधर-उधर परदों से झांक रही थीं, कमरे में आने का साहस न कर सकती थी।

सुखदा ने एक कोच पर बैठकर पूछा—सब कुशल-मंगल है?

मनीराम ने एक सिगार सुलगाकर धुआ उड़ाते हुए कहा—आपने शायद पेपर नही देखा। पापा को दो दिन से ज्वर आ रहा है। मैंने तो कलकत्ता से मि० लैंसट को बुला लिया है। यहां किसी पर मुझे विश्वास नहीं। मैंने पेपर में तो दे दिया था। बूढ़े हुए, कहता हूं आप शांत होकर बैठिए, और वे चाहते भी हैं, पर यहां जब कोई बैठने भी दे। गवर्नर प्रयाग आए थे। उनके यहां से खास उनके प्राइवेट सेक्रेटरी का निमंत्रण आ पहुंचा। जाना लाजिम हो गया। इस शहर में और किसी के पास निमंत्रण नहीं आया। इतने बड़े सम्मान को कैसे ठुकरा दिया जाता? वहीं सरदी खा गए। सम्मान ही तो आदमी की जिंदगी में एक चीज है, यों तो अपना-अपना पेट सभी पालते हैं। अब यह समझिए कि सुबह से शाम तक शहर के रईसों का तांता लगा रहता है। सवेरे डिप्टी कमिश्नर और उनकी मेम साहब आई थीं। कमिश्नर ने भी हमदर्दी का तार भेजा है। दो-चार दिन की बीमारी कोई बात नहीं, यह सम्मान तो प्राप्त हुआ। सारा दिन अफसरों की खातिरदारी में कट रहा है।

नौकर पान-इलायची की तश्तरी रख गया। मनीराम ने सुखदा के सामने तश्तरी रख दी। फिर बोले–मेरे घर में ऐसी औरत की जरूरत थी, जो सोसाइटी का आचार-व्यवहार जानती हो और लेडियों का स्वागत-सत्कार कर सके। इस शादी से तो वह बात पूरी हुई नहीं। मुझे मजबूर होकर दूसरा विवाह करना पड़ेगा। पुराने विचार की स्त्रियों की तो हमारे यहां यों भी कमी न थी पर वह लेडियों की सेवा-सत्कार तो नहीं कर सकतीं। लेडियों के सामने तो उन्हें ला ही नहीं सकते। ऐसी फूहड़, गंवार औरतों को उनके सामने लाकर अपना अपमान कौन कराए?

सुखदा ने मुस्कराकर कहा–तो किसी लेडी से आपने क्यों विवाह न किया?

मनीराम निस्संकोच भाव से बोला–धोखा हुआ और क्या? हम लोगों को क्या मालूम था कि ऐसे शिक्षित परिवार में लड़कियां ऐसी फूहड़ होंगी? अम्मां, बहनें और आस-पास की स्त्रियां तो नई बहू से बहुत संतुष्ट हैं। वह व्रत रखती है, पूजा करती है, सिंदूर का टीका लगाती है, लेकिन मुझे तो संसार में कुछ काम, कुछ नाम करना है। मुझे पूजा-पाठ वाली औरतों की जरूरत नहीं, पर अब तो विवाह हो ही गया, यह तो टूट नहीं सकता। मजबूर होकर दूसरा विवाह करना पड़ेगा। अब यहां दो-चार लेडियां रोज ही आया चाहें, उनका सत्कार न किया जाए, तो काम नहीं चलता। सब समझती होंगी, यह लोग कितने मूर्ख हैं।

सुखदा को इस इक्कीस वर्ष वाले युवक की इस निस्संकोच सांसारिकता पर घृणा हो रही थी। उसकी स्वार्थ-सेवा ने जैसे उसकी सारी कोमल भावनाओं को कुचल डाला था, यहां तक कि वह हास्यास्पद हो गया था।

"इस काम के लिए तो आपको थोड़े-से वेतन में किरानियों की स्त्रियां मिल जाएंगी, जो लेडियों के साथ साहबों का भी सत्कार करेंगी।"

"आप इन व्यापार संबंधी समस्याओं को नहीं समझ सकतीं। बड़े-बड़े मिलों के एजेंट आते हैं। अगर मेरी स्त्री उनसे बातचीत कर सकती, तो कुछ-न-कुछ कमीशन रेट बढ़ जाता। यह काम तो कुछ औरत ही कर सकती हैं।"

"मैं तो कभी न करूं। चाहे सारा कारोबार जहन्नुम में मिल जाए।"

"विवाह का अर्थ जहां तक मैं समझा हूं, वह यही है कि स्त्री पुरुष की सहगामिनी है। अंग्रेजों के यहां बराबर स्त्रियां सहयोग देती हैं।"

"आप सहगामिनी का अर्थ नहीं समझे।"

मनीराम मुंहफट था। उसके मुसाहिब इसे साफगोई कहते थे। उसका विनोद भी गाली से शुरू होता था और गाली तो गाली थी ही। बोला–कम-से-कम आपको इस विषय में मुझे उपदेश करने का अधिकार नहीं है। आपने इस शब्द का अर्थ समझा होता, तो इस वक्त आप अपने पति से अलग न होतीं और न वह गली-कूचों की हवा खाते होते।

सुखदा का मुखमंडल लज्जा और क्रोध से आरक्त हो उठा। उसने कुर्सी से उठकर कठोर स्वर में कहा–मेरे विषय में आपको टीका करने का कोई अधिकार नहीं है, लाला मनीराम! जरा भी अधिकार नहीं है। आप अंग्रेजी सभ्यता के बड़े भक्त बनते हैं। क्या आप समझते हैं कि अंग्रेजी पहनावा और सिगार ही उस सभ्यता के मुख्य अंग हैं? उसका प्रधान अंग है, महिलाओं का आदर और सम्मान। वह अभी आपको सीखना बाकी है। कोई

कुलीन स्त्री इस तरह आत्म-सम्मान खोना स्वीकार न करेगी।

उसका गर्जन सुनकर सारा घर थर्रा उठा और मनीराम की तो जैसे जबान बंद हो गई। नैना अपने कमरे में बैठी हुई भावज का इंतजार कर रही थी, उसकी गरज सुनकर समझ गई, कोई-न कोई बात हो गई। दौड़ी हुई आकर बड़े कमरे के द्वार पर खड़ी हो गई।

"मैं तुम्हारी राह देख रही थी भाभी, तुम यहां कैसे बैठ गई?"

सुखदा ने उसकी ओर ध्यान न देकर उसी रोष में कहा—धन कमाना अच्छी बात है, पर इज्जत बेचकर नहीं। और विवाह का उद्देश्य वह नहीं है जो आप समझे हैं। मुझे आज मालूम हुआ कि स्वार्थ में पड़कर आदमी का कहां तक पतन हो सकता है।

नैना ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे उठाती हुई बोली- अरे, तो यहां से उठोगी भी।

सुखदा और उत्तेजित होकर बोली—मैं क्यों अपने स्वामी के साथ नहीं गई? इसलिए कि वह जितने त्यागी हैं, मै उतना त्याग नहीं कर सकती थी। आपको अपना व्यवसाय और धन अपनी पत्नी के आत्म-सम्मान से प्यारा है। उन्होंने दोनों ही को लात मार दी। आपने गली कूचों की जो बात कही, इसका अगर वही अर्थ है, जो मैं समझती हू, तो वह मिथ्या कलंक है। आप अपने रुपये कमाते जाइए, आपका उस महान आत्मा पर छींटे उड़ाना छोटे मुह बड़ी बात है।

सुखदा लोहार की एक को सोनार की सौ के बराबर करने की असफल चेष्टा कर रही थी। वह एक वाक्य उसके हृदय में जितना चुभा, वैसा पैना कोई वाक्य वह न निकाल सकी।

नैना के मुंह से निकला-भाभी, तुम किसके मुंह लग रही हो?

मनीराम क्रोध मे मुट्ठी बाधकर बोला—मै अपने ही घर में अपना यह अपमान नहीं सह सकता।

नैना ने भावज के सामने हाथ जोड़कर कहा—भाभी, मुझ पर दया करो। ईश्वर के लिए यहां से चलो।

सुखदा ने पूछा—कहां हैं सेठजी, जरा मुझे उनसे दो दो बाते करनी हैं?

मनीराम ने कहा—आप इस वक्त उनसे नहीं मिल सकती। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है, और ऐसी बातें सुनना वह पंसद न करेंगे।

"अच्छी बात है, न जाऊंगी। नैनादेवी, कुछ मालूम है तुम्हें, तुम्हारी एक अंग्रेजी सौत आने वाली है, बहुत जल्द।"

"अच्छा ही है, घर में आदमियों का आना किसे बुरा लगता है? एक-दो जितनी चाहें, आवे, मेरा क्या बिगड़ता है?"

मनीराम इस परिहास पर आपे से बाहर हो गया। सुखदा नैना के साथ चली, तो सामने आकर बोला—आप मेरे घर में नहीं आ सकतीं।

सुखदा रुककर बोली—अच्छी बात है, जाती हूं, मगर याद रखिएगा, इस अपमान का नतीजा आपके हक में अच्छा न होगा।

नैना पैरों पड़ती रही, पर सुखदा झल्लाई हुई बाहर निकल गई।

एक क्षण में घर की सारी औरतें और बच्चे जमा हो गए और सुखदा पर आलोचनाएं होने लगीं। किसी ने कहा—इसकी आंख का पानी मर गया। किसी ने कहा—ऐसी न होती, तो खसम छोड़कर क्यों चला जाता? नैना सिर झुकाए सुनती रही। उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी—तेरे सामने यह अनर्थ हो रहा है, और तू बैठी सुन रही है, लेकिन उस समय जबान खोलना कहर हो जाता। वह लाला समरकान्त की बेटी है, इस अपराध को उसकी निष्कपट सेवा भी न मिटा सकी थी। वाल्मीकीय रामायण की कथा के अवसर पर समरकान्त ने लाला धनीराम का मस्तक नीचा करके इस वैमनस्य का बीज बोया था। उसके पहले दोनों सेठों में मित्र-भाव था। उस दिन से द्वेष उत्पन्न हुआ। समरकान्त का मस्तक नीचा करने ही के लिए धनीराम ने यह विवाह स्वीकार किया। विवाह के बाद उनकी द्वेष ज्वाला ठंडी हो गइ थी। मनीराम ने मेज पर पैर रखकर इस भाव से कहा, मानो सुखदा को वह कुछ नहीं समझता—मै इस औरत को क्या जवाब देता? कोई मर्द होता, तो उसे बताता। लाला समरकान्त ने जुआ खेलकर धन कमाया है। उसी पाप का फल भोग रहे हैं। यह मुझसे बातें करने चली हैं। इनकी माता हैं, उन्हें उस शोहदे शान्तिकुमार ने बेवकूफ बनाकर सारी जायदाद लिखा ली। अब टके-टके को मुंहताज हो रही हैं। समरकान्त का भी यही हाल होने वाला है। और यह देवी देश का उपकार करने चली हैं। अपना पुरुष तो मारा-मारा फिरता है और आप देश का उद्धार कर रही हैं। अछूतों के लिए मंदिर क्या खुलवा दिया, अब किसी को कुछ समझती ही नहीं ! अब म्युनिसिपैलटी से जमीन के लिए लड़ रही हैं। ऐसी गच्चा खाएंगी कि याद करेंगी। मैंने इन दो सालों में जितना कारोबार बढ़ाया है, लाला समरकान्त सात जन्म में नहीं बढ़ा सकते।

मनीराम का सारे घर पर आधिपत्य था। वह धन कमा सकता था, इसलिए उसके आचार-व्यवहार को पसंद न करने पर भी घर उसका गुलाम था। उसी ने तो कागज और चीनी की एजेंसी खोली थी। लाला धनीराम घी का काम करते थे और घी के व्यापारी बहुत थे। लाभ कम होता था। कागज और चीनी का वह अकेला एजेंट था। नफा का क्या ठिकाना ! इस सफलता से उसका सिर फिर गया था। किसी को न गिनता था, अगर कुछ आदर करता था, तो लाला धनीराम का। उन्हीं से कुछ दबता भी था।

यहां लोग बातें कर रहे थे कि लाला धनीराम खांसते, लाठी टेकते हुए आकर बैठ गए।

मनीराम ने तुरंत पंखा बंद करते हुए कहा—आपने क्यों कष्ट किया, बाबूजी? मुझे बुला लेते। डॉक्टर ने आपको चलने-फिरने को मना किया था।

लाला धनीराम ने पूछा—क्या आज लाला समरकान्त की बहू आई थी?

मनीराम कुछ डर गया—जी हां, अभी-अभी चली गई।

धनीराम ने आंखें निकालकर कहा—तो तुमने अभी से मुझे मरा समझा लिया? मुझे खबर तक न दी?

''मैं तो रोक रहा था, पर वह झल्लाई हुई चली गईं।''

''तुमने अपनी बातचीत से उसे अप्रसन्न कर दिया होगा; नहीं वह मुझसे मिले बिना न जाती।''

''मैंने तो केवल यही कहा था कि उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।''

''तो तुम समझते हो, जिसकी तबीयत अच्छी न हो, उसे एकांत में मरने देना चाहिए?

आदमी एकांत में मरना भी नहीं चाहता। उसकी हार्दिक इच्छा होती है कि कोई संकट पड़ने पर उसके सगे-संबंधी आकर उसे घेर लें।''

लाला धनीराम को खांसी आ गई। जरा देर के बाद वह फिर बोले—मैं कहता हूं, तुम कुछ सिड़ी तो नहीं हो गए? व्यवसाय में सफ़लता पा जाने ही से किमी का जीवन सफल नहीं हो जाता। समझ गए? सफल मनुष्य वह है, जो दूसरों से अपना काम भी निकाले और उन पर एहसान भी रखे। शेखी मारना सफलता की दलील नहीं, ओछेपन की दलील है। वह मेरे पास आती, तो यहां से प्रसन्न होकर जाती और उसकी सहायता बड़े काम की वस्तु है। नगर में उसका कितना सम्मान है, शायद तुम्हें इसकी खबर नहीं। वह अगर तुम्हें नुकसान पहुंचाना चाहे, तो एक दिन में तबाह कर सकती है। और वह तुम्हें तबाह करके छोड़ेगी। मेरी बात गिरह बांध लो। वह एक ही जिद्दिन औरत है, जिसने पति की परवाह न की, अपने प्राणों की परवाह न की न जाने तुम्हें कब अकल आएगी?

लाला धनीराम को खांसी का दौरा आ गया। मनीराम ने दौड़कर उन्हें सभाला और उनकी पीठ सहलाने लगा। एक मिनट के बाद लालाजी को सांस आई।

मनीराम ने चिंतित स्वर में कहा—इस डॉक्टर की दवा से आपको कोई फायदा नहीं हो रहा है' [illegible] को क्यों न बुला लिया जाय? मैं उन्हें तार दिए देता हूं।

धनीराम ने लंबी सांस खीचकर कहा--अच्छा तो हूगा बेटा, मै किमी साधु की चुटकी-भर राख ही से। हां, वह तमाशा चाहे कर लो, और यह तमाशा बुरा नही रहा। थोड़े मे रुपये ऐसे तमाशों में खर्च कर देने का मै विरोध नहीं करता, लेकिन इस वक्त के लिए इतना बहुत है। कल डॉक्टर साहब से कह दूगा, मुझे बहुत फायदा है, आप तशरीफ ले जाए।

मनीराम ने डरते-डरते पूछा—कहिए तो मै सुखदादेवी के पास जाऊं?

धनीराम ने गर्व से कहा—नहीं, मै तुम्हारा अपमान करना नहीं चाहता। जरा मुझे देखना है कि उसकी आत्मा कितनी उदार है? मैने कितनी ही बार हानिया उठाई, पर किसी के सामने नीचा नहीं बना। समरकान्त को मैने देखा। वह लाख बुरा हो, पर दिल [illegible] साफ है, दया और धर्म को कभी नहीं छोड़ता। अब उनकी बहू की परीक्षा लेनी है।

यह कहकर उन्होंने लकड़ी उठाई और धीरे-धीरे अपने कमरे की तरफ चले। मनीराम उन्हें हाथों से संभाले हुए था।

## ग्यारह

सावन में नैना मैके आई। ससुराल चार कदम पर थी, पर छ: महीने से पहले आने का अवसर न मिला। मनीराम का बस होता तो अब भी न आने [illegible], लेकिन सारा घर नैना की तरफ था। सावन में सभी बहुएं मैके जाती हैं। नैना पर इतना बड़ा अत्याचार नहीं किया जा सकता।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। कहीं कोई मकान गिरता था, कही कोई छत बैठती थी। सुखदा बरामदे में बैठी हुई आंगन में उठते हुए बुलबुलों की सैर कर रही थी। आंगन कुछ गहरा था, पानी रुक जाया करता था। बुलबुलों का बतासों की तरह उठकर कुछ दूर चलना और गायब

हो जाना, उसके लिए मनोरंजक तमाशा बना हुआ था। कभी-कभी दो बुलबुले आमने-सामने आ जाते और जैसे हम कभी-कभी किसी के सामने आ जाने पर कतराकर निकल जाना चाहते हैं, पर जिस तरफ हम मुड़ते हैं, उसी तरफ वह भी मुड़ता है और एक सेकंड तक यही दांव-घात होता रहता है, यही तमाशा यहां भी हो रहा था। सुखदा को ऐसा आभास हुआ, मानो यह जानदार हैं, मानो नन्हें-नन्हें बालक गोल टोपियां लगाए जल-क्रीड़ा कर रहे हैं।

इसी वक्त नैना ने पुकारा—भाभी, आओ, नाव-नाव खेलें। मैं नाव बना रही हूं।

सुखदा ने बुलबुलों की ओर ताकते हुए जवाब दिया—तुम खेलो, मेरा जी नहीं चाहता।

नैना ने न माना। दो नावें लिए आकर सुखदा को उठाने लगी—जिसकी नाव किनारे तक पहुंच जाय उसकी जीत। पांच-पांच रुपये की बाजी।

सुखदा ने अनिच्छा से कहा—तुम मेरी तरफ से भी एक नाव छोड़ दो। जीत जाना, तो रुपये ले लेना, पर उसकी मिठाई नहीं आएगी, बताए देती हूं।

"तो क्या दवाएं आएंगी?"

"वाह, उससे अच्छी और क्या बात होगी? शहर में हजारों आदमी खांसी और ज्वर में पड़े हुए हैं। उनका कुछ उपकार हो जाएगा।"

सहसा मुन्ने ने आकर दोनों नावें छीन लीं और उन्हें पानी में डालकर तालियां बजाने लगा।

नैना ने बालक का चुंबन लेकर कहा—वहां दो-एक बार रोज इसे याद करके रोती थी। न जाने क्यों बार-बार इसी की याद आती रहती थी।

"अच्छा, मेरी याद भी कभी आती थी?"

"कभी नहीं। हां, भैया की याद बार-बार आती थी? और वह इतने निठुर हैं कि छः महीने में एक पत्र भी न भेजा। मैंने भी ठान लिया है कि जब तक उनका पत्र न आएगा, एक खत भी न लिखूंगी।"

"तो क्या सचमुच तुम्हें मेरी याद न आती थी? और मैं समझ रही थी कि तुम मेरे लिए विकल हो रही होगी। आखिर अपने भाई की बहन ही तो हो। आंख की ओट होते ही गायब।"

"मुझे तो तुम्हारे ऊपर क्रोध आता था। इन छः महीनों में केवल तीन बार गई और फिर भी मुन्ने को न ले गई।"

"यह जाता, तो आने का नाम न लेता।"

"तो क्या मैं इसकी दुश्मन थी?"

"उन लोगों पर मेरा विश्वास नहीं है, मैं क्या करूं? मेरी तो यही समझ नहीं आता कि तुम वहां कैसे रहती थीं?"

"तो क्या करती, भाग आती? तब भी तो जमाना मुझी को हंसता।"

"अच्छा सच बताना, पतिदेव तुमसे प्रेम करते हैं?"

"वह तो तुम्हें मालूम ही है।"

"मैं तो ऐसे आदमी से एक बार भी न बोलती।"

"मैं भी कभी नहीं बोली।"

"सच! बहुत बिगड़े होंगे? अच्छा, सारा वृत्तांत कहो। सोहागरात को क्या हुआ? देखो

तुम्हें मेरी कसम, एक शब्द भी झूठ न कहना।"

नैना माथा सिकोड़कर बोली—भाभी, तुम मुझे दिक करती हो, लेकर कसम रखा दी। जाओ, मैं कुछ नहीं बताती।

"अच्छा, न बताओ भाई, कोई जबरदस्ती है ।"

यह कहकर वह उठकर ऊपर चली। नैना ने उसका हाथ पकड़कर कहा—अब भाभी कहां जाती हो, कसम तो रखा चुकीं? बैठकर सुनती जाओ। आज तक मेरी और उनकी एक बार भी बोलचाल नहीं हुई।

सुखदा ने चकित होकर कहा—अरे ! सच कहो

नैना ने व्यथित हृदय से कहा—हां, बिल्कुल सच है, भाभी ! जिस दिन मैं गई उस दिन रात को वह गले में हार डाले, आंखें नशे से लाल, उन्मत्त की भांति पहुंचे, जैसे कोई प्यादा असामी से महाजन के रुपये वसूल करने जाय। और मेरा घूंघट हटाते हुए बोले—मैं तुम्हारा घूंघट देखने नहीं आया हूं, और न मुझे यह ढकोसला पसंद है। आकर इस कुर्सी पर बैठो। मैं उन दकियानूसी मर्दों में नहीं हूं, जो ये गुड़ियों के खेल खेलते हैं। तुम्हें हंसकर मेरा स्वागत करना चाहिए था और तुम घूंघट निकाले बैठी हो, मानो तुम मेरा मुंह नहीं देखना चाहतीं। उनका हाथ पड़ते ही मेरी देह में जैसे सर्प ने काट लिया। मैं सिर से पांव तक सिहर उठी। इन्हें मेरी देह का स्पर्श करने का क्या अधिकार है? यह प्रश्न एक ज्वाला की भांति मेरे मन में उठा। मेरी आंखों से आंसू गिरने लगे, वह सारे मान के स्वप्न, जो मैं कई दिनों से देख रही थी, जैसे उड़ गए। इतने दिनों से जिस देवता की उपासना कर रही थी, क्या उसका यही रूप था ! इसमें न देवत्व था, न मनुष्यत्व था। केवल मदांधता थी, अधिकार का गर्व था और हृदयहीन निर्लज्जता थी। मैं श्रद्धा के थाल में अपनी आत्मा का सारा अनुराग, सारा आनंद, सारा प्रेम स्वामी के चरणों पर समर्पित करने को बैठी हुई थी। उनका यह रूप देखकर, जैसे थाल मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा और इसका धूप-दीप-नैवेद्य जैसे भूमि पर बिखर गया। मेरी चेतना का एक-एक रोम, जैसे इस अधिकार गर्व से विद्रोह करने लगा। कहां था वह आत्म-समर्पण का भाव, जो मेरे अणु-अणु में व्याप्त हो रहा था। मेरे जी में आया, मैं भी कह दूं कि तुम्हारे साथ मेरे विवाह का यह आशय नहीं है कि मैं तुम्हारी लौंडी हूं। तुम मेरे स्वामी हो, तो मैं भी तुम्हारी स्वामिनी हूं। प्रेम के शासन के सिवा मैं कोई दूसरा शासन स्वीकार नहीं कर सकती और न चाहती हूं कि तुम स्वीकार करो, लेकिन जी ऐसा जल रहा था कि मैं इतना तिरस्कार भी न कर सकी। तुरंत वहां से उठकर बरामदे में आ खड़ी हुई। वह कुछ देर कमरे में मेरी प्रतीक्षा करते रहे, फिर झल्लाकर उठे और मेरा हाथ पकड़कर कमरे में ले जाना चाहा। मैंने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और कठोर स्वर में बोली—मैं यह अपमान नहीं सह सकती।

आप बोले—उफ्फोह, इस रूप पर इतना अभि· ा !

मेरी देह में आग लग गई। कोई जवाब न दिया। ऐसे आदमी से बोलना भी मुझे अपमानजनक मालूम हुआ। मैंने अंदर आकर किवाड़ बंद कर लिए, और उस दिन से फिर न बोली। मैं तो ईश्वर से यही मनाती हूं कि वह अपना विवाह कर लें और मुझे छोड़ दें। जो स्त्री में केवल रूप देखना चाहता है, जो केवल हाव भाव और दिखावे का गुलाम है, जिसके

लिए स्त्री केवल स्वार्थसिद्धि का साधन है, उसे मैं अपना स्वामी नहीं स्वीकार कर सकती।

सुखदा ने विनोद-भाव से पूछा—लेकिन तुमने ही अपने प्रेम का कौन-सा परिचय दिया। क्या विवाह के नाम में इतनी बरकत है कि पतिदेव आते-ही-आते तुम्हारे चरणों पर सिर रख देते ?

नैना गंभीर होकर बोली—हां, मैं तो समझती हूं, विवाह के नाम में ही बरकत है। जो विवाह को धर्म का बंधन नहीं समझता है, इसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है, वह पशु है।

सहसा शान्तिकुमार पानी में लथपथ आकर खड़े हो गए।

सुखदा ने पूछा—भीग कहां गए, क्या छतरी न थी?

शान्तिकुमार ने बरसाती उतारकर अलगनी पर रख दी, और बोले—आज बोर्ड का जलसा था। लौटते वक्त कोई सवारी न मिली।

''क्या हुआ बोर्ड में? हमारा प्रस्ताव पेश हुआ?''

''वही हआ, जिसका भय था।''

''कितने वोटों से हारे।''

''सिर्फ पांच वोटों से। इन्हीं पांचों ने दगा दी। लाला धनीराम ने कोई बात उठा नहीं रखी।''

सुखदा ने हतोत्साह होकर कहा—तो फिर अब?

''अब तो समाचार-पत्रों और व्याख्यानों से आंदोलन करना होगा।''

सुखदा उत्तेजित होकर बोली—जी नहीं, मैं इतनी सहनशील नहीं हूं। लाला धनीराम और उनके सहयोगियों को मैं चैन की नींद न सोने दूंगी। इतने दिनों सबकी खुशामद करके देख लिया। अब अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना पड़ेगा। फिर दस-बीस प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी, तब लोगों की आंखें खुलेंगी। मैं इन लोगों का शहर में रहना मुश्किल कर दूंगी।

शान्तिकुमार लाला धनीराम से जले हुए थे। बोले—यह उन्हीं सेठ धनीराम के हथकंडे हैं।

सुखदा ने द्वेष भाव से कहा—किसी राम के हथकंडे हों, मुझे इसकी परवाह नहीं। जब बोर्ड ने एक निश्चय किया, तो उसकी जिम्मेदारी एक आदमी के सिर नहीं, सारे बोर्ड पर है। मैं इन महल-निवासियों को दिखा दूंगी कि जनता के हाथों में भी कुछ बल है। लाला धनीराम जमीन के उन टुकड़ों पर अपने पांव न जमा सकेंगे।

शान्तिकुमार ने कातर भाव से कहा—मेरे खयाल में तो इस वक्त प्रोपेगैंडा करना ही काफी है। अभी मामला तूल हो जाएगा।

ट्रस्ट बन जाने के बाद से शान्ति कुमार किसी जोखिम के काम में आगे कदम उठाते हुए घबराते थे। अब उनके ऊपर एक संस्था का भार था और अन्य साधकों की भांति वह भी साधना को ही सिद्धि समझने लगे थे। अब उन्हें बात-बात में बदनामी और अपनी संस्था के नष्ट हो जाने की शंका होती थी।

सुखदा ने उन्हें फटकार बताई—आप क्या बातें कर रहे हैं, डॉक्टर साहब! मैंने इन पढ़े-लिखे स्वार्थियों को खूब देख लिया। मुझे अब मालूम हो गया कि यह लोग केवल बातों के

शेर हैं। मैं उन्हें दिखा दूंगी कि जिन गरीबों को तुम अब तक कुचलते आए हो, वही अब सांप बनकर तुम्हारे पैरों से लिपट जाएंगे। अब तक यह लोग उनसे रिआयत चाहते थे, अब अपना हक मांगेंगे। रिआयत न करने का उन्हें अख्तियार है, पर हमारे हक से हमें कौन वंचित रख सकता है? रिआयत के लिए कोई जान नहीं देता, पर हक के लिए जान देना सब जानते हैं। मैं भी देखूंगी, लाला धनीराम और उनके पिट्ठू कितने पानी में हैं?

यह कहती हुई सुखदा पानी बरसते में कमरे से निकल आई।

एक मिनट के बाद शान्तिकुमार ने नैना से पूछा—कहां चली गईं? बहुत जल्द गरम हो जाती हैं।

नैना ने इधर-उधर देखकर कहार से पूछा, तो मालूम हुआ, सुखदा बाहर चली गई। उसने आकर शान्ति कुमार से कहा ।

शान्तिकुमार ने विस्मित होकर कहा—इस पानी में कहां गई होंगी? मैं डरता हूं, कहीं हड़ताल वड़ताल न कराने लगें। तुम तो वहां जाकर मुझे भूल गईं नैना, एक पत्र भी न लिखा।

एकाएक उन्हें ऐसा जान पड़ा कि उनके मुंह से एक अनुचित बात निकल गई है। उन्हें नैना से यह प्रश्न न पूछना चाहिए था। इसका वह जाने मन में क्या आशय समझे। उन्हें यह मालूम हुआ, जैसे कोई उसका गला दबाए हुए है। वह वहां से भाग जाने के लिए रास्ता खोजने लगे! वह अब यहां एक क्षण भी नहीं बैठ सकते। उनके दिल में हलचल होने लगी, कहीं नैना अप्रसन्न होकर कुछ कह न बैठे। ऐसी मूर्खता उन्होंने कैसे कर डाली अब तो उनकी इज्जत ईश्वर के हाथ है।

नैना का मुख लाल हो गया। वह कुछ जवाब न देकर मुन्ने को पुकारती हुई कमरे से निकल गई। शान्तिकुमार मूर्तिवत बैठे रहे। अंत को वह उठकर सिर झुकाए इस तरह चले, मानो जूते पड़ गए हों। नैना का यह आरक्त मुख-मंडल एक दीपक की भांति उनके अन्त:पट को जैसे जलाए डालता था।

नैना ने सहृदयता से कहा—कहां चले डॉक्टर साहब, पानी तो निकल जाने दीजिए।

शान्तिकुमार ने कुछ बोलना चाहा, पर शब्दों की जगह कंठ में जैसे नमक का डला पड़ा हुआ था। वह जल्दी से बाहर चले गए, इस तरह लड़खड़ाते हुए, मानो अब गिरे तब गिरे। आंखों में आंसुओं का सागर उमड़ा हुआ था।

## बारह

अब भी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। संध्या से पहले संध्या हो गई थी। और सुखदा ठाकुरद्वारे में बैठी हुई ऐसी हड़ताल का प्रबंध कर रही थी, जो म्युनिसिपल बोर्ड और उसके कर्णधारों का सिर हमेशा के लिए नीचा कर दे, उन्हें हमेशा के लिए सबक मिल जाय कि जिन्हें वे नीच समझते हैं, उन्हीं की दया और सेवा पर उनके जीवन का आधार है। सारे नगर में एक सनसनी-सी छाई हुई है, मानो किसी शत्रु ने नगर को घेर लिया हो। कहीं धोबियों का जमाव हो रहा है, कहीं चमारों का, कहीं मेहतरों का। नाई-कहारों की पंचायत अलग हो रही है।

सुखदादेवी की आज्ञा कौन टाल सकता था? सारे शहर में इतनी जल्द संवाद फैल गया कि यकीन न आता था। ऐसे अवसरों पर न जाने कहां से दौड़ने वाले निकल आते हैं, जैसे हवा में भी हलचल होने लगती है। महीनों से जनता को आशा हो रही थी कि नए-नए घरों में रहेंगे, साफ-सुथरे हवादार घरों में, जहां धूप होगी, हवा होगी, प्रकाश होगा। सभी एक नए जीवन का स्वप्न देख रहे थे। आज नगर के अधिकारियों ने उनकी सारी आशाएं धूल में मिला दीं।

नगर की जनता अब उस दशा में न थी कि उस पर कितना ही अन्याय हो और वह चुपचाप सहती जाय। उसे अपने स्वत्व का ज्ञान हो चुका था, उन्हें मालूम हो गया था कि उन्हें भी आराम से रहने का उतना ही अधिकार है, जितना धनियों को। एक बार संगठित आग्रह की सफलता देख चुके थे। अधिकारियों की यह निरंकुशता, यह स्वार्थपरता उन्हें असह्य हो गई। और यह कोई सिद्धांत की राजनैतिक लड़ाई न थी, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप जनता की समझ में मुश्किल से आता है। इस आंदोलन का तत्काल फल उनके सामने था। भावना या कल्पना पर जोर देने की जरूरत न थी। शाम होते-होते ठाकुरद्वारे में अच्छा-खासा बाजार लग गया।

धोबियों का चौधरी मैकू अपनी बकरे-की-सी दाढ़ी हिलाता हुआ बोला, नशे से आंखें लाल थीं—कपड़े बना रहा था कि खबर मिली। भागा आ रहा हूं। घर में कहीं कपड़े रखने की जगह नहीं है। गीले कपड़े कहां सूखें?

इस पर जगन्नाथ मेहरा ने डांटा—झूठ न बोलो मैकू, तुम कपड़े बना रहे थे अभी? सीधे ताड़ीखाने से चले आ रहे हो। कितना समझाया गया, पर तुमने अपनी टेव न छोड़ी।

मैकू ने तीखे होकर कहा—लो, अब चुप रहो चौधरी, नहीं अभी सारी कलई खोल दूंगा। घर में बैठकर बोतल-के-बोतल उड़ा जाते हो और यहां आकर सेंखी बघारते हो।

मेहतरों का जमादार मतई खड़ा होकर अपनी जमादारी की शान दिखाकर बोला—पंचो, यह बखत बदहवाई बातें करने का नहीं है। जिस काम के लिए देवीजी ने बुलाया है, उसको देखो और फैसला करो कि अब हम क्या करना है? उन्ही बिलों में पड़े सड़ते रहें, या चलकर हाकिमों से फरियाद करें।

सुखदा ने विद्रोह-भरे स्वर में कहा—हाकिमों से जो कुछ कहना सुनना था, कह सुन चुके, किसी ने भी कान न दिया। छः महीने से यही कहा सुनी हो रही है। लेकिन अब तक उसका कोई फल न निकला, तो अब क्या निकलेगा? हमने आरजू मिन्नत से काम निकालना चाहा था, पर मालूम हुआ, सीधी उंगली से घी नहीं निकलता। हम जितना दबेंगे, यह बड़े आदमी हमें उतना ही दबाएंगे, आज तुम्हें तय करना है कि तुम अपने हक के लिए लड़ने को तैयार हो या नहीं।

चमारों का मुखिया सुमेर लाठी टेकता हुआ, मोटे चश्मे लगाए पोपले मुंह से बोला—अरज-मारूज करने के सिवा और हम कर ही क्या सकते हैं? हमारा क्या बस है?

मुरली खटीक ने बड़ी-बड़ी मूंछों पर हाथ फेरकर कहा—बस कैसे नहीं है? हम आदमी नहीं हैं कि हमारे बाल-बच्चे नहीं हैं? किसी को तो महल और बंगला चाहिए, हमें कच्चा घर भी न मिले। मेरे घर में पांच जने हैं उनमें से चार आदमी महीने भर से बीमार हैं। उस

कालकोठरी में बीमार न हों, तो क्या हो? सामने स गंदा नाला बहता है। सांस लेते नाक फटती है।

ईदू कुंजडा अपनी झुकी हुई कमर को सीधी करने की चेष्टा करते हुए बोला—अगर मुकद्दर में आराम करना लिखा होता, तो हम भी किसी बड़े आदमी क घर न पैदा होते? हाफिज हलीम आज बड़े आदमी हो गए हैं, नहीं मेरे सामने जूते बेचते थे। लड़ाई में बन गए। अब रईसों के ठाठ हैं। सामने चला जाऊं तो पहचानेंगे नहीं। नहीं तो पैसे-धेले की मूली-तुरई उध ार ले जाते थे। अल्लाह बड़ा कारसाज है। अब तो लड़का भी हाकिम हो गया है। क्या पूछना है?

जंगली घोसी पूरा काला देव था। शहर का मशहूर पहलवान। बोला—मैं तो पहले ही जानता था, कुछ होना-हवाना नहीं है। अमीरों के सामन हमे कौन पूछता है?

अमीर बेग पतली, लंबी गरदन निकालकर बोला—बार्ड के फैसले की अपील तो कहीं होती होगी? हाईकोर्ट में अपील करनी चाहिए। हाईकार्ट न सुने, तो बादशाह से फरियाद की जाय।

सुखदा ने मुस्कराकर कहा—बोर्ड के फैसले की अपील वहाँ है जो इस वक्त तुम्हारे सामने हो रही है। आप ही लोग हाईकोर्ट हैं, आप ही लोग जज हैं। बोर्ड अमीरों का मुंह देखता है। गरीबों के मुहल्ले खोद-खोदकर फेंक दिए जाते हैं, इसलिए कि अमीरों के महल बनें। गरीबों को दस-पांच रुपये मुआवजा देकर उसी जमीन के हजारों वसूल किए जाते हैं। उन रुपयों से अफसरों को बड़ी-बड़ी तनख्वाह दी जाती हैं। जिस जमीन पर हमारा दावा था, वह लाला धनीराम को दे दी गई। वहां उनके बंगले बनेंगे। बोर्ड को रुपये से प्यार है, तुम्हारी जान की उनकी निगाह में कोई कीमत नहीं। इन स्वार्थियों स इंसाफ की आशा छोड़ दो। तुम्हारे पास इतनी शक्ति है, उसका उन्हें खयाल नहीं है। वे समझते हैं, यह गरीब लोग हमारा कर ही क्या सकते हैं? मैं कहती हू, तुम्हारे ही हाथों में सब कुछ है। हमें लड़ाई नहीं करनी है, फसाद नहीं करना है। सिर्फ हड़ताल करना है, यह दिखाने के लिए कि तुमने बोर्ड के फैसले को मजूंर नहीं किया और यह हड़ताल एक-दो दिन की नहीं होगी। यह उस वक्त तक रहेगी जब तक बोर्ड अपना फैसला रद्द करके हमें जमीन न दे दे। मैं जानती हूं, ऐसी हड़ताल करना आसान नहीं है। आप लोगों में बहुत ऐसे हैं, जिनके घर में एक दिन का भी भोजन नहीं है, मगर वह भी जानती हूं कि बिना तकलीफ उठाए आराम नहीं मिलता।

सुमेर की जूते की दूकान थी। तीन-चार चमार नौकर थे। खुद जूते काट दिया करता था। मजूर से पूंजीपति बन गया था। घास वालों और साईसों को सूद पर रुपये भी उधार दिया करता था। मोटी ऐनकों के पीछे से बिज्जू की भांति ताकता हुआ बोला—हड़ताल होना तो हमारी बिरादरी में मुश्किल है, बहूजी! यों आपका गुलाम हूं और जानता हूं कि आप जो कुछ करेंगी, हमारी ही भलाई के लिए करेंगी, पर हमारी बिरादरी में हड़ताल होना मुश्किल है। बेचारे दिन-भर घास काटते हैं, सांझ को बेचकर आटा-दाल जुटाते हैं, तब कहां चूल्हा जलता है। कोई सहीस है, कोई कोचवान, बेचारों की नौकरी जाती रहेगी। अब तो सभी जाति वाले सहीसी, कोचवानी करते हैं। उनकी नौकरी दूसरे उठा लें, तो बेचारे कहां जाएंगे?

सुखदा बिरोध सहन न कर सकती थी। इन कठिनाइयों का उसकी निगाह में कोई मूल्य

न था। तिनककर बोली—तो क्या तुमने समझा था कि बिना कुछ किए-धरे अच्छे मकान रहने को मिल जाएंगे? संसार में जो अधिक से अधिक कष्ट सह सकता है, उसी की विजय होती है।

मतई जमादार ने कहा—हड़ताल से नुकसान तो सभी का होगा, क्या तुम हुए, क्या हम हुए; लेकिन बिना धुएं के आग नहीं जलती। बहूजी के सामने हम लोगों ने कुछ न किया, तो समझ लो, जन्म-भर ठोकर खानी पड़ेगी। फिर ऐसा कौन है, जो हम गरीबों का दुख-दर्द समझेगा। जो कहो नौकरी चली जाएगी, तो नौकर तो हम सभी हैं। कोई सरकार का नौकर है, कोई रईस का नौकर है। हमको यहां कौल-कसम भी कर लेनी होगी कि जब तक हड़ताल रहे, कोई किसी की जगह पर न जाय, चाहे भूखों मर भले ही जाएं।

सुमेर ने मतई को झिड़क दिया—तुम जमादार, बात समझते नहीं, बीच में कूद पड़ते हो। तुम्हारी और बात है, हमारी और बात है। हमारा काम सभी करते हैं, तुम्हारा काम और कोई नहीं कर सकता।

मैकू ने सुमेर का समर्थन किया—यह तुमने बहुत ठीक कहा, सुमेर चौधरी ! हमीं को देखो। अब पढ़े-लिखे आदमी धुलाई का काम करने लगे हैं। जगह-जगह कंपनी खुल गई हैं। गाहक के यहां पहुंचने में एक दिन की भी देर हो जाती है, तो वह कपड़े कंपनी भेज देता है। हमारे हाथ से गाहक निकल जाता है। हड़ताल दस-पांच दिन चली, तो हमारा रोजगार मिट्टी में मिल जाएगा। अभी पेट की रोटियां तो मिल जाती हैं। तब तो रोटियों के लाले पड़ जाएंगे।

मुरली खटीक ने ललकारकर कहा—जब कुछ करने का बूता नहीं तो लड़ने किस बिरते पर चले थे? क्या समझते थे, रो देने से दूध मिल जाएगा? वह जमाना अब नहीं है। अगर अपना और बाल-बच्चों का सुख देखना चाहते हो, तो सब तरह की आफत-बला सिर पर लेनी पड़ेगी। नहीं जाकर घर में आराम से बैठो और मक्खियों की तरह मरो।

ईदू ने धार्मिक गंभीरता से कहा—होगा, वही जो मुकद्दर में है। हाय-हाय करने से कुछ होने को नहीं। हाफिज हलीम तकदीर ही से बड़े आदमी हो गए। अल्लाह की रजा होगी, तो मकान बनते देर न लगेगी।

जंगली ने इसका समर्थन किया—बस, तुमने लाख रुपये की बात कह दी, ईदू मिया ! हमारा दूध का सौदा ठहरा। एक दिन दूध न पहुंचे या देर हो जाय, तो लोग घुड़कियां जमाने लगते हैं—हम डेरी से दूध लेंगे, तुम बहुत देर करते हो। हड़ताल दस-पांच दिन चल गई, तो हमारा तो दिवाला निकल जाएगा। दूध तो ऐसी चीज नहीं कि आज न बिके, कल बिक जाय।

ईदू बोला—वही हाल तो साग-पात का भी है भाई, फिर बरसात के दिन हैं, सुबू की चीज शाम को सड़ जाती है, और कोई सेंत में भी नहीं पूछता।

अमीरबेग ने अपनी सारस की-सी गर्दन उठाई—बहूजी, मैं तो कोई कायदा-कानून नहीं जानता; मगर इतना जानता हूं, कि बादशाह रैयत के साथ इंसाफ जरूर करते हैं। रात को भेस बदलकर रैयत का हाल-चाल जानने के लिए निकलते हैं, अगर ऐसी अरजी तैयार की जाय जिस पर हम सबके दसखत हों और बादशाह के सामने पेश की जाय, तो उस पर जरूर लिहाज किया जाएगा।

सुखदा ने जगन्नाथ की ओर आशा-भरी आंखों से देखकर कहा—तुम क्या कहते हो जगन्नाथ, इन लोगों ने तो जवाब दे दिया?

जगन्नाथ ने बगलें झांकते हुए कहा—तो बहूजी, अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता। अगर सब भाई साथ दें तो मैं तैयार हूं। हमारी बिरादरी का आधार नौकरी है। कुछ लोग खोंचे लगाते हैं, कोई डोली ढोता है, पर बहुत करके लोग बड़े आदमियों की सेवा-टहल करते हैं। दो-चार दिन बड़े घरों की औरतें भी घर का काम-काज कर लेंगी। हम लोगों का तो सत्यानाश ही हो जाएगा।

सुखदा ने उसकी ओर से मुंह फेर लिया और मतई से बोली—तुम क्या कहते हो, क्या तुमने भी हिम्मत छोड़ दी?

मतई ने छाती ठोकर कहा—बात कहकर निकल जाना पाजियों का काम है, सरकार! आपका जो हुक्म होगा, उससे बाहर नहीं जा सकता। चाहे जान रहे या जाए। बिरादरी पर भगवान् की दया से इतनी धाक है कि जो बात मैं कहूंगा, उसे कोई दुलक नहीं सकता।

सुखदा ने निश्चय-भाव से कहा—अच्छी बात है, कल से तुम अपनी बिरादरी की हड़ताल करवा दो। और चौधरी लोग जाएं। मैं खुद घर-घर घूमूंगी, द्वार द्वार जाऊंगी, एक-एक के पैर पड़ूंगी और हड़ताल कराके छोड़ूंगी, और हड़ताल न हुई, तो मुंह में कालिख लगाकर डूब मरूंगी। मुझे तुम लोगों से बड़ी आशा थी, तुम्हारा बड़ा जोर था, अभिमान था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया।

यह कहती हुई वह ठाकुरद्वारे से निकलकर पानी में भीगती हुई चली गई। मतई भी उसके पीछे-पीछे चला गया। और चौधरी लोग अपनी अपराधी सूरतें लिए बैठे रहे।

एक क्षण के बाद जगन्नाथ बोला—बहूजी ने शेर कलेजा पाया है।

सुमेर ने पोपला मुंह चबलाकर कहा—लक्ष्मी की औतार है। लेकिन भाई, रोजगार तो नहीं छोड़ा जाता। हाकिमों की कौन चलाए, दस दिन, पंद्रह दिन न सुनें तो यहां तो मर मिटेंगे।

ईदू को दूर की सूझी—मर नहीं मिटेंगे पंचो, चौधरियों को जेहल में ठूंस दिया जाएगा। हो किस फेर में? हाकिमों से लड़ना ठट्ठा नहीं।

जंगली ने हामी भरी—हम क्या खाकर रईसों से लड़ेंगे? बहूजी के पास धन है, इलम है, वह अफसरों से दो-दो बातें कर सकती हैं। हर तरह का नुकसान सह सकती हैं। हमार तो बधिया बैठ जाएगी।

किंतु सभी मन में लज्जित थे, जैसे मैदान से भागा सिपाही। उसे अपने प्राणों के बचाने का जितना आनंद होता है, उससे कहीं ज्यादा भागने की लज्जा होती है। वह अपनी नीति का समर्थन मुंह से चाहे कर ले, हृदय से नहीं कर सकता।

जरा देर में पानी रुक गया और यह लोग भी यहां से चले, लेकिन उनके उदास चेहरों में, उनकी मंद चाल में, उनके झुके हुए सिरों में, उनके चिंतामय मौन में, उनके मन के भाव साफ झलक रहे थे।

# तेरह

सुखदा घर पहुंची, तो बहुत उदास थी। सार्वजनिक जीवन में हार का उसे यह पहला अनुभव था और उसका मन किसी चाबुक खाए हुए अल्हड़ बछेड़े की तरह सारा साज और बम और बंधन तोड़-ताड़कर भाग जाने के लिए व्यग्र हो रहा था। ऐसे कायरों से क्या आशा की जा सकती है! जो लोग स्थायी लाभ के लिए थोड़े-से कष्ट नहीं उठा सकते, उनके लिए संसार में अपमान और दु:ख के सिवा और क्या है?

नैना मन में इस हार पर खुश थी। अपने घर में उसकी कुछ पूछ न थी, उसे अब तक अपमान-ही-अपमान मिला था, फिर भी उसका भविष्य उसी घर से संबद्ध हो गया था। अपनी आंखें दुखती हैं, तो फोड़ नहीं दी जातीं। सेठ धनीराम ने जमीन हजारों में खरीदी थी, थोड़े ही दिनों में उनके लाखों में बिकने की आशा थी। वह सुखदा से कुछ कह तो न सकती थी, पर यह आंदोलन उसे बुरा मालूम होता था। सुखदा के प्रति अब उसको वह भक्ति न रही थी। अपनी द्वेष-तृष्णा शांत करने ही के लिए तो वह आग लगा रही है! इन तुच्छ भावनाओं से दबकर सुखदा उसकी आंखों में कुछ संकुचित हो गई थी।

नैना ने आलोचक बनकर कहा—अगर यहां के आदमियों को संगठित कर लेना इतना आसान होता, तो आज यह दुर्दशा ही क्यों होती?

सुखदा आवेश में बोली—हड़ताल तो होगी, चाहे चौधरी लोग मानें या न मानें। चौधरी मोटे हो गए हैं और मोटे आदमी स्वार्थी हो जाते हैं।

नैना ने आपत्ति की—डरना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। जिसमें पुरुषार्थ है, ज्ञान है, बल है, वह बाधाओं को तुच्छ समझ सकता है। जिसके पास व्यंजनों से भरा हुआ थाल है, वह एक टुकड़ा कुत्ते के सामने फेंक सकता है, जिसके पास एक ही टुकड़ा हो, वह उसी से चिमटेगा!

सुखदा ने मानो इस कथन को सुना ही नहीं—मंदिर वाले झगड़े में न जाने सभी में कैसे साहस आ गया था। मैं एक बार वही कांड दिखा देना चाहती हूं।

नैना ने कांपकर कहा—नहीं भाभी, इतना बड़ा भार सिर पर मत लो। समय आ जाने पर सब-कुछ आप ही हो जाता है। देखो, हम लोगों के देखते-देखते बाल-विवाह, छूत-छात का रिवाज कम हो गया। शिक्षा का प्रचार कितना बढ़ गया। समय आ जाने पर गरीबों के घर भी बन जाएंगे।

"यह तो कायरों की नीति है। पुरुषार्थ वह है, जो समय को अपने अनुकूल बनाए।"

"इसके लिए प्रचार करना चाहिए।"

"छ: महीने वाली राह है।"

"लेकिन जोखिम तो नहीं है।"

"जनता को मुझ पर विश्वास नहीं है!"

एक क्षण बाद उसने फिर कहा—अभी मैंने ऐसी कौन-सी सेवा की है कि लोगों को मुझ पर विश्वास हो! दो-चार घंटे गलियों में चक्कर लगा लेना कोई सेवा नहीं है।

"मैं तो समझती हूं, इस समय हड़ताल कराने से जनता की थोड़ी बहुत सहानुभूति

जो है, वह भी गायब हो जाएगी।''

सुखदा ने अपनी जांघ पर हाथ पटककर कहा—सहानुभूति से काम चलता, तो फिर रोना किस बात का था? लोग स्वेच्छा से नीति पर चलते, तो कानून क्यों बनाने पड़ते? मैं इस घर में रहकर और अमीर का ठाट रखकर जनता के दिलों पर काबू नहीं पा सकती। मुझे त्याग करना पड़ेगा। इतने दिनों से सोचती ही रह गई।

दूसरे दिन शहर में अच्छी-खासी हड़ताल थी। मेहतर तो एक भी काम करता न नजर आता था। कहारों और इक्के-गाड़ी वालों ने भी काम बंद कर दिया था। साग-भाजी की दूकानें भी आधी से ज्यादा बंद थीं। कितने ही घरों में दूध के लिए हाय-हाय मची हुई थी। पुलिस दूकानें खुलवा रही थी और मेहतरों को काम पर लाने की चेष्टा कर रही थी। उधर जिले के अधिकारी मंडल में इस समस्या को हल करने का विचार हो रहा था। शहर के रईस और अमीर भी उसमे शामिल थे।

दोपहर का समय था। घटा उमड़ी चली आती थी, जैसे आकाश पर पीला लेप किया जा रहा हो। सड़कों और गलियों में जगह-जगह पानी जमा था। उसी कीचड़ में जनता इधर-उधर दौड़ती फिरती थी। सुखदा के द्वार पर एक भीड़ लगी हुई थी कि सहसा शान्तिकुमार घुटने तक कीचड़ लपेटे आकर बरामदे में खड़े हो गए। कल की बातों के बाद आज वहां आते उन्हें संकोच हो रहा था। नैना ने उन्हें देखा, पर अंदर न बुलाया। सुखदा अपनी माता से बातें कर रही थी। शान्तिकुमार एक क्षण खड़े रहे, फिर हताश होकर चलने को तैयार हुए।

सुखदा ने उनकी रोनी सूरत देखी, फिर भी उन पर व्यंग्य-प्रहार करने से न चूकी—किसी ने आपको यहां आते देख तो नहीं लिया, डॉक्टर साहब?

शान्तिकुमार ने इस व्यग्य की चोट को विनोद से रोका—खूब देख-भालकर आया हू। कोई यहां देख भी लेगा, तो कह दूंगा, रुपये उधार लेने आया हूं।

रेणुका ने डॉक्टर साहब से देवर का नाता जोड़ लिया था। आज सुखदा ने कल का वृत्तांत सुनाकर उसे डॉक्टर साहब को आड़े हाथों लेने की सामग्री दे दी थी, हालांकि अदृश्य रूप से डॉक्टर साहब के नीति-भेद का कारण वह खुद थीं। उन्हीं ने ट्रस्ट का भार उनके सिर पर रखकर उन्हें सचिंत कर दिया था।

उसने डॉक्टर का हाथ पकड़कर कुर्सी पर बैठाते हुए कहा—तो चूड़ियां पहनकर बैठो ना, यह मूंछें क्यो बढ़ा ली है?

शान्तिकुमार ने हंसते हुए कहा—मैं तैयार हू, लेकिन मुझसे शादी करने के लिए तैयार रहिएगा। आपको मर्द बनना पड़ेगा।

रेणुका ताली बजाकर बोली—मैं तो बूढ़ी हुई, लेकिन तुम्हारा खसम ऐसा ढूंढूंगी जो तुम्हें सात परदों के अंदर रखे और गालियों से बात करे। गहने मैं बनवा दूंगी। सिर में सिंदूर डालकर घूंघट निकाले रहना। पहले खसम खा लेगा, तो उसका जूठन मिलेगा, समझ गए, और उसे देवता का प्रसाद समझ कर खाना पड़ेगा। जरा भी नाक-भौं सिकोड़ी, तो कुलच्छनी कहलाओगे। उसके पांव दबाने पड़ेंगे, उसकी धोती छांटनी पड़ेगी। वह बाहर से आएगा तो उसके पांव धोने पड़ेंगे, और बच्चे भी जनने पड़ेंगे। बच्चे न हुए, तो वह दूसरा ब्याह कर लेगा फिर घर में लौंडी बनकर रहना पड़ेगा।

शान्तिकुमार पर लगातार इतनी चोटें पड़ीं कि हंसी भूल गई। मुंह जरा-सा निकल आया। मुर्दनी ऐसी छा गई जैसे मुंह बंध गया। जबड़े फैलाने से भी न फैलते थे। रेणुका ने उनकी दो-चार बार पहले भी हंसी की थी; पर आज तो उन्हें रुलाकर छोड़ा। परिहास में औरत अजेय होती है, खासकर जब वह बूढ़ी हो।

उन्होंने घड़ी देखकर कहा—एक बज रहा है। आज तो हड़ताल अच्छी तरह रही।

रेणुका ने फिर चुटकी ली—आप तो घर में लेटे थे, आपको क्या खबर?

शान्तिकुमार ने अपनी कारगुजारी जताई—उन आराम से लेटने वालों में मैं नहीं हूं। हरेक आंदोलन में ऐसे आदमियों की भी जरूरत होती है, जो गुप्त रूप से उसकी मदद करते रहें। मैंने अपनी नीति बदल दी है और मुझे अनुभव हो रहा है कि इस तरह कुछ कम सेवा नहीं कर सकता। आज नौजवान-सभा के दस-बारह युवकों को तैनात कर आया हूं, नहीं इसकी चौथाई हड़ताल भी न होती।

रेणुका ने बेटी की पीठ पर एक थपकी देकर कहा—जब तू इन्हें क्यों बदनाम कर रही थी? बेचारे ने इतनी जान खपाई, फिर भी बदनाम हुए। मेरी समझ में भी यह नीति आ रही है। सबका आग में कूदना अच्छा नहीं।

शान्तिकुमार कल के कार्यक्रम का निश्चय करके और सुखदा को अपनी ओर से आश्वस्त करके चले गए।

संध्या हो गई थी। बादल खुल गए थे और चांद की सुनहरी जोत पृथ्वी के आंसुओं से भीगे हुए मुख पर मातृ-स्नेह की वर्षा कर रही थी। सुखदा संध्या करने बैठी हुई थी। उस गहरे आत्म-चिंतन में उसके मन की दुर्बलता किसी हठीले बालक की भांति रोती हुई मालूम हुई। मनीराम ने उसका वह अपमान न किया होता, तो वह हड़ताल के लिए क्या इतना जोर लगाती?

उसके अभिमान ने कहा—हां-हां, जरूर लगाती। यह विचार बहुत पहले उसके मन में आया था। धनीराम को हानि होती है, तो हो, इस भय से वह कर्त्तव्य का त्याग क्यों करे? जब वह अपना सर्वस्व इस उद्योग के लिए होम करने को तुली हुई है, तो दूसरों के हानि-लाभ की क्या चिंता हो सकती है?

इस तरह मन को समझाकर उसने संध्या समाप्त की और नीचे उतरी ही थी कि लाला समरकान्त आकर खड़े हो गए। उनके मुख पर विषाद की रेखा झलक रही थी और होंठ इस तरह फड़क रहे थे, मानो मन का आवेश बाहर निकलने के लिए विकल हो रहा हो।

सुखदा ने पूछा—आप कुछ घबराए हुए हैं दादाजी, क्या बात है?

समरकान्त की सारी देह कांप उठी। आंसुओं के वेग को बलपूर्वक रोकने की चेष्टा करके बोले—एक पुलिस कर्मचारी अभी दूकान पर ऐसी सूचना दे गया है कि क्या कहूं।

यह कहते-कहते उनका कंठ-स्वर जैसे गहरे जल में डुबकियां खाने लगा।

सुखदा ने आशंकित होकर पूछा—तो कहिए न, क्या कह गया है? हरिद्वार में तो सब कुशल है?

समरकान्त ने उसकी आशंकाओं को दूसरी ओर बहकते देख जल्दी मे कहा—नहीं

नहीं, उधर की कोई बात नहीं है। तुम्हारे विषय में था। तुम्हारी गिरफ्तारी का वारंट निकल गया है।

सुखदा ने हंसकर कहा—अच्छा ! मेरी गिरफ्तारी का वारंट है ! तो उसके लिए आप इतना क्यों घबरा रहे हैं? मगर आखिर मेरा अपराध क्या है?

समरकान्त ने मन को संभालकर कहा—यही हड़ताल है। आज अफसरों में सलाह हुई हैं। और वहां यही निश्चय हुआ कि तुम्हें और चौधरियों को पकड़ लिया जाय। इनके पास दमन ही एक दवा है। असंतोष के कारणों को दूर न करेंगे, बस, पकड़-धकड़ से काम लेंगे, जैसे कोई माता भूख से रोते बालक को पीटकर चुप कराना चाहे।

सुखदा शांत भाव से बोली—जिस समाज का आधार ही अन्याय पर हो, उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है? लेकिन इससे कोई यह न समझे कि यह आंदोलन दब जाएगा, उसी तरह, जैसे कोई गेंद टक्कर खाकर और जोर से उछलती है, जितने ही जोर की टक्कर होगी, उतने ही जोर की प्रतिक्रिया भी होगी।

एक क्षण के बाद उसने उत्तेजित होकर कहा—मुझे गिरफ्तार कर लें। उन लाखों गरीबों को कहां ले जाएंगे, जिनकी आहें आसमान तक पहुंच रही हैं। यही आहें एक दिन किसी ज्वालामुखी की भांति फटकर सारे समाज और समाज के साथ सरकार को भी विध्वंस कर देंगी; अगर किसी की आंखें नहीं खुलतीं, तो न खुलें। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। एक दिन आएगा, जब आज के देवता कल कंकर-पत्थर की तरह उठा-उठाकर गलियों में फेंक दिए जाएंगे और पैरों से ठुकराए जाएंगे। मेरे गिरफ्तार हो जाने से चाहे कुछ दिनों के लिए अधिकारियों के कानों में हाहाकार की आवाजें न पहुंचें, लेकिन वह दिन दूर नहीं है, जब यही आंसू चिंगारी बनकर अन्याय को भस्म कर देंगे। इसी राख से वह अग्नि प्रज्वलित होगी, जिसकी आंदोलन शाखाएं आकाश तक को हिला देंगी।

समरकान्त पर इस प्रलाप का कोई असर न हुआ। वह इस संकट को टालने का उपाय सोच रहे थे। डरते-डरते बोले—एक बात कहूं, बुरा न मानो। जमानत

सुखदा ने त्योरियां बदलकर कहा—नहीं, कदापि नहीं। मैं क्यों जमानत दूं? क्या इसलिए कि अब मैं कभी जबान न खोलूंगी, अपनी आंखों पर पट्टी बांध लूंगी, अपने मुंह पर जाली लगा लूंगी? इससे तो यह कहीं अच्छा है कि अपनी आंखें फोड़ लूं, जबान कटवा दूं।

समरकान्त की सहिष्णुता अब सीमा तक पहुंच चुकी थी। गरजकर बोले—अगर तुम्हारी जबान काबू में नहीं है, तो कटवा लो। मैं अपने जीते-जी यह नहीं देख सकता कि मेरी बहू गिरफ्तार की जाए और मैं बैठा देखूं। तुमने हड़ताल करने के लिए मुझसे पूछ क्यों न लिया? तुम्हें अपने नाम की लाज न हो, मुझे तो है। मैंने जिस मर्यादा-रक्षा के लिए अपने बेटे को त्याग दिया, उस मर्यादा को मैं तुम्हारे हाथों न मिटने दूंगा।

बाहर से मोटर का हार्न सुनाई दिया। सुखदा के कान खड़े हो गए। वह आवेश में द्वार की ओर चली। फिर दौड़कर मुन्ने को नैना की गोद से लेकर उसे हृदय से लगाए हुए अपने कमरे में जाकर अपने आभूषण उतारने लगी। समरकान्त का सारा क्रोध कच्चे रंग की भांति पानी पड़ते ही उड़ गया। लपककर बाहर गए और आकर घबराए हुए बोले—बहू, डिप्टी आ गया। मैं जमानत देने जा रहा हूं। मेरी इतनी याचना स्वीकार करो। थोड़े दिनों का

मेहमान हूं। मुझे मर जाने दो फिर जो कुछ जी में आए करना।

सुखदा कमरे के द्वार पर आकर दृढ़ता से बोली—मैं जमानत न दूंगी, न इस मुआमले की पैरवी करूंगी। मैंने कोई अपराध नहीं किया है।

समरकान्त ने जीवन भर में कभी हार न मानी थी; पर आज वह इस अभिमानिनी रमणी के सामने परास्त खड़े थे। उसके शब्दों ने जैसे उनके मुंह पर जाली लगा दी। उन्होंने सोचा—स्त्रियों को संसार अबला कहता है। कितनी बड़ी मूर्खता है। मनुष्य जिस वस्तु को प्राणों से भी प्रिय समझता है, वह स्त्री की मुट्ठी में है।

उन्होंने विनय के साथ कहा—लेकिन अभी तुमने भोजन भी तो नहीं किया। खड़ी मुंह क्या ताकती है नैना, क्या भंग खा गई है! जा, बहू को खाना खिला दे। अरे ओ महराज! महरा! यह ससुरा न जाने कहां मर रहा? समय पर एक भी आदमी नजर नहीं आता। तू बहू को ले जा रसोई में नैना, मैं कुछ मिठाई लेता आऊं। साथ-साथ कुछ खाने को तो ले जाना ही पड़ेगा।

कहार ऊपर बिछावन लगा रहा था। दौड़ा हुआ आकर खड़ा हो गया। समरकान्त ने उसे जोर से एक धौल मारकर कहा—कहां था तू? इतनी देर से पुकार रहा हूं, सुनता नहीं! किसके लिए बिछावन लगा रहा है, ससुर! बहू जा रही है। जा दौड़कर बाजार से मिठाई ला। चौक वाली दुकान से लाना।

सुखदा आग्रह के साथ बोली—मिठाई की मुझे बिल्कुल जरूरत नहीं है और न कुछ खाने की ही इच्छा है। कुछ कपड़े लिए जाती हूं, वही मेरे लिए काफी हैं।

बाहर से आवाज आई—सेठजी, देवीजी को जल्दी भेजिए, देर हो रही है।

समरकान्त बाहर आए और अपराधी की भांति खड़े गए।

डिप्टी दुहरे बदन का, रोबदार, पर हंसमुख आदमी था, जो और किसी विभाग में अच्छी जगह न पाने के कारण पुलिस में चला आया था। अनावश्यक अशिष्टता से उसे घृणा थी और यथासाध्य रिश्वत न लेता था। पूछा—कहिए क्या राय हुई?

समरकान्त ने हाथ बांधकर कहा—कुछ नहीं सुनती हुजूर, समझाकर हार गया। और मैं उसे क्या समझाऊं? मुझे वह समझती ही क्या है? अब तो आप लोगों की दया का भरोसा है। मुझसे जो खिदमत कहिए, उसके लिए हाजिर हूं। जेलर साहब से तो आपका रब्त-जब्त होगा ही, उन्हें भी समझा दीजिएगा। कोई तकलीफ न होने पावे। मैं किसी तरह भी बाहर नहीं हूं। नाजुक मिजाज औरत है, हुजूर!

डिप्टी ने सेठजी को बराबर की कुर्सी पर बैठाकर कहा—सेठजी, यह बातें उन मुआमलों में चलती हैं; जहां कोई काम बुरी नीयत से किया जाता है। देवीजी अपने लिए कुछ नहीं कर रही हैं। उनका इरादा नेक है; वह हमारे गरीब भाइयों के हक के लिए लड़ रही हैं। उन्हें किसी तरह की तकलीफ न होगी। नौकरी से मजबूर हूं; वरना यह देवियां तो इस लायक हैं कि इनके कदमों पर सिर रखें। खुदा ने सारी दुनिया की नेमतें दे रखी हैं; मगर उन सब पर लात मार दी और हक के लिए सब कुछ झेलने को तैयार हैं। इसके लिए गुर्दा चाहिए साहब, मामूली बात नहीं है।

सेठजी ने संदूक से दस अशर्फियां निकालीं और चुपके से डिप्टी की जेब में डालते

हुए बोले—यह बच्चों के मिठाई खाने के लिए है।

डिप्टी ने अशर्फियां जेब से निकालकर मेज पर रख दीं और बोला—आप पुलिस वालों को बिल्कुल जानवर ही समझते हैं क्या, सेठजी? क्या लाल पगड़ी सिर पर रखना ही इंसानियत का खून करना है? मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि देवीजी को तकलीफ न होने पाएगी। तकलीफ उन्हें दी जाती है जो दूसरों को तकलीफ देते हैं। जो गरीबों के हक के लिए अपनी जिंदगी कुरबान कर दे, उसे अगर कोई सताए, तो वह इंसान नहीं, हैवान भी नहीं, शैतान है। हमारे सीगे में ऐसे आदमी हैं और कसरत से हैं। मैं खुद फरिश्ता नहीं हूं लेकिन ऐसे मुआमले में मैं पान तक खाना हराम समझता हूं। मंदिर वाले मुआमले में देवीजी जिस दिलेरी से मैदान में आकर गोलियों के सामने खड़ी हो गई थीं, वह उन्हीं का काम था।

सामने सड़क पर जनता का समूह प्रतिक्षण बढ़ता जाता था। बार-बार जय-जयकार की ध्वनि उठ रही थी। स्त्री और पुरुष देवीजी के दर्शन को भागे चले आते थे।

भीतर नैना और सुखदा में समर छिड़ा हुआ था।

सुखदा ने थाली सामने से हटाकर कहा—मैंने कह दिया, मैं कुछ न खाऊंगी।

नैना ने उसका हाथ पकड़कर कहा—दो-चार कौर ही खा लो भाभी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। फिर न जाने यह दिन कब आए?

उसकी आंखें सजल हो गईं।

सुखदा निष्ठुरता से बोली—तुम मुझे व्यर्थ में दिक कर रही हो बीबी, मुझे अभी बहुत-सी तैयारियां करनी हैं और उधर डिप्टी जल्दी मचा रहा है। देखती नहीं हो, द्वार पर डोली खड़ी है। इस वक्त खाने की किसे सूझती है?

नैना प्रेम-विह्वल कंठ से बोली—तुम अपना काम करती रहो, मैं तुम्हें कौर बनाकर खिलाती जाऊंगी।

जैसे माता खेलते बच्चे के पीछे दौड़-दौड़कर उसे खिलाती है, उसी तरह नैना भाभी को खिलाने लगी। सुखदा कभी इस आल्मारी के पास जाती, कभी उस संदूक के पास। किसी संदूक से सिंदूर की डिबिया निकालती, किसी से साड़ियां। नैना एक कौर खिलाकर फिर थाल के पास जाती और दूसरा कौर लेकर दौड़ती।

सुखदा ने पांच छः कौर खाकर कहा—बस, अब पानी पिला दो।

नैना ने उसके मुंह के पास कौर ले जाकर कहा—बस यही कौर ले लो, मेरी अच्छी भाभी!

सुखदा ने मुंह खोल दिया और ग्रास के साथ आंसू भी पी गई।

''बस एक और।''

''अब एक कौर भी नहीं।''

''मेरी खातिर से।''

सुखदा ने ग्रास ले लिया।

''पानी भी दोगी या खिलाती ही जाओगी।''

''बस, एक ग्रास भैया के नाम का और ले लो।''

''ना। किसी तरह नहीं।''

नैना की आंखों में आंसू थे प्रत्यक्ष, सुखदा की आंखों में भी आंसू थे, मगर छिपे हुए।

नैना शोक से विह्वल थी, सुखदा उसे मनोबल से दबाए हुए थी। वह एक बार निष्ठुर बनकर चलते-चलते नैना के मोह-बंधन को तोड़ देना चाहती थी, पैने शब्दों से हृदय के चारों ओर खाई खोद देना चाहती थी, मोह और शोक और वियोग-व्यथा के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने के लिए; पर नैना की छलछलाती हुई आंखें, वह कांपते हुए होंठ, वह विनय-दीन मुखश्री उसे निःशस्त्र किए देती थी।

नैना ने जल्दी-जल्दी पान के बीड़े लगाए और भाभी को खिलाने लगी, तो उसके दबे हुए आंसू फव्वारे की तरह उबल पड़े। मुंह ढांपकर रोने लगी। सिसकियां और गहरी होकर कंठ तक जा पहुंचीं।

सुखदा ने उसे गले से लगाकर सजल शब्दों में कहा—क्यों रोती हो बीबी, बीच-बीच में मुलाकात तो होती ही रहेगी। जेल में मुझसे मिलने आना, तो खूब अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर लाना। दो-चार महीने में तो मैं फिर आ जाऊंगी।

नैना ने जैसे डूबती हुई नाव पर से कहा—मैं ऐसी अभागिन हूं कि आप तो डूबी ही थीं, तुम्हें भी ले डूबी।

ये शब्द फोड़े की तरह उसी समय से उसके हृदय में टीस रहे थे, जब से उसने सुखदा की गिरफ्तारी की खबर सुनी थी, और यह टीस उसकी मोह-वेदना को और भी दुर्दांत बना रही थी।

सुखदा ने आश्चर्य से उसके मुंह की ओर देखकर कहा—यह तुम क्या कह रही हो बीबी, क्या तुमने पुलिस बुलाई है?

नैना ने ग्लानि से भरे कंठ से कहा—यह पत्थर की हवेली वालों का कुचक्र है (सेठ धनीराम शहर में इसी नाम से प्रसिद्ध थे)। मैं किसी को गालियां नहीं देती, पर उनका किया उनके आगे आएगा। जिस आदमी के लिए एक मुंह से भी आशीर्वाद न निकलता हो, उसका जीना वृथा है।

सुखदा ने उदास होकर कहा—उनका इसमें क्या दोष है, बीबी? यह सब हमारे समाज का, हम सबों का दोष है। अच्छा आओ, अब विदा हो जाएं। वादा करो, मेरे जाने पर रोओगी नहीं।

नैना ने उसके गले से लिपटकर सूजी हुई आंखों से मुस्कराकर कहा—नहीं रोऊंगी, भाभी!

"अगर मैंने सुना कि तुम रो रही हो, तो मैं अपनी सजा बढ़वा लूंगी।"

"भैया को यह समाचार देना ही होगा।"

"तुम्हारी जैसी इच्छा हो करना। अम्मां को समझाती रहना।"

"उनके पास कोई आदमी भेजा गया या नहीं?"

"उन्हें बुलाने से और देर ही तो होती। घंटों न छोड़तीं।"

"सुनकर दौड़ी आएंगी।"

"हां, आएंगी तो, पर रोएंगी नहीं। उनका प्रेम आंखों में है। हृदय तक उसकी जड़ नहीं पहुंचनी।"

दोनों द्वार की ओर चलीं। नैना ने मुन्ने को मां की गोद से उतारकर प्यार करना चाहा,

पर वह न उतरा। नैना से बहुत हिला था, पर आज वह अबोध आंखों से देख रहा था—माता कहीं जा रही है। उसकी गोद से कैसे उतरे? उसे छोड़कर वह चली जाए, तो बेचारा क्या कर लेगा?

नैना ने उसका चुंबन लेकर कहा—बालक बड़े निर्दयी होते हैं।

सुखदा ने मुस्कराकर कहा—लड़का किसका है।

द्वार पर पहुंचकर फिर दोनों गले मिलीं। समरकान्त भी ड्योढ़ी पर खड़े थे। सुखदा ने उसके चरणों पर सिर झुकाया। उन्होंने कांपते हुए हाथों से उसे उठाकर आशीर्वाद दिया। फिर मुन्ने को कलेजे से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगे। यह सारे घर को रोने का सिगनल था। आंसू तो पहले ही से निकल रहे थे। वह मूक रुदन अब जैसे बंधनों से मुक्त हो गया। शीतल, धीर, गंभीर बुढ़ापा जब विह्वल हो जाता है, तो मानो पिंजरे के द्वार खुल जाते हैं और पक्षियों को रोकना असंभव हो जाता है। जब सत्तर वर्ष तक संसार के समर में जमा रहने वाला नायक हथियार डाल दे, तो रंगरूटों को कौन रोक सकता है?

सुखदा मोटर में बैठी। जय-जयकार की ध्वनि हुई। फूलों की वर्षा की गई।

मोटर चल दी।

हजारों आदमी मोटर के पीछे दौड़ रहे थे और सुखदा हाथ उठाकर उन्हें प्रणाम करती जाती थी। यह श्रद्धा, यह प्रेम, यह सम्मान क्या धन से मिल सकता है? या विद्या से? इसका केवल एक ही साधन है, और वह सेवा है, और सुखदा को अभी इस क्षेत्र में आए हुए ही कितने दिन हुए थे?

सड़क के दोनों ओर नर-नारियों की दीवार खड़ी थी और मोटर मानो उनके हृदय को कुचलती-मसलती चली जा रही थी।

सुखदा के हृदय में गर्व न था, उल्लास न था, द्वेष न था, केवल वेदना थी। जनता की इस दयनीय दशा पर, इस अधोगति पर, जो डूबती हुई दशा में तिनके का सहारा पाकर भी कृतार्थ हो जाती है।

कुछ देर के बाद सड़क पर सन्नाटा था, सावन की निद्रा-सी काली रात संसार को अपने अंचल में सुला रही थी और मोटर अनंत में स्वप्न की भांति उड़ी चली जाती थी। केवल देह में ठंडी हवा लगने से गति का ज्ञान होता था। इस अंधकार में सुखदा के अंतस्तल में एक प्रकाश-सा उदय हुआ था। कुछ वैसा ही प्रकाश, जो हमारे जीवन की अंतिम घड़ियों में उदय होता है, जिसमें मन की सारी कालिमाएं, सारी ग्रंथियां, सारी विषमताएं अपने यथार्थ रूप में नजर आने लगती हैं। तब हमें मालूम होता है कि जिसे हमने अंधकार में काला देव समझा था, वह केवल तृण का ढेर था। जिसे काला नाग समझा था, वह रस्सी का एक टुकड़ा था। आज उसे अपनी पराजय का ज्ञान हुआ, अन्याय के सामने नहीं असत्य के सामने नहीं, बल्कि त्याग के सामने और सेवा के सामने। इसी सेवा और त्याग के पीछे तो उसका पति से मतभेद हुआ था, जो अंत में इस वियोग का कारण हुआ। उन सिद्धांतों से अभक्ति रखते हुए भी वह उनकी ओर खिंचती चली आती थी और आज वह अपने पति की अनुगामिनी थी। उसे अमर के उस पत्र की याद आई, जो उसने शान्तिकुमार के पास भेजा था और पहली बार पति के प्रति क्षमा का भाव उसके मन में प्रस्फुटित हुआ। इस क्षमा में दया नहीं, सहानुभूति थी,

सहयोगिता थी। अब दोनों एक ही मार्ग के पथिक हैं, एक ही आदर्श के उपासक हैं। उनमें कोई भेद नहीं है, कोई वैषम्य नहीं है। आज पहली बार उसका अपने पति से आत्मिक सामंजस्य हुआ। जिस देवता को अमंगलकारी समझ रखा था, उसी की आज धूप-दीप से पूजा कर रही थी।

सहसा मोटर रुकी और डिप्टी ने उतरकर कहा—देवीजी, जेल आ गया। मुझे क्षमा कीजिएगा।

सुखदा ऐसी प्रसन्न थी मानो अपने जीवन-धन से मिलने आई है।

# चौथा खंड

## एक

अमरकान्त को ज्योंही मालूम हुआ कि सलीम यहां का अफसर होकर आया है, वह उससे मिलने चला। समझा, खूब गप-शप होगी। यह खयाल तो आया, कहीं उसमें अफसरी की बू न आ गई हो, लेकिन पुराने दोस्त से मिलने की उत्कंठा को न रोक सका। बीस-पच्चीस मील का पहाड़ी रास्ता था। ठंड खूब पड़ने लगी थी। आकाश कुहरे की धुंध से मटियाला हो रहा था और उस धुंध में सूर्य जैसे टटोल-टटोलकर रास्ता ढूंढता हुआ चला जाता था। कभी सामने आ जाता, कभी छिप जाता। अमर दोपहर के बाद चला था। उसे आशा थी कि दिन रहते पहुंच जाऊंगा, किंतु दिन ढलता जाता था और मालूम नहीं अभी और कितना रास्ता बाकी है। उसके पास केवल एक देशी कंबल था। कहीं रात हो गई, तो किसी वृक्ष के नीचे टिकना पड़ जाएगा। देखते-ही-देखते सूर्यदेव अस्त भी हो गए। अंधेरा जैसे मुंह खोले संसार को निगलने चला आ रहा था। अमर ने कदम और तेज किए। शहर में दाखिल हुआ, तो आठ बज गए थे।

सलीम उसी वक्त क्लब से लौटा था। खबर पाते ही बाहर निकल आया, मगर उसकी सज-धज देखी, तो झिझका और गले मिलने के बदले हाथ बढ़ा दिया। अर्दली सामने ही खड़ा था। उसके सामने इस देहाती से किसी प्रकार की घनिष्ठता का परिचय देना बड़े साहस का काम था। उसे अपने सजे हुए कमरे में भी न ले जा सका। अहाते में छोटा-सा बाग था। एक वृक्ष के नीचे उसे ले जाकर उसने कहा—यह तुमने क्या धज बना रखी है जी, इतने हूश कब से हो गए? वाह रे आपका कुरता! मालूम होता है डाक का थैला है, और यह डाबलशू जूता किस दिसावर से मंगवाया है? मुझे डर है, कहीं बगार में न धर लिए जाओ!

अमर वहीं जमीन पर बैठ गया और बोला—कुछ खातिर-तवाजो तो की नहीं, उल्टे और फटकार सुनाने लगे। देहातियों में रहता हूं, जेंटलमैन बनूं तो कैसे निबाह हो? तुम खूब आए भाई, कभी-कभी गप-शप हुआ करेगी। उधर की खैर-आफियत कहो। यह तुमने नौकरी क्या कर ली? डटकर कोई रोजगार करते, सूझी भी तो गुलामी।

सलीम ने गर्व से कहा—गुलामी नहीं है जनाब, हुकूमत है। दस-पांच दिन में मोटर आई जाती है, फिर देखना किस शान से निकलता हूं, मगर तुम्हारी यह हालत देखकर दिल टूट गया। तुम्हें यह भेष छोड़ना पड़ेगा।

अमरकान्त के आत्म-सम्मान को चोट लगी। बोला—मेरा खयाल था, और है कि कपड़े महज जिस्म की हिफाजत के लिए हैं, शान दिखाने के लिए नहीं।

सलीम ने सोचा, कितनी लचर-सी बात है। देहातियों के साथ रहकर अक्ल भी खो बैठा। बोला—खाना भी महज जिस्म की परवरिश के लिए खाया जाता है, तो सूखे चने क्यों नहीं चबाते? सूखे गेहूं क्यों नहीं फांकते? क्यों हलवा और मिठाई उड़ाते हो?

''मैं सूखे चने ही चबाता हूं।''

"झूठे हो। सूखे चनों पर ही यह सीना निकल आया है ! मुझसे ड्योढ़े हो गए, मैं तो शायद पहचान भी न सकता।"

"जी हां, यह सूखे चनों ही की बरकत है। ताकत साफ हवा और संयम में है। हलवा-पूरी से ताकत नहीं होती, सीना नहीं निकलता। पेट निकल आता है। पच्चीस मील पैदल चला आ रहा हूं। है दम? जरा पांच ही मील चलो मेरे साथ।

"मुआफ कीजिए, किसी ने कहा–बड़ी रानी, तो आओ पीसो मेरे साथ। तुम्हें पीसना मुबारक हो। तुम यहां कर क्या रहे हो?"

"अब तो आए हो, खुद ही देख लोगे। मैंने जिंदगी का जो नक्शा दिल में खींचा था, उसी पर अमल कर रहा हूं। स्वामी आत्मानन्द के आ जाने से काम में और भी सहूलियत हो गई है।"

ठंड ज्यादा थी। सलीम को मजबूर होकर अमरकान्त को अपने कमरे में लाना पड़ा।

अमर ने देखा, कमरे में गद्देदार कोच हैं, पीतल के गमले हैं, जमीन पर कालीन है, मध्य में संगमरमर की गोल मेज है।

अमर ने दरवाजे पर जूते उतार दिए और बोला–किवाड़ बंद कर दूं, नहीं कोई देख ले, तो तुम्हें शर्मिंदा होना पड़े। तुम साहब ठहरे।

सलीम पते की बात सुनकर झेंप गया। बोला–कुछ-न-कुछ खयाल तो होता ही है भई, हालांकि मैं फैशन का गुलाम नहीं हूं। मैं भी सादी जिंदगी बसर करना चाहता था, लेकिन अब्बाजान की फरमाइश कैसे टालता? प्रिंसिपल तक कहते थे, तुम पास नहीं हो सकते, लेकिन रिजल्ट निकला तो सब दंग रह गए। तुम्हारे ही खयाल से मैंने यह जिला पसंद किया। कल तुम्हें कलक्टर से मिलाऊंगा। अभी मि० गजनवी से तो तुम्हारी मुलाकात न होगी। बड़ा शौकीन आदमी है, मगर दिल का साफ। पहली ही मुलाकात में उससे मेरी बेतकल्लुफी हो गई। चालीस के करीब होंगे, मगर कंपेबाजी नहीं छोड़ी।

अमर के विचार में अफसरों को सच्चरित्र होना चाहिए था। सलीम सच्चरित्रता का कायल न था। दोनों मित्रों में बहस हो गई।

अमर बोला–सच्चरित्र होने के लिए खुश्क होना जरूरी नहीं।

मैंने तो मुल्लाओं को हमेशा खुश्क ही देखा। अफसरों के लिए महज कानून की पाबंदी काफी नहीं। मेरे खयाल में तो थोड़ी-सी कमजोरी इंसान का जेवर है। मैं जिंदगी में तुमसे ज्यादा कामयाब रहा। मुझे दावा है कि मुझसे कोई नाराज नहीं है। तुम अपनी बीबी तक को खुश न रख सके। मैं इस मुल्लापन को दूर से सलाम करता हूं। तुम किसी जिले के अफसर बना दिए जाओ, तो एक दिन न रह सको। किसी को खुश न रख सकोगे।

अमर ने बहस को तूल देना उचित न समझा, क्योंकि बहस में वह बहुत गर्म हो जाया करता था।

भोजन का समय आ गया था। सलीम ने एक शाल निकालकर अमर को ओढ़ा दिया। एक रेशमी स्लीपर उसे पहनने को दिया। फिर दोनों ने भोजन किया। एक मुद्दत के बाद अमर को ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला। मांस तो उसने न खाया, लेकिन और सब चीजें मजे से खाईं।

सलीम ने पूछा–जो चीज खाने की थी, वह तो तुमने निकालकर रख दी।

अमर ने अपराधी भाव से कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन भीतर से इच्छा नहीं होती। और कहो, वहां की क्या खबरें हैं? कहीं शादी-वादी ठीक हुई? इतनी कसर बाकी है, उसे भी पूरी कर लो।

सलीम ने चुटकी ली—मेरी शादी की फिक्र छोड़ो, पहले यह बताओ कि सकीना से तुम्हारी शादी कब हो रही है? वह बेचारी तुम्हारे इंतजार में बैठी हुई है।

अमर का चेहरा फीका पड़ गया। यह ऐसा प्रश्न था, जिसका उत्तर देना उसके लिए संसार में सबसे मुश्किल काम था। मन की जिस दशा में वह सकीना की ओर लपका था, वह दशा अब न रही थी। तब सुखदा उसके जीवन में एक बाधा के रूप में खड़ी थी। दोनों की मनोवृत्तियों में कोई मेल न था। दोनों जीवन को भिन्न-भिन्न कोण से देखते थे। एक में भी यह सामर्थ्य न थी कि वह दूसरे को हम-खयाल बना लेता, लेकिन अब वह हालत न थी। किसी दैवी विधान ने उनके सामाजिक बंधन को और कसकर उनकी आत्माओं को मिला दिया था। अमर को पता नहीं, सुखदा ने उसे क्षमा प्रदान की या नहीं लेकिन वह अब सुखदा का उपासक था। उसे आश्चर्य होता था कि विलासिनी सुखदा ऐसी तपस्विनी क्योंकर हो गई और यह आश्चर्य उसके अनुराग को दिन-दिन प्रबल करता जाता था। उसे अब उस असंतोष का कारण अपनी ही अयोग्यता में छिपा हुआ मालूम होता था, अगर वह अब सुखदा को कोई पत्र न लिख सका तो इसके दो कारण थे। एक जो लज्जा और दूसरे अपनी पराजय की कल्पना। शासन का वह पुरुषोचित भाव मानो उसका परिहास कर रहा था। सुखदा स्वच्छंद रूप से अपने लिए एक नया मार्ग निकाल सकती है, उसकी उसे लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है, यह विचार उसके अनुराग की गर्दन को जैसे दबा देता था। वह अब अधिक-से-अधिक उसका अनुगामी हो सकता है। सुखदा उसे समरक्षेत्र में जाते समय केवल केसरिया तिलक लगाकर संतुष्ट नहीं है, वह उससे पहले समर में कूदी जा रही है, यह भाव उसके आत्मगौरव को चोट पहुंचाता था।

उसने सिर झुकाकर कहा—मुझे अब तजुर्बा हो रहा है कि मैं औरतों को खुश नहीं रख सकता। मुझमें वह लियाकत ही नहीं है। मैंने तय कर लिया है कि सकीना पर जुल्म न करूंगा।

''तो कम-से-कम अपना फैसला उसे लिख तो देते।''

अमर ने हसरत भरी आवाज मे कहा—यह काम इतना आसान नहीं है सलीम, जितना तुम समझते हो। उसे याद करके मैं अब भी बेताब हो जाता हूं। उसके साथ मेरी जिंदगी जन्नत बन जाती। उसकी इस वफा पर मर जाने को जी चाहता है कि अभी तक

यह कहते-कहते अमर का कंठ-स्वर भारी हो गया।

सलीम ने एक क्षण के बाद कहा—मान लो मैं उसे अपने साथ शादी करने पर राजी कर लूं तो तुम्हें नागवार होगा?

अमर को आंखें-सी मिल गईं—नहीं भाईजान, बिल्कुल नहीं। अगर तुम उसे राजी कर सको, तो मैं समझूंगा, तुमसे ज्यादा खुशनसीब आदमी दुनिया में नहीं है; लेकिन तुम मजाक कर रहे हो। तुम किसी नवाबजादी से शादी का खयाल कर रहे होगे।

दोनों खाना खा चुके और हाथ धोकर दूसरे कमरे में लेटे।

सलीम ने हुक्के का कश लगाकर कहा—क्या तुम समझते हो, मैं मजाक कर रहा हूं? उस वक्त जरूर मजाक किया था लेकिन इतने दिनों में मैंने उसे खूब परखा। उस वक्त तुम

उससे न मिल जाते, तो इसमें जरा भी शक नहीं है कि वह इस वक्त कहीं और होती। तुम्हें पाकर उसे फिर किसी की ख्वाहिश नहीं रही। तुमने उसे कीचड़ से निकालकर मंदिर की देवी बना दिया और देवी की जगह बैठकर वह सचमुच देवी हो गई। अगर तुम उससे शादी कर सकते हो; तो शौक से कर लो। मैं तो मस्त हूं ही, दिलचस्पी का दूसरा सामान तलाश कर लूंगा, लेकिन तुम न करना चाहो तो मेरे रास्ते से हट जाओ ! फिर अब तो तुम्हारी बीबी तुम्हारे लिए तुम्हारे पंथ में आ गई। अब तुम्हारे उससे मुंह फेरने का कोई सबब नहीं है।

अमर ने हुक्का अपनी तरफ खींचकर कहा—मैं बड़े शौक से तुम्हारे रास्ते से हट जाता हूं; लेकिन एक बात बतला दो—तुम सकीना को भी दिलचस्पी की चीज समझ रहे हो, या उसे दिल से प्यार करते हो?

सलीम उठ बैठे—देखो अमर; मैंने तुमसे कभी परदा नहीं रखा इसलिए आज भी परदा न रखूंगा। सकीना प्यार करने की चीज नहीं, पूजने की चीज है। कम-से-कम मुझे वह ऐसी ही मालूम होती है। मैं कसम तो नहीं खाता कि उससे शादी हो जाने पर मैं कंठी-माला पहन लूंगा; लेकिन इतना जानता हूं कि उसे पाकर मैं जिंदगी में कुछ कर सकूंगा। अब तक मेरी जिंदगी सैलानीपन में गुजरी है। वह मेरी बहती हुई नाव का लंगर होगी। इस लंगर के बगैर नहीं जानता मेरी नाव किस भंवर में पड़ जाएगी। मेरे लिए ऐसी औरत की जरूरत है, जो मुझ पर हुकूमत करे, मेरी लगाम खींचती रहे।

अमर को अपना जीवन इसलिए भार था कि वह अपनी स्त्री पर शासन न कर सकता था। सलीम ऐसी स्त्री चाहता था जो उस पर शासन करे, और मजा यह था कि दोनों एक सुंदरी में मनोनीत लक्षण देख रहे थे।

अमर ने कौतूहल से कहा—मैं तो समझता हूं सकीना में वह बात नहीं है, जो तुम चाहते हो।

सलीम जैसे गहराई में डूबकर बोला—तुम्हारे लिए नहीं है, मगर मेरे लिए है। वह तुम्हारी पूजा करती है, मैं उसकी पूजा करता हूं।

इसके बाद कोई दो-ढाई बजे रात तक दोनों में इधर-उधर की बातें होती रहीं। सलीम ने उस नए आंदोलन की भी चर्चा की जो उसके सामने शुरू हो चुका था और यह भी कहा कि उसके सफल होने की आशा नहीं है। संभव है, मुआमला तूल खींचे।

अमर ने विस्मय के साथ कहा—तब तो यों कहो, सुखदा ने वहां नई जान डाल दी।

''तुम्हारी सास ने अपनी सारी जायदाद सेवाश्रम के नाम वक्फ कर दी।''

''अच्छा !''

''और तुम्हारे पिदर बुजुर्गवार भी अब कौमी कामों में शरीक होने लगे हैं।''

''तब तो वहां पूरा इंकलाब हो गया !''

सलीम तो सो गया, लेकिन अमर दिन-भर का थका होने पर भी नींद को न बुला सका। वह जिन बातों की कल्पना भी न कर सकता था वह सुखदा के हाथों पूरी हो गईं; मगर कुछ भी हो, है वही अमीरी, जरा बदली हुई सूरत में। नाम की लालसा है और कुछ नहीं; मगर फिर उसने अपने को धिक्कारा। तुम किसी के अंतःकरण की जात क्या जानते हो? आज हजारों आदमी राष्ट्र सेवा में लगे हुए हैं। कौन कह सकता है, कौन स्वार्थी है, कौन सच्चा सेवक?

न जाने कब उसे भी नींद आ गई।

# दो

अमरकान्त के जीवन में एक नया उत्साह चमक उठा है। ऐसा जान पड़ता है कि अपनी यात्रा में वह अब एक घोड़े पर सवार हो गया है। पहले पुराने घोड़े को ऐड़ और चाबुक लगाने की जरूरत पड़ती थी। यह नया घोड़ा कनौतियां खड़ी किए सरपट भागता चला जाता है। स्वामी आत्मानन्द, काशी, पयाग, गूदड़ सभी से तकरार हो जाती है। इन लोगों के पास पुराने घोड़े हैं। दौड़ में पिछड़ जाते हैं। अमर उनकी मंद गति पर बिगड़ता है—इस तरह तो काम नहीं चलने का, स्वामीजी ! आप काम करते हैं कि मजाक करते हैं ! इसमें तो कहीं अच्छा था कि आप सेवाश्रम में बने रहते।

आत्मानन्द ने अपने विशाल वक्ष को तानकर कहा—बाबा, मेरे से अब और नहीं दौड़ा जाता। जब लोग स्वास्थ्य के नियमों पर ध्यान न देंगे, तो आप बीमार होंगे, आप मरेंगे। मैं नियम बतला सकता हूं, पालन करना तो उनके ही अधीन है।

अमरकान्त ने सोचा—यह आदमी जितना मोटा है, उतनी ही मोटी इसकी अक्ल भी है। खाने को डेढ़ सेर चाहिए, काम करते ज्वर आता है। इन्हें संन्यास लेने से न जाने क्या लाभ हुआ?

उसने आंखों म तिरस्कार भरकर कहा—आपका काम केवल नियम बताना नहीं है, उनमें नियमों का पालन कराना भी है। उनमें ऐसी शक्ति डालिए कि वे नियमों का पालन किए बिना रह ही न सकें। उनका स्वभाव ही ऐसा हो जाय। मैं आज पिचौरा से निकला, गांव में जगह-जगह कूड़े के ढेर दिखाई दिए। आप कल उसी गांव से हो आए हैं, क्यों कूड़ा साफ नहीं कराया गया? आप खुद फावड़ा लेकर क्यों नहीं पिल पड़े? गेरुवे वस्त्र लेने ही से आप समझते हैं, लोग आपकी शिक्षा को देववाणी समझेंगे?

आत्मानन्द ने सफाई दी—मैं कूड़ा साफ करने लगता, तो सारा दिन पिचौरा में ही लग जाता। मुझे पांच-छ: गांवों का दौरा करना था।

''यह आपका कोरा अनुमान है। मैंने सारा कूड़ा आध घंटे में साफ कर दिया। मेरे फावड़ा हाथ में लेने की देर थी, सारा गांव जमा हो गया और बात-की-बात में सारा गांव झक हो गया।''

फिर वह गूदड़ चौधरी की ओर फिरा—तुम भी दादा, अब काम में ढिलाई कर रहे हो। मैंने कल एक पंचायत में लोगों को शराब पीते पकड़ा। सौताड़े की बात है। किसी को मेरे आने की खबर तो थी नहीं, लोग आनंद में बैठे हुए थे और बोतलें सरपंच महोदय के सामने रखी हुई थीं। मुझे देखते ही तुरंत बोतलें उड़ा दी गई और लोग गंभीर बनकर बैठ गए। मैं दिखावा नहीं चाहता, ठोस काम चाहता हूं।

अमर ने अपनी लगन, उत्साह, आत्म-बल और कर्मशीलता से अपने सभी सहयोगियों में सेवा-भाव उत्पन्न कर दिया था और उन पर शासन भी करने लगा था। सभी उसका रोब मानते थे। उसके गुलाम थे।

चौधरी ने बिगड़कर कहा—तुमने कौन गांव बताया, सौताड़ा? मैं आज ही उसके चौधरी को बुलाता हूं। वही हरखलाल है। जन्म का पियक्कड़। दो दफे सजा काट आया है। मैं आज ही उसे बुलाता हूं।

अमर ने जांघ पर हाथ पटककर कहा—फिर वही डांट-फटकार की बात। अरे दादा ! डांट-फटकार से कुछ न होगा। दिलों में बैठिए। ऐसी हवा फैला दीजिए कि ताड़ी-शराब से लोगों को घृणा हो जाय। आप दिन-भर अपना काम करेंगे और चैन से सोएंगे, तो यह काम हो चुका। यह समझ लो कि हमारी बिरादरी चेत जाएगी, तो बाम्हन-ठाकुर आप ही चेत जाएंगे।

गूदड़ ने हार मानकर कहा—तो भैया, इतना बूता तो अब मुझमें नहीं रहा कि दिन-भर काम करूं और रात-भर दौड़ लगाऊं। काम न करूं, तो भोजन कहां से आए?

अमरकान्त ने उसे हिम्मत हारते देखकर सहास मुख से कहा—कितना बड़ा पेट तुम्हारा है दादा, कि सारे दिन काम करना पड़ता है। अगर इतना बड़ा पेट है, तो उसे छोटा करना पड़ेगा।

काशी और पयाग ने देखा कि इस वक्त सबके ऊपर फटकार पड़ रही है तो वहां से खिसक गए।

पाठशाला का समय हो गया था। अमरकान्त अपनी कोठरी में किताब लेने गया, तो देखा मुन्नी दूध लिए खड़ी है। बोला—मैंने तो कह दिया था, मैं दूध न पिऊंगा, फिर क्यों लाई?

आज कई दिनों से मुन्नी अमर के व्यवहार में एक प्रकार की शुष्कता का अनुभव कर रही थी। उसे देखकर अब मुख पर उल्लास की झलक नहीं आती। उससे अब बिना विशेष प्रयोजन के बोलता भी कम है। उसे ऐसा जान पड़ता है कि यह मुझसे भागता है। इसका कारण वह कुछ नहीं समझ सकती। यह कांटा उसके मन में कई दिन से खटक रहा है। आज वह इस कांटे को निकाल डालेगी।

उसने अविचलित भाव से कहा—क्यों नहीं पिओगे, सुनूं?

अमर पुस्तकों का एक बंडल उठाता हुआ बोला—अपनी इच्छा है। नहीं पीता—तुम्हें मैं कष्ट नहीं देना चाहता।

मुन्नी ने तिरछी आंखों से देखा—यह तुम्हें कब से मालूम हुआ है कि तुम्हारे लिए दूध लाने में मुझे बहुत कष्ट होता है? और अगर किसी को कष्ट उठाने ही में सुख मिलता हो तो?

अमर ने हारकर कहा—अच्छा भाई, झगड़ा न करो, लाओ पी लूं।

एक ही सांस में सारा दूध कड़वी दवा की तरह पीकर अमर चलने लगा, तो मुन्नी ने द्वार छोड़कर कहा—बिना अपराध के तो किसी को सजा नहीं दी जाती।

अमर द्वार पर ठिठककर बोला—तुम तो जाने क्या बक रही हो? मुझे देर हो रही है।

मुन्नी ने विरक्त भाव धारण किया—तो मैं तुम्हें रोक तो नहीं रही हूं, जाते क्यों नहीं?

अमर कोठरी से बाहर पांव न निकाल सका।

मुन्नी ने फिर कहा—क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि मेरा तुम्हारे ऊपर कोई अधिकार नहीं है? तुम आज चाहो तो कह सकते हो खबरदार, मेरे पास मत आना। और मुंह से चाहे न कहते हो; पर व्यवहार से रोज ही कह रहे हो। आज कितने दिनों से देख रही हूं; लेकिन बेहयाई करके आती हूं, बोलती हूं, खुशामद करती हूं। अगर इस तरह आंखें फेरनी थीं, तो पहले ही से उस तरह क्यों न रहे; लेकिन मैं क्या बकने लगी? तुम्हें देर हो रही है, जाओ।

अमरकान्त ने जैसे रस्सी तुड़ाने का जोर लगाकर कहा—तुम्हारी कोई बात मेरी समझ नहीं आ रही है मुन्नी ! मैं तो जैसे पहले रहता था, वैसे ही अब भी रहता हूं। हां, इधर काम अधिक होने से ज्यादा बातचीत का अवसर नहीं मिलता।

मुन्नी ने आंखें नीची करके गूढ़ भाव से कहा—तुम्हारे मन की बात मैं समझ रही हूं, लेकिन वह बात नहीं है। तुम्हें भ्रम हो रहा है।

अमरकान्त ने आश्चर्य से कहा—तुम तो पहेलियों में बातें करने लगीं।

मुन्नी ने उसी भाव से जवाब दिया—आदमी का मन फिर जाता है, तो सीधी बातें भी पहेली-सी लगती हैं।

फिर वह दूध का खाली कटोरा उठाकर जल्दी से चली गई।

अमरकान्त का हृदय मसोसने लगा। मुन्नी जैसे सम्मोहन-शक्ति से उसे अपनी ओर खींचने लगी। 'तुम्हारे मन की बात मैं समझ रही हूं, लेकिन वह बात नहीं है। तुम्हें भ्रम हो रहा है!' यह वाक्य किसी गहरे खड्ड की भांति उसके हृदय को भयभीत कर रहा था। उसमें उतरते दिल कांपता था, रास्ता उसी खड्ड में से जाता था।

वह न जाने कितनी देर अचेत-सा खड़ा रहा। सहसा आत्मानन्द ने पुकारा—क्या आज शाला बंद रहेगी?

## तीन

इस इलाके के जमींदार एक महन्तजी थे। कारकून और मुख्तार उन्हीं के चेले-चापड़ थे। इसलिए लगान बराबर वसूल होता जाता था। ठाकुरद्वारे में कोई-न-कोई उत्सव होता ही रहता था। कभी ठाकुरजी का जन्म है, कभी ब्याह है, कभी यज्ञोपवीत है, कभी झूला है, कभी जल-विहार है। असामियों को इन अवसरों पर बेगार देनी पड़ती थी, भेंट-न्योछावर, पूजा-चढ़ावा आदि नामों से दस्तूरी चुकानी पड़ती थी, लेकिन धर्म के मुआमले में कौन मुंह खोलता? धर्म-संकट सबसे बड़ा संकट है। फिर इलाके के काश्तकार सभी नीच जातियों के लोग थे। गांव पीछे दो-चार घर ब्राह्मण-क्षत्रियों के थे भी, उनकी सहानुभूति असामियों की ओर न होकर महन्तजी की ओर थी। किसी-न-किसी रूप में वे सभी महन्तजी के सेवक थे। असामियों को प्रसन्न रखना पड़ता था। बेचारे एक तो गरीब, ऋण के बोझ से दबे हुए, दूसरे मूर्ख, न कायदा जानें न कानून, महन्तजी जितना चाहें इजाफा करें, जब चाहें बेदखल करें, किसी में बोलने का साहस न था। अक्सर खेतों का लगान इतना बढ़ गया था कि सारी उपज लगान के बराबर भी न पहुंचती थी, किंतु लोग भाग्य को रोकर, भूखे-नंगे रहकर, कुत्तों की मौत मरकर, खेत जोतते जाते थे। करें क्या? कितनों ही ने जाकर शहरों में नौकरी कर ली थी। कितने ही मजदूरी करने लगे थे। फिर भी असामियों की कमी न थी। कृषि-प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है। गृहस्थ कहलाना गर्व की बात है। किसान गृहस्थी में अपना सर्वस्व खोकर विदेश जाता है, वहां से धन कमाकर लाता है और फिर गृहस्थी करता है। मान-प्रतिष्ठा का मोह औरों की भांति उसे भी रहता है। वह गृहस्थ रहकर जीना और गृहस्थ ही में मरना भी चाहता है। उसका बाल-बाल कर्ज से बंधा हो, लेकिन द्वार पर दो-चार बैल बांधकर वह अपने को धन्य समझता है। उसे साल में तीस सौ साठ दिन आधे पेट खाकर रहना पड़े, पुआल में घुसकर रातें काटनी पड़ें, बेबसी से जीना और बेबसी से मरना पड़े, कोई चिंता नहीं, वह गृहस्थ तो है। यह गर्व उसकी सारी दुर्गति की पुरौती कर देता है।

लेकिन इस साल अनायास ही जिंसों का भाव गिर गया; जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बेचकर लगान दे देता था; लेकिन जब दो और तीन की जिंस एक में बिके तो किसान क्या करे? कहां से लगान दे, कहां से दस्तूरियां दे, कहां से कर्ज चुकाए? विकट समस्या आ खड़ी हुई; और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रांत, सारे देश, यहां तक कि सारे संसार में यही मंदी थी। चार सेर का गुड़ कोई दस सेर में भी नहीं पूछता। आठ सेर का गेहूं डेढ़ रुपये मन में भी महंगा है। तीस रुपये मन का कपास दस रुपये में जाता है, सोलह रुपये मन का सन चार रुपयों में। किसानों ने एक-एक दाना बेच डाला, भूसे का एक तिनका भी न रखा; लेकिन यह सब करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके और ठाकुरद्वारे में वही उत्सव थे, वही जल-विहार थे। नतीजा यह हुआ कि हलके में हाहाकार मच गया। इधर कुछ दिनों से स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त के उद्योग से इलाके में विद्या का कुछ प्रचार हो रहा था और कई गांवों में लोगों ने दस्तूरी देना बंद कर दिया था। महन्तजी के प्यादे और कारकून पहले ही से जले बैठे थे। यों तो दाल न गलती थी। बकाया लगान ने उन्हें अपने दिल का गुबार निकालने का मौका दे दिया।

एक दिन गंगा-तट पर इस समस्या पर विचार करने के लिए एक पंचायत हुई। सारे इलाके से स्त्री-पुरुष जमा हुए मानो किसी पर्व का स्नान करने आए हों। स्वामी आत्मानन्द सभापति चुन गए।

पहले भोला चौधरी खड़े हुए। वह पहले किसी अफसर के कोचवान थे। अब नए साल से फिर खेती करने लगे थे। लंबी नाक, काला रंग, बड़ी-बड़ी मूंछें और बड़ी-सी पगड़ी। मुंह पगड़ी में छिप गया था। बोले—पंचो, हमारे ऊपर जो लगान बंधा हुआ है वह तेजी के समय का है। इस मंदी में वह लगान देना हमारे काबू से बाहर है। अबकी अगर बैल-बछिया बेचकर दे भी दें तो आगे क्या करेंगे? बस हमें इसी बात का तसफिया करना है। मेरी गुजारिस तो यही है कि हम सब मिलकर महन्त महाराज के पास चलें और उनसे अरज-मारूज करें। अगर वह न सुनें तो हाकिम जिला के पास चलना चाहिए। मैं औरों की नहीं कहता। मैं गंगा माता की कसम खाके कहता हूं कि मेरे घर में छटांक भर भी अन्न नहीं है, और जब मेरा यह हाल है, तो और सभी का भी यही हाल होगा। उधर महन्तजी के यहां वही बहार है। अभी परसों एक हजार साधुओं को आम की पंगत दी गई। बनारस और लखनऊ से कई डिब्बे आमों के आए हैं। आज सुनते हैं फिर मलाई की पंगत है। हम भूखों मरते हैं, वहां मलाई उड़ती है। उस पर हमारा रक्त चूसा जा रहा है। बस, यही मुझे पंचों से कहना है।

गूदड़ ने धंसी हुई आंखें फेरकर कहा—महन्तजी हमारे मालिक हैं, अन्नदाता हैं, महात्मा हैं। हमारा दुःख सुनकर जरूर-से-जरूर उन्हें हमारे ऊपर दया आएगी; इसलिए हमें भोला चौरी की सलाह मंजूर करनी चाहिए। अमर भैया हमारी ओर से बातचीत करेंगे। हम और कुछ नहीं चाहते। बस, हमें और हमारे बाल-बच्चों को आध-आध सेर रोजाना के हिसाब से दिया जाए। उपज जो कुछ हो वह सब महन्तजी ले जाएं। हम घी-दूध नहीं मांगते, दूध-मलाई नहीं मागंते। खाली आध सेर मोटा अनाज मांगते हैं। इतना भी न मिलेगा, तो हम खेती न करेंगे। मजूरी और बीज किसके घर से लाएंगे। हम खेती छोड़ देंगे, इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

सलोनी ने हाथ चमकाकर कहा—खेत क्यों छोड़ें? बाप-दादों की निसानी है। उसे नहीं छोड़ सकते। खेत पर परान दे दूंगी। एक था, तब दो हुए, तब चार हुए, अब क्या धरती सोना उगलेगी।

अलगू कोरी बिज्जू-सी आंखें निकालकर बोला—भैया, मैं तो बेलाग कहता हूं, महन्त के पास चलने से कुछ न होगा। राजा ठाकुर हैं। कहीं क्रोध आ गया, तो पिटवाने लगेंगे। हाकिम के पास चलना चाहिए। गोरों में फिर भी दया है।

आत्मानन्द ने सभी का विरोध किया—मैं कहता हूं, किसी के पास जाने से कुछ नहीं होगा। तुम्हारी थाली की रोटी तुमसे कहे कि मुझे न खाओ, तो तुम मानोगे?

चारों तरफ से आवाजें आईं—कभी नहीं मान सकते।

''तो तुम जिनकी थाली की रोटियां हो वह कैसे मान सकते हैं।''

बहुत-सी आवाजों ने समर्थन किया—कभी नहीं मान सकते हैं।

''महन्तजी को उत्सव मनाने को रुपये चाहिए। हाकिमों को बड़ी-बड़ी तलब चाहिए। उनकी तलब में कमी नहीं हो सकती। वे अपनी शान नहीं छोड़ सकते। तुम मरो या जियो उनकी बला से। वह तुम्हें क्यों छोड़ने लगे?''

बहुत-सी आवाजों ने हामी भरी—कभी नहीं छोड़ सकते।

अमरकान्त स्वामीजी के पीछे बैठा हुआ था। स्वामीजी का यह रुख देखकर घबराया, लेकिन सभापति को कैसे रोके? यह तो वह जानता था, यह गर्म मिजाज का आदमी है, लेकिन इतनी जल्दी इतना गर्म हो जाएगा, इसकी उसे आशा न थी। आखिर यह महाशय चाहते क्या हैं?

आत्मानन्द गरजकर बोले—तो अब तुम्हारे लिए कौन-सा मार्ग है? अगर मुझसे पूछते हो, और तुम लोग आज प्रण करो कि उसे मानोगे, तो मैं बता सकता हूं, नहीं तुम्हारी इच्छा।

बहुत-सी आवाजें आईं—जरूर बतलाइए स्वामीजी, बतलाइए।

जनता चारों ओर से खिसककर और समीप आ गई। स्वामीजी उनके हृदय को स्पर्श कर रहे हैं, यह उनके चेहरों से झलक रहा था। जन-रुचि सदैव उग्र की ओर होती है।

आत्मानन्द बोले—तो आओ, आज हम सब महन्तजी का मकान और ठाकुरद्वारा घेर लें और जब तक वह लगान बिल्कुल न छोड़ दें, कोई उत्सव न होने दें।

बहुत-सी आवाजें आईं—हम लोग तैयार हैं।

''खूब समझ लो कि वहां तुम पान-फूल से पूजे न जाओगे।''

''कुछ परवाह नहीं। मर तो रहे हैं, सिसक-सिसककर क्यों मरें !''

''तो इसी वक्त चलें। हम दिखा दें कि ''

सहसा अमर ने खड़े होकर प्रदीप्त नेत्रों से कहा—ठहरो !

समूह में सन्नाटा छा गया। जो जहां था, वहीं खड़ा रह गया।

अमर ने छाती ठोंककर कहा—जिस रास्ते पर तम जा रहे हो, वह उद्धार का रास्ता नहीं है—सर्वनाश का रास्ता है। तुम्हारा बैल अगर बीमार पड़ जाए जो तुम उसे जोतोगे?

किसी तरफ से कोई आवाज न आई।

''तुम पहले उसकी दवा करोगे, और जब तक वह अच्छा न हो जाएगा, उसे न जोतोगे, क्योंकि तुम बैल को मारना नहीं चाहते। उसके मरने से तुम्हारे खेत परती पड़ जाएंगे।''

गूदड़ बोले—बहुत ठीक कहते हो, भैया !

''घर में आग लगने पर हमारा क्या धर्म है? क्या हम आग को फैलने दें और घर की बची-बचाई चीजें भी लाकर उसमें डाल दें?''

गूदड़ ने कहा—कभी नहीं। कभी नहीं।

''क्यों? इसलिए कि हम घर को जलाना नहीं, बनाना चाहते हैं। हमें उस घर में रहना है। उसी में जीना है। यह विपत्ति कुछ हमारे ही ऊपर नहीं पड़ी है। सारे देश में यही हाहाकार मचा हुआ है। हमारे नेता इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ हमें भी चलना है।''

उसने एक लंबा भाषण किया; पर वही जनता जो उसका भाषण सुनकर मस्त हो जाती थी, आज उदासीन बैठी थी। उसका सम्मान सभी करते थे, इसलिए कोई ऊधम न हुआ, कोई बमचख न मचा; पर जनता पर कोई असर न हुआ। आत्मानन्द इस समय जनता का नायक बना हुआ था।

सभा बिना कुछ निश्चय किए उठ गई, लेकिन बहुमत किस तरफ है, यह किसी से छिपा न था।

## चार

अमर घर लौटा, तो बहुत हताश था। अगर जनता को शांत करने का उपाय न किया गया, अवश्य उपद्रव हो जाएगा। उसने महन्तजी से मिलने का निश्चय किया। इस समय उसका चित्त इतना उदास था कि एक बार जी में आया, यहां से सब छोड़-छाड़कर चला जाए। उसे अभी तक अनुभव न हुआ था कि जनता सदैव तेज मिजाजों के पीछे चलती है। वह न्याय और धर्म, हानि-लाभ, अहिंसा और त्याग सब कुछ समझाकर भी आत्मानन्द के फूंके हुए जादू को उतार न सका। आत्मानन्द इस वक्त यहां मिल जाते, तो दोनों मित्रों में जरूर लड़ाई हो जाती; लेकिन वह आज गायब थे। उन्हें आज घोड़े का आसन मिल गया था। किसी गांव में संगठन करने चले गए थे।

आज अमर का कितना अपमान हुआ। किसी ने उसकी बातों पर कान तक न दिया। उनके चेहरे कह रहे थे, तुम क्या बकते हो, तुमसे हमारा उद्धार न होगा। इस घाव पर कोमल शब्दों के मरहम की जरूरत थी—कोई उन्हें लिटाकर उनके घाव को फाहे से धोए; उस पर शीतल लेप करे।

मुन्नी रस्सी और कलसा लिए हुए निकली और बिना उसकी ओर ताके कुएं की ओर चली गई। उसने पुकारा—सुनती जाओ, मुन्नी ! पर मुन्नी ने सुनकर भी न सुना। जरा देर बाद वह कलसा लिए हुए लौटी और फिर उसके सामने से सिर झुकाए चली गई। अमर ने फिर पुकारा—मुन्नी, सुनो एक बात कहनी है। पर अबकी भी वह न रुकी। उसके मन में अब संदेह न था।

एक क्षण में मुन्नी फिर निकली और सलोनी के घर जा पहुंची। वह मदरसे के पीछे एक छोटी-सी मंड़ैया डालकर रहती थी। चटाई पर लेटी एक भजन गा रही थी। मुन्नी ने जाकर पूछा—आज कुछ पकाया नहीं काकी, यों ही सो रही हो?

सलोनी ने उठकर कहा—खा चुकी बेटा, दोपहर की रोटियां रखी हुई थीं।

मुन्नी ने चौके की ओर देखा। चौका साफ लिपा-पुता पड़ा था। बोली—काकी, तुम बहाना कर रही हो। क्या घर में कुछ है ही नहीं? अभी तो आते देर नहीं हुई, इतनी जल्द खा कहां से लिया?

"तू तो पतियाती नहीं है, बहू! भूख लगी थी, आते-ही-आते खा लिया। बर्तन धो-धाकर रख दिए। भला तुमसे क्या छिपाती? कुछ न होता, तो मांग न लेती?"

"अच्छा, मेरी कसम खाओ।"

काकी ने हंसकर कहा—हां, अपनी कसम खाती हूं, खा चुकी।

मुन्नी दुखित होकर बोली—तुम मुझे गैर समझती हो, काकी? जैसे मुझे तुम्हारे मरने-जीने से कुछ मतलब ही नहीं। अभी तो तुमने तिलहन बेचा था, रुपये क्या किए?

सलोनी सिर पर हाथ रखकर बोली—अरे भगवान्! तिलहन था ही कितना! कुल एक रुपया तो मिला। वह कल प्यादा ले गया। घर में आग लगाए देता था। क्या करती, निकालकर फेंक दिया। उस पर अमर भैया कहते हैं—महन्तजी से फरियाद करो' कोई नहीं सुनेगा, बेटा! मैं कहे देती हूं।

मुन्नी बोली—अच्छा, तो चलो मेरे घर खा लो।

सलानी ने सजल नेत्र होकर कहा—तू आज खिला देगी बेटी, अभी तो पूरा चौमासा पड़ा हुआ है। आजकल तो कहीं घास भी नहीं मिलती। भगवान् न जाने कैसे पार लगाएंगे? घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है। डांडी अच्छी होती, तो बाकी देके चार महीने निबाह हो जाता। इस डांडी में आग लगे, आधी बाकी भी न निकली। अमर भैया को तू समझाती नहीं, स्वामीजी को बढ़ने नहीं देते।

मुन्नी ने मुंह फेरकर कहा—मुझसे तो आजकल रूठे हुए हैं, बोलते ही नहीं। काम-धंधे से फुरसत ही नहीं मिलती। घर के आदमी से बातचीत करने को भी फुरसत चाहिए। जब फटेहाल आए थे तब फुरसत थी। यहां जब दुनिया जानने लगी, नाम हुआ, बड़े आदमी बन गए, तो अब फुरसत नहीं है!

सलोनी ने विस्मय भरी आंखों से मुन्नी को देखा—क्या कहती है बहू, वह तुझसे रूठे हुए हैं? मुझे तो विश्वास नहीं आता। तुझे धोखा हुआ है। बेचारा रात-दिन तो दौड़ता है, न मिली होगी फुरसत। मैंने तुझे जो असीस दिया है, वह पूरा होके रहेगा, देख लेना।

मुन्नी अपनी अनुदारता पर सकुचाती हुई बोली—मुझे किसी की परवाह नहीं है, काकी! जिसे सौ बार गरज पड़े बोले, नहीं न बोले। वह समझते होंगे—मैं उनके गले पड़ी जा रही हूं। मैं तुम्हारे चरण छूकर कहती हूं काकी, जो यह बात कभी मेरे मन में आई हो। मैं तो उनके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हूं। हां, इतना चाहती हूं कि वह मुझसे मन से बोलें, जो कुछ थोड़ी बहुत सेवा करूं, उसे मन से लें। मेरे मन में बस इतनी ही साध है कि मैं जल चढ़ाती जाऊं और वह चढ़वाते जाएं और कुछ नहीं चाहती।

सहसा अमर ने पुकारा। सलोनी ने बुलाया—आओ भैया! अभी बहू आ गई, उसी से बतिया रही हूं।

अमर ने मुन्नी की ओर देखकर तीखे स्वर में कहा—मैंने तुम्हें दो बार पुकारा मुन्नी, तुम बोलीं क्यों नहीं?

मुन्नी ने मुंह फेरकर कहा—तुम्हें किसी से बोलने की फुरसत नहीं है। तो कोई क्यों जाए तुम्हारे पास? तुम्हें बड़े-बड़े काम करने पड़ते हैं, तो औरों को भी तो अपने छोटे-छोटे काम करने ही पड़ते हैं।

अमर पत्नीव्रत की धुन में मुन्नी से खिंचा रहने लगा था। पहले वह चट्टान पर था, सुखदा उसे नीचे से खींच रही थी। अब सुखदा टीले के शिखर पर पहुंच गई और उसके पास पहुंचने के लिए उसे आत्मबल और मनोयोग की जरूरत थी। उसका जीवन आदर्श होना चाहिए, किंतु प्रयास करने पर भी वह सरलता और श्रद्धा की इस मूर्ति को दिल से न निकाल सकता था। उसे ज्ञात हो रहा था कि आत्मोन्नति के प्रयास में उसका जीवन शुष्क, निरीह हो गया है। उसने मन में सोचा, मैंने तो समझा था हम दोनों एक-दूसरे के इतने समीप आ गये हैं कि अब बीच में किसी भ्रम की गुंजाइश नहीं रही। मैं चाहे यहां रहूं, चाहे काले कोसों चला जाऊं, लेकिन तुमने मेरे हृदय में जो दीपक जला दिया है, उसकी ज्योति जरा भी मंद न पड़ेगी।

उसने मीठे तिरस्कार से कहा—मैं यह मानता हूं मुन्नी, कि इधर काम अधिक रहने से तुमसे कुछ अलग रहा, लेकिन मुझे आशा थी कि अगर चिंताओं से झुंझलाकर मैं तुम्हें दो-चार कड़वे शब्द भी सुना दूं, तो तुम मुझे क्षमा करोगी। अब मालूम हुआ कि वह मेरी भूल थी।

मुन्नी ने उसे कातर नेत्रों से देखकर कहा—हां लाला, वह तुम्हारी भूल थी। दरिद्र को सिंहासन पर भी बैठा दो, तब भी उसे अपने राजा होने का विश्वास न आएगा। वह उसे सपना ही समझेगा। मेरे लिए भी यही सपना जीवन का आधार है। मैं कभी जागना नहीं चाहती। नित्य यही सपना देखती रहना चाहती हूं। तुम मुझे थपकियां देते जाओ, बस मैं इतना ही चाहती हूं। क्या इतना भी नहीं कर सकते? क्या हुआ, आज स्वामीजी से तुम्हारा झगड़ा क्यों हो गया?

सलोनी अभी तो आत्मानन्द की तारीफ कर रही थी। अब अमर की मुंहदेखी कहने लगी—भैया ने तो लोगों को समझाया था कि महन्त के पास चलो। इसी पर लोग बिगड़ गए। पूछो, और तुम कर ही क्या सकते हो। महन्तजी पिटवाने लगें, तो भागने की राह न मिले।

मुन्नी ने इसका समर्थन किया—महन्तजी धर्मात्मा आदमी हैं। भला लोग भगवान् के मंदिर को घेरते, तो कितना अपजस होता। संसार भगवान् का भजन करता है। हम चलें उनकी पूजा रोकने। न जाने स्वामीजी को यह सूझी क्या, और लोग उनकी बात मान गए। कैसा अंधेर है !

अमर ने चित्त में शांति का अनुभव किया। स्वामीजी से तो ज्यादा समझदार ये अपढ़ स्त्रियां हैं। और आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। ऐसे ही मूर्ख आपको भक्त मिल गए !

उसने प्रसन्न होकर कहा—उस नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता था, काकी? लोग मंदिर को घेरने जाते, तो फौजदारी हो जाती। जरा-जरा सी बात में तो आजकल गोलियां चलती हैं।

सलोनी ने भयभीत होकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया भैया, जो उनके साथ न हुए, नहीं खून-खच्चर हो जाता।

मुन्नी आर्द्र होकर बोली—मैं तो उनके साथ कभी न जाने देती, लाला ! हाकिम संसार पर राज करता है तो क्या रैयत का दु:ख-दर्द न सुनेगा? स्वामीजी आवेंगे, तो पूछूंगी।

आग की तरह जलता हुआ भाव सहानुभूति और सहृदयता से भरे हुए शब्दों से शीतल

होता जान पड़ा। अब अमर कल अवश्य महन्तजी की सेवा में जाएगा। उसके मन में अब कोई शंका, कोई दुविधा नहीं है।

## पांच

अमर गूदड़ चौधरी के साथ महन्त आशाराम गिरि के पास पहुंचा। संध्या का समय था। महन्तजी एक सोने की कुर्सी पर बैठे हुए थे, जिस पर मखमली गद्दा था। उनके इर्द-गिर्द भक्तों की भीड़ लगी हुई थी, जिसमें महिलाओं की संख्या ही अधिक थी। सभी धुले हुए संगमरमर के फर्श पर बैठी हुई थी। पुरुष दूसरी ओर बैठे थे। महन्तजी पूरे छ: फीट के विशालकाय सौम्य पुरुष थे। अवस्था कोई पैंतीस वर्ष की थी। गोरा रंग, दुहरी देह, तेजस्वी मूर्ति, काषाय वस्त्र तो थे, किंतु रेशमी। वह पांव लटकाए बैठे हुए थे। भक्त लोग जाकर उनके चरणों को आंखों से लगाते थे, अमर अंदर गया, पर वहां उसे कौन पूछता? आखिर जब खड़े-खड़े आठ बज गए, तो उसने महन्तजी के समीप जाकर कहा—महाराज, मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है।

महन्तजी ने इस तरह उसकी ओर देखा, मानो उन्हें आंखें फेरने में भी कष्ट है।

उनके समीप एक दूसरा साधु खड़ा था। उसने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर पूछा—कहां से आते हो?

अमर ने गांव का नाम बताया।

हुक्म हुआ, आरती के बाद आओ।

आरती में तीन घंटे की देर थी। अमर यहां कभी न आया था। सोचा, यहां की सैर ही कर लें। इधर-उधर घूमने लगा। यहां से पश्चिम तरफ ता विशाल मंदिर था। सामने पूरब की ओर सिंहद्वार, दाहिने-बाएं दो दरवाजे और भी थे। अमर दाहिने दरवाजे से अंदर घुसा, तो देखा चारों तरफ चौड़े बरामदे हैं और भंडारा हो रहा है। कहीं बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में पूड़ियां-कचौड़ियां बन रही हैं। कहीं भांति--भांति की शाक-भाजी चढ़ी हुई है, कहीं दूध उबल रहा है, कहीं मलाई निकाली जा रही है। बरामदे के पीछे, कमरे में खाद्य सामग्री भरी हुई थी। ऐसा मालूम होता था, अनाज, शाक-भाजी, मेवे, फल, मिठाई की मंडियां हैं। एक पूरा कमरा तो केवल परवलों से भरा हुआ था। उस मौसम मं परवल कितने महंगे होते हैं, पर यहां वह भूसे की तरह भरा हुआ था। अच्छे-अच्छे घरों की महिलाएं भक्ति-भाव से व्यंजन पकाने में लगी हुई थीं। ठाकुरजी के ब्यालू की तैयारी थी। अमर यह भंडार देखकर दंग रह गया। इस मौसम में यहां बीसों झाबे अंगूर भरे थे।

अमर यहां से उत्तर तरफ के द्वार में घुसा, तो यहां बाजार-सा लगा देखा। एक लंबी कतार दर्जियों की थी, जो ठाकुरजी के वस्त्र सी रहे थे। कहीं जरी के काम हो रहे थे, कहीं कारचोबी की मसनदें और गावतकिए बनाए जा रहे थे। एक कतार सोनारों की थी जो ठाकुरजी के आभूषण बना रहे थे, कहीं जड़ाई का काम हो रहा था, कहीं पालिश किया जाता था, कहीं पटवे गहने गूंथ रहे थे। एक कमरे में दस-बारह मुस्टंडे जवान बैठे चंदन रगड़ रहे थे। सबों के मुंह पर ढाटे बंधे हुए थे। एक पूरा कमरा इत्र, तेल और अगरबत्तियों से भरा हुआ था। ठाकुरजी के नाम पर कितना अपव्यय हो रहा है, यही सोचता हुआ अमर यहां से फिर बीच वाले प्रांगण में आया और सदर द्वार से बाहर निकला।

गूदड़ ने पूछा—बड़ी देर लगाई। कुछ बातचीत हुई?

अमर ने हंसकर कहा—अभी तो केवल दर्शन हुए हैं, आरती के बाद भेंट होगी। यह कहकर उसने जो देखा था, वह विस्तारपूर्वक बयान किया।

गूदड़ ने गर्दन हिलाते हुए कहा—भगवान् का दरबार है। जो संसार को पालता है, उसे किस बात की कमी? सुना तो हमने भी है; लेकिन कभी भीतर नहीं गए कि कोई कुछ पूछने-पाछने लगें, तो निकाले जायं। हां, घुड़साल और गऊशाला देखी है, मन चाहे तो तुम भी देख लो।

अभी समय बहुत बाकी था। अमर गऊशाला देखने चला। मंदिर के दक्खिन में पशुशालाएं थीं। सबसे पहले पीलखाने में घुसे। कोई पच्चीस-तीस हाथी आंगन में जंजीरों से बंधे खड़े थे। कोई इतना बड़ा कि पूरा पहाड़, कोई इतना मोटा, जैसे भैंस। कोई झूम रहा था, कोई सूंड घुमा रहा था, कोई बरगद के डाल-पात चबा रहा था। उनके हौदे, झूले, अंबारियां, गहने सब अलग गोदाम में रखे हुए थे। हरेक हाथी का अपना नाम, अपना सेवक, अपना मकान अलग था। किसी को मन-भर रातिब मिलता था, किसी को चार पसेरी। ठाकुरजी की सवारी में जो हाथी था, वही सबसे बड़ा था। भगत लोग उसकी पूजा करने आते थे। इस वक्त भी मालाओं का ढेर उसके सिर पर पड़ा हुआ था। बहुत-से फूल उसके पैरों के नीचे थे।

यहां से घुड़साल में पहुंचे। घोड़ों की कतारें बंधी हुई थीं, मानो सवारों की फौज का पड़ाव हो। पांच सौ घोड़ों से कम न थे, हरेक जाति के, हरेक देश के। कोई सवारी का कोई शिकार का, कोई बग्घी का, कोई पोलो का। हरेक घोड़े पर दो-दो आदमी नौकर थे। उन्हें रोज बादाम और मलाई दी जाती थी।

गऊशाला में भी चार-पांच सौ गाएं-भैंसें थीं। बड़े-बड़े मटके ताजे दूध से भरे रखे थे। ठाकुरजी आरती के पहले स्नान करेंगे। पांच-पांच मन दूध उनके स्नान को तीन बार रोज चाहिए, भंडार के लिए अलग।

अभी यह लोग इधर-उधर घूम ही रहे थे कि आरती शुरू हो गई। चारों तरफ से लोग आरती करने को दौड़ पड़े।

गूदड़ ने कहा—तुमसे कोई पूछता—कौन भाई हो, तो क्या बताते?

अमर ने मुस्कराकर कहा—वैश्य बताता।

''तुम्हारी तो चल जाती; क्योंकि यहां तुम्हें लोग कम जानते हैं, मुझे तो लोग रोज ही हाथ में चरसें बेचते देखते हैं, पहचान लें, तो जीता न छोड़ें। अब देखो भगवान् की आरती हो रही है और हम भीतर नहीं जा सकते, यहां के पंडे-पुजारियों के चरित्र सुनो, तो दांतों तले उंगली दबा लो। पर वे यहां के मालिक हैं, और हम भीतर कदम नहीं रख सकते। तुम चाहे जाकर आरती ले लो। तुम सूरत से भी तो ब्राह्मण जंचते हो। मेरी तो सूरत ही चमार-चमार पुकार रही है।''

अमर की इच्छा तो हुई कि अंदर जाकर तमाशा देखे; पर गूदड़ को छोड़कर न जा सका। कोई आध घंटे में आरती समाप्त हुई और उपासक लौटकर अपने-अपने घर गए, तो अमर महन्तजी से मिलने चला। मालूम हुआ, कोई रानी साहब दर्शन कर रही हैं। वहीं आंगन में टहलता रहा।

आध घंटे के बाद उसने फिर साधु-द्वारपाल से कहा, तो पता चला, इस वक्त नहीं दर्शन

हो सकते। प्रात:काल आओ।

अमर को क्रोध तो ऐसा आया कि इसी वक्त महन्तजी को फटकारे; पर जब्त करना पड़ा। अपना-सा मुंह लेकर बाहर चला आया।

गूदड़ ने यह समाचार सुनकर कहा—दरबार में भला हमारी कौन सुनेगा?

"महन्तजी के दर्शन तुमने कभी किए हैं?"

"मैंने! भला मैं कैसे करता? मैं कभी नहीं आया।"

नौ बज रहे थे, इस वक्त घर लौटना मुश्किल था। पहाड़ी रास्ते, जंगली जानवरों का खटका, नदी-नालों का उतार। वहीं रात काटने की सलाह हुई। दोनों एक धर्मशाला में पहुंचे और कुछ खा-पीकर वहीं पड़ रहने का विचार किया। इतने में दो साधु भगवान् का ब्यालू बेचते हुए नजर आए। धर्मशाला के सभी यात्री लेने दौड़े। अमर ने भी चार आने की एक पत्तल ली। पूरियां, हलवे, तरह-तरह की भाजियां, अचार-चटनी, मुरब्बे, मलाई, दही इतना सामान था कि अच्छे दो खाने वाले तृप्त हो जाते। यहां चूल्हा बहुत कम घरों में जलता था। लोग यही पत्तल ले लिया करते थे। दोनों ने खूब पेट-भर खाया और पानी पीकर सोने की तैयारी कर रहे थे कि एक साधु दूध बेचने आया—शयन का दूध ले लो। अमर की इच्छा तो न थी, पर कौतूहल से उसने दो आने का दूध ले लिया। पूरा एक सेर था, गाढ़ा, मलाईदार उसमें से केसर और कस्तूरी की सुगध उड़ रही थी। ऐसा दूध उसने अपने जीवन में कभी न पिया था।

बेचारे बिस्तर तो लाए न थे, आधी-आधी धोतियां बिछाकर लेटे।

अमर ने विस्मय से कहा—इस खर्च का कुछ ठिकाना है!

गूदड़ भक्ति-भाव से बोला—भगवान् देते हैं और क्या! उन्हीं की महिमा है। हजार-दो हजार यात्री नित्य आते हैं। एक-एक सेठिया दस-दस, बीस-बीस हजार की थैली चढ़ाता है। इतना खरचा करने पर भी करोड़ों रुपये बैंक में जमा हैं।

"देखें कल क्या बातें होती हैं?"

"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कल भी दर्सन न होंगे।"

दोनों आदमियों ने कुछ रात रहे ही उठकर स्नान किया और दिन निकलने के पहले ड्योढ़ी पर जा पहुंचे। मालूम हुआ, महन्तजी पूजा पर हैं।

एक घंटा बाद फिर गए, तो सूचना मिली, महन्तजी कलेवा पर हैं।

जब वह तीसरी बार नौ बजे गया, तो मालूम हुआ, महन्तजी घोड़ों का मुआइना कर रहे हैं। अमर ने झुंझलाकर द्वारपाल से कहा—तो आखिर हमें कब दर्शन होंगे?

द्वारपाल ने पूछा—तुम कौन हो?

"मैं उनके इलाके के विषय में कुछ कहने आया हूं।"

"तो कारकुन के पास जाओ। इलाके का काम वही देखते हैं।"

अमर पूछता हुआ कारकुन के दफ्तर में पहुंचा, तो बीसों मुनीम लंबी लंबी बही खोले लिख रहे थे। कारकुन महोदय मसनद लगाए हुक्का पी रहे थे।

अमर ने सलाम किया।

कारकुन साहब ने दाढ़ी पर हाथ फेरकर पूछा—अर्जी कहां है?

अमर ने बगलें झांककर कहा—अर्जी तो मैं नहीं लाया।

"तो फिर यहां क्या करने आए?"

"मैं तो श्रीमान् महन्तजी से कुछ अर्ज करने आया था।"

"अर्जी लिखकर लाओ।"

"मैं तो महन्तजी से मिलना चाहता हूं।"

"नजराना लाए हो?"

"मैं गरीब आदमी हूं, नजराना कहां से लाऊं?"

"इसलिए कहता हूं, अर्जी लिखकर लाओ। उस पर विचार होगा। जो कुछ हुक्म होगा, सुना दिया जाएगा।"

"तो कब हुक्म सुनाया जाएगा?"

"जब महन्तजी की इच्छा हो।"

"महन्तजी को कितना नजराना चाहिए?"

"जैसी श्रद्धा हो। कम-से-कम एक अशर्फी।"

"कोई तारीख बता दीजिए, तो मैं हुक्म सुनने आऊं। यहां रोज कौन दौड़ेगा?"

"तुम दौड़ोगे और कौन दौड़ेगा? तारीख नहीं बताई जा सकती।"

अमर ने बस्ती में जाकर विस्तार के साथ अर्जी लिखी और उसे कारकुन की सेवा में पेश कर दिया। फिर दोनों घर चले गए।

इनके आने की खबर पाते ही गांव के सैकड़ों आदमी जमा हो गए। अमर बड़े संकट में पड़ा। अगर उनसे सारा वृत्तांत कहता है, तो लोग उसी को उल्लू बनाएंगे—इसलिए बात बनानी पड़ी—अर्जी पेश कर आया हूं। उस पर विचार हो रहा है।

काशी ने अविश्वास के भाव से कहा—वहां महीनों में विचार होगा, तब तक यहां कारिंदे हमें नोच डालेंगे।

अमर ने खिसियाकर कहा—महीनों में क्यों विचार होगा? दो-चार दिन बहुत हैं।

पयाग बोला—यह सब टालने की बातें हैं। खुशी से कौन अपने रुपये छोड़ सकता है!

अमर रोज सबेरे जाता और घड़ी रात गए लौट आता। पर अर्जी पर विचार न होता था। कारकुन, उनके मुहर्रिरों, यहां तक की चपरासियों की मिन्नत-समाजत करता, पर कोई न सुनता था। रात को वह निराश होकर लौटता, तो गांव के लोग यहां उसका परिहास करते।

पयाग कहता—हमने तो सुना था कि रुपये में आठ आने की छूट हो गई।

काशी कहता—तुम झूठे हो। मैंने तो सुना था, महन्तजी ने इस साल पूरी लगान माफ कर दी।

उधर आत्मानन्द हलके में बराबर जनता को भड़का रहे थे। रोज बड़ी-बड़ी किसान-सभाओं की खबरें आती थीं। जगह-जगह किसान-सभाएं बन रही थीं। अमर की पाठशाला भी बंद पड़ी थी। उसे फुरसत ही न मिलती थी, पढ़ाता कौन? रात को केवल मुन्नी अपनी कोमल सहानुभूति से उसके आंसू पोंछती थी।

आखिर सातवें दिन उसकी अर्जी पर हुक्म हुआ कि सामने पेश किया जाय। अमर महन्त के सामने लाया गया। दोपहर का समय था। महन्तजी खसखाने में एक तख्त पर मसनद लगाए लेटे हुए थे। चारों तरफ खस की टट्टियां थीं, जिन पर गुलाब का छिड़काव हो रहा था। बिजली के पंखे चल रहे थे। अंदर इस जेठ के महीने में इतनी ठंडक थी कि अमर को सर्दी लगने लगी।

महन्तजी के मुखमंडल पर दया झलक रही थी। हुक्के का एक कश खींचकर मधुर स्वर में बोले—तुम इलाके ही में रहते हो न? मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि मेरे असामियों को इस समय कष्ट है। क्या सचमुच उनकी दशा यही है, जो तुमने अर्जी में लिखी है?

अमर ने प्रोत्साहित होकर कहा—महाराज, उनकी दशा इससे कहीं खराब है; कितने ही घरों में चूल्हा नहीं जलता।

महन्तजी ने आंखें बंद करके कहा—भगवान्! यह तुम्हारी क्या लीला है—तो तुमने मुझे पहले ही क्यों न खबर दी? मैं इस फसल की वसूली रोक देता। भगवान् के भंडार में किस चीज की कमी है। मैं इस विषय में बहुत जल्द सरकार से पत्र व्यवहार करूंगा और वहां से जो कुछ जवाब आएगा, वह असामियों को भिजवा दूंगा। तुम उनसे कहो, धैर्य रखें। भगवान्, यह तुम्हारी क्या लीला है!

महन्तजी ने आंखों पर ऐनक लगा ली और दूसरी अर्जियां देखने लगे, तो अमरकान्त भी उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते उसने पूछा—अगर श्रीमान् कारिंदों को हुक्म दे दें कि इस वक्त असामियों को दिक न करें, तो बड़ी दया हो। किसी के पास कुछ नहीं है, पर मार-गाली के भय से बेचारे घर की चीजें बेच-बेचकर लगान चुकाते हैं। कितने ही तो इलाका छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं।

महन्तजी की मुद्रा कठोर हो गई—ऐसा नहीं होने पाएगा। मैंने कारिंदों को कड़ी ताकीद कर दी है कि किसी असामी पर सख्ती न की जाय। मैं उन सबों से जवाब तलब करूंगा। मैं असामियों का सताया जाना बिल्कुल पसंद नहीं करता।

अमर ने झुककर महन्तजी को दंडवत किया और वहां से बाहर निकला, तो उसकी बांछें खिली जाती थीं। वह जल्द-से जल्द इलाके में पहुंचकर यह खबर सुना देना चाहता था। ऐसा तेज जा रहा था, मानो दौड़ रहा है। बीच-बीच में दौड़ भी लगा लेता था, पर सचेत होकर रुक जाता था। लू तो न थी, पर धूप बड़ी तेज थी, देह फुंकी जाती थी, फिर भी वह भागा चला जाता था। अब वह स्वामी आत्मानन्द से पूछेगा कहिए, अब तो आपको विश्वास आया न कि संसार में सभी स्वार्थी नहीं? कुछ धर्मात्मा भी हैं, जो दूसरों का दुःख-दर्द समझते हैं? अब उनके साथ के बेफिक्रों की खबर भी लेगा। अगर उसके पर होते तो उड़ जाता।

संध्या समय वह गांव में पहुंचा तो कितने ही उत्सुक किंतु अविश्वास से भरे नेत्रों ने उसका स्वागत किया।

काशी बोला—आज तो बड़े प्रसन्न हो भैया, पाला मार आए क्या?

अमर ने खाट पर बैठते हुए अकड़कर कहा—जो दिल से काम करेगा, वह पाला मारेगा ही।

बहुत से लोग पूछने लगे—भैया, क्या हुकुम हुआ?

अमर ने डॉक्टर की तरह मरीजों को तसल्ली दी—महन्तजी को तुम लोग व्यर्थ बदनाम कर रहे थे। ऐसी सज्जनता से मिले कि मैं क्या कहूं? कहा—हमें तो कुछ मालूम ही नहीं, पहले ही क्यों न सूचना दी, नहीं तो हमने वसूली बंद कर दी होती। अब उन्होंने सरकार को लिखा है। यहां कारिंदों को भी वसूली की मनाही हो जाएगी।

काशी ने खिसियाकर कहा—देखो, कुछ हो जाय तो जानें।

अमर ने गर्व से कहा—अगर धैर्य से काम लोगे, तो सब कुछ हो जाएगा। हुल्लड़

मचाओगे, तो कुछ न होगा, उल्टे और डंडे पड़ेंगे।

सलोनी ने कहा—जब मोटे स्वामी मानें।

गूदड़ ने चौधरीपन की ली—मानेंगे कैसे नहीं, उनको मानना पड़ेगा।

एक काले युवक ने, जो स्वामीजी के उग्र भक्तों में था, लज्जित होकर कहा—भैया, जिस लगन से तुम काम करते हो, कोई क्या करेगा।

दूसरे दिन उसी कड़ाई से प्यादों ने डांट-फटकार की; लेकिन तीसरे दिन से वह कुछ नर्म हो गए। सारे इलाके में खबर फैल गई कि महन्तजी ने आधी छूट के लिए सरकार को लिखा है। स्वामीजी जिस गांव में जाते थे, वहां लोग उन पर आवाजें कसते। स्वामीजी अपनी रट अब भी लगाए जाते थे। यह सब धोखा है, कुछ होना-हवाना नहीं है, उन्हें अपनी बात की आ पड़ी थी—असामियों की उन्हें इतनी फिक्र न थी, जितनी अपने पक्ष की। अगर आधी छूट का हुकुम आ जाता, तो शायद वह यहां से भाग जाते। इस वक्त तो वह इस वादे को धोखा साबित करने की चेष्टा करते थे, और यद्यपि जनता उनके हाथ में न थी, पर कुछ-न-कुछ आदमी उनकी बातें सुन ही लेते थे। हां, इस कान सुनकर उस कान उड़ा देते।

दिन गुजरने लगे, मगर कोई हुक्म नहीं आया। फिर लोगों में संदेह पैदा होने लगा। जब दो सप्ताह निकल गए, तो अमर सदर गया और वहां सलीम के साथ हाकिम जिला मि॰ गजनवी से मिला। मि॰ गजनवी लंबे, दुबले, गोरे शौकीन आदमी थे। उनकी नाक इतनी लंबी और चिबुक इतना गोल था कि हास्य-मूर्ति लगते थे। और थे भी बड़े विनोदी। काम उतना ही करते थे; जितना जरूरी होता था और जिसके न करने से जवाब तलब हो सकता था। लेकिन दिल के साफ, उदार, परोपकारी आदमी थे। जब अमर ने गांवों को हालत उनसे बयान की, तो हंसकर बोले—आपके महन्तजी ने फरमाया है, सरकार जितनी मालगुजारी छोड़ दे, मैं उतनी ही लगान छोड़ दूंगा। हैं मुंसिफ मिजाज।

अमर ने शंका की—तो इसमें बेइंसाफी क्या है?

''बेइंसाफी यही है कि उनके करोड़ों रुपये बैंक में जमा हैं, सरकार पर अरबों कर्ज है।''

''तो आपने उनकी तजवीज पर कोई हुक्म दिया?''

''इतनी जल्द ! भला छः महीने तो गुजरने दीजिए। अभी हम काश्तकारों की हालत की जांच करेंगे, उसकी रिपोर्ट भेजी जाएगी, फिर रिपोर्ट पर गौर किया जाएगा, तब कहीं कोई हुक्म निकलेगा।''

''तब तक तो असामियों के बारे-न्यारे हो जाएंगे। अजब नहीं कि फसाद शुरू हो जाए।''

''तो क्या आप चाहते हैं, सरकार अपनी बजा छोड़ दे? यह दफ्तरी हुकूमत है जनाब ! वहां सभी काम जाब्ते के साथ होते हैं। आप हमें गालियां दें, हम आपका कुछ नहीं कर सकते। पुलिस में रिपोर्ट होगी। पुलिस आपका चालान करेगी। होगा वही, जो मैं चाहूंगा, मगर जाब्ते के साथ। खैर, यह तो मजाक था। आपके दोस्त मि॰ सलीम बहुत जल्द उस इलाके की तहकीकात करेंगे, मगर देखिए, झूठी शहादतें न पेश कीजिएगा कि यहां से निकाले जाएं। मि॰ सलीम आपकी बड़ी तारीफ करते हैं, मगर भाई, मैं तुम लोगों से डरता हूं। खासकर तुम्हारे स्वामी से। बड़ा ही मुफसिद आदमी है। उसे फंसा क्यों नहीं देते? मैंने सुना है, वह तुम्हें बदनाम

करता फिरता है।''

इतना बड़ा अफसर अमर से इतनी वेतकल्लुफी से बातें कर रहा था, फिर उसे क्यों न नशा हो जाता? सचमुच आत्मानन्द आग लगा रहा है। अगर वह गिरफ्तार हो जाए, तो इलाके में शांति हो जाए। स्वामी साहसी है, यथार्थ वक्ता है, देश का सच्चा सेवक है, लेकिन इस वक्त उसका गिरफ्तार हो जाना ही अच्छा है।

उसने कुछ इस भाव से जवाब दिया कि उसके मनोभाव प्रकट न हों, पर स्वामी पर वार चल जाय—मुझे तो उनसे कोई शिकायत नहीं है, उन्हें अख्तियार है, मुझे जितना चाहें बदनाम करें।

गजनवी ने सलीम से कहा—तुम नोट कर लो मि॰ सलीम। कल इस हलके के थानेदार को लिख दो, इस स्वामी की खबर ले। बस, अब सरकारी काम खत्म। मैंने सुना है मि॰ अमर कि आप औरतों को वश में करने का कोई मंत्र जानते हैं।

अमर ने सलीम की गरदन पकड़कर कहा—तुमने मुझे बदनाम किया होगा।

सलीम बोला—तुम्हें तुम्हारी हरकतें बदनाम कर रही हैं, मैं क्यों करने लगा?

गजनवी ने बांकपन के साथ कहा—तुम्हारी बीबी गजब की दिलेर औरत है, भई ! आजकल म्युनिसिपैलिटी से उनकी जोर-आजमाई है और मुझे यकीन है, बोर्ड को झुकना पड़ेगा। अगर भाई, मेरी बीबी ऐसी होती, तो मैं फकीर हो जाता। वल्लाह !

अमर ने हंसकर कहा—क्यों आपको तो और खुश होना चाहिए था।

गजनवी—जी हां ! वह तो जनाब का दिल ही जानता होगा।

सलीम—उन्हीं के खौफ से तो यह भागे हुए हैं।

गजनवी—यहां कोई जलसा करके उन्हें बुलाना चाहिए।

सलीम—क्यों बैठे-बिठाए जहमत मोल लीजिएगा। वह आई और शहर मे आग लगी, हमें बंगलों से निकलना पड़ा !

गजनवी—अजी, यह तो एक दिन होना ही है। वह अमीरों की हुकूमत अब थोड़े दिनों की मेहमान है। इस मुल्क में अंग्रेजों का राज है, इसलिए हम में जो अमीर हैं और जो कुदरती तौर पर अमीरों की तरफ खड़े होते हैं, वह भी गरीबों की तरफ खड़े होने में खुश हैं, क्योंकि गरीबों के साथ उन्हें कम-से-कम इज्जत तो मिलेगी, उधर तो यह डौल भी नहीं है। मैं अपने को इसी जहमत में समझता हूं।

तीनों मित्रों में बड़ी रात तक बेतकल्लुफी से बातें होती रहीं। सलीम ने अमर की पहले ही खूब तारीफ कर दी थी। इसलिए उसकी गंवारू सूरत होने पर भी गजनवी बराबरी के भाव से मिला। सलीम के लिए हुकूमत नई चीज थी। अपने नए जूते की तरह उसे कीचड़ और पानी से बचाता था। गजनवी हुकूमत का आदी हो चुका था और जानता था कि पांव नए जूते से कहीं ज्यादा कीमती चीज है। रमणी-चर्चा उसके कौतूहल, आनंद और मनोरंजन का मुख्य विषय थी। क्वांरों की रसिकता बहुत धीरे-धीरे सूखने वाली वस्तु है। उनकी अतृप्त लालसा प्राय: रसिकता के रूप में प्रकट होती है।

अमर ने गजनवी से पूछा—आपने शादी क्यों नहीं की? मेरे एक मित्र प्रोफेसर डॉक्टर शान्तिकुमार हैं, वह भी शादी नहीं करते। आप लोग औरतों से डरते होंगे।

गजनवी ने कुछ याद करके कहा—शान्तिकुमार वही तो हैं, खूबसूरत से, गोरे-चिट्टे, गठे

हुए बदन के आदमी। अजी, वह तो मेरे साथ पढ़ता था यार। हम दोनों ऑक्सफोर्ड में थे। मैंने लिटरेचर लिया था, उसने पोलिटिकल फिलॉसोफी ली थी। मैं उसे खूब बनाया करता था, यूनिवर्सिटी में है न? अक्सर उसकी याद आती थी।

सलीम ने उसके इस्तीफे, ट्रस्ट और नगर-कार्य का जिक्र किया।

गजनवी ने गरदन हिलाई, मानो कोई रहस्य पा गया है—तो यह कहिए, आप लोग उनके शागिर्द हैं। हम दोनों में अक्सर शादी के मसले पर बातें होती थीं। मुझे तो डॉक्टरों ने मना किया था; क्योंकि उस वक्त मुझमें टी॰ बी॰ की कुछ अलामतें नजर आ रही थी। जवान बेवा छोड़ जाने के खयाल से मेरी रूह कांपती थी। तब से मेरी गुजरान तीर-तुक्के पर ही है। शान्तिकुमार को तो कौमी खिदमत और जाने क्या-क्या खब्त था; मगर ताज्जुब यह है कि अभी तक उस खब्त ने उसका गला नहीं छोड़ा। मैं समझता हूं, अब उसकी हिम्मत न पड़ती होगी। मेरे ही हमसिन तो थे। जरा उनका पता तो बताना? मैं उन्हें यहां आने को दावत दूंगा।

सलीम ने सिर हिलाया—उन्हें फुरसत कहां? मैंने बुलाया था, नहीं आए।

गजनवी मुस्कराए—तुमने निज के तौर पर बुलाया होगा। किसी इंस्टिट्यूशन की तरफ से बुलाओ और कुछ चंदा करा देने का वादा कर लो, फिर देखो, चारों-हाथ पांव से दौड़े आते हैं या नहीं। इन कौमी खादिमों की जान चंदा है, ईमान चंदा है और शायद खुदा भी चंदा है। जिसे देखो, चंदे की हाय-हाय। मैंने कई बार इस खादिमों को चरका दिया, उस वक्त इन खादिमों की सूरतें देखने ही से ताल्लुक रखती हैं। गालियां देते हैं, पैंतरे बदलते हैं, जबान से तोप के गोले छोड़ते हैं, और आप उनके बौखलपन का मजा उठा रहे हैं। मैंने तो एक बार एक लीडर साहब को पागलखाने में बंद कर दिया था। कहते हैं अपने को कौम का खादिम और लीडर समझते हैं।

सवेरे मि॰ गजनवी ने अमर को अपनी मोटर पर गांव में पहुंचा दिया। अमर के गर्व और आनंद का पारावार न था। अफसरों की सोहबत ने कुछ अफसरी की शान पैदा कर दी थी—हाकिम परगना तुम्हारी हालत जांच करने आ रहे हैं। खबरदार, कोई उनके सामने झूठा बयान न दे। जो कुछ वह पूछें, उसका ठीक-ठीक जवाब दो। न अपनी दशा को छिपाओ, न बढ़ाकर बताओ। तहकीकात सच्ची होनी चाहिए। मि॰ सलीम बड़े नेक और गरीब-दोस्त आदमी हैं। तहकीकात में देर जरूर लगेगी, लेकिन राज्य-व्यवस्था में देर लगती ही है। इतना बड़ा इलाका है, महीनों घूमने में लग जाएंगे। तब तक तुम लोग खरीफ का काम शुरू कर दो। रुपये-आठ आने छूट का मैं जिम्मा लेता हूं। सब्र का फल मीठा होता है, समझ लो।

स्वामी आत्मानन्द को भी अब विश्वास आ गया। उन्होंने देखा, अकेला ही सारा यश लिए जाता है और मेरे पल्ले अपयश के सिवा और कुछ नहीं पड़ता, तो उन्होंने पहलू बदला। एक जलसे में दोनों एक ही मंच से बोले। स्वामीजी झुके, अमर ने कुछ हाथ बढ़ाया। फिर दोनों में सहयोग हो गया।

इधर असाढ़ की वर्षा शुरू हुई उधर सलीम तहकीकात करने आ पहुंचा। दो-चार गांवों में असामियों के बयान लिखे भी; लेकिन एक ही सप्ताह में ऊब गया। पहाड़ी डाक-बंगले में भूत की तरह अकेले पड़े रहना उसके लिए कठिन तपस्या थी। एक दिन बीमारी का बहाना करके भाग खड़ा हुआ और एक महीने तक टाल-मटोल करता रहा। आखिर जब ऊपर से डांट

पड़ी और गजनवी ने सख्त ताकीद की तो फिर चला। उस वक्त सावन की झड़ी लग गई थी, नदी, नाले-भर गए थे, और कुछ ठंडक आ गई थी। पहाड़ियों पर हरियाली छा गई थी। मोर बोलने लगे थे। प्राकृतिक शोभा ने देहातों को चमका दिया था।

कई दिन के बाद आज बादल खुले थे। महन्तजी ने सरकारी फैसले के आने तक रुपये में चार आने की छूट की घोषणा दी थी और कारिंदे बकाया वसूल करने की फिर चेष्टा करने लगे थे। दो-चार असामियों के साथ उन्होंने सख्ती भी की थी। इस नई समस्या पर विचार करने के लिए आज गंगा-तट पर एक विराट् सभा हो रही थी। भोला चौधरी सभापति बनाए गए और स्वामी आत्मानन्द का भाषण हो रहा था-सज्जनो तुम लोगों में ऐसे बहुत कम हैं, जिन्होंने आधा लगान न दे दिया हो। अभी तक तो आधे की चिंता थी। अब केवल आधे-के-आधे की चिंता है। तुम लोग खुशी से दो-दो आने और दे दो, सरकार महन्तजी की मलागुजारी में कुछ-न-कुछ छूट अवश्य करेगी। अब की छः आने छूट पर सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। आगे की फसल में अगर अनाज का भाव यही रहा, तो हमें आशा है कि आठ आने की छूट मिल जाएगी। यह मेरा प्रस्ताव है, आप लोग इस पर विचार करें। मेरे मित्र अमरकान्त की भी यही राय है। अगर आप लोग कोई और प्रस्ताव करना चाहते हैं तो हम उस पर विचार करने को भी तैयार हैं।

इसी वक्त डाकिये ने सभा में आकर अमरकान्त के हाथ में एक लिफाफा रख दिया। पत्र की लिखावट ने बता दिया कि नैना का पत्र है। पढ़ते ही जैसे उस पर नशा छा गया। मुख पर ऐसा तेज आ गया, जैसे अग्नि में आहुति पड़ गई हो। गर्व भरी आंखों से इधर-उधर देखा। मन के भाव जैसे छलांगें मारने लगे। सुखदा की गिरफ्तारी और जेल-यात्रा का वृत्तांत था। आह! वह जेल गई और वह यहां पड़ा हुआ है! उसे बाहर रहने का क्या अधिकार है! वह कोमलांगी जेल में है, जो कड़ी दृष्टि भी न सह सकती थी जिसे रेशमी वस्त्र भी चुभते थे, मखमली गद्दे भी गड़ते थे, वह आज जेल की यातना सह रही है। वह आदर्श नारी, वह देश की लाज रखने वाली, वह कुल लक्ष्मी, आज जेल में है। अमर के हृदय का सारा रक्त सुखदा के चरणों पर गिरकर बह जाने के लिए मचल उठा। सुखदा! सुखदा! चारों ओर वही मूर्ति थी। संध्या की लालिमा से रंजित गंगा की लहरों पर बैठी हुई कौन चली जा रही है? सुखदा! ऊपर असीम आकाश में केसरिया साड़ी पहने कौन उठी जा रही है? सुखदा! सामने वह श्याम पर्वतमाला में गोधूलि का हार गले में डाले कौन खड़ी है? सुखदा! अमर विक्षिप्तों की भांति कई कदम आगे दौड़ा, मानो उसकी पद-रज मस्तक पर लगा लेना चाहता हो।

सभा में कौन क्या बोला, इसकी उसे खबर नहीं। वह खुद क्या बोला, इसकी भी उसे खबर नहीं। जब लोग अपने-अपने गांवों को लौटे तो चन्द्रमा का प्रकाश फैल गया था। अमरकान्त का अंतःकरण कृतज्ञता से परिपूर्ण था। जैसे अपने ऊपर किसी की रक्षा का साया उसी ज्योत्स्ना की भांति फैला हुआ जान पड़ा। उसे प्रतीत हुआ, जैसे उसके जीवन में कोई विधान है, कोई आदेश है, कोई आशीर्वाद है, कोई सत्य है, और वह पग-पग पर उसे सभालता है, बचाता है। एक महान् इच्छा, एक महान् चेतना के संसर्ग का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ।

सहसा मुन्नी ने पुकारा—लाला, आज तो तुमने आग ही लगा दी।

अमर ने चौंककर कहा—मैंने!

तब उसे अपने भाषण का एक-एक शब्द याद आ गया। उसने मुन्नी का हाथ पकड़ कर कहा—हां मुन्नी, अब हमें वही करना पड़ेगा, जो मैंने कहा। जब तक हम लगान देना बंद न करेंगे। सरकार यों ही टालती रहेगी।

मुन्नी संशक होकर बोली—आग में कूद रहे हो, और क्या?

अमर ने ठट्ठा मारकर कहा—आग में कूदने से स्वर्ग मिलेगा। दूसरा मार्ग नहीं है।

मुन्नी चकित होकर उसका मुंह देखने लगी। इस कथन में हंसने का क्या प्रयोजन ! वह समझ न सकी।

## छः

सलीम यहां से कोई सात-आठ मील पर डाकबंगले में पड़ा हुआ था। हलके के थानेदार ने रात ही को उसे इस सभा की खबर दी और अमरकान्त का भाषण भी पढ़ सुनाया। उसे इन सभाओं की रिपोर्ट करते रहने की ताकीद दी गई थी !

सलीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। अभी एक दिन पहले अमर उससे मिला था, और यद्यपि उसने महन्त की इस नई कार्रवाई का विरोध किया था। पर उसके विरोध में केवल खेद था, क्रोध का नाम भी न था। आज एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया?

उसने थानेदार से पूछा—महन्तजी की तरफ से कोई खास ज्यादती तो नहीं हुई?

थानेदार ने जैसे इस शंका को जड़ से काटने के लिए तत्पर होकर कहा—बिल्कुल नहीं, हुजूर ! उन्होंने तो सख्त ताकीद कर दी थी कि असामियों पर किसी किस्म का जुल्म न किया जाय। बेचारे ने अपनी तरफ से चार आने की छूट दे दी, गाली-गुफ्ता तो मामूली बात है।

"जलसे पर इस तकरीर का क्या असर हुआ?"

"हुजूर, यही समझ लीजिए, जैसे पुआल में आग लग जाय। महन्तजी के इलाके में बड़ी मुश्किल से लगान वसूल होगा।"

सलीम ने आकाश की तरफ देखकर पूछा—आप इस वक्त मेरे साथ सदर चलने को तैयार हैं?

थानेदार को क्या उज्र हो सकता था। सलीम के जी में एक बार आया कि जरा अमर से मिले; लेकिन फिर सोचा, अमर उसके समझाने से मानने वाला होता, तो यह आग ही क्यों लगाता?

सहसा थानेदार ने पूछा—हुजूर से तो इनकी जान-पहचान है?

सलीम ने चिढ़कर कहा—यह आपसे किसने कहा? मेरी सैकड़ों से जान-पहचान है, तो फिर ? अगर मेरा लड़का भी कानून के खिलाफ काम करे, तो मुझे उसकी तंबीह करनी पड़ेगी।

थानेदार ने खुशामद की—मेरा यह मतलब नहीं था। हूजूर ! हुजूर से जान-पहचान होने पर भी उन्होंने हुजूर को बदनाम करने में ताम्मुल न किया, मेरी यही मंशा था।

सलीम ने कुछ जवाब तो न दिया; पर यह उस मुआमले का नया पहलू था। अमर को उसके इलाके में यह तूफान न उठाना चाहिए था, आखिर अफसरान यही तो समझेंगे कि यह नया आदमी है, अपने इलाके पर इसका रोब नहीं है।

बादल फिर घिरा आता था। रास्ता भी खराब था। उस पर अंधेरी रात, नदियों का उतार; मगर उसका गजनवी से मिलना जरूरी था। कोई तजर्बेकार अफसर इस कदर बदहवास न होता; पर सलीम नया आदमी था।

दोनों आदमी रात-भर की हैरानी के बाद सवेरे सदर पहुंचे। आज मियां सलीम को आटे-दाल का भाव मालूम हुआ। यहां केवल हुकूमत नहीं है, हैरानी और जोखिम भी है, इसका अनुभव हुआ। जब पानी का झोंका आता, या कोई नाला सामने आ पड़ता, तो वह इस्तीफा देने की ठान लेता—यह नौकरी है या बला है! मजे से जिंदगी गुजरती थी। यहां कुत्ते-खसी में आ फंसा। लानत है ऐसी नौकरी पर! कहीं मोटर खड्ड में जा पड़े, तो हड्डियों का भी पता न लगे। नई मोटर चौपट हो गई।

बंगले पर पहुंचकर उसने कपड़े बदले, नाश्ता किया और आठ बजे गजनवी के पास जा पहुंचा। थानेदार कोतवाली में ठहरा था। उसी वक्त वह भी हाजिर हुआ।

गजनवी ने वृत्तांत सुनकर कहा—अमरकान्त कुछ दीवाना तो नहीं हो गया है। बातचीत मे बड़ा शरीफ मालूम होता था, मगर लीडरी भी मुसीबत है! बेचारा कैसे नाम पैदा करें। शायद हजरत समझे होंगे, यह लोग तो दोस्त हो ही गए, अब क्या फिक्र। 'सैयां भए कोतवाल अब डर काहे का।' और जिलों में भी तो शोरिश है। मुमकिन है, वहां से ताकीद हुई हो। सूझी है इन सभी को दूर की और हक यह है कि किसानों की हालत नाजुक है। यों भी बेचारों को पेट भर दाना न मिलता था, अब तो जिंसें और भी सस्ती हो गई। पूरा लगान कहां, आधे की भी गुंजाइश नहीं है, मगर सरकार का इंतजाम तो होना ही चाहिए! हुकूमत में कुछ-कुछ खौफ और रोब का होना भी जरूरी है, नहीं उसकी सुनेगा कौन? किसानों को आज यकीन हो जाय कि आधा लगान देकर उनकी जान बच सकती है, तो कल वह चौथाई पर लड़ेंगे और परसों पूरी मुआफी का मुतालबा करेंगे। मैं तो समझता हूं, आप जाकर लाला अमरकान्त को गिरफ्तार कर लें। एक बार कुछ हलचल मचेगा, मुमकिन है, दो-चार गांवों में फसाद भी हो, मगर खुले हुए फसाद को रोकना उतना मुश्किल नहीं है, जितना इस हवा को। मवाद जब फोड़े की सूरत में आ जाता है, तो उसे चीरकर निकाल दिया जा सकता है, लेकिन वही दिल, दिमाग की तरफ चला जाय, तो जिंदगी का खात्मा हो जाएगा। आप अपने साथ सुपरिंटेंडेंट पुलिस को भी ले लें और अमर को दफा एक सौ चौबीस में गिरफ्तार कर लें। उस स्वामी को भी लीजिए। दारोगाजी, आप जाकर साहब बहादुर से कहिए, तैयार रहें।

सलीम ने व्यथित कंठ से कहा—मैं जानता कि यहां आते-ही-आते इस अजाब में जान फंसेगी, तो किसी और जिले की कोशिश करता। क्या अब मेरा तबादला नहीं हो सकता?

थानेदार ने पूछा—हुजूर, कोई खत न देंगे?

गजनवी ने डांट बताई—खत की जरूरत नहीं है। क्या तुम इतना भी नहीं कह सकते?

थानेदार सलाम करके चला गया, तो सलीम ने कहा—आपने इसे बुरी तरह डांटा, बेचारा रुआंसा हो गया। आदमी अच्छा है।

गजनवी ने मुस्कराकर कहा—जी हां, बहुत अच्छा आदमी है। रसद खूब पहुंचाता होगा, मगर रिआया से उसकी दस गुनी वसूल करता है। जहां किसी मातहत ने जरूरत से ज्यादा खिदमत और खुशामद की, मैं समझ जाता हूं कि यह छंटा हुआ गुर्गा है। आपकी लियाकत का यह हाल है कि इलाके में सदा ही वारदातें होती हैं, एक का भी पता नहीं चलता। इसे

झूठी शहादतें बनाना भी नहीं आता। बस, खुशामद की रोटियां खाता है। अगर सरकार पुलिस का सुधार कर सके, तो स्वराज्य की मांग पचास साल के लिए टल सकती है। आज कोई शरीफ आदमी पुलिस से सरोकार नहीं रखना चाहता। थाने को बदमाशों का अड्डा समझकर उधर से मुंह फेर लेता है। यह सीगा इस राज का कलंक है। अगर आपको दोस्त को गिरफ्तार करने में तकल्लुफ हो, तो मैं डी॰ एस॰ पी॰ को ही भेज दूं। उन्हें गिरफ्तार करना फर्ज हो गया है। अगर आप यह नहीं चाहते कि उनकी जिल्लत हो, तो आप जाइए। अपनी दोस्ती का हक अदा करने ही के लिए जाइए। मैं जानता हूं, आपको सदमा हो रहा है। मुझे खुद रंज है। उस थोड़ी देर की मुलाकात में ही मेरे दिल पर उनका सिक्का जम गया। मैं उनके नेक इरादों की कद्र करता हूं; लेकिन हम और वह दो कैंपों में हैं। स्वराज्य हम भी चाहते हैं; मगर इनकलाब के सिवा हमारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। इतनी फौज रखने की क्या जरूरत है, जो सरकार की आमदनी का आधा हजम कर जाय। फौज का खर्च आधा कर दिया जाय, तो किसानों का लगान बड़ी आसानी से आधा हो सकता है। मुझे अगर स्वराज्य से कोई खौफ है तो यह कि मुसलमानों की हालत कहीं और खराब न हो जाय। गलत तवारीखें पढ़-पढ़कर दोनों फिरके एक-दूसरे के दुश्मन हो गए हैं और मुमकिन नहीं कि हिन्दू मौका पाकर मुसलमानों से फर्जी अदावतों का बदला न लें; लेकिन इस खयाल से तसल्ली होती है कि इस बीसवीं सदी में हिन्दुओं जैसी पढ़ी-लिखी जमाअत मजहबी गरोहबंदी की पनाह नहीं ले सकती। मजहब का दौर खतम हो रहा है; बल्कि यों कहो कि खतम हो गया। सिर्फ हिन्दुस्तान में उसमें कुछ-कुछ जान बाकी है। यह तो दौलत का जमाना है। अब कौम में अमीर और गरीब, जायदाद वाले और मरभुखे, अपनी-अपनी जमाअतें बनाएंगे। उसमें कहीं ज्यादा खूंरेजी होगी, कहीं ज्यादा तंगदिली होगी। आखिर एक-दो सदी के बाद दुनिया में एक सल्तनत हो जाएगी। सबका एक कानून, एक निजाम होगा, कौम के खादिम कौम पर हुकूमत करेंगे, मजहब शख्सी चीज होगी। न कोई राजा होगा, न कोई परजा।

फोन की घंटी बजी, गजनवी ने चोगा कान से लगाया—मि॰ सलीम कब चलेंगे?

गजनवी ने पूछा—आप कब तक तैयार होंगे?

''मैं तैयार हूं।''

''तो एक घंटे में आ जाइए।''

सलीम ने लंबी सांस खींचकर कहा—तो मुझे जाना ही पड़ेगा?

''बेशक ! मैं आपके और अपने दोस्त को पुलिस के हाथ में नहीं देना चाहता।''

''किसी हीले में अमर को यहीं बुला क्यों न लिया जाय?''

''वह इस वक्त नहीं आएंगे।''

सलीम ने सोचा, अपने शहर में जब यह खबर पहुंचेगी कि मैंने अमर को गिरफ्तार किया, तो मुझ पर कितने जूते पड़ेंगे ! शान्तिकुमार तो नोंच ही खाएंगे और सकीना तो शायद मेरा मुंह देखना भी पसंद न करे। इस खयाल से वह कांप उठा। सोने की हंसिया न उगलते बनती थी, न निगलते।

उसने उठकर कहा—आप डी॰ एस॰ पी॰ को भेज दें। मैं नहीं जाना चाहता।

गजनवी ने गंभीर होकर पूछा—आप चाहते हैं कि उन्हें वहीं से हथकड़ियां पहनाकर और कमर में रस्सी डालकर चार कांस्टेबलों के साथ लाया जाय और जब पुलिस उन्हें लेकर

चले, उसे भीड़ को हटाने के लिए गोलियां चलानी पड़ें?

सलीम ने घबराकर कहा—क्या डी॰ एस॰ पी॰ को इन सख्तियों से रोका नहीं जा सकता?

''अमरकान्त आपके दोस्त हैं, डी॰ एस॰ पी॰ के दोस्त नहीं।''

''तो फिर आप डी॰ एस॰ पी॰ को मेरे साथ न भेजें।''

''आप अमर को यहां ला सकते हैं?''

''दगा करनी पड़ेगी।''

''अच्छी बात है, आप जाइए, मैं डी॰ एस॰ पी॰ को मना किए देता हूं।''

''मैं वहां कुछ कहूंगा ही नहीं।''

''इसका आपको अख्तियार है।''

सलीम अपने डेरे पर लौटा तो ऐसा रंजीदा था, गोया अपना कोई अजीज मर गया हो। आते-ही-आते सकीना, शान्तिकुमार, लाला समरकान्त, नैना, सबों को एक-एक खत लिखकर अपनी मजबूरी और दुःख प्रकट किया। सकीना को उसने लिखा—मेरे दिल पर इस वक्त जो गुजर रही है, वह मैं तुमसे बयान नहीं कर सकता। शायद अपने जिगर पर खंजर चलाते हुए भी मुझे इससे ज्यादा दर्द न होता। जिसकी मुहब्बत मुझे यहां खीच लाई, उसी को आज मैं इन जालिम हाथों से गिरफ्तार करने जा रहा हूं। सकीना खुदा के लिए मुझे कमीना, बेदर्द और खुदगरज न समझो। खून के आंसू रो रहा हूं। जिसे अपने आंचल से पोंछ दो। मुझ पर अमर के इतने एहसान हैं कि मुझे उनके पसीने की जगह अपना खून बहाना चाहिए था और मैं उनके खून का मजा ले रहा हूं। मेरे गले में शिकारी का खौफ है और उसके इशारे पर वह सब कुछ करने पर मजबूर हू, जो मुझे न करना लाजिम था। मुझ पर रहम करो सकीना, मैं बदनसीब हूं।

खानसामे ने आकर कहा—हुजूर, खाना तैयार है।

सलीम ने सिर झुकाए हुए कहा—मुझे भूख नहीं है।

खानसामा पूछना चाहता था, हुजूर की तबीयत कैसी है? मेज पर कई लिखे खत देखकर डर रहा था कि घर से कोई बुरी खबर तो नहीं आई।

सलीम ने सिर उठाया और हसरत-भरे स्वर में बोला—उस दिन वह मेरे एक दोस्त नहीं आए थे, वही देहातियों की-सी सूरत बनाए हुए, वह मेरे बचपन के साथी हैं। हम दोनों एक ही कॉलेज में पढ़े। घर के लखपती आदमी हैं। बाप हैं, बाल-बच्चे हैं। इतने लायक हैं कि मुझे उन्होंने पढ़ाया। चाहते, तो किसी अच्छे ओहदे पर होते। फिर घर में ही किस बात की कमी है, मगर गरीबों का इतना दर्द है कि घर-बार छोड़कर यहीं एक गांव में किसानों की खिदमत कर रहे हैं। उन्हीं को गिरफ्तार करने का मुझे हुक्म हुआ है।

खानसामा और समीप आकर जमीन पर बैठ गया—क्या कसूर किया था हुजूर, उन बाबू साहब ने?

''कुसूर? कोई कुसूर नहीं, यही कि किसानों को मुसीबत उनसे नहीं देखी जाती।''

''हुजूर ने बड़े साहब को समझाया नहीं?''

''मेरे दिल पर इस वक्त जो कुछ गुजर रही है, वह मैं ही जानता हूं हनीफ, आदमी नहीं फरिश्ता है। यह है सरकारी नौकरी।''

"तो हुजूर को जाना पड़ेगा?"

"हां, इसी वक्त ! इस तरह दोस्ती का हक अदा किया जाता है !"

"तो उन बाबू साहब को नजरबंद किया जाएगा, हुजूर?"

"खुदा जाने क्या किया जाएगा? ड्राइवर से कहो, मोटर लाए। शाम तक लौट आना जरूरी है।"

जरा देर में मोटर आ गई। सलीम उसमें आकर बैठा, तो उसकी आंखें सजल थीं।

## सात

आज कई दिन के बाद तीसरे पहर सूर्यदेव ने पृथ्वी की पुकार सुनी और जैसे समाधि से निकलकर उसे आशीर्वाद दे रहे थे। पृथ्वी मानो अंचल फैलाए उनका आशीर्वाद बटोर रही थी।

इसी वक्त स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त दोनों दो दिशाओं से मदरसे में आए।

अमरकान्त ने माथे से पसीना पोंछते हुए कहा—हम लोगों ने कितना अच्छा प्रोग्राम बनाया था कि एक साथ लौटे। एक क्षण भी विलंब न हुआ। कुछ खा-पीकर फिर निकलें और आठ बजते-बजते लौट आएं।

आत्मानन्द ने भूमि पर लेटकर कहा—भैया, अभी तो मुझसे एक पग न चला जाएगा। हां, प्राण लेना चाहो, तो ले लो। भागते-भागते कचूमर निकल गया। पहले शर्बत बनवाओ, पीकर ठंडे हों, तो आंखें खुलें।

"तो फिर आज का काम समाप्त हो चुका?"

"हो या भाड़ में जाय, क्या प्राण दे दें? तुमसे हो सकता है करो, मुझसे तो नहीं हो सकता।"

अमर ने मुस्कराकर कहा—यार ! मुझसे दूने तो हो, फिर भी चें बोल गए। मुझे अपना बल और अपना पाचन दे दो, फिर देखो, मैं क्या करता हूं?

आत्मानन्द ने सोचा था, उनकी पीठ ठोंकी जाएगी, यहां उनके पौरुष पर आक्षेप हुआ। बोले—तुम मरना चाहते हो, मैं जीना चाहता हूं।

"जीने का उद्देश्य तो कर्म है।"

"हां, मेरे जीवन का उद्देश्य कर्म ही है। तुम्हारे जीवन का उद्देश्य तो अकाल मृत्यु है।"

"अच्छा शर्बत पिलवाता हूं, उसमें दही भी डलवा दूं?"

"हां, दही की मात्रा अधिक हो और दो लोटे से कम न हो। इसके दो घंटे बाद भोजन चाहिए।"

"मार डाला ! तब तक तो दिन ही गायब हो जाएगा।"

अमर ने मुन्नी को बुलाकर शर्बत बनाने को कहा और स्वामीजी के बराबर ही जमीन पर लेटकर पूछा—इलाके की क्या हालत है?

"मुझे तो भय हो रहा है, कि लोग धोखा देंगे। बेदखली शुरू हुई, तो बहुतों के आसन डोल जाएंगे !"

"तुम तो दार्शनिक न थे, यह घी पत्ते पर या पत्ता घी पर की शंका कहां से लाए?"

''ऐसा काम ही क्यों किया जाय, जिसका अंत लज्जा और अपमान हो? मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मुझे बड़ी निराशा हुई।''

''इसका अर्थ यह है कि आप इस आंदोलन के नायक बनने के योग्य नहीं हैं। नेता में आत्मविश्वास, साहस और धैर्य, ये मुख्य लक्षण हैं।''

मुन्नी शर्बत बनाकर लाई। आत्मानन्द ने कमंडलु भर लिया और एक सांस में चढ़ा गए। अमरकान्त एक कटोरे से ज्यादा न पी सके।

आत्मानन्द ने मुंह छिपाकर कहा—बस ! फिर भी आप अपने को मनुष्य कहते हैं?

अमर ने जवाब दिया—बहुत खाना पशुओं का काम है।

''जो खा नहीं सकता वह काम क्या करेगा?''

''नहीं, जो कम खाता है, वही काम कर सकता है। पेटू के लिए सबसे बड़ा काम भोजन पचाना है।''

सलोनी कल से बीमार थी। अमर उसे देखने चला था कि मदरसे के सामने ही मोटर आते देखकर रुक गया। शायद इस गांव में मोटर पहली बार आई हो। वह सोच रहा था, किसकी मोटर है कि सलीम उसमें से उतर पड़ा। अमर ने लपककर हाथ मिलाया—कोई जरूरी काम था, मुझे क्यों न बुला लिया?

दोनों आदमी मदरसे में आए। अमर ने एक खाट लाकर डाल दी और बोला—तुम्हारी क्या खातिर करूं? यहां तो फकीरों की हालत है। शर्बत बनवाऊं?

सलीम ने सिगार जलाते हुए कहा—नहीं, कोई तकल्लुफ नहीं। मि. गजनवी तुमसे किसी मुआमले में सलाह करना चाहते हैं। मैं आज ही जा रहा हूं। सोचा, तुम्हें भी लेता चलूं। तुमने तो कल आग लगा ही दी। अब तहकीकात से क्या फायदा होगा? वह तो बेकार हो गई।

अमर ने कुछ झिझकते हुए कहा—महन्तजी ने मजबूर कर दिया। क्या करता?

सलीम ने दोस्ती की आड़ ली—मगर इतना तो सोचते कि यह मेरा इलाका है और यहां की सारी जिम्मेदारी मुझ पर है। मैंने सड़क के किनारे अक्सर गांवों में लोगों के जमाव देखे। कहीं-कहीं तो मेरी मोटर पर पत्थर भी फेंके गए। यह अच्छे आसार नहीं हैं। मुझे खौफ है, कोई हंगामा न हो जाय। अपने हक के लिए या बेजा जुल्म के खिलाफ रिआया में जोश हो, तो मैं इसे बुरा नहीं समझता, लेकिन यह लोग कायदे-कानून के अंदर रहेंगे, मुझे इसमें शक है। तुमने गूंगों को आवाज दी, सोतों को जगाया, लेकिन ऐसी तहरीक के लिए जितने जब्त और सब्र की जरूरत है, उसका दसवां भी हिस्सा मुझे नजर नहीं आता।

अमर को इस कथन में शासन-पक्ष की गंध आई। बोला—तुम्हें यकीन है कि तुम भी वह गलती नहीं कर रहे, जो हुक्काम किया करते हैं? जिनकी जिंदगी आराम और फरागत से गुजर रही है, उनके लिए सब्र और जब्त की हांक लगाना आसान है, लेकिन जिनकी जिंदगी का हरेक दिन एक नई मुसीबत है, वह नजात को अपनी जनवासी चाल से आने का इंतजार नहीं कर सकते। यह उसे खींच लाना चाहते हैं, और जल्द-से-जल्द।

''मगर नजात के पहले कयामत आएगी, यह भी याद रहे।''

''हमारे लिए यह अंधेर ही कयामत है जब पैदावार लागत से भी कम हो, तो लगान की गुंजाइश कहां ? उस पर भी हम आठ आने पर राजी थे। मगर बारह आने हम किसी तरह नहीं दे सकते। आखिर सरकार किफायत क्यों नहीं करती? पुलिस और फौज और इंतजाम

पर क्यों इतनी बेदर्दी से रुपये उड़ाए जाते हैं? किसान गूंगे हैं, बेबस हैं, कमजोर हैं। क्या इसलिए सारा नजला उन्हीं पर गिरना चाहिए?''

सलीम ने अधिकार-गर्व से कहा—तो नतीजा क्या होगा, जानते हो? गांव-के-गांव बर्बाद हो जाएंगे, फौजी कानून जारी हो जाएगा, शायद पुलिस बैठा दी जाएगी, फसलें नीलाम कर दी जाएंगी, जमीनें जब्त हो जाएंगी। कयामत का सामना होगा?''

अमरकान्त ने अविचलित भाव से कहा—जो कुछ भी हो, मर-मिटना जुल्म के सामने सिर झुकाने से अच्छा है।

मदरसे के सामने हुजूम बढ़ता जाता था—सलीम ने विवाद का अंत करने के लिए कहा—चलो इस मुआमले पर रास्ते में बहस करेंगे। देर हो रही है।

अमर ने चटपट कुरता गले में डाला और आत्मानन्द से दो-चार जरूरी बातें करके आ गया। दोनों आदमी आकर मोटर पर बैठे। मोटर चली, तो सलीम की आंखों में आंसू डबडबाए हुए थे। अमर ने सशंक होकर पूछा—मेरे साथ दगा तो नहीं कर रहे हो?

सलीम अमर के गले लिपटकर बोला—इसके सिवा और दूसरा रास्ता न था। मैं नहीं चाहता था कि तुम्हें पुलिस के हाथों जलील किया जाय।

''तो जरा ठहरो, मैं अपनी कुछ जरूरी चीजें तो ले लूं।''

''हां-हां, ले लो, लेकिन राज खुल गया, तो यहां मेरी लाश नजर आएगी।''

''तो चलो कोई मुजायका नहीं।''

गांव के बाहर निकले ही थे कि मुन्नी आती हुई दिखाई दी। अमर ने मोटर रुकवाकर पूछा—तुम कहां गई थीं, मुन्नी? धोबी से मेरे कपड़े लेकर रख लेना, सलोनी काकी के लिए मेरी कोठरी में ताक पर दवा रखी है। पिला देना।

मुन्नी ने सहमी हुई आंखों से देखकर कहा—तुम कहां जाते हो?

''एक दोस्त के यहां दावत खाने जा रहा हूं।''

मोटर चली। मुन्नी ने पूछा—कब तक आओगे?

अमर ने सिर निकालकर उससे दोनों हाथ जोड़कर कहा—जब भाग्य लाए।

## आठ

साथ के पढ़े, साथ के खेले, दो अभिन्न मित्र, जिनमें धौल-धप्पा, हंसी-मजाक सब कुछ होता रहता था, परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर दो अलग रास्तों पर जा रहे थे। लक्ष्य दोनों का एक था, उद्देश्य एक; दोनों ही देश-भक्त, दोनों ही किसानों के शुभेच्छु, पर एक अफसर था, दूसरा कैदी। दोनों सटे हुए बैठे थे, पर जैसे बीच में कोई दीवार खड़ी हो। अमर प्रसन्न था मानो शहादत के जीने पर चढ़ रहा हो। सलीम दु:खी था, जैसे भरी सभा में अपनी जगह से उठा दिया गया हो। विकास के सिद्धांत का खुली सभा में समर्थन करके उसकी आत्मा विजयी होती। निरंकुशता की शरण लेकर वह जैसे कोठरी में छिपा बैठा था।

सहसा सलीम ने मुस्कराने की चेष्टा करके कहा—क्यों अमर, मुझसे खफा हो?

अमर ने प्रसन्न मुख से कहा—बिल्कुल नहीं। मैं तुम्हें अपना वही पुराना दोस्त समझ रहा हूं। उसूलों की लड़ाई हमेशा होती रही है और होती रहेगी। दोस्ती में इससे फर्क नहीं आता।

सलीम ने अपनी सफाई दी—भाई, इंसान-इंसान है, दो मुखालिफ गिरोहों में आकर दिल में कीना या मलाल पैदा हो जाय, तो ताज्जुब नहीं। पहले डी० एस० पी० को भेजने की सलाह थी; पर मैंने इसे मुनासिब न समझा।

"इसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा एहसानमंद हूं। मेरे ऊपर मुकदमा चलाया जाएगा?"

"हां, तुम्हारी तकरीरों की रिपोर्ट मौजूद है, और शहादतें भी जमा हो गई हैं। तुम्हारा क्या खयाल है, तुम्हारी गिरफ्तारी से यह शोरिश दब जाएगी या नहीं?"

"कुछ कह नहीं सकता। अगर मेरी गिरफ्तारी या सजा से दब जाय, तो इसका दब जाना ही अच्छा।"

उसने एक क्षण के बाद फिर कहा—रिआया को मालूम है कि उनके क्या-क्या हक हैं, यह मालूम है कि हकों की हिफाजत के लिए कुरबानिया करनी पड़ती हैं। मेरा फर्ज यहीं तक खत्म हो गया। अब वह जानें और उनका काम जाने। मुमकिन है, सख्तियों से दब जाएं, मुमकिन है, न दबें, लेकिन दबें या उठें, उन्हें चोट जरूर लगी है। रिआया का दब जाना, किसी सरकार की कामयाबी की दलील नहीं है।

मोटर के जाते ही सत्य मुन्नी के सामने चमक उठा। वह आवेश में चिल्ला उठी—लाला पकड़े गए! और उसी आवेश में मोटर के पीछे दौड़ी। चिल्लाती जाती थी—लाला पकड़े गए!

वर्षाकाल में किसानों को हार में बहुत काम नहीं होता। अधिकतर लोग घरों में होते हैं। मुन्नी की आवाज मानो खतरे का बिगुल थी। दम-के-दम में सारे गांव में यह आवाज गूंज उठी—भैया पकड़े गए!

स्त्रियां घरों में से निकल पड़ीं—भैया पकड़े गए!

क्षण मात्र में सारा गांव जमा हो गया और सड़क की तरफ दौड़ा। मोटर घूमकर सड़क से जा रही थी। पगडंडियों का एक सीधा रास्ता था। लोगों ने अनुमान किया, अभी इस रास्ते मोटर पकड़ी जा सकती है। सब उसी रास्ते दौड़े।

काशी बोला—मरना तो एक दिन है ही।

मुन्नी ने कहा—पकड़ना है, तो सबको पकड़ें। ले चलें सबको।

पयाग बोला—सरकार का काम है चोर-बदमाशों को पकड़ना या ऐसों को जो दूसरों के लिए जान लड़ा रहे हैं? वह देखो मोटर आ रही है। बस, सब रास्ते में खड़े हो जाओ। कोई न हटना, चिल्लाने दो।

सलीम मोटर रोकता हुआ बोला—अब कहो भाई। निकालूं पिस्तौल?

अमर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—नहीं-नहीं, मैं इन्हें समझाए देता हूं।

"मुझे पुलिस के दो-चार आदमियों को साथ ले लेना था।"

"घबराओ मत, पहले मैं मरूंगा, फिर तुम्हारे ऊपर कोई हाथ उठाएगा।"

अमर ने तुरंत मोटर से सिर निकालकर कहा—बहनो और भाइयो, अब मुझे बिदा कीजिए। आप लोगों के सत्संग में मुझे जितना स्नेह और सुख मिला, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं परदेशी मुसाफिर था! आपने मुझे स्थान दिया, आदर दिया, प्रेम दिया! मुझसे भी जो कुछ सेवा हो सकी, वह मैंने की। अगर मुझसे कुछ भूल-चूक हुई हो, तो क्षमा करना। जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे छोड़ना मत, यही मेरी याचना है। सब काम ज्यों-का-त्यों होता रहे, यही सबसे बड़ा उपहार है, जो आप मुझे दे सकते हैं। प्यारे बालको, मैं जा रहा

हूं लेकिन मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।

काशी ने कहा—भैया, हम सब तुम्हारे साथ चलने को तैयार हैं।

अमर ने मुस्कराकर उत्तर दिया—नेवता तो मुझे मिला है, तुम लोग कैसे जाओगे?

किसी के पास इसका जवाब न था। भैया बात ही ऐसी करते हैं कि किसी से उसका जवाब नहीं बन पड़ता।

मुन्नी सबसे पीछे खड़ी थी, उसकी आंखें सजल थीं। इस दशा में अमर के सामने कैसे जाए? हृदय में जिस दीपक को जलाए, वह अपने अंधेरे जीवन में प्रकाश का स्वप्न देख रही थी, वह दीपक कोई उसके हृदय से निकाले लिए जाता है। वह सूना अंधकार क्या फिर वह सह सकेगी!

सहसा उसने उत्तेजित होकर कहा—इतने जने खड़े ताकते क्या हो! उतार लो मोटर से! जन-समूह में एक हलचल मची। एक ने दूसरे की ओर कैदियों की तरह देखा, कोई बोला नहीं।

मुन्नी ने फिर ललकारा—खड़े ताकते क्या हो, तुम लोगों में कुछ दया है या नहीं! जब पुलिस और फौज इलाके को खून से रंग दे, तभी ।

अमर ने मोटर से निकलकर कहा—मुन्नी, तुम बुद्धिमती होकर ऐसी बातें कर रही हो! मेरे मुंह पर कालिख मत लगाओ।

मुन्नी उन्मत्तों की भांति बोली—मैं बुद्धिमान् नहीं, मैं तो मूरख हूं, गंवारिन हूं। आदमी एक-एक पत्ती के लिए सिर कटा देता है, एक-एक बात पर जान देता है। क्या हम लोग खड़े ताकते रहें और तुम्हें कोई पकड़ ले जाए? तुमने कोई चोरी की है, डाका मारा है?

कई आदमी उत्तेजित होकर मोटर की ओर बढ़े, पर अमरकान्त की डांट सुनकर ठिठक गए—क्या करते हो! पीछे हट जाओ। अगर मेरे इतने दिनों की सेवा और शिक्षा का यही फल है, तो मैं कहूंगा कि मेरा सारा परिश्रम धूल में मिल गया। यह हमारा धर्म-युद्ध है और हमारी जीत हमारे त्याग, हमारे बलिदान और हमारे सत्य पर है। जादू का-सा असर हुआ। लोग रास्ते से हट गए। अमर मोटर में बैठ गया और मोटर चली।

मुन्नी ने आंखों में क्षोभ और क्रोध के आंसू भर अमरकान्त को प्रणाम किया। मोटर के साथ जैसे उसका हृदय भी उड़ा जाता हो।

# पाचवा खंड

## एक

लखनऊ का सेंट्रल जेल शहर से बाहर खुली हुई जगह में है। सुखदा उसी जेल के जनाने वार्ड में एक वृक्ष के नीचे खड़ी बादलों की घुड़दौड देख रही है। बरसात बीत गई है। आकाश में बड़ी धूम से घेर-घार होता है; पर छींटे पड़कर रह जाते हैं। दानी के दिल में अब भी दया है; पर हाथ खाली है। जो कुछ था, लुटा चुका।

जब कोई अंदर आता है और सदर द्वार खुलता है, तो सुखदा द्वार के सामने आकर खड़ी हो जाती है। द्वार एक ही क्षण में बंद हो जाता है, पर बाहर के संसार की उसी एक झलक के लिए वह कई-कई घंटे उस वृक्ष के नीचे खड़ी रहती है, जो द्वार के सामने है। उस मील-भर की चार-दीवारी के अंदर जैसे दम घुटता है। उसे यहां आए अभी पूरे दो महीने भी नहीं हुए, पर ऐसा जान पड़ता है, दुनिया में न जाने क्या-क्या परिवर्तन हो गए। पथिकों को राह चलते देखने में भी अब एक विचित्र आनंद था। बाहर का संसार कभी इतना मोहक न था।

वह कभी-कभी सोचती है—उसने सफाई दी होती, तो शायद बरी हो जाती, पर क्या मालूम था, चित्त की यह दशा होगी। वे भावनाएं जो कभी भूलकर मन में न आती थीं, अब किसी रोगी की कुपथ्य-चेष्टाओं की भांति मन को उद्विग्न करती रहती थीं। झूला झूलने की उसे कभी इच्छा न होती थी, पर आज बार-बार जी चाहता था—रस्सी हो, तो इसी वृक्ष में झूला डालकर झूले। अहाते में ग्वालों की लड़कियां भैंसें चराती हुई आम की उबाली हुई गुठलियां तोड़-तोड़कर खा रही हैं। सुखदा ने एक बार बचपन में एक गुठली चखी थी। उस वक्त वह कसैली लगी थी। फिर उस अनुभव को उसने नहीं दुहराया पर इस समय उन गुठलियों पर उसका मन ललचा रहा है। उनकी कठोरता, उनका सोंधापन उनकी सुगंध उसे कभी इतनी प्रिय न लगी थी। उसका चित्त कुछ अधिक कोमल हो गया है, जैसे पाल में पड़कर कोई फल अधिक रसीला, स्वादिष्ट, मधुर, मुलायम हो गया हो। मुन्ने को वह एक क्षण के लिए भी आंखों से ओझल न होने देती। वही उसके जीवन का आधार था। दिन में कई बार उसके लिए दूध, हलवा आदि पकाती। उसके साथ दौड़ती, खेलती, यहां तक कि जब वह बुआ या दादा के लिए रोता, तो खुद रोने लगती थी। अब उसे बार-बार अमर की याद आती है। उसकी गिरफ्तारी और सजा का सामाचार पाकर उन्होंने जो खत लिखा होगा, उसे पढ़ने के लिए उसका मन तड़प-तड़प कर रह जाता है।

लेडी मेट्रन ने आकर कहा—सुखदादेवी, तुम्हारे ससुर तुमसे मिलने आए हैं। तैयार हो जाओ। साहब ने बीस मिनट का समय दिया है।

सुखदा ने चटपट मुन्ने का मुंह धोया, नए कपड़े पहनाए, जो कई दिन पहले जेल में मिले थे, और उसे गोद में लिए मेट्रन के साथ बाहर निकली, मानो पहले ही से तैयार बैठी हो।

मुलाकात का कमरा जेल के मध्य में था और रास्ता बाहर ही से था। एक महीने के

बाद जेल से बाहर निकलकर सुखदा को ऐसा उल्लास हो रहा था, मानो कोई रोगी शय्या से उठा हो। जी चाहता था, सामने के मैदान में खूब उछले और मुन्ना तो चिड़ियों के पीछे दौड़ रहा था।

लाला समरकान्त वहां पहले ही से बैठे हुए थे। मुन्ने को देखते ही गद्‌गद हो गए और गोद में उठाकर बार-बार उसका मुंह चूमने लगे। उसके लिए मिठाई, खिलौने, फल, कपड़ा, पूरा एक गट्‌ठर लाए थे। सुखदा भी श्रद्धा और भक्ति से पुलकित हो उठी, उनके चरणों पर गिर पड़ी और रोने लगी, इसलिए नहीं कि उस पर कोई विपत्ति पड़ी है, बल्कि रोने में ही आनंद आ रहा है।

समरकान्त ने आशीर्वाद देते हुए पूछा—यहां तुम्हें जिस बात का कष्ट हो, मेट्रन साहब से कहना। मुझ पर इनकी बड़ी कृपा है। मुन्ना अब शाम को रोज बाहर खेला करेगा और किसी बात की तकलीफ तो नहीं है?

सुखदा ने देखा, समरकान्त दुबले हो गए हैं। स्नेह से उसका हृदय जैसे झलक उठा। बोली—मैं तो यहां बड़े आराम से हूं, पर आप क्यों इतने दुबले हो गए है?

"यह न पूछो, यह पूछो कि आप जीते कैसे हैं? नैना भी चली गई, अब घर भूतों का डेरा हो गया है। सुनता हूं लाला मनीराम अपने पिता से अलग होकर दूसरा विवाह करने जा रहे हैं। तुम्हारी माताजी तीर्थ-यात्रा करने चली गई। शहर में आंदोलन चलाया जा रहा है। उस जमीन पर दिन-भर जनता की भीड़ लगी रहती है। कुछ लोग रात को वहां सोते हैं। एक दिन तो रातों-रात वहां सैकड़ों झोंपड़े खड़े हो गए, लेकिन दूसरे दिन पुलिस ने उन्हें जला दिया और कई चौधरियों को पकड़ लिया।"

सुखदा ने मन-ही-मन हर्षित होकर पूछा—यह लोगों ने क्या नादानी की! वहां अब कोठियां बनने लगी होंगी?

समरकान्त बोले—हां ईंटें, चूना, सुर्खी तो जमा की गई थी, लेकिन एक दिन रातों रात सारा सामान उड़ गया। ईंटें बिखेर दी गईं, चूना मिट्टी में मिला दिया गया। तब से वहां किसी को मजूर ही नहीं मिलते। न कोई बेलदार जाता है, न कारीगर। रात को पुलिस का पहरा रहता है। वही बुढ़िया पठानिन आजकल वहां सब कुछ कर धर रही है। ऐसा संगठन कर लिया है कि आश्चर्य होता है।

जिस काम में वह असफल हुई, उसे वह खप्पट बुढ़िया सुचारू रूप से चला रही है इस विचार से उसके आत्माभिमान को चोट लगी। बोली—वह बुढ़िया तो चल-फिर भी न पाती थी।

"हां, वही बुढ़िया अच्छे-अच्छों के दांत खट्टे कर रही है। जनता को तो उसने ऐसा मुट्ठी में कर लिया है कि क्या कहूं? भीतर बैठे हुए कल घुमाने वाले शान्ति बाबू हैं।"

सुखदा ने आज तक उनसे या किसी से, अमरकान्त के विषय में कुछ न पूछा था, पर इस वक्त वह मन को न रोक सकी—हरिद्वार से कोई पत्र आया था?

लाला समरकान्त की मुद्रा कठोर हो गई। बोले—हां, आया था। उसी शोहदे सलीम का खत था। वही उस इलाके का हाकिम है। उसने भी पकड़-धकड़ शुरू कर दी है। उसने खुद लालाजी को गिरफ्तार किया। यह आपके मित्रों का हाल है। अब आंखें खुली होंगी। मेरा क्या बिगड़ा? अब ठोकरें खा रहे हैं। अब जेल में चक्की पीस रहे होंगे। गए थे गरीबों की सेवा

करने। यह उसी का उपहार है। मैं तो ऐसे मित्र को गोली मार देता। गिरफ्तार तक हुए, पर मुझे पत्र न लिखा। उसके हिसाब से तो मैं मर गया, मगर बुड्ढा अभी मरने का नाम नहीं लेता, चैन से खाता है और सोता है। किसी के मनाने मे नहीं मरा जाता। जरा यह मुठमरदी देखो कि घर में किसी को खबर तक न दी। मैं दुश्मन था, नैना तो दुश्मन न थी, शान्तिकुमार तो दुश्मन न थे। यहां से कोई जाकर मुकदमे की पैरवी करता, तो ए०, बी० का दर्जा तो मिल जाता नहीं, मामूली कैदियों की तरह पड़े हुए हैं आप रोएंगे, मेरा क्या बिगड़ता है।

सुखदा कातर कंठ से बोली—आप अब क्यों नहीं चले जाते?

समरकान्त ने नाक सिकोड़कर कहा—मैं क्यों जाऊं, अपने कर्मो का फल भोगें। वह लड़की जो थी, सकीना, उसकी शादी की बातचीत उसी दुष्ट सलीम से हो रही है, जिसने लालाजी को गिरफ्तार किया है। अब आंखें खुली होंगी।

सुखदा ने सहृदयता से भरे हुए स्वर में कहा - आप तो उन्हें कोस रहे हैं, दादा ! वास्तव में दोष उनका न था। सरासर मेरा अपराध था। उनका-सा तपस्वी पुरुष मुझ-जैसी विलासिनी के साथ कैसे प्रसन्न रह सकता था, बल्कि यों कहो कि दोष न मेरा था, न आपका, न उनका, सारा विष लक्ष्मी ने बोया। आपके घर में उनके लिए स्थान न था। आप उनसे बराबर खिंचे रहते थे। मैं भी उसी जलवायु में पली थी। उन्हें न पहचान सकी। वह अच्छा या बुरा जो कुछ करते थे, घर में उसका विरोध होता था। बात-बात पर उनका अपमान किया जाता था। ऐसी दशा में कोई भी सतुष्ट न रह सकता था। मैंने यहां एकांत में इस प्रश्न पर खूब विचार किया है और मुझे अपना दोष स्वीकार करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है। आप एक क्षण भी यहां न ठहरें। वहां जाकर अधिकारियों से मिलें, सलीम से मिलें और उनके लिए जो कुछ हो सके, करें। हमने उनकी विशाल तपस्वी आत्मा को भोग के बंधनों में बांधकर रखना चाहा था। आकाश में उड़ने वाले पक्षी को पिंजड़े में बंद करना चाहते थे। जब पक्षी पिंजड़े को तोड़कर उड़ गया, तो मैंने समझा, मैं अभागिनी हूं। आज मुझे मालूम हो रहा है, वह मेरा परम सौभाग्य था।

समरकान्त एक क्षण तक चकित नेत्रों से सुखदा की ओर ताकते रहे, मानो अपने कानों पर विश्वास न आ रहा हो। इस शीतल क्षमा ने जैसे उनके मुरझाए हुए पुत्र-स्नेह को हरा कर दिया। बोले—इसकी तो मैंने खूब जांच की, बात कुछ नहीं थी। उस पर क्रोध था, उसी क्रोध में जो कुछ मुंह में आ गया, बक गया। यह ऐब उसमें कभी न था, लेकिन उस वक्त मैं भी अंधा हो रहा था। फिर मैं कहता हूं, मिथ्या नहीं, सत्य ही सही, सोलहों आने सत्य सही, तो क्या संसार में जितने ऐसे मनुष्य हैं, उनकी गरदन काट दी जाती है? मैं बड़े-बड़े व्यभिचारियों के सामने मस्तक नवाता हूं। तो फिर अपने ही घर में और उन्हीं के ऊपर जिनसे किसी प्रतिकार की शंका नहीं, धर्म और सदाचार का सारा भार लाद दिया जाय? मनुष्य पर जब प्रेम का बंधन नहीं होता तभी वह व्यभिचार करने लगता है। भिक्षुक द्वार-द्वार इसीलिए जाता है कि एक द्वार से उसकी क्षुधा- तृप्ति नहीं होती। अगर इसे दोष भी मान लूं, तो ईश्वर ने क्यों निर्दोष संसार नहीं बनाया? जो कहो कि ईश्वर की इच्छा ऐसी नहीं है, तो मैं पूछूंगा, जब सब ईश्वर के अधीन है, तो वह मन को ऐसा क्यों बना देता है कि उसे किसी टूटी झोंपड़ी की भांति बहुत-सी थूनियों से संभलना पड़े। यहां तो ऐसा ही है, जैसे किसी रोगी से कहा जाय कि तू अच्छा हो जा। अगर रोगी में सामर्थ्य होती, तो वह बीमार ही क्यों पड़ता?

एक ही सांस में अपने हृदय का सारा मालिन्य उंडेल देने के बाद लालाजी दम लेने के लिए रुक गए। जो कुछ इधर-उधर लगा-चिपटा रह गया हो, शायद उसे भी खुरचकर निकाल देने का प्रयत्न कर रहे थे।

सुखदा ने पूछा—तो आप वहां कब जा रहे हैं?

लालाजी ने तत्परता से कहा—आज ही, इधर ही से चला जाऊंगा। सुना है, वहां जोरों से दमन हो रहा है। अब तो वहां का हाल समाचार-पत्रों में भी छपने लगा। कई दिन हुए, मुन्नी नाम की कोई स्त्री भी कई आदमियों के साथ गिरफ्तार हुई है। कुछ इसी तरह की हलचल सारे प्रांत, बल्कि सारे देश में मची हुई है। सभी जगह पकड़-धकड़ हो रही है।

बालक कमरे के बाहर निकल गया था। लालाजी ने उसे पुकारा, तो वह सड़क की ओर भागा। समरकान्त भी उसके पीछे दौड़े। बालक ने समझा, खेल हो रहा है। और तेज दौड़ा। ढाई-तीन साल के बालक की तेजी ही क्या, किंतु समरकान्त जैसे स्थूल आदमी के लिए पूरी कसरत थी। बड़ी मुश्किल से उसे पकड़ा।

एक मिनट के बाद कुछ इस भाव से बोले, जैसे कोई सारगार्भित कथन हो—मैं तो सोचता हूं, जो लोग जाति-हित के लिए अपनी जान होम करने को हरदम तैयार रहते हैं, उनकी बुराइयों पर निगाह ही न डालनी चाहिए।

सुखदा ने विरोध किया—यह न कहिए, दादा ! ऐसे मनुष्यों का चरित्र आदर्श होना चाहिए, नहीं तो उनके परोपकार में भी स्वार्थ और वासना की गंध आने लगेगी।

समरकान्त ने तत्त्वज्ञान की बात कही—स्वार्थ मैं उसी को कहता हूं, जिसके मिलने से चित्त को हर्ष और न मिलने से क्षोभ हो। ऐसा प्राणी, जिसे हर्ष और क्षोभ हो ही नहीं, मनुष्य नहीं, देवता भी नहीं, जड़ है।

सुखदा मुस्कराई—तो संसार में कोई निस्वार्थ हो ही नहीं सकता?

''असंभव ! स्वार्थ छोटा हो, तो स्वार्थ है, बड़ा हो, तो उपकार है। मेरा तो विचार है, ईश्वर-भक्ति भी स्वार्थ है।''

मुलाकात का समय कब का गुजर चुका था। मेट्रन अब और रिआयत न कर सकती थी। समरकान्त ने बालक को प्यार किया, बहू को आशीर्वाद दिया और बाहर निकले।

बहुत दिनों के बाद आज उन्हें अपने भीतर आनंद और प्रकाश का अनुभव हुआ, मानो चन्द्रदेव के मुख से मेघों का आवरण हट गया हो।

## दो

सुखदा अपने कमरे में पहुंची, तो देखा—एक युवती कैदियों के कपड़े पहने उसके कमरे की सफाई कर रही है। एक चौकीदारिन बीच-बीच में उसे डांटती जाती है।

चौकीदारिन ने कैदिन की पीठ पर लात मारकर कहा—रांड, तुझे झाड़ू लगाना भी नहीं आता ! गर्द क्यों उड़ाती है? हाथ दबाकर लगा।

कैदिन ने झाड़ू फेंक दी और तमतमाते हुए मुख से बोली—मैं यहां किसी की टहल करने नहीं आई हूं।

''तब क्या रानी बनकर आई है?''

"हां, रानी बनकर आई हूं। किसी की चाकरी करना मेरा काम नहीं है।"

"तू झाड़ू लगाएगी कि नहीं?"

"भलमनसी से कहो, तो मैं तुम्हारे भंगी के घर में भी झाड़ू लगा दूंगी; लेकिन मार का भय दिखाकर तुम मुझसे राजा के घर में भी झाड़ू नहीं लगवा सकतीं। इतना समझ रखो।"

"तू न लगाएगी झाड़ू?"

"नहीं !"

चौकीदारिन ने कैदिन के केश पकड़ लिए और खींचती हुई कमरे के बाहर ले चली। रह-रहकर गालों पर तमाचे भी लगाती जाती थी।

"चल जेलर साहब के पास।"

"हां, ले चलो। मैं यही उनसे भी कहूंगी। मार-गाली खाने नहीं आई हूं।"

सुखदा के लगातार लिखा-पढ़ी करने पर यह टहलनी दी गई थी, पर यह कांड देखकर सुखदा का मन क्षुब्ध हो उठा। इस कमरे में कदम रखना भी उसे बुरा लग रहा था।

कैदिन ने उसकी ओर सजल आंखों से देखकर कहा—तुम गवाह रहना। इस चौकीदारिन ने मुझे कितना मारा है।

सुखदा ने समीप जाकर चौकीदारिन को हटाया और कैदिन का हाथ पकड़कर कमरे में ले गई।

चौकीदारिन ने धमकाकर कहा—रोज सबेरे यहां आ जाया कर। जो काम यह कहें, वह किया कर। नहीं डंडे पड़ेंगे।

कैदिन क्रोध से कांप रही थी—मैं किसी की लौंडी नहीं हूं और न यह काम करूंगी। किसी रानी-महारानी की टहल करने नहीं आई। जेल में सब बराबर हैं।

सुखदा ने देखा, युवती में आत्म-सम्मान की कमी नहीं। लज्जित होकर बोली—यहां कोई रानी-महारानी नहीं है बहन, मेरा जी अकेले घबराया करता था, इसलिए तुम्हें बुला लिया। हम दोनों यहां बहनों की तरह रहेंगी। क्या नाम है तुम्हारा?

युवती की कठोर मुद्रा नर्म पड़ गई। बोली—मेरा नाम मुन्नी है। हरिद्वार से आई हूं।

सुखदा चौंक पड़ी। लाला समरकान्त ने यही नाम तो लिया था। पूछा—वहां किस अपराध में सजा हुई?

"अपराध क्या था? सरकार जमीन का लगान नहीं कम करती थी। चार आने की छूट हुई। जिंस का दाम आधा भी नहीं उतरा। हम किसके घर से ला के देते? इस बात पर हमने फरियाद की। बस, सरकार ने सजा देना शुरू कर दिया।"

मुन्नी को सुखदा अदालत में कई बार देख चुकी थी। तब से उसकी सूरत बहुत कुछ बदल गई थी। पूछा—तुम बाबू अमरकान्त को जानती हो? वह भी इसी मुआमले में गिरफ्तार हुए हैं?

मुन्नी प्रसन्न हो गई—जानती क्यों नहीं, वह तो मेरे ही घर में रहते थे। तुम उन्हें कैसे जानती हो? वही तो हमारे अगुआ हैं।

सुखदा ने कहा—मैं भी काशी की रहने वाली हूं। उसी मुहल्ले में उनका भी घर है। तुम क्या ब्राह्मणी हो?

"हूं तो ठकुरानी, पर अब कुछ नहीं हूं। जात-पांत, पूत-भतार सबको खो बैठी।"

"अमर बाबू कभी अपने घर की बातचीत नहीं करते थे?"

"कभी नहीं। न कभी आना न जाना, न चिट्ठी, न पत्तर।"

सुखदा ने कनखियों से देखकर कहा—मगर वह तो बड़े रसिक आदमी हैं। वहां गांव में किसी पर डोरे नहीं डाले?

मुन्नी ने जीभ दांतों तले दबाई—कभी नहीं बहूजी, कभी नहीं। मैंने तो उन्हें कभी किसी मेहरिया की ओर ताकते या हंसते नहीं देखा। न जाने किस बात पर घरवाली से रूठ गए। तुम तो जानती होगी?

सुखदा ने मुस्कराते हुए कहा—रूठ क्या गए, स्त्री को छोड़ दिया। छिपकर घर से भाग गए। बेचारी औरत घर में बैठी हुई है। तुमको मालूम न होगा उन्होंने जरूर कहीं-न-कहीं दिल लगाया होगा।

मुन्नी ने दाहिने हाथ को सांप के फन की भांति हिलाते हुए कहा—ऐसी बात होती, तो गांव में छिपी न रहती, बहूजी! मैं तो रोज ही दो-चार बार उनके पास जाती थी। कभी सिर ऊपर न उठाते थे। फिर उस देहात में ऐसी थी ही कौन, जिस पर उनका मन चलता। न कोई पढ़ी-लिखी, न गुन, न सहूर।

सुखदा ने नब्ज टटोली—मर्द गुन-सहूर, पढ़ना लिखना नहीं देखते। वह तो रूप-रंग देखते हैं और वह तुम्हें भगवान् ने दिया ही है। जवान भी हो।

मुन्नी ने मुंह फेरकर कहा—तुम तो गाली देती हो, बहूजी! मेरी ओर भला वह क्या देखते, जो उनके पांव की जूतियों के बराबर नहीं, लेकिन तुम कौन हो बहूजी, तुम यहां कैसे आई?

"जैसे तुम आई वैसे ही मैं भी आई।"

"तो यहां भी वही हलचल है?"

"हां, कुछ उसी तरह की है।"

मुन्नी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऐसी विदुषी देवियां भी जेल में भेजी गई हैं। भला इन्हें किस बात का दु:ख होगा?

उसने डरते-डरते पूछा—तुम्हारे स्वामी भी सजा पा गए होंगे?

"हां, तभी तो मैं आई।"

मुन्नी ने छत की ओर देखकर आशीर्वाद दिया—भगवान् तुम्हारा मनोरथ पूरा करें बहूजी! गद्दी-मसनद लगाने वाली रानियां जब तपस्या करने लगीं, तो भगवान् वरदान भी जल्दी ही देंगे। कितने दिन की सजा हुई है? मुझे तो छ: महीने की है।

सुखदा ने अपनी सजा की मियाद बताकर कहा—तुम्हारे जिले में बड़ी सख्तियां हो रही होंगी। तुम्हारा क्या विचार है, लोग सख्ती से दब जाएंगे?

मुन्नी ने मानो क्षमा-याचना की—मेरे सामने तो लोग यही कहते थे कि चाहे फांसी पर चढ़ जाएं, पर आधे से बेसी लगान न देंगे, लेकिन दिल से सोचो, जब बैल बधिए छीने जाने लगेंगे, सिपाही घरों में घुसेंगे, मरदों पर डंडे और गोलियों की मार पड़ेगी, तो आदमी कहां तक सहेगा? मुझे पकड़ने के लिए तो पूरी फौज गई थी। पचास आदमियों से कम न होंगे। गोली चलते-चलते बची। हजारों आदमी जमा हो गए। कितना समझाती थी—भाइयो, अपने-अपने घर जाओ, मुझे जाने दो, लेकिन कौन सुनता है? आखिर जब मैंने कसम दिलाई, तो

लोग लौटे; नहीं, उसी दिन दस-पांच की जान जाती। न जाने भगवान् कहां सोए हैं कि इतना अन्याय देखते हैं और नहीं बोलते। साल में छः महीने एक जून खाकर बेचारे दिन काटते हैं, चीथड़े पहनते हैं, लेकिन सरकार को देखो, तो उन्हीं की गरदन पर सवार ! हाकिमों को तो अपने लिए बंगला चाहिए, मोटर चाहिए, हर नियामत खाने को चाहिए, सैर-तमाशा चाहिए, पर गरीबों का इतना सुख भी नहीं देखा जाता ! जिसे देखो, गरीबों ही का रक्त चूसने को तैयार है। हम जमा करने को नहीं मांगते, न हमें भोग-विलास की इच्छा है, लेकिन पेट को रोटी और तन ढांकने को कपड़ा तो चाहिए। साल-भर खाने-पहनने को छोड़ दो, गृहस्थी का जो कुछ खरच पड़े वह दे दो। बाकी जितना बचे, उठा ले जाओ। मुदा गरीबों की कौन सुनता है?

सुखदा ने देखा, इस गंवारिन के हृदय में कितनी सहानुभूति, कितनी दया, कितनी जागृति भरी हुई है। अमर के त्याग और सेवा की उसने जिन शब्दों में सराहना की, उसने जैसे सुखदा के अंतःकरण की सारी मलिनताओं को धोकर निर्मल कर दिया, जैसे उसके मन में प्रकाश आ गया हो, और उसकी सारी शंकाएं और चिंताएं अंधकार की भांति मिट गई हों। अमरकान्त का कल्पना-चित्र उसकी आंखों के सामने आ खड़ा हुआ—कैदियों का जांघिया-कंटोप पहने, बड़े-बड़े बाल बढ़ाए, मुख मलिन, कैदियों के बीच में चक्की पीसता हुआ। वह भयभीत होकर कांप उठी। उसका हृदय कभी इतना कोमल न था।

मेट्रन ने आकर कहा—अब तो आपको नौकरानी मिल गई। इससे खूब काम लो।

सुखदा धीमे स्वर में बोली—मुझे अब नौकरानी की इच्छा नहीं है मेमसाहब, मैं यहां रहना भी नहीं चाहती। आप मुझे मामूली कैदियों में भेज दीजिए।

मेट्रन छोटे कद की ऐंग्लो-इंडियन महिला थी। चौड़ा मुंह, छोटी-छोटी आंखे, तराशे हुए बाल, घुटनों के ऊपर तक का स्कर्ट पहने हुए। विस्मय से बोली—यह क्या कहती हो, सुखदादेवी? नौकरानी मिल गया और जिस चीज का तकलीफ हो हमसे कहो, हम जेलर साहब से कहेगा।

सुखदा ने नम्रता से कहा—आपकी इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूं। मैं अब किसी तरह की रियायत नहीं चाहती। मैं चाहती हूं कि मुझे मामूली कैदियों की तरह रखा जाय।

''नीच औरतों के साथ रहना पड़ेगा। खाना भी वही मिलेगा।''

''यही तो मैं चाहती हूं।''

''काम भी वही करना पड़ेगा। शायद चक्की पीसने का काम दे दें।''

''कोई हरज नहीं।''

''घर के आदमियों से तीसरे महीने मुलाकात हो सकेगी।''

''मालूम है।''

मेट्रन की लाला समरकान्त ने खूब पूजा की थी। इस शिकार के हाथ से निकल जाने का दुःख हो रहा था। कुछ देर समझाती रही। जब सुखदा ने अपनी राय न बदली, तो पछताती हुई चली गई।

मुन्नी ने पूछा—मेम साहब क्या कहती थी?

सुखदा ने मुन्नी को स्नेह-भरी आंखों से देखा—अब मैं तुम्हारे ही साथ रहूंगी, मुन्नी।

मुन्नी ने छाती पर हाथ रखकर कहा—यह क्या करती हो, बहू? वहां तुमसे न रहा जाएगा।

सुखदा ने प्रसन्न मुख से कहा—जहां तुम रह सकती हो, वहां मैं भी रह सकती हूं।

एक घंटे के बाद जब सुखदा यहां से मुन्नी के साथ चली, तो उसका मन आशा और भय से कांप रहा था, जैसे कोई बालक परीक्षा में सफल होकर अगली कक्षा में गया हो।

## तीन

पुलिस ने उस पहाड़ी इलाके का घेरा डाल रखा था। सिपाही और सवार चौबीसों घंटे घूमते रहते थे। पांच आदमियों से ज्यादा एक जगह जमा न हो सकते थे। शाम को आठ बजे के बाद कोई घर से निकल न सकता था। पुलिस को इत्तिला दिए बगैर घर में मेहमान को ठहराने की भी मनाही थी। फौजी कानून जारी कर दिया गया था। कितने ही घर जला दिए गए थे और उनके रहने वाले हबूड़ों की भांति वृक्षों के नीचे बाल-बच्चों को लिए पड़े थे। पाठशाला में आग लगा दी गई थी और उसकी आधी-आधी काली दीवारें मानो केश खोले मातम कर रही थीं। स्वामी आत्मानन्द बांस की छतरी लगाए अब भी वहां डटे हुए थे। जरा-सा मौका पाते ही इधर-उधर से दस-बीस आदमी आकर जमा हो जाते, पर सवारों को आते देखा और गायब।

सहसा लाला समरकान्त एक गट्ठर पीठ पर लादे मदरसे के सामने आकर खड़े हो गए। स्वामी ने दौड़कर उनका बिस्तर ले लिया और खाट की फिक्र में दौड़े। गांव-भर में बिजली की तरह खबर दौड़ गई—भैया के बाप आए हैं। हैं तो वृद्ध, मगर अभी टनमन हैं। सेठ-साहूकार से लगते हैं। एक क्षण में बहुत से आदमियों ने आकर घेर लिया। किसी के सिर में पट्टी बंधी थी, किसी के हाथ में। कई लंगड़ा रहे थे। शाम हो गई और आज कोई विशेष खटका न देखकर और सारे इलाके में डंडे के बल से शांति स्थापित करके पुलिस विश्राम कर रही थी। बेचारे रात-दिन दौड़ते-दौड़ते अधमरे हो गए थे।

गूदड़ ने लाठी टेकते हुए आकर समरकान्त के चरण छुए और बोले—अमर भैया का समाचार तो आपको मिला होगा। आजकल तो पुलिस का धावा है। हाकिम कहता है—बारह आने लेंगे, हम कहते हैं हमारे पास है ही नहीं, दें कहां से? बहुत-से लोग तो गांव छोड़कर भाग गए। जो हैं, उनकी दसा आप देख ही रहे हैं। मुन्नी बहू को पकड़कर जेल में डाल दिया। आप ऐसे समय में आए कि आपकी कुछ खातिर भी नहीं कर सकते।

समरकान्त मदरसे के चबूतरे पर बैठ गए और सिर पर हाथ रखकर सोचने लगे इन गरीबों की क्या सहायता करें? क्रोध की एक ज्वाला-सी उठकर रोम-रोम में व्याप्त हो गई पूछा—यहां कोई अफसर भी तो होगा?

गूदड़ ने कहा—हां, अफसर तो एक नहीं, पच्चीस हैं जी। सबसे बड़ा अफसर तो वही मियांजी हैं, जो अमर भैया के दोस्त हैं।

''तुम लोगों ने उस लफंगे से पूछा नहीं—मारपीट क्यों करते हो, क्या यह भी कानून है?''

गूदड़ ने सलोनी की मड़ैया की ओर देखकर कहा—भैया, कहते तो सब कुछ हैं, जब कोई सुने! सलीम साहब ने खुद अपने हाथों से हंटर मारे। उनकी बेदर्दी देखकर पुलिस वाले

भी दांतों तले उंगली दबाते थे। सलोनी मेरी भावज लगती है। उसने उनके मुंह पर थूक दिया था। यह उसे न करना चाहिए था। पागलपन था और क्या? मियां साहब आग हो गए और बुढ़िया को इतने हंटर जमाए कि भगवान् ही बचाए तो बचे। मुदा वह भी है अपनी धुन की पक्की, हरेक हंटर पर गाली देती थी। जब बेदम होकर गिर पड़ी, तब जाकर उसका मुंह बंद हुआ। भैया उसे काकी-काकी करते रहते थे। कहीं से आवें, सबसे पहले काकी के पास जाते थे। उठने लायक होती तो जरूर-से-जरूर आती।

आत्मानन्द ने चिढ़कर कहा—अरे तो अब रहने भी दे, क्या सब आज ही कह डालोगे? पानी मंगवाओ, आप हाथ-मुंह धोएं, जरा आराम करने दो, थके-मांदे आ रहे हैं—वह देखो, सलोनी को भी खबर मिल गई, लाठी टेकती चली आ रही है।

सलोनी ने पास आकर कहा—कहां हो देवरजी, सावन में आते तो तुम्हारे साथ झूला झूलती, चले हो कातिक में! जिसका ऐसा सरदार और ऐसा बेटा, उसे किसका डर और किसकी चिंता! तुम्हें देखकर सारा दु:ख भूल गई, देवरजी!

समरकान्त ने देखा—सलोनी की सारी देह सूज उठी है और साड़ी पर लहू के दाग सूखकर कत्थई हो गए हैं। मुंह सूजा हुआ है। इस मुरदे पर इतना क्रोध! उस पर विद्वान् बनता है! उनकी आंखों में खून उतर आया। हिंसा-भावना मन में प्रचंड हो उठी। निर्बल क्रोध और चाहे कुछ न कर सके, भगवान की खबर जरूर लेता है। तुम अंतर्यामी हो, सर्वशक्तिमान हो, दीनों के रक्षक हो और तुम्हारी आंखों के सामने यह अंधेर! इस जगत का नियंता कोई नहीं है। कोई दयामय भगवान् सृष्टि का कर्ता होता, तो यह अत्याचार न होता! अच्छे सर्वशक्तिमान हो! क्यों नरपिशाचों के हृदय में नहीं पैठ जाते, या वहां तुम्हारी पहुंच नहीं है? कहते हैं, यह सब भगवान् की लीला है। अच्छी लीला है! अगर तुम्हें इस व्यापार की खबर नहीं है, तो फिर सर्वव्यापी क्यों कहलाते हो?

समरकान्त धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। धर्म-ग्रंथों का अध्ययन किया था। भगवद्गीता का नित्य पाठ किया करते थे, पर इस समय वह सारा धर्मज्ञान उन्हें पाखंड-सा प्रतीत हुआ।

वह उसी तरह उठ खड़े हुए और पूछा--सलीम तो सदर में होगा?

आत्मानन्द ने कहा—आजकल तो यहीं पड़ाव है। डाक बंगले में ठहरे हुए हैं।

"मैं जरा उनसे मिलूंगा।"

"अभी वह क्रोध में हैं, आप मिलकर क्या कीजिएगा। आपको भी अपशब्द कह बैठेंगे।"

"यही देखने तो जाता हूं कि मनुष्य की पशुता किस सीमा तक जा सकती है।"

"तो चलिए, मैं भी आपके साथ चलता हूं।"

गूदड़ बोल उठे—नहीं-नहीं, तुम न जइयो, स्वामीजी! भैया, यह हैं तो संन्यासी और दया के अवतार, मुदा क्रोध में भी दुर्वासा मुनि से कम नहीं हैं। जब हाकिम साहब सलोनी को मार रहे थे, तब चार आदमी इन्हें पकड़े हुए थे, नहीं तो उस बखत मियां का खून चूस लेते, चाहे पीछे से फांसी हो जाती। गांव भर की मरहम-पट्टी इन्हीं के सुपुर्द है।

सलोनी ने समरकान्त का हाथ पकड़कर कहा—मैं चलूंगी तुम्हारे साथ देवरजी। उसे दिखा दूंगी कि बुढ़िया तेरी छाती पर मूंग दलने को बैठी हुई है! तू मारनहार है, तो कोई तुझसे बड़ा राखनहार भी है। जब तक उसका हुकम न होगा, तू क्या मार सकेगा!

भगवान् में उसकी यह अपार निष्ठा देखकर समरकान्त की आंखें सजल हो गईं, सोचा –मुझसे तो ये मूर्ख ही अच्छे जो इतनी पीड़ा और दुःख सहकर भी तुम्हारा ही नाम रटते हैं। बोले–नहीं भाभी, मुझे अकेले जाने दो। मैं अभी उनसे दो-दो बातें करके लौट आता हूं।

सलोनी लाठी संभाल रही थी कि समरकान्त चल पड़े। तेजा और दुरजन आगे-आगे डाक बंगले का रास्ता दिखाते हुए चले।

तेजा ने पूछा–दादा, जब अमर भैया छोटे-से थे, तो बड़े शैतान थे न?

समरकान्त ने इस प्रश्न का आशय न समझकर कहा–नहीं तो, वह तो लड़कपन ही से बड़ा सुशील था।

दुरजन ताली बजाकर बोला–अब कहो तेजू, हारे कि नहीं? दादा, हमारा-इनका यह झगड़ा है कि यह कहते हैं, जो लड़के बचपन में बड़े शैतान होते हैं, वही बड़े होकर सुशील हो जाते हैं, और मैं कहता हूं, जो लड़कपन में सुशील होते हैं, वही बड़े होकर भी सुशील रहते हैं। जो बात आदमी में है नहीं वह बीच में कहां से आ जाएगी?

तेजा ने शंका की–लड़के में तो अकल भी नहीं होती, जवान होने पर कहां से आ जाती है? अखुवे में तो खाली दो दल होते हैं, फिर उनमें डाल-पात कहां से आ जाते हैं? यह कोई बात नहीं। मैं ऐसे कितने ही नामी आदमियों के उदाहरण दे सकता हूं, जो बचपन में बड़े पाजी थे, पर आगे चलकर महात्मा हो गए।

समरकान्त को बालकों के इस तर्क में बड़ा आनंद आया। मध्यस्थ बनकर दोनों ओर कुछ सहारा देते जाते थे। रास्ते में एक जगह कीचड़ भरा हुआ था। समरकान्त के जूते कीचड़ में फंसकर पांव से निकल गए। इस पर बड़ी हंसी हुई।

सामने से पांच सवार आते दिखाई दिए। तेजा ने एक पत्थर उठाकर एक सवार पर निशाना मारा। उसकी पगड़ी जमीन पर गिर पड़ी। वह तो घोड़े से उतरकर पगड़ी उठाने लगा, बाकी चारों घोड़े दौड़ाते हुए समरकान्त के पास आ पहुंचे।

तेजा दौड़कर एक पेड़ पर चढ़ गया। दो सवार उसके पीछे दौड़े और नीचे से गालियां देने लगे। बाकी तीन सवारों ने समरकान्त को घेर लिया और एक ने हंटर निकालकर ऊपर उठाया ही था कि एकाएक चौंक पड़ा और बोला–अरे ! आप हैं सेठजी ! आप यहां कहां?

सेठजी ने सलीम को पहचानकर कहा–हां-हां, चला दो हंटर, रुक क्यों गए? अपनी कारगुजारी दिखाने का ऐसा मौका फिर कहां मिलेगा? हाकिम होकर गरीबों पर हंटर न चलाया, तो हाकिमी किस काम की?

सलीम लज्जित हो गया–आप इन लौंडों की शरारत देख रहे हैं, फिर भी मुझी को कसूरवार ठहराते हैं। उसने ऐसा पत्थर मारा कि इन दारोगाजी की पगड़ी गिर गई। खैरियत हुई कि आंख में न लगा।

समरकान्त आवेश में औचित्य को भूलकर बोले–ठीक तो है, जब उस लौंडे ने पत्थर चलाया, जो अभी नादान है, तो फिर हमारे हाकिम साहब जो विद्या के सागर हैं, क्या हंटर भी न चलाएं ? कह दो दोनों सवार पेड़ पर चढ़ जाएं, लौंडे को ढकेल दें, नीचे गिर पड़े। मर जाएगा, तो क्या हुआ, हाकिम से बेअदबी करने की सजा तो पा जाएगा।

सलीम ने सफाई दी–आप तो अभी आए हैं, आपको क्या खबर यहां के लोग कितने मुफसिद हैं? एक बुढ़िया ने मेरे मुंह पर थूक दिया, मैंने जब्त किया, वरना सारा गांव जेल

में होता।

समरकान्त यह बमगोला खाकर भी परास्त न हुए—तुम्हारे जब्त की बानगी देखे आ रहा हूं बेटा, अब मुंह न खुलवाओ। वह अगर जाहिल बेसमझ औरत थी, तो तुम्हीं ने आलिम-फाजिल होकर कौन-सी शराफत की? उसकी सारी देह लहू-लुहान हो रही है। शायद बचेगी भी नहीं। कुछ याद है कितने आदमियों के अंग-भंग हुए? सब तुम्हारे नाम की दुआएं दे रहे हैं। अगर उनसे रुपये न वसूल होते थे, तो बेदखल कर सकते थे, उनकी फसल कुर्क कर सकते थे। मार-पीट का कानून कहां से निकला?

"बेदखली से क्या नतीजा, जमीन का यहां कौन खरीददार है? आखिर सरकारी रकम कैसे वसूल की जाए?"

"तो मार डालो सारे गांव को, देखो कितने रुपये वसूल होते हैं। तुमसे मुझे ऐसी आशा न थी, मगर शायद हुकूमत में कुछ नशा होता है।"

"आपने अभी इन लोगों की बदमाशी नहीं देखी। मेरे साथ आइए, तो मैं सारी दास्तान सुनाऊं आप इस वक्त आ कहां से रहे हैं?"

समरकान्त ने अपने लखनऊ आने और सुखदा से मिलने का हाल कहा। फिर मतलब की बात छेड़ी—अमर तो यहीं होगा? सुना, तीसरे दरजे में रखा गया है।

अंधेरा ज्यादा हो गया था। कुछ ठंड भी पड़ने लगी थी। चार सवार तो गांव की तरफ चले गए, सलीम घोड़े की रास थामे हुए पांव-पांव समरकान्त के साथ डाक बंगले चला।

कुछ दूर चलने के बाद समरकान्त बोले—तुमने दोस्त के साथ खूब दोस्ती निभाई। जेल भेज दिया, अच्छा किया, मगर कम-से-कम उसे कोई अच्छा दरजा तो दिला देते। मगर हाकिम ठहरे, अपने दोस्त की सिफारिश कैसे करते?

सलीम ने व्यथित कंठ से कहा—आप तो लालाजी, मुझी पर सारा गुस्सा उतार रहे हैं। मैंने तो दूसरा दरजा दिला दिया था, मगर अमर खुद मामूली कैदियों के साथ रहने पर जिद करने लगे, तो मैं क्या करता? मेरी बदनसीबी है कि यहां आते ही मुझे वह सब कुछ करना पड़ा, जिससे मुझे नफरत थी।

डाक बंगले पहुंचकर सेठजी एक आरामकुरसी पर लेट गए और बोले—तो मेरा यहां आना व्यर्थ हुआ। जब वह अपनी खुशी से तीसरे दरजे में है, तो लाचारी है। मुलाकात हो जाएगी?

सलीम ने उत्तर दिया—मैं आपके साथ चलूंगा। मुलाकात की तारीख तो अभी नहीं आई है, मगर जेल वाले शायद मान जाएं। हां, अंदेशा अमर की तरफ से है। वह किसी किस्म की रिआयत नहीं चाहते।

उसने जरा मुस्कराकर कहा—अब तो आप भी इन कामों में शरीक होने लगे?

सेठजी ने नम्रता से कहा—अब मैं इस उम्र में क्या काम करूंगा। बूढ़े दिल में जवानी का जोश कहां से आए? बहू जेल में है, लड़का जेल में है, शायद लड़की भी जेल की तैयारी कर रही है और मैं चैन से खाता-पीता हूं। आराम से सोता हूं। मेरी औलाद मेरे पापों का प्रायश्चित कर रही है, मैंने गरीबों का कितना खून चूसा है, कितने घर तबाह किए हैं। उसकी याद करके खुद शर्मिंदा हो जाता हूं। अगर जवानी में समझ आ गई होती, तो कुछ अपना सुधार करता। अब क्या करूंगा? बाप संतान का गुरु होता है। उसी के पीछे लड़के चलते हैं। मुझे

अपने लड़कों के पीछे चलना पड़ा। मैं धर्म की असलियत को न समझकर धर्म के स्वांग को धर्म समझे हुए था। यही मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी भूल थी। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि दुनिया का कैंडा ही बिगड़ा हुआ है। जब तक हमें जायदाद पैदा करने की धुन रहेगी, हम धर्म से कोसों दूर रहेंगे। ईश्वर ने संसार को क्यों इस ढंग पर लगाया, यह मेरी समझ में नहीं आता। दुनिया को जायदाद के मोह-बंधन से छुड़ाना पड़ेगा, तभी आदमी आदमी होगा, तभी दुनिया से पाप का नाश होगा।

सलीम ऐसी ऊंची बातों में न पड़ना चाहता था। उसने सोचा—जब मैं भी इनकी तरह जिंदगी के सुख भोग लूंगा तो मरते-समय फिलासफर बन जाऊंगा। दोनों कई मिनट तक चुपचाप बैठे रहे। फिर लालाजी स्नेह से भरे स्वर में बोले—नौकर हो जाने पर आदमी को मालिक का हुक्म मानना ही पड़ता है। इसकी मैं बुराई नहीं करता। हां, एक बात कहूंगा। जिन पर तुमने जुल्म किया है, चलकर उनके आंसू पोंछ दो। यह गरीब आदमी थोड़ी-सी भलमनसी से काबू में आ जाते हैं। सरकार की नीति तो तुम नहीं बदल सकते, लेकिन इतना तो कर सकते हो कि किसी पर बेजा सख्ती न करो।

सलीम ने शरमाते हुए कहा—लोगों की गुस्ताखी पर गुस्सा आ जाता है, वरना मैं तो खुद नहीं चाहता कि किसी पर सख्ती करूं। फिर सिर पर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। लगान न वसूल हुआ, तो मैं कितना नालायक समझा जाऊंगा?

समरकान्त ने तेज होकर कहा—तो बेटा, लगान तो न वसूल होगा, हां आदमियों के खून से हाथ रंग सकते हो।

''यही तो देखना है।''

''देख लेना। मैंने भी इसी दुनिया में बाल सफेद किए हैं। हमारे किसान अफसरों की सूरत से कांपते थे, लेकिन जमाना बदल रहा है। अब उन्हें भी मान-अपमान का खयाल होता है। तुम मुफ्त में बदनामी उठा रहे हो।''

''अपना फर्ज अदा करना बदनामी है, तो मुझे उसकी परवाह नहीं।''

समरकान्त ने अफसरी के इस अभिमान पर हंसकर कहा—फर्ज में थोड़ी-सी मिठास मिला देने से किसी का कुछ नहीं बिगड़ता, हां, बन बहुत कुछ जाता है, यह बेचारे किसान ऐसे गरीब हैं कि थोड़ी-सी हमदर्दी करके उन्हें अपना गुलाम बना सकते हो। हुकूमत वह बहुत झेल चुके। अब भलमनसी का बरताव चाहते हैं। जिस औरत को तुमने हंटरों से मारा, उसे एक बार माता कहकर उसकी गरदन काट सकते थे। यह मत समझो कि तुम उन पर हुकूमत करने आए हो। यह समझो कि उनकी सेवा करने आए हो। मान लिया, तुम्हें तलब सरकार से मिलती है, लेकिन आती तो है इन्हीं की गांठ से। कोई मूर्ख हो तो उसे समझाऊं। तुम भगवान की कृपा से आप ही विद्वान् हो। तुम्हें क्या समझाऊं? तुम पुलिस वालों की बातों में आ गए। यही बात है न?

सलीम भला यह कैसे स्वीकार करता?

लेकिन समरकान्त अड़े रहे—मैं इसे नहीं मान सकता। तुम तो किसी से नजर नहीं लेना चाहते, लेकिन जिन लोगों की रोटियां नोच-खसोट पर चलती हैं; उन्होंने जरूर तुम्हें भरा होगा। तुम्हारा चेहरा कहे देता है कि तुम्हें गरीबों पर जुल्म करने का अफसोस है। मैं यह तो नहीं चाहता कि आठ आने से एक पाई भी ज्यादा वसूल करो, लेकिन दिलजोई के साथ तुम बेशी

भी वसूल कर सकते हो। जो भूखों मरते हैं, चिथड़े पहनकर और पुआल में सोकर दिन काटते हैं उनसे एक पैसा भी दबाकर लेना अन्याय है। जब हम और तुम दो-चार घंटे आराम से काम करके आराम से रहना चाहते हैं, जायदादें बनाना चाहते हैं, शौक की चीजें जमा करते हैं, तो क्या यह अन्याय नहीं है कि जो लोग स्त्री-बच्चों समेत अठारह घंटे रोज काम करें, वह रोटी-कपड़े को तरसें? बेचारे गरीब हैं, बेजबान हैं, अपने को संगठित नहीं कर सकते, इसलिए सभी छोटे-बड़े उन पर रोब जमाते हैं। मगर तुम जैसे सहृदय और विद्वान् लोग भी वही करने लगें, जो मामूली अमले करते हैं, तो अफसोस होता है। अपने साथ किसी को मत लो, मेरे साथ चलो। मैं जिम्मा लेता हूं कि कोई तुमसे गुस्ताखी न करेगा। उनके जख्म पर मरहम रख दो, मैं इतना ही चाहता हूं। जब तक जिएंगे, तुम्हें याद करेंगे। सद्भाव में सम्मोहन का सा असर होता है।

सलीम का हृदय अभी इतना काला न हुआ था कि उस पर कोई रंग ही न चढ़ता। सकुचाता हुआ बोला—मेरी तरफ से आप ही को कहना पड़ेगा।

"हां हां, यह सब मैं कह दूंगा, लेकिन ऐसा न हो, मैं उधर चलूं इधर तुम हंटरबाजी शुरू करो।"

"अब ज्यादा शर्मिंदा न कीजिए।"

"तुम यह तजवीज क्यों नहीं करते कि असामियों की हालत की जांच की जाय। आंखें बंद करके हुक्म मानना तुम्हारा काम नहीं। पहले अपना इत्मीनान तो कर लो कि तुम बेइंसाफी तो नहीं कर रहे हो? तुम खुद ऐसी रिपोर्ट क्यों नहीं लिखते? मुमकिन है हुक्काम इसे पसंद न करें, लेकिन हक के लिए कुछ नुकसान उठाना पड़े, तो क्या चिंता?"

सलीम को यह बातें न्याय संगत जान पड़ीं। खूंटे की पतली नोक जमीन के अंदर पहुंच चुकी थी। बोला—इस बुजुर्गाना सलाह के लिए आपका एहसानमंद हूं और उस पर अमल करने की कोशिश करूंगा।

भोजन का समय आ गया था। सलीम ने पूछा—आपके लिए क्या खाना बनवाऊं?

"जो चाहे बनवाओ, पर इतना याद रखो कि मैं हिन्दू हूं और पुराने जमाने का आदमी हूं। अभी तक छूत-छात को मानता हूं।"

"आप छूत-छात को अच्छा समझते हैं?"

"अच्छा तो नहीं समझता, पर मानता हूं।"

"तब मानते ही क्यों हैं?"

"इसलिए कि संस्कारों को मिटाना मुश्किल है। अगर जरूरत पड़े, तो मैं तुम्हारा मल उठाकर फेंक दूंगा, लेकिन तुम्हारी थाली में मुझसे न खाया जाएगा।"

"मैं तो आज आपको अपने साथ बैठाकर खिलाऊंगा।"

"तुम प्याज, मांस, अंडे खाते हो। मुझसे तो उन बरतनों में खाया ही न जाएगा।"

"आप यह सब कुछ न खाइएगा, मगर मेरे साथ बैठना पड़ेगा। मैं रोज साबुन लगाकर नहाता हूं।"

"बरतनों को खूब साफ करा लेना।"

"आपका खाना हिन्दू बनाएगा, साहब! बस, एक मेज पर बैठकर खा लेना।"

"अच्छा खा लूंगा, भाई! मैं दूध और घी खूब खाता हूं।"

सेठजी तो संध्योपासन करने बैठे, फिर पाठ करने लगे। इधर सलीम के साथ के एक हिन्दू कांस्टेबल ने पूरी, कचौरी, हलवा, खीर पकाई। दही पहले ही से रखा हुआ था। सलीम खुद आज यही भोजन करेगा। सेठजी संध्या करके लौटे, तो देखा दो कंबल बिछे हुए हैं और थालियां रखी हुई हैं।

सेठजी ने खुश होकर कहा–यह तुमने बहुत अच्छा इन्तजाम किया।

सलीम ने हंसकर कहा–मैंने सोचा, आपका धर्म क्यों लूं, नहीं एक ही कंबल रखता।

''अगर यह खयाल है, तो तुम मेरे कंबल पर आ जाओ। नहीं, मैं ही आता हूं।''

वह थाली उठाकर सलीम के कंबल पर आ बैठे। अपने विचार में आज उन्होंने अपने जीवन का सबसे महान् त्याग किया। सारी संपत्ति दान देकर भी उनका हृदय इतना गौरवान्वित न होता।

सलीम ने चुटकी ली–अब तो आप मुसलमान हो गए।

सेठजी बोले–मैं मुसलमान नहीं हुआ। तुम हिन्दू हो गए।

## चार

प्रात:काल समरकान्त और सलीम डाकबंगले से गांव की ओर चले। पहाड़ियों से नीली भाप उठ रही थी और प्रकाश का हृदय जैसे किसी अव्यक्त वेदना से भारी हो रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। पृथ्वी किसी रोगी की भांति कोहरे के नीचे पड़ी सिहर रही थी। कुछ लोग बंदरों की भांति छप्परों पर बैठे उसकी मरम्मत कर रहे थे और कहीं-कहीं स्त्रियां गोबर पाथ रही थीं। दोनों आदमी पहले सलोनी के घर गए।

सलोनी को ज्वर चढ़ा हुआ था और सारी देह फोड़े की भांति दुख रही थी मगर उसे गाने की धुन सवार थी–

**सन्तो देखत जग बौराना।**
**सांच कहो तो मारन धावे, झूठ जगत पतिआना, सन्तो देखत....**

मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है; जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता; जब वह रुदन और क्रंदन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती, तो वह संगीत के चरणों पर जा गिरती है।

समरकान्त ने पुकारा–भाभी, जरा बाहर तो आओ।

सलोनी चटपट उठकर पके बालों को घूंघट से छिपाती, नवयौवना की भांति लजाती आकर खड़ी हो गई और पूछा–तुम कहां चले गए थे, देवरजी?

सहसा सलीम को देखकर वह एक पग पीछे हट गई और जैसे गाली दी–यह तो हाकिम है।

फिर सिंहनी की भांति झपटकर उसने सलीम को ऐसा धक्का दिया कि वह गिरते-गिरते बचा, और जब तक समरकान्त उसे हटाएं-हटाएं, सलीम की गरदन पकड़कर इस तरह दबाई, मानो घोंट देगी।

सेठजी ने उसे बल-पूर्वक हटाकर कहा–पगला गई है क्या, भाभी? अलग हट जा, सुनती नहीं?

सलोनी ने फटी-फटी प्रज्वलित आंखों से सलीम को घूरते हुए कहा–मार तो दिखा

दूं, आज मेरा सरदार आ गया है। सिर कुचलकर रख देगा।

समरकान्त ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा–सरदार के मुंह में कालिख लगा रही हो और क्या? बूढ़ी हो गई, मरने के दिन आ गए और अभी लड़कपन नहीं गया। यही तुम्हारा धर्म है कि कोई हाकिम द्वार पर आए तो उसका अपमान करो।

सलोनी ने मन में कहा–यह लाला भी ठकुरसुहाती करते हैं। लड़का पकड़ गया है न, इसी से। फिर दुराग्रह से बोली–पूछो इसने सबको पीटा नहीं था?

सेठजी बिगड़कर बोले–तुम हाकिम होतीं और गांव वाले तुम्हें देखते ही लाठियां ले-लेकर निकल आते, तो तुम क्या करतीं? जब प्रजा लड़ने पर तैयार हो जाय, तो हाकिम क्या पूजा करे। अमर होता तो वह लाठी लेकर न दौड़ता? गांव वालों को लाजिम था कि हाकिम के पास आकर अपना-अपना हाल कहते, अरज विनती करते, अदब से, नम्रता से। यह नहीं कि हाकिम को देखा और मारने दौड़े, मानो वह तुम्हारा दुश्मन है। मैं इन्हें समझा-बुझाकर लाया था कि मेल करा दूं, दिलों की सफाई हो जाय, और तुम उनसे लड़ने पर तैयार हो गई।

यहां की हलचल सुनकर गांव के और कई आदमी जमा हो गए, पर किसी ने सलीम को सलाम नहीं किया। सबकी त्योरियां चढ़ी हुई थीं।

समरकान्त ने उन्हें संबोधित किया–तुम्हीं लोग सोचो। यह साहब तुम्हारे हाकिम हैं। जब रियाया हाकिम के साथ गुस्ताखी करती है, तो हाकिम को भी क्रोध आ जाय तो कोई ताज्जुब नहीं। यह बेचारे तो अपने को हाकिम समझते ही नहीं। लेकिन इज्जत तो सभी चाहते हैं, हाकिम हों या न हों। कोई आदमी अपनी बेइज्जती नहीं देख सकता। बोलो गूदड़, कुछ गलत कहता हूं?

गूदड़ ने सिर झुकाकर कहा–नहीं मालिक, सच ही कहते हो। मुदा वह तो बावली है। उसकी किसी बात का बुरा न मानो। सबके मुंह में कालिख लगा रही है और क्या।

"यह हमारे लड़के के बराबर हैं। अमर के साथ पढ़े, उन्हीं के साथ खेले। तुमने अपनी आंखों देखा कि अमर को गिरफ्तार करने यह अकेले आए थे। क्या सरकार ! क्या पुलिस को भेजकर न पकड़वा सकते थे? सिपाही हुक्म पाते ही आते और धक्के देकर बांध ले जाते। इनकी शराफत थी कि खुद आए और किसी पुलिस को साथ न लाए। अमर ने भी यही किया, जो उसका धर्म था। अकेले आदमी को बेइज्जत करना चाहते, तो क्या मुश्किल था? अब तक जो कुछ हुआ, उसका इन्हें रंज है, हालांकि कसूर तुम लोगों का भी था? अब तुम भी पिछली बातों को भूल जाओ। इनकी तरफ से अब किसी तरह की सख्ती न होगी। इन्हें तुम्हारी जायदाद नीलाम करने का हुक्म मिलेगा, नीलाम करेंगे, गिरफ्तार करने का हुक्म मिलेगा, गिरफ्तार करेंगे, तुम्हें बुरा न लगना चाहिए। तुम धर्म की लड़ाई लड़ रहे हो। लड़ाई नहीं, यह तपस्या है। तपस्या में क्रोध और द्वेष आ जाता है, तो तपस्या भंग हो जाती है।"

स्वामीजी बोले–धर्म की रक्षा एक ओर से नहीं होती। सरकार नीति बनाती है। उसे नीति की रक्षा करनी चाहिए। जब उसके कर्मचारी नीति को पैरों से कुचलते हैं, तो फिर जनता कैसे नीति की रक्षा कर सकती है?

समरकान्त ने फटकार बताई–आप संन्यासी होकर ऐसा कहते हैं, स्वामीजी। आपको अपनी नीतिपरकता से अपने शासकों को नीति पर लाना है। यदि वह नीति पर ही होते, तो आपको यह तपस्या क्यों करनी पड़ती? आप अनीति पर अनीति से नहीं, नीति से विजय

पा सकते हैं।

स्वामीजी का मुह जरा-सा निकल आया। जबान बंद हो गई।

सलोनी का पीड़ित हृदय पक्षी के समान पिंजरे से निकलकर भी कोई आश्रय खोज रहा था। सज्जनता और सत्प्रेरणा से भरा हुआ यह तिरस्कार उसके सामने जैसे दाने बिखेरने लगा। पक्षी ने दो-चार बार गरदन झुकाकर दानों को सतर्क नेत्रों से देखा, फिर अपने रक्षक को 'आ आ' करते सुना और पैर फैलाकर दानों पर उतर आया।

सलोनी आखो मे आसू भरे दोनो हाथ जोडे, सलीम के सामने आकर बोली -सरकार मुझसे बडी खता हो गई। माफी दीजिए। मुझे जूतो से पीटिए

सेठजी ने कहा—सरकार नही बेटा कहो।

"बेटा मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मूरख हू बावली हू। जो चाहे सजा दो।"

सलीम के युवा नेत्र भी सजल हो गए। हुकूमत का रोब और अधिकार का गर्व भ[illegible] गया। बोला—माताजी मुझे शर्मिंदा न करो। यहा जितने लोग खडे है मै उन सबसे और [illegible] यहां नही है उनसे भी अपनी खताओ की मुआफी चाहता हू।

गूदड ने कहा—हम तुम्हारे गुलाम है भैया लेकिन मूरख जो ठहरे आदमी पहचानते तो क्या इतनी बात होती?

स्वामीजी ने समरकान्त के कान मे कहा मुझे तो ऐसा जान पडता है कि [illegible]

सेठजी ने आश्वासन दिया- कभी नही। नौकरी चाहे चली जाय पर तुम्हे सताएगा [illegible] शरीफ आदमी है।

"तो क्या हमे पूरा लगान देना पडेगा?"

"जब कुछ है ही नही, तो दोगे कहा से?'

स्वामीजी हटे तो सलीम ने आकर सेठजी के कान मे कुछ कहा'

सेठजी मुस्कराकर बोले—यह साहब तुम लोगो के दवा-दारू के लिए [illegible] सौ [illegible] कर रहे है। मै अपनी ओर से उसमे दो सौ रुपये मिलाए देता हू। स्वामीजी [illegible] चलकर मुझसे रुपये ले लो।

गूदड ने कृतज्ञता को दबाते हुए कहा 'भैया' पर मुख से एक शब्द भी न नि[illegible]

समरकान्त बोले- यह मत समझो कि यह मेरे रुपये है। मै अपने बाप के घर से [illegible] लाया। तुम्ही से तुम्हारा ही गल्ला दबाकर लिए थे। वह तुम्हे लौटा रहा हू

गाव मे जहा सियापा छाया हुआ था वहा रौनक नजर आने लगी। जैसे कोई सगीत [illegible] मे भूल गया हो।

## पांच

अमरकान्त को जेल मे रोज रोज का समाचार किसी-न-किसी तरह मिल जाता था। [illegible] दिन मार-पीट और अग्निकांड की खबर मिली उसके क्रोध का वारापार न रहा और जैसे आ[illegible] बुझकर राख हो जाती है थोडी देर के बाद क्रोध की जगह केवल नैराश्य रह गया। लोगो [illegible] रोने-पीटने का दर्द भरी हाय हाय जैसे मूर्तिमान होकर उसके सामने सिर पीट रही थी। ज[illegible] हुए घरो की लपटें जैसे उसे झुलसा डालती थी। वह सारा भीषण दृश्य कल्पनातीत होक

सर्वनाश के समीप जा पहुंचा था और इसकी जिम्मेदारी किस पर थी? रुपये तो यों भी वसूल किए जाते, पर इतना अत्याचार तो न होता, कुछ रिआयत तो की जाती। सरकार इस विद्रोह के बाद किसी तरह भी नर्मी का बर्ताव न कर सकती थी, लेकिन रुपया न दे सकना तो किसी मनुष्य का दोष नहीं! यह मंदी की बला कहां से आई, कौन जाने? यह तो ऐसा ही है कि आंधी में किसी का छप्पर उड़ जाए और सरकार उसे दंड दे। यह शासन किसके हित के लिए है? इसका उद्देश्य क्या है?

इन विचारों से तंग आकर उसने नैराश्य में मुंह छिपाया। अत्याचार हो रहा है। होने दो। मैं क्या करूं? कर ही क्या सकता हूं! मैं कौन हूं? मुझसे मतलब? कमजोरों के भाग्य में जब तक मार खाना लिखा है, मार खाएंगे। मैं तो यहां क्या फूलों की सेज पर सोया हुआ हूं? अगर संसार के सारे प्राणी पशु हो जाएं, तो मैं क्या करूं? जो कुछ होगा, होगा। यह भी ईश्वर की लीला है! वाह रे तेरी लीला! अगर ऐसी ही लीलाओं में तुम्हें आनंद आता है, तो तुम दयामय क्यों बनते हो? जबर्दस्त का ठेंगा सिर पर, क्या यह भी ईश्वरीय नियम है?

जब सामने कोई विकट समस्या आ जाती थी, तो उसका मन नास्तिकता की ओर झुक जाता था। सारा विश्व शृंखला हीन, अव्यवस्थित, रहस्यमय जान पड़ता था।

उसने बान बटना शुरू किया लेकिन आंखों के सामने एक दूसरा ही अभिनय हो रहा था—नैना रो रही है, सिर के बाल खुले हुए आंसुओं की धार बह रही है। उसके रुदन की करुणाजनक ध्वनि कानों में आने लगी। फिर मुन्नी की मूर्ति सामने आ खड़ी हुई। उसे सिपाहियों ने गिरफ्तार कर लिया है और खींचे लिए जा रहे हैं। उसके मुंह से अनायास ही निकल गया—हाय! हाय! यह क्या करते हो! फिर वह सचेत हो गया और बान बटने लगा।

रात को भी यह दृश्य आंखों में फिरा करते, वही क्रंदन कानों में गूंजा करता। इस सारी विपत्ति का भार अपने सिर पर लेकर वह दबा जा रहा था। इस भार को हल्का करने के लिए उसके पास कोई साधन न था। ईश्वर का बहिष्कार करके उसने मानो नौका का परित्याग कर दिया था और अथाह जल में डूबा जा रहा था। कर्म जिज्ञासा उसे किसी तिनके का सहारा न लेने देती थी। वह किधर जा रहा है और अपने साथ लाखों निस्सहाय प्राणियों को किधर लिए जा रहा है? इसका क्या अंत होगा? इस काली घटा में कहीं चांदी की झालर है! वह चाहता था, कहीं से आवाज आए—बढ़े आओ! बढ़े आओ! यही सीधा रास्ता है, पर चारों तरफ निविड़, सघन अंधकार था। कहीं से कोई आवाज नहीं आती, कहीं प्रकाश नहीं मिलता। जब वह स्वयं अंधकार में पड़ा हुआ है, स्वयं नहीं जानता आगे स्वर्ग की शीतल छाया है, या विध्वंस की भीषण ज्वाला, तो उसे क्या अधिकार है कि इतने प्राणियों की जान आफत में डाले। इसी मानसिक पराभव की दशा में उसके अंतःकरण से निकला—ईश्वर, मुझे प्रकाश दो, मुझे उबारो। और वह रोने लगा।

सुबह का वक्त था, कैदियों की हाजिरी हो गई थी। अमर का मन कुछ शांत था। वह प्रचंड आवेग शांत हो गया था और आकाश में छाई हुई गर्द बैठ गई थी। चीजें साफ-साफ दिखाई देने लगी थीं। अमर मन में पिछली घटनाओं की आलोचना कर रहा था। कारण और कार्य के सूत्रों को मिलाने की चेष्टा करते हुए सहसा उसे एक ठोकर-सी लगी—नैना का वह पत्र और सुखदा की गिरफ्तारी। इसी से तो वह आवेश में आ गया था और समझौते का सुसाध्य मार्ग छोड़कर उस दुर्गम पथ की ओर झुक पड़ा था। इस ठोकर ने जैसे उसकी आंखें खोल

दीं। मालूम हुआ, यह यश-लालसा का, व्यक्तिगत स्पर्द्धा का, सेवा के आवरण में छिपे हुए अहंकार का खेल था। इस अविचार और आवेश का परिणाम इसके सिवा और क्या होता?

अमर के समीप एक कैदी बैठा बान बट रहा था। अमर ने पूछा–तुम कैसे आए, भई?

उसने कौतूहल से देखकर कहा–''पहले तुम बताओ।''

''मुझे तो नाम की धुन थी।''

''मुझे धन की धुन थी !''

उसी वक्त जेलर ने आकर अमर से कहा–तुम्हारा तबादला लखनऊ हो गया है। तुम्हारे बाप आए थे। तुमसे मिलना चाहते थे। तुम्हारी मुलाकात की तारीख न थी। साहब ने इंकार कर दिया।

अमर ने आश्चर्य से पूछा–मेरे पिताजी यहां आए थे?

''हां-हां, इसमें ताज्जुब की क्या बात है? मि॰ सलीम भी उनके साथ थे।''

''इलाके की कुछ नई खबर?''

''तुम्हारे बाप ने शायद सलीम साहब को समझाकर गांव वालों से मेल करा दिया है। शरीफ आदमी हैं, गांव वालों के इलाज वगैरह के लिए एक हजार रुपये दे दिए।''

अमर मुस्कराया।

''उन्हीं की कोशिश से तुम्हारा तबादला हो रहा है। लखनऊ में तुम्हारी बीवी भी आ गई हैं। शायद उन्हें छ: महीने की सजा हुई है।''

अमर खड़ा हो गया–सुखदा भी लखनऊ में है !

अमर को अपने मन में विलक्षण शांति का अनुभव हुआ। वह निराशा कहां गई? दुर्बलता कहां गई?

वह फिर बैठकर बान बटने लगा। उसके हाथों में आज गजब की फुर्ती है। ऐसा कायापलट ! ऐसा मंगलमय परिवर्तन ! क्या अब भी ईश्वर की दया में कोई संदेह हो सकता है? उसने कांटे बोए थे। वह सब फूल हो गए।

सुखदा आज जेल में है। जो भोग-विलास पर आसक्त थी, वह आज दीनों की सेवा में अपना जीवन सार्थक कर रही है। पिताजी, जो पैसों को दांत से पकड़ते थे; वह आज परोपकार में रत हैं। कोई दैवी शक्ति नहीं है तो यह सब कुछ किसकी प्रेरणा से हो रहा है।

उसने मन की संपूर्ण श्रद्धा से ईश्वर के चरणों में वंदना की। वह भार, जिसके बोझ से वह दबा जा रहा था, उसके सिर से उतर गया था। उसकी देह हल्की थी, मन हल्का था और आगे आने वाली ऊपर की चढ़ाई, मानो उसका स्वागत कर रही थी।

## छः

अमरकान्त को लखनऊ जेल में आए आज तीसरा दिन है। यहां उसे चक्की का काम दिया गया है। जेल के अधिकारियों को मालूम है, वह धनी का पुत्र है, इसलिए उसे कठिन परिश्रम देकर भी उसके साथ कुछ रिआयत की जाती है।

एक छप्पर के नीचे चक्कियों की कतारें लगी हुई हैं। दो-दो कैदी हरेक चक्की के पास खड़े आटा पीस रहे हैं। शाम को आटे की तौल होगी। आटा कम निकला, तो दंड मिलेगा।

अमर ने अपने संगी से कहा—जरा ठहर जाओ भाई, दम ले लूं, मेरे हाथ नहीं चलते। क्या नाम है तुम्हारा? मैंने तो शायद तुम्हें कहीं देखा है।

संगी गठीला, काला, लाल आंखों वाला, कठोर आकृति का मनुष्य था, जो परिश्रम से थकना न जानता था। मुस्कराकर बोला—मैं वही काले खां हूं, एक बार तुम्हारे पास सोने के कड़े बेचने गया था। याद करो लेकिन तुम यहां कैसे आ फंसे, मुझे यह ताज्जुब हो रहा है। परसों से ही पूछना चाहता था पर सोचता था, कहीं धोखा न हो रहा हो।

अमर ने अपनी कथा संक्षेप में कह सुनाई और पूछा—तुम कैसे आए?

काले खां हंसकर बोला—मेरी क्या पूछते हो लाला, यहां तो छः महीने बाहर रहते हैं, तो छः साल भीतर। अब तो यही आरजू है कि अल्लाह यहीं से बुला ले। मेरे लिए बाहर रहना मुसीबत है। सबको अच्छा-अच्छा पहनते, अच्छा-अच्छा खाते देखता हूं, तो हसद होता है, पर मिले कहां से? कोई हुनर आता नहीं, इलम है नहीं। चोरी न करूं, डाका न मारूं, तो खाऊं क्या? यहां किसी से हसद नहीं होता, न किसी को अच्छा पहनते देखता हूं, न अच्छा खाते। सब अपने ही जैसे हैं, फिर डाह और जलन क्यों हो? इसीलिए अल्लाहताला से दुआ करता हूं कि यहीं से बुला ले। छूटने की आरजू नहीं है। तुम्हारे हाथ दुख गए हों तो रहने दो। मैं अकेला ही पीस डालूंगा। तुम्हें इन लोगों ने यह काम दिया ही क्यों? तुम्हारे भाई-बंद तो हम लोगों से अलग, आराम से रखे जाते हैं। तुम्हें यहां क्यों डाल दिया? हट जाओ।

अमर ने चक्की की मुठिया जोर से पकड़कर कहा—नहीं-नहीं, मैं थका नहीं हूं। दो-चार दिन में आदत पड़ जाएगी, तो तुम्हारे बराबर काम करूंगा।

काले खां ने उसे पीछे हटाते हुए कहा—मगर यह तो अच्छा नहीं लगता कि तुम मेरे साथ चक्की पीसो। तुमने जुर्म नहीं किया है। रिआया के पीछे सरकार से लड़े हो, तुम्हें मैं न पीसने दूंगा। मालूम होता है तुम्हारे लिए ही अल्लाह ने मुझे यहां भेजा है। वह तो बड़ा कारसाज आदमी है। उसकी कुदरत कुछ समझ में नहीं आती। आप ही आदमी से बुराई करवाता है, आप ही उसे सजा देता है, और आप ही उसे मुआफ कर देता है।

अमर ने आपत्ति की—बुराई खुदा नहीं कराता, हम खुद करते हैं

काले खां ने ऐसी निगाहों से उसकी ओर देखा, जो कह रही थी, तुम इस रहस्य को अभी नहीं समझ सकते—ना-ना, मैं यह नहीं मानूंगा। तुमने तो पढ़ा होगा, उसके हुक्म के बगैर एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, बुराई कौन करेगा? सब कुछ वही करवाता है, और फिर माफ भी कर देता है। यह मैं मुंह से कह रहा हूं। जिस दिन मेरे ईमान में यह बात जम जाएगी, उसी दिन बुराई बंद हो जाएगी। तुम्हीं ने उस दिन मुझे वह नसीहत सिखाई थी। मैं तुम्हें अपना पीर समझता हूं। दो सौ की चीज तुमने तीस रुपये में न ली। उसी दिन मुझे मालूम हुआ, बदी क्या चीज है। अब सोचता हूं, अल्लाह को क्या मुंह दिखाऊंगा? जिंदगी में इतने गुनाह किए हैं कि जब उनकी याद आती है, तो रोंए खड़े हो जाते हैं। अब तो उसी की रहीमी का भरोसा है। क्यों भैया, तुम्हारे मजहब में क्या लिखा है? अल्लाह गुनहगारों को मुआफ कर देता है?

काले खां की कठोर मुद्रा इस गहरी, सजीव, सरल भक्ति से प्रदीप्त हो उठी, आंखों में कोमल छटा उदय हो गई। और वाणी इतनी मर्मस्पर्शी, इतनी आर्द्र थी कि अमर का हृदय पुलकित हो उठा—सुनता तो हूं खां साहब, कि वह बड़ा दयालु है।

काले खां दूने वेग से चक्की घुमाता हुआ बोला—बड़ा दयालु है, भैया! मां के पेट में बच्चे को भोजन पहुंचाता है। यह दुनिया ही उसकी रहीमी का आईना है। जिधर आंखें उठाओ,

उसकी रहीमी के जलवे। इतने खूनी-डाकू यहां पड़े हुए हैं, उनके लिए भी आराम का सामान कर दिया। मौका देता है, बार-बार मौका देता है कि अब भी संभल जावें। उसका गूस्सा कौन सहेगा, भैया? जिस दिन उसे गुस्सा आवेगा, यह दुनिया जहन्नुम को चली जाएगी। हमारे-तुम्हारे ऊपर वह क्यों गुस्सा करेगा? हम चींटी को पैरों तले पड़ते देखकर किनारे से निकल जाते हैं। उसे कुचलते रहम आता है। जिस अल्लाह ने हमको बनाया, जो हमको पालता है, वह हमारे ऊपर कभी गुस्सा कर सकता है? कभी नहीं।

अमर को अपने अंदर आस्था की एक लहर-सी उठती हुई जान पड़ी। इतने अटल विश्वास और सरल श्रद्धा के साथ इस विषय पर उसने किसी को बातें करते न सुना था। बात वही थी, जो वह नित्य छोटे-बड़े के मुंह से सुना करता था, पर निष्ठा ने उन शब्दों में जान सी डाल दी थी।

जरा देर बाद वह फिर बोला—भैया, तुमसे चक्की चलवाना तो ऐसे ही है, जैसे कोई तलवार से चिड़िए को हलाल करे। तुम्हें अस्पताल में रखना चाहिए था, बीमारी में दवा से उतना फायदा नहीं होता, जितना मीठी बात से हो जाता है। मेरे सामने यहां कई कैदी बीमार हुए, पर एक भी अच्छा न हुआ। बात क्या है? दवा कैदी के सिर पर पटक दी जाती है, वह चाहे पिए चाहे फेंक दे।

अमर को इस काली-कलूटी काया में स्वर्ण-जैसा हृदय चमकता दीख पड़ा। मुस्कराकर बोला—लेकिन दोनों काम साथ-साथ कैसे करूंगा?

''मैं अकेला चक्की चला लूंगा और पूरा आटा तुलवा दूंगा।''

''तब तो सारा सवाब तुम्हीं को मिलेगा।''

काले खां ने साधु-भाव से कहा—भैया, कोई काम सवाब समझकर नहीं करना चाहिए। दिल को ऐसा बना लो कि सवाब में उसे वही मजा आवे, जो गाने या खेलने में आता है। कोई काम इसलिए करना कि उससे नजात मिलेगी, रोजगार है, फिर मैं तुम्हें क्या समझाऊं! तुम खुद इन बातों को मुझसे ज्यादा समझते हो। मैं तो मरीज की तीमारदारी करने के लायक ही नहीं हूं। मुझे बड़ी जल्दी गुस्सा आ जाता है। कितना चाहता हू कि गुस्सा न आए, पर जहां किसी ने दो-एक बार मेरी बातें न मानीं और मैं बिगड़ा।

वही डाकू, जिसे अमर ने एक दिन अधमता के पैरों के नीचे लोटते देखा था, आज देवत्व के पद पर पहुंच गया था। उसकी आत्मा से मानो एक प्रकाश-सा निकलकर अमर के अंत:करण को अवलोकित करने लगा।

उसने कहा—लेकिन यह तो बुरा मालूम होता है कि मेहनत का काम तुम करो और मैं

काले खां ने बात काटी—भैया, इन बातों में क्या रखा है? तुम्हारा काम इस चक्की से कहीं कठिन होगा। तुम्हें किसी के बात करने तक की मुहलत न मिलेगी। मैं रात को मीठी नींद सोऊंगा। तुम्हें रातें जागकर काटनी पड़ेंगी। जान-जोखिम भी तो है। इस चक्की में क्या रखा है? यह काम तो गधा भी कर सकता है, लेकिन जो काम तुम करोगे, वह विरले कर सकते हैं।

सूर्यास्त हो रहा था। काले खां ने अपने पूरे गेहूं पीस डाले थे और दूसरे कैदियों के पास जा-जाकर देख रहा था, किसका कितना काम बाकी है। कई कैदियों के गेहूं अभी समाप्त नहीं हुए थे। जेल कर्मचारी आटा तौलने आ रहा होगा। इन बेचारों पर आफत आ जाएगी, मार

पड़ने लगेगी। काले खां ने एक-एक चक्की के पास जाकर कैदियों की मदद करनी शुरू की। उसकी फुर्ती और मेहनत पर लोगों को विस्मय होता था। आध घंटे में उसने फिसड्डियों की कमी पूरी कर दी। अमर अपनी चक्की के पास खड़ा सेवा के पुतले को श्रद्धा-भरी आंखों से देख रहा था, मानो दिव्य दर्शन कर रहा हो।

काले खां इधर से फुरसत पाकर नमाज पढ़ने लगा। वहीं बरामदे में उसने वजू किया, अपना कंबल जमीन पर बिछा दिया और नमाज शुरू की। उसी वक्त जेलर साहब चार वार्डरों के साथ आटा तुलवाने आ पहुंचे। कैदियों ने अपना- अपना आटा बोरियों में भरा और तराजू के पास आकर खड़ा हो गए। आटा तुलने लगा।

जेलर ने अमर से पूछा--तुम्हारा साथी कहां गया?

अमर ने बताया, नमाज पढ़ रहा है।

"उसे बुलाओ। पहले आटा तुलवा ले, फिर नमाज पढ़े। बड़ा नमाजी की दुम बना है। कहां गया है नमाज पढ़ने?"

अमर ने शेड के पीछे की तरफ इशारा करके कहा--उन्हें नमाज पढ़ने दें, आप आटा तोल लें।

जेलर यह कब देख सकता था कि कोई कैदी उस वक्त नमाज पढ़ने जाय, जब जेल के साक्षात् प्रभु पधारे हों! शेड के पीछे जाकर बोले -अबे ओ नमाजी के बच्चे, आटा क्यों नहीं तुलवाता? बचा, गेहूं चबा गए हो तो नमाज का बहाना करने लगे। चल चटपट, वरना मारे हंटरों के चमड़ी उधेड़ दूंगा।

काले खां दूसरी ही दुनिया में था।

जेलर ने समीप जाकर अपनी छड़ी उसकी पीठ में चुभाते हुए कहा—बहरा हो गया है क्या बे? शामतें तो नहीं आई हैं?

काले खां नमाज में मग्न था। पीछे फिरकर भी न देखा।

जेलर ने झल्लाकर लात जमाई। काले खां सिजदे के लिए झुका हुआ था। लात खाकर औंधे मुंह गिर पड़ा, पर तुरत संभलकर फिर सिजदे में झुक गया। जेलर को अब जिद पड़ गई कि उसकी नमाज बंद कर दे। संभव है काले खां को भी जिद पड़ गई हो कि नमाज पूरी किए बगैर न उठूंगा। वह तो सिजदे में था। जेलर ने उसे बूटदार ठोकरें जमानी शुरू कीं, एक वार्डर ने लपककर दो गारद सिपाही बुला लिए। दूसरा जेलर साहब की कुमक पर दौड़ा। काले खां पर एक तरफ से ठोकरें पड़ रही थीं, दूसरी तरफ से लकड़ियां, पर वह सिजदे से सिर न उठाता था। हां, प्रत्येक आघात पर उसके मुंह से 'अल्लाहो अकबर !' की दिल हिला देने वाली सदा निकल जाती थी। उधर आघातकारियों की उत्तेजना भी बढ़ती जाती थी। जेल का कैदी जेल के खुदा को सिजदा न करके अपने खुदा को सिजदा करे, इससे बड़ा जेलर साहब का क्या अपमान हो सकता था ! यहां तक कि काले खां के सिर से रुधिर बहने लगा। अमरकान्त उसकी रक्षा करने के लिए चला था कि एक वार्डर ने उसे मजबूती से पकड़ लिया। उधर बराबर आघात हो रहे थे और काले खां बराबर 'अल्लाहो अकबर !' की सदा लगाए जाता था। आखिर वह आवाज क्षीण होते-होते एक बार बिल्कुल बंद हो गई और काले खां रक्त बहने से शिथिल हो गया। मगर चाहे किसी के कानों में आवाज न जाती हो, उसके होंठ अब भी खुल रहे थे और अब भी 'अल्लाहो अकबर' की अव्यक्त ध्वनि निकल रही थी।

जेलर ने खिसियाकर कहा—पड़ा रहने दो बदमाश को यहीं! कल से इसे खड़ी बेड़ी दूंगा और तनहाई भी। अगर तब भी न सीधा हुआ, तो उलटी टांगी। इसका नमाजीपन निकाल न दूं तो नाम नहीं।

एक मिनट में वार्डर, जेलर, सिपाही सब चले गए। कैदियों के भोजन का समय आया, सब-के-सब भोजन पर जा बैठे। मगर काले खां अभी वहीं औंधा पड़ा था। सिर और नाक तथा कानों से खून बह रहा था। अमरकान्त बैठा उसके घावों को पानी से धो रहा था और खून बंद करने का प्रयास कर रहा था। आत्मशक्ति के इस कल्पनातीत उदाहरण ने उसकी भौतिक बुद्धि को जैसे आक्रांत कर दिया। ऐसी परिस्थिति में क्या वह इस भांति निश्चल और संयमित बैठा रहता? शायद पहले ही आघात में उसने या तो प्रतिकार किया होता या नमाज छोड़कर अलग हो जाता। विज्ञान और नीति और देशानुराग की वेदी पर बलिदानों की कमी नहीं। पर यह निश्चल धैर्य ईश्वर-निष्ठा ही का प्रसाद है।

कैदी भोजन करके लौटे। काले खां अब भी वहीं पड़ा हुआ था। सभी ने उसे उठाकर बैरक में पहुंचाया और डॉक्टर को सूचना दी, पर उन्होंने रात को कष्ट उठाने की जरूरत न समझी। वहां और कोई दवा भी न थी। गर्म पानी तक न मयस्सर हो सका।

उस बैरक के कैदियों ने रात बैठकर काटी। कई आदमी आमादा थे कि सुबह होते ही जेलर साहब की मरम्मत की जाय। यही न होगा, साल-साल भर की मियाद और बढ़ जाएगी। क्या परवाह! अमरकान्त शांत प्रकृति का आदमी था, पर इस समय वह भी उन्हीं लोगों में मिला हुआ था। रात-भर उसके अंदर पशु और मनुष्य में द्वंद्व होता रहा। वह जानता था, आग आग से नहीं, पानी से शांत होती है। इंसान कितना ही हैवान हो जाय उसमें कुछ न कुछ आदमीयत रहती ही है। वह आदमीयत अगर जाग सकती है, तो ग्लानि से, या पश्चात्ताप से। अमर अकेला होता, तो वह अब भी विचलित न होता, लेकिन सामूहिक आवेश ने उसे भी अस्थिर कर दिया। समूह के साथ हम कितने ही ऐसे अच्छे-बुरे काम कर जाते हैं, जो हम अकेले न कर सकते। और काले खां की दशा जितनी ही खराब होती जाती थी, उतनी ही प्रतिशोध की ज्वाला भी प्रचंड होती जाती थी।

एक डाके के कैदी ने कहा—खून पी जाऊंगा, खून! उसने समझा क्या है! यही न होगा, फांसी हो जाएगी?

अमरकान्त बोला—उस वक्त क्या समझे थे कि मारे ही डालता है!

चुपके-चुपके षड्यंत्र रचा गया, आघातकारियों का चुनाव हुआ, उनका कार्य विधान निश्चय किया गया। सफाई की दलीलें सोच निकाली गईं।

सहसा एक ठिगने कैदी ने कहा—तुम लोग समझते हो, सवेरे तक उसे खबर न हो जाएगी?

अमर ने पूछा—खबर कैसे होगी? यहां ऐसा कौन है, जो उसे खबर दे दे?

ठिगने कैदी ने दाएं-बाएं आंखें घुमाकर कहा—खबर देने वाले न जाने कहां से निकल आते हैं, भैया? किसी के माथे पर तो कुछ लिखा नहीं, कौन जाने हमीं में से कोई जाकर इत्तिला कर दे? रोज ही तो लोगों को मुखबिर बनते देखते हो। वही लोग जो अगुआ होते हैं, अवसर पड़ने पर सरकारी गवाह बन जाते हैं। अगर कुछ करना है, तो अभी कर डालो। दिन को वारदात करोगे, सब-के-सब पकड़ लिए जाओगे। पांच-पांच साल की सजा ठुक जाएगी।

अमर ने संदेह के स्वर में पूछा—लेकिन इस वक्त तो वह अपने क्वार्टर में सो रहा होगा?

ठिगने कैदी ने राह बताई—यह हमारा काम है भैया, तुम क्या जानो?

सबों ने मुंह मोड़कर कनफुसकियों में बातें शुरू कीं। फिर पांचों आदमी खड़े हो गए।

ठिगने कैदी ने कहा—हममें से जो फूटे, उसे गऊ हत्या।

यह कहकर उसने बड़े जोर से हाय-हाय करना शुरू किया। और भी कई आदमी चीखने चिल्लाने लगे। एक क्षण में वार्डर ने द्वार पर आकर पूछा—तुम लोग क्यों शोर कर रहे हो? क्या बात है?

ठिगने कैदी ने कहा—बात क्या है, काले खां की हालत खराब है। जाकर जेलर साहब को बुला लाओ। चटपट।

वार्डर बोला—वाह बे! चुपचाप पड़ा रह! बड़ा नवाब का बेटा बना है!

"हम कहते हैं जाकर उन्हें भेज दो, नहीं, ठीक नहीं होगा।"

काले खां ने आंखें खोलीं और क्षीण स्वर में बोला—क्यों चिल्लाते हो यारो, मैं अभी मरा नहीं हूं। जान पड़ता है, पीठ की हड्डी में चोट है।

ठिगने कैदी ने कहा—उसी का बदला चुकाने की तैयारी है पठान!

काले खां तिरस्कार के स्वर में बोला—किससे बदला चुकाओगे भाई, अल्लाह से? अल्लाह की यही मरजी है, तो उसमें दूसरा कौन दखल दे सकता है? अल्लाह की मर्जी के बिना कहीं एक पत्ती भी हिल सकती है? जरा मुझे पानी पिला दो। और देखो, जब मैं मर जाऊं, तो यहां जितने भाई हैं, सब मेरे लिए खुदा से दुआ करना। और दुनिया में मेरा कौन है? शायद तुम लोगों की दुआ से मेरी निजात हो जाय।

अमर ने उसे गोद में संभालकर पानी पिलाना चाहा, मगर घूंट कंठ के नीचे न उतरा। वह जोर से कराहकर फिर लेट गया।

ठिगने कैदी ने दांत पीसकर कहा—ऐसे बदमाश की गरदन तो उलटी छुरी से काटनी चाहिए!

काले खां दीनभाव से रुक-रुककर बोला—क्यों मेरी नजात का द्वार बंद करते हो, भाई! दुनिया तो बिगड़ गई, क्या आकबत भी बिगाड़ना चाहते हो? अल्लाह से दुआ करो, सब पर रहम करे। जिंदगी में क्या कम गुनाह किए हैं कि मरने के पीछे पांव में बेड़ियां पड़ी रहें! या अल्लाह, रहम कर।

इन शब्दों में मरने वाले की निर्मल आत्मा मानो व्याप्त हो गई थी। बातें वही थीं, तो रोज सुना करते थे, पर इस समय इनमें कुछ ऐसे द्रावक, कुछ ऐसी हिला देने वाली सिद्धि थी कि सभी जैसे उसमें नहा उठे। इस चुटकी भर राख ने जैसे उनके तापमय विकारों को शांत कर दिया।

प्रातःकाल जब काले खां ने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी तो ऐसा कोई कैदी न था, जिसकी आंखों से आंसू न निकल रहे हों, पर औरों का रोना दुःख का था, अमर का रोना सुख का था। औरों को किसी आत्मीय के खो देने का सदमा था, अमर को उसके और समीप हो जाने का अनुभव हो रहा था। अपने जीवन में उसने यही एक नवरत्न पाया था, जिसके सम्मुख वह श्रद्धा से सिर झुका सकता था और जिससे वियोग हो जाने पर उसे एक वरदान पा जाने का भान होता था।

इस प्रकाश-स्तंभ ने आज उसके जीवन को एक दूसरी ही धारा में डाल दिया जहां संशय की जगह विश्वास, और शंका की जगह सत्य मूर्तिमान हो गया था।

## सात

लाला समरकान्त के चले जाने के बाद सलीम ने हर एक गांव का दौरा करके असामियों की आर्थिक दशा की जांच करनी शुरू की। अब उसे मालूम हुआ कि उनकी दशा उससे कहीं हीन है, जितनी वह समझे बैठा था। पैदावर का मूल्य लागत और लगान से कहीं कम था। खाने-कपड़े की भी गुंजाइश न थी, दूसरे खर्चों का क्या जिक्र? ऐसा कोई बिरला ही किसान था, जिसका सिर ऋण के नीचे न दबा हो। कॉलेज में उसने अर्थशास्त्र अवश्य पढ़ा था और जानता था कि यहां के किसानों की हालत खराब है, पर अब ज्ञात हुआ है कि पुस्तक-ज्ञान और प्रत्येक्ष व्यवहार में वही अंतर है, जो किसी मनुष्य और उसके चित्र में है। ज्यों-ज्यों असली हालत मालूम होती जाती थी; उसे असामियों से सहानुभूति होती जाती थी। कितना अन्याय है कि जो बेचारे रोटियों को मुंहताज हों, जिनके पास तन ढकने को केवल चीथड़े हों, जो बीमारी में एक पैसे की दवा भी न कर सकते हों। जिनके घरों में दीपक भी न जलते हों, उनसे पूरा लगान वसूल किया जाए। जब जिंस मंहगी थी, तब किसी तरह एक जून रोटियां मिल जाती थीं। इस मंदी में तो उनकी दशा वर्णनातीत हो गई है। जिनके लड़के पांच-छ: बरस की उम्र से मेहनत-मजूरी करने लगे, जो ईंधन के लिए हार में गोबर चुनते फिरें, उनसे पूरा लगान वसूल करना, मानो उनके मुंह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना है, उनकी रक्त-हीन देह से खून चूसना है।

परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान होते ही सलीम ने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। वह उन आदमियों में न था, जो स्वार्थ के लिए अफसरों के हर एक हुक्म की पाबंदी करते हैं। वह नौकरी करते हुए भी आत्मा की रक्षा करना चाहता था। कई दिन एकांत में बैठकर उसने विस्तार के साथ अपनी रिपोर्ट लिखी और मि० गजनवी के पास भेज दी। मि० गजनवी ने उसे तुरंत लिखा—आकर मुझसे मिल जाओ। सलीम उनसे मिलना न चाहता था। डरता था, कहीं यह मेरी रिपोर्ट को दबाने का प्रस्ताव न करें, लेकिन फिर सोचा—चलने में हर्ज ही क्या है? अगर मुझे कायल कर दें, तब तो कोई बात नहीं; लेकिन अफसरों के भय से मैं अपनी रिपोर्ट को कभी न दबने दूंगा। उसी दिन वह संध्या समय सदर पहुंचा।

मि० गजनवी ने तपाक से हाथ बढ़ाते हुए कहा—मि० अमरकान्त के साथ तो तुमने दोस्ती का हक खूब अदा किया। वह खुद शायद इतनी मुफस्सिल रिपोर्ट न लिख सकते लेकिन तुम क्या समझते हो, सरकार को यह बातें मालूम नहीं?

सलीम ने कहा—मेरा तो ऐसा ही खयाल है। उसे जो रिपोर्ट मिलती है, वह खुशामदी अहलकारों से मिलती है, जो रिआया का खून करके भी सरकार का घर भरना चाहते हैं। मेरी रिपोर्ट वाकयात पर लिखी गई है।

दोनों अफसरों में बहस होने लगी। गजनवी कहता था—हमारा काम केवल अफसरों की आज्ञा मानना है। उन्होंने लगान वसूल करने की आज्ञा दी। हमें लगान वसूल करना चाहिए। प्रजा को कष्ट होता है तो हो, हमें इससे प्रयोजन नहीं। हमें खुद अपनी आमदनी का टैक्स

देने में कष्ट होता है; लेकिन मजबूर होकर देते हैं। कोई आदमी खुशी से टैक्स नहीं देता।

गजनवी इस आज्ञा का विरोध करना अनीति ही नहीं, अधर्म समझता था। केवल जाब्ता की पाबंदी से उसे संतोष न हो सकता था। वह इस हुक्म की तामील करने के लिए सब कुछ करने को तैयार था। सलीम का कहना था–हम सरकार के नौकर केवल इसलिए हैं कि प्रजा की सेवा कर सकें, उसे सुदशा की ओर ले जा सकें, उसकी उन्नति में सहायक हो सकें। यदि सरकार की किसी आज्ञा से इन उद्देश्यों की पूर्ति में बाधा पड़ती है, तो हमें उस आज्ञा को कदापि न मानना चाहिए।

गजनवी ने मुंह लबा करके कहा–मुझे खौफ है कि गवर्नमेंट तुम्हारा यहां से तबादला कर देगी।

''तबादला कर दे इसकी मुझे परवाह नहीं, लेकिन मेरी रिपोर्ट पर गौर करने का वादा करे। अगर वह मुझे यहां से हटा कर मेरी रिपोर्ट को दाखिल दफ्तर करना चाहेगी, तो मैं इस्तीफा दे दूंगा।''

गजनवी ने विस्मय से उसके मुंह की ओर देखा।

''आप गवर्नमेंट की दिक्कतों का मुतलक अंदाजा नहीं कर रहे हैं। अगर वह इतनी आसानी से दबने लगे, तो आप समझते हैं, रिआया कितनी शेर हो जाएगी ! जरा-जरा-सी बात पर तूफान खड़े हो जाएंगे। और यह महज इस इलाके का मुआमला नहीं है, सारे मुल्क में यही तहरीक जारी है। अगर सरकार अस्सी फीसदी काश्तकारों के साथ रिआयत करे, तो उसके लिए मुल्क का इंतजाम करना दुश्वार हो जाएगा।''

सलीम ने प्रश्न किया–गवर्नमेंट रिआया के लिए है, रिआया गवर्नमेंट के लिए नहीं। काश्तकारों पर जुल्म करके, उन्हें भूखों मारकर अगर गवर्नमेंट जिंदा रहना चाहती है, तो कम-से कम मैं अलग हो जाऊंगा। अगर मालियत में कमी आ रही है तो सरकार को अपना खर्च घटाना चाहिए, न कि रिआया पर सख्तियां की जाएं।

गजनवी ने बहुत ऊंच-नीच सुझाया, लेकिन सलीम पर कोई असर न हुआ। उसे डंडों से लगान वसूल करना किसी तरह मंजूर न था। आखिर गजनवी ने मजबूर होकर उसकी रिपोर्ट ऊपर भेज दी, और एक ही सप्ताह के अंदर गवर्नमेंट ने उसे पृथक् कर दिया। ऐसे भयंकर विद्रोही पर वह कैसे विश्वास करती?

जिस दिन उसने नए अफसर को चार्ज दिया और इलाके से विदा होने लगा, उसके डेरे के चारों तरफ स्त्री-पुरुषों का एक मेला लग गया और सब उससे मिन्नतें करने लगे, आप इस दशा में हमें छोड़कर न जाएं। सलीम यही चाहता था। बाप के भय से घर न जा सकता था। फिर इन अनाथों से उसे स्नेह हो गया था। कुछ तो दया और कुछ अपने अपमान ने उसे उनका नेता बना दिया। वही अफसर जो कुछ दिन पहले अफसरी के मद से भरा हुआ आया था, जनता का सेवक बन बैठा। अत्याचार सहना अत्याचार करने से कहीं ज्यादा गौरव की बात मालूम हुई।

आंदोलन की बागडोर सलीम के हाथ में आते ही लोगों के हौसले बंध गए। जैसे पहले अमरकान्त आत्मानन्द के साथ गांव-गांव दौड़ा करता था, उसी तरह सलीम दौड़ने लगा। वही सलीम, जिसके खून के लोग प्यासे हो रहे थे, अब उस इलाके का मुकुटहीन राजा था। जनता उसके पसीने की जगह खून बहाने को तैयार थी।

संध्या हो गई थी। सलीम और आत्मानन्द दिन-भर काम करने के बाद लौटे थे कि एकाएक नए बंगाली सिविलियन मि० घोष पुलिस कर्मचारियों के साथ आ पहुंचे और गांव भर के मवेशियों की कुर्क करने की घोषणा कर दी। कुछ कसाई पहले ही से बुला लिए गए थे। वे सस्ता सौदा खरीदने को तैयार थे। दम-के-दम में कांस्टेबलों ने मवेशियों को खोल-खोलकर मदरसे के द्वार पर जमा कर दिया। गूदड़, भोला, अलगू सभी चौधरी गिरफ्तार हो चुके थे। फसल की कुर्की तो पहले ही हो चुकी थी, मगर फसल में अभी क्या रखा था? इसलिए अब अधिकारियों ने मवेशियों को कुर्क करने का निश्चय किया था। उन्हें विश्वास था कि किसान मवेशियों की कुर्की देखकर भयभीत हो जाएंगे, और चाहे उन्हें कर्ज लेना पड़े, या स्त्रियों के गहने बेचने पड़ें, वे जानवरों को बचाने के लिए सब कुछ करने को तैयार होंगे। जानवर किसान के दाहिने हाथ हैं।

किसानों ने यह घोषणा सुनी, तो छक्के छूट गए। वे समझे बैठे थे कि सरकार और जो चाहे करे, पर मवेशियों को कुर्क न करेगी। क्या वह किसानों की जड़ खोदकर फेंक देगी।

यह घोषणा सुनकर भी वे यही समझ रहे थे कि यह केवल धमकी है, लेकिन जब मवेशी मदरसे के सामने जमा कर दिए गए और कसाइयों ने उनकी देखभाल शुरू की तो सभी पर जैसे वज्राघात हो गया। अब समस्या उस सीमा तक पहुंची थी, जब रक्त का आदान प्रदान आरंभ हो जाता है।

चिराग जलते-जलते जानवरों का बाजार लग गया। अधिकारियों ने इरादा किया है कि सारी रकम एकजाई वसूल करें। गांव वाले आपस में लड़-भिड़कर अपने-अपने लगान का फैसला कर लेंगे। इसकी अधिकारियों को कोई चिंता नहीं है।

सलीम ने आकर मि० घोष से कहा—आपको मालूम है कि मवेशियों को कुर्क करने का आपको मजाज नहीं है?

मि० घोष ने उग्र भाव से जवाब दिया—यह नीति ऐसे अवसरों के लिए नहीं है। विशेष अवसरों के लिए विशेष नीति होती है। क्रांति की नीति, शांति की नीति से भिन्न होनी स्वाभाविक है।

अभी सलीम ने कुछ उत्तर न दिया था कि मालूम हुआ, अहीरों के मुहाल में लाठी चल गई। मि० घोष उधर लपके। सिपाहियों ने भी संगीनें चढ़ाईं और उनके पीछे चले। काशी, पयाग आत्मानन्द सब उसी तरफ दौड़े। केवल सलीम यहां खड़ा रहा। जब एकांत हो गया, तो उसने कसाइयों के सरगना के पास जाकर सलाम-अलेक किया और बोला—क्यों भाई साहब आपको मालूम है, आप लोग इन मवेशियों को खरीदकर यहां की गरीब रिआया के साथ कितनी बड़ी बेइंसाफी कर रहे हैं?

सरगना का नाम तेगमुहम्मद था। नाटे कद का गठीला आदमी था, पूरा पहलवान। ढीला कुर्ता, चारखाने की तहमद, गले में चांदी की तावीज, हाथ में मोटा सोंटा। नम्रता से बोला —साहब, मैं तो माल खरीदने आया हूं। मुझे इससे क्या मतलब कि माल किसका है और कैसा है? चार पैसे का फायदा जहां होता है वहां आदमी जाता ही है।

''लेकिन यह तो सोचिए कि मवेशियों की कुर्की किस सबब से हो रही है? रिआया के साथ आपको हमदर्दी होनी चाहिए।''

तेगमुहम्मद पर कोई प्रभाव न हुआ—सरकार से जिसकी लड़ाई होगी, उसकी होगी।

हमारी कोई लड़ाई नहीं है।

''तुम मुसलमान होकर ऐसी बातें करते हो, इसका मुझे अफसोस है। इस्लाम ने हमेशा मजलूमों की मदद की है। और तुम मजलूमों की गर्दन पर छुरी फेर रहे हो।''

''जब सरकार हमारी परवरिम कर रही है, तो हम उनके बदख्वाह नहीं बन सकते।''

''अगर सरकार तुम्हारी जायदाद छीनकर किसी गैर को दे दे, तो तुम्हें बुरा लगेगा, या नहीं?''

''सरकार से लड़ना हमारे मजहब के खिलाफ है।''

''यह क्यों नहीं कहते तुममें गैरत नहीं है?''

''आप तो मुसलमान हैं। क्या आपका फर्ज नहीं है कि बादशाह की मदद करें?''

''अगर मुसलमान होने का यह मतलब है कि गरीबों का खून किया जाए, तो मैं काफिर हूं।''

तेगमुहम्मद पढ़ा-लिखा आदमी था। वह वाद-विवाद करने पर तैयार हो गया। सलीम ने उसकी हंसी उड़ाने की चेष्टा की। पंथों को वह संसार का कलंक समझता था, जिसने मनुष्य-जाति को विरोधी दलों में विभक्त करके एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया है। तेगमुहम्मद रोजा-नमाज का पाबंद, दीनदार मुसलमान था। मजहब की तौहीन क्योंकर बर्दाश्त करता? उधर तो अहिगने में पुलिस और अहीरों में लाठियां चल रही थीं, इधर इन दोनों में हाथापाई की नौबत आ गई। कसाई पहलवान था। सलीम भी ठोकर चलाने और घूसेबाजी में मंजा हुआ, फुर्तीला, चुस्त। पहलवान साहब उसे अपनी पकड़ में लाकर दबोच बैठना चाहते थे। वह ठोकर-पर-ठोकर जमा रहा था। ताबड़ तोड़ ठोकरें पड़ीं तो पहलवान साहब गिर पड़े और लगे मातृभाषा में अपने मनोविकारों को प्रकट करने। उसके दोनों साथियों ने पहल दूर ही से तमाशा देखना उचित समझा था लेकिन जब तेगमुहम्मद गिर पड़ा, तो दोनों कमर कसकर पिल पड़े। यह दोनों अभी जवान पट्ठे थे, तजी और चुस्ती में सलीम के बराबर थे। सलीम पीछे हटता जाता था और यह दोनों उसे ठेलते जाते थे। उसी वक्त सलोनी लाठी टेकती हुई अपनी गाय खोजने आ रही थी। पुलिस उसे उसके द्वार से खोल लाई थी। यहां यह संग्राम छिड़ा देखकर उसने अंचल सिर से उतार कर कमर में बांधा और लाठी सं[illegible]लकर पीछे से दोनों कसाइयों को पीटने लगी। उनमें से एक ने पीछे फिरकर बुढ़िया को इतने जोर से धक्का दिया कि वह तीन-चार हाथ पर जा गिरी। इतनी देर में सलीम ने घात पाकर सामने के जवान को ऐसा घूंसा दिया कि उसकी नाक से खून जारी हो गया और वह सिर पकड़कर बैठ गया। अब केवल एक आदमी और रह गया। उसने अपने दो योद्धाओं की यह गति देखी तो पुलिस वालों से फरियाद करने भागा। तेगमुहम्मद की दोनों घुटनियां बेकार हो गई थीं। उठ न सकता था। मैदान खाली देखकर सलीम ने लपककर मवेशियों की रस्सियां खोल दीं और तालियां बजा-बजाकर उन्हें भगा दिया। बेचारे जानवर सहमे खड़े थे। आने वाली विपत्ति का उन्हें कुछ आभास हो रहा था। रस्सी खुली तो सब पूंछ उठा-उठाकर भागे और हार की तरफ निकल गए।

उसी वक्त आत्मानन्द बदहवास दौड़े आए और बोले—आप जरा अपना रिवाल्वर तो मुझे दीजिए।

सलीम ने हक्का-बक्का होकर पूछा—क्या माजरा है, कुछ कहो तो?

"पुलिस वालों ने कई आदमियों को मार डाला। अब नहीं रहा जाता, मैं इस घोष को मजा चखा देना चाहता हूं।"

"आप कुछ भंग तो नहीं खा गए हैं? भला यह रिवाल्वर चलाने का मौका है?"

"अगर यों न दोगे, तो मैं छीन लूंगा। इस दुष्ट ने गोलियां चलवाकर चार-पांच आदमियों की जान ले ली। दस-बारह आदमी बुरी तरह जख्मी हो गए हैं। कुछ इनको भी तो मजा चखाना चाहिए। मरना तो है ही।"

"मेरा रिवाल्वर इस काम के लिए नहीं है।"

आत्मानन्द यों भी उद्दंड आदमी थे। इस हत्याकांड ने उन्हें बिल्कुल उन्मत्त कर दिया था। बोले—निरपराधों का रक्त बहाकर आततायी चला जा रहा है, तुम कहते हो रिवाल्वर इस काम के लिए नहीं है ! फिर किस काम के लिए है? मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूं भैया, एक क्षण के लिए दे दो। दिल की लालसा पूरी कर लूं। कैसे-कैसे वीरों को मारा है इन हत्यारों ने कि देखकर मेरी आंखों में खून उतर आया !

सलीम बिना कुछ उत्तर दिए वेग से अहिराने की ओर चला गया। रास्ते में सभी द्वार बंद थे। कुत्ते भी कहीं भागकर जा छिपे थे।

एकाएक एक घर का द्वार झोंके के साथ खुला और एक युवती सिर खोले, अस्त-व्यस्त कपड़े खून से तर, भयातुर हिरनी-सी आकर उसके पैरों से चिपट गई और सहमी हुई आंखों से द्वार की ओर ताकती हुई बोली—मालिक, यह सब सिपाही मुझे मारे डालते हैं।

सलीम ने तसल्ली दी—घबराओ नहीं। घबराओ नहीं। माजरा क्या है?

युवती ने डरते-डरते बताया कि घर में कई सिपाही घुस गए हैं। इसके आगे वह और कुछ न कह सकी।

"घर में कोई आदमी नहीं है?"

"वह तो भैंस चराने गए हैं।"

"तुम्हारे कहां चोट आई है?"

"मुझे चोट नहीं आई। मैंने दो आदमियों को मारा है।"

उसी वक्त दो कांस्टेबल बंदूकें लिए घर से निकल आए और युवती को सलीम के पास खड़ी देख दौड़कर उसके केश पकड़ लिए और उसे द्वार की ओर खींचने लगे।

सलीम ने रास्ता रोककर कहा—छोड़ दो उसके बाल, वरना अच्छा न होगा। मैं तुम दोनों को भूनकर रख दूं।

एक कांस्टेबल ने क्रोध-भरे स्वर में कहा—छोड़ कैसे दें? इसे ले जाएंगे साहब के पास। इसने हमारे दो आदमियों को गंडासे से जख्मी कर दिया। दोनों तड़प रहे हैं।

"तुम इसके घर में क्यों गए थे?"

"गए थे मवेशियों को खोलने। यह गंड़ासा लेकर टूट पड़ी।"

युवती ने टोका—झूठ बोलते हो। तुमने मेरी बांह नहीं पकड़ी थी?

सलीम ने लाल आंखों से सिपाही को देखा और धक्का देकर कहा—इसके बाल छोड़ दो !

"हम इसे साहब के पास ले जाएंगे।"

"तुम इसे नहीं ले जा सकते।"

सिपाहियों ने सलीम को हाकिम के रूप में देखा था। उसकी मातहती कर चुके थे। उस रोब का कुछ अंश उनके दिल पर बाकी था। उसके साथ जबर्दस्ती करने का साहस न हुआ। जाकर मि॰ घोष से फरियाद की। घोष बाबू सलीम से जलते थे। उनका खयाल था कि सलीम ही इस आंदोलन को चला रहा है और यदि उसे हटा दिया जाय, तो चाहे आंदोलन तुरंत शांत न हो जाय, पर उसकी जड़ टूट जाएगी, इसलिए सिपाहियों की रिपोर्ट सुनते ही तुरंत घोड़ा बढ़ाकर सलीम के पास आ पहुंचे और अंग्रेजी में कानून बघारने लगे। मलीम को भी अंग्रेजी बोलने का बहुत अच्छा अभ्यास था। दोनों में पहले कानूनी मुबाहसा हुआ, फिर धार्मिक तत्त्व निरूपण का नंबर आया, इसमें उतर कर दोनों दार्शनिक तर्क-वितर्क करने लगे, यहां तक कि अंत में व्यक्तिगत आक्षेपों की बौछार होने लगी। इसके एक ही क्षण बाद शब्द ने क्रिया का रूप धारण किया। मिस्टर घोष ने हंटर चलाया, जिमने सलीम के चेहरे पर एक नीली चौड़ी उभरी हुई रेखा छोड़ दी। आंखें बाल-बाल बच गई। सलीम भी जामे से बाहर हो गया। घोष की टांग पकड़कर जोर से खींचा। साहब घोड़े से नीचे गिर पड़े। सलीम उनकी छाती पर चढ़ बैठा और नाक पर घूंसा मारा। घोष बाबू मूर्छित हो गए। सिपाहियों ने दूसरा घूंसा न पड़ने दिया। चार आदमियों ने दौड़कर सलीम को जकड़ लिया। चार आदमियों ने घोष को उठाया और होश में लाए।

अंधेरा हो गया था। आतंक ने सारे गांव को पिशाच की भांति छाप लिया था। लोग शोक से और आतंक के भाव से दबे, मरने वालों की लाशें उठा रहे थे। किसी के मुंह से रोने की आवाज न निकलती थी। जख्म ताजा था, इसलिए टीस न थी। रोना पराजय का लक्षण है, इन प्राणियों को विजय का गर्व था। रोकर अपनी दीनता प्रकट न करना चाहते थे। बच्चे भी जैसे रोना भूल गए थे।

मिस्टर घोष घोड़े पर सवार होकर डाक बंगले गए। सलीम एक सब-इंस्पेक्टर और कई कांस्टेबलों के साथ एक लारी पर सदर भेज दिया गया। यह अहीरिन युवती भी उसी लारी पर भेजी गई थी। पहर रात जाते-जाते चारों अर्थियां गंगा की ओर चलीं। सलोनी लाठी टेकती हुई आगे-आगे गाती जाती थी—

**सैंया मोरा रूठा जाय सखी री**

## आठ

काले खां के आत्म-समर्पण ने अमरकान्त के जीवन को जैसे कोई आधार प्रदान कर दिया। अब तक उसके जीवन का कोई लक्ष्य न था, कोई आदर्श न था, कोई व्रत न था। इस मृत्यु ने उनकी आत्मा में प्रकाश-सा डाल दिया। काले खां की याद उसे एक क्षण के लिए भी न भूलती और किसी गुप्त शक्ति की भांति उसे शांति और बल देती थी। वह उनकी वसीयत इस तरह पूरी करना चाहता था कि काले खां की आत्मा को स्वर्ग में शांति मिले। घड़ी रात से उठकर कैदियों का हाल-चाल पूछना और उनके घरों पर पत्र लिखकर रोगियों के लिए दवा-दारू का प्रबंध करना, उनकी शिकायतें सुनना और अधिकारियों से मिलकर शिकायतों को दूर करना, यह सब उसके काम थे। और इन कामों को वह इतनी विनय, इतनी नम्रता और सहृदयता से करता कि अमलों को भी उस पर संदेह की जगह विश्वास होता था। वह कैदियों

का भी विश्वासपात्र था और अधिकारियों का भी।

अब तक वह एक प्रकार से उपयोगितावाद का उपासक था। इसी सिद्धांत को मन में, यद्यपि अज्ञात रूप से, रखकर वह अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता था। तत्त्व-चिंतन का उसके जीवन में कोई स्थान न था। प्रत्यक्ष के नीचे जो अथाह गहराई है, वह उसके लिए कोई महत्त्व न रखती थी। उसने समझ रखा था, वहां शून्य के सिवा और कुछ नहीं। काले खां की मृत्यु ने जैसे उसका हाथ पकड़कर बलपूर्वक उसे गहराई में डुबा दिया और उसमें डूबकर उसे अपना सारा जीवन किसी तृण के समान ऊपर तैरता हुआ दीख पड़ा, कभी लहरों के साथ आगे बढ़ता हुआ, कभी हवा के झोंकों से पीछे हटता हुआ; कभी भंवर में पड़कर चक्कर खाता हुआ। उसमें स्थिरता न थी, संयम न था, इच्छा न थी। उसकी सेवा में भी दंभ था, प्रमाद था, द्वेष था। उसने दंभ में सुखदा की उपेक्षा की। उस विलासिनी के जीवन में जो सत्य था, उस तक पहुंचने का उद्योग न करके वह उसे त्याग बैठा। उद्योग करता भी क्या? तब उसे इस उद्योग का ज्ञान भी न था। प्रत्यक्ष ने उसी भीतर वाली आखों पर परदा डालकर रखा था। प्रमाद में उसने सकीना से प्रेम का स्वांग किया। क्या उस उन्माद में लेशमात्र भी प्रेम की भावना थी? उस समय मालूम होता था, वह प्रेम में रत हो गया है, अपना सर्वस्व उस पर अर्पण किए देता है, पर आज उस प्रेम में लिप्सा के सिवा और उसे कुछ न दिखाई देता था। लिप्सा ही न थी, नीचता भी थी। उसने उस सरल रमणी की हीनावस्था से अपनी लिप्सा शांत करनी चाही थी। फिर मुन्नी उसके जीवन में आई, निराशाओं से भग्न, कामनाओं से भरी हुई। उस देवी से उसने कितना कपट व्यवहार किया! यह सत्य है कि उसके व्यवहार में कामुकता न थी। वह इसी विचार से अपने मन को समझा लिया करता था, लेकिन अब आत्म-निरीक्षण करने पर स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि उस विनोद में भी, उस अनुराग में भी कामुकता का समावेश था। तो क्या वह वास्तव में कामुक है? इसका जो उत्तर उसने स्वयं अपने अंतःकरण से पाया, वह किसी तरह श्रेयस्कर न था। उसने सुखदा पर विलासिता का दोष लगाया, पर वह स्वयं उससे कहीं कुत्सित, कहीं विषय-पूर्ण विलासिता में लिप्त था। उसके मन में प्रबल इच्छा हुई कि दोनों रमणियों के चरणों पर सिर रखकर रोए और कहे—देवियो, मैंने तुम्हारे साथ छल किया है, तुम्हें दगा दी है। मैं नीच हूं, अधम हूं, मुझे जो सजा चाहे दो, यह मस्तक तुम्हारे चरणों पर है।

पिता के प्रति भी अमरकान्त के मन में श्रद्धा का भाव उदय हुआ। जिसे उसने माया का दास और लोभ का कीड़ा समझ लिया था, जिसे यह किसी प्रकार के त्याग के अयोग्य समझता था, वह आज देवत्व के ऊंचे सिंहासन पर बैठा हुआ था। प्रत्यक्ष के नशे में उसने किसी न्यायी, दयालु ईश्वर की सत्ता को कभी स्वीकार न किया था, पर इन चमत्कारों को देखकर अब उसमें विश्वास और निष्ठा का जैसे एक सागर-सा उमड़ पड़ा था। उसे अपने छोटे-छोटे व्यवहारों में भी ईश्वरीय इच्छा का आभास होता था। जीवन में अब एक नया उत्साह था। नई जागृति थी। हर्षमय आशा से उसका रोम-रोम स्पंदित होने लगा। भविष्य अब उसके लिए अंधकारमय न था। दैवी इच्छा में अंधकार कहां!

संध्या का समय था। अमरकान्त परेड में खड़ा था, उसने सलीम को आते देखा। सलीम के चरित्र में कायापलट हुआ था, उसकी उसे खबर मिल चुकी थी, पर यहां तक नौबत पहुंच चुकी है, इसका उसे गुमान भी न था। वह दौड़कर सलीम के गले से लिपट गया। और बोला—

तुम खूब आए दोस्त, अब मुझे यकीन आ गया कि ईश्वर हमारे साथ है। सुखदा भी तो यहीं है, जनाने जेल में। मुन्नी भी आ पहुंची। तुम्हारी कसर थी, वह भी पूरी हो गई। मैं दिल में समझ रहा था, तुम भी एक-न-एक दिन आओगे, पर इतनी जल्दी आओगे, यह उम्मीद न थी। वहां की ताजा खबरें सुनाओ। कोई हंगामा तो नहीं हुआ?

सलीम ने व्यंग्य से कहा–जी नहीं, जरा भी नहीं। हंगामे की कोई बात भी हो? लोग मजे से खा रहे हैं और फाग गा रहे हैं। आप यहां आराम से बैठे हुए हैं न?

उसने थोड़े-से शब्दों में वहां की सारी परिस्थिति कह सुनाई--मवेशियों का कुर्क किया जाना, कसाइयों का आना, अहीरों के मुहाल में गोलियों का चलना। घोष को पटककर मारने की कथा उसने विशेष रुचि से कही।

अमरकान्त का मुंह लटक गया–तुमने सरासर नादानी की।

''और आप क्या समझते थे, कोई पंचायत है, जहां शराब और हुक्के के साथ सारा फैसला हो जाएगा?''

''मगर फरियाद तो इस तरह नहीं की जाती?''

''हमने तो कोई रिआयत नहीं चाही थी।''

''रिआयत तो थी ही। जब तुमने एक शर्त पर जमीन ली तो इंसाफ यह कहता है कि वह शर्त पूरी करो। पैदावार की शर्त पर किसानों ने जमीन नहीं जोती थी, बल्कि सालाना लगान की शर्त पर। जमींदार या सरकार को पैदावार की कमी बेशी से कोई सरोकार नहीं है।''

''जब पैदावार के महंगे हो जाने पर लगान बढ़ा दिया जाता है तो कोई वजह नहीं कि पैदावार के सस्ते हो जाने पर घटा न दिया जाय। मंदी में तेजी का लगान वसूल करना सरासर बेइंसाफी है।''

''मगर लगान लाठी के जोर से तो नहीं बढ़ाया जाता, उसके लिए भी तो कानून है?''

सलीम को विस्मय हो रहा था, ऐसी भयानक परिस्थिति सुनकर भी अमर इतना शांत कैसे बैठा हुआ है? इसी दशा में उसने यह खबरें सुनी होतीं, तो शायद उसका खून खौल उठता और वह आपे से बाहर हो जाता। अवश्य ही अमर जेल में आकर दब गया है। ऐसी दशा में उसने उन तैयारियों को उससे छिपाना ही उचित समझा, जो आजकल [illegible]न का मुकाबला करने के लिए की जा रही थीं।

अमर उसके जवाब की प्रतीक्षा कर रहा था। जब सलीम ने कोई जवाब न दिया, तो उसने पूछा--तो आजकल वहां कौन है? स्वामीजी हैं?

सलीम ने सकुचाते हुए कहा–स्वामीजी तो शायद पकड़े गए। मेरे बाद ही वहां सकीना पहुंच गई।

''अच्छा! सकीना भी परदे से निकल आई? मुझे तो उससे ऐसी उम्मीद न थी।''

''तो क्या तुमने समझा था कि आग लगाकर तुम उसे एक दायरे के अंदर रोक लोगे?''

अमर ने चिंतित होकर कहा–मैंने तो यही समझा था कि हमने हिंसा भाव को लगाम दे दी है और वह काबू से बाहर नहीं हो सकता।

''आप आजादी चाहते हैं, मगर उसकी कीमत नहीं देना चाहते।''

''आपने जिस चीज को आजादी की कीमत समझ रखा है, वह उसकी कीमत नहीं है। उसकी कीमत है-हक और सच्चाई पर जमे रहने की ताकत।''

सलीम उत्तेजित हो गया—यह फिजूल की बात है। जिस चीज की बुनियाद जब्र पर है, उस पर हक और इंसाफ का कोई असर नहीं पड़ सकता।

अमर ने पूछा—क्या तुम इसे तस्लीम नहीं करते कि दुनिया का इंतजाम हक और इंसाफ पर कायम है और हरेक इंसान के दिल की गहराइयों के अंदर वह तार मौजूद है, जो कुरबानियों से झंकार उठता है?

सलीम ने कहा—नहीं, मैं इसे तस्लीम नहीं करता। दुनिया का इंतजाम खुदगरजी और जोर पर कायम है और ऐसे बहुत कम इंसान हैं जिनके दिल की गहराइयों के अंदर वह तार मौजूद हो।

अमर ने मुस्कराकर कहा—तुम तो सरकार के खैरख्वाह नौकर थे। तुम जेल में कैसे आ गए?

सलीम हंसा—तुम्हारे इश्क में।

"दादा को किसका इश्क था?"

"अपने बेटे का।"

"और सुखदा को?"

"अपने शौहर का।"

"और सकीना को? और मुन्नी को? और इन सैकड़ों आदमियों को, जो तरह-तरह की सख्तियां झेल रहे हैं?"

"अच्छा मान लिया कि कुछ लोगों के दिल की गहराइयों के अंदर यह तार है, मगर ऐसे आदमी कितने हैं?"

"मैं कहता हूं; ऐसा कोई आदमी नहीं जिसके अंदर हमदर्दी का तार न हो। हां, किसी पर जल्द असर होता है, किसी पर देर में और कुछ ऐसे गरज के बंदे भी हैं जिन पर शायद कभी न हो।"

सलीम ने हारकर कहा—तो आखिर का तुम चाहते क्या हो? लगान हम दे नहीं सकते। वह लोग कहते हैं; हम लेकर छोड़ेंगे। तो क्या करें? अपना सब कुछ कुर्क हो जाने दें? अगर हम कुछ कहते हैं, तो हमारे ऊपर गोलियां चलती हैं। नहीं बोलते, तो तबाह हो जाते हैं। फिर दूसरा कौन-सा रास्ता है? हम जितना ही दबते जाते हैं, उतना ही वह लोग शेर होते हैं। मरने वाला बेशक दिलों में रहम पैदा कर सकता है; लेकिन मारने वाला खौफ पैदा कर सकता है, जो रहम से कहीं ज्यादा असर डालने वाली चीज है।

अमर ने इस प्रश्न पर महीनों विचार किया था। वह मानता था, संसार में पशुबल का प्रभुत्व है किंतु पशुबल को भी न्याय बल की शरण लेनी पड़ती है। आज बलवान-से-बलवान राष्ट्र में भी यह साहस नहीं है कि वह किसी निर्बल राष्ट्र पर खुल्लम-खुल्ला यह कहकर हमला करे कि 'हम तुम्हारे ऊपर राज करना चाहते हैं; इसलिए तुम हमारे अधीन हो जाओ'। उसे अपने पक्ष को न्याय-संगत दिखाने के लिए कोई-न-कोई बहाना तलाश करना पड़ता है। बोला—अगर तुम्हारा खयाल है कि खून और कत्ल से किसी कौम की नजात हो सकती है, तो तुम सख्त गलती पर हो। मैं इसे नजात नहीं कहता कि एक जमाअत के हाथों से ताकत निकालकर दूसरे जमाअत के हाथों में आ जाय और वह भी तलवार के जोर से राज करे। मैं नजात उसे कहता हूं कि इंसान में इंसानियत आ जाय और इंसानियत की जब्र बेइंसाफी और

खुदगरजी से दुश्मनी है।

सलीम को यह कथन तत्त्वहीन मालूम हुआ। मुंह बनाकर बोला—हुजूर को मालूम रहे कि दुनिया में फरिश्ते नहीं बसते, आदमी बसते हैं।

अमर ने शांत-शीतल हृदय मे जवाब दिया—लेकिन क्या तुम देख नहीं रहे हो कि हमारी इंसानियत सदियों तक खून और कत्ल में डूबे रहने के बाद अब सच्चे रास्ते पर आ रही है? उसमें यह ताकत कहां से आई? उसमें खुद वह दैवी शक्ति मौजूद है। उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। बड़ी-से-बड़ी फौजी ताकत भी उसे कुचल नहीं सकती, जैसे सूखी जमीन में घास की जड़ें पड़ी रहती हैं और ऐसा मालूम होता है कि जमीन साफ हो गई, लेकिन पानी के छींटे पड़ते ही वह जड़ें पनप उठती हैं, हरियाली से सारा मैदान लहराने लगता है, उसी तरह इस कलों और हथियारों और खुदगरजियों के जमाने में भी हममें वह दैवी शक्ति छिपी हुई अपना काम कर रही है। अब वह जमाना आ गया है, जब हक की आवाज तलवार की झंकार या तोप की गरज से भी ज्यादा कारगर होगी। बड़ी-बड़ी कौमें अपनी-अपनी फौजी और जहाजी ताकतें घटा रही हैं। क्या तुम्हें इससे आने वाले जमाने का कुछ अंदाज नहीं होता? हम इसलिए गुलाम हैं कि हमने खुद गुलामी की बेड़ियां अपने पैरों में डाल ली हैं। जानते हो कि यह बेड़ी क्या है? आपस का भेद। जब तक हम इस बेड़ी को काटकर प्रेम न करना सीखेंगे, सेवा में ईश्वर का रूप न देखेंगे, हम गुलामी म पड़े रहेंगे। मैं यह नहीं कहता कि जब तक भारत का हरेक व्यक्ति इतना बेदार न हो जाएगा, तब तक हमारी नजात न होगी। ऐसा तो शायद कभी न हो, पर कम-से-कम उन लोगों के अंदर तो यह रोशनी आनी ही चाहिए, जो कौम के सिपाही बनते हैं। पर हममें कितने एसे हैं, जिन्होंने अपने दिल को प्रेम से रोशन किया हो? हममें अब भी वही ऊंच-नीच का भाव है, वही स्वार्थ-लिप्सा है, वही अहंकार है।

बाहर ठंड पड़ने लगी थी। दोनों मित्र अपनी-अपनी कोठरियों में गए। सलीम जवाब देने के लिए उतावला हो रहा था, पर वार्डर ने जल्दी की और उन्हें उठना पड़ा।

दरवाजा बंद हो गया, तो अमरकान्त ने एक लंबी सांस ली और फरियादी आंखों से छत की तरफ देखा। उसके सिर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। उसके हा - कितने बेगुनाहों के खून से रंगे हुए हैं! कितने यतीम बच्चे और अबला विधवाएं उसका दामन पकड़कर खींच रही हैं। उसने क्यों इतनी जल्दबाजी से काम किया? क्या किसानों की फरियाद के लिए यही एक साधन रह गया था? और किसी तरह फरियाद की आवाज नहीं उठाई जा सकती थी? क्या यह इलाज बीमारी से ज्यादा असाध्य नहीं है? इन प्रश्नों ने अमरकान्त को पथभ्रष्ट-सा कर दिया। इस मानसिक संकट में काले खां की प्रतिमा उसके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसे आभास हुआ कि वह उससे कह रही है--ईश्वर की शरण में जा। वहीं तुझे प्रकाश मिलेगा।

अमरकान्त ने वहीं भूमि पर मस्तक रखकर शुद्ध अंतःकरण से अपने कर्त्तव्य की जिज्ञासा की—भगवन्, मैं अंधकार में पड़ा हुआ हूं! मुझे सीधा मार्ग दिखाइए।

और इस शांत, दीन प्रार्थना में उसको ऐसी शा... मिली, मानो उसके सामने कोई प्रकाश आ गया है और उसकी फैली हुई रोशनी में चिकना रास्ता साफ नजर आ रहा है।

# नौ

पठानिन की गिरफ्तारी ने शहर में ऐसी हलचल मचा दी, जैसी किसी को आशा न थी। जीर्ण वृद्धावस्था में इस कठोर तपस्या ने मृतकों में भी जीवन डाल दिया, भीरू और स्वार्थ-सेवियों को भी कर्मक्षेत्र में ला खड़ा किया। लेकिन ऐसे निर्लज्जों की अब भी कमी न थी, जो कहते थे—इसके लिए जीवन में अब क्या धरा है? मरना ही तो है। बाहर न मरी, जेल में मरी। हमें तो अभी बहुत दिन जीना है, बहुत कुछ करना है, हम आग में कैसे कूदें?

संध्या का समय है। मजदूर अपने-अपने काम छोड़कर, छोटे दूकानदार अपनी-अपनी दूकानें बंद करके घटना-स्थल की ओर भागे चले जा रहे हैं। पठानिन अब वहां नहीं है, जेल पहुंच गई होगी। हथियारबंद पुलिस का पहरा है, कोई जलसा नहीं हो सकता, कोई भाषण नहीं हो सकता, बहुत-से आदमियों का जमा होना भी खतरनाक है, पर इस समय कोई कुछ नहीं सोचता, किसी को कुछ दिखाई नहीं देता—सब किसी वेगमय प्रवाह में बहे जा रहे हैं। एक क्षण में सारा मैदान जन-समूह से भर गया।

सहसा लोगों ने देखा, एक आदमी ईटों के एक ढेर पर खड़ा कुछ कह रहा है। चारों ओर से दौड़-दौड़कर लोग वहां जमा हो गए—जन-समूह का एक विराट् सागर उमड़ा हुआ था। यह आदमी कौन है? लाला समरकान्त! जिनकी बहू जेल में है, जिनका लड़का जेल में है।

"अच्छा, यह लाला है! भगवान् बुद्धि दे, तो इस तरह। पाप से जो कुछ कमाया वह पुण्य में लुटा रहे हैं।"

"है बड़ा भागवान्।"

"भागवान् न होता, तो बुढ़ापे में इतना जस कैसे कमाता!"

"सुनो, सुनो!"

"वह दिन आएगा, जब इसी जगह गरीबों के घर बनेंगे और जहां हमारी माता गिरफ्तार हुई हैं, वहीं एक चौक बनेगा और उसके बीच में माता की प्रतिमा खड़ी की जाएगी। बोलो माता पठानिन की जय!"

दस हजार गलों से 'माता की जय!' की ध्वनि निकलती है विकल, उत्तप्त, गंभीर मानो गरीबों की हाय संसार में कोई आश्रय न पाकर आकाशवासियों से फरियाद कर रही है।

"सुनो, सुनो!"

"माता ने अपने बालकों के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। हमारे और आपके भी बालक हैं। हम और आप अपने बालकों के लिए क्या करना चाहते हैं आज इसका निश्चय करना होगा।"

शोर मचता है—हड़ताल, हड़ताल!

"हां, हड़ताल कीजिए, मगर वह हड़ताल, एक या दो दिन की न होगी, वह उस वक्त तक रहेगी, जब तक हमारे नगर के विधाता हमारी आवाज न सुनेंगे। हम गरीब हैं, दीन हैं, दुखी हैं, लेकिन बड़े आदमी अगर जरा शांतचित्त होकर ध्यान करेंगे, तो उन्हें मालूम हो जाएगा कि दीन-दुखी प्राणियों ही ने उन्हें बड़ा आदमी बना दिया है। ये बड़े बड़े महल जान हथेली पर रखकर कौन बनाता है? इन कपड़े की मिलों में कौन काम करता है? प्रातः

काल द्वार पर दूध और मक्खन लेकर कौन आवाज देता है? मिठाइयां और फल लेकर कौन बड़े आदमियों के नाश्ते के समय पहुंचता है? सफाई कौन करता है, कपड़े कौन धोता है? सबेरे अखबार और चिट्ठियां लेकर कौन पहुंचता है? शहर के तीन-चौथाई आदमी एक-चौथाई के लिए अपना रक्त जला रहे हैं। इसका प्रसाद यही मिलता है कि उन्हें रहने के लिए स्थान नहीं! एक बंगले के लिए कई बीघे जमीन चाहिए। हमारे बड़े आदमी साफ-सुथरी हवा और खुली हुई जगह चाहते हैं। उन्हें यह खबर नहीं है कि जहां असंख्य प्राणी दुर्गंध और अंधकार में पड़े भयंकर रोगों से मर-मरकर रोग के कीड़े फैला रहे हों, वहां खुले हुए बंगले में रहकर भी वह सुरक्षित नहीं हैं, यह किसकी जिम्मेदारी है कि शहर के छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी आदमी स्वस्थ रह सकें? अगर म्युनिसिपैलिटी इस प्रधान कर्त्तव्य को नहीं पूरा कर सकती, तो उसे तोड़ देना चाहिए। रईसों और अमीरों की कोठियों के लिए, बगीचों के लिए, महलों के लिए, क्यों इतनी उदारता से जमीन दे दी जाती है? इसलिए कि हमारी म्युनिसिपैलिटी गरीबों की जान का कोई मूल्य नहीं समझती। उसे रुपये चाहिए, इसलिए कि बड़े-बड़े अधिकारियों को बड़ी-बड़ी तलब दी जाए। वह शहर को विशाल भवनों से अलंकृत कर देना चाहती है, उसे स्वर्ग की तरह सुंदर बना देना चाहती है, पर जहां की अंधेरी दुर्गंधपूर्ण गलियों में जनता पड़ी कराह रही हो, वहां इन विशाल भवनों से क्या होगा? यह तो वही बात है कि कोई देह के कोढ़ को रेशमी वस्त्रों से छिपाकर इठलाता फिरे। सज्जनो! अन्याय करना जितना बड़ा पाप है, उतना ही बड़ा अन्याय सहना भी है। आज निश्चय कर लो कि तुम यह दुर्दशा न सहोगे। यह महल और बंगले नगर की दुर्बल देह पर छाले हैं, मसवृद्धि हैं। इन मसवृद्धियों को काटकर फेंकना होगा। जिस जमीन पर हम खड़े हैं, वहां कम-से-कम दो हजार छोटे-छोटे सुंदर घर बन सकते हैं, जिनमें कम-से-कम दस हजार प्राणी आराम से रह सकते हैं। मगर यह सारी जमीन चार-पांच बंगलों के लिए बेची जा रही है। म्युनिसिपैलिटी को दस लाख रुपये मिल रहे हैं। इसे वह कैसे छोड़े? शहर के दस हजार मजदूरों की जान दस लाख के बराबर भी नहीं!''

एकाएक पीछे के आदमियों ने शोर मचाया—पुलिस! पुलिस आ गई!

कुछ लोग भागे, कुछ लोग सिमटकर और आगे बढ़ आए।

लाला समरकान्त बोले—भागो मत, भागो मत पुलिस मुझे गिरफ्तार करेगी। मैं उसका अपराधी हूं, और मैं ही क्यों, मेरा सारा घर उसका अपराधी है। मेरा लड़का जेल में है, मेरी बहू और पोता जेल में हैं। मेरे लिए अब जेल के सिवा और कहां ठिकाना है? मैं तो जाता हूं। (पुलिस से) वहीं ठहरिए साहब, मैं खुद आ रहा हूं। मैं तो जाता हूं, मगर यह कहे जाता हूं कि अगर लौटकर मैंने यहां गरीब भाइयों के घरों की पांतियां फूलों की भांति लहलहाती न देखीं, तो यहीं मेरी चिता बनेगी।

लाला समरकान्त कूदकर ईंटों के टीले से नीचे आए और भीड़ को चीरते हुए जाकर पुलिस कप्तान के पास खड़े हो गए। लारी तैयार थी, कप्तान ने उन्हें लारी में बैठाया। लारी चल दी।

''लाला समरकान्त की जय!'' की गहरी, हार्दिक वेदना से भरी हुई ध्वनि किसी बंधुए पशु की भांति तड़पती, छटपटाती ऊपर को उठी, मानो परवशता के बंधन को तोड़कर निकल जाना चाहती हो।

एक समूह लारी के पीछे दौड़ा; अपने नेता को छुड़ाने के लिए नहीं, केवल श्रद्धा के आवेश में, मानो कोई प्रसाद, कोई आशीर्वाद पाने की सरल उमंग में। जब लारी गर्द में लुप्त हो गई, तो लोग लौट पड़े।

''यह कौन खड़ा बोल रहा है?''

''कोई औरत जान पड़ती है।''

''कोई भले घर की औरत है।''

''अरे यह तो वही हैं, लालाजी का समधिन, रेणुकादेवी।''

''अच्छा ! जिन्होंने पाठशाले के नाम अपनी सारी जमा-जथा लिख दी।''

''सुनो ! सुनो !''

''प्यारे भाइयो, लाला समरकान्त जैसा योगी जिस सुख के लोभ से चलायमान हो गया, वह कोई बड़ा भारी सुख होगा, फिर मैं तो औरत हूं, और औरत लोभिन होती ही है। आपके शास्त्र-पुराण सब यही कहते हैं। फिर मैं उस लोभ को कैसे रोकूं? मैं धनवान् की बहू, धनवान की स्त्री, भोग-विलास में लिप्त रहने वाली, भजन-भाव में मगन रहने वाली, मैं क्या जानूं गरीबों को क्या कष्ट है, उन पर क्या बीतती है। लेकिन इस नगर ने मेरी लड़की छीन ली, मेरी जायदाद छीन ली, और अब मैं भी तुम लोगों ही की तरह गरीब हूं। अब मुझे इस विश्वनाथ की पुरी में एक झोंपड़ा बनवाने की लालसा है। आपको छोड़कर मैं और किसके पास मांगने जाऊं। यह नगर तुम्हारा है। इसकी एक-एक अंगुल जमीन तुम्हारी है। तुम्हीं इसके राजा हो। मगर सच्चे राजा की भांति तुम भी त्यागी हो। राजा हरिश्चन्द्र की भांति अपना सर्वस्व दूसरों को देकर, भिखारियों को अमीर बनाकर, तुम आज भिखारी हो गए हो। जानते हो वह छल से खोया हुआ राज्य तुमको कैसे मिलेगा? तुम डोम के हाथों बिक चुके। अब तुम्हें रोहिताश्व और शैव्या को त्यागना पड़ेगा। तभी देवता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे। मेरा मन कह रहा है कि देवताओं में तुम्हारा राज्य दिलाने की बातचीत हो रही है। आज नहीं तो कल तुम्हारा राज्य तुम्हारे अधिकार में आ जाएगा। उस वक्त मुझे भूल न जाना। मैं तुम्हारे दरबार में अपना प्रार्थना-पत्र पेश किए जा रही हूं।''

सहसा पीछे से शोर मचा फिर पुलिस आ गई !

''आने दो। उनका काम है अपराधियों को पकड़ना। हम अपराधी हैं। गिरफ्तार न कर लिए गए, तो आज नगर में डाका मारेंगे, चोरी करेंगे, या कोई षड्यंत्र रचेंगे। मैं कहती हूं, कोई संस्था जो जनता पर न्यायबल से नहीं, पशुबल से शासन करती है, वह लुटेरों की संस्था है। जो गरीबों का हक लूटकर खुद मालदार हो रहे हैं, दूसरों के अधिकार छीनकर अधिकारी बने हुए हैं, वास्तव में वही लुटेरे हैं। भाइयो, मैं तो जाती हूं, मगर मेरा प्रार्थना-पत्र आपके सामने है। इस लुटेरी म्युनिसिपैलिटी को ऐसा सबक दो कि फिर उसे गरीबों को कुचलने का साहस न हो। जो तुम्हें रौंदे, उसके पांव में कांटे बनकर चुभ जाओ। कल से ऐसी हड़ताल करो कि धनियों और अधिकारियों को तुम्हारी शक्ति का अनुभव हो जाय, उन्हें विदित हो जाय कि तुम्हारे सहयोग के बिना वे न धन को भोग सकते हैं, न अधिकार को। उन्हें दिखा दो कि तुम्हीं उनके हाथ हो, तुम्हीं उनके पांव हो, तुम्हारे बगैर वे अपंग हैं।''

वह टीले से नीचे उतरकर पुलिस-कर्मचारियों की ओर चलीं तो सारा जन-समूह, हृदय में उमड़कर आंखों में रुक जाने वाले आंसुओं की भांति, उनकी ओर ताकता रह गया। बाहर

निकलकर मर्यादा का उल्लंघन कैसे करें? वीरों के आंसू बाहर निकलकर सूखते नहीं, वृक्षों के रस की भांति भीतर ही रहकर वृक्ष को पल्लवित और पुष्पित कर देते हैं। इतने बड़े समूह में एक कंठ से भी जयघोष नहीं निकला। क्रिया-शक्ति अंतर्मुखी हो गई थी, मगर जब रेणुका मोटर में बैठ गईं और मोटर चली, तो श्रद्धा की वह लहर मर्यादाओं को तोड़कर एक पतली गहरी, वेगमयी धारा में निकल पड़ी।

एक बूढ़े आदमी ने डांटकर कहा--जय-जय बहुत कर चुके। अब घर जाकर आटा-दाल जमा कर लो। कल से लंबी हड़ताल करनी है।

दूसरे आदमी ने समर्थन किया--और क्या ! यह नहीं कि यहां तो गला फाड़-फाड़ चिल्लाएं और सबेरा होते ही अपने-अपने काम पर चल दिए।

''अच्छा, यह कौन खड़ा हो गया?''

''वाह, इतना भी नहीं पहचानते? डॉक्टर साहब हैं।''

''डॉक्टर साहब भी आ गए? अब तो फतह है !''

''कैसे-कैसे शरीफ आदमी हमारी तरफ से लड़ रहे हैं? पूछो, इन बेचारों को क्या लेना है, जो अपना सुख-चैन छोड़कर, अपने बराबरवालों से दुश्मनी मोल लेकर, जान हथेली पर लिए तैयार हैं।''

''हमारे ऊपर अल्लाह का रहम है। इन डॉक्टर साहब ने पिछले दिनों जब प्लेग का रोग फैला था, गरीबों की ऐसी खिदमत की कि वाह ! जिनके पास अपने भाई-बंद तक न खड़े होते थे, वहां बेधड़क चले जाते थे और दवा-दारू, रुपया-पैसा, सब तरह की मदद तैयार ! हमारे हाफिजजी तो कहते थे यह अल्लाह का फरिश्ता है।''

''सुनो, सुनो, बकवास करने को रात-भर पड़ी है।''

''भाइयो ! पिछली बार जब हड़ताल की थी, उसका क्या नतीजा हुआ? अगर वैसी ही हड़ताल हुई, तो उससे अपना ही नुकसान होगा। हममें से कुछ चुन लिए जाएंगे, बाकी आदमी मतभेद हो जाने के कारण आपस में लड़ते रहेंगे और असली उद्देश्य की किसी को सुध न रहेगी। सरगनों के हटते ही पुरानी अदावतें निकाली जाने लगेंगी, गड़े मुर्दे उखाड़े जाने लगेंगे, न कोई संगठन रह जाएगा, न कोई जिम्मेदारी। सभी पर आतंक छा जाएगा, इसलिए अपने दिल को टटोलकर देख लो। अगर उसमें कच्चापन हो, तो हड़ताल का विचार दिल से निकाल डालो। ऐसी हड़ताल से दुर्गंध और गंदगी में मरते जाना कहीं अच्छा है। अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारा दिल भीतर से मजबूत है, उसमें हानि सहने की, भूखों मरने की, कष्ट झेलने की सामर्थ्य है, तो हड़ताल करो। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक हडताल रहेगी, तुम अदावतें भूल जाओगे, नफे-नुकसान की परवाह न करोगे। तुमने कबड्डी तो खेली ही होगी। कबड्डी में अक्सर ऐसा होता है कि एक तरफ से सब गुइयां मर जाते हैं केवल एक खिलाड़ी रह जाता है, मगर वह एक खिलाड़ी भी उसी तरह कानून-कायदे से खेलता चला जाता है। उसे अंत तक आशा बनी रहती है कि वह अपने मरे गुइयों को जिला लेगा और सब-के-सब फिर पूरी शक्ति से बाजी जीतने का उद्योग करेंगे। हरेक खिलाड़ी का एक ही उद्देश्य होता है--पाला जीतना। इसके सिवा उस समय उसके मन में कोई भाव नहीं होता। किस गुइयां ने उसे कब गाली दी थी, कब उसका कनकौआ फाड़ डाला था, या कब उसको घूंसा मारकर भागा था, इसकी उसे जरा भी याद नहीं आती। उसी तरह इस समय तुम्हें अपना मन बनाना

पड़ेगा। मैं यह दावा नहीं करता कि तुम्हारी जीत ही होगी। जीत भी हो सकती है, हार भी हो सकती है। जीत या हार से हमें प्रयोजन नहीं। भूखा बालक भूख से विकल होकर रोता है। वह यह नहीं सोचता कि रोने से उसे भोजन मिल ही जाएगा। संभव है मां के पास पैसे न हों, या उसका जी अच्छा न हो, लेकिन बालक का स्वभाव है कि भूख लगने पर रोए, इसी तरह हम भी रो रहे हैं। हम रोते-रोते थककर सो जाएंगे, या माता वात्सल्य से विवश होकर हमें भोजन दे देगी, यह कौन जानता है? हमारा किसी से बैर नहीं, हम तो समाज के सेवक हैं, हम बैर करना क्या जानें ''

उधर पुलिस कप्तान थानेदार को डांट रहा था—जल्द लारी मंगवाओ। तुम बोलता था अब कोई आदमी नहीं है। अब यह कहां से निकल आया?

थानेदार ने मुंह लटकाकर कहा—हुजूर, यह डॉक्टर साहब तो आज पहली ही बार आए हैं। इनकी तरफ तो हमारा गुमान भी नहीं था। कहिए तो गिरफ्तार करके तांगे पर ले चलूं?

''तांगे पर! सब आदमी तांगे को घेर लेगा! हमें फायर करना पड़ेगा। जल्दी दौड़कर कोई टैक्सी लाओ।''

डॉक्टर शान्तिकुमार कह रहे थे :

''हमारा किसी से वैर नहीं है। जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है जिसकी बुनियाद न हो! कोई हल्का-सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है। मैं अपने धनवान् और विद्वान् और सामर्थ्यवान् भाइयों से पूछता हूं, क्या यही न्याय है कि एक भाई तो बंगले में रहे, दूसरे को झोपड़े भी नसीब न हों? क्या तुम्हें अपने ही जैसे मनुष्यों को इस दुर्दशा में देखकर शर्म नहीं आती? तुम कहोगे, हमने बुद्धि-बल से धन कमाया है, क्यों न उसका भोग करें? इस बुद्धि का नाम स्वार्थ-बुद्धि है, और जब समाज का संचालन स्वार्थ-बुद्धि के हाथ में आ जाता है, न्याय-बुद्धि गद्दी से उतार दी जाती है, तो समझ लो कि समाज में कोई विप्लव होनेवाला है। गर्मी बढ़ जाती है, तो तुरत ही आंधी आती है। मानवता हमेशा कुचली नहीं जा सकती। समता जीवन का तत्त्व है। यही एक दशा है, जो समाज को स्थिर रख सकती है। थोड़े-से धनवानों को हरगिज यह अधिकार नहीं है कि वे जनता की ईश्वरदत्त वायु और प्रकाश का अपहरण करें। यह विशाल जनसमूह उसी अनधिकार, उसी अन्याय का रोषमय रुदन है। अगर धनवानों की आंखें अब भी नहीं खुलतीं, तो उन्हें पछताना पड़ेगा। यह जागृति का युग है। जागृति अन्याय को सहन नहीं कर सकती। जागे हुए आदमी के घर में चोर और डाकू की गति नहीं ''

इतने में टैक्सी आ गई। पुलिस कप्तान कई थानेदारों और कांस्टेबलों के साथ समूह की तरफ चला।

थानेदार ने पुकारकर कहा—डॉक्टर साहब, आपका भाषण तो समाप्त हो चुका होगा। अब चले आइए, हमें क्यों वहां आना पड़े?

शान्तिकुमार ने ईंट-मंच पर खड़े-खड़े कहा—मैं अपनी खुशी से तो गिरफ्तार होने न आऊंगा, आप जबरदस्ती गिरफ्तार कर सकते हैं। और फिर अपने भाषण का सिलसिला जारी कर दिया।

''हमारे धनवानों को किसका बल है? पुलिस का। हम पुलिस ही से पूछते हैं, अपने कांस्टेबल भाइयों से हमारा सवाल है, क्या तुम भी गरीब नहीं हो? क्या तुम और तुम्हारे बाल-

बच्चे सड़े हुए, अंधेरे, दुर्गंध और रोग से भरे हुए बिलों में नहीं रहते? लेकिन यह जमाने की खूबी है कि तुम अन्याय की रक्षा करने के लिए, अपने ही बाल-बच्चों का गला घोंटने के लिए तैयार खड़े हो ''

कप्तान ने भीड़ के अंदर जाकर शान्तिकुमार का हाथ पकड़ लिया और उन्हें साथ लिए हुए लौटा। सहसा नैना सामने से आकर खड़ी हो गई।

शान्तिकुमार ने चौंककर पूछा—तुम किधर से नैना? सेठजी और देवीजी तो चल दिए, अब मेरी बारी है।

नैना मुस्कराकर बोली—और आपके बाद मेरी।

''नहीं, कहीं ऐसा अनर्थ न करना। सब कुछ तुम्हारे ही ऊपर है।''

नैना ने कुछ जवाब न दिया। कप्तान डॉक्टर को लिए हुए आगे बढ़ गया। उधर सभा में शोर मचा हुआ था। अब उनका क्या कर्त्तव्य है, इसका निश्चय वह लोग न कर पाते थे। उनकी दशा पिघली हुई धातु की-सी थी। उसे जिस तरफ चाहे मोड़ सकते हैं। कोई भी चलता हुआ आदमी उनका नेता बनकर उन्हें जिस तरफ चाहे ले जा सकता था—सबसे ज्यादा आसानी के साथ शांतिभंग की ओर। चित्त की उस दशा में, जो इन ताबड़तोड़ गिरफ्तारियों से शांतिपथ-विमुख हो रहा था, बहुत संभव था कि वे पुलिस पर जाकर पत्थर फेंकने लगते, या बाजार लूटने पर आमादा हो जाते। उसी वक्त नैना उनके सामने जाकर खड़ी हो गई। वह अपनी बग्घी पर सैर करने निकली थी। रास्ते में उसने लाला समरकान्त और रेणुकादेवी के पकड़े जाने की खबर सुनी। उसने तुरंत कोचवान को इस मैदान की ओर चलने को कहा, और दौड़ी चली आ रही थी। अब तक उसने अपने पति और ससुर को मर्यादा का पालन किया था। अपनी ओर से कोई ऐसा काम न करना चाहती थी कि ससुराल वालों का दिल दुखे, या उनके असंतोष का कारण हो। लेकिन यह खबर पाकर वह संयत न रह सकी। मनीराम जामे से बाहर हो जाएंगे, लाला धनीराम छाती पीटने लगेंगे, उसे गम नहीं। कोई उसे रोक ले, तो वह कदाचित आत्म-हत्या कर बैठे। वह स्वभाव से ही लज्जाशील थी। घर के एकांत में बैठकर वह चाहे भूखों मर जाती, लेकिन बाहर निकलकर किसी से सवाल करना उसके लिए असाध्य था। रोज जलसे होते थे, लेकिन उसे कभी कुछ भाषण करने का साहस नहीं हुआ। यह नहीं कि उसके पास विचारों का अभाव था, अथवा वह अपने विचारों को व्यक्त न कर सकती थी। नहीं, केवल इसलिए कि जनता के सामने खड़े होने में उसे संकोच होता था। या यों कहो कि भीतर की पुकार कभी इतनी प्रबल न हुई कि मोह और आलस्य के बंधनों को तोड़ देती। बाज ऐसे जानवर भी होते हैं, जिनमें एक विशेष आसन होता है। उन्हें आप मार डालिए। पर आगे कदम न उठाएंगे। लेकिन उस मार्मिक स्थान पर उंगली रखते ही उनमें एक नया उत्साह, एक नया जीवन चमक उठता है। लाला समरकान्त की गिरफ्तारी ने नैना के हृदय में उसी मर्मस्थल को स्पर्श कर लिया। वह जीवन में पहली बार जनता के सामने खड़ी हुई, निश्शंक, निश्चल, एक नई प्रतिभा, एक नई प्रांजलता से आभासित। पूर्णिमा के रजत प्रकाश में ईंटों के टीले पर खड़ी जब उसने अपने कोमल किंतु गहरे कंठ-स्वर से जनता को संबोधित किया, तो जैसे सारी प्रकृति निःस्तब्ध हो गई।

''सज्जनो, मैं लाला समरकान्त की बेटी और लाला धनीराम की बहू हूं। मेरा प्यारा भाई जेल में है, मेरी प्यारी भावज जेल में है, मेरा सोने-सा भतीजा जेल में है, मेरे पिताजी भी

पहुंच गए।''

जनता की ओर से आवाज आई--रेणुकादेवी भी !

''हां, रेणुकादेवी भी, जो मेरी माता के तुल्य थीं। लड़की के लिए वही मैका है, जहा उसके मां-बाप, भाई-भावज रहें। और लड़की को मैका जितना प्यारा होता है, उतनी ससुराल नहीं होती। सज्जनो, इस जमीन के कई टुकड़े मेरे ससुरजी ने खरीदे हैं। मुझे विश्वास है, मैं आग्रह करूं तो वह यहां अमीरों के बंगले न बनवाकर गरीबों के घर बनवा देंगे, लेकिन हमारा उद्देश्य यह नहीं है। हमारी लड़ाई इस बात पर है कि जिस नगर में आधे से ज्यादा आबादी गंदे बिलों में मर रही हो, उसे कोई अधिकार नहीं है कि महलों और बंगलों के लिए जमीन बेचे। आपने देखा था, यहां कई हरे-भरे गांव थे। म्युनिसिपैलिटी ने नगर निर्माण-संघ बनाया। गांव के किसानों की जमीन कौड़ियों के दाम छीन ली गई, और आज वही जमीन अशर्फियों के दाम बिक रही है, इसलिए कि बड़े आदमियों के बंगले बनें। हम अपने नगर के विधाताओं से पूछते हैं, क्या अमीरों ही के जान होती है? गरीबों के जान नहीं होती? अमीरों ही को तंदुरुस्त रहना चाहिए? गरीबों को तंदुरुस्ती की जरूरत नहीं? अब जनता इस तरह मरने को तैयार नही है। अगर मरना ही है, तो इस मैदान में खुले आकाश के नीचे, चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में मरना बिलों में मरने से कहीं अच्छा है, लेकिन पहले हमें नगर-विधाताओं से एक बार और पूछ लेना है कि वह अब भी हमारा निवेदन स्वीकार करेंगे, या नहीं? अब भी सिद्धांत को मानेंगे, या नहीं? अगर उन्हें घमंड हो कि वे हथियार के जोर से गरीबों को कुचलकर उनकी आवाज बंद कर सकते हैं, तो यह उनकी भूल है। गरीबों का रक्त जहां गिरता है, वहां हरेक बूंद की जगह एक-एक आदमी उत्पन्न हो जाता है। अगर इस वक्त नगर-विधाताओं ने गरीबो की आवाज सुन ली, तो उन्हें संत का यश मिलेगा, क्योंकि गरीब बहुत दिनों तक गरीब नहीं रहेंगे और वह जमाना दूर नहीं, जब गरीबों के हाथ में शक्ति होगी। विप्लव के जंतु को छेड़-छेड़कर न जगाओ। उसे जितना ही छेड़ोगे, उतना ही झल्लाएगा और वह उठकर जम्हाई लेगा और जोर से दहाड़ेगा, तो फिर तुम्हें भागने की राह न मिलेगी। हमें बोर्ड के मेंबरों को यही चेतावनी देनी है। इस वक्त बहुत ही अच्छा अवसर है। सभी भाई म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर चलें। अब देर न करें, मेंबर अपने-अपने घर चले जाएंगे। हड़ताल में उपद्रव का भय है, इसलिए हड़ताल उसी हालत में करनी चाहिए, जब और किसी तरह काम न निकल सके।''

नैना ने झंडा उठा लिया और म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। उसके पीछे बीस-पच्चीस हजार आदमियों का एक सागर-सा उमड़ा हुआ चला। और यह दल मेलों की भीड़ की तरह अशृंखल नहीं, फौज की कतारों की तरह शृंखलाबद्ध था। आठ-आठ आदमियो की असंख्य पंक्तियां गंभीर भाव से एक विचार, एक उद्देश्य, एक धारणा की आंतरिक शक्ति का अनुभव करती हुई चली जा रही थीं, और उनका तांता न टूटता था, मानो भूगर्भ से निकलती चली आती हों। सड़क के दोनों ओर छज्जों और छतों पर दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। सभी चकित थे। उफ्फोह ! कितने आदमी हैं। अभी चले ही आ रहे हैं।

तब नैना ने यह गीत शुरू कर दिया, जो इस समय बच्चे-बच्चे की जबान पर था--

**'हम भी मानव तनधारी हैं...'**

कई हजार गलों का संयुक्त, सजीव और व्यापक स्वर गगन में गूंज उठा--

**'हम भी मानव तनधारी हैं !'**

नैना ने उस पद की पूर्ति की–

**'क्यों हमको नीच समझते हो?'**

कई हजार गलों ने साथ दिया–

**'क्यों हमको नीच समझते हो?'**

नैना–**क्यों अपने सच्चे दासों पर?**

जनता–**क्यों अपने सच्चे दासों पर?**

नैना–**इतना अन्याय बरतते हो !**

जनता–**इतना अन्याय बरतते हो !**

उधर म्युनिसिपैलिटी बोर्ड में यही प्रश्न छिड़ा हुआ था।

हाफिज हलीम ने टेलीफोन का चोगा मेज पर रखते हुए कहा--डॉक्टर शान्तिकुमार भी गिरफ्तार हो गए।

मि० सेन ने निर्दयता से कहा--अब इस आंदोलन की जड़ कट गई। डॉक्टर साहब उसके प्राण थे।

पं० ओंकारनाथ ने चुटकी ली--उस ब्लाक पर अब बंगले न बनेंगे। शगुन कह रहे हैं।

सेन बाबू भी अपने लड़के के नाम से उस ब्लाक के एक भाग के खरीददार थे। जल उठे--अगर बोर्ड में अपने पास किए हुए प्रस्तावों पर स्थिर रहने की शक्ति नहीं है, तो उसे इस्तीफा देकर अलग हो जाना चाहिए।

मि० शफीक ने, जो यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर और डॉ० शान्तिकुमार के मित्र थे, सेन को आड़े हाथों लिया–बोर्ड के फैसले खुदा के फैसले नहीं हैं। उस वक्त बेशक बोर्ड ने उस ब्लाक को छोटे-छोटे प्लाटों में नीलाम करने का फैसला किया था, लेकिन उसका नतीजा क्या हुआ? आप लोगों ने वहां जितना इमारती सामान जमा किया, उसका कहीं पता नहीं है। हजार आदमी से ज्यादा रोज रात को वहीं सोते हैं। मुझे यकीन है कि वहां काम करने के लिए मजदूर भी राजी न होगा। मैं बोर्ड को खबरदार किए देता हूं कि अगर अपनी पालिसी बदल न दी, तो शहर पर बहुत बड़ी आफत आ जाएगी। सेठ समरकान्त और शान्तिकुमार का शरीक होना बतला रहा है कि यह तहरीक बच्चों का खेल नहीं है। उसकी जड़ बहुत गहरी पहुच गई है और उसे उखाड़ फेंकना अब करीब-करीब गैरमुमकिन है। बोर्ड को अपना फैसला रद्द करना पड़ेगा। चाहे अभी करे, या सौ-पचास जनों की नजर लेकर करे। अब तक का तरजबा तो यही कह रहा है कि बोर्ड की सख्तियों का बिल्कुल असर नहीं हुआ, बल्कि उल्टा ही असर हुआ। अब जो हड़ताल होगी, वह इतनी खौफनाक होगी कि उसके खयाल से रोंगटे खड़े होते हैं। बोर्ड अपने सिर पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी ले रहा है।

मि० हामिदअली कपड़े की मिल के मैनेजर थे। उनकी मिल घाट पर चल रही थी। डरते थे, कहीं लंबी हड़ताल हो गई, तो बधिया ही बैठ जाएगी थे तो बेहद मोटे, मगर बेहद मेहनती। बोले–हक को तस्लीम करने में बोर्ड को क्यों इतना पसोपेश हो रहा है, यह मेरी समझ में नहीं आता। शायद इसलिए कि उसके गरूर को झुकना पड़ेगा। लेकिन हक के सामने झुकना कमजोरी नहीं, मजबूती है। अगर आज इसी मसले पर बोर्ड का नया इंतखाब हो, तो मैं दावे से कह सकता हूं कि बोर्ड का यह रिजोल्यूशन हर्फे गलत की तरह मिट जाएगा। बीस-पचीस हजार गरीब आदमियों की बेहतरी और भलाई के लिए अगर बोर्ड को दस-बारह लाख का

नुकसान उठाना और दस-पांच मेंबरों की दिलशिकनी करनी पड़े तो उसे...

फिर टेलीफोन की घंटी बजी। हाफिज हलीम ने कान लगाकर सुना और बोले—पच्चीस हजार आदमियों की फौज हमारे ऊपर धावा करने आ रही है। लाला समरकान्त की साहबजादी और सेठ धनीराम साहब की बहू उसकी लीडर हैं। डी० एस० पी० ने हमारी राय पूछी है, और यह भी कहा है कि फायर किए बगैर जुलूस पीछे हटने वाला नहीं। मैं इस मुआमले में बोर्ड की राय जानना चाहता हूं। बेहतर है कि वोट ले लिए जायं, जाब्ते की पाबंदियों का मौका नहीं है, आप लोग हाथ उठाएं—फॉर?

बारह हाथ उठे।

''अगेंस्ट?''

दस हाथ उठे। लाला धनीराम निउट्रल रहे।

''तो बोर्ड की राय है कि जुलूस को रोका जाय, चाहे फायर करना पड़े?''

सेन बोले—क्या अब भी कोई शक है?

फिर टेलीफोन की घंटी बजी। हाफिजजी ने कान लगाया। डी० एस० पी० कह रहा था—बड़ा गजब हो गया। अभी लाला मनीराम ने अपनी बीवी को गोली मार दी।

हाफिजजी ने पूछा—क्या बात हुई?

''अभी कुछ मालूम नहीं। शायद मिस्टर मनीराम गुस्से में भरे हुए जुलूस के सामने आए और अपनी बीवी को वहां से हट जाने को कहा। लेडी ने इंकार किया। इस पर कुछ कहा-सुनी हुई। मिस्टर मनीराम के हाथ में पिस्तौल थी। फौरन शूट कर दिया। अगर वह भाग न जायं, तो धज्जियां उड़ जायं। जुलूस अपने लीडर की लाश उठाए फिर म्युनिसिपल बोर्ड की तरफ जा रहा है।''

हाफिजजी ने मेंबरों को यह खबर सुनाई, तो सारे बोर्ड में सनसनी दौड़ गई। मानो किसी जादू से सारी सभा पाषाण हो गई हो।

सहसा लाला धनीराम खड़े होकर भर्राई हुई आवाज में बोले—सज्जनो, जिस भवन को एक-एक कंकड़ जोड़-जोड़कर पचास साल से बना रहा था, वह आज एक क्षण में ढह गया, ऐसा ढह गया है कि उसकी नींव का पता नहीं। अच्छे-से-अच्छे मसाले दिए, अच्छे-से-अच्छे कारीगर लगाए, अच्छे-से-अच्छे नक्शे बनवाए, भवन तैयार हो गया था, केवल कलश बाकी था। उसी वक्त एक तूफान आता है और उस विशाल भवन को इस तरह उड़ा ले जाता है, मानो फूस का ढेर हो। मालूम हुआ कि वह भवन केवल मेरे जीवन का एक स्वप्न था। सुनहरा स्वप्न कहिए, चाहे काला स्वप्न कहिए; पर था स्वप्न ही। वह स्वप्न भंग हो गया—भंग हो गया !

यह कहते हुए वह द्वार की ओर चले।

हाफिज हलीम ने शोक के साथ कहा—सेठजी, मुझे और मैं उम्मीद करता हूं कि बोर्ड को आपसे कमाल की हमदर्दी है।

सेठजी ने पीछे फिरकर कहा—अगर बोर्ड को मेरे साथ हमदर्दी है, तो इसी वक्त मुझे यह अख्तियार दीजिए कि जाकर लोगों से कह दूं, बोर्ड ने तुम्हें वह जमीन दे दी, वरना यह आग कितने ही घरों को भस्म कर देगी, कितनों ही के स्वप्नों को भंग कर देगी।

बोर्ड के कई मेंबर बोले—चलिए, हम लोग भी आपके साथ चलते हैं।

बोर्ड के बीस सभासद उठ खड़े हुए। सेन ने देखा कि यहां कुल चार आदमी रहे जाते हैं तो वह भी उठ पड़े, और उनके साथ उनके तीनों मित्र भी उठे। अंत में हाफिज हलीम का नंबर आया।

जुलूस उधर से नैना की अर्थी लिए चला आ रहा है। एक शहर में इतने आदमी कहां से आ गए? मीलों लंबी घनी कतार है, शांत, गंभीर, संगठित जो मर मिटना चाहती है। नैना के बलिदान ने उन्हें अजेय, अभेद्य बना दिया है।

उसी वक्त बोर्ड के पचीसों मेंबरों ने सामने आकर अर्थी पर फूल बरसाए और हाफिज सलीम ने आगे बढ़कर, ऊंचे स्वर में कहा—भाइयो ! आप म्युनिसिपैलिटी के मेंबरों के पास जा रहे हैं, मेबर खुद आपका इस्तिकबाल करने आए हैं। बोर्ड ने आज इत्तिफाक राय से पूरा प्लाट आप लोगों को देना मंजूर कर लिया। मैं इस पर बोर्ड को मुबारकबाद देता हूं, और आपको भी। आज बोर्ड ने तस्लीम कर लिया कि गरीब की सेहत, आराम और जरूरत को वह अमीरों के शौक, तकल्लुफ और हविस से ज्यादा लिहाज के काबिल समझता है। उसने तस्लीम कर लिया कि गरीबो का उस पर उससे कहीं ज्यादा हक है, जितना अमीरों का । हमने तस्लीम कर लिया कि बोर्ड रुपये की निस्बत रिआया की जान की ज्यादा कद्र करती है। उसने तस्लीम कर लिया कि शहर की जीनत बड़ी-बड़ी कोठियों और बंगलों से नहीं, छोटे-छोटे आरामदेह मकानो से है, जिनमें मजदूर और थोड़ी आमदनी के लोग रह सकें। मैं खुद उन आदमियों में हूं जो इस वसूल की तस्लीम न करते थे। बोर्ड का बड़ा हिस्सा मेरे ही खयाल के आदमियों का था, लेकिन आपकी कुरबानियो ने और आपक लीडरों की जांबाजियों ने बोर्ड पर फतह पाई और आज मैं उस फतह पर आपको मुबारकबाद देता हूं, और इस फतह का सेहरा उस देवी के सिर है, जिसका जनाजा आपके कंधों पर है। लाला समरकान्त मेरे पुराने रफीक हैं। उनका सपूत बेटा मेरे लड़के का दिली दोस्त है। अमरकान्त जैसा शरीफ नौजवान मेरी नजर से नहीं गुजरा। उसी की सोहबत का असर है कि आज मेरा लड़का सिविल सर्विस छोड़कर जेल मे बैठा हुआ है। नैनादेवी के दिल में जो कशमकश हो रही थी, उसका अंदाजा हम और आप नहीं कर सकते। एक तरफ बाप और भाई और भावज जेल में कैद, दूसरी तरफ शौहर और ससुर मिलकियत और जायदाद की धुन में मस्त। लाला धनीराम मुझे मुआफ करेंगे। मैं उन पर फिकरा नही कसता। जिस हालत में वह गिरफ्तार थे, उसी हालत में हम, आप और सारी दुनिया गिरफ्तार है। उनके दिल पर इस वक्त एक ऐसे गम की चोट है, जिससे ज्यादा दिलशिकन कोई सदमा नहीं हो सकता। हमको, और मै यकीन करता हूं, आपको भी उनसे कमाल की हमदर्दी है। हम सब उनके गम में शरीक हैं। नैनादेवी के दिल में मैका और ससुराल की यह लड़ाई शायद इस तहरीक के शुरू होते ही शुरू हुई और आज उसका यह हसरतनाक अंजाम हुआ। मुझे यकीन है कि उनकी इस पाक कुरबानी की यादगार हमारे शहर में उस वक्त तक कायम रहेगी, जब तक इसका वजूद कायम रहेगा ! मैं बुतपरस्त नहीं हूं, लेकिन सबसे पहले मैं तजवीज करूंगा कि उस प्लाट पर जो मोह ग आबाद हो, उसके बीचों-बीच इस देवी की यादगार नस्ब की जाय, ताकि आने वाली नसलें उसकी शानदार कुरबानी की याद ताजा करती रहें?

दोस्तो, मैं इस वक्त आपके सामने कोई तकरीर नहीं करता हूं। यह न तकरीर करने का मौका है, न सुनने का। रोशनी के साथ तारीकी है, जीत के साथ हार, और खुशी के साथ

गम। तारीकी और रोशनी का मेल सुहानी सुबह होती है, और जीत और हार का मेल सुलह। यह खुशी और गम का मेल एक नए दौर की आवाज है और खुदा से हमारी दुआ है कि यह दौर हमेशा कायम रहे, हममें ऐसे ही हक पर जान देने वाली पाक रूहें पैदा होती रहें, क्योंकि दुनिया ऐसी ही रूहों की हस्ती से कायम है। आपसे हमारी गुजारिश है कि इस जीत के बाद हारने वालों के साथ वही बर्ताव कीजिए, जो बहादुर दुश्मन के साथ किया जाना चाहिए। हमारी इस पाक सरजमीन में हारे हुए दुश्मनों को दोस्त समझा जाता था। लड़ाई खत्म होते ही हम रंजिश और गुस्से को दिल से निकाल डालते थे, और दिल खोलकर दुश्मन से गले मिल जाते थे। आइए, हम और आप गले मिलकर उस देवी की रूह को खुश करें, जो हमारी सच्ची रहनुमा, तारीकी में सुबह का पैगाम लाने वाली सुफैदी थी। खुदा हमें तौफीक दे कि इस सच्चे शहीद से हम हकपरस्ती और खिदमत का सबक हासिल करें।

हाफिजजी के चुप होते ही 'नैनादेवी की जय' की ऐसी श्रद्धा में डूबी हुई ध्वनि उठी कि आकाश तक हिल उठा। फिर हाफिज हलीम की भी जय-जयकार हुई और जुलूस गंगा की तरफ रवाना हो गया। बोर्ड के सभी मेंबर जुलूस के साथ थे। सिर्फ हाफिज म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर में जा बैठे और पुलिस के अधिकारियों से कैदियों की रिहाई के लिए परामर्श करने लगे।

जिस संग्राम को छः महीने पहले एक देवी ने आरंभ किया था, उसे आज एक दूसरी देवी ने अपने प्राणों की बलि देकर अंत कर दिया।

## दस

इधर सकीना जनाने जेल में पहुंची, उधर सुखदा, पठानिन और रेणुका की रिहाई का परवाना भी आ गया। उसके साथ ही नैना की हत्या का संवाद भी पहुंचा। सुखदा सिर झुकाए मूर्तिवत् बैठी रह गई, मानो अचेत हो गई हो। कितनी महंगी विजय थी !

रेणुका ने लंबी सांस लेकर कहा—दुनिया में ऐसे-ऐसे आदमी पड़े हुए हैं, जो स्वार्थ के लिए स्त्री की हत्या कर सकते हैं।

सुखदा आवेश में आकर बोली—नैना की उसने हत्या नहीं की अम्मां, यह विजय उस देवी के प्राणों का वरदान है।

पठानिन ने आंसू पोंछते हुए कहा—मुझे तो यही रोना आता है कि भैया को दुःख होगा। भाई-बहन में इतनी मोहब्बत मैंने नहीं देखी।

जेलर ने आकर सूचना दी—आप लोग तैयार हो जाएं। शाम की गाड़ी से सुखदा, रेणुका और पठानिन, इन महिलाओं को जाना है। देखिए हम लोगों से जो खता हुई हो, उसे मुआफ कीजिएगा।

किसी ने इसका जवाब न दिया, मानो किसी ने सुना ही नहीं। घर जाने में अब आनंद न था। विजय का आनंद भी इस शोक में डूब गया था।

सकीना ने सुखदा के कान में कहा—जाने के पहले बाबूजी से मिल लीजिएगा। यह खबर सुनकर न जाने दुश्मनों पर क्या गुजरे? मुझे डर लग रहा है।

बालक रेणुकान्त सामने सहन में कीचड़ में फिसलकर गिर गया था और पैरों से जमीन को इस शरारत की सजा दे रहा था। साथ-ही-साथ रोता भी जाता था। सकीना और सुखदा

दोनों उसे उठाने दौड़ीं, और वृक्ष के नीचे खड़ी होकर उसे चुप कराने लगीं।

सकीना कल सुबह आई थी; पर अब तक सुखदा और उसमें मामूली शिष्टाचार के सिवा और बात न हुई थी। सकीना उससे बातें करते झेंपती थी कि कहीं वह गुप्त प्रसंग न उठ खड़ा हो। और सुखदा इस तरह उससे आंखें चुराती थी, मानो अभी उसकी तपस्या उस कलंक को धोने के लिए काफी नहीं हुई।

सकीना की सलाह में जो सहृदयता भरी हुई थी, उसने सुखदा को पराभूत कर दिया। बोली—हां, विचार तो है। तुम्हारा कोई संदेशा कहना है?

सकीना ने आंखों में आंसू भरकर कहा—मैं क्या संदेशा कहूंगी बहूजी? आप इतना ही कह दीजिएगा—नैनादेवी चली गई, पर जब तक सकीना जिंदा है, आप उसे नैना ही समझते रहिए।

सुखदा ने निर्दय मुस्कान के साथ कहा— उनका तो तुमसे दूसरा रिश्ता हो चुका है।

सकीना ने जैसे इस वार को काटा—तब उन्हें औरत की जरूरत थी, आज बहन की जरूरत है।

सुखदा तीव्र स्वर में बोली—मैं तो तब भी जिंदा थी।

सकीना ने देखा, जिस अवसर से वह कांपती रहती थी, वह सिर पर आ ही पहुंचा। अब उसे अपनी सफाई देने के सिवा और कोई मार्ग न था।

उसने पूछा—मैं कुछ कहूं, बुरा तो न मानिएगा?

''बिल्कुल नहीं।''

''तो सुनिए—तब आपने उन्हें घर से निकाल दिया था। आप पूरब जाती थीं, वह पश्चिम जाते थे। अब आप और वह एक दिल हैं, एक जान हैं। जिन बातों की उनकी निगाह में सबसे ज्यादा कद्र थी, वह आपने सब पूरी कर दिखाई। वह जो आपको पा जाएं, तो आपके कदमों का बोसा ले लें।''

सुखदा को इस कथन में वही आनंद आया, जो एक कवि को दूसरे कवि की दाद पाकर आता है, उसके दिल में जो संशय था वह जैसे आप-ही-आप उसके हृदय से टपक पड़ा—यह तो तुम्हारा खयाल है सकीना! उनके दिल में क्या है, यह कौन जानता है? मरदों पर विश्वास करना मैंने छोड़ दिया। अब वह चाहे मेरी कुछ इज्जत करने लगें—इज्जत तो तब भी कम न करते थे, लेकिन तुम्हें वह दिल से निकाल सकते हैं, इसमें मुझे शक है। तुम्हारी शादी मियां सलीम से हो जाएगी, लेकिन दिल में वह तुम्हारी उपासना करते रहेंगे।

सकीना की मुद्रा गंभीर हो गई। नहीं, वह भयभीत हो गई। जैसे कोई शत्रु उसे दम देकर उसके गले में फंदा डालने जा रहा हो। उसने मानो गले को बचाकर कहा—तुम उनके साथ फिर अन्याय कर रही हो बहनजी! वह उन आदमियों में नहीं हैं, जो दुनिया के डर से कोई काम करें। उन्होंने खुद सलीम से मेरी खत-किताबत करवाई। मैं उनकी मंशा समझ गई। मुझे मालूम हो गया, तुमने अपने रूठे हुए देवता को मना लिया। मैं दिल में कांपी जा रही थी कि मुझ जैसी गंवारिन उन्हें कैसे खुश रख सकेगी। मेरी हालत उस कंगले की-सी हो रही थी जो खजाना पाकर बौखला गया हो कि अपनी झोंपड़ी में उसे कहां रखे, कैसे उसकी हिफाजत करे? उनकी यह मंशा समझकर मेरे दिल का बोझ हल्का हो गया। देवता तो पूजा करने की चीज है वह हमारे घर में आ जाय, तो उसे कहां बैठाएं, कहां सुलाएं, क्या खिलाएं? मंदिर

में जाकर हम एक क्षण के लिए कितने दीनदार, कितने परहेजगार बन जाते हैं। हमारे घर में आकर यदि देवता हमारा असली रूप देखे, तो शायद हमसे नफरत करने लगे। सलीम को मैं संभाल सकती हूं। वह इसी दुनिया के आदमी हैं, और मैं उन्हें समझा सकती हूं।

उसी वक्त जनाने वार्ड के द्वार खुले और तीन कैदी अंदर दाखिल हुए। तीनों ने घुटनों तक जांघिए और आधी बांह के ऊंचे कुरते पहने हुए थे। एक के कंधे पर बांस की सीढ़ी थी, एक के सिर पर चूने का बोरा। तीसरा चूने की हांडियां, कूंची और बाल्टियां लिए हुए था। आज से जनाने जेल की पुताई होगी। सालाना सफाई और मरम्मत के दिन आ गए हैं।

सकीना ने कैदियों को देखते ही उछलकर कहा—वह तो जैसे बाबूजी हैं, डोल और रस्सी लिए हुए, तो सलीम सीढ़ी उठाए हुए हैं।

यह कहते हुए उसने बालक को गोद में उठा लिया और उसे भींच-भींचकर प्यार करती हुई द्वार की ओर लपकी। बार-बार उसका मुंह चूमती और कहती जाती थी—चलो, तुम्हारे बाबूजी आए हैं।

सुखदा भी आ रही थी, पर मंद गति से उसे रोना आ रहा था। आज इतने दिनों के बाद मुलाकात हुई तो इस दशा में।

सहसा मुन्नी एक ओर से दौड़ती हुई आई और अमर के हाथ से डोल और रस्सी छीनती हुई बोली—अरे! यह तुम्हारा क्या हाल है लाला, आधे भी नहीं रहे, चलो आराम से बैठो, मैं पानी खींच देती हूं।

अमर ने डोल को मजबूती से पकड़कर कहा—नहीं-नहीं, तुमसे न बनेगा। छोड़ दो डोल। जेलर देखेगा, तो मेरे ऊपर डांट पड़ेगी।

मुन्नी ने डोल छीनकर कहा—मैं जेलर को जवाब दे लूंगी। ऐसे ही थे तुम वहां?

एक तरफ से सकीना और सुखदा, दूसरी तरफ से पठानिन और रेणुका आ पहुंचीं, पर किसी के मुंह से बात न निकलती थी। सबों की आंखें सजल थीं और गले भरे हुए। चली थीं हर्ष के आवेश में; पर हर पग के साथ मानो जल गहरा होते-होते अंत को सिरों पर आ पहुंचा।

अमर इन देवियों को देखकर विस्मय-भरे गर्व से फूल उठा। उनके सामने वह कितना तुच्छ था, कितना नगण्य। किन शब्दों में उनकी स्तुति करे, उनकी भेंट क्या चढ़ाए? उसके आशावादी नेत्रों में भी राष्ट्र का भविष्य कभी इतना उज्ज्वल न था। उनके सिर से पांव तक स्वदेशाभिमान की एक बिजली-सी दौड़ गई। भक्ति के आंसू आंखों में छलक आए।

औरों की जेल-यात्रा का समाचार तो वह सुन चुका था, पर रेणुका को वहां देखकर वह जैसे उन्मत्त होकर उनके चरणों पर गिर पड़ा।

रेणुका ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—आज चलते-चलते तुमसे खूब भेंट हो गई बेटा! ईश्वर तुम्हारी मनोकामना सफल करे। मुझे तो आए आज पांचवां दिन है, पर हमारी रिहाई का हुक्म आ गया। नैना ने हमें मुक्त कर दिया।

अमर ने धड़कते हुए हृदय से कहा—तो क्या वह भी यहां आई है? उसके घर वाले तो बहुत बिगड़े होंगे?

सभी देवियां रो पड़ीं। इस प्रश्न ने जैसे उनके हृदय को मसोस दिया। अमर ने चकित नेत्रों से हरेक के मुंह की ओर देखा। एक अनिष्ट शंका से उसकी सारी देह थरथरा उठी। इन

चेहरों पर विजय की दीप्ति नहीं, शोक की छाया अंकित थी। अधीर होकर बोला–कहां है नैना, यहां क्यों नहीं आती? उसका जी अच्छा नहीं है क्या?

रेणुका ने हृदय को संभालकर कहा–नैना को आकर चौक में देखना बेटा, जहां उसकी मूर्ति स्थापित होगी। नैना आज तुम्हारे नगर की रानी है। हरेक हृदय में तुम उसे श्रद्धा के सिंहासन पर बैठी पाओगे।

अमर पर जैसे वज्रपात हो गया। वह वहीं भूमि पर बैठ गया और दोनों हाथों से मुंह ढांपकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसे जान पड़ा, अब संसार में उसका रहना वृथा है। नैना स्वर्ग की विभूतियों से जगमगाती, मानो उसे खड़ी बुला रही थी।

रेणुका ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा–बेटा, क्यों उसके लिए रोते हो, वह मरी नहीं, अमर हो गई। उसी के प्राणों से इस यज्ञ की पूर्णाहुति हुई है।

सलीम ने गला साफ करके पूछा–बात क्या हुई? क्या कोई गोली लग गई?

रेणुका ने इस भाव का तिरस्कार करके कहा–नहीं भैया, गोली क्या चलती, किसी से लड़ाई थी? जिस वक्त वह मैदान से जुलूस के साथ म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली, तो एक लाख आदमी से कम न थे। उसी वक्त मनीराम ने आकर उस पर गोली चला दी। वहीं गिर पड़ी। कुछ मुंह से न कह पाई। रात-दिन भैया ही में उसके प्राण लगे रहते थे। वह तो स्वर्ग गई, हां, हम लोगों को रोने के लिए छोड़ गई।

अमर को ज्यों-ज्यों नैना के जीवन की बातें याद आती थीं, उसके मन में जैसे विषाद का एक नया सोता खुल जाता था। हाय! उस देवी के साथ उसने एक भी कर्तव्य का पालन न किया। यह सोच-सोचकर उसका जी कचोट उठता था। वह अगर घर छोड़कर न भागा होता, तो लालाजी क्यों उसे लोभी मनीराम के गले बांध देते! और क्यों उसका यह करुणाजनक अंत होता!

लेकिन सहसा इस शोक-सागर में डूबते हुए उसे ईश्वरीय विधान की नौका-सी मिल गई। ईश्वरीय प्रेरणा के बिना किसी में सेवा का ऐसा अनुराग कैसे आ सकता है? जीवन का इससे शुभ उपयोग और क्या हो सकता है? गृहस्थी के संचय में स्वार्थ की उपासना में, तो सारी दुनिया मरती है। परोपकार के लिए मरने का सौभाग्य तो संस्कार वालों ही को प्राप्त है। अमर की शोक-मग्न आत्मा ने अपने चारों ओर ईश्वरीय दया का चमत्कार देखा–व्यापक, असीम, अनंत।

सलीम ने फिर पूछा–बेचारे लालाजी को तो बड़ा रंज हुआ होगा?

रेणुका ने गर्व से कहा–वह तो पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे बेटा, और शान्तिकुमार भी।

अमर को जान पड़ा, उसकी आंखों की ज्योति दुगुनी हो गई है, उसकी भुजाओं में चौगुना बल आ गया है, उसने वहीं ईश्वर के चरणों में सिर झुका दिया और अब उसकी आंखों से जो मोती गिरे, वह विषाद के नहीं, उल्लास और गर्व के थे। उसके हृदय में ईश्वर की ऐसी निष्ठा का उदय हुआ, मानो वह कुछ नहीं है, जो कुछ है, ईश्वर की इच्छा है, जो कुछ करता है, वही करता है; वही मंगल-मूल और सिद्धियों का दाता है। सकीना और मुन्नी दोनों उसके सामने खड़ी थीं। उनकी छवि को देखकर उसके मन में वासना की जो आंधी-सी चलने लगती थी, उसी छवि में आज उसने निर्मल प्रेम के दर्शन पाए, जो आत्मा के विकारों को शांत कर देता है, उसे सत्य

के प्रकाश से भर देता है। उसमें लालासा की जगह उत्सर्ग, भोग की जगह तप का संस्कार भर देता है। उसे ऐसा आभास हुआ, मानो वह उपासक है और ये रमणियां उसकी उपास्य देवियां हैं। उनके पदरज को माथे पर लगाना ही मानो उसके जीवन की सार्थकता है।

रेणुका ने बालक को सकीना की गोद से लेकर अमर की ओर उठाते हुए कहा—यही तेरे बाबूजी हैं, बेटा, इनके पास जा।

बालक ने अमरकान्त का वह कैदियों का बाना देखा, तो चिल्लाकर रेणुका से चिपट गया फिर उसकी गोद में मुंह छिपाए कनखियों से उसे देखने लगा, मानो मेल तो करना चाहता है, पर भय तो यह है कि कहीं यह सिपाही उसे पकड़ न लें, क्योंकि इस भेस के आदमी को अपना बाबूजी समझने में उसके मन को संदेह हो रहा था।

सुखदा को बालक पर क्रोध आया। कितना डरपोक है, मानो इसे वह खा जाते। इच्छा हो रही थी कि यह भीड़ टल जाए, तो एकांत में अमर से मन की दो-चार बाते कर ले। फिर न जाने कब भेंट हो।

अमर ने सुखदा की ओर ताकते हुए कहा—आप लोग इस मैदान में भी हमसे बाजी ले गईं। आप लोगों ने जिस काम का बीड़ा उठाया, उसे पूरा कर दिखाया। हम तो अभी जहा खड़े थे, वहीं खड़े हैं। सफलता के दर्शन होंगे भी या नहीं, कौन जाने? जो थोड़ा-बहुत आंदोलन यहां हुआ है, उसका गौरव भी मुन्नी बहन और सकीना बहन को है। इन दोनों बहनों के हृदय में देश के लिए जो अनुराग और कर्त्तव्य के लिए जो उत्सर्ग है, उसने हमारा मस्तक ऊंचा कर दिया। सुखदा ने जो कुछ किया, वह तो आप लोग मुझसे ज्यादा जानती हैं। आज लगभग तीन साल हुए, मैं विद्रोह करके घर से भागा था। मैं समझता था, इनके साथ मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा; पर आज मैं इनके चरणों की धूल माथे पर लगाकर अपने को धन्य समझूंगा। मैं सभी माताओं और बहनों के सामने उनसे क्षमा मांगता हूं।

सलीम ने मुस्कराकर कहा—यों जबानी नहीं, कान पकड़कर एक लाख मरतबा उठो-बैठो।

अमर ने कनखियों से देखा और बोला—अब तुम मैजिस्ट्रेट नहीं हो भाई, भूलो मत। ऐसी सजाएं अब नहीं दे सकते!

सलीम ने फिर शरारत की। सकीना से बोला—तुम चुपचाप क्यों खड़ी हो सकीना? तुम्हें भी तो इनसे कुछ कहना है, या मौका तलाश कर रही हो?

फिर अमर से बोला—आप अपने कौल से फिर नहीं सकते जनाब! जो वादे किए हैं, वह पूरे करने पड़ेंगे।

सकीना का चेहरा मारे शर्म के लाल हो गया। जी चाहता था, जाकर सलीम के चुटकी काट ले! उसके मुख पर आनंद और विजय का ऐसा रंग था, जो छिपाए न छिपता था। मानो उसके मुख पर बहुत दिनों से जो कालिमा लगी हुई थी, वह आज धुल गई हो, और संसार के सामने अपनी निष्कलंकता का ढिंढोरा पीटना चाहती हो। उसने पठानिन को ऐसी आंखों से देखा, जो तिरस्कार भरे शब्दों में कह रही थीं—अब तुम्हें मालूम हुआ, तुमने कितना घोर अनर्थ किया था! अपनी आंखों में वह कभी इतनी ऊंची न उठी थी। जीवन में उसे इतनी श्रद्धा और इतना सम्मान मिलेगा, इसकी तो उसने कभी कल्पना न की थी।

सुखदा के मुख पर भी कुछ कम गर्व और आनंद की झलक न थी। वहां जो कठोरता और गरिमा छाई रहती थी, उसकी जगह जैसे माधुर्य खिल उठा है। आज उसे कोई ऐसी विभूति

मिल गई है, जिसकी कामना अप्रत्यक्ष होकर भी उसके जीवन में एक रिक्ति, एक अपूर्णता की सूचना देती रहती थी। आज उस रिक्ति में जैसे मधु भर गया है, वह अपूर्णता जैसे पल्लवित हो गई है। आज उसने पुरुष के प्रेम में अपने नारीत्व को पाया है। उसके हृदय से लिपटकर अपने को खो देने के लिए आज उसके प्राण कितने व्याकुल हो रहे हैं। आज उसकी तपस्या मानो फलीभूत हो गई है।

रही मुन्नी, वह अलग विरक्त भाव से सिर झुकाए खड़ी थी। उसके जीवन की सूनी मुंडेर पर एक पक्षी न जाने कहां से उड़ता हुआ आकर बैठ गया था। उसे देखकर वह अंचल में दाना भरे आ! आ! कहती, पांव दबाती हुई उसे पकड़ लेने के लिए लपककर चली। उसने दाना जमीन पर बिखेर दिया। पक्षी ने दाना चुगा, उसे विश्वास भरी आंखो से देखा, मानो पूछ रहा हो—तुम मुझे स्नेह से पालोगी या चार दिन मन बहलाकर फिर पर काटकर निराधार छोड़ दोगी, लेकिन उसने ज्योंही पक्षी को पकड़ने के लिए हाथ बढाया, पक्षी उड़ गया और तब दूर की एक डाली पर बैठा हुआ उसे कपट भरी आखों से देख रहा था, मानो कह रहा हो—मैं आकाशगामी हूं, तुम्हारे पिंजरे में मेरे लिए सूखे दाने और कुल्हिया मे पानी के सिवा और क्या था!

सलीम ने नाद में चूना डाल दिया। सकीना और मुन्नी ने एक-एक डोल उठा लिया और पानी खींचने चलीं।

अमर ने कहा—बाल्टी मुझे दे दो मैं भर लाता हूं।

मुन्नी बोली—तुम पानी भरोगे और हम बैठ देखेंगे?

अमर ने हंसकर कहा—और क्या, तुम पानी भरोगी, और मैं तमाशा देखूंगा?

मुन्नी बाल्टी लेकर भागी। सकीना भी उसके पीछे दौड़ी।

रेणुका जमाई के लिए कुछ जलपान बना लाने चली गई थी। यहां जेल में बेचारे को रोटी-दाल के सिवा और क्या मिलना है। वह चाहती थी, सैकड़ों चीजें बनाकर विधिपूर्वक जमाई को खिलाए। जेल में भी रेणुका को घर के सभी सुख प्राप्त थे। लेडी जेलर, चौकीदारिनें और अन्य कर्मचारी सभी उनके गुलाम थे। पठानिन खड़ी-खड़ी थक जाने के कारण जाकर लेट रही थी। मुन्नी और सकीना पानी भरने चली गई। सलीम को भी सकीना से बहुत-सी बातें कहनी थीं। वह भी बबे की तरफ चला। यहां केवल अमर और सुखदा रह गए।

अमर ने सुखदा के समीप आकर बालक को गले लगाते हुए कहा—यह जेल तो मेरे लिए स्वर्ग हो गया सुखदा! जितनी तपस्या की थी, उससे कहीं बढ़कर वरदान पाया। अगर हृदय दिखाना संभव होता, तो दिखाता कि मुझे तुम्हारी कितनी याद आती थी। बार-बार अपनी गलतियों पर पछताता था।

सुखदा ने बात काटी—अच्छा, अब तुमने बातें बनाने की कला भी सीख ली। तुम्हारे हृदय का हाल कुछ मुझे भी मालूम है। उसमें नीचे से ऊपर तक क्रोध-ही-क्रोध है। क्षमा या दया का कहीं नाम भी नहीं। मै विलासिनी सही, पर उस अपराध का इतना कठोर दंड! यह जानते थे कि वह मेरा दोष नहीं, मेरे संस्कारों का दोष था।

अमर ने लज्जित होकर कहा—यह तुम्हारा अन्याय है सुखदा!

सुखदा ने उसकी ठोड़ी को ऊपर उठाते हुए कहा—मेरी ओर देखो। मेरा ही अन्याय है! तुम न्याय के पुतले हो? ठीक है। तुमने सैकड़ों पत्र भेजे, मैंने एक का भी जवाब न दिया, क्यों? मैं कहती हूं, तुम्हें इतना क्रोध आया कैसे? आदमी को जानवरों से भी प्रीति हो जाती

है। मैं तो फिर भी आदमी थी। रूठकर ऐसा भुला दिया मानो मैं मर गई।

अमर इस आक्षेप का कोई जवाब न दे सकने पर भी बोला—तुमने भी तो पत्र नहीं लिखा और मैं लिखता भी तो तुम जवाब देतीं? दिल से कहना।

''तो तुम मुझे सबक देना चाहते थे?''

अमरकान्त ने जल्दी से आक्षेप को दूर किया—नहीं, यह बात नहीं है सुखदा ! हजारों बार इच्छा हुई कि तुम्हें पत्र लिखूं, लेकिन....

सुखदा ने वाक्य को पूरा किया—लेकिन भय यही था कि शायद मैं तुम्हारे पत्रों को हाथ न लगाती। अगर नारी-हृदय का तुम्हें यही ज्ञान है, तो मैं कहूंगी, तुमने उसे बिल्कुल नहीं समझा।

अमर ने अपनी हार स्वीकार की—तो मैंने यह दावा कब किया था कि मैं नारी-हृदय का पारखी हूं?

वह यह दावा न करे; लेकिन सुखदा ने तो धारणा कर ली थी कि उसे यह दावा है। मीठे तिरस्कार के स्वर में बोली—पुरुष की बहादुरी तो इसमें नहीं है कि स्त्री को अपने पैरों पर गिराए। मैंने अगर तुम्हें पत्र न लिखा, तो इसका यह कारण था कि मैं समझती थी, तुमने मेरे साथ अन्याय किया है, मेरा अपमान किया है; लेकिन इन बातों को जाने दो। यह बताओ, जीत किसकी हुई, मेरी या तुम्हारी?

अमर ने कहा—मेरी।

''और मैं कहती हूं—मेरी।''

''कैसे?''

''तुमने विद्रोह किया था, मैंने दमन से ठीक कर दिया।''

''नहीं, तुमने मेरी मांगें पूरी कर दीं।''

उसी वक्त सेठ धनीराम जेल के अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ अंदर दाखिल हुए। लोग कौतूहल से उन लोगों की ओर देखने लगे। सेठ इतने दुर्बल हो गए थे कि बड़ी मुश्किल से लकड़ी के सहारे चल रहे थे। पग-पग पर खांसते भी जाते थे।

अमर ने आगे बढ़कर सेठजी को प्रणाम किया। उन्हें देखते ही उसके मन में उनकी ओर से जो गुबार था, वह जैसे धुल गया।

सेठजी ने उसे आशीर्वाद देकर कहा—मुझे यहां देखकर तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा बेटा, समझते होंगे, बुड्ढा अभी तक जीता जा रहा है, इसे मौत क्यों नहीं आती? यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे संसार ने सदा अविश्वास की आंखों से देखा। मैंने जो कुछ किया, उस पर स्वार्थ का आक्षेप लगा। मुझमें भी कुछ सच्चाई है, कुछ मनुष्यता है, इसे किसी ने कभी स्वीकार नहीं किया। संसार की आंखों में मैं कोरा पशु हूं, इसलिए कि मैं समझता हूं, हरेक काम का समय होता है। कच्चा फल पाल में डाल देने से पकता नहीं। तभी पकता है; जब पकने के लायक हो जाता है। जब मैं अपने चारों ओर फैले हुए अंधकार को देखता हूं, तो मुझे सूर्योदय के सिवाय उसके हटाने का कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता। किसी दफ्तर में जाओ, बिना रिश्वत के काम नहीं चल सकता। किसी घर में जाओ, वहां द्वेष का राज्य देखोगे। स्वार्थ, अज्ञान, आलस्य ने हमें जकड़ रखा है। उसे ईश्वर की इच्छा ही दूर कर सकती है। हम अपनी पुरानी संस्कृति को भूल बैठे हैं। वह आत्म-प्रधान संस्कृति थी। जब तक ईश्वर की दया न होगी,

उसका पुनर्विकास न होगा और जब तक उसका पुनर्विकास न होगा, हम लोग कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकार के आंदोलनों में मेरा विश्वास नहीं है। इनसे प्रेम की जगह द्वेष बढ़ता है। जब तक रोग का ठीक निदान न होगा, उसकी ठीक औषधि न होगी, केवल बाहरी टीम-टाम से रोग का नाश न होगा।

अमर ने इस प्रलाप पर उपेक्षा-भाव से मुस्कराकर कहा—तो फिर हम लोग उस शुभ समय के इंतजार में हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें?

एक वार्डर दौड़कर कई कुर्सियां लाया। सेठजी और जेल के दो अधिकारी बैठे। सेठजी ने पान निकालकर खाया, और इतनी देर में इस प्रश्न का जवाब भी सोचते जाते थे। तब प्रसन्न मुख होकर बोले—नहीं, यह मैं नहीं कहता। यह आलसियों और अकर्मण्यों का काम है। हमें प्रजा में जागृति और संस्कार उत्पन्न करने की चेष्टा करत रहना चाहिए। मै इसे कभी नहीं मान सकता कि आज आधी मालगुजारी होते ही प्रजा सुख के शिखर पर पहुंच जाएगी। उसमें सामाजिक और मानसिक ऐसे कितने ही दोष हैं कि आधी तो क्या, पूरी मालगुजारी भी छोड़ दी जाय, तब भी उसकी दशा में कोई अतर न होगा। फिर मैं यह भी स्वीकार न करूंगा कि फरियाद करने की जो विधि सोची गई और जिसका व्यवहार किया गया, उनके सिवा कोई दूसरी विधि न थी।

अमर ने उत्तेजित होकर कहा—हमने अंत तक हाथ-पांव जोड़े, आखिर मजबूर होकर हमें यह आंदोलन शुरू करना पड़ा।

लेकिन एक ही क्षण मे वह नम्र होकर बोला—सभव है, हमसे गलती हुई हो, लेकिन उस वक्त हमें यही सूझ पडा।

सेठजी ने शांतिपूर्वक कहा—हां, गलती हुई और बहुत बड़ी गलती हुई। सैकड़ों घर बरबाद हो जाने के सिवा और कोई नतीजा न निकला। इस विषय पर गवर्नर साहब से मेरी बातचीत हुई है और वह भी यही कहते हैं कि ऐसे जटिल मुआमले में विचार से काम नहीं लिया गया। तुम तो जानते हो, उनसे मेरी कितनी बेतकल्लुफी है। नैना की मृत्यु पर उन्होंने मातमपुरसी का तार दिया था। तुम्हें शायद मालूम न हो, गवर्नर साहब ने खुद उस इलाके का दौरा किया और वहां के निवासियों से मिले। पहले तो कोई उनके पास आता ही न था। साहब बहुत हंस रहे थे कि ऐसी सूखी अकड़ कहीं नहीं देखी। देह पर साबित कपड़े नहीं, लेकिन मिजाज यह है कि हमें किसी से कुछ नहीं कहना है। बड़ी मुश्किल से थोड़े-से आदमी जमा हुए। जज साहब ने उन्हें तसल्ली दी और कहा—तुम लोग डरो मत, हम तुम्हारे साथ अन्याय नहीं करना चाहते, तब बेचारे रोने लगे। साहब इस झगड़े को जल्द तय कर देना चाहते हैं। और इसलिए उनकी आज्ञा है कि सारे कैदी छोड़ दिए जाएं और एक कमेटी करके निश्चय कर लिया जाय कि हमें क्या करना है? उस कमेटी में तुम और तुम्हारे दोस्त मियां सलीम तो होंगे ही, तीन आदमियों को चुनने का तुम्हें और अधिकार होगा। सरकार की ओर से केवल दो आदमी होंगे। बस, मैं यही सूचना देने आया हूं। मुझे आशा है, तुम्हें इसमें कोई आपत्ति न होगी।

सकीना और मुन्नी में कनफुसकियां होने लगीं। सलीम के चेहरे पर रौनक आ गई, पर अमर उसी तरह शांत, विचारों में मग्न खड़ा रहा।

सलीम ने उत्सुकता से पूछा—हमें अख्तियार होगा जिसे चाहें चुनें?

"पूरा।"

"उस कमेटी का फैसला नातिक होगा?"

सेठजी ने हिचकिचाकर कहा—मेरा तो ऐसा खयाल है।

"हमें आपके खयाल की जरूरत नहीं। हमें इसकी तहरीर मिलनी चाहिए।"

"और तहरीर न मिले।"

"तो हमें मुआइदा मंजूर नहीं।"

"नतीजा यह होगा, कि यहीं पड़े रहोगे और रिआया तबाह होती रहेगी।"

"जो कुछ भी हो।"

"तुम्हें तो कोई खास तकलीफ नहीं है लेकिन गरीबों पर क्या बीत रही है, वह सोचो।"

"खूब सोच लिया है।"

"नहीं सोचा।"

"बिल्कुल नहीं सोचा।"

"खूब अच्छी तरह सोच लिया है।"

"सोचते तो ऐसा न कहते।"

"सोचा है इसीलिए ऐसा कह रहा हूं।"

अमर ने कठोर स्वर में कहा—क्या कह रहे हो सलीम ! क्यों हुज्जत कर रहे हो? इससे फायदा?

सलीम ने तेज होकर कहा—मैं हुज्जत कर रहा हूं? वाह री आपकी समझ ! सेठजी मालदार हैं, हुक्कामरस हैं, इसलिए वह हुज्जत नहीं करते। मैं गरीब हूं, कैदी हूं इसलिए हुज्जत करता हूं?

"सेठजी बुजुर्ग हैं।"

"यह आज ही सुना कि हुज्जत करना बुजुर्गी की निशानी है।"

अमर अपनी हंसी को रोक न सका—यह शायरी नहीं है भाईजान, कि जो मुंह में आया बक गए। ऐसे मुआमले हैं, जिन पर लाखों आदमियों की जिंदगी बनती-बिगड़ती है। पूज्य सेठजी ने इस समस्या को सुलझाने में हमारी मदद की, जैसा उनका धर्म था और इसके लिए हमें उनका मशकूर होना चाहिए । हम इसके सिवा और क्या चाहते हैं कि गरीब किसानों के साथ इंसाफ किया जाय, और जब उस उद्देश्य को करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है, जिससे यह आशा नहीं कि जा सकती कि वह किसान के साथ अन्याय करे, तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करें।

सेठजी ने मुग्ध होकर कहा—कितनी सुंदर विवेचना है। वाह ! लाट साहब ने खुद तुम्हारी तारीफ की।

जेल के द्वार पर मोटर का हार्न सुनाई दिया। जेलर ने कहा—लीजिए, देवियों के लिए मोटर आ गई। आइए, हम लोग चलें। देवियों को अपनी-अपनी तैयारियां करने दें। बहनो, मुझसे जो कुछ खता हुई हो, उसे मुआफ कीजिएगा। मेरी नीयत आपको तकलीफ देने की न थी; हां, सरकारी नियमों से मजबूर था।

सब-के-सब एक ही लारी में जायं, यह तय हुआ। रेणुकादेवी का आग्रह था। महिलाएं अपनी तैयारियां करने लगीं। अमर और सलीम के कपड़े भी यहीं मंगवा लिए गए। आध घंटे में सब-के-सब जेल से निकले।

सहसा एक दूसरी मोटर आ पहुंची और उस पर से लाला समरकान्त, हाफिज हलीम,

डॉ॰ शान्तिकुमार और स्वामी आत्मानन्द उतर पड़े। अमर दौड़कर पिता के चरणों पर गिर पड़ा। पिता के प्रति आज उसके हृदय में असीम श्रद्धा थी। नैना मानो आंखों में आंसू भरे उससे कह रही थी—भैया, दादा को कभी दु:खी न करना, उनकी रीति-नीति तुम्हें बुरी भी लगे, तो भी मुंह मत खोलना। वह उनके चरणों को आंसुओं से धो रहा था और सेठजी उसके ऊपर मोतियों की वर्षा कर रहे थे।

सलीम भी पिता के गले से लिपट गया। हाफिजजी ने आशीर्वाद देकर कहा—खुदा का लाख-लाख शुक्र है कि तुम्हारी कुरबानियां मुफल हुईं। कहां है सकीना, उसे भी देखकर कलेजा ठंडा कर लूं।

सकीना सिर झुकाए आई और उन्हें सलाम करके खड़ी हो गई। हाफिजजी ने उसे एक नजर देखकर समरकान्त से कहा—सलीम का इंतिखाब तो बुरा नहीं मालूम होता।

समरकान्त मुस्कराकर बोले—सूरत के साथ दहेज में देवियों के जौहर भी हैं।

आनद के अवसर पर हम अपने दु:खों को भूल जाते हैं। हाफिजजी को सलीम के सिविल सर्विस से अलग होने का, समरकान्त को नैना की मृत्यु का और सेठ धनीराम को पुत्र-शोक का रंज कुछ कम न था, पर इस समय सभी प्रसन्न थे। किसी संग्राम में विजय पाने के बाद योद्धागण। मरने वाले के नाम को रोने नहीं बैठते। उस वक्त तो सभी उत्सव मनाते हैं, शादियाने बजते हैं, महफिलें जमती हैं, बधाइयां दी जाती हैं। रोने के लिए हम एकांत ढूंढते हैं, हसंने के लिए अनेकांत।

सब प्रसन्न थे। केवल अमरकान्त मन मारे हुए उदास था।

सब लोग स्टेशन पर पहुंचे, तो सुखदा ने उससे पूछा—तुम उदास क्यों हो?

अमर ने जैसे जागकर कहा—मैं ! उदास तो नहीं हूं।

''उदासी भी कहीं छिपाने से छिपती है?''

अमर ने गंभीर स्वर में कहा—उदास नहीं हू, केवल यह सोच रहा हूं कि मेरे हाथों इतनी जान-माल की क्षति अकारण ही हुई। जिस नीति से अब काम लिया गया क्या उसी नीति से तब काम न लिया जा सकता था? उस जिम्मेदारी का भार मुझे दबाए डालता है।

सुखदा ने शांत-कोमल स्वर में कहा—मैं तो समझती हूं, जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ। जो काम अच्छी नीयत से किया जाता है, वह ईश्वरार्थ होता है। नतीजा कुछ भी हो। यज्ञ का अगर कुछ फल न मिले तो यज्ञ का पुण्य तो मिलता ही है, लेकिन मैं तो इस निर्णय को विजय समझती हूं, ऐसी विजय तो अभूतपूर्व है। हमें जो कुछ बलिदान करना पडा, वह उस जागृति के देखते हुए कुछ भी नहीं है, जो जनता मे अकुरित हो गई है। क्या तुम समझते हो, इन बलिदानों के बिना यह जागृति आ सकती थी, और क्या इस जागृति के बिना यह समझौता हो सकता था? मुझे इसमें ईश्वर का हाथ साफ नजर आ रहा है।

अमर ने श्रद्धा-भरी आंखों से सुखदा को देखा। उसे ऐसा जान पड़ा कि स्वयं ईश्वर इसके मन में बैठे बोल रहे हैं। वह क्षोभ और ग्लानि निष्ठा के रूप में प्रज्वलित हो उठी, जैसे कूड़े-करकट का ढेर आग की चिनगारी पड़ते ही तेज और प्रकाश की राशि बन जाता है। ऐसी प्रकाशमय शांति उसे कभी न मिली थी।

उसने प्रेम से-गद्‌गद कंठ से कहा—सुखदा, तुम वास्तव में मेरे जीवन का दीपक हो।

उसी वक्त लाला समरकान्त बालक को कंधे पर बिठाए हुए आकर बोले—अभी तो

काशी ही चलने का विचार है न?

अमर ने कहा—मुझे तो अभी हरिद्वार जाना है।

सुखदा बोली—तो सब वहीं चलेंगे।

अमरकान्त ने कुछ हताश होकर कहा—अच्छी बात है। तो जरा मैं बाजार से सलोनी के लिए साड़ियां लेता आऊं?

सुखदा ने मुस्कराकर कहा—सलोनी के लिएं ही क्यों? मुन्नी भी तो है।

मुन्नी इधर ही आ रही थी। अपना नाम सुनकर जिज्ञासा-भाव से बोली—क्या मुझे कुछ कहती हो बहूजी?

सुखदा ने उसकी गरदन में हाथ डालकर कहा—मैं कह रही थी कि अब मुन्नीदेवी भी हमारे साथ काशी रहेंगी।

मुन्नी ने चौंककर कहा—तो क्या तुम लोग काशी जा रहे हो?

सुखदा हंसी—और तुमने क्या समझा था?

"मैं तो अपने गांव जाऊंगी।"

"हमारे साथ न रहोगी?"

"तो क्या लाला भी काशी जा रहे हैं?"

"और क्या? तुम्हारी क्या इच्छा है?"

मुन्नी का मुंह लटक गया।

"कुछ नहीं, यों ही पूछती थी।"

अमर ने उसे आश्वासन दिया—नहीं मुन्नी, यह तुम्हें चिढ़ा रही हैं। हम सब हरिद्वार चल रहे हैं।

मुन्नी खिल उठी।

"तब तो बड़ा आनंद आएगा। सलोनी काकी मूसलों ढोल बजाएगी।"

अमर ने पूछा—अच्छा, तुम इस फैसले का मतलब समझ गई?

"समझी क्यों नहीं? पांच आदमियों की कमेटी बनेगी। वह जो कुछ करेगी उसे सरकार मान लेगी। तुम और सलीम दोनों कमेटी में रहोगे। इससे अच्छा और क्या होगा?"

"बाकी तीन आदमियों को भी हमीं चुनेंगे।"

"तब तो और भी अच्छा हुआ।"

"गवर्नर साहब की सज्जनता और सहृदयता है।"

"तो लोग उन्हें व्यर्थ बदनाम कर रहे थे?"

"बिल्कुल व्यर्थ।"

"इतने दिनों के बाद हम फिर अपने गांव में पहुंचेंगे। और लोग भी छूट आए होंगे?"

"आशा है। जो न आए होंगे, उनके लिए लिखा-पढ़ी करेंगे।"

"अच्छा, उन तीन आदमियों में कौन-कौन रहेगा?"

"और कोई रहे या न रहे, तुम अवश्य रहोगी।"

"देखती हो बहूजी, यह मुझे इसी तरह छेड़ा करते हैं।"

यह कहते-कहते उसने मुंह फेर लिया। आंखों में आंसू भर आए थे।

●●●